॥ ॐ ह्रीं अर्हम् नमः ॥

॥ श्री नेमि-विज्ञान-कस्तुर-यशोभद्रसूरिजी सद्गुरुभ्यो नमः ॥

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र

भाग : तीसरा

पर्व : ७-८-९

श्री धृतकल्लोल पार्श्वनाथ भगवान
श्री सुथरी तीर्थ

श्री लोढण पार्श्वनाथ भगवान
श्री दर्भावती (डभोई) तीर्थ

-: प्रेरक :-

शासनसम्राट प.पू.आ.श्री विजय नेमिसूरिजी म.सा. के समुदाय के
शासनप्रभावक प.पू.आ.श्री विजय यशोभद्रसूरिजी म.सा. के शिष्य
प.पू. आचार्यश्री विजय श्रेयांसचंद्रसूरिजी म.सा.

-: प्रकाशक :-

देवसूरि जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ
डभोई, जि. वडोदरा

॥ ॐ ह्रीं अर्हम् नमः ॥

॥ श्री नेमि-विज्ञान-कस्तुर-यशोभद्रसूरिजी सद्गुरुभ्यो नमः ॥

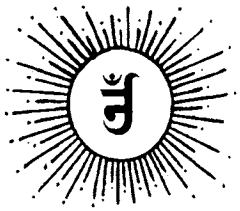

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य विरचित संस्कृत पद्यात्मक

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र

भाग : तीसरा

पर्व : ७-८-९

वीर संवत २५३१, विक्रम संवत २०६१, अषाढ वद ३, शनिवार दिनांक २३-७-२००५

प्रथम संस्करण : प्रत १०००

राम-लक्ष्मण-रावण का विस्तृत चरित्र
श्री नेमिनाथ प्रभु तथा कृष्ण-बलदेव-जरासंघ का विस्तृत चरित्र
ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती तथा श्री पार्श्वनाथ प्रभु का चरित्र
तथा अन्य भगवान-चक्रवर्ती आदि के चरित्र

-: प्रेरक :-

शासनसम्राट प. पू. आ. श्री विजय नेमिसूरिजी म. सा. के समुदाय के
शासनप्रभावक प. पू. आ. श्री विजय यशोभद्रसूरिजी म. सा. के शिष्य
प. पू. आचार्यश्री विजय श्रेयांसचंद्रसूरिजी म. सा.

-: प्रकाशक :-

देवसूरि जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ

डभोई, जि. वडोदरा

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र

भाग - तीसरा (पर्व : ७-८-९)

-: प्रेरक :-

शासनसम्राट प. पू. आ. श्री विजय नेमिसूरिजी म. सा. के समुदाय के
शासनप्रभावक प. पू. आ. श्री विजय यशोभद्रसूरिजी म. सा. के शिष्य

प. पू. आचार्यश्री विजय श्रेयांसचंद्रसूरिजी म. सा.

© All rights reserved

वीर संवत २५३१, विक्रम संवत २०६१, अषाढ वद ३, शनिवार दिनांक २३-७-२००५
प्रथम संस्करण : प्रत १०००

-: मूल्य :-

प्राप्तिस्थान

जैन प्रकाशन मंदिर तंबोळीनो खांचो, दोशीवाडानी पोळ, गांधी रोड पुल नीचे, अमदावाद-१.	**श्री कौशिकभाई रसिकलाल शाह** शहेनशाहनी चाल, पादशाहनी पोळ, रिलीफ रोड, अमदावाद-१	**सरस्वती पुस्तक भंडार** हाथीखाना, रतनपोळ, अमदावाद-१.

-: प्रकाशक :-

देवसूरि जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ
डभोई, जि. वडोदरा

मुद्रक : मरक्युरी प्रिन्टर्स
२०१, धनलक्ष्मी कोम्पलेक्ष, ललित पेलेस के उपर, पोलीस कमिश्नर की ओफिस के पास,
शाहीबाग, अहमदाबाद-३८० ००४. **फोन : (079) 25624029 (M) 9327007016**

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र भाग-३

भगवान के फोटो रखवाने वाले दाता के नाम

(१) आदिनाथ जैन श्वे. मू. संघ — झवेरीपार्क, नारणपुरा, अहमदाबाद-१३

(२) वर्धमान जैन श्वे. मू. संघ — मेमनगर, अहमदाबाद

(३) देवसूरि जैन श्वे. मू. संघ — डभोई, श्रीमाली वागो, जि. वडोदरा

(४) 'बोटाद जैन श्वे. मू. संघ — अंबाजी चोक, जि. भावनगर

(५) 'संवेगी जैन मोटा उपाश्रय संघ — वडा चौटा, सुरत-३

(६) विशा निमा जैन श्वे. मू. संघ — गोधरा, जि. पंचमहाल

(७) संभवनाथ जैन श्वे. मू. संघ — वसई रोड (वेस्ट), जि. थाणा

(८) मुनिसुव्रत स्वामी जैन श्वे. मू. संघ — कृष्णनगर, नरोडा रोड, अहमदाबाद

(९) चन्द्रप्रभ जैन श्वे. मू. संघ — निपाणी, जि. बेलगांव (कर्णाटक)

(१०) जैन श्वे. मू. संघ — सायन (वेस्ट), मुंबई

(११) महावीरनगर जैन श्वे. मू. संघ — कांदिवली (वेस्ट), शंकर गली, मुंबई

(१२) आदिनाथ जैन श्वे. मू. संघ — मंडपेश्वर रोड, बोरीवली (वेस्ट), मुंबई-९२.

(१३) चन्द्रप्रभ जैन देरासर ट्रस्ट — पार्ला (वेस्ट), मुंबई

(१४) महुवा विशा श्रीमाली जैन श्वे. मू. संघ, जि. भावनगर

(१५) बहेनों का उपाश्रय — वडा चौटा, सुरत

मंतव्य

"**त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र - भाग : ३**"मां रामायण, नमिनाथ प्रभुनुं चरित्र, हरिसेण तथा जयचक्रीनुं चरित्र, नेमिनाथ प्रभुनुं पूर्व भव साथेनुं चरित्र, नलदमयंती, श्रीकृष्ण वासुदेव, बलराम, शांब-प्रद्युम्न, ढंढणकुमार, पांच पांडव, द्वारकानुं दहन, ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीनुं चरित्र तथा पार्श्वनाथ प्रभुनुं पूर्वभव साथेनुं जीवनचरित्र पर्व ७-८-९मां आवे छे. कलिकालसर्वज्ञ प.पू.आचार्य श्री विजय हेमचन्द्रसूरिजी म.सा.ए संस्कृतमां रचेल छे. तेनुं भाषांतर करी जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर गुजरातीमां छपावेल छे. तेनो आधार लईने **नवनीतलाल जयंतिलाल महेता** (अमदावाद-फतेहपुरा)अे **महेन्द्रभाई जानी** पासे हिन्दीमां अनुवाद ओछा खर्चे करावी आपेल छे, ते बदल तेमनी अनुमोदना तथा प्रेसनुं काम **श्री श्रेणिकभाई शाह** (मरक्युरी प्रिन्टर्सवाळा)अे करी आपेल छे. तथा लक्ष्मीचंद गडा तथा अमारा नाना भाई भरतभाईए पण सारी सेवा करेल छे. ते बदल तेमनी अनुमोदना.

आ पुस्तक वांची ज्ञान साथे आत्मानुं श्रेय साधे तेवी शुभेच्छा.

ता. २३-७-२००५

"**ली. मणिकान्त ठाकरशी शाह**
ना जय जिनेन्द्र
(कच्छ-जखौ, हाल मुलुन्ड-मुंबई)

विषयानुक्रमणिका

पर्व ७ : श्री रामचंद्र, लक्ष्मण तथा रावण चरित्र

सर्ग १	**राक्षसवंश-वानरवंश उत्पत्ति तथा रावण जन्म वर्णन** श्री कंठ द्वारा राक्षसपति कीर्तिधवल की कन्या पद्मा का अपहरण और वानरद्वीप में निवास करने से वानरवंश की उत्पत्ति पाताललंका के राजा सुमाली को रत्नश्रवा पुत्र - उसका कैकसी के साथ ब्याह और रावण वगैरह का जन्म	१ से ८
सर्ग २	**रावण दिग्विजय** रावण द्वारा विद्यासिद्धि तथा वैश्रवण को हराकर अपनी मूल नगरी लंका पर विजय वालि के साथ युद्ध में रावण की हार - वालि दीक्षा और सुग्रीव का राज्याभिषेक मरुत्त राजा द्वारा पशुहिंसात्मक यज्ञ - नारद द्वारा यज्ञोत्पत्ति की कथा - वसुराजा के असत्य भाषण से नर्कगमन और पर्वत महाकाल द्वारा हिंसात्मक यज्ञ का निरुपण	९ से ४०
सर्ग ३	**हनुमान की उत्पत्ति तथा वरुण का साधन (अंजना सती की कथा)**	४१ से ५५
सर्ग ४	**राम-लक्ष्मण की उत्पत्ति, विवाह और वनवास** इक्ष्वाकु वंश की परंपरा - वज्रबाहु द्वारा शादी के बाद तुरंत दीक्षा कीर्तिधर तथा सुकोशलमुनि - आखिर में दशरथ राजा की उत्पत्ति दशरथ राजा का कैकेयी वगैरह के साथ विवाह और राम-लक्ष्मण वगैरह का जन्म सीता और भामंडल का पूर्वजन्म - सीता-राम विवाह और राम-वनवास	५६ से ८१
सर्ग ५	**सीताहरण (रामवनवास की चर्या)** वज्रकर्ण राजा - उसकी धर्मदृढता और राम द्वारा सिंहोदर राजा से उसकी रक्षा जटायु का पूर्वभव - दंडकराजा और स्कंदक मुनि की कथा - ५०० शिष्यों को घानी में पिला सूर्पणखा का प्रसंग - राम द्वारा उसके प्रेम का अस्वीकार और रावण द्वारा सीताहरण	८२ से १०४
सर्ग ६	**हनुमान द्वारा सीता की खोज** जार सुग्रीव का राम द्वारा वध - सुग्रीव की प्रेरणा से हनुमान सीता की खोज के लिये रवाना हनुमान को अशोकवन में सीता का मिलाप पराक्रम दिखाने के लिये हनुमान द्वारा लंका में तोडफोड	१०५ से १२४
सर्ग ७	**रावणवध (युद्ध का वर्णन)** विभीषण का गृहत्याग और राम की शरण में जाना अमोघविजया शक्ति से लक्ष्मण को मूर्च्छा और विशल्या के करस्पर्श से पुनर्जीवन	१२५ से १४३
सर्ग ८	**राम द्वारा सीता का परित्याग** भुवनालंकार हाथी और भरत का पूर्वजन्म शत्रुघ्न द्वारा मथुरानगरी की मांग - उसका पूर्वजन्म और मधुराजा के साथ द्वेष का कारण लोकापवाद से गर्भवती सीता का त्याग - सीता का संदेश	१४४ से १६०
सर्ग ९	**सीता की शुद्धि और व्रतग्रहण** वज्रजंघ राजा के घर सीता को अनंगलवण और मदनांकुश नाम के पुत्रों का जन्म राम-पुत्रों का राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध - सीता की अग्निपरीक्षा और दीक्षा	१६१ से १७२

सर्ग १०	**राम का निर्वाणगमन** रावण, सीता, भामंडल,अ नंगलवण, मदनांकुश वगैरह का पूर्वजन्म लक्ष्मण का राम के प्रति स्नेह की परीक्षा करने पर लक्ष्मण का मरण - राम दीक्षा और निर्वाण रामायण समाप्त	१७३ से १८५
सर्ग ११	**श्री नमिनाथजी का चरित्र**	१८६ से १९१
सर्ग १२	**श्रि हरिषेण चक्रवर्ती का चरित्र**	१९२ से १९३
सर्ग १३	**श्री जय चक्रवर्ती का चरित्र**	१९४ से १९५

पर्व ८ : श्री नेमिनाथादि चरित्र

सर्ग १	**श्री अरिष्टनेमि के पूर्वभव का वर्णन** प्रथम भव में धनकुमार और धनवती-मुनिचंद्र मुनि से समकित प्राप्ति और वसुंधर मुनि से दीक्षा तीसरे भव में चित्रगति और रत्नवती - दमधर मुनि से दीक्षा पांचवे भव में अपराजित और प्रीतिमती - मरकर आरण देवलोक में सामानिक देव सातवें भव में शंख और यशोमती-श्रीषेण मुनि से दीक्षा और तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन	१९६ से २२३
सर्ग २	**वसुदेव चरित्र - पूर्वभव और गृहत्याग** वसुदेव का पूर्वभव - नंदीषेण मुनि के भव में मुनि सेवा और स्त्रीवल्लभ बनने का संकल्प कंस का अशुभ अभिलाषपूर्वक जन्म-माता द्वारा त्याग-जीवयशा के साथ विवाह वसुदेव का गृहत्याग-गंधर्वसेना के साथ ब्याह और इस प्रसंग पर चारुदत्त की कथा	२२४ से २५४
सर्ग ३	**वसुदेव चरित्र - कनकवती के साथ ब्याह और उसका पूर्वजन्म** कुबेर द्वारा कनकवती के पूर्वभव में नल-दमयंती का पूर्वभव सहित विस्तृत चरित्र	२५५ से ३०७
सर्ग ४	**वसुदेव चरित्र - शौरिपुर में पुनरागमन (रोहिणी के साथ ब्याह)**	३०८ से ३१०
सर्ग ५	**बलराम - कृष्ण तथा अरिष्टनेमि का जन्म, कंसवध** **द्वारिकानगरी का स्थापन** कृष्ण और बलराम का पूर्वभव - गंगदत्त और ललित - विश्ववल्लभ होने का संकल्प वसुदेव का देवकी के साथ विवाह और कृष्ण जन्म - कृष्ण के पराक्रम पूतना राक्षसी, खर राक्षस वगैरह का वध कंस का वध और देवों द्वारा द्वारिका का निर्माण	३११ से ३३२
सर्ग ६	**रुक्मिणी वगैरह स्त्रियों का विवाह, पांडव द्रौपदी स्वयंवर** **और प्रद्युम्न का चरित्र** रुक्मिणी को प्रद्युम्न का जन्म - अपहरण - प्रद्युम्न और रुक्मिणी का पूर्वजन्म द्रौपदी का पांच पांडवों के साथ विवाह - द्रौपदी का पूर्वजन्म कनकमाला द्वारा प्रद्युम्न पर बलात्कार दोषारोपण - लडाई और प्रद्युम्न का १६ वर्ष के बाद द्वारिका में आगमन	३३३ से ३५८

सर्ग ७	**शांब तथा प्रद्युम्न का विवाह और जरासंघ का वध**	३५९ से ३८०
सर्ग ८	**सागरचंद्र का उपाख्यान, उषाहरण और बाणासुर का वध**	३८१ से ३८५
सर्ग ९	**भगवान श्री अरिष्टनेमि की कौमारक्रीडा, दीक्षा और केवलज्ञान की उत्पत्ति**	३८६ से ४०५
	नेमिनाथ द्वारा श्रीकृष्ण का शंख फूंकना और बलपरीक्षा	
	कृष्ण की रानियों के साथ नेमिनाथ की जलक्रीडा	
	राजीमती के साथ नेमिनाथ का विवाह-तोरणद्वार से वापस लौटकर गिरनार पर दीक्षा	
	भगवंत की देशना - बाईस अभक्ष्य तथा मदिरा-मांस-मख्खन-रात्रिभोजन के दोष	
सर्ग १०	**द्रौपदी प्रत्याहरण और गजसुकुमार वगैरह का चरित्र**	४०६ से ४२१
	वीरा सालवी की कथा - रानी बनना चाहती कृष्णपुत्री के साथ विवाह	
	ढंढनकुमार-स्वलब्धि से आहारप्राप्ति का अभिग्रह - केवलज्ञान प्राप्ति	
सर्ग ११	**द्वारिका दहन और कृष्ण का अवसान**	४२२ से ४३०
सर्ग १२	**बलदेव का स्वर्गगमन और श्री नेमिनाथ का निर्वाण**	४३१ से ४३७
	बलदेव, मृग और रथ का तीनों की करनी-भरनी-अनुमोदन से ब्रह्मदेवलोक में उत्पत्ति	
	बलदेव देव द्वारा नरकवासी कृष्ण के संतोष के लिये देवमाया से लोगों में पूजाप्रवर्तन	

पर्व ९ : श्री ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती तथा श्री पार्श्वनाथ चरित्र

सर्ग १	**श्री ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चरित्र**	४३८ से ४६८
	पूर्वभव चित्र और संभूत मुनि - सुनंदा स्त्रीरत्न के केशस्पर्श से संभूत मुनि का संकल्प	
	माता चुलनी द्वारा ब्रह्मदत्त को मारने का प्रयत्न - वरधनु के साथ देशाटन-दिग्विजय	
	ब्राह्मण द्वारा ग्वाले से चक्री की आंखें फुडवाना - द्वेष से ब्राह्मणों की आँखे मसलना - नर्कगमन	
सर्ग २	**श्री पार्श्वनाथ चरित्र (नौ भव वर्णन)**	४६९ से ४८४
	प्रथम भव - मरुभूति और कमठ - कमठ द्वारा मरुभूति - पत्नी साथ	
	व्यभिचार और कमठ का अपमान और एकपक्षीय वैर का बीजारोपण	
	चौथा भव - किरणवेग राजा और सर्प	
	छठ्ठा भव - चक्रायुध राजा और कुरंगल भील	
	आठवाँ भव - सुवर्णबाहु चक्रवर्ती और सिंह - तीर्थंकरनामकर्म - दसवाँ देवलोक	
सर्ग ३	**श्री पार्श्वनाथ प्रभु का जन्म, कौमारावस्था, दीक्षा और केवलज्ञान**	४८५ से ५०३
	कमठ तापस द्वारा पंचाग्नि तप-जलते सर्प की समाधिमृत्यु-धरणेन्द्र पद प्राप्ति	
	मेघमाली देव द्वारा मरणांत उपसर्ग - धरणेन्द्र द्वारा निवारण - प्रभु की समदृष्टि	
	भगवंत की देशना - बारह व्रत और उसके अतिचार	
	पंद्रह कर्मादानी व्यवसाय वर्णन	
सर्ग ४	**श्री पार्श्वनाथ प्रभु का विहार और निर्वाण**	५०४ से ५२०
	सागरदत्त की कथा	
	बंधुदत्त की कथा - प्रभु को पूछा हुआ पूर्वभव और प्रियदर्शना के साथ दीक्षा	

६ भव चक्रायुध राजा - कुरंगल भील
पार्श्वनाथ प्रबुनो पूर्वभव

प्रथम भव - मरुभूतिनो
पार्श्वनाथ प्रभुनो पूर्वभव

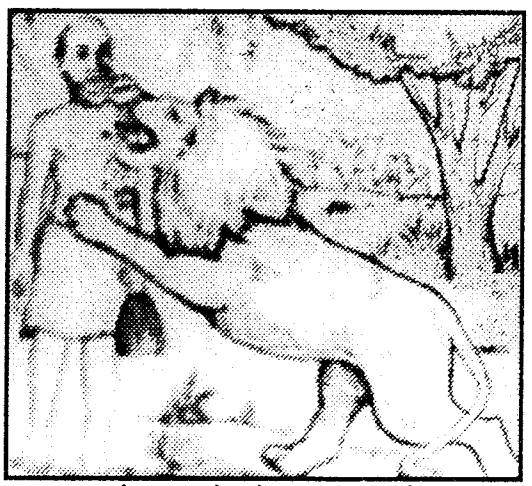

पार्श्वनाथ प्रभुनो पूर्वभव (भव आठमो)
सुवर्ण बाहुराज चक्रवर्ती अने सिंहनो मरणांत उपसर्ग

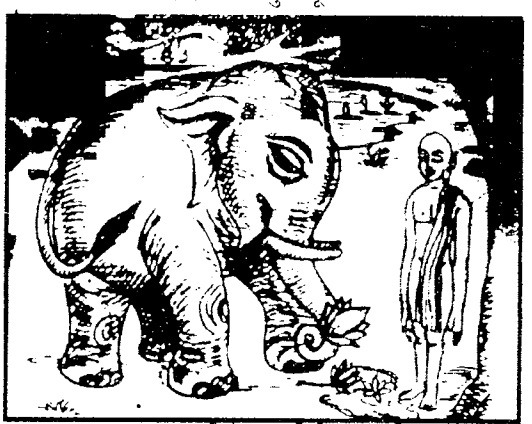

१० भव कलीकुंड हाथीनो प्रभु भक्ति
पार्श्वनाथ प्रभुनो अंतिम भव

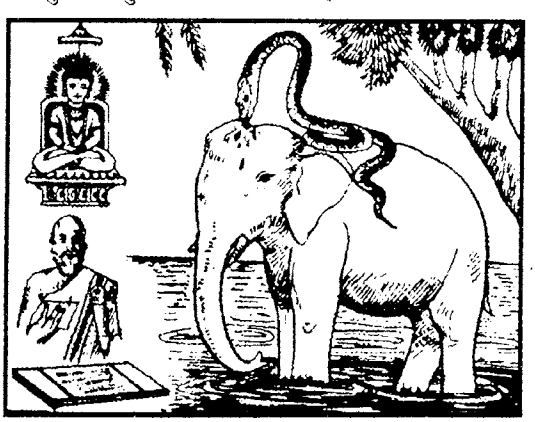

बीजो भव हाथीनो
पार्श्वनाथ प्रभुनो पूर्वभव

किरणवेग राजा सर्पनो उपसर्ग
पार्श्वनाथ प्रभुनो पूर्वभव

आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्य विरचित

श्री त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र

(भाग तीसरा)

पर्व-७

श्री रामचंद्र, लक्ष्मण और रावण चरित्र

पहला सर्ग

राक्षसवंश-वानरवंश उत्पत्ति तथा रावण-जन्म वर्णन

अंजन समान कांतिवान व हरिवंश में चन्द्र समान ऐसे श्री मुनिसुव्रत स्वामी अर्हत के तीर्थ में उत्पन्न हुए पद्म (राम) नाम के बलदेव, नारायण (लक्ष्मण) नाम के वासुदेव और रावण नाम के प्रतिवासुदेव का चरित्र कहा जायेगा। जब श्री अजितनाथ प्रभु विचर रहे थे तब इस भरतक्षेत्र में राक्षसद्वीप की लंकानगरी में राक्षस वंश के अंकुरभूत **धनवाहन** नाम का राजा हुआ था। वह सद्‌बुद्धिवाला राजा अपने पुत्र **महाराक्षस** को राज्य देकर अजितस्वामी से दीक्षा लेकर मोक्ष गया। महाराक्षस भी अपने **देवराक्षस** नाम के पुत्र को राज्य सौंपकर व्रत लेकर मोक्ष गया। इस प्रकार राक्षसद्वीप के असंख्य अधिपति हो जाने के बाद श्रेयांस प्रभु के तीर्थ में **कीर्तिधवल** नाम का राक्षसपति हुआ।

उस अरसे में वैताढ्यगिरि पर **मेघपुर** नाम के नगर में **अतींद्र** नाम का विद्याधरों का सुप्रसिद्ध राजा हुआ। उसे श्रीमती नाम की कांता (पत्नी) से **श्रीकण्ठ** नाम का एक पुत्र और देवी के जैसी स्वरुपवती **देवी** नाम की एक दुहिता (पुत्री) हुई। रत्नपुर के राजा **पुष्पोत्तर** नाम के विद्याधरेन्द्र ने अपने पुत्र **पद्मोत्तर** के लिए उस चारुलोचना की मांग की, लेकिन अतीन्द्र ने उस गुणवान और श्रीमान पद्मोत्तर को वह कन्या न देकर दैवयोग से कीर्तिधवल को दी।

कीर्तिधवल उसे ब्याह गया ऐसे समाचार सुनकर पुष्पोत्तर राजा अतींद्र के साथ और उसके पुत्र श्रीकण्ठ के साथ बैर रखने लगा। एक बार श्रीकण्ठ मेरुपर्वत पर से वापस लौट रहा था कि रुप में पद्मा (लक्ष्मी) जैसी पुष्पोत्तर राजा की **पद्मा** नाम की दुहिता (पुत्री) उसे नज़र आई। श्रीकण्ठ व पद्मा को तत्काल कामदेव के विकारसागर को उल्लासित करने में दुर्दिन जैसा परस्पर अनुराग हुआ। पद्माकुमारी स्निग्ध दृष्टि से मानो स्वयंवर की माला पहना रही हो त्यों श्रीकण्ठ की ओर अपना मुखकमल रखकर खड़ी रही। उसका अनुकूल अभिप्राय जानकर कामातुर श्रीकण्ठ उसे उठाकर तत्काल आकाशमार्ग से जाने लगा। उस समय उसकी दासियाँ 'कोई पद्मा को हर जा रहा है' ऐसी पुकार मचाने लगी। यह सुनकर बलवान पुष्पोत्तर राजा

सैन्य सहित सुसज्ज होकर श्रीकण्ठ के पीछे दौड़ा। श्रीकण्ठ भागकर कीर्तिधवल की शरण में आया, और पद्मा के हरण की संपूर्ण बात उसे बतायी। प्रलयकाल के जल द्वारा सागर की तरह सैन्य से दिशाओं को आच्छादन करता हुआ पुष्पोत्तर राजा तुरंत वहां आया। कीर्तिधवल ने दूत भेजकर पुष्पोत्तर को कहलवाया कि 'विचार किए बिना सिर्फ क्रोध से करना चाहा हुआ यह तुम्हारा युद्ध का प्रयास व्यर्थ है, क्योंकि कन्या किसीको अवश्य देनी ही है। वह कन्या श्रीकण्ठ को स्वैच्छा से वरी है उसमें श्रीकण्ठ का कुछ अपराध नहीं है, इसलिए आपको युद्ध करना उचित नहीं है।' आपकी पुत्री का मन जानकर अब तो उस वधूवर के विवाह का कृत्य करना योग्य है।' पद्मा ने भी एक दूती द्वारा कहलवाया कि 'हे पिता ! श्रीकण्ठ ने मेरा हरण नहीं किया हैं, मैं स्वैच्छा से ही श्रीकण्ठ को वरी हूँ।' दूती से ऐसे समाचार सुनकर क्षणभर में पुष्पोत्तर का कोप शांत हो गया। प्रायः विचारवान पुरुषों का कोप सरलता से टल जाता है।

फिर पुष्पोत्तर श्रीकण्ठ और पद्मा को वहां बड़े उत्सव से विवाह करके अपने नगर वापस लौटा। कीर्तिधवल ने श्रीकण्ठ को कहा, "हे मित्र ! आप यहीं रहिए, क्योंकि वैताढ्यगिरि पर आपके कइं शत्रु हैं। इस राक्षसद्वीप के समीप में ही वायव्य दिशा में तीनसौं योजन प्रमाण का **वानरद्वीप** है, इसके अलावा दूसरे भी बर्बरकुल और सिंहल वगैरह मेरे द्वीप हैं, जो भ्रष्ट होकर नीचे आये हुए स्वर्ग के खण्ड समान हैं। उसमें से एक द्वीप में राजधानी करके मेरे नज़दीक अवियुक्त होकर आप सुख से रहिए। यद्यपि आपको शत्रुओं से थोडा सा भी भय नहीं है, फिर भी मेरे वियोग के भय से आप वहां जाने योग्य नहीं है।" इस प्रकार कीर्तिधवल के स्नेहपूर्वक कहने पर व उसके वियोग से कायर बने श्रीकण्ठ ने वानरद्वीप में निवास करना कबूल किया। फिर कीर्तिधवल ने वानरद्वीप में किष्किंधा गिरि पर बसी किष्किंधा नाम की नगरी के राज्य पर श्रीकण्ठ को बिठाया। वहां आसपास घूमते बड़े शरीरवाले व फल खानेवाले कइं रम्य वानर श्रीकण्ठ राजा को नज़र आये। उनके लिए अवध्य घोषणा करवाकर श्रीकण्ठ ने अन्न-पानादि दिलवाना शुरू किया। तो अन्य लोग भी वानरों का सत्कार करने लगे। क्योंकि कहावत हैं कि "यथा राजा तथा प्रजा।" तब से विद्याधर कुतूलहलता से चित्र में, लेप्य में और ध्वजछत्रादि चिह्नों में वानरों के चित्र ही बनाने लगे। वानर द्वीप के राज्य से व सर्वत्र वानरों के चिह्न से वहां बसे विद्याधर **वानर** नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्रीकण्ठ को **वज्रकण्ठ** नाम का एक पुत्र हुआ, जो युद्धलीला में उत्कण्ठावाला और सर्वत्र अकुंठ पराक्रमी था। एक बार श्रीकण्ठ अपने सभास्थान में बैठा था, इतने में नंदीश्वर द्वीप में शाश्वत अर्हंत की यात्रा के लिए जाते हुए देवता उसे नज़र आये। तत्काल गाँव से बाहर आकर मार्ग पर जाते हुए अनेक वाहनों में बैठे हुए देवताओं के पीछे वह भी भक्ति वश होकर चलने लगा। विमान में बैठकर जाते हुए ज्यों मार्ग में आये गिरि से नदी की गति रुक जाय त्यों मानुषोत्तर

गिरि को पार करते हुए उसका विमान स्खलित हो गया। 'पूर्व जन्म में अल्प तप किया होगा, जिससे नंदीश्वर द्वीप में रहे अर्हंत की यात्रा का मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ।' ऐसे विचार से निर्वेद पाकर श्रीकण्ठ ने तत्काल दीक्षा ग्रहण की, और तीव्र तपस्या करके वह सिद्धक्षेत्र में गया।

श्रीकण्ठ के बाद वज्रकण्ठ वगैरह अनेक राजा हो गये। फिर मुनिसुव्रत प्रभु के तीर्थ में **धनोदधि** नाम का राजा हुआ। उस समय लंकापुरी में **तडित्केश** नाम का राक्षसपति था। उन दोनों के बीच भी गाढ़ स्नेह हुआ। एक बार राक्षसपति तडित्केश अंतःपुर के साथ नंदन नाम के श्रेष्ठ उद्यान में क्रीडा करने गया। तडित्केश क्रीडा करने में आसक्त होने पर किसी वानर ने वृक्ष पर से उतरकर **श्रीचन्द्रा** नाम की उसकी पटरानी के स्तन पर नाखून मारे। वह देखकर रोष से केश ऊँचे करते हुए तडित्केश ने एक बाण से उस वानर पर प्रहार किया, क्योंकि स्त्री का पराभव प्राणी को असह्य है। बाण के प्रहार से घायल बना वह वानर वहां से थोड़ा थोड़ा उछलते हुए नज़दीक में कायोत्सर्ग में रहे हुए किसी मुनि के समक्ष जा गिरा। मुनि ने परलोक के मार्ग में पाथेय[1] समान नवकार मंत्र उसे सुनाया। उसके प्रभाव से मृत्यु पाकर वह वानर **अब्धिकुमार**[2] निकाय में देवता बना।

अवधिज्ञान से अपना पूर्व भव जानकर उसने तुरंत ही वहां आकर मुनि की वन्दना की। साधु मुनिराज सज्जनों को वन्दनीय हैं, उसमें भी उपकारी तो विशेष वन्दनीय है। यहां तडित्केश के सुभटों ने दूसरे वानरों को भी मारना शुरू किया, जिसे देखकर वह देवता कोप से प्रज्वलित हुआ। तत्काल बड़े वानरों के अनेक रुप धरकर वृक्ष व शिलाओं के समूह की वृष्टि करते हुए वह राक्षसों पर उपद्रव करने लगा। वह सर्व दिव्य प्रयोग जानकर तडित्केश ने वहां आकर उसकी पूजा करके पूछा, 'आप कौन हो ? और किसलिए उपद्रव करते हो ?' पूजा से शांत बने अब्धिकुमार ने अपना वध व नवकार मंत्र के प्रभाव की बात कह सुनाई। इसके बाद लंकापति ने उस देव के साथ मुनि के पास आकर पूछा, 'हे प्रभु ! इस कपि के साथ मेरा बैर होने का कारण क्या है ?' मुनि बोले, ''श्रावस्ती नगरी में दत्त नाम का तू सचिवपुत्र था और यह अब्धिकुमार **काशी** नगर में **लुब्धक** (पारधी) था। एक बार तू दीक्षा लेकर काशी में आ रहा था कि उस लुब्धक ने तुम्हें सामने आते हुए देखा, जिसे असगुन मानकर तुझ पर प्रहार करके उसने पृथ्वी पर गिरा दिया। वहां से मृत्यु पाकर तू महेन्द्र कल्प में[3] देवता बना, और वहां से च्यूत होकर यहां लंका में राक्षसपति बना है। वह लुब्धक नरक में जाकर यहां आकर वानर बना था। इस प्रकार तेरा बैर होने का कारण है।'' फिर असाधारण उपकारी ऐसे उन मुनि की वन्दना करके लंकापति की आज्ञा लेकर वह देव अदृश्य हो गया। मुनि ने कहे हुए अपने पूर्वभव

१. मार्ग में भोजन हेतु ले जाया जाता राहभोजन। २. भुवनपति के दस भेद निकाय संज्ञा में हैं, उसमें अब्धिकुमार अथवा उदधिकुमार नाम की एक निकाय है। ३. चौथा देवलोक

को सुनकर तडित्केश अपने **सुकेश** नाम के पुत्र को राज्य पर बैठाकर दीक्षा लेकर परमपद पा गये। राजा धनोदधि भी **किष्किंध** नाम के अपने पुत्र को किष्किंधा नगरी का राज्य देकर दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुए।

उस समय वैताढ्यगिरि पर **रथनुपुर** नाम के नगर में **अशनिवेग** नाम का विद्याधरों का राजा था। उसे दूसरे दो भुजदण्ड समान **विजयसिंह** और **विद्युद्वेग** नाम के दो महा जयवंत पुत्र थे। उसी गिरि पर आदित्यपुर में **मंदिरमाली** नाम का विद्याधरों का राजा था, उसे **श्रीमाला** नाम की एक कन्या थी। उसके स्वयंवर में मंदिरमाली ने विद्याधरों के राजाओं को बुलवाया। विमान में ज्योतिष देव की भाँति वे मंच पर आकर बैठे। प्रतिहारी ने कहे विद्याधर के राजाओं को राजकुमारी श्रीमाला नहर ज्यों जल से वृक्ष का स्पर्श करे त्यों दृष्टि से स्पर्श करने लगी। क्रमशः अन्य सर्व विद्याधरों का उल्लंघन करके ज्यों नदी समुद्र के पास जाये त्यों श्रीमाला किष्किंधिकुमार के पास जाकर खड़ी रही। भविष्यकाल में भुजलता के आलिंगन की निर्दोष प्रत्याभू हो ऐसी वरमाला उसके कण्ठ में पहनाई। उस समय शेर की तरह साहस को प्रिय माननेवाला विजयसिंह भ्रूकुटी से मुख को भयंकर करके, क्रोध लाकर इस प्रकार बोला, 'सदैव अन्याय करनेवाले इन विद्याधरों को मेरे राज्य में से चोर को निकाल दे त्यों पूर्व वैताढ्यगिरि की राजधानी में से निकाल दिए हैं। इन दुर्विनीत और कुलाधम को यहां किसने वापस बुलवाया है ? लेकिन कुछ फिक्र नहीं, अब दुबारा न आये इसलिए मैं ही उनको पशुओं की तरह मार डालता हूँ।' इस प्रकार कहकर महावीर्यवान और यमराज जैसा वह विजयसिंह आयुध उछालते हुए किष्किंधि राजा के समीप उसका वध करने आया तो सुकेश वगैरह किष्किंधि पक्ष के और अन्य कुछ विजयसिंह पक्ष के दुर्धर पराक्रमी विद्याधर आमने-सामने युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। दंतादंती युद्ध करने में प्रवर्तित हाथियों से आकाश में चिनगारियां चमकने लगी, भाला-भाली युद्ध में सवार टकराने लगे और बाणयुद्ध में महारथी मरने लगे और खड़गयुद्ध में पायदल गिरने लगा। कुछ ही देर में संपूर्ण भूमि पंकिल[1] हो गयी। इस प्रकार कल्पांत काल की तरह दारुण युद्ध हुआ। चिरकाल युद्ध करके किष्किंधि के अनुज (छोटे) बंधु **अंधक** ने ज्यों वृक्ष पर से फल गिराये त्यों विजयसिंह का मस्तिष्क बाण से गिरा डाला। उस समय विजयसिंह के पक्ष के विद्याधर त्रस्त हुए, क्योंकि स्वामी बिना शौर्यता कैसे रहे ? नायक विहीन सैन्य मरा हुआ ही है। फिर देहधारी जयलक्ष्मी हो ऐसी श्रीमाला को लेकर जय पाते हुए किष्किंधि राजा परिवार सहित किष्किंधा नगरी आया।

अचानक वज्रपात की तरह पुत्र के वध का वृत्तांत सुनकर अशनिवेग तेजी से किष्किंध पर चढ़ आया। बड़े द्वीप की भूमि को जल द्वारा नदी की बाढ घेर ले त्यों उसने बड़े सैन्य से

१. कीचडवाली

किष्किंधा नगरी को घेर लिया। गुफा में से दो शेरों की तरह सुकेश और किष्किंधि अंधक सहित युद्ध करने की इच्छा से नगरी के बाहर निकले। अति क्रोध पाया हुआ वीर अशनिवेग शत्रुओं को तृण समान मानकर सब तरह के युद्ध के लिए प्रवर्तित हुआ। क्रोधांध बने अशनिवेग ने रणभूमि में शेर जैसे और विजयसिंह को मारनेवाले अंधक के मस्तक को छेद डाला। पवन द्वारा आस्फालित होते बादलों की तरह वानरों और राक्षसों का सैन्य दसों दिशाओं में भाग गया, और लंका तथा किष्किंधा के पति अपना अपना अंतःपुर और परिवार लेकर पाताललंका में भाग गये। 'ऐसे मौके पर किसी स्थान पर पलायन करना भी एक उपाय है।' आराधर (महावत) को मारकर हाथी शांत हो जाय त्यों अपने पुत्र को मारनेवाले को मारकर रथनुपुर का राजा अशनिवेग शांत कोपवाला बना। शत्रुओं के निर्घात से हर्ष पाये और नया राज्य स्थापित करने में आचार्य समान उसने लंका के राज्य पर **निर्घात** नाम के खेचर को बैठाया। फिर अशनिवेग वहां से वापस लौटकर, ज्यों अमरावती में इन्द्र आये त्यों वैताढ्यगिरि पर स्थित अपने रथनुपुर नगर में आया। एक बार वैराग्य उत्पन्न होने से उसने अपने पुत्र **सहस्रार** को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण की।

पाताललंका में रहे सुकेश को **इन्द्राणी** नाम की स्त्री से **माली, सुमाली** और **माल्यवान** नाम के तीन पुत्र हुए, और किष्किंधि को श्रीमाला से **आदित्यरजा** और **ऋक्षरजा** नाम के दो पराक्रमी पुत्र हुए। एक बार किष्किंधि मेरु पर्वत पर शाश्वत अर्हंत की यात्रा करके वापस लौटा, वहां मार्ग में **मधु** नाम का पर्वत उसे नजर आया। दूसरा मेरु हो ऐसे उस पर्वत पर मनोरम उद्यान में क्रीडा करने से किष्किंधि का मन अधिक विश्रांति पाया। जिससे उस पराक्रमी किष्किंधि ने कैलास पर कुबेर की भाँति उस पर्वत पर नगर बसाकर अपने परिवार सहित वहां निवास किया। सुकेश के वीर्यवान् तीनों पुत्र अपने राज्य को शत्रुओं द्वारा हरण किया जानकर अग्नि की तरह क्रोध से प्रज्वलित हो गये। लंका में आकर उन्होंने युद्ध करके निर्घात खेचर का निग्रह किया। चिरकाल का वैर मृत्यु का कारण बनता है। इसके बाद लंकापुरी में माली राजा बना और किष्किंधि के कहनेपर किष्किंधा नगरी का आदित्यरजा राजा बना।

यहां वैताढ्यगिरि पर बसे रथनुपुर नगर में अशनिवेग राजा के पुत्र सहस्रार राजा की **चित्तसुन्दरी** नाम की भार्या को मंगलकारी शुभ स्वप्न का दर्शन होने पर कोई उत्तम देव च्यूत होकर उसके गर्भ में अवतरित हुआ। समय आने पर चित्तसुन्दरी को इन्द्र के साथ संभोग करने का अभिलाष हुआ। वह दुर्वच[1] और दुःपुर[2] होने से उसके देह की दुर्बलता का कारण बन पड़ा। सहस्रार राजा ने जब बड़े आग्रह से पूछा, तब उसने लज्जा से नम्र मुख करके उस अभिलाष (दोहद) की बात पति को बतायी। फिर सहस्रार ने विद्या से इन्द्र का रुप धरकर उसे इन्द्रपना

१. कह न सके ऐसा २. पूर्ण न कर सके ऐसा

समजाकर उसका अभिलाष पूर्ण किया। समय आने पर पूर्ण पराक्रमी पुत्र का जन्म हुआ। इन्द्र के संभोग का अभिलाष हुआ होने से उस पुत्र का नाम **इन्द्र** रखा। युवावस्था प्राप्त होते ही उस विद्या और भुजा के पराक्रमी पुत्र को राज्य सौंपकर सहस्रार राजा धर्मपरायण बना। इन्द्र ने सर्व विद्याधर के राजाओं को साध लिया, और इन्द्र के अभिलाष से जन्मा होने से स्वयं को इन्द्र मानने लगा। इन्द्र की भांति ही उसने चार दिक्पाल, सात सेना तथा सेनापति तीन प्रकार की पार्षदा, वज्रायुध, ऐरावत हाथी, रंभा आदि वारांगना, बृहस्पति नाम का सचिव और नैगमेषी नाम का पत्तिसैन्य का नायक वगैरह स्थापित किया। इस प्रकार इन्द्र के परिवार के नामों को धरनेवाले विद्याधरों से "मैं इन्द्र हूँ" ऐसी बुद्धि से वह अखण्ड राज्य करने लगा। ज्योतिःपुर के राजा **मयूरध्वज** की **आदित्यकीर्ति** नाम की स्त्री के उदर से उत्पन्न हुए **सोम** नाम के विद्याधर को पूर्व दिशा का दिक्पाल बनाया, किष्किंधापुरी के राजा **कालाग्नि** की स्त्री **श्रीप्रभा** के पुत्र **यम** नाम के राजा को दक्षिण दिशा का दिक्पाल बनाया। मेघपुर के राजा **मेघरथ** की स्त्री **वरुणा** के उदर से जन्मे **वरुण** नाम के विद्याधर को पश्चिम दिशा का दिक्पाल बनाया और कांचनपुर के राजा **सुर** की स्त्री **कनकावती** के उदर से जन्मे **कुबेर** नाम के विद्याधर को उत्तर दिशा का दिक्पाल बनाया। ऐसी सब संपत्ति सहित इन्द्र राजा राज्य करने लगा।

"मैं इन्द्र हूँ" यूं मानते उस इन्द्र विद्याधर को ज्यों दूसरा हाथी मदगंधी हाथी को सहन न कर सके त्यों **माली राजा** सहन न कर सका, तो अतुल पराक्रमी भाइयों, सचिवों और मित्रों सहित माली राजा उसके साथ युद्ध करने चला। "पराक्रमी पुरुषों को दूसरा विचार नहीं आता।" दूसरे राक्षस वीर भी वानरवीरों को लेकर शेर, हाथी, अश्व, महिष, वराह और वृषभादिक वाहनों पर बैठकर आकाश मार्ग से चल पड़े। उस समय गधे, लोमडी व सारस वगैरह उनके दक्षिण में होने पर भी फल में वामपना (छोटापन) धारेण करके उनको रिष्टरुप (विघ्न) बने, अन्य असगुन और दुर्निमित्त भी हुए तो सुबुद्धिमान सुमाली ने माली को युद्ध के लिए जाते हुए रोका, लेकिन भुजबल से गर्व पाये हुए माली ने उसका वचन न माना और वैताढ्य गिरि पर आया और उसने युद्ध के लिए इन्द्र विद्याधर को बुलाया। इन्द्र ऐरावत पर बैठकर हाथ में वज्र को उछालते हुए नैगमेषी प्रमुख सेनापतियों और सोमादिक चार लोकपालों को लेकर विविध आयुधों को धारण करनेवाले अनेक सुभटों के साथ रणक्षेत्र में आया। आकाश में विद्युत अस्त्र से भयंकर मेघ की तरह इन्द्र व राक्षस के सैनिकों का परस्पर संग्राम हुआ। कहीं पर्वतों के शिखरों की भाँति रथ गिरने लगे, हवा ने उडाए हुए बादल की तरह कहीं हाथी भागने लगे, कहीं राहु का संदेह कराते हुए सुभटों के मस्तक गिरने लगे। एक पैर कट जाने से मानो बांध लिए हो त्यों कइं अश्व चलने लगे। इस प्रकार इन्द्र की सेना ने क्रोध से माली राजा की सेना का भंग कर दिया। "कैसरी के पंजे में फँसा हाथी बलवान हो तो भी क्या कर

सकता है ?'' फिर सुमाली प्रमुख वीरों से युक्त होकर राक्षसपति माली यूथ सहित वनहस्ती की भाँति बड़े दल के साथ चढ़ आया। उस पराक्रमी वीर ने ओलों से मेघ की भाँति गदा मुद्गर और बाणों से इन्द्र की सेना को तत्काल परेशान कर दी, तो तत्काल लोकपाल और सेनापतियों सहित इन्द्र ऐरावत पर आरुढ़ होकर युद्ध करने के लिए नजदीक आया। इन्द्र माली के साथ और लोकपाल वगैरह सुभट सुमाली प्रमुख के साथ युद्ध करने लगे। उनके बीच प्राण को संदेह करानेवाला युद्ध चिरकाल तक चला। प्रायः जयाभिलाषियों को प्राण तृण समान होते है। दंभरहित युद्ध करते हुए इन्द्र ने मेघ ज्यों बिजली से गोह को मारे त्यों वीर्यवान माली को वज्र से मार डाला। जब माली मारा गया तब राक्षस व वानर त्रस्त हो गये। फिर सुमाली का आश्रय लेकर वे पाताललोक में चले गये। इन्द्र ने **कौशिका** की कुक्षी से उत्पन्न हुए **विश्रवा** के पुत्र **वैश्रवण** को लंका का राज्य दिया और स्वयं अपने पुर में प्रवेश किया।

पाताल लंका में रहते सुमाली को **प्रीतिमती** नाम की स्त्री से **रत्नश्रवा** नाम का एक पुत्र हुआ। युवावस्था प्राप्त होने पर एक बार वह विद्या साधने के लिए कुसुमोद्यान में आया। वहां एकांत में अक्षमाला धारण करके जप करते करते और नासिका के अग्रभाग में दृष्टि रखकर वह तस्वीर में अंकित हुआ हो त्यों स्थिर हुआ। रत्नश्रवा इस प्रकार रहा हुआ था कि कोई निर्दोष अंगवाली विद्याधर की कुमारी पिंता की आज्ञा से उसके समीप आयी और बोली, 'मानवसुंदरी नाम की महाविद्या मैं आपको सिद्ध हुई हूँ।' इस प्रकार सुनकर, विद्या सिद्ध हुई मानकर रत्नश्रवा ने जपमाला छोड़ दी, तो अपने समक्ष वह विद्याधर कुमारी उसे नजर आयी। रत्नश्रवा ने पूछा, 'तू कौन है ? किसकी पुत्री है और यहां किसलिए आयी है ?' वह बोली, ''अनेक करतब के ग्रहरुप **कौतुकमंगल** नाम के नगर में **व्योमबिंदु** नाम का एक विद्याधरों का राजा है। उसकी **कौशिका** नाम की एक बड़ी पुत्री है, जो मेरी बहन लगती है। उसके साथ यक्षपुर का राजा **विश्रवा** ब्याहा है। उसे **वैश्रवण** नाम का एक नीतिवान् पुत्र है, जो इस समय इन्द्र के शासन से लंकानगरी में राज्य करता है। मैं कौशिका की छोटी बहन **कैकसी** हूँ। किसी निमित्तिए के कहने पर मुझे मेरे पिता ने आपको दी है। इसलिए मैं यहां आयी हूँ।'' फिर सुमालीपुत्र रत्नश्रवा बंधुओं को बुलवाकर वहीं उसके साथ ब्याहा और पुष्पक नाम के विमान में बैठकर उसके साथ क्रीडा करने लगा।

एक बार कैकसी ने रात्रि में एक सपने में एक हाथी के कुंभस्थल को भेदने में आसक्त ऐसा केसरी शेर को मुख में प्रवेश करते हुए देखा। उसने प्रातःकाल मे इस सपने की बात अपने स्वामी को कही। तो रत्नश्रवा ने कहा, ''इस स्वप्न से तुझे संसार में अद्वितीय पराक्रमी पुत्र होगा।'' स्वप्न प्राप्ति के बाद उसने चैत्यपूजा की और रत्नश्रवा की उस प्रिया ने महासारभूत

गर्भ को धारण किया। उस गर्भ के सद्भाव से कैकसी की वाणी अति क्रूर हो गयी और सब अंग श्रम को जीत सके वैसे दृढ हुए। दर्पण विद्यमान होने पर भी वह अपना मुख खड्ग में देखने लगी। इन्द्र को भी निशंक होकर वह आज्ञा देने की इच्छा करने लगी। किसी उद्देश बिना भी उसका मुख हुंकार शब्द करने लगा। उसने अपना मस्तक गुरुजनों को भी झुकाना बंद कर दिया। वह शत्रुओं के मस्तक पर चीरकाल चरण रखने की इच्छा करने लगी। इस प्रकार गर्भ के प्रभाव से वह दारुण भाव धारण करने लगी। समय आने पर शत्रुओं के आसन को कंपाने वाले और चौदह हजार वर्ष के आयुष्य को धारण करनेवाले पुत्र को उसने जन्म दिया। सुतिका की शैया में उछलता और अतिपराक्रम वाला वह पुत्र चरणकमल पछाड़ते हुए खड़ा हुआ। और नजदीक में पड़े टोकरे में से पूर्वकाल में भीमेन्द्र[1] द्वारा लाए गए नौ माणिक्य जडित हार को अपने हाथ से बाहर निकाला और अपनी चपलता से उस बालक ने वह हार अपने कण्ठ में डाला। यह देखकर परिवार सहित कैकसी बड़ी चकित हो गई। उसने रत्नश्रवा को कहा, "हे नाथ ! पहले राक्षसेन्द्र ने आपके पूर्वज मेघवाहन राजा को जो हार दिया था और आपके पूर्वजो ने जिसकी आज तक पूजा की थी वह नौ माणिक्य से जडित हार कोई भी धारण नहीं कर पाया था और निधान की तरह एक हजार नाग कुमार जिसकी रक्षा करते थे वह हार आपके शिशु ने निकाल कर स्वयं ही कण्ठ में आरोपित किया है।" उस बालक का मुख उस हार के नौ माणिको में प्रतिबिम्ब रुप संक्रात बना। यह देखकर उसी समय रत्नश्रवा ने उसका **दशमुख** ऐसा नाम रखा। और कहा कि "मेरुगिरि पर चैत्य वंदन करने गये हुए सुमालि पिता ने किसी मुनि को पूछा था तब चारज्ञानधारी मुनि ने कहा था कि 'आपके पूर्वज का नौ माणिको का हार जो वहन करेगा वह अर्धचक्री (प्रतिवासुदेव) बनेगा।"

इसके बाद कैकसी ने भानू (सूर्य) के स्वप्न से सूचित **भानुकर्ण** नामक दूसरे पुत्र को जन्म दिया, जिसका दूसरा नाम **कुंभकर्ण** भी पड़ा। फिर चन्द्र समान नाखून होने से **चन्द्रनखा** और इस लोक मे कुख्यात **सूर्पणखा** नामक एक पुत्री को कैकसी ने जन्म दिया। कुछ काल व्यतीत होने के बाद चन्द्र के स्वप्न से सूचित **विभीषण** नाम के एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया। कुछ ज्यादा सोलह धनुष्य ऊँची कायावाले वे तीनों सहोदर भाई दिनोदिन प्रथम उम्र योग क्रीडाओं द्वारा निर्भयता से सुखपूर्वक खेलने लगे।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये
सप्तमे पर्वणि राक्षसवंशवानरवंशोत्पत्तिरावणजन्मवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः।।१।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

१. राक्षस नाम की व्यतंर योनि के इन्द्र

द्वितीय सर्ग

रावण दिग्विजय

एक बार दशमुख ने अपने अनुज बंधु के साथ आकाश में देखा तो विमान में बैठकर आ रहे समृद्धिवान **वैश्रवण** राजा को देखा। उसने अपनी माता से पूछा कि 'यह कौन है ?' कैकसी बोली, ''वह मेरी बड़ी बहन कौशिका का पुत्र है। विश्रवा नाम के विद्याधर के राजा का वह कुमार है और सर्व विद्याधरों के स्वामी इन्द्र राजा का वह मुख्य सुभट है। इन्द्र ने तेरे पितामह के ज्येष्ठ (बड़े) बंधु माली को मारकर राक्षसद्वीप सहित हमारी लंकानगरी इस वैश्रवण को दी है। हे वत्स ! तब से तुम्हारे पिता आज तक लंकापुरी वापस पाने का मनोरथ मन मे रखकर यहीं बसे हैं। 'समर्थ शत्रुओ में यही करना ही योग्य है।' राक्षसपति भीमेन्द्र ने शत्रुओ के प्रतिकार के लिए राक्षसवंश के अंकुररुपी हमारे पूर्वज के पुत्र मेघवाहन राजा को राक्षसद्वीप, पाताललंका और राक्षसी विद्या सहित लंकानगरी दी थी। लंबे समय से हमारे वंश की चली आ रही राजधानी शत्रुओं द्वारा हर ली जाने से तेरे पितामह और तेरे पिता प्राणरहित की भाँति यही बसे हैं और रक्षकविहिन क्षेत्र में सांढ की तरह उस लंका में हमारे शत्रु स्वेच्छापूर्वक घूम रहे हैं। यह तेरे पिता को जीवीत शल्य (कांटे) समान है। हे वत्स ! तेरे पितामह के आसन पर अनुजबंधु के साथ बैठा हुआ तुझे यह मंदभागी कब देखेगी ? और लंका के लूंटेरों को तेरे कारागृह में देखकर मैं पुत्रवतियों में शिरोमणी कब बनूंगी ? हे वत्स ! आकाशपुष्प की भाँति ऐसा व्यर्थ मनोरथ करते हुए मैं मरुदेश में हंसी समान प्रतिदिन क्षीण बनती जाती हूं।''

माता के ऐसे वचन सुनकर क्रोध से भीषण मुख करते हुए वीभीषण ने कहा, ''माता ! खेद मत करो, आपके पुत्रो के पराक्रम को आप नहीं जानती। हे देवी ! इस बलवान आर्य दशमुख के सामने इन्द्र, वैश्रवण और अन्य विद्याधर क्या हैं ? सोता हुआ शेर ज्यो गजेन्द्र की गर्जना को सहन करे त्यों आज तक अनजाने ऐसे मेरे भाई दशमुख ने शत्रुओं के हाथ में रहा लंका का राज्य सहन किया है। आर्य दशमुख की बात तो छोडो, यह आर्य कुंभकर्ण भी अन्य सुभटों को नष्ट करने में समर्थ है और हे माता ! उस कुंभकर्ण भी बात छोडो, मैं भी उसकी आज्ञा से वज्रपात की तरह शत्रुओं का आकस्मिक संहार करने में समर्थ हूं।'' इस प्रकार सुनकर दांतों से होठों को काटते हुए रावण बोला, ''हे माता ! तू वज्र समान कठिन दिखती है जिससे ऐसा शल्य चिरकाल होने पर भी धारण किया है। उन इन्द्रादिक विद्याधरों को तो में एक बाहु के बल से ही हण (मार) डालूं, तो शस्त्राशस्त्री की बात एक तरफ ही रही। हकीकत में वे सब मेरे लिए एक तिनके समान हैं। यद्यपि भुजा के पराक्रम से तो उन शत्रुओं को जीतने में मैं समर्थ हूं। फिर भी कुलाचार से चली आ रही विद्याशक्ति मुझे साधनी चाहिए। इसीलिए हे माता ! मेरे अनुज बंधुओं के साथ में उस निर्दोष विद्या को साधूंगा, तो आप आज्ञा दीजिए,

जिससे मैं उसकी सिद्धि के लिए जाऊं।'' इस प्रकार कहकर मातापिता को नमस्कार करके उनसे मस्तक पर चुंबन पाया हुआ रावण अनुज बंधुओ के साथ भीम नाम के अरण्य में गया। वहां सोए हुए शेरों के निःश्वास से आसपास के वृक्ष कांपते थे, गर्वीष्ठ केसरियों की पूंछ की फटकार से भूमितल फूट (फटा) जाता था। कइं उल्लू पक्षियों के धुत्कार से वृक्ष एवं गुफाएं अति भयंकर लगती थी, और नाचते भूतों के चरणाघात से गिरि के शिखर पर से पाषाण गिरते थे। देवों को भी भयंकर और आपत्ति के एक स्थानरुपी उस अरण्य में रावण ने अनुज बंधुओं के साथ प्रवेश किया। तपस्वी की तरह मस्तक पर जटामुकुट को धारण करके, अक्षसूत्र (माला) हाथ में रखकर, नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर करके और श्वेत वस्त्र पहनकर उन तीनो बंधुओ ने दो प्रहर में सर्व कामना देनेवाली अष्टाक्षरी विद्या साध ली। फिर उन्होंने जिसका दश हजार कोटी जाप करने से फलप्राप्ति होती है ऐसे षोडशाक्षर मंत्र से जपना आरंभ किया।

उस समय जंबूद्वीप का पति **अनादृत** नाम का देवता अंतःपुर सहित क्रीडा करने वहां आया। उसने इन तीनों को मंत्र साधते हुए उसने देखा। उस यक्षपति ने उनकी साधना में विघ्न करने योग्य उपसर्ग करने के लिए अपनी स्त्रियों को उनके पास भेजा। वे स्त्रियां उनको क्षोभ करने आयी, लेकिन उनका अत्यंत सुंदर रुप देखकर अपने स्वामी का शासन भूलकर स्वयं ही क्षोभ पा गयी। उनको निर्विकारी, स्थिर आकृतिवाले और मौन बने हुए देखकर सचमुच कामदेव के आवेश से वशीभूत होकर वे कहने लगी, ''अरे ! ध्यान में जड़ बने वीरों ! यत्नपूर्वक हमारे सामने तो देखो ! ये देवियां भी आपको वश हो गई है, तो इससे अधिक कौनसी सिद्धि आपको चाहिए ? अब विद्यासिद्धि के लिए क्यों प्रयत्न करते हो ? अब ऐसा क्लेश करना जरुरी नहीं है। आप विद्या से क्या करोगे ? हम देवियां ही आपको सिद्ध हो चूकी है ! इसलिए तीनों जगत के रमणीय रमणीय प्रदेशों में जाकर देव समान आप स्वेच्छापूर्वक हमारे साथ रुचिपूर्वक क्रीडा करों।'' इस प्रकार उन्होंने कामना से कहा, लेकिन वे बड़े धैर्यवान होने से डिगे नहीं, तो यक्षणियां चली गई। क्योंकि 'एक हाथ से तालीं नहीं बजती।' उस समय जंबूद्वीपपति यक्ष ने स्वयं वहां आकर कहा, ''अरे मुग्ध पुरुषों ! आपने ऐसा काष्टचेष्टित क्यों आरंभा है ? मैं मानता हूं कि किसी दुरात्मा अनाप्त[1] पाखंडी ने अकाल मृत्यु के लिए आपको यह पाखंड शिक्षा दी लगती है, इसलिए अब ध्यान का ऐसा दुराग्रह छोड़कर चले जाओ, अथवा मांगो, मैं भी कृपालु बनकर आपको मनचाहा दूंगा।''

इस प्रकार कहने पर भी जब वे मौन रहे तब यक्ष क्रोध करके बोला, 'अरे मूढों ! मुझ जैसे प्रत्यक्ष देव को छोड़कर तुम दूसरे का ध्यान क्यों करते हो ? इस प्रकार क्रूर वाणी बोलते हुए यक्ष ने उनको क्षोभ पहुचाने के लिए अपने वानमंतर[2] सेवकों को भृकुटी की संज्ञा से आज्ञा

१ जिसका वजन प्रमाण न हो वैसा अप्रमाणिक। २. व्यंतर जाति के देव।

दी। तत्काल किलकिल शब्द करते और बहु रुप को धारण करते हुए वे सेवक पर्वतों के शिखर उठा उठाकर उनके समक्ष डालने लगे। कोई सर्प होकर चंदन के वृक्ष की तरह उनके चारों ओर लिपटने लगे, कोइ शेर बनकर उनके सन्मुख दारुण शब्द करने लगे, और कुछ भालू, भल्ल, नहार, व्याघ्र और बिडाल वगैरह के रुप धरकर उनको डराने लगे। फिर भी उन्होंने थोड़ा सा भी क्षोभ नहीं पाया। फिर उन्होंने कैकसी, रत्नश्रवा और सूर्पणखां के रूप बनाकर उनको बांधा और उनके समक्ष डाला। वह मायामय रत्नश्रवा वगैरह नेत्रमें अश्रु भरकर करुण स्वर से इस प्रकार आक्रंद करने लगे, "हे वत्सो ! तिर्यंच को ज्यों लुब्धक हणें (मारे) त्यों ये निर्दय पुरुष हमें आपकी नजरों के समक्ष मार रहे हैं, इसलिए हे बत्स दशमुख ! तू खड़ा हो, तेरे जैसा एकांतभक्त पुत्र हमारी उपेक्षा क्यों करता है ? हे पुत्र ! तू बालक था तब तूने अपने आप कंठ में महान हार पहना था, तेरा वह बाहुबल और अहंकार इस समय कहां गया ? हे कुंभकर्ण ! तू भी हमारे वचनों को क्यों नहीं सुनता ? और उदासीन की तरह दीन बने हम सब की ऐसी उपेक्षा क्यों करता है ? हे पुत्र विभीषण ! तू एक पलभर के लिए भी भक्तिविमुख नहीं बनता था, लेकिन दुष्ट देव ने तुझे बदल डाला हो ऐसा क्यों दिखता है ?" इस प्रकार उन्होंने विलाप किया फिर भी वे समाधि में से थोड़े से भी चलित नहीं हुए। इसके बाद यक्ष किंकरों ने अपने मस्तकों को उनके समक्ष छेद डाले। उनके समक्ष होता हुआ ऐसा दारुण कर्म भी मानो वे देखते ही न हो त्यों ध्यान के अधीन चित्त रखकर उन्होंने थोड़ा सा भी क्षोभ न पाया। फिर उन्होंने माया रचकर कुंभकर्ण और विभीषण के मस्तक रावण के समक्ष गिराये। और रावण का मस्तक उन दोनों के समक्ष गिराया। यह देखकर क्रोध उत्पन्न होने से कुंभकर्ण और विभीषण थोड़ा क्षोभित हो गये परंतु उसका कारण मात्र गुरुभक्ति था, उनका कुछ अल्प सत्त्व न था। परमार्थ को जाननेवाला रावण तो अनर्थ के लिए कुछ भी चिंतन न करते हुए विशिष्ट ध्याननिष्ठ होकर पर्वत की तरह अटल रहा। उस समय आकाश में 'साधु, साधु' ऐसी देवों की वाणी हुई। उससे चकित होकर यक्षसेवक तत्काल वहां से भाग गये, और उस समय 'हम सब आपके वश हैं' यों उच्च स्वर से पुकारती एक हजार विद्याएं आकाश को प्रकाशित करते हुए रावण के समक्ष आकर खड़ी रही।

प्रज्ञप्ति, रोहिणी, गौरी, गांधारी, नभःसंचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, अणिमा, लघिमा, अक्षोभ्या, मनःस्तंभनकारिणी, सुविधाना, तपोरुपा, दहनी, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिनरात्रिविधायिनी, वज्रोदरी, समाकृष्टि, अदर्शनी, अजरामरा, अनलस्तंभनी, तोयस्तंभनी, गिरिदारणी, अवलोकिनी, वह्नि, घोरा, वीरा, भुजंगिनी, वारिणी, भुवना, अवंध्या, दारुणी, मदनाशनी, भास्करी, रुपसंपन्ना, रोशनी, विजया, जया, वर्द्धनी, मोचनी, वाराही, कुटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शांति, कौबेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्साही, चंडा, भीति, प्रघर्षिणी, दुर्निवारा,

जगत्कंपकारिणी और भानुमालिनी वगैरह महाविद्याएं पूर्व काल में किए हुए सुकृत से महात्मा रावण को कुछ ही दिनों में सिद्ध हो गयी। संवृद्धि, जृंभणी, सर्वाहारिणी, व्योमगामिनी और इंद्राणी - यह पांच विद्याएं कुंभकर्ण को साध्य हुई। सिद्धार्था, शत्रुदमनी, निर्व्याघाता और आकाशगामिनी - यह चार विद्याएं विभीषण को साध्य हुई। जंबूद्वीप के पति अनादृतदेव ने आकर रावण से क्षमा मागी। ''बड़े पुरुष के अपराध में उनसे क्षमा मांगना ही मुख्य उपाय है।'' पहले किए हुए विघ्नों का प्रायश्चित्त करना चाहता हो त्यों उस बुद्धिमान यक्ष ने रावण के लिए वहां **स्वयंप्रभ** नाम का नगर बसाया। उनको प्राप्त हुई विद्यासिद्धि के समाचार सुनकर उनके मातापिता, बहन और बंधुवर्ग वहां आया। उन्होंने उनका सत्कार किया। मातापिता की दृष्टि में अमृतवृष्टि और बंधुवर्ग में उत्सव उत्पन्न करते हुए वे तीनों भाई वहां चैन से रहने लगे। फिर रावण ने छः उपवास करके दिशाओं को साधने में उपयोगी **चंद्रहास** नाम का श्रेष्ठ खड्ग साधा।

उस समय वैताढ्यगिरि पर दक्षिण श्रेणी के आभूषणरूप **सुरसंगीत** नाम के नगर में **मय** नाम का विद्याधर का राजा था। उसे गुणों के भंडाररूप **हेमवती** नाम की एक स्त्री थी। उसकी कुक्षि से **मंदोदरी** नामक एक पुत्री हुई थी। युवा होते ही उसके पिता मय विद्याधर उसके वर के लिए विद्याधरकुमारों के गुणों का विचार करने लगा। जब उसके योग्य कोई वर उसे नजर आया नहीं, तब उसकी चिंता में वह मग्न हो गया। इतने में उसके मंत्री ने कहा, 'स्वामी ! खेद न करे, बलवान और रुपवान ऐसा रत्नश्रवा का पुत्र दशानन उसके योग्य वर है। पर्वतों में मेरु की भांति सहस्र विद्या को सिद्ध करनेवाला और देवताओं से भी अकंपित उस रावण के समान विद्याधरों में कोई भी राजकुमार नहीं है।' यह सुनकर 'तेरी बात बराबर है' ऐसा कहकर प्रसन्न बनकर बांधव, सैन्य और अंतःपुर के परिवार के साथ मंदोदरी को भी लेकर पहले से ही अपने आगमन के समाचार देकर अपनी पुत्री रावण को देने के लिए मय विद्याधर स्वयंप्रभ नगर में आया। वहां सुमाली वगैरह जो गोत्रवृद्ध (बड़े) महाशय थे, वे रावण और मंदोदरी का संबंध करने के लिए स्वीकृत हुए। फिर शुभ दिन देखकर सुमाली और मय वगैरह ने उनका विवाह करवाया। विवाहोत्सव करके मय वगैरह सब अपने नगर लौट गये। रावण उस सुंदर रमणी के साथ चिरकाल क्रीडा करने लगा।

समीप में लटकते मेघमंडल से पंखवाला हो ऐसा दिखते **मेघरव** नाम के पर्वत पर एक बार रावण क्रीडा करने गया। वहां क्षीरसागर में अप्सरा की तरह एक सरोवर में स्नान करती छः हजार खेचरकन्याएं उसे नज़र आयी। उस समय पद्मिनियां ज्यों सूर्य को देखे त्यों नेत्रकमल को प्रफुल्लित करते हुए वे रावण को अपना स्वामी करने की इच्छा से अनुरागपूर्वक देखने लगी। स्वल्प समय में काम से अति पिडीत होते हुए उन्होंने लज्जा छोड़कर 'आप हमारे पति बनो'

यूं स्वतः रावण को प्रार्थना करने लगी। उनमें सर्वश्री और सुरसुंदर की पुत्री **पद्मावती**, मनोवेगा और बुध की दुहिता (पुत्री) **अशोकलता** तथा कनक और संध्या की पुत्री **विद्युत्प्रभा** मुख्य थीं। उनको तथा उनके सिवा अन्य भी जगप्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुई उन सब स-रागी कन्याओं को रागी रावण उसी समय गांधर्वविधि से ब्याहा। उन कन्याओं के रक्षक पुरुषों ने जाकर उनके पिताओं को बताया कि 'आपकी कन्याओं को ब्याहकर कोई ले जा रहा है।' यह सुनकर **सुरसुंदर** नाम के विद्याधरों का **इन्द्र** उन कन्याओं के पिताओं के साथ क्रोध पाकर रावण को मारने की इच्छा से उसके **पीछे दौडा**। उन्हें आता देखकर उन सब नवविवाहिता कन्याओं ने रावण को कहा, "स्वामी ! विमान को तेज चलाएं। विलम्ब न करें, क्योंकि यह सूरसुंदर विद्याधरों का इन्द्र अकेला भी अजेय है, तो **कनक** और **बुध** वगैरह के परिवार से युक्त होकर आ रहा है तब तो बात ही क्या कहनी !" उनकी ऐसी वाणी सुनकर रावण हँसकर बोला, "अरे सुन्दरियों ! सर्पों के साथ गरुड की भाँति उनके साथ मेरा युद्ध देखो।" इस प्रकार रावण कह रहा था इतने में तो महागिरि पर मेघ की भाँति वे विद्याधर शस्त्रों से दुर्दिन करते हुए उसके पास आ पहुंचे। वीर्य से दारुण ऐसे रावण ने अस्त्रों से अस्त्रों को खंडित करके उनको नहीं मारने की इच्छा से प्रस्वापन नाम के अस्त्र द्वारा मोहित कर दिया और नागपाश द्वारा उनको पशु की भांति बांध दिया। फिर जब सर्व प्रियाओं ने पितृभिक्षा मांगी, तब रावण ने उनको छोड़ दिया। तो वे अपने अपने नगर में चले गये और हर्ष पाकर लोग जिसको अर्घ देते थे वैसा रावण उन उन बालाओं के साथ स्वयंप्रभ नगर में आया।

कुंभपुर के राजा **महोदर** की **सुरुपनयना** पत्नी के उदर से उत्पन्न हुइ विद्युतमाला जैसी कांतिवाली और पूर्णकुंभ जैसे स्तनवाली **तडिन्माला** नाम की एक युवा पुत्री को कुंभकर्ण ब्याहा और वैताढ्यगिरि के दक्षिण श्रेणी में ज्योतिषपुर के राजा **वीर** की **नंदवती** राणी के उदर से उत्पन्न हुई पंकज की शोभा को चुरानेवाली दृष्टिवाली और देवांगना जैसी **पंकजश्री** नाम की कन्या के साथ विभीषण ब्याहा। रावण की स्त्री मंदोदरी ने चंद्र जैसे तेजस्वी और अद्भूत पराक्रमी **इन्द्रजीत** नाम के एक पुत्र को जन्म दिया। कुछ समय बाद मेघ के भाँति नेत्र को आनंद देनेवाले **मेघवाहन** नाम के एक दूसरे पुत्र को जन्म दिया।

कुंभकर्ण और विभीषण पिता का बैर याद करके वैश्रवण द्वारा आश्रित लंका में सदा उपद्रव करने लगे, जिससे एक बार वैश्रवण ने दूत भेजकर सुमाली को कहलवाया कि - "रावण के अनुज बंधु और तुम्हारे लघुपुत्र (छोटे पुत्र) कुंभकर्ण और विभीषण को सीख देकर रोको। ये दोनो वीर-मानी और दुर्मद बालक पाताल लंका में रहने से कुएं के मेंढक की तरह अपनी और अन्य की शक्ति को नहीं जानते। वे मत्त होकर विजय पाने की इच्छा से छल करके मेरी नगरी में उपद्रव किया करते हैं, लेकिन लंबे अरसे से मैंने उनकी उपेक्षा की है, हे क्षुद्र ! यदि तू उनको

नहीं समजायेगा, तो तेरे साथ उनको माली के मार्ग पर भेज दूंगा। तू तो हमारा बल जानता ही है।'' दूत के ऐसे वचन सुनकर महामनस्वी रावण क्रोध से बोला, ''अरे ! वैश्रवण कौन है ? जो दूसरो को कर देनेवाला है और दूसरे के शासन से ही लंका पर शासन चलाता है, ऐसा होने पर भी ऐसा बोलते हुए लजाता क्यों नहीं है ? अहो ! कितनी बडी धीठता ! तू दूत है इसलिए तूझे मारता नहीं हूं, तू यहां से चला जा।'' रावण के ऐसा कहने पर तत्काल वैश्रवण के पास जाकर उस दूत ने संपूर्ण वृत्तांत कहा। दूत के जाने के बाद उसके पीछे रावण तुरंत ही अपने सहोदरों और सैन्य को लेकर बड़े क्रोध से लंका के समीप आया। आगे भेजे हुए दूत ने उसे समाचार दिए, तो वैश्रवण युद्ध करने के लिए बड़ी सेना को लेकर लंकापुरी के बाहर निकला। थोड़े समय में ही अनिवारित प्रसरता हुआ पवन ज्यों वनभूमि का भंग करे त्यों रावण ने उसकी सेना का भंग कर डाला।

जब रावण ने उसकी सेना का भंग किया तब अपने को भंग हुआ माननेवाले वैश्रवण का क्रोधाग्नि बुझ गया, और वह विचार करने लगा कि - ''कमल छेदे गए सरोवर की तरह, दंत भंग होते दंती की तरह, शाखाच्छेद होते हुए वृक्ष की तरह, मणिरहित अलंकार की तरह, ज्योत्स्नारहित चंद्र की तरह और निर्जल बने मेघ की तरह शत्रुओं ने मानभंग करे हुए मानी पुरुष की स्थिति को धिक्कार है ! परंतु वह पुरुष यदि मुक्ति के लिए प्रयत्न करे तो अवश्य वास्तविक स्थान को पाता है। 'थोडा छोड़कर उसके बदले में ज्यादा की इच्छा करनेवाला पुरुष लज्जा के पात्र नहीं होता' इसलिए अनेक अनर्थ को देनेवाले इस राज्य की मुझे जरुरत नहीं है। अब मैं तो मोक्षमंदिर के द्वाररुप दीक्षा ग्रहण करुंगा। ये कुंभकर्ण और वीभीषण यद्यपि मेरे अपकारी बने थे, परंतु इस कारण से ऐसे मार्ग का दर्शन होने से वे मेरे उपकारी बने हैं। मेरी मौसी का पुत्र होने से रावण मेरा बंधु भी है और अब कर्म से भी बंधु है, क्योंकि उसकी ओर से ऐसा उपक्रम हुए बिना मेरी बुद्धि ऐसी बनती नहीं।'' ऐसा विचार करके वैश्रवण ने शस्त्रादिक छोड़कर, तत्त्वनिष्ठ बनकर अपने आप दीक्षा ग्रहण की। यह खबर जानकर रावण उसके पास आया और नमस्कार पूर्वक हाथ जोड़कर कहा, 'आप मेरे ज्येष्ठ बंधु हो, इसलिए इस अनुज के अपराध को क्षमा करो। हे बांधव ! आप निसंदेह होकर इस लंका में राज्य करो। हम यहां से अन्यत्र जायेंगे, क्योंकि पृथ्वी बड़ी विशाल है।' रावण ने इस प्रकार कहा फिर भी उसी भव में मोक्ष जानेवाले महात्मा वैश्रवण प्रतिमा धर रहे थे इसलिए कुछ बोले नहीं। वैश्रवण को निःस्पृह जानकर रावण ने उनसे क्षमा मांगकर प्रणाम करके लंकापुरी और पुष्पक विमान (वायुयान) ग्रहण किया।

फिर विजयलक्ष्मीरुपी लता में पुष्प जैसे उस पुष्पक विमान में बैठकर रावण अर्हंत प्रतिमा की वंदना के लिए समेतगिरि पर गया। वहां प्रतिमा को वंदना करके नीचे उतरते हुए रावण ने

सेना के कलकल शब्द के साथ वन के एक हाथी की गर्जना सुनी। उस समय **प्रहस्त** नाम के एक प्रतिहार ने आकर रावण को कहा, 'देव ! यह हस्तीरत्न आपका वाहन बनने योग्य है।' फिर जिसके दांत चौडे और ऊंचे हैं, नेत्र मधु पिंगल (पीले) वर्ण के है, कुंभस्थल शिखर जैसा उन्नत है, मद टपकानेवाली नदी का जो गिरि है और जो सात हाथ ऊंचा और नौ हाथ लंबा है ऐसे उस वनगजेन्द्र को क्रीडामात्र में वश करके रावण उस पर आरुढ हुआ। उसके उपर बैठने से ऐरावत पर बैठे हुए इन्द्र समान शोभा का अनुसरण करते हुए रावण ने उस हस्ती का **भुवनालंकार** ऐसा नाम रखा, और उसको गजश्रेणी में बांधकर रावण ने वह रात्रि वहीं व्यतीत की।

प्रातःकाल में परिवार साथ रावण सभा में आकर बैठा, उस समय घाव लगने से जर्जरित बना **पवनवेग** नाम का विद्याधर प्रतिहार से आज्ञा मंगवाकर सभा में आया और प्रणाम करके बोला, "हे देव ! किष्किंधि राजा के पुत्र सूर्यरजा और रुक्षरजा पाताललंका में से किष्किंधा गये थे। वहां यम जैसे भयंकर और प्राण को संदेह करा दे ऐसे यमराज के साथ उनका बड़ा युद्ध हुआ। चिरकाल युद्ध करके आखिर में यमराजा ने उन दोनों को चोर की भाँति बांधकर अपने कारागृह में डाला है। वहां यमराजा वैतरणी सहित नर्कावास बनाकर उन दोनों को परिवार के साथ छेदन-भेदन वगैरह के दुःख देता है। हे अलंघनीय आज्ञावाले दशमुख ! वे आपके क्रमानुगत (पुराने) सेवक हैं इसलिए उन्हें छुड़वाइए। क्योंकि उनकी पराजय आपकी पराजय ही है।" वह सुनकर रावण बोला, "आप कहते हो तो निःसंदेह ऐसा ही है। आश्रय के दुर्बलपने से ही आश्रित का पराभव होता है। उस दुर्बुद्धि ने परोक्ष रुप में मेरे सेवकों को बांधा है और कारागृह में डाला है। उसका फल में उसे शीघ्र ही दूंगा।" इस प्रकार कहकर अनेक प्रकार की इच्छावाला और उग्र बाहुबल को धारण करनेवाला रावण सैन्य सहित यमदिक्पाल द्वारा पालन की हुई किष्किंधापुरी में आया। वहां त्रपुपान[1], शिलास्फालन और परशुछेद वगैरह महा दुःखोंवाले सात दारुण नरक रावण को नज़र आए। उसमें अपने सेवकों को क्लेश पाते हुए देखकर सर्पो को गरुड त्रस्त करे त्यों रावण ने रोष करके उसके रक्षक बने परमाधार्मिकों[2] को त्रस्त किया। फिर उन कल्पित नर्कों में रहे अपने सेवकों और अन्य सर्वो को भी छुडाया। बड़े पुरुषों का आगमन किसके क्लेश का छेद नहीं करता ? फिर क्षण में उन नर्कों के रक्षक फुत्कारते हुए और हाथ ऊंचे उठाये हुए यमराजा के पास गए और सर्व वृत्तांत कह सुनाया।

यह सुनकर युद्धरुपी नाटक का सुत्रधार यमराजा मानो दूसरा यम हो त्यों क्रोध से रक्तनेत्र करते हुए युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकला। सैनिकों का सैनिकों के साथ, सेनापतियों का सेनापतियों के साथ और क्रोधी यमराज का क्रोधी रावण के साथ परस्पर युद्ध

१. नरकों की कल्पना करके गुनहगारो को तपाया हुआ सीसा पिलाना, पत्थर की शिला के साथ पछाडना, फरसी से छेदन करना वगैरह दुःख। २. नरक में परमाधामी दुःख देते हैं वैसे यहां भी यह नाम दिया गया है।

चला। लंबे समय तक बाणाबाणी युद्ध करने के बाद उन्मत्त हस्ती सूंढ-दंड ऊंचा करके दौडे त्यों यमराज दारुण दण्ड लेकर तेजी से रावण पर दौडे। शत्रुओं को नपुंसक समान माननेवाले रावण ने क्षुरप्र बाण से कमल की भाँति उस दण्ड के चूरेचूरे कर दिये। यमराज ने रावण को दुबारा बाणों से ढंक दिया तो रावण ने ज्यों लोभ सर्व गुणों का निवारण करे त्यों सर्व बाणों का निवारण कर डाला। फिर एक साथ कइं बाणों को बरसाते हुए रावण ने बल का नाश करनेवाली जरा की भाँति यमराज को जर्जरित कर दिया। तो यमराज संग्राम में से भागकर तेजी से रथनुपुर के राजा इंद्र विद्याधर की शरण में गया। इन्द्रराजा को नमस्कार करके हाथ जोड़कर वह बोला, "हे प्रभु ! मेरे यमपने को अब में जलांजलि (छोड़) देता हूं। हे नाथ ! रोष-तोष से अब मैं यमपना नहीं करूंगा, क्योंकि इस समय यम के भी यम जैसा रावण उठा है। उसने नरक के रक्षकों को भगाकर सभी नारकियों को छुडा दिया है, और उसके पास क्षात्रव्रतरुपी धन है। इसीलिए उसने मुझे रण में से जीवित छोडा है। उसने वैश्रवण को जीतकर लंका का राज्य और उसके पुष्पक विमान पर अधिकार जमाया है, और सुरसुंदर जैसे वीर विद्याधर को भी जीत लिया है।" यमराज के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र विद्याधर ने क्रोध पाया और युद्ध के लिए तैयार हुआ। परंतु बलवान के साथ युद्ध करने में भीरु ऐसे कुलसचिवों ने उसे अनेक उपायों से समजाकर उसे अटकाया। फिर उसने यमराज को सुरसंगीत नाम का नगर दिया और स्वयं रथनुपुर नगर में रहकर पूर्ववत विलास करने लगा। यहां पूर्णपराक्रमी रावण अदित्यरजा को किष्किंधापुरी और ऋक्षरजा को ऋक्षपुर देकर देवताओं की भाँति बांधवों और नगरजनों से स्तुति पाते हुए लंकानगरी में गया। अमरावती में इन्द्र की तरह लंका में रहकर रावण अपने पितामह का राज्य चलाने लगा।

वानरों के राजा आदित्यरजा को **इन्दुमालिनी** नाम की रानी से **वाली** नाम का एक महाबलवान पुत्र हुआ। बाहुबल में उग्र ऐसा वाली नित्य समुद्रांत जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा करके सर्व चैत्यों की वन्दना करता था। आदित्यरजा को **सुग्रीव** नाम का एक दूसरा पुत्र हुआ और **श्रीप्रभा** नाम की उससे छोटी पुत्री हुई। ऋक्षरजा को **हरिकान्ता** नाम की स्त्री से **नल** व **नील** नाम के दो जगप्रसिद्ध पुत्र हुए। राजा **आदित्यरजा** अपने महा बलवान पुत्र वाली को राज्य देकर स्वयं दीक्षा लेकर तप करके मोक्ष पा गया। वाली ने सम्यकत्व दृष्टि, न्यायी, दयालु और महापराक्रमी ऐसे अपने समान अपने लघुबंधु सुग्रीव को युवराज पद पर स्थापित किया। एक बार रावण अंतःपुर सहित हाथी पर बैठकर चैत्यवन्दन करने के लिए मेरुगिरि पर गया था, उस समय मेघप्रभ के पुत्र **खर** नाम के एक खेचर ने लंका में **सूर्पणखा** को देखा। देखते ही स्वयं अनुरागी होकर उस सानुरागी कन्या का हरण किया और वहां से पाताललंका में गया। वहां स्थित आदित्यरजा के पुत्र **चन्द्रोदर** को भगाकर स्वयं उस नगरी को कब्जे कर लिया।

पलभर के बाद मेरु पर से रावण लंका में आया। वहां उसने चन्द्रनखा (सूर्पणखा) के हरण के समाचार सुने, जिससे वह तत्काल गुस्से हुआ और हाथी के शिकार पर केसरीसिंह दौडे त्यों वह खर विद्याधर का घात करने चला। उस समय मंदोदरी ने आकर रावण को कहा, "हे मानद ! ऐसा अनुचित समारोह क्यों करते हो ? थोड़ा विचार कीजिए, क्योंकि कन्या तो अवश्य किसिको देनी ही होती है, तो वह कन्या ही कभी स्वैच्छा से उसके मनचाहे किसी कुलीन वर को वरे तो उसमें गलत क्या है ? वह तो उलटे अच्छा ही होगा। दूषण का पुत्र खर विद्याधर सूर्पणखा के योग्य वर है, और वह आपका एक निर्दोष और पराक्रमी सुभट बन पड़े ऐसा है, इसलिए सचिव-पुरुषों को भेजकर उसके साथ उसका विवाह करो और उसे पाताललंका का राज्य सौंपकर उस पर प्रसन्न बनो।" इस प्रकार दोनों अनुज बंधुओं ने भी रावण को कहा। तो **मय** व **मारीच** नाम के दो राक्षस अनुचरों को भेजकर सूर्पणखा की खर के साथ शादी कर दी। फिर खर विद्याधर पाताललंका में रहकर रावण की आज्ञा पालते हुए चन्द्रनखा के साथ निर्विघ्न भोग भोगने लगा। उसने जिस चन्द्रोदर को निकाल दिया था वह कालक्रम से मृत्यु पा गया। उस समय उसकी **अनुराधा** नाम की पत्नी गर्भवती थी, जो भागकर वन में चली गई। उसने वन में शेरनी ज्यों शेर को जन्म दे त्यों नीतिप्रमुख गुणों के पात्र **विराध** नाम के पुत्र को जन्म दिया। युवा वय प्राप्त होते ही वह विराध सर्व कलासागरों का पार पा गया। फिर वह महाभुज अस्खलित गति से पृथ्वी पर विहार करने लगा।

उस अरसे में रावण ने अपनी राजसभा में कथा प्रसंग पर 'वानरेश्वर **वाली** बड़ा प्रौढ़ प्रतापी और बलवान है' ऐसा सुना। जिससे तत्काल ही सूर्य की तरह अन्य के प्रताप को न सह सकनेवाले रावण ने एक दूत को समझाकर वाली के पास भेजा। उसने आकर वाली को नमस्कार करके धीर वचन से कहा, "मैं रावण का दूत हूँ, इसलिए उसका कहलवाया हुआ एक संदेश सुनो - आपके पूर्वज श्रीकण्ठ शत्रुओं से पराजय पाकर हमारे शरण्य ऐसे पूर्वज कीर्तिधवल की शरण में आये थे। अपने श्वसुरपक्ष के जानकर उनकी शत्रुओं से रक्षा करके, उनके वियोग से कायर होकर इस वानरद्वीप में ही उनको रखा था। तब से हमारा परस्पर स्वामीसेवक का संबंध हुआ है और इस प्रकार हम दोनों के पक्ष में कइं राजा हो गये हैं। इसी क्रम में क्रमानुसार तुम्हारे पितामह सत्रहवें किष्किंधि राजा हुए। उस समय सुकेश नाम के मेरे प्रपितामह हुए थे। उनके बीच भी इसी प्रकार का संबंध चला था। उसके बाद अट्ठारहवें सूर्यरजा नाम के तुम्हारे पिता हुए, जो यमराजा के यहां बंदीखाने में पडे थे, उसमें से मैंने ही उन्हें छुड़वाया हुआ है, यह सब जानते हैं और उन्हें दुबारा मैंने ही किष्किंधानगरी के राज्य पर बिठाया यह बात भी प्रसिद्ध है। अब उनके वाली नाम के तुम पुत्र हो तो हमारे पूर्व से चले आ रहे स्वामी-सेवक के संबध से तुम हमारी सेवा करो।"

दूत के ऐसे वचन सुनकर गर्वरुपी अग्नि के शमी वृक्ष जैसे महा मनस्वी वाली ने अविकारी आकृति रखकर गंभीर वाणी से कहा, "राक्षसों और वानरों के राजाओं में अर्थात् तुम्हारे और हमारे दोनों कुल के आज तक परस्पर अखंडित स्नेहसंबंध हैं, यह मैं जानता हूँ। हमारे पूर्वजों ने संपत्ति और विपत्ति में परस्पर सहायता दी है, उसका कारण मात्र स्नेह है, कोई स्वामी-सेवकपना नहीं है। हे दूत ! सर्वज्ञ अर्हंतदेव और साधुगुर के सिवा कोई दूसरे सेवने योग्य स्वामी को मैं जानता ही नहीं हूँ, तो तेरे स्वामी को ऐसा मनोरथ क्यों हुआ है ? अपने को स्वामी और हमें सेवक माननेवाले तेरे राजा ने कुलक्रम से चला आ रहा स्नेहसंबंध आज तोड़ा है, लेकिन मित्रकुल में उत्पन्न हुए और अपनी शक्ति को नहीं जाननेवाले उस रावण पर मैं कुछ भी विप्रिय[1] नहीं करुंगा, क्योंकि मैं लोकापवाद से ड़रता हूँ। यदि वह मेरा कुछ भी विप्रिय करेगा तो मैं उसका प्रतिकार करुंगा, लेकिन पूर्व के स्नेहरुपी वृक्ष को छेदने में अग्र नहीं बनूंगा। हे दूत ! तेरा स्वामी उसकी शक्ति अनुसार जो करना है वो भले ही करे। तू यहां से चला जा।" इस प्रकार कहकर वाली द्वारा बिदा किए हुए दूत ने रावण के पास आकर उसे संपूर्ण वृत्तांत बताया।

दूत की वाणी सुनकर जिसकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई है ऐसा रावण बड़ा सैन्य लेकर तत्काल किष्किंधापुरी के समीप आया। भुजवीर्य से शोभित वाली राजा भी तैयार होकर उसके सामने आया। पराक्रमी वीरों को युद्ध के अतिथि प्रिय होते हैं। फिर दोनों सैन्य में पाषाण-पाषाणी, वृक्षावृक्षी और गदागदी युद्ध चला। उसमें रथ भी पापड की तरह चूरेचूरे होने लगे। हाथी मृत्तिका के पिंड की तरह टूटने लगे, घोड़े काशीफल की भाँति जगह जगह पर खण्डित होने लगे और पायदल चंचा (बिजूका) की भाँति भूमि पर गिरने लगा। इस प्रकार प्राणियों का संहार होते देखकर कपीश्वर वाली को दया आयी, जिससे उस वीर ने तत्काल रावण के पास आकर कहा, "विवेकी पुरुषों को एक सामान्य प्राणी का भी वध करना योग्य नहीं है तो हस्ती वगैरह पंचेन्द्रिय जीव के वध की तो बात ही क्या करनी ! यद्यपि पराक्रमी पुरुषों का शत्रुओं पर विजय करना योग्य है, लेकिन पराक्रमी पुरुष अपनी भुजाओं से ही विजय चाहते हैं। हे रावण ! तू पराक्रमी है और श्रावक भी है, इसलिए सैन्य को युद्ध करवाना छोड़ दे, क्योंकि अनेक प्राणियों का संहार होने से वह युद्ध चिरकाल के नरक की प्राप्ति के लिए होता है।" इस प्रकार जब वाली ने रावण को समजाया तब धर्म के जानकार और सर्व प्रकार के युद्ध में चतुर ऐसे रावण ने स्वयं युद्ध करना प्रारंभ किया, लेकिन रावण ने जो जो अस्त्र छोड़े वे सब कपीश्वर वाली ने अग्नि के तेज को सूर्य की तरह अपने अस्त्रों से परास्त कर डाले। फिर रावण ने सर्पास्त्र व वरुणास्त्र नामके मंत्रास्त छोड़े, उन्हें भी गरुडास्त्र वगैरह अस्त्रों से वाली ने छेद

१. अघटित - नुकसानकारक क्रिया

डाला। जब सब शस्त्र और मंत्रास्त्र निष्फल हुए तब दशमुख ने बड़े सर्प जैसा भयंकर चन्द्रहास नाम का खड्ग ताना और ज्यों एक शिखरवाला गिरि हो अथवा एक दांतवाला हाथी हो त्यों रावण वह खड्ग उठाकर वाली को मारने दौड़ा।

वाली ने तत्काल शाखा सहित वृक्ष की तरह रावण को चन्द्रहास खड्ग सहित बाँये हाथ से एक लीलामात्र में उठा लिया। और एक गेंद की तरह उसे बगल में रखकर कपीश्वर वाली अव्यग्रतापूर्वक चार समुद्र सहित पृथ्वी के चारोंओर घूम आया, और वापस वहीं आकर लज्जा से जिसकी गरदन झुकी हुई है ऐसे रावण को छोड़ते हुए इस प्रकार कहा, "हे रावण ! वीतराग, सर्वज्ञ, आप्त और त्रैलोक्यपूजित ऐसे अरिहंत देव सिवा मुझे दूसरा कोई भी नमस्कार करने योग्य नहीं लगता है। अंग में से ही उठे मानरुपी शत्रु को धिक्कार है कि जिससे मोह पाकर मुझे झुकाने की कुतूहलता से ही तू ऐसी दशा को प्राप्त हुआ है, लेकिन पूर्व के उपकारों का स्मरण करके मैंने तुझे छोड़ दिया है और इस पृथ्वी का राज्य दिया है, इसलिए तू अखण्ड आज्ञा से उसका पालन कर। यदि मैं विजय की इच्छा रखूं तो तुझे यह पृथ्वी कैसे मिले ? क्योंकि शेरों ने सेये हुए वन में हस्तियों का स्थान होता ही नहीं है। लेकिन मैं तो अब मोक्ष साम्राज्य की कारणभूत दीक्षा को ही ग्रहण करुंगा और यह सुग्रीव तेरी आज्ञा धारण करते हुए किष्किंधा नगरी का राजा बनेगा।"

इस प्रकार कहकर वाली ने तत्काल अपने राज्य पर सुग्रीव को बैठाया, और स्वयं **गगनचन्द्र** मुनि के पास जाकर व्रत ग्रहण किया। विविध प्रकार के अभिग्रह धरकर तप करते हुए और मुनि के नियम-व्रत पालकर मुनि ध्यानवान व ममता रहित होकर पृथ्वी पर विहार करने लगे। ज्यों वृक्ष को पुष्प, पत्र और फलादि संपत्तियां प्राप्त हो त्यों वाली भट्टारक को क्रमानुसार अनेक लब्धियां उत्पन्न हुई। एक बार अष्टापद गिरि पर जाकर भुजा को लम्बी करके वे कायोत्सर्ग में रहे कि जिससे वे बंधे हुए झुलेवाले वृक्ष समान दिखने लगे। एक माह कायोत्सर्ग पालकर उन्होंने पारणा किया, इस प्रकार बार बार महिने महिने तक कायोत्सर्ग और पारणा करने लगे। यहां सुग्रीव ने रावण का अपनी बहन **श्रीप्रभा** से ब्याह कराया, जो सूखे हुए पूर्व स्नेहरुपी वृक्ष में सारिणी[1] समान बनी। चन्द्र समान उज्ज्वल कीर्तिवाले सुग्रीव ने वाली के **चन्द्ररश्मि** नाम के पराक्रमी पुत्र को युवराज पद पर स्थापित किया। सुग्रीव ने जिसकी आज्ञा को मान्यता दी है ऐसा रावण उसकी बहन श्रीप्रभा को ब्याहकर, साथ लेकर लंका में गया। अन्य कइं विद्याधरों की रुपवती कन्याओं को रावण जबरन ब्याहा।

एक बार रावण नित्यालोक नाम के नगर में **नित्यालोक** नाम के राजा की **रत्नावली** नाम

१. पानी की नहर

की कन्या को ब्याहने चला। मार्ग में अष्टापद गिरि पर आते ही उसका पुष्पक विमान ज्यों किल्ले के समीप शत्रुओं का सैन्य स्खलित हो जाय त्यों स्खलित हो गया। सागर में लंगर डालने से अटके हुए जहाज की तरह व बांधे हुए हस्ती की तरह अपने विमान को रुका हुआ देखकर रावण को बहुत कोप चढ़ा। 'मेरे इस विमान को स्खलित करनेवाला कौन पुरुष यमराज के मुख में प्रवेश चाहता है ?' इस प्रकार कहते हुए रावण ने नीचे उतरकर पर्वत के मस्तिष्क पर देखा, तो वहां मानो पर्वत में से नवीन शिखर बना हो त्यों कायोत्सर्ग में रहे **वालीमुनि** को अपने विमान के नीचे देखा, तो रावण ने उनको कहा, 'अरे वालीमुनि ! तू क्या अब भी मुझ पर क्रोध रखता है ? और क्या इस जगत को छलने के लिए दंभ करके व्रत लेकर बैठा है ? आगे भी किसी प्रकार की माया से मुझे उठाकर घुमाया था, फिर 'यह मैंने किए हुए का बदला लेगा' ऐसी शंका से तूने तत्काल दीक्षा ली थी, लेकिन आज भी मैं वही रावण हूँ, और मेरी भुजाएं भी वही है। अब मेरा अच्छा समय आया है तो देख ले, मैं तेरी करनी का बदला चुकाता हूँ, ज्यों तू चन्द्रहास खड्ग सहित मुझे उठाकर चारों समुद्र के चारोंओर घूमा था त्यों मैं अब इसी समय तुझे इस पर्वत सहित उठाकर लवणसमुद्र में डाल देता हूँ।'' इस प्रकार कहकर ज्यों स्वर्ग में से गिरा वज्र पृथ्वी को फाड़ डाले त्यों रावण पृथ्वी को फाड़कर अष्टापद गिरि के नीचे घुसा।

फिर भुजाबल से मदोद्धत रावण ने एक साथ सहस्र विद्या का स्मरण करके वह दुर्धर पर्वत उठाया। उस समय उसके कडकडाने से व्यंतर त्रस्त होने लगे, जलजल शब्द द्वारा चपल बने समुद्र से रसातल भराने लगा, खड्खड होकर गिरते पाषाणों से वन के हस्ती भी क्षोभ पाने लगे, और कडकडाहट शब्द करते गिरिनितंब के उपवनों के वृक्ष टूटकर गिरने लगे। इस प्रकार रावण ने पर्वत उठाया, अवधिज्ञान से यह जानकर अनेक लब्धिरुपी नदियों के सागर और शुद्ध बुद्धिवाले महामुनि वाली इस प्रकार सोचने लगे, ''अरे ! यह दुर्मति रावण आज मेरी ईर्ष्या से अनेक प्राणियों का संहार बेसमय करने के लिए तैयार हुआ है, और भरतेश्वर ने कराये हुए इस चैत्य का नाश करके भरतक्षेत्र के आभूषणरुपी इस तीर्थ का उच्छेद करने का यत्न करता है। यद्यपि इस समय मैं निःसंग, अपने शरीर में भी निःस्पृह, रागद्वेषरहित और समताजल में निमग्न हूँ, फिर भी इस चैत्य के और प्राणियों के रक्षण के लिए रागद्वेष धारण किए बिना मैं इस रावण को थोड़ी सी शिक्षा दूं।'' ऐसा विचार करके भगवान वाली ने पैर के अंगूठे से अष्टापद गिरि के मस्तक को थोडा सा दबाया। तत्काल मध्याह्न के समय देह की छाया की तरह और जल से बाहर रहे कूर्म की भाँति रावण के गात्र संकुचित हो गये, उसके भुजदण्ड टूट गये और मुख से रुधिर वमन करते हुए तथा पृथ्वी को रुलाते हुए रावण उच्च स्वर में रोने लगा। इस दिन से वह **'रावण'** कहलाया। उसका दीन रुदन सुनकर दयालु मुनि

ने उसे छोड़ दिया। क्योंकि यह कार्य सिर्फ शिक्षा के लिए ही था, क्रोध से नहीं था।

फिर गिरि के तल में से निकलकर प्रतापरहित बना रावण पश्चात्ताप करते हुए वाली मुनि के पास आया और नमस्कार करके अंजलि जोड़कर इस प्रकार बोला, "जो अपनी शक्ति को जानते नहीं है, जो अन्याय के करनेवाले हैं और जो लोभ से जीते गये हैं उन सब में मैं ही धुरंधर हूँ। हे महात्मा ! मैं निर्लज्ज होकर बार बार आपका अपराध करता हूँ और आप शक्तिवान होने पर भी कृपालु होकर सहन करते हो। हे प्रभु ! अब मैं मानता हूँ कि पहले आपने ही मुझ पर कृपा करके ही पृथ्वी को छोड़ दिया था, असमर्थपन से नहीं छोड़ा था, फिर भी उस समय मेरे जानने में ऐसा नहीं आया। हे नाथ ! ज्यों हस्ती का शिशु पर्वत को घुमाने के लिए कोशिश करे त्यों मैं अज्ञान से मेरी शक्ति तोलने लगा था। आज मुझे मालूम हुआ है कि पर्वत और बाँबी (राफड़े) में तथा गरुड और पक्षी में जितना अंतर है, उतना अंतर आपके और मेरे बीच है। हे स्वामी ! मृत्यु की धार पर रहे ऐसे मुझको आपने प्राण दिए हैं, मेरे जैसे अपकारी पर भी आपकी ऐसी उपकार बुद्धि है, इसलिए आपको नमस्कार है।" इस प्रकार कहकर दृढ़ भक्ति से वाली मुनि से क्षमा मांगी और तीन प्रदक्षिणा करके रावण ने उनको नमस्कार किया। ऐसे उन मुनि के माहात्म्य से हर्ष पाये देवों ने 'साधू, साधू' ऐसे शब्द कहकर वाली मुनि पर आकाश से पुष्पवृष्टि की। फिर दुबारा वालीमुनि को प्रणाम करके उस पर्वत के मुकुट जैसे भरत राजा के कराये हुए चैत्य के समीप रावण आया। वहां चैत्य के बाहर चन्द्रहास खड्ग वगैरह शस्त्र छोड़कर स्वयं अंतःपुर सहित अंदर जाकर ऋषभादिक अर्हंत की अष्ट प्रकार की पूजा की। फिर वह महा साहसिक रावण भक्ति से अपनी नसों को तानकर उसकी तंत्री रचकर भुजवीणा बजाने लगा। दशानन ग्राम राग से रम्य ऐसी वीणा बजा रहा था और उसके अंतःपुर की स्त्रियां सप्त स्वर से मनोहर गीत गा रही थी।

इतने में पन्नगपति **धरणेन्द्र** उस चैत्य की यात्रा के लिए वहां आये। उसने पूजा करके प्रभु की वन्दना की। उस समय अर्हंत के गुण सभर ऐसा करण और ध्रुवक वगैरह गीतों का वीणा से गान करते हुए रावण को देखकर धरणेन्द्र ने कहा, 'हे रावण ! अर्हंत के गुणों का स्तुति-सभर यह गीत बहुत ही सुन्दर है। वह भी तेरे भाव सहित होने से तुझ पर मैं संतुष्ट बना हूँ। अर्हंत के गुणों की स्तुति का मुख्य फल तो मोक्ष है, फिर भी तेरी संसारवासना अब भी जीर्ण नहीं हुई, इसलिए मैं तुझे क्या दूँ ? यह मांग ले।' रावण बोला, 'हे नागेन्द्र ! देव के भी देव, अर्हंत प्रभु के गुणस्तवन से आप तुष्ट हुए, वह आपको उचित है, क्योंकि वह तुम्हारे हृदय में रही स्वामीभक्ति का चिह्न है। परंतु ज्यों वरदान देने से आपकी स्वामीभक्ति का उत्कर्ष होता है, त्यों ही वरदान लेने से मेरी स्वामीभक्ति हीन बनती है।' नागेन्द्र ने फिर

से कहा, 'हे मानद रावण ! तुझे शाबाश है। तेरी ऐसी निस्पृहता से मैं विशिष्ट रुप से संतुष्ट बना हूँ।' इस प्रकार कहकर धरणेन्द्र ने **अमोघविजया शक्ति** और **रुपविकारिणी विद्या** रावण को देकर अपने स्थान पर गये। इसके बाद रावण वहां रहे सब तीर्थंकरों की वन्दना करके नित्यालोक नगर में गया। वहां रत्नाबली को ब्याहकर वापस लंका में आया। उस समय वालीमुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुर-असुरों ने आकर केवलज्ञान का महोत्सव किया। क्रमशः भवोपग्राही कर्म का[1] क्षय करके अनंतचतुष्टमय[2] जिसके सिद्ध हुए हैं ऐसे वालीमुनि परमपद को प्राप्त हुए।

वैताढ्यगिरि पर ज्योतिःपुर नगर में **ज्वलनशिख** नाम का एक विद्याधरों का राजा था। उसे **श्रीमती** नाम की रानी थी, जो रुपसंपत्ति में लक्ष्मी जैसी थी। उस रानी को विशाल लोचनवाली **तारा** नाम की पुत्री हुई थी। एक बार वह कन्या **चक्रांक** नाम के विद्याधर राजा के पुत्र **साहसगति** को नजर आई। तो वह तत्काल कामपीडित हुआ। इस कारण साहसगति ने आदमी भेजकर ज्वलनशिख से उसकी मांग की। इस प्रकार वानरपति सुग्रीव ने भी मांग की, क्योंकि रत्न के अर्थी बहुत होते हैं। साहसगति और सुग्रीव दोनों जातिवान, रुपवान और पराक्रमी थे। इससे 'यह कन्या किसे देनी ?' ऐसा उसके पिता ने किसी निमित्तज्ञानी को पूछा। निमित्तिए ने कहा कि साहसगति अल्पायुष है और सुग्रीव दीर्घायुष्य है। इससे ज्वलनशिख ने वह कन्या सुग्रीव को दी। यह खबर जानकर अभिलाषा और वियोग के कारण साहसगति दिन प्रतिदिन अंगारे से जला हुआ हो त्यों किसी भी जगह पर निवृत्ति नहीं पाया। तारा के साथ क्रीडा करते हुए सुग्रीव को **अंगद** और **जयानन्द** नाम के दो दिग्गज जैसे पराक्रमी पुत्र हुए। तारा का अनुरागी साहसगति मन्मथ ने मंथन की हुई आत्मावाला होने पर भी कामविकार की तीव्रता सूचित करनेवाले अनेक प्रकार के विचार करने लगा। आखिरकार "बल से या छल से मैं उसका जरुर हरण करुंगा।" इस प्रकार चिंतन करके रुप का परावर्तन करे ऐसी **शेमुषी** नाम की विद्या का उसने स्मरण किया और फिर चक्रांक राजा के उस पुत्र ने क्षुद्रहिमाचल की गुफा में रहकर वह विद्या साधना आरंभ किया।

यहां सूर्य ज्यों पूर्वगिरि के तट में से निकले त्यों रावण दिग्विजय करने के लिए लंकापुरी से बाहर निकला। दूसरे द्वीपों में रहनेवाले विद्याधरों और राजाओं को वश करके वह पाताललंका में आया। वहां रहे हुए सूर्पणखा के पति खर विद्याधर ने मृदु भाषणपूर्वक उपहार देकर सेवक की भाँति रावण की सविशेष पूजा की। फिर इन्द्रराजा को जीतने की इच्छा से जाते रावण के

१. नाम, गोत्र, वेदनीय और आयु ये चार अघाती कर्म संसार का अंत होने तक रहते हैं इसलिए ये भवोपग्राही कहलाते हैं। २. अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य और अनंतसुख

साथ वह खर विद्याधर चौदह हजार विद्याधरों से युक्त होकर चला। उस समय सुग्रीव भी अपनी सेना लेकर वायु के पीछे अग्नि की तरह बलवान राक्षसपति रावण के पीछे चला। असंख्य सेना के भूमि और अंतरिक्ष के मध्य भाग को भरता हुआ रावण समुद्र की भाँति उद्भ्रांत होकर अस्खलित रुप में चलने लगा। आगे चलते हुए विंध्यगिरि पर से उतरती चतुर कामिनी के जैसी रेवा नदी उसे नज़र आयी। वह शब्द करती हुई हंसश्रेणी से मानो कटिमेखला बांधी हो ऐसी दिखती थी, विशाल भूमितट से वह नितंब से शोभित हो ऐसी दिखती मालूम होती थी, अति भंगुर तरंगों से केश को धारण करनेवाली हो ऐसी दृश्यमान होती थी और बार बार उछलती मछलियों के स्फुरण से मानो कटाक्ष छोडती हो ऐसी लगती थी। ऐसी रेवा नदी के तीर पर यूथ से लिपटे हस्तिपति की तरह रावण ने सैन्य सहित पड़ाव किया। वहां रावण रेवा नदी में स्नान करके, दो उज्ज्वल वस्त्र पहनकर, समाधि द्वारा दृढ़ आसन करके बैठा, और मणिमय पट्ट पर रत्नमय अर्हंतबिंब का स्थापन करके, रेवा के जल से उनको स्नान करवाकर उनका विकसित कमलों से पूजन करना आरंभ किया। इस प्रकार वह पूजा में व्यग्र बन रहा था कि समुद्र की बेल की तरह रेवानदी में अचानक बड़ी बाढ़ आई। गुल्म की तरह वृक्षों को जड़ में से उखाड़ते हुए वह जल नदी के ऊँचे किनारों पर भी फैलने लगा। मानो शक्तिपुट हो त्यों आकाश तक उछलती तरंगपंक्तियां किनारा तोड़कर तट पर बंधे जहाजों को परस्पर टकराने लगी। पाताल की गुफा हो त्यों तट पर की बडी घाटियों को उदरंभरि के उदर को ज्यों भक्ष्य भरे त्यों जल की बाढ़ से भर दिया। पूर्णिमा की चन्द्रज्योत्सना ज्यों सर्व ज्योतिश्चक्र के विमानों का आच्छादन करे त्यों उस रेवानदी ने उसके अंदर रहे टापुओं को चारोंओर से आच्छादित कर दिया। ज्यों महावायु गति के आवर्त्त से वृक्षों के पल्लवों को उछाले त्यों उस जल बाढ ने उछलती बड़ी ऊर्मियों से मत्स्य उछालना शुरु किया। वह झागवाली और कूड़ेवाले जलबाढ़ ने तेजी से आकर रावण ने की हुई अर्हंतपूजा को धो डाला। उस पूजा का भंग रावण को मस्तक के छेदन से भी अधिक लगा। तत्काल कोप करके आक्षेपपूर्वक वह बोल उठा, "अरे ! अर्हंत की पूजा में बाधा करने के लिए कारण बिना बैरी बने ऐसे किसने यह दुर्वार जलसमूह अति वेगपूर्वक छोड़ा ? क्या यह जल छोड़नेवाला कोई मिथ्यादृष्टि अधम नर है ? या कोई विद्याधर है ? या सुर-असुर है ?" इस समय कोई एक विद्याधर ने आकर रावण को कहा, "हे देव ! यहां से आगे जाते हुए एक माहिष्मती नाम की नगरी है। उसमें दूसरा सूर्य हो ऐसा और सहस्र राजाओं द्वारा सेवित **सहस्रांशु** नाम का एक महाभुज राजा है। उसने जलक्रीडा के उत्सव के लिये रेवा (नर्मदा) नदी पर बांध बनाया है। बड़े पराक्रमी वीरों को क्या असाध्य है ? वह सहस्रांशु राजा हाथिनियों के साथ हाथी की तरह अपनी सहस्र रानियों के साथ सुख से जलक्रीडा करता है। और उस समय इन्द्र की तरह उसके चारोंओर लाखों रक्षक कवच पहनकर ऊँचे हथियार धारण

करके रेवानदी के दोनों तट पर खड़े रहते हैं। अपरिमित पराक्रमवाले उस राजा का ऐसा अपूर्व व अदृष्टपूर्व रुआब है कि उसके सैनिक सिर्फ शोभा के लिए या कर्म के गवाह के रुप में ही रहते हैं। जब वह पराक्रमी वीर जलक्रीडा में उग्र कराघात करने लगा, तब जलदेवी क्षोभ पा गई और जलजंतु पलायन कर गये। हजारों स्त्रियों के साथ रहे उस राजा ने इस रेवा नदी का जल पहले बहुत रोककर बाद में स्वैच्छा से छोड़ दिया है, जिससे भूमि और आकाश को प्लावित करती हुई उस जल-बाढ़ ने उच्छृंखलतापूर्वक तेजी से आकर आपकी यह देवपूजा भी प्लावित कर दी है। देखिए ! उस राजा की स्त्रियों के निर्माल्य रेवा नदी के जल पर तैर रहे हैं, वे इसकी निशानी है।''

उसकी ऐसी वाणी सुनकर आहुति से अग्नि की तरह रावण अधिक गुस्से हुआ और बोला, ''अरे ! मरना चाहनेवाले उस राजा ने काजल से देवदूष्य वस्त्र की भाँति अपने अंग से दूषित ऐसे जल से मेरी इस देवपूजा को दूषित किया है। इसलिए हे राक्षससुभटों ! मत्स्य को मछुआरे ज्यों बांधकर लाते हैं त्यों उस पापी और वीरमानी राजा को बांधकर तत्काल यहां ले आओ।'' रावण की ऐसी शीघ्र आज्ञा मिलते ही रेवा नदी के उद्‌भट तरंगों की तरह लाखों राक्षसवीर रेवा नदी के किनारे का अनुसरण करते हुए दौड़ने लगे। और अन्य वन के गजेन्द्रों के साथ ज्यों गजेन्द्र युद्ध करे त्यों तीर पर रहे सहस्रांशु राजा के सैनिकों के साथ वे निशाचर युद्ध करने लगे। मेघ ज्यों ओलों से अष्टापद[1] को उपद्रव करे त्यों आकाश में रहकर विद्या से उनको मोहित करके वे उपद्रव करने लगे। अपने सैनिकों को उपद्रव पाया देखकर क्रोध से अधर को कंपाते हुए सहस्रांशु ने हाथ की संज्ञा से अपनी प्रियाओं को आश्वासन दिया और स्वयं गंगा में से ऐरावत हस्ती बाहर निकले त्यों रेवानदी में से बाहर निकला। उसने तत्काल धनुष्य पर प्रत्यंचा चढ़ाई, और रुई के समूह को ज्यों पवन उडा दे त्यों उस महाबाहु सहस्रांशु ने बाणों से आकाश में रहे राक्षसवीरों को विद्रावित कर डाला। अपने सैनिकों को रण में से वापस लौटते हुए देखकर रावण क्रोधायमान हुआ और सहस्रांशु पर बाण बरसाते हुए सामने आया। दोनों वीर क्रोधी, उग्र और स्थिर होकर चिरकाल तक विविध प्रकार के आयुधों से युद्ध करने लगे। आखिरकार भुजा के वीर्य से अजेय ऐसे माहिष्मती के राजा सहस्रांशु को जानकर रावण ने हाथी की तरह उसे विद्या से मोहित करके पकड़ लिया। अपने को जीता हुआ समझकर रावण उस महावीर्य को जीतकर भी उसकी प्रशंसा करते हुए अनुत्सेकतापूर्वक उसे अपनी छावनी में लाया।

रावण हर्ष पाते हुए आकर सभा में बैठा ही था कि **शतबाहु** नाम के एक चारणमुनि आकाश में से उतरकर सभा में आये। मेघ के साथ मयूर जैसा रावण तत्काल सिंहासन पर

१. आठ पैर वाला सिंह से भी ताकतवान जानवर

से खड़ा होकर मणिमय पादुका का त्याग कर उनके सामने आया। उनको अर्हंतप्रभु के गणधर समान मानते हुए रावण पांच अंग से भूमि का स्पर्श करते हुए उनके चरणों में गिरा। फिर स्वयं ने अर्पण किए हुए आसन पर मुनि को बैठाया, और प्रणाम करके स्वयं उनके सम्मुख पृथ्वी पर बैठा। मूर्तिमंत विश्वास हो ऐसे विश्व को आश्वासन देने में बांधवरुप मुनि ने उसे कल्याण की माता जैसी धर्मलाभरुपी आशिष दी। फिर रावण ने अंजलि जोड़कर उन श्रेष्ठ मुनि को आने का कारण पूछा, तो वे मुनि निर्दोष वाणी में बोले, "मैं शतबाहु नाम का माहिष्मती नगरी का राजा था। एक बार अग्नि से सिंह की भाँति संसार-निवास से भय पा गया, जिससे सहस्रांशु नाम के मेरे पुत्र को राज्य सौंपकर मोक्षमार्ग में रथ जैसा यह व्रत मैंने ग्रहण किया हुआ है।" इतनी अर्ध बात कही ही थी कि रावण गरदन झुकाकर बोल उठा, 'क्या ये महाभुज आप पूज्यपाद के पुत्र हैं ?' मुनि ने 'हाँ,' कही तो रावण बोला, 'मैं दिग्विजय के लिए घूमते हुए इस रेवानदी के किनारे आया, और यहां पडाव करके विकसित कमलों से प्रभु की पूजा करके तन्मय होकर एकाग्र मन से ध्यान करने लगा, इतने में आपके इस पुत्र ने स्नान से मलिन ऐसे जल को छोड़कर मेरी पूजा का भंग कर दिया। जिससे क्रोध में आकर मैंने यह किया है; लेकिन मैं मानता हूँ कि इन महात्मा ने यह कार्य अज्ञान से किया होगा, क्योंकि आपका पुत्र कदापि अर्हंत की ऐसी आशातना करेगा नहीं !' इस प्रकार कहकर रावण सहस्रांशु को वहा लाया। लज्जा से नम्र मुख करके उसने मुनिरुप पिता को प्रणाम किए। रावण ने उसे कहा कि "हे सहस्रांशु ! आज से आप मेरे भ्राता हो, और आप की तरह ये मुनि मेरे पिता हैं। इसलिए जाओ, आपके राज्य पर अधिकार चलाओ और दूसरी पृथ्वी भी ग्रहण करो। हम तीन भाइ हैं और आज से राजलक्ष्मी के अंश को भजनेवाले आप मेरे चोथे भाइ हो।" इस प्रकार कहकर सहस्रांशु को छोड़ दिया, तो उसने कहा कि, 'आज के बाद अब मुझे इस राज्य का या शरीर का कुछ भी काम नहीं है, मैं तो पिता ने आश्रय किए हुए इस संसार को नाश करनेवाले व्रत का ही आश्रय करुंगा। वह साधुओं का मार्ग आखिरकार निर्वाणपद देता है।' इस प्रकार कहकर अपना पुत्र रावण को सौंपकर उस चरमदेही[1] सहस्रांशु ने पिता से व्रत ग्रहण किया। मित्रता के कारण उसने दीक्षा ग्रहण करने के समाचार अयोध्यापति **अनरण्य** राजा को कहलवाये। यह खबर सुनकर अयोध्यापति ने सोचा कि मेरे प्रिय मित्र सहस्रांशु के साथ मेरा ऐसा संकेत था कि 'हम साथ साथ व्रत ग्रहण करेंगे।' ऐसी अपनी प्रतिज्ञा याद करके सत्यधनवाले उसने अपने पुत्र **दशरथ** को राज्य सौंपकर व्रत ग्रहण किया।

फिर रावण शतबाहु और सहस्रांशु मुनि की वंदना करके, सहस्रांशु के पुत्र को राज्य पर

१. उसी जन्म में मोक्ष जाने वाले होने से अंतिम देह धारण करनेवाले।

बैठाकर, आकाश मार्ग से चला। इतने में यष्टियों (लाठियों) के घात से जर्जरित हुए **नारदमुनि** 'अन्याय, अन्याय' ऐसी पुकार मचाते हुए वहां आये और उन्होंने रावण को कहा, "हे राजा ! इस राजपुर नगर में मरुत नाम का राजा है। वह दुष्ट ब्राह्मणो के सहवास से मिथ्यादृष्टि बनकर यज्ञ करता है। उस यज्ञ में बलि देने के लिए कसाइयों की तरह ब्राह्मणों ने पाश में बांधकर लाये हुए निरपराधी पशु पुकारते हुए मेरी नजरों में आये। जिससे आकाश में से नीचे उतरकर ब्राह्मणों से गिरे उस मरुत्तराजा को दया लाकर मैंने पूछा कि 'यह क्या आरंभ किया है ?' मरुत्त ने कहा, 'इन ब्राह्मणों ने कहा हुआ यज्ञ हो रहा है। यहां अंतर्वेदी में देव की तृप्ति के लिए पशुओं की बलि देनी है। यह महा धर्म है और स्वर्ग के हेतु से कहा है, इसलिए इन पशुओं से आज मैं यज्ञ करुंगा।' फिर मैंने उसे कहा, 'यह शरीर वेदी है, आत्मा यजमान है, तप अग्नि है, ज्ञान व्रत है, समिध कर्म है, क्रोधादिक पशु हैं, सत्य यज्ञस्तंभ है, सर्वप्राणियों की रक्षा वह दक्षिणा है और ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य - ये तीन रत्न तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) हैं। यह वेदोदित यज्ञ यदि योगविशेष से किया हो तो वह मुक्ति का साधन बनता है। राक्षस समान जो लोग छाग (बकरे) वगैरह प्राणियों की बलि से यज्ञ करते हैं वे मृत्यु पाकर घोर नरक में पड़ते हैं और वहां चिरकाल तक दुःख भोगते हैं। इसलिए हे राजा ! आप उत्तम वंश में उत्पन्न हुए हो, बुद्धिमान और समृद्धिमान हो, इसलिए शिकारियों के करने योग्य ऐसे इस पाप में से निवृत्त हो जाइए। यदि प्राणियों के वध से स्वर्ग प्राप्त होता तो फिर यह पूरा जीव लोक कुछ दिनो में ही शून्य-खाली हो जाता।' मेरे ऐसे वचन सुनकर यज्ञ के अग्नि जैसे सर्व ब्राह्मण क्रोध से प्रज्वलित होकर हाथ में दंड और पट्टक वगैरह लेकर खड़े हुए और उन्होंने मुझे मारना शुरु किया। वहां से भागकर नदी की बाढ़ से पराजित हुआ मनुष्य ज्यों द्वीप को पा जाय त्यों मैं आप को प्राप्त हुआ हूं। अर्थात् आप मुझे मिले हो। आप के अवलोकन से मेरी तो रक्षा हुई, लेकिन जो निरापराधी पशुओं को हणने (मारने) के लिए जो नरपशु तैयार हुए हैं, उनसे वहां जाकर रक्षा कीजिएं।"

ऐसे वचन सुनकर वह सब देखने की इच्छा से रावण विमान में से उतरकर यज्ञमण्डप में आया। मरुत्त राजा ने पाद्य एवं सिंहासन वगैरह देकर उसकी पूजा की। फिर रावण ने क्रोधित होकर मरुत्त राजा को कहा कि 'अरे ! नरक के अभिमुख होकर आप ऐसा यज्ञ क्यों करते हो ? तीनों जगत के हितकारी ऐसे सर्वज्ञ पुरुषों ने अहिंसा से धर्म कहा है, तो इस पशुहिंसात्मक यज्ञ से धर्म किस प्रकार होगा ? इसलिए दोनों लोक का नाश करनेवाला यह यज्ञ न करें। यदि करोगे तो इस लोक में मेरे कारागृह में निवास होगा और परलोक में नरक में निवास होगा।' यह सुनकर मरुत्त राजा ने तत्काल यज्ञ करना छोड़ दिया, क्योंकि पूरे विश्व को भयंकर ऐसे रावण की आज्ञा अलंघनीय थी।

फिर रावण ने नारद को पूछा, कि 'ऐसे पशुवधात्मक यज्ञ कब से शुरु हुए होंगे ?' नारद बोले, "चेदि देश में **शुक्तिमती** नाम की एक प्रसिद्ध नगरी है, उसके आसपास नर्म सखी हो ऐसी शुक्तिमती नाम की नदी बह रही है। उस नगरी में अच्छे आचरणवाले अनेक राजा हो जाने के बाद मुनिसुव्रत स्वामी के तीर्थ में **अभिचन्द्र** नाम का सर्व राजकर्ताओं में श्रेष्ठ राजा हुआ था। उसका **वसु** नाम का पुत्र हुआ, जो महा बुद्धिमान और सत्यवचनता में भी प्रसिद्ध था। **क्षीरकदम्ब** नाम के एक गुरु के पास उस गुरु का पुत्र **पर्वत**, राजपुत्र **वसु** और मैं - यूं तीन जन पढ़ते थे। एक बार रात्रि में अभ्यास के श्रम से थककर हम घर के उपर छत पर सो रहे थे, इतने में कोई दो चारण मुनि आकाश मार्ग से जाते हुए परस्पर इस प्रकार बोले, 'इन तीन विद्यार्थियों में से एक स्वर्ग में जायेंगा, दो नर्क में जायेंगे'। यह वार्तालाप क्षीरकदम्ब गुरु को सुनाई दिया। जिससे वे खेद पाकर सोचने लगे कि 'अहो ! मेरे जैसा गुरु अध्यापक होते हुए भी इनमें से दो शिष्य नर्क में जायेंगे !' फिर हममें से कौन स्वर्ग में जायेंगा और कौन नर्क में जायेंगा इसका निर्णय करने की जिज्ञासा से गुरु ने हम तीनों को एक साथ बुलाया। और हम तीनों को एक एक पिष्ट (आटे) का मुर्गा देकर कहा कि 'जहा कोई न देखे ऐसे स्थान पर जाकर इस मुर्गे को तुम्हे मार डालना है।' फिर वसु और पर्वत ने तो किसी निर्जन प्रदेश में जाकर अपनी आत्महित गति की तरह उस पिष्ठ के मुर्गे को मार डाला। मैं अकेला नगर के बाहर दूर देश में जाकर एकांत में रहकर दिशाओं को देखते हुए सोचने लगा कि 'गुरु ने इस बारे में प्रथम हमें आज्ञा दी है कि जहां कोई देखे नहीं ऐसे स्थान पर इस मुर्गे को मारना, लेकिन यहां तो मुर्गा स्वयं देखता है, मैं देखता हूं, ये खेचर देखते हैं, लोकपाल देखते हैं और ज्ञानी भी देखते हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं है कि जहां कोई भी देखे नहीं। इसलिए गुरु की वाणी का तात्पर्य ऐसा लगता है कि 'इस मुर्गे को मारना नहीं हैं' ये पूज्य गुरु, सदैव दयालु और हिंसा से विमुख है इसलिए उन्होंने हमारी बुद्धि की परीक्षा करने के लिए ही अवश्य ऐसी आज्ञा दी होगी।' ऐसा विचार करके उस मुर्गे को मारे बिना ही मैं वापस आया और मुर्गे को नहीं मारने का हेतु गुरु को बताया। गुरु ने 'जरुर यह शिष्य स्वर्ग में जायेंगा' ऐसा निश्चय करके मुझे गौरवपूर्वक 'शाबाश..शाबाश' यूं कहकर आलिंगन दिया। फिर थोडी देर बाद वसु और पर्वत आए। उन्होंने कहा कि, 'जहां कोई न देखे ऐसे स्थान पर मुर्गे को हमने मार डाला।' गुरु ने धिक्कारपूर्वक कहा कि, 'अरे पापीयों ! तुम स्वयं देखते थे और उपर से खेचर वगैरह देखते थे, फिर भी तुमने उन मुर्गो को क्यों मार डाला ?' फिर खेद से उनको नया अभ्यास कराने का विचार स्थगित करके उपाध्याय ने सोचा कि, 'ये वसु और पर्वत को अध्ययन कराने का मेरा प्रयास व्यर्थ हुआ। ज्यों जल का गिरना स्थान के भेद से मोतीरुप भी होता है और लवणरुप (नमक) भी होता है, त्यों गुरु का उपदेश पात्रानुसार ही परिणाम देता है। पर्वत मेरा

प्रिय पुत्र है और वसु पुत्र से भी अधिक है। जब वे नर्क में ही जानेवाले हैं, तो फिर मुझे गृहवास में रहने का क्या प्रयोजन है ?' ऐसा निर्वेद (बैराग) पाकर उपाध्याय ने तत्काल दीक्षा ली और व्याख्यान (पाठन) कराने में निपुण ऐसे पर्वत ने अपने पिता का गुरुपद लिया। गुरु की कृपा से सर्व शास्त्र में चतुर बनकर मैं वहाँ से अपने स्थानक पर चला गया।

राजाओं में चन्द्र समान अभिचंद्र राजाने भी समय आने पर व्रत ग्रहण किया, तो लक्ष्मी में वासुदेव जैसा **वसु** राजा हुआ। वह इस पृथ्वी पर सत्यवादी रुप में प्रसिद्ध हुआ। वह प्रसिद्धि पालने के लिए ही सत्य ही बोलता था। एक बार विंध्यगीरि के नितंब में कोई शिकारी मृगया खेलने आया। उसके एक बाण छोड़ते ही वह बीच में स्खलित हो गया। बाण की स्खलना जानने के लिए वह वहां गया तो उसे आकाश जैसी निर्मल स्फटिक की शिला का स्पर्श हुआ। उसने सोचा कि 'चन्द्र में भूमि की छाया की तरह ज्यों कोई अन्य स्थान पर चरता मृग इस शिला में प्रतिबिंबित हुआ मेरी नजर में आया होगा। क्योंकि यह शिला हाथ के स्पर्श बिना कुछ दिखाई दे ऐसी नहीं है, इसलिए यह वसुराजा के योग्य ही है।' यूं सोचकर उस शिकारी ने वसु राजा को एकांत में यह बात बताई। राजा ने हर्ष से वह शिला ग्रहण की और उसे बहुत धन दिया। फिर वसु राजा ने गुप्त रुप से उस शिला की एक आसनवेदी[1] बनवाई और इस बात को गुप्त रखने के लिए उसके कारिगरों को मरवा डाला। क्योंकि राजा किसिके मित्र नहीं होते। फिर उस शिला की वेदी पर चेदी देश के राजा वसु ने अपना सिंहासन रखा। वसु राजा के सत्य के प्रभावं से यह सिंहासन जमीन से ऊंचे आकाश में रहा है यूं अबूध लोग मानने लगे और 'सत्य से संतुष्ट बने देव वसु राजा का सान्निध्य चाहते है' ऐसी उसकी उग्र प्रसिद्धि सब दिशाओं में फैल गई। इस प्रसिद्धि से भय पाकर अनेक राजा उसके वश हो गये। क्योंकि सच्ची या झूठी - चाहे जैसी भी प्रसिद्धि मनुष्यों को जय दिलाती है।

एक बार घूमते घूमते मैं वहां पहुँचा। उस समय बुद्धिमान शिष्यों को ऋग्वेद की व्याख्या समझाता हुआ पर्वत मेरी नजर में आया। उसमें 'अजैर्यष्टव्यं' इस शब्द का 'मेंढे से यज्ञ करना' ऐसा अर्थ वह सीखा रहा था। यह सुनकर मैंने कहा, "अरे भाई ! भ्रांति से तू ऐसा क्यों बोल रहा है ? हमारे गुरु ने तो **अज** पद का अर्थ ऐसा बताया है कि तीन साल पुराना धान्य जो दुबारा उगता नहीं है उसे अज कहते हैं। क्योंकि उसकी उत्पत्ति ऐसी है कि 'न जायंते इति अजाः' जो उत्पन्न न हो सके वह अज कहलाता है। इस प्रकार हमारे गुरु ने सीखाई हुई परिभाषा तू किस कारण से भूल गया ?" पर्वत बोला, "मेरे पिता (गुरु) ने ऐसा कहा ही नहीं है। उन्होंने तो अज का अर्थ 'मेष' ही कहा है और निघण्टु (कोष) में भी ऐसा ही है।" मैंने कहा कि 'शब्दो

१. सिंहासन रखने की वेदिका (चबूतरा)

के अर्थों की कल्पना मुख्य और गौण यूं दो प्रकार की होती है। उसमें गुरु ने यहां गौण अर्थ कहा है और गुरु धर्म का ही उपदेश करनेवाला होता है और धर्मात्मक वचन ही वेद कहलाते हैं। इसलिए हे मित्र ! उन दोनों को अन्यथा करके तू पाप उपार्जित मत कर।' पर्वत आक्षेपपूर्वक बोला, 'अरे ! गुरु ने तो अज शब्द का अर्थ मेष ही कहा है। फिर भी गुरु के उद्देश और शब्द के अर्थ का उल्लंघन करके तू अधर्म उपार्जित करता है ? लोग मिथ्याभिमान वाली वाणी दण्ड के भय से बोलते नहीं है इसलिए हमारे बीच अपने अपने पक्ष का स्थापन करने में जो गलत ठहरे उसकी जिह्वा (जीभ) छेदने की प्रतिज्ञा हो जाय और हम दोनों के बीच हमारे सहाध्यायी और सत्यवादी वसुराजा को प्रमाणिक ठहराए।' यह सुनकर मैंने उस प्रकार कबूल किया, क्योंकि सत्यवादियों को कोई क्षोभ नहीं होता।

यह प्रतिज्ञा मालूम पड़ते ही पर्वत को उसकी माता ने एकांत में कहा, "हे पुत्र ! 'अज याने तीन साल पुराना धान्य।' ऐसा मैंने भी तुम्हारे पिता से घर का कामकाज करते हुए सुना था। इसलिए तूने गर्व से यह जिह्वा छेदने का प्रण (प्रतिज्ञा) किया वह ठीक नहीं है। क्योंकि अविचारित कार्य के करनेवाले विपदा का स्थान बन पड़ते हैं।" पर्वत बोला, 'हे माता ! मैं तो यह प्रतिज्ञा कर चूका हूं। इसलिए अब जो हुआ वह हुआ। दूसरा होनेवाला नहीं है।' फिर अपने पुत्र पर्वत को प्राप्त होने वाले कष्ट की पीडा से हृदय में आकुल-व्याकुल हो रही उसकी माता वसु राजा के पास आइ क्योंकि पुत्र के लिए प्राणी क्या नहीं करता।

पर्वत की माता को देखकर वसुराजा बोला, 'हे अंबा ! आज आपके दर्शन से मुझे क्षीरकदम्ब गुरु के दर्शन हुए हैं। कहिए, आपका क्या काम करुं ? अथवा आपको क्या दूं ?' वह बोली, "हे राजा ! मुझे पुत्ररुपी भिक्षा दीजिए। हे वत्स ! पुत्र बिना मुझे दूसरे धन-धान्य किस काम के हैं !" वसु बोला, "माता ! आपका पुत्र पर्वत मेरे पालने योग्य है और पूजने योग्य भी है। क्योंकि 'गुरु की तरह गुरु के पुत्र के साथ भी वर्ताव करना चाहिए।' ऐसा वेद कहते हैं। हे माता ! आज बेसमय क्रोध धारक काल ने किसका पत्ता खोला है ? मेरे भाई पर्वत को कौन मारना चाहता है ? कहिए, आप क्यों आतुर हो गई हो ?" इस प्रकार पूछने से उसने अज शब्द की परिभाषा का वृत्तांत, पुत्र का प्रण और उसमें आपकी प्रामाणिकता - ये सब बाते बताकर प्रार्थना की कि "हे वत्स ! तेरे भाई पर्वत की रक्षा करने के लिए तू अज शब्द का अर्थ (मेष) ऐसा कर; क्योंकि बड़े पुरुष प्राण से भी दूसरों का उपकार करते हैं, तो वचन से क्यों न करे ?" यह सूनकर वसु राजा बोला, 'माता ! मैं मिथ्या वचन किसलिए बोलूं ? क्योंकि सत्यवादी पुरुष प्राण का अंत हो जाय तो भी असत्य बोलते नहीं है। पाप से भय पानेवाले पुरुष को दूसरा भी असत्य बोलना नहीं चाहिए तो गुरु की इस वाणी को वृथा (जूठ) करनेवाली

कूट (जूठी) गवाही देने की तो बात ही क्या !' माता ने कहा, ''या तो गुरु के पुत्र का मान रखकर उसे बचा अथवा सत्यव्रत का आग्रह रखकर चाहे सो कर।'' उसके ऐसे स-रोष वचन सुनकर वसु ने गुरु के पुत्र का मान रखना कबूल किया और क्षीरकदम्ब गुरु की पत्नी हर्ष पाते हुए अपने घर आयी। फिर मैं और पर्वत वसुराजा की पर्षदा में गये।

वसुराजा की सभा में मध्यस्थ गुण से शोभा पानेवाले सभासदों और सत-असत् के वादरुप क्षीर और नीर का भेद करने में हंस समान वादी एकत्रित हुए थे। वसु राजा गगन में चन्द्र समान उस आकाश जैसी स्फटिकशिला की वेदी पर रहे सिंहासन पर सभापति होकर बैठा था। उनको मैंने और पर्वत ने अज शब्द की परिभाषा का जो अपना अपना पक्ष था वह कह सुनाया और कहा कि 'हे सत्यवादी ! इसमें जो सत्य हो वह कहिए।' उस समय अन्य वृद्ध विप्रो ने राजा को कहा, 'हे राजा ! यह विवाद तो आप के उपर ही है। भूमि और आकाश में सूर्य की तरह इन दोनों के बीच आप प्रमाणिक साक्षी हो। घट वगैरह जो दस दिव्य[1] है वे सत्य से रहे हैं। सत्य से मेघ बरसता है। और सत्य से देवता सिद्ध होते हैं। हे राजा ! आपसे ही यह सर्व लोक सत्य में रहा है। इसलिए इस बारे में आपको हम क्या कहे ? जो आपके सत्यव्रत को योग्य हो वह कहिए।' ऐसे वचन सुनकर भी अपनी सत्यता की प्रसिद्धि को छोड़कर वसुराजा ने कहा, 'गुरु ने अज शब्द का अर्थ मेष कहा है।' वसु राजा के ऐसे असत्य वचन से क्रोध पाकर वहां रहे देवों ने आकाश जैसे स्फटिक की आसनवेदिका को चूर्ण-चूर्ण कर दिया। वसु राजा तत्काल मानो नर्कपात के लिए प्रस्थान करता हो त्यों पृथ्वी पर गिर पड़ा। असत्य वचन बोलने से कोप पाये देवों द्वारा गिराकर मारा हुआ वसुराजा मृत्यु पाकर घोर नरक में गया। वसु का पुत्र **पृथुवसु, चित्रवसु, वासव, शुक्र, विभावसु, विश्वावसु, सूर और महासुर** ये आठ क्रमानुसार पिता की राजगद्दी पर बैठे। लेकिन देवों ने कोप से तत्काल उनको भी मार डाला। जिससे नौंवा **सुवसु** नाम का पुत्र वहां से भागकर नागपुर गया और दसवां **बृहद्ध्वज** नाम का पुत्र मथुरापुरी में गया। फिर पुरवासियों ने उपहास्य करके पर्वत को नगर के बाहर निकाल दिया। जिसे **महाकाल** नाम के असुर ने ग्रहण किया।''

रावण ने पूछा, 'यह महाकाल असुर कौन था ?' तो नारद उसकी कथा कहने लगे, ''यहां **चारण युगल** नाम का एक नगर है। वहां **अयोधन** नाम का एक राजा हुआ। उसे **दीति** नाम की प्रिया थी। उसे **सुलसा** नाम की एक रुपवती दुहिता (पुत्री) हुई थी। अयोधन राजा ने उसके स्वयंवर में बुलवाने से सब राजा वहां आये। उनमें **सगर** नाम का राजा सबसे बढ़कर था। उस सगर की आज्ञा से **मंदोदरी** नाम की एक प्रतिहारी अयोधन राजा के आवास में बार बार

१. जल, अग्नि, घडा, कोश, विष, माया, चावल, फल, धर्म और पुत्र का स्पर्श करना - ये दश दिव्य कहलाते हैं।

जाती थी। एक बार दिति रानी सुलसा कुमारी के साथ ग्रहोद्यान के कदलीगृह में बैठी थी, इतने में मंदोदरी भी वहां आ पहुंची। उन दोनों के वचन सुनने की इच्छा से मंदोदरी लताओं में छिपी रही। उस समय दिति ने सुलसा को कहा, 'वत्से ! तेरा यह स्वयंवर मेरे मन में एक शल्य है, और उसका उद्धार करना तेरे अधीन है, इसलिए तू अच्छी तरह शुरु से वह बात सुन। श्री ऋषभस्वामी को भरत और बाहुबली नाम के मुख्य दो वंशधर पुत्र थे। जिनके पुत्र **सूर्य** व **सोम** हुए थे। उसमें सोम के वंश में **तृणबिंदु** नाम का मेरा भाई हुआ है और तेरे पिता अयोधन राजा सूर्य के वंश में हुए हैं। अयोधन राजा की बहन **सत्ययशा** तृणबिंदु राजा की स्त्री बनी है और उसे **मधुपिंग** नाम का एक पुत्र हुआ है। हे सुंदरी ! उस मधुपिंग को तुझे देने की मेरी इच्छा है और तेरे पिता तुझे स्वयंवर में आये राजाओं में से किसी भी वर को देना चाहते हैं। अब स्वयंवर में तू किसे वरेगी वह मैं नहीं जान सकती इसलिए एक बड़ा शल्य मेरे हृदय में चुभ रहा है। इसलिए सब राजाओं के बीच तूझे मेरे भ्रातृज (भतीजा) मधुपिंग को वरना कबूल कर।' अपनी माता की ऐसी शिक्षा सुलसा ने स्वीकृत की। यह सब बात गुप्त रुप से सुनकर मंदोदरी ने सगर राजा के पास निवेदित की।

सगर राजा ने अपने पुरोहित **विश्वभूति** को आज्ञा दी तो तत्काल उस शीघ्रकवि ने एक **राजलक्षणसंहिता** रच डाली। उसमें उसने ऐसा लिखा की जिससे सगरराजा सर्व राजलक्षणों से युक्त माना जाय और मधुपिंग राजलक्षण रहित ठहरे। वह पुस्तक उसने पुराण की तरह पेटी में रखा। फिर एक बार राजा की आज्ञा से उस पुरोहित ने राजसभा में उसे प्रकट किया (सुनाया)। उस समय सगर राजा ने पहले से कहा कि 'इस पुस्तक को पढ़ते हुए उसमें बताए हुए राजलक्षणों से जो रहित दिखे उन सबका वध करना योग्य और त्याज्य है।' फिर ज्यों ज्यों पुरोहित ने उस पुस्तक को पढ़ना शुरु किया त्यों त्यों उसमें बताए हुए लक्षण स्वयं में नहीं होने से मधुपिंग लज्जा पाने लगा। आखिर मधुपिंग वहां से उठ गया और सुलसा सगर राजा को वरी। तत्काल उनका विवाह हुआ और फिर सब अपने अपने स्थानक पर गये।

मधुपिंग अपमान होने से बालतप करके मृत्यु पाकर साठ हजार असुरों का स्वामी **महाकाल** नाम का असुर बना। उसने अवधिज्ञान से सुलसा के स्वयंवर में अपना अपमान होने के कारणभूत सगरराजा ने बनावटी (कृत्रिम) बनाया हुआ पूरा चरित्र जाना। इससे उसने विचार किया कि, 'सगरराजा को और अन्य राजाओं को मार डालूं।' फिर वह असुर उनका छिद्र देखते हुए घूमने लगा। एक बार उसने शुक्तिमती नगरी के पास शुक्तिमती नदी में पर्वत को देखा तो ब्राह्मण का वेश लेकर वह पर्वत के पास आया और कहा कि - 'हे महामति ! मैं **शांडिल्य** नाम का तेरे पिता का मित्र हूँ। पहले मैं और तेरे पिता क्षीरकदम्ब दोनों गौतम नाम के

बुद्धिमान उपाध्याय के पास साथ-साथ पढ़ते थे। इस समय नारद और अन्य लोगों ने तेरा अपमान किया है, ऐसी बात सुनकर मैं यहां आया हूँ। मैं मंत्रों से विश्व को मोहित करके तेरे पक्ष की पूर्ति किया करुंगा।' इस प्रकार कहकर वह असुर पर्वत के साथ रहकर दुर्गति में धकेलने के लिए कइं लोगों को कुधर्म में मोहित कर डाला। लोगों में सब जगह व्याधि और भूत वगैरह के दोष उत्पन्न करके पर्वत के मत को निर्दोष ठहराने लगा। शांडिल्य की आज्ञा से पर्वत रोग की शांति करने लगा और लोगों पर उपकार कर करके उन्हें अपने मत में स्थापित करने लगा। सगर राजा के नगर में, अंतःपुर में और परिवार में भी उस असुर ने अत्यंत दारुण रोग उत्पन्न किए। सगरराजा भी लोगों की प्रतीति से पर्वत को भजने लगा, तो उसने शांडिल्य के साथ रहकर सब जगह रोग की शांति की।

फिर शांडिल्य के कहने अनुसार पर्वत लोगों को उपदेश देने लगा कि, "**सौत्रामणि** यज्ञ में विधिपूर्वक सुरापान करने से दोष नहीं लगता इसलिए उसमें सुरापान करना, **गोसव** नाम के यज्ञ में अगम्या स्त्री के साथ गमन करना, **मातृमेध** यज्ञ में माता का वध और **पितृमेध** यज्ञ में पिता का वध अंतर्वेदी में करना, जिससे दोष नहीं लगता। कछुए के पृष्ठ पर अग्नि रखकर 'जुज्जकारव्याय स्वाहा' ऐसा बोलकर प्रयत्न से हुतद्रव्य द्वारा उसमें होम करना, यदि कछुआ न मिले तो गंजे, पीले वर्ण के, क्रियारहित और कुस्थान में अवतरित ऐसे किसी शुद्ध द्विजाति के (ब्राह्मणादिक), जल से पवित्र किए कूर्माकार[1] मस्तिष्क पर अग्नि को प्रदीप्त करके उसमें आहुति देनी, जो हो गया है और जो होगा वह सर्व पुरुष (ईश्वर) ही है, जो अमृत के स्वामी हुए हैं (मोक्ष पाए हैं) और जो अन्न से निर्वाह करते हैं वे सर्व ईश्वररुप ही हैं। इस प्रकार सब एक पुरुष (ईश्वर) रुप ही है। इसलिए कौन किसे मारता है ? यज्ञ में इच्छानुसार प्राणियों की हिंसा करनी और यज्ञ में यजमान को मांस का भक्षण करना, क्योंकि वह तो देवताओं के उपदेश से किया है और मंत्रादि से पवित्रित है।" इस प्रकार उपदेश देकर सगरराजा को अपने मत में मिलाकर उसने कुरुक्षेत्र वगैरह में कई यज्ञ कराये। उसके मत को थोडा थोडा फैलते ही उसने राजसूयादिक[2] यज्ञ भी कराये और उस असुर ने देवमाया से यज्ञ के करानेवालों को, यज्ञ में होमे हुए प्राणी या राजा वगैरह को विमान पर रहे दिखाए, जिससे भरोसा बैठते ही पर्वत के मत में रहकर लोग प्राणीहिंसात्मक यज्ञ निःसंदेहपूर्वक करने लगे।

यह सब देखकर मैंने दिवाकर नाम के एक विद्याधर को कहा, 'इन यज्ञों में से सब पशुओं को तुम्हें हर लेना है।' तो मेरा वचन मानकर वह यज्ञ में से पशुओं का हरण करने लगा। यह बात परम-अधार्मिक असुर के जानने में आयी, तो उसकी विद्या का घात करने के लिए उस

१. कछुए जैसे आकारवाला। २. जिसमें राजा का होम करना राजसूय यज्ञ।

महाकाल ने यज्ञ में ऋषभदेव की प्रतिमा स्थापित करना शुरु किया, वह दिवाकर खेचर विश्राम पा गया। फिर मैं उपाय कमजोर पड़ने से शांत होकर अन्यत्र चला गया। फिर उस असुर ने माया से यज्ञ में सगरराजा की भावना की और तत्काल सुलसा सहित सगरराजा को यज्ञ के अग्नि में होम दिया। इसके बाद वह महाकाल असुर कृतार्थ होकर अपने स्थानक पर गया। इस प्रकार पाप के पर्वतरुप उस पर्वत द्वारा याज्ञिक ब्राह्मणों ने हिंसात्मक यज्ञ प्रवर्तित किये हैं, जो आपको रोकने योग्य हैं।''

नारद के ऐसे वचन स्वीकार करके सत्कारपूर्वक उन्हें बिदा करके रावण ने मरुत्तराजा को क्षमा दी। मरुत्त रावण को शीष जुकाकर बोला, 'हे स्वामी ! यह कृपा का भंडार कौन पुरुष था कि जिसने इस पाप में से मुझे आपके पास निवृत्त करा दिया ?' उसके ऐसे प्रश्न से रावण नारद की उत्पत्ति कहने लगा -

''**ब्रह्मरुचि** नाम का एक ब्राह्मण था। वह तापस बना था। फिर भी उसकी **कूर्मि** नाम की स्त्री गर्भवती बनी। एक बार उसके घर साधू आए। उसमें से एक साधू बोला कि, 'आपने संसार के भय से गृहवास का त्याग किया यह तो बहुत अच्छा किया लेकिन दुबारा स्त्री का संग करके विषय में चित्त को लुब्ध करते हो तो गृहवास से यह वनवास किस प्रकार अच्छा कहा जाय ?' यह सुनकर ब्रह्मरुचि ने जिन शासन का स्वीकार करके दीक्षा ली और वह कूर्मी परम श्राविका बनी। मिथ्यात्व को छोड़कर वहीं रहकर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र ने जन्म समय रुदन नहीं किया था इसलिए उसका नाम **नारद** पड़ा। एक बार वह कूर्मी अन्यत्र गई थी, उस समय जृंभक देवताओं ने उसके पुत्र को हर लिया; तो पुत्रशोक से उसने **इंदुमाला** नाम की आर्या के पास जाकर दीक्षा ली। जृंभक देवताओं ने उस पुत्र का पालन किया और शास्त्र पढ़ाए। फिर क्रमानुसार उसे आकाशगामिनी विद्या दी। श्रावक के अणुव्रत धरकर वह पुत्र युवावस्था को प्राप्त हुआ। मस्तक पर शिखा रखने से वह यति या गृहस्थ नहीं गिना जाता। वह नारद कलह देखने का आकांक्षी है, गीत और नृत्य का शौखीन है, और सदैव कामदेव की चेष्टा से रहित होकर भी अति वाचाल और अति वत्सल है, वीर और कामी पुरुषों के बीच वह संधि और विग्रह कराता है। हाथ में छाता, अक्षमाला व कमंडल रखता है और पैरों मे पादुका पहनता है। देवों ने उसे पाला है इसलिए वह पृथ्वी पर **देवर्षि** के नाम से प्रसिद्ध है और प्रायः ब्रह्मचारी व स्वेच्छाचारी है।'' इस प्रकार नारद की बात सुनकर मरुत्त राजा ने **कनकप्रभा** नाम की अपनी कन्या रावण को दी और रावण उसके साथ ब्याहा।

पवन के जैसा बलवान और बड़े पराक्रमवाला रावण मरुत्त राजा के यज्ञ का भंग करके वहां से मथुरा नगरी को आया। मथुरा का राजा **हरिवाहन** शिव की तरह त्रिशूलधारी **मधु** नाम

के पुत्र के साथ रावण के सामने आया। भक्ति से हरिवाहन के साथ कुछ बात करने के बाद रावण ने पूछा, 'यह आपके पुत्र को त्रिशूल का आयुध कैसे ?' पिता ने भ्रूकुटी की संज्ञा से आज्ञा दी तो मधु मधुरता से बोला -

"इस त्रिशूल का आयुध मेरे पूर्व जन्म के मित्र **चमरेन्द्र** ने दिया है। इसे देते समय चमरेन्द्र ने कहा था कि - घातकीखंड द्वीप के ऐरावत क्षेत्र के शतद्वार नगर में **सुमित्र** नाम का एक राजपुत्र और **प्रभव** नाम का एक कुलपुत्र था। ये दोनों वसंत और मदन की तरह मित्र थे। वे बाल्यावस्था में एक गुरु के पास कलाभ्यास करते थे और अश्विनीकुमार की तरह अवियुक्तपूर्वक साथ साथ खेलते थे। जब सुमित्रकुमार युवा होकर उस नगर का राजा बना तब उसने अपने मित्र प्रभव को अपने समान समृद्धिवान बनाया। एक समय सुमित्र राजा अश्व द्वारा अपहृत होकर महाअरण्य में गया। वहां एक पल्लीपति की **वनमाला** नाम की पुत्री से ब्याहा। उसे लेकर राजा अपने नगर में आया तो उत्कट रुपयौवनवाली वह वनमाला प्रभव को नज़र आयी। उसका दर्शन हुआ तब से क़ामपीडित होते हुए प्रभव कृष्ण पक्ष के चन्द्र की तरह दिनप्रतिदिन कृश होने लगा। उसे मन्त्र-तन्त्र से असाध्य रुप में अति कृश होते जानकर राजा सुमित्र ने कहा, 'हे बंधु ! तेरे दिल में जो चिंता या दुःख हो वह स्पष्ट रुप में कह दे।' प्रभव ने कहा, 'हे विभु ! वह कह सका जाय ऐसा नहीं है; क्योंकि वह मन में रहा है तो भी कुल को कलंकित करता है।' जब राजा ने अति आग्रह से पूछा तो वह बोला, 'तुम्हारी रानी वनमाला पर का अनुराग ही मेरी देह की दुर्बलता का कारण है।' राजा ने कहा, 'तेरे लिए तो इस राज्य का भी त्याग करुं तो यह स्त्री क्या मात्र है ? आज से वह स्त्री ग्रहण कर।' इस प्रकार कहकर उसे बिदा करके उसके पीछे ही रात्रि के प्रारंभ में स्वयंदूती की तरह वनमाला को उसके घर भेजी। उसने आकर प्रभव को कहा, 'आपको दुःखी देखकर राजा ने मुझे आपको सौंप दिया है। इसलिए आप मेरा जीवन बनकर मुझे आज्ञा दो। मुझे पति की आज्ञा बलवान है। मेरे स्वामी आपके लिए प्राण न्योछावर करने को भी तैयार है तो मेरे जैसी दासी क्या मात्र है ? तो अब आप उदास होकर क्यों देखते हो ?' प्रभव बोला, 'अरे ! मुज निर्लज्ज को धिक्कार है। वह सुमित्र महासत्त्ववान है कि जिसका मेरे पर ऐसा सौहृद (मित्र) है। दूसरे को प्राण दिए जाते हैं लेकिन प्रिया नहीं दी जाती, क्योंकि यह महादुष्कर है। फिर भी उस मित्र ने इस समय मेरे लिए ऐसा किया भी ! पिशुन[1] की तरह मुझ जैसे को कुछ नहीं कहने योग्य या नहीं मागने योग्य नहीं है। और कल्पवृक्ष की तरह उस सुमित्र जैसे पुरुषों को कुछ भी नहीं देने योग्य कुछ नहीं है। इसलिए हे वनमाला ! आप मेरी माता समान हो इसलिए यहां से चली जाओ, और अब पति की आज्ञा होते हुए भी इस पापराशि[2] मनुष्य के सामने देखना मत और उसे बुलाना भी मत।' ये सब वचन वहां गुप्त रुप

१. दुर्जन अथवा चुगलखोर। २. पाप का ढेर, पापमूर्ति

से आया राजा सुन रहा था, जिससे वह अपने मित्र का ऐसा सत्त्व देखकर अत्यंत हर्ष पाया। फिर प्रभव ने वनमाला को नमस्कारपूर्वक बिदा करके एक दारुण खड्ग ताना और अपने मस्तक का छेदन करने लगा। तो राजा सुमित्र ने प्रकट होकर 'हे मित्र ! साहस मत कर।' यूं कहकर उसके हाथ में से खड्ग खींच लिया। उस समय मानो पृथ्वी में घूसना चाहता हो त्यों प्रभव लज्जा से नीचा मुख करके खड़ा रहा। सुमित्र ने उसे बहुत प्रयत्न से स्वस्थ बनाया। फिर दोनों मित्र पूर्व की भाँति मैत्री रखकर राज्य करने लगे। कुछ समय बाद सुमित्र दीक्षा लेकर मृत्यु पाकर **इशान** देवलोक में देव बना। वहां से च्यूत होकर इस मथुरा के राजा हरिवाहन की माधवी नाम की स्त्री के उदर से तू **मधु** नाम का पराक्रमी पुत्र हुआ है। वह प्रभव चिरकाल भवभ्रमण करके विश्वावसु की ज्योर्तिमति नाम की स्त्री से **श्रीकुमार** नाम का पुत्र हुआ था और उस भव में संकल्पसहित तप करके कालक्रमानुसार मृत्यु पाकर यह मैं चमरेन्द्र हुआ हूँ। इस प्रकार तेरे पूर्वभव का मैं मित्र हूँ। इस प्रकार पूरा वृत्तांत कहकर उसने मुझे यह त्रिशूल दिया है। यह त्रिशूल दो हजार योजन तक जाकर कार्य करके वापस लौटता है।''

इस प्रकार उसका वृत्तांत सुनकर रावण ने भक्ति और शक्ति से बिराजित ऐसे उस मधुकुमार को अपनी **मनोरमा** नाम की एक कन्या दी। फिर लंका के प्रयाणदिन से अट्ठारह वर्ष बीत गये तब रावण सुवर्णगिरि[1] पर रहे पांडुक वन मे चैत्यों की पूजा करने के लिए गया। वहां बडी धामधूम के साथ संगीतयुक्त पूजा के महोत्सव द्वारा रावण ने उत्कंठा से सर्व चैत्यों की वंदना की। उस समय दुर्लंघ्यपुर में रहे इन्द्र राजा के पूर्व दिक्पाल **नलकुबर** को पकडने के लिए कुंभकर्ण वगैरह रावण की आज्ञा से गये। वहां उस नलकुबर ने **आशाली** विद्या द्वारा अपने नगर के चारोंओर सो योजन तक अग्निमय किला करवाया था, और उसमें ऐसे अग्निमय यंत्र लगाए थे कि जिसमें से निकलते अग्निकण आकाश में मानो अग्नि उत्पन्न करते हो ऐसे दिखते थे। ऐसे किल्ले का आधार लेकर कोप से प्रज्वल्लित अग्निकुमार की तरह वह नलकुबर सुभटों से घिरे हुए था। सोकर उठे हुए पुरुष ज्यों ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकाल के सूर्य को नहीं देख सकते, त्यों कुंभकर्ण वगैरह भी वहां आकर उस किल्ले के सामने नहीं देख पाए। 'यह दुर्लंघ्यपुर सचमुच दुर्लंघ्य है' ऐसा मानकर वे उत्साहभंग होकर वापस लौटे और किसी तरह उन्होंने ये समाचार रावण को पहुँचाए। यह सुनकर रावण स्वयं वहां आया और उसने ऐसा किल्ला देखकर उसको लेने के उपाय के लिए बंधुओं के साथ विचार करने लगा।

उस समय रावण पर अनुराग बनी नलकुबर की पत्नी **उपरंभा** ने एक दूती को भेजा। उसने आकर रावण को कहा, ''मूर्तिमंती जयलक्ष्मी जैसी उपरंभा आपके साथ क्रीडा करना

१. मेरुपर्वत

चाहती है, आपके गुणों ने उसका मन हर लिया है। सिर्फ शरीर ही वहां रहा है। हे मानद् ! इस किल्ले का रक्षण करनेवाली आशाली नाम की विद्या है वह उपरंभा अपने शरीर की तरह आपके अधीन कर देगी, जिससे आप इस नगर को नलकुबर सहित अधीन कर लोगे। और हे देव ! यहां सुदर्शन नामक एक चक्र भी आप साध्य करोंगे।'' रावण ने हास्य के साथ वीभीषण के सामने देखा तो 'एवंमस्तु' यूं कहकर उसने उस दूतिका को बिदा किया। फिर रावण ने क्रोध लाकर वीभीषण को कहा, ''अरे ! ऐसा कुलविरुद्ध कार्य तूने क्यूं स्वीकारा ? अरे मूढ़ ! हमारे कुल में किसी पुरुष ने रणभूमि में शत्रुओं को पृष्ठ और परस्त्री को हृदय कभी भी नहीं दिया है। अरे विभीषण ! ऐसे वचन से भी तूने हमारे कुल में नवीन कलंक लगाया है ! तेरी ऐसी मति क्यों हुई कि जिससे तू ऐसा बोला ?'' विभीषण ने कहा, ''हे आर्य महाभुज ! प्रसन्न बनो। शुद्ध हृदयवाले पुरुषों को वाणीमात्र से कलंक नहीं लगता। यह उपरंभा भले ही आये और आपको विद्या भी दे। शत्रु आपके वशं हो तो भी आप उसे स्वीकार करना नहीं। वाणी की युक्ति से उसे छोड देना।'' विभीषण के ऐसे वचन रावण ने स्वीकारे, उतने में तो उसे आलिंगन करने में लंपट ऐसी उपरंभा वहां आ पहुँची। अपने पति ने नगर के किल्लेरुप साधी हुई अशाली विद्या उसने रावण को दी और इसके अलावा अन्य व्यंतररक्षित अमोघ शस्त्र भी दिए। फिर रावण ने उस विद्या से वह अग्नि का प्राकार (किल्ला) संहर लिया और सेना तथा वाहन सहित दुर्लंघ्यपुर में प्रवेश किया।

नलकुबर तत्काल तैयार होकर युद्ध करने के लिए आया; लेकिन हाथी ज्यों चमडे की फूंकनी को पकड ले त्यों विभीषण ने उसे सरलता से पकड लिया। सुर और असुरों से अजेय ऐसा इन्द्र संबंधित महा दुर्धर सुदर्शन चक्र रावण को वहां से प्राप्त हुआ। फिर नलकुबर रावण के कदमों मे गिर पड़ा तो रावण ने उसे उसका नगर वापस सौंप दिया। क्योंकि पराक्रमी पुरुष जैसे विजय के अर्थी होते हैं वैसे द्रव्य के अर्थी नहीं होते। फिर रावण ने उपरंभा को कहा, ''हे भद्रे ! मेरे साथ विनयपूर्वक आचरण करनेवाले और तेरे कुल को योग्य ऐसे तेरे पति को ही तू स्वीकार ले; क्योंकि मुझे तूने विद्यादान किया इसलिए तू तो मेरे गुरुस्थान पर है। और परस्त्रियों को मैं माता व बहन के स्थान पर देखता हूँ। तुं कासध्वज की पुत्री है, और सुंदरी के उदर से उत्पन्न हुई है तो दोनों कुल में शुद्ध ऐसी तुझे कलंक न लगे।'' इस प्रकार कहकर उसे नलकुबर राजा को सौंपा। मानो नाराज होकर पिता के घर गई हुई स्त्री निर्दोषरुप में वापस लौटे त्यों वह वापस आयी। राजा नलकुबर ने रावण का बड़ा सत्कार किया।

फिर वहां से रावण की सेना के साथ वह रथनूपुर नगर आया। रावण को आया सुनकर महाबुद्धिमान सहस्रार[1] राजा ने अपने पुत्र इन्द्र प्रति स्नेहपूर्वक कहा, ''हे वत्स ! तेरे जैसा बडा

१. पहले सहस्रार राजा ने दीक्षा लेने का अधिकार आ गया है लेकिन वह इस युद्ध होने के बाद की हकीकत समजनी

पराक्रमी पुत्र जन्म लेकर दूसरे वंश की उन्नति न्यून करके हमारे वंश को परम उन्नति प्राप्त कराई है। यह सब तूने अकेले ही पराक्रम से किया है। लेकिन अब उस नीति को भी हमें छोडना चाहिए। कोई बार एकांत पराक्रम विपत्ति को भी देता है। अष्टापद वगैरह बलिष्ठ प्राणी एकांत पराक्रम से विनाश पाते हैं। यह पृथ्वी सदैव बलवान से भी अति बलवान वीरों को उत्पन्न करती है, इसलिए 'मैं सब से विशिष्ट पराक्रमी हूँ' ऐसा अहंकार किसिको भी करना नहीं चाहिए। इस समय सुकेश राक्षस के कुल में सूर्य समान लंकापति रावण नाम का एक वीर उत्पन्न हुआ है जो सब के वीरत्व को हरनेवाला है, प्रताप में सूर्य समान है और सहस्रांशु जैसे वीर को अधीन करनेवाला है। और उसने लीलामात्र में कैलाश[1] पर्वत उठाया था। मरुत्त राजा के यज्ञ का ध्वंस किया था। और जंबूद्वीप के पति यक्षराज से भी उसका मन क्षोभित नहीं हुआ था। अर्हंत प्रभु के पास अपनी भुजवीणा द्वारा गायन करता हुआ देखकर संतुष्ट बने धरणेन्द्र ने उसे अमोघ शक्ति दी है; और प्रभु मंत्र तथा उत्साह ये तीनों शक्तियों से वह उर्जित (सहित) है। फिर भी मानो उसकी दो भुजाएं हो ऐसे उसके समान दो भाई (कुंभकर्ण और विभीषण) से वह उत्कट है। इस रावण ने तेरे सेवक वैश्रवण को तथा यम को क्षणमात्र में भग्न कर दिया हैं। वाली के भाई वानरपति सुग्रीव को अपना पत्ति (सहायक) बनाया हैं; और जिसके आस-पास अग्नि का दुर्लंघ्य किल्ला था ऐसे दुर्लंघ्यपुर में प्रवेश करके उसके अनुज भाई ने नलकुबर को कब्जे किया है। ऐसा वह वीर रावण इस समय तेरे सामने आया है; तो प्रलयकाल के अग्नि समान वह उद्धत रावण प्रणिपात रुपी अमृतवृष्टि से शांत हो जायेगा। इसके सिवा वह शांत नहीं होगा। तेरी **रुपवती** नाम की स्वरुपवान पुत्री का रावण के साथ ब्याह करा; जिससे ऐसा संबंध बंधने से तेरी उसके साथ उत्तम संधि होगी।" पिता के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र कोप करके बोला, "हे पिता ! वध करने लायक इस रावण को मैं मेरी कन्या किस प्रकार दूँ ? क्योंकि मेरा उसके साथ आधुनिक बैर नहीं है लेकिन वंशपरंपरा का बैर है। पिता विजयसिंह को उसके पक्ष के राजा ने मार डाला था वह याद करो। उसके पितामह माली के साथ मैंने जो किया था वह इसके साथ भी करुंगा। वह भले ही आये, वह कौन मात्र है ? आप स्नेह के कारण डरो मत। स्वाभाविक धैर्य धारण करो। आपने आपके पुत्र का पराक्रम कइं बार देखा है, क्या आप मेरे पराक्रम को जानते नहीं है ?" इस प्रकार इन्द्र कह रहा था कि दुर्धर रावण ने रथनुपूर नगर मे आकर अपनी सेना से उस नगर को घेर लिया। महा पराक्रमी रावण ने पहले दूत भेजा। उस दूत ने मीठे वचनों से इन्द्र को कहा, "जो राजा विद्या और भूजबल से गर्विष्ठ थे उन सबने आकर नज़राना देकर रावण की पूजा की है। रावण की विस्मृति से और तुम्हारी सरलता से इतना काल बीत गया। लेकिन अब भक्ति बताने का आपका समय है। इसलिए

१. अष्टापद पर्वत

इसके प्रति भक्ति बताओ या शक्ति बताओ। यदि भक्ति और शक्ति दोनों से रहित हो जाओगे तो ऐसे ही विनाश पा जाओगे।'' इन्द्र बोला, ''दीन राजाओं ने उसको पूजा जिससे वह रावण मत्त हो गया है। इसलिए वह मुझ से भी पूजा की वांछना करता है। लेकिन इतना काल तो रावण को ज्यों त्यों सुख से बीता। परंतु अब उसका यह कालरुपी काल आया है। इसलिए तू जाकर तेरे स्वामी को कह कि वह भक्ति या शक्ति दिखाए। यदि शक्ति या भक्ति से रहित होगा तो वह जलदी ही विनाश पा जायेगा।'' दूत ने आकर रावण को इस प्रकार कहा तो रावण क्रोध से भयंकर बनकर बडे उत्साह से पूरे सैन्य के साथ गया। इन्द्र भी तैयार होकर शीघ्रता से रथनुपूर नगर में से बाहर नीकला। क्योंकि वीर लोग दूसरे वीर के अहंकार या आडंबर को सहन नहीं कर सकते।

फिर सामंतो के साथ सामंत, सैनिकों के साथ सैनिक और सेनापतियों के साथ सेनापति - यूं दोनों सैन्य का परस्पर युद्ध प्रारंभ हुआ। शस्त्र बरसाते दोनों सैन्य के बीच संवर्त और पुष्करावर्त मेघ की भाँति बडा संघर्ष हुआ। फिर 'ये बेचारे मच्छर समान सैनिकों को मारकर क्या करना ?' यूं कहते हुए रावण **भुवनालंकार** नाम के गजेन्द्र पर चढ़कर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर **ऐरावत** हाथी पर सवार इन्द्र के सामने आया। रावण और इन्द्र के हाथी परस्पर मुख में सूंढ लिपटाकर मानो नागपाश रचते हो त्यों आमने-सामने मिले। दोनों महाबलवान गजेन्द्र दांतों से दांत पर परस्पर प्रहार करके अरणि काष्ठ के मंथन की तरह उसमें से अग्नि की चिनगारियां उडाने लगे। परस्पर दांत के आघात से, विरहिणी स्त्री के हाथ में से निकल पडे त्यों सुवर्ण वलय की श्रेणी उसमें से निकलकर पृथ्वी पर गिरने लगी। परस्पर दांत के घात से छेदे गये शरीर में से, गंडस्थल में से मदधारा की तरह रुधिरधारा बहने लगी। इस अवसर पर रावण और इन्द्र भी क्षणभर शल्यों से, क्षणभर बाणों से और क्षणभर मुदगरों से मानो दूसरे दो हाथी हो त्यों आमनेसामने प्रहार करने लगे। वे दोनों महा बलवान थे, इसलिए वे एक-दूसरे के अस्त्रों को अस्त्रों से चूर्ण करते थे। यूं पूर्व और पश्चिम सागर की तरह उनमें से एक भी हीन न हुआ, और रणरुप यज्ञ में दीक्षित बने वे दोनों बाध्य और बाधकता को करनेवाले उत्सर्ग तथा अपवाद मार्ग की तरह मंत्रास्त्र से एक दूसरे के अस्त्र को तत्काल बाधा पहुंचाते हुए युद्ध करने लगे। जब ऐरावत और भुवनालंकार - वे दोनों हाथी एक डंठल में रहे दो फलों की तरह गाढरुप से मिल गये तब छल को जाननेवाला रावण अपने हाथी पर से उछलकर ऐरावत पर कूद पड़ा और उसके महावत को मारकर बडे हाथी की भाँति इन्द्र को बांध लिया। फिर मधुछत्ते को मधुमक्खियों की तरह राक्षसवीरों ने हर्षपूर्वक उग्र कोलाहल करके चारों ओर से उस हाथी को घेर लिया। अर्थात् उसके चारोओर छा गये। रावण ने इन्द्र को पकड लिया तब उसका पूरा सैन्य उपद्रवित हो गया। क्योंकि स्वामी जीत जाने से सैन्य भी जीत जाता है।

फिर रावण ऐरावत हस्ती सहित इन्द्र को अपनी छावनी में ले गया और स्वयं वैताढ्य की दोनों श्रेणीयों का नायक बना। वहां से वापिस लौटकर रावण तत्काल लंका में गया और काष्ठ के पिंजरे में तोते को डाले त्यों इन्द्र को कारागृह में डाला। यह खबर मिलते ही इन्द्र का पिता सहस्रार दिक्पालो सहित लंका में आया और रावण को नमस्कार करके एक सेवक की तरह अंजलि जोड़कर बोला, "जिसने एक पाषाण के खण्ड की तरह कैलास पर्वत को धारण किया था ऐसे आपके समान पराक्रमी वीर से जीते जाने पर हमें जरा सी भी लज्जा नहीं आती, क्योंकि आपके समान वीर के पास याचना करने से भी हमको बिलकुल शरमाना पडे ऐसा नहीं है। इसलिए मैं याचना करता हूँ कि इस इन्द्र को छोड़ दीजिए और मुझे पुत्रभिक्षा दीजिए।" रावण बोला, "यदि वह इन्द्र उसके दिक्पाल व परिवार सहित निरंतर इस प्रकार का काम करना कबूल करे तो मैं उसे छोड दूं । सुनिये-

मेरी इस लंकापुरी को क्षण क्षण पर निवासगृह की भूमि की तरह तृण काष्ठ वगैरह कचरे से रहित कर दे। नित्य प्रातःकाल में मेघ की तरह इस नगरी को दिव्य सुगंधित जल से सिंचित करे और सब देवालयों में माली की तरह पुष्प चुनकर और गूंथकर उसकी मालाएं बनाकर भेजे। इस प्रकार नित्य कार्य करते हुए तुम्हारा यह पुत्र दुबारा राज्य ग्रहण करे और मेरी कृपा से आनंद पाए।" फिर 'इस प्रकार मेरा पुत्र करेगा' ऐसा जब सहस्रार ने कबूल किया तब रावण ने अपने बंधु की तरह सत्कार करके इन्द्र को छोड़ दिया। फिर इन्द्र रथनुपूर में आकर बड़े उद्वेग से रहने लगा क्योंकि तेजस्वी पुरुषों का निस्तेज होना मृत्यु से भी दुःसह है।

इतने में **निर्वाणसंगम** नामक एक ज्ञानी मुनि वहां पधारे। यह सुनकर इन्द्र उनकी वंदना के लिए आया। इन्द्र ने पूछा, 'भगवन् किस कर्म से मैं रावण के इस तिरस्कार को प्राप्त हुआ हूँ यह बताइए।' मुनि बोले, "अरिंजय नाम के नगर में पहले **ज्वलनसिंह** नाम का एक विद्याधरों का राजा था। उसकी **वेगवती** नाम की प्रिया थी। उन्हें एक **अहिल्या** नाम की रुपवती दुहिता (पुत्री) हुई। उसके स्वयंवर में विद्याधरों के सब राजा एकत्रित हुए। उसमें चन्द्रावर्त नगर का राजा **आनंदमाली** और सूर्यावर्त नगर का स्वामी **तडित्प्रभ** भी आए थे। वह तडित्प्रभ तू स्वयं ही था। तुम दोनो साथ आये थे फिर भी तेरा त्याग करके अहिल्या उसकी स्वेच्छा से आनंदमाली को वरी। जिससे तेरा पराभव हुआ। तब से 'मैं होने पर भी अहल्या उसे क्यों वरी' ऐसी ईर्षा आनंदमाली पर तुझे हुई।

एक बार इस संसार पर वैराग्य होने से आनंदमाली ने दीक्षा ली और तीव्र तपस्या करते हुए वह महर्षियों के साथ विहार करने लगा। एक बार विहार करते हुए वह रथावर्त गीरि पर आया और ध्यान में स्थित हुआ। वहां वह तुझे नजर आया तो तुझे अहल्या के स्वयंवर का

स्मरण हुआ। जिससे तूने तत्काल उसे बांध लिया। और अनेक प्रकार के प्रहार किए। फिर भी वह पर्वत की भाँति जरा सा भी ध्यान से चलित नहीं हुआ। उस समय **कल्याण** गणधर नाम का उसका भाई जो साधुओं में अग्रणी था और जो उसके साथ ही था उसने तूजे ऐसा करते देखकर वृक्ष पर विद्युत की तरह तेरे पर तेजोलेश्या छोडी। कुछ समय में तेरी पत्नी सत्यश्री ने भक्तिवचन से उन मुनि को शांत किया। जिससे उन्होंने तेजोलेश्या वापस खींच ली। जिससे तू जला नहीं; पर मुनितिरस्कार के पाप से कइं भव में परिभ्रमण करके किसी भव में शुभ कर्म उपार्जित करके तू इस सहस्रार का पुत्र **इन्द्र** हुआ है। इस रावण से तेरा जो पराभव हुआ है वह उस महामुनि के तिरस्कार और प्रहार करने के कर्म का फल तुझे प्राप्त हुआ है। इन्द्र से लेकर एक कीडे तक सबको चिरकाल तक अपने किए हुए कर्म अवश्य फल देते हैं, ऐसी संसार की स्थिति है।'' इस प्रकार अपना पूर्व वृत्तांत सुनकर इन्द्र ने अपने पुत्र **दत्तवीर्य** को राज्य देकर दीक्षा ली और उग्र तप करके मोक्ष गये।

एक बार रावण **स्वर्णतुंग गिरि** पर जिन्हे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे **अनंतवीर्य** नाम के मुनि की वंदना करने गया। वंदना करके रावण योग्य स्थान पर बैठा और कान को अमृत की नहर जैसी उनकी धर्मदेशना सुनी। देशना के अंत में रावण ने पूछा, 'मेरा मरण किस कारण से और किससे होगा ?' भगवान महर्षि बोले, 'हे रावण ! भविष्य में होनेवाले वासुदेव के हाथ से परस्त्री के दोष से प्रतिवासुदेव ऐसे तेरी मृत्यु होगी।' यह सुनकर रावण ने तत्काल उन्ही मुनि से ऐसा अभिग्रह लिया कि 'मुझे नहीं चाहती परस्त्री के साथ मैं कदापि क्रीडा नहीं करुंगा।' फिर ज्ञानरत्न के सागर ऐसे उन मुनि की वन्दना करके रावण पुष्पक विमान में बैठकर अपनी नगरी में आया और अपने नगर की स्त्रियों के नेत्ररुपी नीलकुमुद को हर्ष-वैभव देने में चन्द्र समान बना।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये
सप्तमे पर्वणि रावणदिग्विजयो नाम द्वितियः सर्गः॥२॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

तृतीय सर्ग

हनुमान की उत्पत्ति और वरुण का साधन

वैताढ्य गिरि पर बसे **आदित्यपुर** नाम के नगर में **प्रह्लाद** नाम का एक राजा था। उसे केतुमती नाम की रानी थी। उनको **पवनंजय** नाम का एक पुत्र हुआ जो बल में और आकाशगमन में पवन जैसा विजयी था। उस समय में भरतक्षेत्र में समुद्र के किनारे स्थित दंती पर्वत पर **माहेन्द्रपुर** नाम के नगर में **महेन्द्र** नाम का विद्याधरों का एक राजा था। उसकी **हृदयसुंदरी** नाम की पत्नी थी। उनको **अरिंदम** वगैरह सो पुत्रो के बाद **अंजनासुंदरी** नाम की एक पुत्री हुई थी। जब वह बाला उत्कट यौवन को प्राप्त हुई तब उसके पिता को वर की चिंता होने पर सचिव उसके लायक ऐसे हजारों युवा विद्याधरों के नाम देने लगे। फिर महेन्द्र की आज्ञा से वे सचिव अनेक विद्याधरों के कुमारों का वास्तविक स्वरुप पट पर अलग अलग अंकित करवाकर, मंगवाकर दिखाने लगे।

एक बार किसी सचिव ने विद्याधरपति **हिरण्याभ** और उसकी पत्नी **सुमना** के उदर से उत्पन्न हुए **विद्युत्प्रभ** नाम के विद्याधर का और प्रह्लाद राजा के पुत्र पवनंजय का मनोहर स्वरुप चित्र में अंकित करके महेन्द्र राजा को दिखाया। वे दोनों रुप देखकर महेन्द्र ने सचिव को पूछा, 'ये दोनों समान रुपवाले और कुलीन हैं इसलिए इन दोनों में से कुमारी अंजनासुंदरी के लिए कौनसा वर पसंद करना चाहिए ?' सचिव बोले, 'हे स्वामी ! यह विद्युत जैसी प्रभावाला विद्युत्प्रभ अट्ठारह वर्ष का आयुष्य पूरा करके मोक्ष जानेवाला है। ऐसा निमित्तियों ने मुझे स्पष्ट कहा है और यह प्रह्लाद का पुत्र पवनंजय दीर्घ आयुष्यवाला है, इसलिए पवनंजय योग्य वर है तो अंजनासुंदरी उसे दीजिए।'

उस समय में सर्व विद्याधरेन्द्र अपना अपना परिवार लेकर बड़ी समृद्धि के साथ नंदीश्वर द्वीप की यात्रा के लिए जा रहे थे; उसमें महेन्द्र राजा को आया देखकर प्रह्लाद ने कहा कि, 'आपकी पुत्री अंजनासुंदरी मेरे पुत्र पवनंजय को दीजिए।' महेन्द्र ने वह बात स्वीकारी; क्योंकि प्रथम से ही यह विचार उसके हृदय में था, प्रह्लाद की प्रार्थना तो निमित्त मात्र ही थी। फिर 'आज से तीसरे दिन पर मानस सरोवर पर विवाह करना' ऐसा तय करके वे दोनों अपने अपने स्थानक पर गये।

फिर महेन्द्र और प्रह्लाद ने आह्लादपूर्वक सर्व सज्जनो को लेकर मानस सरोवर के किनारे जाकर निवास किया। इस प्रसंग पर पवनंजय ने प्रहसित नाम के अपने मित्र को पूछा कि, 'अंजनासुंदरी कैसी होगी ? तुमने देखी है ?' प्रहसित मुस्कुराकर बोला, 'मैंने उसे देखी है। अंजनासुंदरी रंभादिक अप्सराओं से भी बढ़कर सौंदर्यवान है। उसका निरुपम रुप जैसा दृष्टि

से देखा जाय वैसा वचन से भी वाचाल मनुष्य कह सके यूं नहीं है।' पवनंजय बोला, 'मित्र ! अभी विवाह का दिन दूर है और मुझे आज ही उस सुंदरी को दृष्टिगोचर करने की इच्छा है, तो यह कार्य किस प्रकार करना ? प्यारी स्त्री में उत्कंठित बने पुरुषों को एक घडी दिन जैसी और एक दिन माह समान बन पडता है, तो मेरे ये तीन दिन किस प्रकार बीतेंगे ?' प्रहसित बोला, 'मित्र ! स्थिर हो, रात्रि में हम अनुपलिक्षत[1] होकर वहां जाएंगे और उस कांता को देखेंगे।' फिर उस रात पवनंजय प्रहसित को साथ लेकर वहां से उडकर अंजनासुंदरी जहां महल में सातवी मंजिल पर रहती थी वहां आया। राजस्पर्श[2] की तरह गुप्त रहकर पवनंजय मित्र के साथ उस अंजनासुंदरी को अच्छी तरह से निरखने लगा। उस समय वसंततिलका नाम की उसकी सखी अंजनासुंदरी को कह रही थी कि, 'सखी ! तुझे धन्य है कि पवनंजय जैसा पति पाया।' यह सुनकर मिश्रका नाम की दूसरी सखी बोल उठी, 'अरे सखी ! विद्युत्प्रभ जैसे उत्तम वर को छोड़कर दूसरे वर की प्रशंसा क्यों करती है !' वसंततिलका ने कहा, 'अरे मुग्धा ! तू कुछ भी नहीं जानती। विद्युत्प्रभ अल्प आयुष्यवाला है, जिससे वह हमारी स्वामिनी के योग्य कैसे हो ?' मिश्रका बोली, 'सखी ! तुं मंदबुद्धिवाली लगती है। अमृत थोड़ा हो तो भी वह श्रेष्ठ है और विष बहुत हो तो भी कुछ काम का नहीं है।'

इस प्रकार उन दोनों सखियो का परस्पर आलाप सुनकर पवनंजय सोचने लगा कि 'वह विद्युत्प्रभ अंजनासुंदरी को प्रिय लगता है, इसलिए इन सखियों को वह कहते हुए रोकती नहीं है।' इस प्रकार सोचकर अंधकार में ज्यों अचानक निशाचर प्रकट हो त्यों पवनंजय क्रोध से खड्ग तानकर प्रकट हुआ और बोला कि, 'उस विद्युत्प्रभ को वरने का और उसके साथ ब्याह कराने का जिसको ठीक लगा है उन दोनों का मस्तक उड़ा दूं।' यूं बोलते हुए पवनंजय रोषपूर्वक उस तरफ चला। तो उसके बाहुदण्ड को पकड़ रखकर प्रहसित बोला, 'अरे मित्र ! क्या तू नहीं जानता कि स्त्री अपराधी हो तो भी गाय की तरह वध करने योग्य नहीं है ? उसमें भी यह अंजनासुंदरी तो निरपराधी है। वह तो सिर्फ लज्जा के कारण उसकी सखियों को बोलते हुए रोकती नहीं है, जिससे वह कुछ अपवादवाली नहीं गिनी जाती।' इस प्रकार कहकर प्रहसित ने अत्याग्रहपूर्वक उसे रोका, तो पवनंजय वहां से उड़कर अपने आवास में आया और पूरी रात दुःखी हृदय से जागृतपने में ही व्यतीत की। प्रातःकाल में पवनंजय ने अपने मित्र प्रहसित को कहा, 'मित्र ! इस स्त्री से ब्याह कुछ काम का नहीं है। क्योंकि एक सेवक भी यदि विरक्त होता है तो वह आपत्ति के लिए होता है, तो स्त्री की बात क्या करनी ! इसलिए चलो, हम इस कन्या का त्याग करके यहां से हमारी नगरी में जाए। क्योंकि जो अपनी आत्मा को पसंद नहीं वह स्वादिष्ट भोजन हो तो भी क्या काम का !' इस प्रकार कहकर पवनंजय जाने लगा। प्रहसित

१. कोई न पहचाने उस प्रकार। २. गुप्त राजपुरुष।

उसे पकड रखकर साम वचन से समझाने लगा कि, "स्वयं कबूल किए कार्य का भी उल्लंघन करना महान पुरुषों को शोभा नहीं देता, तो जो कार्य अनुलंघ्य ऐसे गुरुजनों ने कबूल किया हो उसका उल्लंघन करने की तो बात ही कैसी ! गुरुजन मूल्य से बेच दे या प्रसाद से दे दे तो भी वह सत्पुरुषों को प्रमाण है। उसके लिए दूसरी गति ही नहीं। फिर इस अंजनासुंदरी में तो लेषमात्र दोष नहीं है, और सहृदजन का हृदय ऐसे दोष के आरोप से दूषित हो ऐसा है और तेरे और उसके माता-पिता महात्मा के रुप में प्रसिद्ध हैं, फिर भी हे भ्राता ! तू स्वच्छंद वृत्ति से यहां से चले जाने का विचार करते हुए क्यों लज्जा नहीं पाता ? तूझे क्या उन्हे लज्जित करना हैं ?" इस प्रकार प्रहसित के कहने से पवनंजय थोडा विचार करके हृदय में शल्य होने पर भी वहां रहा। फिर तय किए गये दिन पर पवनंजय और अंजजासुंदरी का पाणिग्रहण महोत्सव हुआ, जो उनके मातापिता के नेत्ररुप कुमुद को चन्द्र जैसा आह्लाददायी लगा।

फिर महेन्द्र ने स्नेह से पूजा हुआ प्रह्लाद सर्व स्वजन के साथ उस वधू-वर को लेकर हर्षपूर्वक अपने नगर में आया। वहां प्रह्लाद ने अंजनासुंदरी को पृथ्वी पर स्थित विमान जैसा एक सात मंजिल का सुंदर महल रहने को दिया; परंतु पवनंजय ने तो वाणी से भी अंजनासुंदरी की संभाल नहीं ली, क्योंकि मानी पुरुष अपने अपमान को ज्यों-त्यों नहीं भूल जाते। अंजनाकुमारी चंद्र बिना की रात्रि समान पवनंजय बिना नेत्राश्रु द्वारा अंधकारवाला मुख बनाकर अस्वस्थता का पात्रभूत बनकर रहने लगी। बार बार पलंग पर दोनों करवटों को पछाडती उस बाला की रात्रियां वर्ष जितनी लंबी हो गई। अनन्य मनवाली अंजनासुंदरी दो जानु के बीच मुखकमल रखकर पति का ही आलेखन करते हुए दिन निर्गमन करने लगी। सखियां उसे बार बार मीठे वचन से पुकारती, फिर भी हेमंत ऋतु में कोयल की तरह वह अपना मौनपना नहीं छोड़ती थी।

यूं कुछ काल व्यतीत होने पर एक बार राक्षसपति रावण के दूत ने आकर प्रह्लाद राजा को कहा, "दुर्मति **वरुण** रावण के साथ निरंतर बैर रख रहा है और प्रणिपात स्वीकार नहीं करता। जब उसके पास नमस्कार करने की याचना की तब अहंकार का बड़ा पहाड और अनिष्ठ वचन बोलनेवाला वह वरुण नेत्र से अपने भुजदण्ड से देखते हुए इस प्रकार बोला, 'अरे ये रावण कौन है ? और उससे क्या होनेवाला है ? मैं इन्द्र, वैश्रवण, नल-कुबर, सहस्त्रांशु, मरुत्त, यमराज या कैलासगिरि नहीं हूं, मैं तो वरुण हूँ। कदापि देवताधिष्ठित रत्नों से वह दुर्मति रावण गर्विष्ठ हुआ हो तो भले ही यहां आये, उसके चिरकाल से इकट्ठे हुए गर्व को मैं पलभर में हर लूंगा।' उसके ऐसे वचन सुनकर रावण ने क्रोध पाकर उस पर चढ़ाई की और समुद्र की बेल किनारे पर के गिरि पर ज्यों छा जाए त्यों उसके नगर को सेना से छा दिया। तो वरुण युद्ध करने के लिए लाल नेत्रोंवाला होकर **राजीव** और **पुंडरीक** वगैरह पुत्रों से युक्त होकर नगर

के बाहर निकला और युद्ध करने लगा। उस बड़े संग्राम में वरुण के वीर पुत्र महा युद्ध करके खरदूषण को बांधकर उसके नगर में ले गया। फिर राक्षसों के सैन्यों में भंग पड़ा तो वरुण भी अपनी आत्मा को कृतार्थ मानते हुए अपनी नगरी में घुसा। फिर रावण ने विद्याधरों के प्रत्येक राजा को बुलाने के लिए दूत भेजे; जिनमें मुझे तुम्हारे लिए भेजा गया है।''

इस प्रकार दूत के वचन सुनकर प्रह्लाद राजा रावण को सहायता करने हेतु वहां जाने के लिए तैयार होने लगा तो पवनंजय ने आकर कहा कि, ''हे तात ! आप यहीं रहिए, मैं जाकर उस रावण के मनोरथ को पूर्ण करुंगा। मैं आपका पुत्र हूँ,'' इस प्रकार कहकर आग्रह से पिता की संमति लेकर सब लोगों को बुलाकर पवनंजय वहां जाने चला। पति की इस यात्रा के समाचार लोगों के मुख से सुनकर सती अंजनासुंदरी उत्कंठित होकर ज्यों आकाश के शिखर से देवी उतर आये त्यों प्रासाद पर से नीचे उतरी, अपने पति को देखने के लिए पूतली की तरह स्तंभ के आधार पर अनिमेष नेत्र से और अस्वास्थ्य से पीडित हृदय बनकर खडी रही। द्वारस्तंभ के आधार पर जिसका शरीर रहा था वह दूज के चन्द्र जैसी कृश लगती थी। शिथिल केश से जिसका ललाट ढका हुआ था, नितंब भाग पर जिसकी शिथिल बनी भुजलता लटकती थी, जिसके अधरपल्लव तांबूल के रंग बिना फिके लगते थे। अश्रुजल से जिसका मुख धुलता था, और जिसके नेत्र में से अंजन चला गया था ऐसी अंजना को अपने सम्मुख पवनंजय ने चलते समय खडी देखी। उसको देखते ही उसने सोचा, ''अहो ! इस दुष्टबुद्धि स्त्री का निर्लज्जपना और निर्भयपना कैसा है ! अथवा उसका दुर्मनपना पहले से ही मुझे मालूम हुआ है, लेकिन सिर्फ माता-पिता की आज्ञा के उल्लंघन के भय से ही मुझे उससे ब्याह करना पडा है।'' उस समय अंजना उसके चरणों में गिरकर, अंजलि जोडकर बोली, ''हे स्वामी ! आपने सबकी संभाल ली, सबके साथ हिले-मिले और मेरी थोडी सी भी सूध नहीं ली है, फिर भी मैं विज्ञप्ति करती हूं कि आप मुझे भूलना मत। पुनः जलदी पधारना और आपका मार्ग सुखकारी हो।'' इस प्रकार बोलते हुए दीन बनी शुद्ध चरित्रवाली सती की भी अवगणना करके पवनंजय विजय के लिए चला गया। पतिने की हुई अवज्ञा से वियोगपीडित वह बाला अंतःगृह में जाकर जलदी से भेदे गये नदी के तट की तरह पृथ्वी तल पर गिर पड़ी।

पवनंजय वहां से उड़कर मानस सरोवर गया और वहां प्रदोषकाल में निवास किया। वहां एक प्रासाद रचकर वह उसमें रहा, क्योंकि ''विद्याधरों की विद्या सर्व मनोरथ सिद्ध करती है।' उस महल में पवनंजय पलंग में बैठा था इतने में समीप के मानस सरोवर के किनारे पर प्रिय वियोग से पीडित एक चक्रवाकी उसे नज़र आयी। वह पक्षीणी प्रथम ग्रहण की हुई मृणाललता (कमल) को भी खाती नहीं थी। शीतल होने पर भी मानो उबाला गया हो ऐसे जल से वह

परिताप (पीडा) पाती थी। अग्नि ज्वाला की तरह चन्द्रिका से भी वह दुःखी होती थी और करुण स्वर में आक्रंद (रुदन) करती थी। ऐसी उस बाला को देखकर पवनंजय सोचने लगा कि "ये चक्रवाकियां पूरे दिन अपने अपने पति के साथ क्रीडा करती है फिर भी रात्रि को उनका विरह वे सहन नहीं कर पाती; तो विवाह के बाद तुरंत ही जिसका मैंने त्याग किया है और परस्त्री समान मैंने उसे कदापि बुलाया भी नहीं है एवं यहां आते समय भी मैंने उसकी संभाल नहीं ली। अरे ! जो पर्वत जैसे दुःख के बोज से मूल से ही दबाई हुई है और जिसने मेरे समागम का किंचित भी सुख देखा नहीं है उस अंजना का क्या हुआ होगा ? अरे ! मेरे ऐसे अविवेक को धिक्कार है। वह बेचारी मुझसे अपमानित बनी हुई अवश्य मर जायेगी। उसकी हत्या के पाप से दुर्मुख बना हुआ मैं बाद में कहां जाऊंगा ?"

इस प्रकार सोचकर उसने यह सब अपने प्रिय मित्र प्रहसित को बताया, क्योंकि मित्र बिना अपने दुःख को बताने का अन्य कोई पात्र नहीं है। प्रहसित ने कहा, 'लंबे काल के बाद भी यह तेरे जानने में आया यह ठीक हुआ, परंतु वह बाला वियोगी सारस पक्षिणी की भाँति इस समय जीवीत होगी या नहीं ? हे मित्र ! शायद वह जीवीत होगी तो आज भी उसे आश्वासन देना तेरे योग्य है। इसलिए उसके पास जाकर, प्रिय वचन से उसकी आज्ञा पाकर, स्वार्थ के लिए तुझे वापस यहीं आना चाहिए।' इस प्रकार हृदय की भाँति भावि संभावना करनेवाले उस मित्र की प्रेरणा से पवनंजय उसे साथ लेकर वहां से उड़कर अंजनासुंदरी के मंदिर में आया और गुप्त रुप से द्वार पर खड़ा रहा। पहले प्रहसित आगे जाकर उसके घर में घुसा। उस समय अंजनासुंदरी अल्पजल में रही मछली की तरह पलंग पर तड़प रही थी। हीम द्वारा कमलिनी पीडित हो वैसे चंद्र की ज्योत्सना से वह पीड़ा पा रही थी, हृदय के अंतरताप से उसके हार के मोती फूट जा रहे थे, लंबे निःश्वास से उसके केश की श्रेणी चपल हो रही थी, असह्य पीड़ा से टकराती भुजाओं से मणि के कंकण टूटते जा रहे थे। वसंततिलका सखी उसे बार बार धीरज दे रही थी, और मानो काष्ठमय हो त्यों उसकी दृष्टि और चित्त शून्य हो गये थे। ऐसी स्थिति में रही अंजनासुंदरी प्रहसित को नज़र आयी। प्रहसित को व्यंतर की तरह अचानक अपने महल में आया देखकर 'यहा कौंन आया' यूं भय पाती हुई वह बाला धीरज लाकर बोली, "अरे ! आप कौन हो ? और परपुरुष होते हुए यहां क्यों आये हो ? अथवा मुझे यह जानने की जरूरत नहीं है, आप इस परस्त्री के घर में से चले जाओ। हे वसंततिलका ! इस पुरुष को भुजा (हाथ) से पकड़कर बाहर निकाल। मैं चन्द्र समान निर्मल हूँ इसलिए उसे देखने योग्य भी नहीं हूँ। मेरे पति पवनंजय के सिवा मेरे इस स्थान पर किसी दूसरे को प्रवेश करने का अधिकार भी नहीं है। तू क्या देख रही है ?" यह सुनकर प्रहसित नमस्कार करके बोला, 'स्वामिनी ! चिरकाल से उत्कंठित होकर आये हुए पवनंजय के समागम की आपको बधाई है। कामदेव के

मित्र वसंत की तरह मैं उसका प्रहसित नाम का मित्र आपके समक्ष आया हूँ और मेरे पीछे आपके पति आये ही है ऐसा जान लो।' अंजना बोली, "अरे प्रहसित ! विधि ने ही मेरा हास्य किया है, तो आप मुझ पर क्यों हंसते हो ? यह मज़ाक का समय नहीं है, अथवा इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। मेरे पूर्वकर्म का ही दोष है। नहीं तो ऐसा कुलवान पति मेरा किसलिए त्याग करेगा ? पाणिग्रहण (शादी) से लेकर पति ने त्यागी हुई ऐसी मुझे आज बाइस साल बीत गये हैं, फिर भी मैं पापीणी आज तक जी रही हूँ।" इस प्रकार उसके वचन सुनकर, उसके दुःख का भार जिस पर आया है ऐसा पवनंजय अंदर प्रवेश करके अश्रु से गद्‌गद वाणी में इस प्रकार बोला, 'हे प्रिया ! मूर्ख फिर भी स्वयं को बुद्धिमान माननेवाले ऐसे मैंने विवाह से लेकर तेरे जैसी निर्दोष स्त्री को दोषित मानकर त्याग किया है। मेरे दोष से तू ऐसी दुःसह दुर्दशा को प्राप्त हुई है और कुछ समय में मृत्यु भी पा जाती, लेकिन मेरे भाग्ययोग से तू जीवीत रही है।' इस प्रकार बोलते हुए अपने पति को पहचानकर लज्जावती बाला पलंग की पाटी का सहारा लेकर मुख नीचा रखकर खड़ी हुई। फिर हस्ती ज्यों लता को पकड़े त्यों गोलाकार भुजा से उसे पकड़कर पवनंजय पलंग पर बैठा। पवनंजय ने फिर से कहा, 'हे प्रिया ! क्षुद्र बुद्धिवाले मैंने तुझ जैसी निरपराधी स्त्री को दुःखी किया है तो मुझे क्षमा करना।' पति के ऐसे वचन सुनकर अंजना बोली, 'नाथ ! ऐसा मत बोलो। मैं आपकी सदा की दासी हूँ। इसलिए मेरी क्षमा माँगना अनुचित है।' फिर प्रहसित और वसंततिलका बाहर आये, क्योंकि जब दंपति एकांत में मिले तब चतुर पासवान[1] वहां नहीं रहते। फिर अंजना और पवनंजय स्वेच्छापूर्वक क्रीडा करने लगे और रस के आवेश में पूरी रात्रि एक प्रहर की तरह बीत गई।

रात्रि बीती और प्रभात हुआ देखकर पवनंजय ने कहा, 'हे कांता ! मैं विजय के लिए जाऊंगा, नहीं तो गुरुजनों को मालूम पड़ जायेगा। हे सुंदरी ! अब खेद मत करना और मैं रावण का कार्य करके आऊं, तब तक सखियों के साथ सुखपूर्वक काल व्यतीत करना।' अंजना बोली, 'आप जैसे बलवान वीर को वह कार्य तो सिद्ध ही हुआ है, लेकिन यदि मुझे जीवित देखना चाहते हो तो अर्थ साधकर तत्काल वापस लौटना। और आज मैं ऋतुस्नाता थी; इसलिए यदि मुझे गर्भ ठहर जाय तो दुर्जन लोग आपकी अनुपस्थिति में मेरी निंदा करेंगे।' पवनंजय ने कहा, 'हे मानिनी ! मैं तत्काल वापस आऊंगा। मेरे वापस आने पर नीच लोगों को तेरा अपवाद कहने का अवकाश ही मिलेगा नहीं। अथवा मेरे समागम को सूचित करनेवाली यह मेरे नाम से अंकित मुद्रिका ले, ऐसा समय आये तो उसे प्रकाशित करना।' इस प्रकार कहकर मुद्रिका देकर पवनंजय वहां से उड़कर मानस सरोवर के तट पर स्थित अपनी छावनी में आया। फिर देवता की तरह सैन्य के साथ आकाशमार्ग से चलकर वह लंकापुरी में आया और रावण

१. पास रहने वाले मित्र, सखी, दास दासी वगैरह।

को प्रणाम किया। इसके बाद कांति द्वारा तरुण सूर्य की तरह प्रकाशित रावण भी सेना के साथ पाताल में वरुण के साथ युद्ध करने गया।

यहां उस दिन से अंजनासुंदरी ने गर्भ धारण किया। जिससे उसके सर्व अवयव विशेष सौंदर्य से शोभा पाने लगे। मुख पर गाल की शोभा पांडु रंग की हुई। स्तन के मुख श्याम हुए। गति अत्यंत मंद हो गई। नेत्र विशाल व उज्ज्वलित हो गये। उसके सिवा दूसरे भी गर्भ के लक्षण उसके शरीर पर स्पष्ट दिखने लगे। उसे देखकर **केतुमती** नाम की उसकी सास तिरस्कार से बोली, "अरे पापिन ! दोनों कुल को कलंक लगानेवाला यह क्या कार्य तूने किया ? पति देशांतर होने पर भी तू गर्भिणी क्यों हुई ? मेरा पुत्र तेरी अवज्ञा करता, तब मैं समजती थी कि वह अज्ञान से तुझे दोषित मानता है, लेकिन तू व्यभिचारिणी है यह आज तक मुझे मालूम नहीं था।" इस प्रकार जब सास ने उसका तिरस्कार किया, तब अंजनासुंदरी ने नेत्र में अश्रू लाकर पति समागम के चिह्नरुप मुद्रिका उसे दिखाई। वह देखने पर भी लज्जा से नम्र मुख की हुई अंजना को उसकी सास ने दुबारा तिरस्कार से कहा कि, "अरे दुष्टा ! जो तेरा पति तेरा नाम भी लेता नहीं था, उसके साथ तेरा संगम किस प्रकार हो सकता है ? इसलिए सिर्फ मुद्रिका दिखाकर हमें क्यों छलती है ? व्यभिचारिणी स्त्रियाँ छल के ऐसे कई प्रकार भी जानती हैं। हे स्वच्छंदचारिणी ! तू आज से मेरे घर में से निकलकर तेरे पिता के घर जा, यहां खड़ी मत रह। मेरा स्थान तुझ जैसी के रहने योग्य नहीं है।" इस प्रकार अंजना का तिरस्कार करके राक्षसिणी जैसी निर्दयी केतुमती ने उसे उसके पिता के घर छोड़ आने के लिए सेवक पुरुषों को आज्ञा दी। वे अंजना को वसंततिलका सहित वाहन में बैठाकर माहेन्द्रनगर के समीप ले गए और वहां नेत्र में अश्रु लाकर उसे वाहन में से उतारा और माता की भाँति नमस्कार करके उनकी क्षमा माँगकर वे वापस लौट गये। उत्तम सेवक स्वामी के परिवार पर भी स्वामी के समान वृत्तिवाले होते है।

उस समय उसके दुःख से दुःखी बना हो त्यों सूर्य अस्त पा गया, क्योंकि सत्पुरुष सज्जन की विपत्ति देख नहीं सकते। फिर वहां अंजना ने उल्लू पक्षी के घोर धूत्कार से, लोमडियों के चित्कार से, नहारो के आक्रंद से, शिकारी प्राणियों के विविध शब्दों से, और राक्षसों के संगीत जैसे पिंगला के कोलाहल से मानो उसके कान फूट गये हो त्यों पूरी रात जाग्रतपने में ही व्यतीत की। प्रातःकाल में वह दीन बाला लज्जा से संकोच पाते हुए भिक्षुणी की तरह परिवाररहित, पिता के गृहद्वार पर धीरे धीरे आयी। उसे अचानक आया देखकर प्रतिहारी संभ्रमित हो गया। फिर वसंततिलका के कहने से उसकी ऐसी अवस्था उसने राजा के पास निवेदित की। यह जानकर राजा का मुख नम्र और श्याम हो गया। वह सोच में पडा कि 'अहा ! विधि के विपाक की तरह स्त्रियों का चरित्र भी अचिंत्य है। यह कुलटा अंजना मेरे कुल को कलंकित करने के

लिए मेरे घर आयी है, परंतु अंजन की थोडी सी भी मात्रा उज्ज्वल वस्त्र को दूषित करती है।' इस प्रकार राजा चिंतन कर रहा था कि उसका प्रसन्नकीर्ति नाम का नितिमान पुत्र अप्रसन्न मुख से कहने लगा, 'इस दुष्टा को तत्काल यहां से निकाल दो, उसने हमारा कुल दूषित किया है, सर्प ने डंसी हुई ऊंगली को क्या बुद्धिमान पुरुष छेद नहीं डालता ?' उस समय **महोत्साह** नाम का एक सचिव बोला, 'पुत्रियों को सासु की ओर से दुःख उत्पन्न होता है तब पिता के घर की ही शरण होती है। हे प्रभु ! क्या मालूम शायद उसकी सास केतुमती ने क्रूर बनकर इस निर्दोष बाला पर कुछ गलत दोष उत्पन्न करके निक़ाल दिया होगा। इसलिए जब तक यह सदोष है या निर्दोष है ऐसी स्पष्टता न हो तब तक उसका गुप्त रुप से पालन करो और अपनी पुत्री जानकर उस पर इतनी कृपा करो।' राजा ने कहा, ''सब जगह सासु तो ऐसी होती ही है, लेकिन वधूओं का ऐसा चरित्र किसी जगह नहीं होगा। हमने पहले से ही सुना है कि यह अंजना पवनंजय को द्वेष्य थी। अर्थात् पवनंजय को उसके पर प्रीतिभाव नहीं था, तो पवनंजय द्वारा उसे गर्भ कैसे संभव हो सकता है ? इसलिए यह सर्वथा दोषित है, उसकी सास ने उसे निकाल दिया यह अच्छा ही किया है। इसलिए यहां से भी निकाल दो, उसका मुख हम देखेंगे भी नहीं।'' राजा की ऐसी आज्ञा होते ही दीनमुख से आक्रंद करते लोगों ने कष्ट से देखी हुई उस अंजना को द्वारपाल ने निकाल दिया।

क्षुधा और तृषा से पीडित श्रांत (थकी) बनी, निःश्वास छोड़ती, अश्रु बहाती, दर्भ से छेदे गए पैरो में से निकले हुए रुधिर से भूमितल को रंगती, कदम कदम पर स्खलित होती और वृक्ष वृक्ष पर विश्राम लेती अंजना दिशाओं को भी रुलाते हुए सखी के साथ वहां से चल नीकली। जिस जिस नगर या गाँव में वह जाती तो वहां पहले से आये राजपुरुष उसे रहने नहीं देते थे। इसलिए वह किसी भी जगह पर ठहर नहीं सकी। चारोंओर भटकते हुए वह बाला क्रमशः एक महा अटवी में आ पहुँची। वहां पर्वत के कुंज में एक वृक्ष के नीचे बैठकर वह विलाप करने लगी, ''अहा ! मुझ मंद भाग्यवाली को गुरुजनों से भी अपराध का विवेचन हुए बिना पहले से ही दंड हुआ। हे केतुमती सासु ! आपने कुल को कलंक लगने न दिया यह ठीक हुआ। हे पिता ! आपने भी सबंधी के भय से ठीक सोचा। पीडित नारियों को आश्वासन का कारण माता है, हे माता ! आपने भी पति के छंद का अनुसरण (नकल) करके मेरी उपेक्षा की है। हे भाई ! पिता के जीवित होते हुए तेरा कोई दोष नहीं है। हे नाथ ! एक आप दूर होने पर मुझे सब जन शत्रु हुए। हे प्रिय ! सर्वथा पति बिना स्त्री एक दिन भी जीवित न रहे कि जिस प्रकार मंद भाग्य में शिरोमणि ऐसी मैं अभी भी जी रही हूँ।

इस प्रकार विलाप करती हुइ अंजना को उसकी सखी ने समझाकर आगे चलाया। वहां गुफा में ध्यान करते हुए **अमितगति** नाम के एक मुनि उनको दिखाई दिए। उन चारणश्रमण

मुनि को नमस्कार करके वे दोनों स्त्रियां विनयपूर्वक उनके पास बैठी। तो मुनि ने भी ध्यान समाप्त किया और अपना दक्षिण कर ऊँचा करके मनोरथ और कल्याणरुप बड़े आराम (बाग) में नहर समान धर्मलाभ रुपी आशिष दी। फिर वसंतसेना ने भक्ति से नमस्कार करके अंजना का पूरा दुःख शुरू से मुनि को कह सुनाया और "इस अंजना के गर्भ में कौन है और किस कर्म से अंजना को ऐसी दशा प्राप्त हुई है ?" इस प्रकार पूछा तो मुनि बोले -

"इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में **मंदर** नाम के नगर में **प्रियनंदी** नाम का एक वणिक रहता था। उसे **जया** नाम की स्त्री से चंद्र की भाँति कला का निधि और जिसे दम (इन्द्रियदमन) प्रिय है ऐसा **दमयंत** नाम का एक पुत्र हुआ। एक बार वह उद्यान में क्रीडा करने गया, वहां स्वाध्याय-ध्यान में तत्पर एक मुनिराज के उसे दर्शन हुए। उसने उनसे शुद्ध बुद्धि से धर्म सुना और प्रतिबोध पाकर सम्यक्त्व तथा अन्य विविध नियम ग्रहण किए। तब से उसने मुनियों के योग्य और अनिंदित दान देना शुरू किया। तप और संयम में ही एकनिष्ठा रखते हुए वह क्रमशः मृत्यु पाकर दूसरे देवलोक में परमर्द्धिक देवता बना। वहां से च्युत होकर इस जंबूद्वीप में **मृंगाकपुर** के राजा वीरचंद्र की प्रियंगुलक्ष्मी नाम की रानी से पुत्र रुप में अवतरित हुआ। वह **सिंहचन्द्र** ऐसे नाम से प्रसिद्ध होकर जैन धर्म को स्वीकार के कर्मयोग से मृत्यु पाकर देवपने को प्राप्त हुआ। वहां से च्यूत होकर इस वैताढ्यगिरि पर स्थित **वारुण** नाम के नगर में सुकण्ठ राजा और कनकोदरी रानी का **सिंहवाहन** नाम का पुत्र हुआ। चिरकाल तक राज्य भोगकर श्री विमलप्रभु के तीर्थ में **लक्ष्मीधर** मुनि से उसने व्रत ग्रहण किया। दुस्तप तपस्या करके मृत्यु पाकर वह **लांतक** देवलोक में देवता बना। वहां से च्यूत होकर वह तेरी सखी अंजना के उदर में आया है। यह पुत्र गुणों का स्थान, महापराक्रमी, विद्याधरों का राजा, चरमदेही[1] और पापरहित मनवाला होगा।

अब तेरी सखी का पूर्वभव सुन। **कनकपुर** नगर में **कनकरथ** नाम का एक महारथियों में सिरताज राजा था। उसे **कनकोदरी** और **लक्ष्मीवती** नाम की दो पत्नियां थी। उसमे लक्ष्मीवती अत्यंत श्रद्धालु श्राविका थी। वह अपने गृहचैत्य में रत्नमय जिनबिंब को स्थापित करके दोनों **समय** उसकी पूजा और वंदना करती थी। कनकोदरी को इसकी इर्ष्या होने से उस दुष्ट हृदय **की स्त्री** ने एक बार जिनबिम्ब हरकर अपवित्र घूरा (स्थान) में छिपा दिया। उस समय **जयश्री** नाम की एक साध्वी विहार करते करते वहां आयी। वे उसे प्रतिमा छिपाते हुए देखकर बोली, 'अरे भली स्त्री ! यह तूने क्या किया ? इस भगवंत की प्रतिमा को यहा फेंकने से तेरी आत्मा को संसार के अनेक दुःख का पात्र बनाया।' जयश्री साध्वी के इस प्रकार कहने से कनकोदरी को पश्चाताप हुआ जिससे तत्काल वह प्रतिमा वहां से लेकर शुद्ध करके, क्षमा मांगकर जिस

१. जिसका आखिरी शरीर है ऐसा - अर्थात् इसी भव में मोक्ष जानेवाला।

स्थान पर थी वहां रख दी। तब से वह सम्यक्त्व धारी बनकर जैन धर्म को पालने लगी। क्रमशः आयुष्य पूर्ण होते ही मृत्यु पाकर वह सोधर्म कल्प में देवी बनी। वहां से च्यूत होकर तेरी यह सखी महेन्द्र राजा की पुत्री बनी। उसने अर्हंत की प्रतिमा दुःस्थान पर डाली थी उसका यह फल उसे प्राप्त हुआ है। तू उस भव में कर्म करने में उसका अनुमोदन करनेवाली और मददगार थी इसलिए तू भी उसके साथ साथ उसका फल भोग रही है। लेकिन अब उस दुष्ट कर्म का फल प्रायः भोग लिया है। इसलिए अब तू भव भव में शुभ फल देने वाला जिनधर्म ग्रहण कर। यहां से इस स्त्री का मामा अचानक आकर उसे अपने घर ले जायेगा और कुछ समय में उसे उसके पति के साथ भी मिलन होगा।''

इस प्रकार कहकर वे दोनों स्त्रियों को अर्हंत धर्म में स्थिर करके वे मुनि गरुड की भाँति आकाश में उड गये। इतने में वहां एक युवा शेर उनको आते हुए दिखाई दिया। अपनी पुच्छ को पछाडने से मानो पृथ्वी को फाडता हो ऐसा वह दिख रहा था। वह बडे बुत्कार ध्वनि से दिशाओं के कुंज को भर देता था। हाथियों के रुधिर से विकराल था। नेत्र दीपक जैसे चकाचक थे। दाढे वज्र के कंद समान थी, दांत आरी जैसे क्रूर थे। अयाल (बाल) अग्नि की ज्वाला के समान थी, नाखून लोहे के अंकुश जैसे थे और उसका उरःस्थल शिला जैसा था। ऐसे शेर को देखते ही वे दोनों स्त्रियां भूतल में घूसना चाहती हो त्यों जमीन की ओर देखते हुए काँपने लगी। और भय पायी हुई हिरनी की तरह 'अब कहाँ जाए ?' ऐसे भय से स्थिर हो गयी। इतने में उस गुफा के अधिपति **मणिचूल** नाम के गंधर्व ने अष्टापद प्राणी का रुप लेकर उस शेर को मार डाला। फिर अष्टापद का रुप संहरकर अपना मूल स्वरुप धारेण करके उसने उन दोनों स्त्रियों के हर्ष के लिए अपनी प्रिया सहित अर्हंत गुण की स्तुति करना शुरु किया। फिर उन स्त्रियों ने उसका सान्निध्य छोड़ा नहीं। दोनो उसी गुफा मे ही रही, और वहां मुनिसुव्रतप्रभु की प्रतिमा का स्थापन करके निरंतर उसका पूजन करने लगी।

एक दिन शेरनी ज्यों शेर को जन्म दे त्यों, अंजना ने चरण में वज्र, अंकुश और चक्र के चिह्नवाले एक पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया। वसंततिलका ने हर्षित होकर अन्न, जल वगैरह लाकर उसका प्रसूतिकर्म किया। उस समय पुत्र को उत्संग में लेकर दुःखी अंजना मुख पर अश्रु लाकर उस गुफा को रुदन कराते हुए सती विलाप करने लगी, ''हे महात्मा पुत्र ! ऐसे घोर वन में तेरा जन्म होने से पुण्यवीहिन मैं गरीब स्त्री तेरा जन्मोत्सव किस प्रकार करुं ?'' इस प्रकार रुदन करती हुई अंजना को देखकर **प्रतिसूर्य** नाम के खेचर ने उसके पास आकर मधुर आवाज में उसके दुःख का कारण पूछा तो उसकी सखी ने आंख में अश्रु लाकर विवाह से लेकर पुत्र के जन्म तक का अंजना के दुःख का सर्व वृत्तांत कह सुनाया। यह सुनकर उसकी आंख में भी आँसु आ गये। फिर वह बोला, 'हे बाला ! मैं **हनुपुर** का राजा हूं। पिता **चित्रभानु**

और माता **सुंदरीमाला** का मैं पुत्र हूं। **मानसवेगा** नाम की तेरी माता का मैं भाई लगता हूँ। सद्भाग्य से तुझे जीवित देखकर मैं खुश हुआ हूँ, तो अब तू शांत हो जा। वह अपना मातुल (मामा) है, ऐसा जानकर अंजना अधिकाधिक रुदन करने लगी। इष्टजनों के अवलोकन समय पर दुःख प्रायः दुबारा उत्पन्न होता है। उसे रुदन करते हुए रोककर प्रतिसूर्य ने अपने साथ आये किसी **दैवज्ञ** (जोशी) को उस पुत्र के जन्म के बारे में पूछा. दैवज्ञ ने कहा, 'यह कुमार शुभ ग्रह के बलवाले लग्न में जन्मा है, इसलिए पुण्यशाली है, वह अवश्य ही बडा राजा बनेगा और इसी भव में सिद्धि पायेगा। आज चैत्र महिने के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है, श्रवण नक्षत्र है और रविवार है। सूर्य उच्च का होकर मेष राषि में आया है, चन्द्र मकर का होकर मध्यभवन में रहा है, मंगल मध्यम होकर वृषभ राशि में है, बुध मध्यमपने में मीन राशि में आया है, गुरु उच्च का होकर कर्क राशि में रहा है, शुक्र उच्च का होकर मीन राशि में है, शनि भी मीन राशि में है, मीन लग्न का उदय है और ब्रह्मयोग है, जिससे सब तरह से शुभ है।'

फिर प्रतिसूर्य पुत्र और सखी सहित अपनी भानजी को उत्तम विमान में बैठाकर अपने नगर की ओर ले चला। मार्ग से जाते हुए विमान पर लटकते ऊंचे रत्नजडित झूमखे की घण्टियों को लेने की इच्छा से वह बालक माता की गोद में से ऊछला। जिससे आकाश में से वज्र की भाँति वह नीचे के पर्वत पर गिरा। उसके गिरने के प्रहार से उस पथ्थर के चूरेचूरे हो गये। पुत्र के गिर जाने से तत्काल अंजना अपने हाथ से हृदय कूटने लगी और प्रतिरव से गुफाओं को भी रुलाती हुई सती रोने लगी। प्रतिसूर्य ने तुरंत ही बालक के पीछे जाकर उसको अक्षत अंग से उठा लिया और नाश पाए हुए खजाने की तरह वापस लाकर अंजना को सौंपा। फिर मन समान गतिवाले विमान द्वारा प्रतिसूर्य, जिसमें महोत्सव हो रहा है ऐसे हनुपुर नगर में शीघ्र आ पहुँचा। वहां अंजना को उसने हर्षपूर्वक अपने घर में उतारा। मानो कुलदेवी आयी हो त्यों मानकर उसके पूरे अंतःपुर ने उसकी पूजा की। जन्मते ही हनुपुर नगर में पहले आया होने से उसके मातुल प्रतिसूर्य ने अंजना के पुत्र का **हनुमान** ऐसा नाम रखा। उसके विमान में से गिर जाने से पर्वत चूर्ण चूर्ण हो गया इसलिए उसका दूसरा श्रीशैल ऐसा दूसरा नाम भी रखा। मानससरोवर के कमलवन में राजहंस के शिशु समान हनुमान कुमार सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए वहां बड़ा होने लगा और 'जो दोष केतुमती सासु ने अपने पर लगाया हुआ है वह अब किस प्रकार उतरेगा' उसकी निरंतर चिंता करते हुए अंजना शल्य सहित हो त्यों रहने लगी।

यहां रावण की मदद में गया हुआ पवनंजय ने संधि करके खरदूषण को वरुण से छुड़वाया और रावण को संतोष पहुँचाया। फिर रावण परिवार के साथ लंका में गया और पवनंजय उससे अनुमति लेकर अपने नगर में आया। माता-पिता को प्रणाम करके वह अंजना के वासगृह में

आया। वहां अंजनारहित वह वासगृह ज्योत्स्नारहित चंद्रमा जैसा निस्तेज दिखाई दिया। वहाँ रही किसी एक स्त्री को उसने पूछा कि 'नेत्र को अमृतांजन जैसी मेरी प्रिया अंजना कहां है ?' उसने कहा कि, "आप के रणयात्रा में जाने के बाद कुछ दिनों पर गर्भसंभव के दोष से आपकी माता केतुमती ने उसे निकाल दिया है और पापी सेवकपुरुष आपकी माता के आदेश से माहेन्द्रनगर के समीप अरण्य में हिरणी की तरह भयाकुल ऐसी उस बाला को छोड़ आये हैं।" यह सुनते ही पवनंजय पवनवेग से कबूतर की तरह प्रिया को मिलने के लिए उत्सुक होकर अपने श्वसुर के नगर में आया। वहां भी प्रिया को देखा नहीं तब उसने किसी स्त्री को पूछा कि, "यहां मेरी प्रिया अंजना आयी थी या नहीं ?" उस स्त्री ने कहा, "हाँ, वह वसंततिलका के साथ यहां आयी थी, परंतु उस पर आये व्यभिचार के दोष से उसके पिता ने उसे निकाल दिया है।" इस वचन से मानो वज्र से भर गया हो ऐसा होकर पवनंजय प्रिया को ढूंढने के लिए पर्वत और वन वगैरह में भटकने लगा। किसी जगह जब उसे अपनी प्रिया के समाचार नहीं मिले तब शाप से भ्रष्ट बने देव की तरह खेद पाकर उसने अपने प्रहसित नाम के मित्र को कहा, "हे मित्र ! तू जाकर मेरे माता-पिता को कह कि पूरी पृथ्वी में भटकते हुए अब तक मैंने किसी जगह अंजनासुंदरी को देखा नहीं है, अब दुबारा अरण्य में जाकर उस बेचारी की खोज करुंगा। यदि मिलेगी तो ठीक, नहीं तो आखिरकार मैं अग्नि मे प्रवेश करुंगा।" पवनंजय के कहने से प्रहसित ने तत्काल आदित्यपुर में आकर प्रह्लाद और केतुमती को वह संदेशा सुनाया। वह सुनकर केतुमती मानो हृदय में पाषाण से मर गई हो त्यों मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद होश पाकर वह बोली, "हे कठिन हृदयवाले प्रहसित ! मरने का निश्चय करनेवाले तेरे उस प्रिय मित्र को अकेला छोड़कर तू यहां क्यों आया ? अथवा मैं पापिन ने सोचे-समजे बिना अंजना जैसी सच्ची निर्दोष स्त्री को निकालकर यह कैसा बूरा कृत्य किया है ? उस साध्वी पर दोषारोपण करने का पूर्ण फल मुझे यहीं मिला है। अति उग्र पाप और पुण्य का फल यहीं पर मिलता है।" इस प्रकार रुदन करते हुए केतुमती को रोककर अंजना को खोजने के लिए निकले हुए पवनंजय की तरह प्रह्लाद राजा भी पवनंजय को खोजने चले। अंजना और पवनंजय की खोज के लिए प्रह्लाद ने अपने मित्र ऐसे सर्व विद्याधर राजाओं के पास अनेक दूतों को भेजा और स्वयं अनेक विद्याधरों के साथ पुत्र और पुत्रवधू को खोजते खोजते शीघ्रतापूर्वक भूतवन नाम के वन में आया। वहां एक चिता रचकर उसमें अग्नि प्रज्वलित करता हुआ पवनंजय उनको दिखाई दिया। फिर चिता के पास खड़े रहकर पवनंजय बोला, 'हे वनदेवताओं ! विद्याधरों के राजा प्रहलाद और केतुमती का मैं पुत्र हूँ, अंजना नाम की एक महासती मेरी पत्नी थीं। उसके साथ विवाह किया तब से दुष्टबुद्धि मैंने उस निर्दोष स्त्री को दुःखी किया है, उसका त्याग करके स्वामी के कार्य के लिए मैं रणयात्रा पर जा रहा था, इतने

में दैवयोग से उसे निर्दोष जानकर वापस उसके पास आया और उसके साथ स्वेच्छा से क्रीडा करके मेरे आने की निशानी देकर मैं माता-पिता से अज्ञात रहकर वापस मेरे सैन्य में आया। उसी दिन से उस कांता को गर्भ ठहरा। मेरे दोष के कारण उस पर दोष का संदेह रखते बुजुर्गो ने उसे निकाल दिया। वह अब कहां होगी यह कोई नहीं जानता, वह आगे और इस समय निर्दोष ही है, फिर भी मेरे अज्ञानदोष से वह दारुण दशा को प्राप्त हुई है। अरे ! मुझ जैसे अपण्डित (मूर्ख) पति को धिक्कार है। मैंने पूरी पृथ्वी पर भटककर उसकी खोज की, फिर भी रत्नाकर में रत्न की तरह मुझ मंदभागी को वह प्राप्त नहीं हुई, इसलिए आज मैं मेरे शरीर को अग्नि में होमता हूँ, क्योंकि यदि जीवित रहूंगा तो यावज्जिवित इस विरहानल को मैं सहन नहीं कर पाऊँगा। इसलिए हे देवताओं, यदि आप मेरी कांता (पत्नी) को देखो तो उसे यह खबर देना कि तेरे पति ने तेरे वियोग में अग्निप्रवेश किया है।''

इस प्रकार कहकर जिसमें अग्नि प्रज्वलित हुई है ऐसी उस चिता में आत्महत्या करने के लिए पवनंजय ने छलांग लगाई। उस समय उसके सब वचन जिसने सुने हैं ऐसे प्रह्लाद ने अति संभ्रम से शीघ्रतापूर्वक उसके पास आकर, उसे दो हाथ से पकड़कर छाती के साथ दबाया। 'प्रिया के वियोग की पीड़ा के उपाय रुप मृत्यु में मुझे यह क्या विघ्न आया ?' यूं पवनंजय ने उच्च स्वर में कहा तो प्रह्लाद अश्रु लाकर बोला, 'निर्दोष पुत्रवधू को निकालने में उपेक्षा रखनेवाला यह तेरा पापी पिता प्रह्लाद है। हे वत्स ! तेरी माता ने पहले एक अविचारी कार्य किया है, अब तू ऐसा दूसरा काम मत कर, स्थिर हो, तू बुद्धिमान है। हे वत्स ! तेरी वधू की खोज करने के लिए मैंने हजारों विद्याधरों को आज्ञा दी है, इसलिए उसके आगमन का इंतजार कर।' अब जिन विद्याधरों को खोज के लिए भेजा था उनमें से कुछ पवनंजयं और अंजना की खोज करते करते हनुपुर में आये। उन्होंने वहां प्रतिसूर्य और अंजना को समाचार दिए कि 'अंजना के विरहदुःख से पवनंजय ने अग्नि में प्रवेश करने की प्रतिज्ञा की है।' उनसे ऐसे दुःखदायी वचन सुनकर मानो विषपान किया हो त्यों अंजना 'अरे ! मैं मारी गई।' यूं बोलते हुए मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। चन्दन जल से सिंचन करते हुए और पंखे से पवन झलने से वह बाला संज्ञा पाकर उठी और दीन वचन से रुदन करते हुए बोलने लगी, ''पतिव्रता स्त्रियां पति के शोक में अग्निप्रवेश करती हैं, क्योंकि पति बिना उनका जीवन मात्र दुःख के लिए ही होता है, लेकिन जो श्रीमंत पति हजारों स्त्रियों को भोगनेवाले है, उनको तो प्रिया का शोक क्षणिक ही होना चाहिए। फिर भी उनका अग्नि में प्रवेश करने का क्या कारण ? हे नाथ ! मेरे विरह में आप अग्नि प्रवेश करोगे और आप का विरह होने पर मैं चिरकाल जीवित रहूँ, यह कितना संपूर्ण विपरीत कहलाएंगा ? अथवा महासत्त्ववाले वे ओर अल्पसत्त्ववाली मैं; यूं उनके और मेरे बीच नीलमणि और काँच जितने अंतर की बात अब मुझे मालूम पड़ी। इस बारे में

मेरी सास, ससुर या मेरे माता-पिता का कोई दोष नहीं है। मात्र मुझ मंदभागी के कर्म का ही दोष है।'' इस प्रकार रुदन करती हुई अंजना को समझाकर पुत्र सहित उसे साथ लेकर प्रतिसूर्य एक उत्तम विमान में बैठकर पवनंजय को खोजने चला। वह घूमते घूमते भूतवन में आया। दूर से प्रहसित ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसे देखा तो अंजना सहित आते हुए प्रतिसूर्य की खबर उसने तत्काल प्रह्लाद और पवनंजय को विनयपूर्वक कही। प्रतिसूर्य और अंजना ने विमान में से उतरकर भक्ति से पृथ्वी पर शीश झुकाकर दूर से ही प्रह्लाद को नमस्कार किया। फिर प्रतिसूर्य को आलिंगन देकर अपने पौत्र हनुमान को उत्संग पर बैठाकर प्रह्लाद ने आह्लाद पाकर संभ्रम से कहा, 'हे भद्र ! इस दुःख समुद्र में परिवार सहित डूबते हुए ऐसे मेरा उद्धार करनेवाले आप हो, इसलिए मेरे सर्व संबंधियों में आप अग्रगण्य बंधू हो। मेरे वंश की पूर्वभूत शाखा और संतति के कारणभूत इस मेरी पुत्रवधू को मैंने दोष बिना त्याग दिया था, उसकी आपने रक्षा की यह बहुत अच्छा किया है।'

अपनी प्रिया को देखकर पवनंजय तत्काल समुद्र की तरह दुःख के ज्वार से निवृत्त हुआ और शोकाग्नि शांत होने पर वह अत्यंत खुश हुआ। सब विद्याधरों ने विद्या के सामर्थ्य से वहां आनंदसागर में चन्द्ररुपी बड़ा उत्सव किया, फिर वे अपने विमानों से आकाश को तारेवाला बनाते हुए हर्षपूर्वक हनुपुर गए। महेन्द्र राजा भी मानसवेगा सहित वहाँ आया और केतुमती देवी तथा अन्य सभी संबंधी भी वहाँ आकर मिले। एक दूसरे के संबंधी और बंधुरुप वहां मिले विद्याधरों के राजाओंने परस्पर मिलकर पूर्व के उत्सव से भी बढ़कर उत्सव किया। फिर परस्पर बिदा लेकर सब अपने अपने स्थान पर गये और पवनंजय अपनी प्रिया अंजना और कुमार हनुमान के साथ वहाँ रहा।

कुमार हनुमान पिता के मनोरथों के साथ बड़ा हुआ और उसने सर्व कलाएं और विद्याएं साध ली। शेषनाग जैसी लम्बी भुजावाला, अस्त्र-शस्त्र में प्रवीण और कांति द्वारा सूर्य समान हनुमान क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ।

उस समय क्रोधियों मे श्रेष्ठ और बल के पर्वत जैसा रावण संधि में कुछ दूषण उत्पन्न करके वरुण को जीतने चला। दूत भेजकर बुलाए गए विद्याधर वैताढ्यगिरि के सैन्य जैसा सैन्य तैयार करके वहाँ जाने लगे। पवनंजय और प्रतिसूर्य भी वहाँ जाने के लिए तैयार हुए। उस समय अवष्टंभ (साथ) देने में गिरि (पर्वत) जैसा हनुमान इस प्रकार बोला, 'हे पिताओं ! आप दोनों यहीं पर रहो। मैं अकेला ही शत्रुओं को जीत लूंगा। तीक्ष्ण हथियार साथ होने पर भी बाहु से कौन युद्ध करेगा ? मैं बालक हूँ ऐसा सोचकर मुझपर अनुकंपा मत लाना, क्योंकि हमारे कुल में जन्मे हुए पुरुषों को पराक्रम का अवसर आने पर उम्र का प्रमाण नहीं रहता।'

इस प्रकार कहकर अति आग्रह से उनको रोककर स्वयं जाने के लिए उनकी अनुमति पायी। उन्होंने जिसके मस्तक पर चुंबन किया है ऐसे हनुमान का प्रस्थान मंगल किया। वह दुर्वार पराक्रमी हनुमान बड़े सामंत, सेनापतियों और सेंकडो सेना सहित रावण की छावनी में आया। मानो मूर्तिमान विजय हो ऐसे हनुमान को आते हुए और प्रणाम करते हुए देखकर रावण ने हर्ष से उसे अपने उत्संग में बैठाया। फिर रावण वरुण की नगरी के समीप जाकर युद्ध करने के लिए खड़ा रहा, तो वरुण और उसके सो पराक्रमी पुत्र युद्ध करने के लिए निकले। वरुण के पुत्र रावण के साथ युद्ध करने लगे और वरुण सुग्रीव वगैरह वीरों के साथ यज्ञ करने लगा। बड़े पराक्रमी और लाल नेत्रोवाले वरुण के पुत्रों ने सुवर को ज्यों जातिवान श्वान खेद पहुँचाएं त्यों रावण को युद्ध में परेशान कर दिया। उस समय गजेन्द्रों के सामने केसरी किशोर की तरह क्रोध से दुर्धर ऐसे दारुण हनुमान ने पशुओं की तरह अपनी विद्या के सामर्थ्य से वरुण के पुत्रों को बांध लिया। यह देखकर मार्ग में वृक्षों को हाथी कंपा दे त्यों सुग्रीव वगैरह को कंपाते हुए वरुण क्रोध से हनुमान पर दौड आया। बाणों की श्रेणी को बरसाते हुए रावण ने नदी के वेग को पर्वत रोके त्यों वरुण को बीच में ही स्खलित किया, जिससे ज्यों वृषभ के साथ वृषभ (बैल) और हाथी के साथ हाथी लडे त्यों क्रोधांध वरुण के साथ रावण ने बहुत देर तक युद्ध चलाया। आखिरकार छल को जाननेवाले रावण ने सर्व बल से वरुण को आकुल-व्याकुल करके उछलकर ज्यों इन्द्र को बाँध लिया था त्यों उसे भी बांध लिया। "सब जगह छल ही बलवान है।" फिर जय जय के नाद से दिशाओं के मुख को शब्दायमान करता हुआ विशाल स्कंधवाला रावण अपनी छावनी में आया और पुत्र सहित वश होकर रहने के लिए कबूल हुए वरुण को रावण ने छोड़ दिया। महात्माओं का कोप प्रणिपात तक ही होता है।

वरुण ने **सत्यवती** नाम की पुत्री हनुमान को दी, क्योंकि स्वयं ने जिसका बल देखा है ऐसा जामाता मिलना भी दुर्लभ है।

रावण वहां से लंका में आया और चंद्रनखा (सूपर्णखा) की **अनंगकुसुमा** नाम की पुत्री उसने हर्ष से हनुमान को दी। सुग्रीव ने **पद्मरागा**, नल ने **हरिमालिनी** और दूसरों ने भी अपनी हजारों कन्याएं हनुमान को दी। रावण ने हर्ष से दृढ आलिंगन करके बिदा किया हुआ पराक्रमी हनुमान हनुपुर गया और दूसरे भी जो वानरपति (सुग्रीव) वगैरह विद्याधर थे वे भी हर्षपूर्वक अपने अपने नगर में गये।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये
सप्तमे पर्वणि हनुमदुत्पत्तिवरुणसाधनो नाम तृतियः सर्गः॥३॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

चतुर्थ सर्ग

राम लक्ष्मण की उत्पत्ति, विवाह और वनवास

मिथिला नगरी में हरिवंश में **वासवकेतु** नाम का एक राजा था, उसे **विपुला** नाम की स्त्री थी। उनको पूर्णलक्ष्मीवान और प्रजाओं के जनक समान **जनक** नाम का एक पुत्र हुआ। क्रमशः वह राजा बना। उस समय में अयोध्या नगरी में श्री ऋषभ भगवान के राज्य के बाद ईक्ष्वाकुवंश के अंतर्गत रहे सूर्यवंश में अनेक राजा हुए, उनमें से कुछ मोक्ष को गये और कुश स्वर्ग में गये। उस वंश में बीसवे अर्हंत के तीर्थ प्रवर्तन पर एक **विजय** नामक राजा हुआ। उसे **हिमचूला** नाम की प्रिया थी। उनको **वज्रबाहू** और **पुरंदर** नाम के दो पुत्र हुए। उस समय में नागपुर में **इभवाहन** राजा को उसकी **चूडामणि** नाम की रानी से **मनोरमा** नाम की एक पुत्री हुई थी। जब वह युवा हुई तब रोहिणी को चन्द्र की भाँति वज्रबाहू उसे बड़े उत्साह से ब्याहा। **उदयसुंदर** नाम का उसका साला भक्ति से जिसके पीछे आया है ऐसा वज्रबाहू मनोरमा को लेकर अपने नगर की ओर चला। आगे चलते हुए मार्ग में एक **गुणसागर** नाम के मुनि उनको नज़र आये। वे उदयाचल पर रहे सूर्य की तरह वसंतगिरि पर तपतेज से प्रकाशित हो रहे थे। वह मुनि आतापना करते हुए ऊंचे देख रहे थे, जिससे मानो मोक्षमार्ग को देखते हो ऐसे दिखते थे।

मेघ को देखते हुए मयूर की तरह मुनि को देखते ही वज्रबाहू को हर्ष उत्पन्न हुआ, जिससे तत्काल अपने वाहन को खड़ा रखकर वह बोला, 'अहा ! ये महात्मा मुनि वन्दन करने योग्य हैं। वे चिन्तामणि रत्न की तरह बड़े पुण्य से नज़र आये हैं।' यह सुनकर उसके साले उदयसुंदर ने उपहास करते हुए कहा, 'कुमार ! क्या दीक्षा लेने की इच्छा है ?' वज्रबाहू बोला, 'हाँ, यूं मेरा मन करने के लिए उत्सुक है।' उदयसुंदर ने दुबारा मजाक में कहा, 'हे राजा ! यदि आपका मन हो तो देर मत करो, मैं आपको सहाय दूंगा।' वज्रबाहु ने कहा, 'मर्यादा को समुद्र न छोड़े त्यों तुम तुम्हारी प्रतिज्ञा का त्याग तो करोगे नहीं ?' उसने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा। तत्काल वज्रबाहु ज्यों मोह पर से उतरे त्यों वाहन पर से उतर पड़ा और उदयसुंदर वगैरह से युक्त होकर वसंतशैल (पर्वत) पर चढ़ा। उसका दृढ विचार जानकर उदयसुंदर बोला, 'स्वामी ! आप दीक्षा लेना नहीं। मेरे इस उपहास भरे वचनों को धिक्कार है। हम दोनों के बीच दीक्षा के लिए सिर्फ विनोदपूर्ण वचन ही थे, तो उस वचन का उल्लंघन करने में कुछ दोष नहीं है। प्रायः विवाह के गीत की तरह उपहास के वचन सत्य नहीं होते। आप हमें सब प्रकार की आपत्तियों में सहायक होंगे, ऐसा हमारे कुल का मनोरथ दीक्षा लेकर अचानक आप तोड़ना नहीं। अभी आप के इस हाथ में विवाह की निशानी के तौर पर मांगलिक कंकण हैं तो उस विवाह से प्राप्त होनेवाले भोग को अचानक क्यों छोड़ रहे हो ? हे स्वामी ! ऐसा करने से मेरी बहन मनोरमा सांसारिक

सुख के स्वाद से छली जायेगी, और आप जब तृण की तरह उसका त्याग कर दोगे तो फिर वह किस प्रकार जी सकेगी ?' वज्रबाहु कुमार बोला, "हे उदयसुंदर ! मानव जन्मरुपी वृक्ष का सुंदर फल चारित्र ही है और स्वाति नक्षत्र के मेघ का जल ज्यों सीप में मोती रुप होता है त्यों तुम्हारे विनोद के वचन भी मुझे परमार्थरुप बने हैं। तुम्हारी बहन मनोरमा यदि कुलीन होगी तो वह भी मेरे साथ दीक्षा ग्रहण करेगी, नहीं तो उसका मार्ग कल्याणकारी बनो, परंतु मुझे तो अब भोग से क्या काम ? अब तू मुझे व्रत लेने की आज्ञा दे और मेरे पीछे तू भी व्रत ग्रहण कर, क्योंकि अपनी प्रतिज्ञा पालनी यही क्षत्रियों का कुलधर्म है।"

इस प्रकार उदयसुंदर को प्रतिबोध देकर वज्रबाहु गुणरुप रत्नों के सागर ऐसे गुणसागर मुनि के पास आया और उनसे दीक्षा ली, तो उसके पीछे उदयसुंदर, मनोरमा और अन्य पचीस राजकुमारों ने दीक्षा ली। वज्रबाहु ने दीक्षा ली ऐसी खबर सुनकर 'ये बालक होने पर भी उत्तम हैं और मैं वृद्ध होने पर भी उत्तम नहीं हूँ' यूं सोचते हुए विजयराजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ, जिससे उसे **पुरंदर** नाम के लघु पुत्र को राज्य पर बैठाकर **निर्वाणमोह** नाम के मुनि से दीक्षा ली। क्रमशः पुरंदर ने भी अपनी पृथ्वी नाम की रानी की कुक्षि से उत्पन्न हुए **कीर्तिधर** नाम के पुत्र को राज्य सौंपकर **क्षेमंकर** नाम के मुनि से दीक्षा ली। कीर्तिधर राजा इंद्राणी के साथ इंद्र की तरह सहदेवी नाम की पत्नी के साथ विषयसुख भोगने लगा। एक बार उसे दीक्षा लेने की इच्छा हुई, तो सचिवों ने उसे कहा कि "जब तक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है तब तक आपको व्रत लेना योग्य नहीं है। यदि आप अपुत्रपन में व्रत लोगे तो यह पृथ्वी अनाथ हो जायेगी। इसलिए हे स्वामी ! पुत्र उत्पन्न हो तब तक इंतजार करो।" सचिवों के इस प्रकार कहने से कीर्तिधर राजा दीक्षा न लेकर गृहवास में रहा। कुछ काल बीतने के बाद उसे सहदेवी रानी से **सुकोशल** नाम का पुत्र हुआ। उसका जन्म होते ही 'यह बाल पुत्र जन्मा जानकर मेरे पति दीक्षा लेंगे' ऐसा सोचकर सहदेवी ने उसे छीपा दिया। वह बालक गुप्त रखने पर भी राजा को मालूम हो गया। क्योंकि 'उदय पाये सूर्य को छिपाने में कौन समर्थ है ?' फिर स्वार्थकुशल ऐसे कीर्तिधर राजा ने सुकोशल कुमार को राज्य पर बैठाकर **विजयसेन** मुनि से दीक्षा ली। तीव्र तपस्या करते हुए और अनेक परीषह सहते हुए वे राजर्षि गुरु की आज्ञा पाकर एकाकी विहार करने लगे।

एक बार कीर्तिधर मुनि मासोपवासी होने से पारणे की इच्छा से साकेत[1] नगर में आये। वहां मध्याह्न समय पर भिक्षा के लिए वे भटकने लगे। राजमहल पर रही सहदेवी ने उनको देखा, तो उसने सोचा कि "पहले ये पति दीक्षित हुए इसलिए मैं पतिरहित तो हो गयी हूँ, अब मेरा पुत्र सुकोशल यदि उनको देखकर दीक्षा लेगा तो मैं पुत्र विहीन हो जाऊंगी और यह पृथ्वी

१. अयोध्या

मालिक बिना की हो जायेगी इसलिए इस राज्य की कुशलता के लिए ये मुनि मेरे पति हैं, व्रतधारी हैं और निरपराधी हैं, फिर भी उन्हें नगर में से निकलवा देना चाहिए।'' ऐसा विचार करके सहदेवी ने दूसरे वेशधारियों द्वारा उन्हें नगर में से बाहर निकलवा दिया। जिनका मन लोभ से पराभव पाया हो उन्हें चिरकाल तक विवेक रहता ही नहीं। उन व्रतधारी स्वामी को नगर के बाहर निकाल दिया जानकर सुकोशल की धात्री माता खुले मुख से रोने लगी। राजा सुकोशल ने उसे पूछा कि 'तू क्यों रोती है ?' तब उसने शोकयुक्त गद्‌गद स्वर से कहा, ''हे वत्स ! जब आप बालक थे तब आपके पिता ने आपको राज्य पर बैठाकर दीक्षा ली थी। वे अभी अभी भिक्षा के लिए हमारे नगर में आये थे। उनका दर्शन होते ही आप व्रत ग्रहण करोगे ऐसे संदेह से आपकी माता ने उन्हें नगर बाहर निकलवा दिया है; उस दुःख से मैं रो रही हूँ।'' यह सुनते ही सुकोशल विरक्त होकर पिता के पास आया और हाथ जोड़कर व्रत की याचना की। उस समय उसकी पत्नी **चित्रमाला** गर्भवती थी, वह सचिवों के साथ आकर कहने लगी, 'हे स्वामी ! इस अनाथ राज्य का त्याग करने के योग्य आप नहीं हैं।' राजा सुकोशल ने कहा कि 'तेरे गर्भ में जो पुत्र है उसका मैंने राज्य पर अभिषेक किया हुआ है, क्योंकि भविष्यकाल में भी भूतकाल का उपचार होता है।' इस प्रकार कहकर सब लोगों की संभावना करके सुकोशल ने पिता से दीक्षा ग्रहण की और महा कठोर तपस्या करने लगा। ममतारहित और कषायवर्जित वे पिता-पुत्र महामुनि होकर पृथ्वीतल को पवित्र करते हुए साथ साथ विहार करने लगे। पुत्र वियोग से सहदेवी को बड़ा खेद हुआ; जिससे आर्त्तध्यान परायण होकर मृत्यु पाकर वह किसी गिरि की गुफा में व्याघ्री बनी।

कीर्तिधर और सुकोशल मुनि कि जो मन का दमन करनेवाले, अपने शरीर में भी निःस्पृह और स्वाध्याय ध्यान में तत्पर थे वे चातुर्मास बिताने के लिए एक पर्वत की गुफा में स्थिर आकृति करके रहे। जब कार्तिक मास आया, तब वे दोनों मुनि पारणे के लिए चले, वहां मार्ग में यमदूती जैसी उस दुष्ट व्याघ्री ने उनको देखा। तत्काल वह व्याघ्री मुख फाड़कर सामने दोडी आयी। दुह्रद (दुष्ट) और सुह्रद लोगों का दूर से आगमन समान ही होता है। व्याघ्री नजदीक आकर उपर पडने के लिए तैयार हुई तो वे मुनि धर्मध्यान में तत्पर होकर वहीं कायोत्सर्ग में रहे। वह व्याघ्री पहले विद्युत की तरह सुकोशल मुनि पर पड़ी और दूर से दौडकर प्रहार करके उनको पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर नाखूनरुपी अंकुश से उसके चर्म को चट्‌चट् शब्द करते हुए फाड़ डाला और मरुदेश की पथिक स्त्री ज्यों अति तृषातुरता से पानी पिए त्यों वह रुधिरपान करने लगी। गरीब स्त्री ज्यों भुट्टा खाय त्यों दांत से तडतड तोड़कर माँस खाने लगी, और इक्षुदंड को ज्यों हाथिनी कुचल डाले त्यों वह कट् कट् करते हुए कठोर अस्थियों को दांतरुपी यंत्र के अतिथि बनाने लगी। परंतु 'यह व्याघ्री मुझे कर्मक्षय में सहायक है' ऐसा मानकर मुनि

थोड़ा सा भी ग्लानि नहीं पाये, परंतु उलटे ही रोमांच कंचुक को धरने लगे। व्याघ्री द्वारा इस प्रकार भक्षण कराते सुकोशल मुनि शुक्ल ध्यान से तत्काल केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गये। उसी तरह कीर्तिधर मुनि भी केवलज्ञान प्राप्त करके क्रमशः अद्वेतसुख के स्थान रुपी परम पद को प्राप्त हुए।

यहां सुकोशल राजा की स्त्री चित्रमाला ने एक कुलनंदन पुत्र को जन्म दिया। उसका **हिरण्यगर्भ** नाम पड़ा क्योकि वह गर्भ में ही राजा बना था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तब **मृगावती** नाम की एक मृगाक्षी स्त्री को ब्याहा। उस मृगावती रानी से हिरण्यगर्भ राजा को मानो दूसरा हिरण्यगर्भ हो ऐसा **नघुष** नाम का पुत्र हुआ। एक बार हिरण्यगर्भ ने अपने मस्तक पर तीसरी उम्र का याने वृद्धावस्था का मानो प्रत्याभू हो ऐसा एक पलित (सफेद बाल) दिखाई दिया। जिससे तत्काल वैराग्य उत्पन्न होते ही नघुष को अपने राज्य पर बैठाकर उन्होंने **विमलमुनि** से दीक्षा ग्रहण की। नरों मे सिंह समान नघुष को **सिंहिका** नाम की एक पत्नी थी। उसके साथ क्रीडा करते हुए नघुष राजा पिता का राज्य चलाने लगा। एक बार नघुष राजा अपनी पत्नी सिंहिका को राज्य में छोड़कर उत्तरापथ के राजाओं को जीतने गया। उस समय दक्षिणापथ के राजाओं ने जाना कि 'इस समय नघुष राज्य में नहीं है इसलिए हम सब जाकर उसका राज्य ले ले।' यूं सोचकर उन्होंने अयोध्या समीप आकर घेरा डाला। "शत्रु छलनिष्ठ होते ही हैं" उस समय सिंहिका रानी ने पुरुष की तरह उनका सामना करके उनको जीतकर भगा दिया। "क्या शेरनी हाथी को मारती नहीं है ?"

नघुष राजा उत्तरापथ के राजाओं को जीतकर अयोध्या में आते ही उसने अपनी पत्नी ने दक्षिणापथ के राजाओं पर पायी हुई विजय का वृत्तांत सुना। तत्काल वह सोचने लगा कि "अहा ! मेरे जैसे पराक्रमी को भी यह काम करना दुष्कर है तो इस स्त्री ने यह काम किस प्रकार किया ? इसलिए जरुर उसमें उसकी स्पष्ट धृष्टता दिखती है। महाकुल में उत्पन्न हुई स्त्रियों को ऐसा काम करना उचित नहीं है। इसलिए जरुर यह स्त्री असती होनी चाहिए। सती स्त्रियों का तो पति ही देव होता है। इसलिए वे पतिसेवा के अलावां दूसरा कुछ जानती ही नहीं, तो ऐसा काम तो करे ही क्यों ?" इस प्रकार चित्त में निश्चय करके उसने खंडित प्रतिमा की तरह उस अति प्यारी सिंहिका को त्याग दिया।

एक बार नघुष राजा को दाहज्वर उत्पन्न हुआ। जो दुष्ट शत्रु की तरह सेंकडों उपचारों से भी शांत नहीं हुआ। उस समय सिंहिका अपना सतीपना बताने और पति के दाहज्वर की पीडा दूर करने के लिए जल लेकर उसके समीप आयी। फिर वह सतीपना दिखाते हुए बोली, 'हे नाथ ! आपके सिवा दूसरा कोई पुरुष मैंने कदापि भी यदि चाहा न हो तो इस जल सिंचन

से आपका ज्वर इसी समय चला जाए।' इस प्रकार कहकर उसने साथ लाए हुए जल से अपने पति पर अभिषेक किया जिससे मानो तत्काल अमृत से सिंचित हुआ हो त्यों वह राजा ज्वरमुक्त हो गया। देवताओंने सिंहिका पर पुष्पवृष्टि की और तब से राजा ने भी उसका पूर्ववत सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। कुछ काल बीत जाने के बाद नघुष राजा सिंहिका देवी से **सोदास** नामक पुत्र हुआ। वह योग्य उम्र का होते ही उसे राज्य पर बैठाकर नघुष राजा ने सिद्धि (मोक्ष) के उत्तम उपायरूप दीक्षा ग्रहण की।

सोदास राजा के राज्य में अर्हंतो के अट्ठाई उत्सव में सचिवों ने पूर्व राज्य की तरह अमारी घोषणा कराई और उन्होंने सोदास को भी कहा कि, 'हे राजा ! आपके पूर्वज अर्हंत के अट्ठाई उत्सव में माँस नहीं खाते थे, इसलिए आप भी मत खाना।' सोदास ने यह बात स्वीकारी, परंतु उसे सदा मांसभोजन प्रिय था इसलिए उसने रसोईये को आज्ञा दी कि 'तुझे गुप्तरुप में मांस अवश्य लाना है।' उस समय सचिवों ने अमारी घोषणा करवाई थी जिससे रसोईये को किसी जगह से माँस न मिला। कोई भी मनुष्य आकाशपुष्प की भाँति असत वस्तु को पा सकता नहीं है। 'इधर-उधर घूमते हुए किसी भी स्थान पर से मुझे माँस नहीं मिलता है और राजा की आज्ञा है, तो अब मुझे करना क्या ?' यूं सोचते हुए रसोईये ने एक मृत बालक देखा। रसोईये ने उस मृत बालक का माँस लेकर उसे सज्ज करके सोदास को दिया। उस मांस को खाते खाते सोदास उसका वर्णन करने लगा कि, 'अहो ! इस मांस का रस अति तृप्ति करे ऐसा है' उसने रसोईये को पूछा, 'यह मांस मुझे अपूर्व लगता है, इसलिए यह कौन से जीव का माँस है यह बता।' उसने कहा, 'यह नर मांस है।' राजा बोला, 'अब से प्रतिदिन ऐसा नरमांस ही पकाकर मुझे खाने देना।' फिर रसोईये ने राजा के लिए प्रतिदिन नगर के बालकों का हरण करना शुरु किया। ''अन्याय का कारण हो तो भी राजा की आज्ञा हो तो भय लगता नहीं है।'' इस प्रकार राजा को दारुण कर्म करनेवाला जानकर गृह में उत्पन्न हुए सर्प की तरह सचिवों ने उसे पदभ्रष्ट करके अरण्य में निकाल दिया और उसके पुत्र **सिंहरथ** को राज्य पर बैठाया। सोदास नरमांस को खाते हुए पृथ्वी पर उच्छृंखलता से भटकने लगा।

एक बार सोदास ने दक्षिणापथ में भटकते हुए एक महर्षि को देखा। तो उनको धर्म पूछा। उसे बोध के योग्य जानकर महामुनि ने मद्यमांस का परिहार जिसमें प्रधान रुप में रहा है ऐसा अर्हंतधर्म कहा। यह धर्म सुनकर सोदास चकित हो गया और प्रसन्न हृदयवाला होकर तुरंत ही परम श्रावक बना। उस अरसे में **महापुर** नगर का राजा अपुत्र मृत्यु पाया। वहां के सचिवों ने किए पांच दिव्य से सोदास का अभिषेक होते ही वह वहां का राजा बना। फिर सोदास ने अपने पुत्र **सिंहरथ** के पास दूत भेजकर कहलवाया कि 'तू सोदास की आज्ञा मान्य कर।' दूत ने जाकर उस प्रकार कहा तो सिंहरथ ने दूत का तिरस्कार करके निकाल दिया। उसने आकर

सोदास को जो बना था वह यथार्थ कह दिया। फिर सिंहरथ पर सोदास और सोदास पर सिंहरथ यूं दोनों ने युद्ध करने के लिए चढ़ाई की। मार्ग में दोनों के सैन्य एकत्रित हुए तो युद्ध प्रारंभ हुआ। आखिरकार सोदास ने सिंहरथ को जीतकर हाथ से पकड़कर उसे दोनों राज्य देकर स्वयं दीक्षा ले ली।

सिंहरथ का पुत्र **ब्रह्मरथ** हुआ। उसके बाद क्रमशः चतुर्मुख, हेमरथ, शतरथ, उदयपृथु, वारिरथ, इन्दुरथ, आदित्यरथ, मांधाता, वीरसेन, प्रतिमन्यु, पद्मबंधु, रविमन्यु, वसंततिलक, कुबेरदत्त, कुंथु, शरभ, द्विरद, सिंहदशन, हिरण्यकशिपु, पुंजस्थल, काकुस्थल और रघु वगैरह अनेक राजा हुए। उनमें से कुछ मोक्ष को गए और कुछ स्वर्ग में गये। फिर शरणार्थी की शरण करने योग्य और स्नेहियों के ऋण में से मुक्त रहनेवाला **अनरण्य** नाम का राजा साकेतनगर में हुआ। उसे पृथ्वी देवी के उदर से **अनंतरथ** और **दशरथ** नाम के दो पुत्र हुए। उस अनरण्य राजा को **सहस्रकिरण** नाम का एक मित्र था। उसने रावण के साथ युद्ध में वैराग्य उत्पन्न होने से दीक्षा ले ली। उसके साथ की दृढ मित्रता से अनरण्य राजा ने सिर्फ एक माह के हुए छोटे पुत्र दशरथ को राज्यलक्ष्मी सौंपकर अनंतरथ पुत्र सहित दीक्षा ले ली। क्रमशः अनरण्य राजर्षि मोक्ष को गये और अनंतरथ मुनि तीव्र तपस्या करते हुए पृथ्वी पर विहार करने लगे।

दशरथ क्षीरकण्ठ बाल्यावस्था में राजा हुआ। परंतु उम्र और पराक्रम सहित ही वृद्धि पाये। जिससे नक्षत्र में चन्द्र, ग्रहों में सूर्य और पर्वतो में मेरु की तरह अनेक राजाओ के बीच में शोभा पाने लगा। जब दशरथ राजा राज्य के स्वामी हुए तब लोगों के परचक्र वगैरह से होते उपद्रव आकाश पुष्प की भाँति अदृष्टपूर्व हो गये। याचक इच्छानुसार द्रव्य और आभूषण वगैरह का अनर्गल दान देने से वह राजा मद्यांग वगैरह दस प्रकार के कल्पवृक्ष के अलावा ग्यारहवां कल्पवृक्ष गिना जाने लगा। अपने वंश क्रम से पाये साम्राज्य की भाँति अर्हंत धर्म को भी वह सर्वदा अप्रमत्तपने से धारण करने लगा।

दशरथ राजा युद्ध में जयश्री की तरह दर्भस्थल (कुशस्थल) नगर के राजा सुकोशल की अमृतप्रभा नाम की रानी के उदर से उत्पन्न हुई **अपराजिता**[1] नाम की एक रुपलावण्यमयी पवित्र कन्या को ब्याहे। इसके बाद रोहिणी को चन्द्र ब्याहे त्यों कमलसंकुल नगर के राजा सुबंधुतिलक की मित्रादेवी रानी के उदर से उत्पन्न हुई **कैकेयी**[2] नाम की कन्या को ब्याहे। उस कैकेयी के **मित्राभू, सुशीला** और **सुमित्रा** ऐसे दूसरे नाम भी थे। इसके बाद पुण्य, लावण्य और सौंदर्य में जिसका उत्तम अंग है ऐसी **सुप्रभा** नामक की अनिंदित राजपुत्री को भी ब्याहे। विवेकी जन में शिरोमणिरुप दशरथ राजा धर्म, अर्थ को विघ्न पहुंचाए बिना उन तीनों राजकन्याओं

१. उसका दूसरा नाम कौशल्या था। २. उसका प्रसिद्ध नाम सुमित्रा था कि जो लक्ष्मण की माता है।

के साथ विषयसुख भोगने लगे।

उस समय में अर्धभरतक्षेत्र के राज्य को भोगनेवाले रावण ने सभा में बैठे बैठे किसी उत्तम नैमित्तिक को पूछा, 'हे निमितज्ञ देवता अमर कहलाते हैं, लेकिन वे नाम के ही अमर हैं। परमार्थ में अमर नहीं हैं। जो कोई संसारवर्ती प्राणी है, उनकी मृत्यु अवश्य होती है तो मेरी मृत्यु स्वपरिणाम से हैं या दूसरे से है यह निःसंदेह कहो। क्योंकि आप्त पुरुष स्फूटभाषी (सत्य) ही होता है।' निमित्तिए ने कहा, 'अब के बाद होनेवाली **जानकी** (जनक राजा की पुत्री) के निमित्त से दशरथ राजा के अब के बाद होनेवाले पुत्र से आपकी मृत्यु होगी।' इस प्रकार के उसके वचन सुनकर विभीषण बोला, ''इस निमित्तिए का वचन यद्यपि निरंतर सत्य ही होता है, लेकिन इस बार तो मैं उसे तुरंत असत्य कर दूंगा, क्योंकि उस कन्या के और वर के पिता होनेवाले **जनक** तथा **दशरथ**, जो दोनों इस अनर्थ के बीजरुप हैं उन्हें ही मैं मार डालूंगा, जिससे आपका कल्याण होगा। जब उनको मार डालने से उनके पुत्र-पुत्री की उत्पत्ति ही बंध हो जायेगी तब इस निमित्तिए का वचन मिथ्या हो जायेगा, इसमें कोई आश्चर्य जैसा नहीं है।'' इस प्रकार विभीषण के हिंमतपूर्ण वचन सुनकर 'बहुत अच्छा' यूं रावण ने कहा। फिर विभीषण अपने घर आया।

यह पूरा वृत्तांत वहां सभा में बैठे हुए नारद ने सुना। इसलिए तुरंत ही वह दशरथ राजा के पास आया। राजा दशरथ देवर्षि को आते देखकर दूर से ही खड़े हो गये और नमस्कार करके उनको गुरु समान गौरव से बैठाया। फिर दशरथ ने पूछा कि 'आप कहां से आ रहे हो ?'

नारद ने कहा, 'श्री सिमंधर प्रभु का सूर-असुरों ने किया हुआ निष्क्रमणोत्सव[1] देखने के लिए मैं पूर्वविदेह क्षेत्र में पुंडरिकीणी नगरी में गया था और वह महोत्सव देखकर मेरु पर गया था। वहां अनेक तीर्थंकरों की वन्दना करके लंकानगरी में गया। वहां शांतिगृह में रहे शांतिनाथ को शीश झुकाकर रावण की राजसभा में गया। वहां किसी निमित्तिए ने रावण का वध जानकी के निमित्त आपके पुत्र द्वारा कहा, जो मेरे सुनने में आया और वह सुनकर विभीषण ने आपको और राजा जनक को मार डालने की प्रतिज्ञा की, जो मैंने भी सुनी। अब वह महाभुज अल्प समय में ही यहां आ पहुंचेगा। यह पूरा वृत्तांत जानकर आपके साथ साधर्मिकपने की प्रीति के कारण लंकापुरी से मैं संभ्रम सहित शीघ्रतापूर्वक यहाँ आपको वह बात बताने आया हूँ।'' यह सुनकर दशरथ ने नारद की पूजा करके उन्हे बिदा किया। वहां से जनक राजा के पास जाकर नारद ने उनको भी यह वृत्तांत बताया। राजा दशरथ ने सचिवों को बुलवाकर यह वृत्तांत कहकर उनको राज्य सौंपकर योगी की तरह कालवंचना करने के लिए वे वहां से चल निकले। सचिवों ने शत्रु को मोह उपजाने के लिए दशरथ राजा की एक लेप्यमय

१. दीक्षा लेने के लिए निकलने पर होता उत्सव (सिमंधर प्रभु ने मुनि सुव्रत और नेमिनाथ के अंतर में दीक्षा ली है ऐसा यह समय समझना चाहिए)

(मीन) मूर्ति बनवाकर राज्यगृह के अंदर अंधेरे में स्थापित की। जनकराजा ने भी दशरथ के भाँति किया और उनके सचिवों ने भी दशरथ के सचिवों की तरह ही किया। फिर दशरथ और जनकराजा अलक्ष्यपन (पहंचाने नहि) से पृथ्वी पर घूमने लगे।

विभीषण कोप से अयोध्या में आया और वहां अंधकार में रही दशरथ की लेप्यमय मूर्ति के मस्तक को उसने खड्ग से छेद डाला। उस समय पूरे नगर में कोलाहल हो गया। अंतःपुर में बड़ा आक्रंद ध्वनि हुआ। सामंत राजा अंगरक्षक सहित तैयार होकर वहा दौड़ आये और गूढ मंत्रवाले सचिवों ने राजा की सर्व प्रकार से उत्तरक्रिया की। दशरथ राजा को मृत्यु पाया जानकर विभीषण लंका तरफ चला गया। अकेले जनक राजा से कुछ नहीं हो पायेगा ऐसा सोचकर उसने जनक को नहीं मारा।

मिथिल और ईक्ष्वाकु वंश के राजा जनक और दशरथ परस्पर साथ रहकर एक ही अवस्था के मित्र बनकर पृथ्वी पर घूमने लगे। वे घूमते घूमते उत्तरापथ में आये। वहां कौतुकमंगल नगर के राजा **शुभमति** की पृथ्वीश्री रानी के उदर से जन्मी द्रोणमेघ की बहन **कैकेयी** नाम की कन्या के स्वयंवर की बात सुनकर वे दोनों उस स्वयंवर मण्डप में गये। वहां हरिवाहन वगैरह राजा आये थे। उनके बीच में कमल पर दो हंस बैठे त्यों वे उंचे आसन पर बैठे। रत्नालंकार से विभूषित होकर कन्यारत्न कैकेयी मानो साक्षात लक्ष्मी हो त्यों उस स्वयंवर मण्डप में आयी। प्रतिहारी के हाथ का सहारा लेकर प्रत्येक राजा को निरखते हुए वह नक्षत्रों को चन्द्रलेखा उल्लंघन करें त्यों कई राजाओं का उल्लंघन करके गई। क्रमशः वह समुद्र के पास गंगा की भाँति दशरथ के पास आयी। वहां यात्रियों को उतारकर नाव ज्यों जल में खड़ी रहे त्यों वह खड़ी रही। फिर तत्काल रोमांचित देहवाली कैकेयी ने बड़े हर्ष से अपनी भुजलता की तरह दशरथ के कंठ में वरमाला आरोपित की। यह देखकर हरिवाहन वगैरह अभिमानी राजा अपना तिरस्कार हुआ मानकर प्रज्वलित अग्नि की तरह कोप से प्रज्वलित हो गये। 'इस कंगाल और कार्पटिक जैसे एकाकी राजा को यह कैकेयी वरी है, लेकिन हम उसे छीन लेगे तो वह वापस किस तरह ले पायेगा ?' इस प्रकार बड़े आडंबर से बोलते हुए वे सर्व राजा अपनी अपनी छावनी में जाकर पूरी तरह से तैयार हुए। सिर्फ शुभमति राजा दशरथ के पक्ष में था। वह चतुरंग सेना लेकर बड़े उत्साह से युद्ध करने के लिए सज्ज हुआ। उस समय एकाकी दशरथ ने कैकेयी को कहा, "प्रिया ! यदि तू सारथी बने तो मैं इन शत्रुओं को मार डालूं।" यह सुनकर कैकेयी घोडे की लगाम लेकर एक बड़े रथ पर आरूढ हुई क्योंकि वह बुद्धिमान रमणी बहत्तर कलाओं मे प्रवीण थी। फिर राजा दशरथ धनुष, भाथे और कवच धारण करके रथ पर चढ़े। यद्यपि वे एकाकी थे, परंतु शत्रुओं को तृण समान गिनने लगे। चतुर कैकेयी ने हरिवाहन प्रमुख सब राजाओं

के रथ के साथ समान काल पर प्रत्येक के सन्मुख अपना रथ तेजी से लगाने (घुमाने) लगी तो दूसरा इन्द्र हो ऐसे अखंड पराक्रमी शीघ्रवेधी दशरथ ने शत्रुओं के प्रत्येक रथ को खंडित कर डाला।

इस प्रकार दशरथ राजा सब भूपतियों को पराजित करके फिर चलित पृथ्वी जैसी कैकेयी से ब्याहे। फिर रथी दशरथ ने नववधू रमणी को कहा, "हे देवी ! मैं तेरे सारथिपन से प्रसन्न हुआ हूँ इसलिए वरदान माँग ले।" कैकेयी बोली, "स्वामी ! जब समय आयेगा तब में वरदान माँगूगी, तब तक यह वरदान आपके पास मेरी अमानत रहे।" राजा ने ऐसा करना कबूल किया। फिर हठ से हरे हुए शत्रुओं के बेसुमार सैन्य के साथ लक्ष्मी जैसी कैकेयी को लेकर असंख्य परिवारवाला दशरथ राजा राजगृह नगर गया, और जनक राजा अपनी मिथिला नगरी में गया। समय को पहचाननेवाले बुद्धिमान पुरुष योग्य प्रकार से ही रहते हैं, जैसे तैसे नहीं रहते। राजा दशरथ मगधपति को जीतकर राजगृह नगर में ही रहा। रावण की शंका से अयोध्या में गया ही नहीं। फिर अपराजिता वगैरह अपने अंतःपुर को वहाँ बुलाया। पराक्रमी वीरों को सर्व जगह राज्य है। अपनी चारों रानियों के साथ क्रीडा करते हुए राजा दशरथ राजगृह नगरी में लम्बे समय तक रहा। राजाओं को स्व-उपार्जित भूमि विशेष प्रीति देती है।

एक बार **अपराजिता** पटरानी ने रात्रि के शेष भाग में बलभद्र के जन्म को सूचित करने वाले हाथी, शेर, चंद्र और सूर्य ये चार स्वप्न देखे। उस समय कोई महर्द्धिक देव ब्रह्मदेवलोक में से च्यूत होकर सरोवर में हंस की भाँति वह अपराजिता के उदर में अवतरित हुआ। क्रमशः वर्ण से पुंडरीक कमल का अनुसरण करते हुए और मनुष्यों में पुंडरिक जैसे संपूर्ण लक्षणवाले एक पुत्र को अपराजिता ने जन्म दिया। पूर्णचंद्र के दर्शन से समुद्र की तरह उस प्रथम बालरत्न के मुख कमल के दर्शन से राजा अत्यंत हर्षित हुआ। राजा उस समय चिंतामणि रत्न की भाँति याचकों को मनवांछित दान देने लगा। "पुत्र उत्पन्न होते ही दिया गया दान अक्षय होता है" ऐसी लोकोक्ति है। उस समय लोगों ने ऐसा महोत्सव किया कि जिससे राजा दशरथ से भी उनका अति हर्ष नज़र आया। नगरजन राजा के दरबार में दूर्वा, पुष्प और फलादिक से युक्त मंगलमय पूर्ण पात्र लाने लगे। नगर में सब जगह मधुर गीत गान होने लगे, केसर का छिड़काव होने लगा, और तोरण की श्रेणियां शोभा पाने लगी। उस प्रभाविक पुत्र के प्रभाव से राजा दशरथ को अनेक राजाओं की ओर से भी अनसोचे नज़राने आने लगे। राजा दशरथ ने पद्मा लक्ष्मी के निवास करने के पद्म (कमल) रुप उस पुत्र का **पद्म** ऐसा नाम रखा, और इस लोक में वह **राम** ऐसे नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इसके बाद एक बार रानी **सुमित्रा** ने रात्रि के शेष समय में वासुदेव के जन्म को सूचित

करनेवाले हाथी, शेर, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, लक्ष्मी और समुद्र - ये सात स्वप्न देखे। उस समय एक परमार्द्धिक देव देवलोक में से च्यूत होकर सुमित्रा देवी के उदर में अवतरित हुआ। समय आने पर वर्षाऋतु के मेघ जैसे वर्णवाला और संपूर्ण लक्षण को धरने वाला एक जगत्-मित्र पुत्ररत्न को उसने जन्म दिया। उस समय दशरथ राजा ने श्रीमद् अर्हंत के सर्व नगरचैत्यों में स्नात्रपूर्वक अष्ट प्रकार की पूजा रचवायी। हर्ष पाए हुए राजा ने कारागृह में बंदी बनाये गये शत्रुओं को भी छोड़ दिया। उत्तम पुरुष का जन्म होने पर कौन सुख से नहीं जियेगा ? उस समय सिर्फ प्रजासहित दशरथ राजा ही अकेले उच्छ्वास पाए थे, इतना ही नहीं, देवी पृथ्वी भी तत्काल उच्छ्वास को पाई थी। जिस प्रकार राम के जन्म समय राजा ने उत्सव किया था, उससे भी बढ़कर उत्सव इस समय किया। क्योंकि 'हर्ष में कौन तृप्ति पाए ?' दशरथ राजा ने उस पुत्र का **नारायण** ऐसा नाम रखा, लेकिन इस लोक में वह **लक्ष्मण** ऐसे दूसरे नाम से प्रसिद्ध हुआ। पयपान करनेवाले वे दोनों कुमार क्रमशः पिता की दाढीमूछ के केश को आकर्षण करने की शिक्षा देनेवाली बाल्यावस्था को प्राप्त हुए। धात्रीमाताओं ने लाड लडाए हुए दोनों कुमारों को राजा दशरथ अपने अन्य दो भुजदण्ड (हाथ) हो त्यों बार बार देखने लगे। स्पर्श से मानो अंग में अमृत बरसाते हो त्यों वे सभा में एक उत्संग (गोद) में से दूसरे उत्संग में यूं बार बार संचरित होने लगे। क्रमशः बड़े होने पर दोनों पुत्र नीलांबर और पीतांबर धारण करके चरणपात से पृथ्वी तल को कंपाते हुए चलने लगे। मानो मूर्तिमंत दो पुण्यराशि (ढेर) हो त्यों उन्होंने सिर्फ कलाचार्य को साक्षी बनाकर ही सर्व कलाएं संपादन की। लीलामात्र में मुष्टिप्रहार से बरफ की भाँति वे पराक्रमी वीर बड़े पर्वतों को भी चूर्ण कर डालते थे। जब वे व्यायामशाला में रहते हुए धनुष्य को प्रत्यंचा पर चढ़ाते तब सूर्य भी अपना वेध होगा ऐसी शंका से कंपित हो जाता था। वे अपने सिर्फ भुजबल से भी शत्रुओं के बल को तृण समान मानते थे। राजा दशरथ उन दोनों की शस्त्र और अस्त्र में संपूर्ण कुशलता से तथा अपार भुजा के बल से अपने को देवासुरों से भी अजेय मानने लगा।

एक बार उन कुमारों के पराक्रम से धीरज का अवलंबन करके राजा दशरथ ईक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी अयोध्या नगरी में आया। वहां दुर्दशा में से मुक्त बना वह बादलों में से निकले सूर्य जैसे प्रताप से प्रकाशित होते हुए राज्य करने लगा। एक बार **कैकेयी** रानी ने शुभ स्वप्न से सूचित और भरत क्षेत्र के आभूषणरुप **भरत** नाम के पुत्र को जन्म दिया। **सुप्रभा** ने भी जिसकी भुजा का पराक्रम शत्रुघ्न है ऐसे **शत्रुघ्न** नाम के कुलनंदन पुत्र को जन्म दिया। स्नेह से रातदिन अवियुक्त रहते भरत और शत्रुघ्न भी मानो दूसरे बलदेव और वासुदेव हो त्यों शोभा पा रहे थे। राजा दशरथ चार गजदंताकृति पर्वतों से ज्यों मेरुगिरि शोभा पाता है त्यों चार पुत्रों से शोभा पाने लगे।

इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र में दारु नाम के गाँव में **वसुभूति** नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसे **अनुकोशा** नाम की स्त्री से **अतिभूति** नाम का एक पुत्र हुआ। अतिभूति को **सरसा** नाम की पत्नी हुई। एक बार **क्यान** नाम के एक ब्राह्मण ने उसके उपर राग आने से छलपूर्वक उसका हरण किया। कामातुर मनुष्य क्या नहीं करता ? अतिभूति उसे खोजने के लिए भूत की तरह पृथ्वी पर भटकने लगा और उस पुत्र और पुत्रवधू के लिए उनके पीछे अनुकोशा और वसुभूति भी घूमने लगे। सर्वत्र भटकने के बाद भी उन्हें पुत्र और पुत्रवधू का पता नहीं लगा। आगे चलते हुए उन्हें एक मुनि नजर आये तो उन्होंने भक्ति से वंदना की। उनसे धर्म सुनकर उन दोनों ने व्रत ग्रहण किया। गुरु की आज्ञा से अनुकोशा **कमलश्री** नाम की आर्या के पास रही। काल योग से मृत्यु पाकर वे सोधर्म देवलोक में देवता हुए। एक दिन भी व्रत आराधन किया हो तो स्वर्ग सिवा दूसरी गति नहीं होती।

वसुभूति वहां से च्यूत होकर वेताढ्य पर्वत पर रथनूपूर नगर का **चंद्रगति** नाम का राजा हुआ। अनुकोशा भी वहां से च्यूत होकर विद्याधरपति चन्द्रगति की **पुष्पवती** नाम की चरित्रवाली सती स्त्री हुई। वह सरसा किसी साध्वी को देखकर, दीक्षा लेकर, मृत्यु पाकर इशान देवलोक में देवीरुप में उत्पन्न हुई। सरसा के विरह से पीडित ऐसा अतिभूति मृत्यु पाकर संसार में चिरकाल भटककर एक हंस का शिशु बना। एक बार बाज पक्षी ने उसे भक्षण करने के लिए उठाया। वहां से स्खलना पाते ही वह किसी मुनि के पास गिरा। श्वास कंठ पर आ गये होने से मुनि ने उसे नमस्कार मंत्र दिया। उस मंत्र के महाप्रभाव से मृत्यु पाकर वह किन्नरजाति के व्यंतर में दस हजार वर्ष के आयुष्यवाला देवता बना। वहां से च्यूत होकर विदग्ध नाम के नगर में प्रकाशसिंह राजा की प्रवरावली रानी से **कुंडलमंडित** नाम का पुत्र बना। वह क्यान उधर भोगासक्त होकर मृत्यु पाकर, लंबे काल तक भव-अटवी में भटककर चक्रपुर नगर के राजा चक्रध्वज के पुरोहित धूम्रकेश की स्वाहा नाम की स्त्री के उदर से **पिंगल** नाम का पुत्र हुआ। वह पिंगल चक्रध्वज राजा की **अतिसुंदरी** नाम की पुत्री के साथ एक गुरु के पास पढ़ता था। कुछ काल में ही उन दोनों के बीच परस्पर अनुराग हुआ। एक बार पिंगल छल से अतिसुंदरी का हरण करके विदग्ध नगर चला गया। कलाविज्ञान विहिन पिंगल तृणकाष्ठादि बेचकर अपनी आजिविका (गुजारा) चलाने लगा। "निर्गुणिको तो यही योग्य है" वहां रहती अतिसुंदरी राजपुत्र कुंडलमंडित को नज़र आयी, तो तत्काल उन्हें परस्पर अनुराग उत्पन्न हुआ। राजपुत्र कुंडलमंडित ने उसका हरण किया। परंतु पिता के भय से वह किसी दुर्गदेश में एक पल्ली (निवेश) बनाकर उसके साथ रहने लगा।

अतिसुंदरी के विरह से **पिंगल** उन्मत होकर पृथ्वी पर भटकने लगा। एक बार भटकते

भटकते आर्यगुप्त नाम के आचार्य उसको नजर आये। उनसे धर्म सुनकर उसने दीक्षा ली, लेकिन उसने अतिसुंदरी का प्रेम थोड़ा सा भी नहीं छोड़ा। वह कुंडलमंडित पल्ली में रहते हुए श्वान की तरह छल करके दशरथ राजा की भूमि को लूंटने लगा। बालचंद्र नाम के एक सामंत ने दशरथ राजा की आज्ञा से उसे छल करके पकडा और बांधकर उनके पास ले आया। कुछ समय के बाद दशरथ राजा ने कुंडलमंडित को छोड़ दिया। "जब शत्रु दीन और क्षीण हो जाता है तब बड़े पुरुषों का कोप ठण्डा होता है।" उसके बाद कुंडलमंडित पिता के राज्य के लिए पृथ्वी पर भटकने लगा।

एक बार मुनिचंद्र नाम के किसी मुनि से धर्म सुनकर वह श्रावक बना। राज्य की इच्छा से मृत्यु पाकर वह मिथिलानगरी में जनक राजा की स्त्री विदेहा के गर्भ में पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ। वह सरसा जो इशान देवलोक में देवी बनी थी वह एक पुरोहित की वेगवती नाम की पुत्री हुई। वह उसी भव में दीक्षा लेकर मृत्यु पाने पर ब्रह्मदेवलोक में गयी। वहां से च्यूत होकर विदेहा रानी के उदर में कुंडलमंडित के जीव के साथ ही पुत्री रुप में उत्पन्न हुई। समय आने पर विदेहा ने पुत्र और कन्या के युगल को जन्म दिया। उसी समय वे पिंगल मुनि मृत्यु पाकर सौधर्म कल्प में देवता बने, उसने अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव देखा। तो अपने पूर्वभव के बैरी कुंडलमंड़ित को जनक राजा के पुत्ररुप में जन्मा देखा। पूर्वजन्म के बैर से कोप करके उसने जन्मते ही उसे हर लिया। फिर उसने सोचा कि 'इसे शिलातल पर पटककर मार डालूं, परंतु नहीं, मैंने पूर्वभव में दुष्ट कर्म किया और उसका फल मैंने अनेक भवों में लम्बे समय तक अनुभवा है। दैवयोग से मुनिपना प्राप्त करके मैं इस भूमिका तक आया हूँ, तो इस बालक की हत्या करके वापस अनंतभव परिभ्रमण करनेवाला किसलिए बनूं ?' इस प्रकार सोचकर उस देव ने कुंडलादिक आभूषणों से उस बालक को सजाकर, गिरते नक्षत्र की कांति को भ्रम कराते हुए उस बालक को उठाकर वेताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी में स्थनूपुर नगर के नंदनोद्यान में शय्या पर रखें त्यों धीरे से रखा। आकाश में से गिरती उस बालक की कांति को देखकर 'यह क्या हुआ ?' यों संभ्रम पाए **चंद्रगति** राजा उसके गिरने अनुसार नंदनवन में गया। वहां दिव्य अलंकार से भूषित उस बालक को उसने देखा। तुरंत ही उस अपुत्र विद्याधरपति चंद्रगति ने उसे पुत्ररुप मानकर उसे ग्रहण किया और राजमहल में आकर अपनी प्रिया **पुष्पवती** को अर्पण किया। फिर नगर में आकर आघोषणा करवाई कि "आज गुढगर्भादेवी पुष्पवती ने एक पुत्र को जन्म दिया है।" राजा ने और नगरजनों ने उसका जन्मोत्सव किया। प्रथम के आभामंडल[1] के संबंध से उसका नाम **भामंडल** रखा। पुष्पवती और चंद्रगति के नेत्ररुप कुमुद में चन्द्र जैसा यह बालक खेचरियों से लालन-पालन होते हुए वृद्धि पाने लगा।

१. कांतिसमूह

यहां जब पुत्र का हरण हुआ तब रानी विदेहा ने करुण स्वर में रुदन करके अपने कुटुंबियों को शोकसागर में मग्न कर दिया। राजा जनक ने उसकी खोज के लिए प्रत्येक दिशा में दूत भेजे; परंतु लम्बे समय तक उसके समाचार कहीं से भी नहीं मिले। जनकराजा ने 'इस पुत्री में अनेक गुणरुप धान्य के अंकुर है' ऐसा सोचकर युगलिकरुप में जन्मी पुत्री का **सीता** ऐसा नाम रखा। कुछ समय में उनका शोक मंद पड गया। क्योंकि इस संसार में मनुष्य पर शोक और हर्ष आते-जाते रहते हैं।

सीताकुमारी रुपलावण्य की संपत्ति के साथ वृद्धि पाने लगी। धीरे धीरे चन्द्रलेखा की तरह वह कलापूर्ण हो गयी। क्रमशः वह कमलाक्षी बाला युवावस्था को प्राप्त होते ही उत्तम लावण्यमय लहरवाली नदी होकर लक्ष्मी जैसी दिखने लगी। उसे देखकर 'इसके योग्य वर कौन होगा ?' यूं जनकराजा रात-दिन चिंता करनें लगे। उसने अपने सचिवों के साथ विचार क़रके अपनी आंखो से अनेक राजाओं के कुमारों को देखा लेकिन उसमें से कोई उसे जँचा ही नहीं।

उस समय अर्धबर्बर देश के **आतरंगतम** वगैरह दैत्य जैसे कई म्लेच्छ राजा आकर जनक की भूमि पर उपद्रव करने लगे। कल्पांतकाल के समुद्रजल की तरह उनको रोकने में असमर्थ ऐसे जनक ने दशरथ राजा को बुलवाने के लिए एक दूत भेजा। बड़े मनवाले दशरथ ने आये हुए उस दूत को संभ्रम से बुलाकर अपने पास बैठाकर जिस कार्य के लिए आया हो वह कहने के लिए कहा। दूत बोला, "हे महाभुज ! मेरे स्वामी को अनेक आप्त पुरुष हैं लेकिन, आत्मा की तरह उनके हृदयमित्र तो एक आप ही हो। राजा जनक को सुख़-दुःख में ग्रहण करने योग्य आप ही हो। इस समय वह दुःखी हैं इसलिए उन्होंने कुलदेवता की भाँति आप का स्मरण किया है। वैताढ्यगिरि के दक्षिण में और कैलास[1] पर्वत के उत्तर में भयंकर प्रजावाले कई अनार्य जनपद[2] हैं। उनमें बर्बरकुल के समान अर्धबर्बर नाम का देश है। वह दारुण आचारवाले पुरुषों से अत्यंत दारुण है। उस देश में आभूषणरुपी मयूरसाल नाम का नगर है। उसमें आतरंगतम नाम का अतिदारुण म्लेच्छ राजा है। उसके हजारो पुत्र राजा बनकर शुक, मंकन और कांबोज वगैरह देशो को भोग रहे हैं। इस समय उस आतरंगतम राजा ने अक्षय अक्षौहिणी (सेना) वाले उन सब राजाओं सहित आकर जनक राजा की भूमि को परेशान की है। उन दुराशयो ने हरेक जगह चैत्यों का नाश किया है। जन्म पर्यंत चले उतनी संपत्ति प्राप्त करने से भी अधिक उन्हें धर्म में विघ्न करना विशेष इष्ट है। इसलिए अत्यंत इष्ट ऐसे धर्म का और जनकराजा का आप रक्षण कीजिए। उन दोनों के आप प्राणरुप हो।"

इस प्रकार के दूत के वचन सुनकर दशरथ राजा ने तत्काल यात्राभेरी बजवाई। सत्पुरुष

१. पर्वत विशेष। २. देश।

सत्पुरुषों की रक्षा करने में कभी भी विलम्ब नहीं करते। उस समय राम ने आकर पिता को कहा कि "हे पिता ! म्लेच्छ लोगों का उच्छेद करने के लिए स्वयं आप जाओगे तो अनुज बंधु सहित यह राम यहां क्या करेगा ? पुत्र स्नेह के कारण आप हमें असमर्थ मानते हो, लेकिन ईक्ष्वाकु वंश के पुरुषों में जन्म से ही पराक्रम सिद्ध है इसलिए हे पिता ! आप प्रसन्न होकर निवृत्ति पाओ और म्लेच्छो का उच्छेद करने की मुझे आज्ञा दे। कुछ समय में ही आप पुत्र की जयकहानी सुनोगे।" इस प्रकार कहकर महामुश्किल से राजा की आज्ञा पाकर राम अपने अनुज बंधुओं सहित बड़ी सेना लेकर मिथिलापुरी गये। ज्यों बड़े बड़े वन में चमुरु, हाथी, शार्दूल और शेर दिखाई दे त्यों उन्होंने नगरी के परिसर भाग में म्लेच्छ सुभटों को देखा। उनकी भुजाओं मे रण करने की खुजली आ रही है और वे अपने को विजयी मानते हैं ऐसे उन म्लेच्छों को महा पराक्रमी राम ने तत्काल परेशान किया। रज को उड़ानेवाला महावायु ज्यों जगत को अंधा करता है त्यों उन्होंने क्षणमात्र में राम के सैन्य को अस्त्रों से अंधा कर दिया। उस समय शत्रु और उसका सैन्य अपनी जीत मानने लगा, जनक राजा अपना मरण मानने लगे और लोग अपना संहार सोचने लगे, इतने में तो प्रसन्न होते राम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और रणनाटक के वाजिंत्ररुपी उसकी टंकार ध्वनि की। फिर पृथ्वी पर रहे देव की तरह भ्रुकुटि के भंग को भी नहीं करते राम ने मृगों के शिकारी की तरह उस धनुष्य से कोटी म्लेच्छों को बेध डाला।' यह जनक राजा गरीब है, उसका सैन्य एक खरगोश जैसा है, और उसकी सहाय करने आया हुआ सैन्य तो प्रथम से ही दीनता पा गया है, लेकिन अरे ! ये बाण आकाश का आच्छादन करते हुए गरुड की भाँति यहां आ रहे हैं वे किसके होगे ?' यूं परस्पर बाते करते हुए आतरंगादिक म्लेच्छ राजा कोप ओर विस्मय पाकर नजदीक आकर राम के उपर एक साथ अस्त्रवृष्टि करने लगे। दुरापाती, दृढघाती और शीघ्रवेधी राघव (राम) ने हाथियों को अष्टापद की भाँति उन म्लेच्छों को टंकार मात्र में भग्न कर दिये। पलभर में वे म्लेच्छ काक पक्षी की तरह दसों दिशाओं मे भाग गये। तो जनक राजा और जनपद के लोग सभी स्वस्थ हुए। राम का पराक्रम देखकर हर्ष पाए जनक राजा ने अपनी पुत्री सीता राम को दी। राम के आने से जनक ने पुत्री के लिए योग्य वर की प्राप्ति और म्लेच्छो का विजय ये दो काम सिद्ध हो गये। उस समय में लोगों से जानकी के रुप का विशिष्ट वर्णन सुनकर उसे देखने के लिए **नारद** वहां आये और उन्होंने कन्यागृह में प्रवेश किया। पीले नेत्रवाले, पीले केश धारक, बडे उदरवाले, हाथ में छाता और दंड रखनेवाले, कोपीन[1] मात्र पहननेवाले, कृश शरीरवाले और जिनके सर पर बाल उड़ रहे है ऐसे भयंकर नारद को देखकर सीता भय पा गई। वह कांपते कांपते 'हे मा !' यूं बोलते हुए गर्भागार[2] में घुस गई। यह सुनकर तत्काल दोडी आई दासियों और

१. एक लंगोटी। २. अंदर का कमरा।

द्वारपालों ने कोलाहल करके कंठ, शिखा और भुजाओं से नारद को पकड़ लिया। उनके कलकल शब्द से यमदूत जैसे शस्त्रधारी राजपुरुष उसे 'मारो मारो' यूं बोलते हुए दोडे आये। नारद इन सबसे क्षोभ पाकर उनसे मुश्किल से छूटकर वैताढ्यगिरि पर आये। फिर उन्होंने सोचा कि 'व्याघ्रियों (बाघ) से गाय की तरह मैं दासियों से बड़ी मुश्किल से जीवित छूटकर भाग्यबल से जहां कइं विद्याधरों के राजा रहते हैं ऐसे इस वैताढ्यगिरि पर आ पहुँचा हूँ। इस गिरि की दक्षिण श्रेणी में इन्द्र समान पराक्रमी **भामण्डल** नाम का चन्द्रगति का युवापुत्र है, तो एक पट पर सीता अंकित करके उसे बताऊं। जिससे वह जबरन उसका हरण करेगा, इससे मेरे उपर जो बीता है उसका बदला मुझे मिल जाएगा।' ऐसा विचार करके नारद ने तीनों जगत को नज़र नहीं आया हो ऐसा सीता का स्वरुप पट पर अंकित करके भामंडल को दिखाया। वह देखते ही भूत की तरह कामदेव ने भामंडल के शरीर में प्रवेश किया; जिससे विंध्याचल में से लाए हुए हाथी की तरह उसे भी निंद्रा नहीं आयी। उसने मधुर भोजन खाना बंद किया, पीने योग्य पीना बंद किया, और ध्यानस्थ योगी की तरह मौन धरकर रहने लगा। भामंडल को ऐसा दुःखी देखकर राजा चंद्रगति ने पूछा, 'हे वत्स ! तुझे क्या मानसिक पीडा सता रही है या शरीर में कोई व्याधि हुआ है ? अथवा क्या किसिने तेरी आज्ञा का भंग किया है ? अथवा दूसरा कुछ तेरे दुःख का कारण है ? जो हो वह बता।'

पिता का ऐसा प्रश्न सुनकर भामंडलकुमार लज्जा से दोनों प्रकार[1] से नम्र मुख धरकर रहा। क्योंकि कुलीन पुत्र गुरुजन को ऐसा कहने के लिए समर्थ कैसे हो ? फिर भामण्डल के मित्रों ने 'नारद ने बताई हुई चित्रलिखित स्त्री की कामना भामण्डल के दुःख का कारण है' यूं कहा, तो राजा ने नारद को राजगृह में एकांत में बुलवाकर पूछा कि, 'आपने जो चित्रलिखित स्त्री दिखाई वह कौन है और किसकी पुत्री है ?' नारद ने कहा, 'मैंने चित्र में जो अंकित करके बताई है वो कन्या जनक राजा की पुत्री है और उसका नाम सीता है। जैसी वह रुप में है ऐसी चित्र में अंकित करने में मैं या दूसरा मनुष्य समर्थ नहीं है; क्योंकि मूर्ति से तो वह लोकोत्तर स्त्री है। उस सीता का जैसा रुप है वैसा रुप देवियों, नागकुमारियों या गंधर्वों की स्त्रियों में भी नहीं है, तो मनुष्यस्त्री की तो बात ही क्या कहनी ! उसके रुप जैसा यथार्थ रुप अंकित करने के लिए देवता, अनुसरण करने के लिए देवनट, और रचने के लिए प्रजापति भी समर्थ नहीं हैं। उसकी आकृति में तथा वचन में जो माधुर्य है और उसके कंठ में वह हाथ पैर में जो लालिमा है, वह अनिर्वचनीय ही है। जिस प्रकार उसके यथार्थ रुप का आलेख करने में मैं समर्थ नहीं हूँ, उस तरह उसके रुप का वर्णन करने में भी मैं समर्थ नहीं हूँ। फिर भी मैं आपको परमार्थ रुप मैं कहता हूँ कि यह स्त्री भामण्डल के योग्य है ऐसा मैं मन से सोचकर यथाबुद्धि

१. अंतर से और बाह्य से।

से पट्ट में अंकित करके मैंने उसको बताई है।''

इस प्रकार की उसकी हकीकत सुनकर राजा चंद्रगति ने 'वत्स ! वह तेरी पत्नी होगी,' यूं भामण्डल को आश्वासन देकर नारद को विदा किया। फिर राजा ने **चपलगति** नाम के एक विद्याधर को आज्ञा दी की, 'जनक राजा का अपहरण करके तत्काल यहां ले आ।' तत्काल रात्रि को वहां जाकर उसने जनक राजा को गुप्त प्रकार से हरकर चंद्रगति को अर्पण किया। रथनुपूर के राजा चंद्रगति ने बंधु की तरह जनक राजा को आलिंगन करके पास में बिठाकर स्नेह से इस प्रकार पूछा, 'लोकोत्तर गुणवाली सीता नाम की तुम्हारी पुत्री है और रुप संपत्ति से परिपूर्ण भामण्डल नाम का मेरा पुत्र है, उन दोनो का वधू-वर के रुप में उचित संयोग हो और हम दोनों को संबंध से वह सौहृद (मित्र) बनो।' उसकी ऐसी मांग सुनकर जनक राजा बोला, 'वह पुत्री मैंने दशरथ के पुत्र राम को दे दी है, तो अब दूसरे को किस प्रकार दी जाय ? क्योंकि कन्या एक बार ही दी जाती है।' चंद्रगति बोला, ''हे जनक ! यद्यपि मैं सीता का हरण करने में समर्थ हूँ लेकिन स्नेहवृद्धि करने के लिए ही आपको यहां बुलवाकर मैंने आपसे उसकी याचना की है। यद्यपि आपने आपकी पुत्री राम के लिए कल्पी है तथापि वह राम यदि हमारी पराजय करेगा तो वह उसे ब्याह सकेगा, इसलिए दुःसह तेजवाले **वज्रावर्त** और **अर्णवावर्त** नाम के दो धनुष्य कि जो सहस्र यक्षों से अधिष्ठित हैं और देवता की आज्ञा से गोत्र देवता की भाँति सदैव हमारे घर में पूजित हैं, और जो भावि ऐसे बलदेव और वासुदेव के उपयोगी होनेवाले है उसे आप ले जाओ। यदि उन दोनों धनुष्य में से एक को भी राम चढ़ाएंगे तो उनसे हम पराजित हो गये ऐसा समझना। फिर वह तुम्हारी पुत्री सीता को सुखसे ब्याहे।''

ऐसी प्रतिज्ञा जबरन जनकराजा से कबूल कराई और जनक को मिथिला में पहुँचाया, और स्वयं भी पुत्रपरिवार सहित वहाँ जाकर दोनों धनुष्य जनक के दरबार में रखकर नगरी के बाहर ठहरा। जनक ने रात्रि में घटा हुआ यह पूरा वृत्तांत अपनी महारानी विदेहा को कहा, जो तत्काल उसके हृदय में शल्यरुप हो गया। विदेहा रुदन करके कहने लगी, 'हे दैव ! तू अत्यंत निर्दय है। तूने मेरे एक पुत्र को हर लिया है, उससे भी तृप्त न होते हुए इस एक पुत्री को भी हर लेना चाहता है ? इस लोक में पुत्री के लिए स्वेच्छा से वर ग्रहण किया जाता है, दूसरों की इच्छानुसार ग्रहण नहीं किया जाता। फिर मुझे तो दैवयोग से दूसरे की इच्छानुसार वर ग्रहण करने का समय आया है। दूसरे की इच्छा से प्रतिज्ञा किए इस धनुष्य को यदि राम आरोपण नहीं कर सकेंगे और कोई दूसरा करेगा तो जरुर मेरी पुत्री को अनिष्ठ वर की प्राप्ति होगी। इसलिए अब क्या करना ?'' विदेहा का ऐसा विलाप सुनकर जनकराजा बोले, 'हे देवी ! आप भय मत पाना। मैंने राम का बल देखा है। यह धनुष्य उसको एक लता जैसा है।'

विदेहा को इस प्रकार समझाकर जनक ने दूसरे दिन प्रभात में मांचों से मंडित ऐसे मंडप में उन दोनों धनुष्यरत्न की पूजा करके स्थापन किया। सीता के स्वयंवर के लिए जनक राजा के बुलवाये हुए विद्याधरों के और मनुष्यों के राजाओं ने आ आकर मंच पर स्थान लिया। फिर जानकी दिव्य अलंकार धारण करके सखियों सहित मानो भूमि पर चलती देवी हो त्यों उस मंडप में आयी। लोगों के नेत्र को अमृत की नदी जैसी वह जानकी राम को मन में रखकर धनुष्य की पूजा करके वहां खड़ी रही। नारद के कहे अनुसार ही उस सीता के रुप को देखकर कुमार भामण्डल पर कामदेव प्रहार करने लगा। उस समय जनक के एक द्वारपाल ने हाथ ऊंचा करके कहा, 'हे सर्व खेचरों और पृथ्वीचारी राजाओं ! आपको जनक राजा कहते हैं कि जो इन दो धनुष्यों में से एक धनुष्य को चढ़ाए वह मेरी पुत्री से ब्याहे।' इस प्रकार सुनकर पराक्रमी खेचर और भूचर राजा धनुष्य चढाने के लिए धनुष्य के पास एक के बाद एक आने लगे, परंतु भयंकर सर्पों से लिपटे और तीव्र तेजवाले उन दोनों धनुष्य का स्पर्श करने के लिए कोई समर्थ नहीं हो पाया तो चढ़ाने की तो बात ही क्या करनी ! धनुष्य में से निकलती चिनगारियों की अनेक ज्वालाओं से दग्ध बने वे लज्जा से अधोमुख होकर वापस निवृत्त होते थे।

फिर जिसके कांचनयुक्त (सुवर्ण) कुंडल चलायमान हो रहे हैं ऐसे दशरथकुमार राम गजेन्द्र चाल जैसी लीला करते हुए उस धनुष्य के पास आये। उस समय चंद्रगति वगैरह राजाओं के उपहास और जनक ने संदेह से देखे हुए लक्ष्मण के ज्येष्ठ बंधु राम ने निःसंदेहपूर्वक वज्र को इन्द्र स्पर्श करे त्यों जिसके पर से सर्प और अग्निज्वाला शांत हो गए है ऐसे वज्रावर्त धनुष्य को कर से स्पर्श किया। फिर धनुष्यधारियों मे श्रेष्ठ ऐसे राम ने लोहे की पीठ पर रखकर बरु की (तृण) तरह झुकाकर उस धनुष्य को प्रत्यंचा पर चढ़ाया और उसे कान तक तानकर ऐसा आस्फालन किया कि जिससे अपनी कीर्ति के पट्टह जैसा वह धनुष शब्द से भूमि और अंतरिक्ष के उदर को पूर्ण भरते हुए गाज उठा। तत्काल सीता ने स्वयंमेव राम के कंठ में स्वयंवरमाला डाली और राम ने धनुष्य पर से प्रत्यंचा उतार डाली। फिर लक्ष्मणने भी राम की आज्ञा से तत्काल अर्णवावर्त धनुष्य चढ़ाया जिससे लोग विस्मय से देखते रहे। उसका आस्फालन करते हुए उसके नाद दिशाओं के मुख को बधिर कर डाला। फिर प्रत्यंचा उतारकर उसे वापस उसके स्थान पर रख दिया। उस समय चकित और विस्मित बने विद्याधरों ने देवकन्या समान अद्भूत अपनी अट्ठारह कन्याएं लक्ष्मण को दी। चन्द्रगति विद्याधर वगैरह राजा नाराज होकर कोप पाये भामण्डल सहित अपने अपने स्थान पर गए।

जनक राजा के भेजे हुए समाचार से दशरथ राजा तत्काल वहाँ आए और राम एवं सीता का बड़े उत्सव से विवाह किया। जनक के भाई कनक ने सुप्रभा रानी के उदर से उत्पन्न हुई

भद्रा नाम की पुत्री भरत को दी। फिर दशरथ पुत्रों और वधुओं के साथ नगरजन जहाँ उत्सव कर रहे हैं ऐसी अयोध्यानगरी में आये।

एक बार दशरथ राजा ने बड़ी समृद्धि से चैत्यमहोत्सव और शांतिस्नात्र कराया। फिर राजा ने स्नात्रजल अंतःपुर के अधिकारी वृद्ध पुरुष के साथ पहले अपनी पटरानी को भेजा और फिर दासियों द्वारा दूसरी रानियों को स्नात्रजल भेजा। युवावस्था के कारण शीघ्र चलनेवासी दासियों ने जलदी से आकर अन्य रानियों को स्नात्रजल पहुंचाया, तो उन्होंने तत्काल उसका वंदन किया। वह अंतःपुर का अधिकारी वृद्धत्व के कारण शनि की तरह मंद मंद चल रहा था इसलिए पटरानी को स्नात्रजल तुरंत नहीं मिला तो वह सोचने लगी कि 'राजा ने सभी रानियों पर जिनेन्द्र का स्नात्रजल भेजकर प्रसाद किया, और मैं पटरानी होने पर भी मुझे नहीं भिजवाया, इसलिए मेरे जैसी मंदभाग्या को जीकर क्या करना है ? मान का ध्वंस (नाश) होने के बाद जीना तो मरण से भी विशेष दुःखरुप है' इस प्रकार सोचकर मरने का निश्चय करके, उस मनस्विनी ने अंदर के खंड में जाकर वस्त्र द्वारा फांसी खाने का आरंभ किया। इतने में राजा दशरथ वहां आ पहुँचे। उसको ऐसी स्थिति में देखकर उसके मरणोन्मुखपन से भय पाकर राजा ने उसे अपने उंत्संग में बैठाकर पूछा कि, 'प्रिया ! क्या अपमान होने से तूने ऐसा दुःसाहस आरंभा है ? दैवयोग से मुझसे तो कोई तुम्हारा अपमान नहीं हुआ।' वह गद्‌गद स्वर में बोली, 'आपने सभी रानियों को जिनस्नात्र का जल भिजवाया और मेरे लिए भिजवाया नहीं।' इस प्रकार वह कह रही थी कि वह वृद्ध कंचुकी 'यह स्नात्रजल राजा ने भिजवाया है' यूं कहते हुए वहाँ आया। राजा ने उस पवित्र जल से शीघ्र ही उस पटरानी के मस्तक पर अभिसिंचन किया। फिर उस कंचुकी को राजा ने पूछा, 'तू इतना देरी से क्यों आया ?' कंचूकी बोला, 'स्वामी ! सब कार्य में असमर्थ ऐसी मेरी वृद्धावस्था का ही इसमें अपराध है, आप स्वयमेव मेरे सामने देखिए' राजा ने उसके सामने देखा तो वह मरना चाहता हो त्यों कदम कदम पर स्खलित होता था, मुख में से लार टपकती थी, दांत गिर गये थे, मुख पर झुरियां पडी थी। सर्व अंग में रोम श्वेत हो गये थे। भ्रूकूटि के बाल से नेत्र ढक गये थे, मांस और रुधिर सूख गये थे, और सर्व अंग कांप रहे थे ऐसे उस कंचुकी को देखकर राजा ने विचार किया कि "जब तक मेरी ऐसी स्थिति नहीं हुई है तब तक मुझे मोक्ष के लिए प्रयत्न कर लेना चाहिए। ऐसे मनोरथ से राजा विषयों से पराङ्‌मुख हो गये और उस प्रकार संसार पर वैराग्यवाले चित्त से उसने कुछ काल व्यतीत किया।

एक बार **सत्यभूति** नाम के चतुर्ज्ञानी महामुनि संघ के साथ उस नगरी में पधारे। इसके समाचार सुनकर राजा दशरथ पुत्रादिक परिवार सहित वहां जाकर उनकी वन्दना करके देशना

सुनने की इच्छा से उनके समीप बैठे। उस समय वैताढ्यगिरि पर से विद्याधरों के अनेक राजाओं सहित राजा चंद्रगति सीता की अभिलाषा से तप्त ऐसे भामण्डल को साथ लेकर रथावर्त गिरि पर के अर्हंतो की वन्दना करके वापस लौटते हुए आकाशमार्ग से वहाँ आ पहुँचा। सत्यभूति मुनि को वहाँ पधारे हुए देखकर वह आकाश में से नीचे उतरा और उनको नमस्कार करके वह भी देशना सुनने बैठा। भामण्डल को सीता की अभिलाषा का दुःख है यह जानकर सत्यवादी सत्यभूतिसूरि ने समय के योग्य देशना दी। उसमें प्रसंगोपात्त उनको पाप में से निवृत्त होने के लिए चन्द्रगति और पुष्पवती के तथा भामण्डल और सीता के पूर्वभव कह सुनाए। उसमें सीता और भामण्डल का जुडवा उत्पन्न होना और भामण्डल का जन्मते ही अपहरण होना इत्यादि वृत्तांत यथार्थतापूर्वक बताया। यह सुनते ही भामण्डल को जातिस्मरण हुआ, तो तत्काल मूर्छित होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद संज्ञा पाकर भामण्डल ने अपने पूर्वभव का वृत्तांत सत्यभूति मुनि ने जिस प्रकार कहा था उस प्रकार पूरा अपने आप कह सुनाया। तत्काल चंद्रगति वगैरह परम संवेग को प्राप्त हुए और सद्‌बुद्धिवाले भामण्डल ने सीता को बहन जानकर नमस्कार किया। 'जन्मते ही जिसका हरण हुआ था वह यही मेरा सहोदर भाई है' यूं जानकर हर्ष पाती हुई महासती सीता ने उसे आशिष दी। फिर तत्काल जिसे सौहृदपन उत्पन्न हुआ है ऐसे विनयी भामण्डल ने ललाट से पृथ्वी का स्पर्श करके राम को भी नमस्कार किया। फिर चन्द्रगति ने उत्तम विद्याधरों को भेजकर विदेहा और जनकराजा को वहां बुलवाया और 'जन्मते ही जिसका हरण हुआ था वह यह भामण्डल आपका ही पुत्र है' इत्यादि सर्व वृत्तांत बताया। यह वचन सुनकर मेघ गर्जना से मयूर की भाँति जनक और विदेहा हर्ष पाए और विदेहा के स्तन में से दूध बहने लगा। अपने सच्चे माता-पिता को पहचानकर भामण्डल ने नमस्कार किया तो उन्होंने उसके मस्तक पर चुंबन करके हर्षाश्रु जल से उसे नहलाया।

उस समय राजा चंद्रगति ने संसार से उद्वेग पाकर भामंडल को राज्य पर स्थापित करके सत्यभूति मुनि से दीक्षा ली। फिर भामंडल सत्यभूति और चंद्रगति मुनि, जनक और विदेहा, दशरथ राजा, सीता और राम को नमस्कार करके अपने नगर में गए। राजा दशरथ ने सत्यभूति महर्षि को अपने पूर्वभव पूछे, तो मुनि कहने लगे कि, "सेनापुर में **भावन** नाम के कोई महात्मा वणिक को **दीपिका** नाम की पत्नी से हुई **उपास्ति** नाम की कन्या थी। उस भव में साधुओं के साथ प्रत्यनीकपन से वर्ताव करने के कारण उसने तिर्यंच वगैरह महा कष्टकारी योनियों में चिरकाल परिभ्रमण किया। क्रमशः वंगपुर में धन्य नाम के वणिक की सुन्दरी नामकी पत्नी से **वरुण** नाम का पुत्र हुआ। उस भव में स्वभाव से ही उदार ऐसा तू निरंतर साधुओं को श्रद्धापूर्वक अधिक दान देता था। वहां कालधर्म पाकर तू घातकीखंड द्वीप में उत्तरकुरुक्षेत्र में युगलिकरुप में उत्पन्न हुआ। वहां से देवपना प्राप्त हुआ। वहां से च्यूत होकर

पुष्कलावती विजय में पुष्कला नगरी के राजा **नंदीघोष** और **पृथ्वी** देवी का तू **नंदिवर्द्धन** नाम का पुत्र हुआ। नंदिघोष राजा तुझे-नंदिवर्द्धन को राज्य पर बैठाकर यशोधर मुनि से दिक्षा लेकर कालधर्म पाने के बाद ग्रैवेयक में देवरुप में उत्पन्न हुआ। तू नंदिवर्द्धन श्रावकपना पालकर मृत्यु के बाद ब्रह्मदेवलोक में देवता बना। वहां से च्यूत होकर प्रत्यग् विदेह में वैताढ्यगिरि की उत्तर श्रेणी के आभूषणरुपी शिशपुर नाम के नगर में खेचरपति **रत्नमाली** की **विद्युल्लता** नाम की स्त्री से **सूर्यजय** नाम का तू महापराक्रमी पुत्र बना। एक बार रत्नमाली गर्व पाए विद्याधरपति **वज्रनयन** को जीतने के लिए सिंहपुर गया। वहां वह बाल, वृद्ध, स्त्री, पशु और उपवन सहित पूरे सिंहपुर को दहन करने लगा। उस समय **उपमन्यु** नाम के उसके पूर्व जन्म के पुरोहित का जीव जो सहस्रार देवलोक में देव हुआ था उसने आकर कहा, 'हे महानुभाव ! ऐसा उग्र पाप मत कर। तू पूर्वजन्म में **भूरिनंदन** नाम का राजा था। उस समय तूने विवेक से मांसभोजन न करना ऐसी प्रतिज्ञा ली थी। फिर **उपमन्यु** नाम के पुरोहित के कहने से तूने वह प्रतिज्ञा तोड़ी थी। एक बार उपमन्यु पुरोहित को **स्कंद** नाम के एक पुरुष ने मार डाला, वहां से वह हाथी बना। उस हाथी को भूरिनंदन राजा को पकड़ लिया। एक बार युद्ध में वह हाथी मृत्यु पा गया और भूरिनंदन राजा की **गांधारी** नाम की पत्नी के उदर से **अरिसुदन** नाम के पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ। वहां जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होते ही उसने दीक्षा ली। वहां से मृत्यु पाकर यह मैं सहस्रार देवलोक में देवता बना हूँ। राजा भूरिनंदन मृत्यु पाकर एक वन में अजगर बना। वहां दावानल से दग्ध होकर दूसरी नर्कभूमि में गया। पूर्व के स्नेह के कारण मैंने नरक में जाकर उसे प्रतिबोध दिया। वहां से निकलकर तू **रत्नमाली** राजा बना है। ज्यों पूर्वभव में मांस के पचख्खाण का भंग किया था त्यों अनंतदुखदायी परिणामवाला यह नगरदाह तू मत कर।' इस प्रकार अपना पूर्वभव सुनकर रत्नमाली युद्ध में से निवृत्त हुआ और तेरे (सूर्यजय के) **सूर्यनंदन** नाम के पुत्र को राज्य पर बैठाकर तत्काल सूर्यजय पुत्र सहित **तिलकसुंदर** नाम के आचार्य से दीक्षा ली। दोनों ही मुनिपन में मृत्यु पाकर महाशुक्र देवलोक में देवता बने। वहां से च्यूत होकर **सूर्यजय** वह तूं **दशरथ** बना, और रत्नमाली च्यूत होकर यह **जनक** राजा बना। पुरोहित **उपमन्यु** सहस्रार देवलोक से च्यूत होकर इस जनक का अनुज बंधु **कनक** हुआ, और नंदीवर्द्धन के भव में तेरा पिता **नंदिघोष** था जो ग्रैवेयक से च्यूत होकर यह मैं **सत्यभूति** बना हूँ।''

इस प्रकार अपना पूर्वभव सुनकर दशरथ राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ। इसलिए तत्काल उनकी वन्दना कर के दीक्षा लेने की इच्छा से राज्यभार राम के सिर पर रखने के लिए राजमहल में आए। दीक्षा लेने मे उत्सुक ऐसे उसने रानियों, पुत्र और सचिवों को बुलाकर यथायोग्य प्रकार से सबके हार्थ सुधारस समान आलाप (बोल) करके अनुमति मागी। उस समय भरत ने नमस्कार करके कहा कि ''हे प्रभु ! आपके साथ मैं भी सर्वविरति ग्रहण

करुंगा। आपके बिना मैं घर में नहीं रहूंगा। हे स्वामी ! अन्यथा मुझे अत्यंत दुःखदायी दो कष्ट होंगे, एक तो आपका विरह और दूसरा इस संसार का ताप।'' भरत के ऐसे वचन सुनकर 'यदि इस प्रकार निश्चय होगा तो फिर मुझे पति या पुत्र कुछ भी नहीं रहेंगे' ऐसा सोचकर भय पायी कैकेयी बोली, 'हे स्वामी ! आपको याद है, मेरे स्वयंवर के उत्सव में मैंने आपका सारथिपन किया था, तब आपने मुझे एक वरदान मांगने के लिए कहा था। हे नाथ ! वह वरदान इस समय दीजिए, क्योंकि आप सत्यप्रतिज्ञावाले हो और महात्माओं की प्रतिज्ञा पाषाण में अंकित की हुई रेखा जैसी होती है।' दशरथ राजा बोले, 'मैंने जो वचन दिया है वह मुझे याद है। इसलिए एक व्रत लेने के निषेध के अलावा जो मेरे अधीन हो वह तू मांग ले।' उस समय कैकेयी ने याचना की, 'हे स्वामी ! यदि आप स्वयं दीक्षा ले रहे हो तो यह पूरी पृथ्वी मेरे पुत्र भरत को दीजिए।' तुरंत ही दशरथ राजा बोले, 'यह पृथ्वी इसी समय ले लो।' यूं कहकर लक्ष्मण सहित राम को बुलवाकर उन्होंने राम को इस प्रकार कहा, 'हे वत्स ! पूर्व समय में मेरा सारथिपन करने से प्रसन्न होकर मैंने कैकेयी को वरदान दिया था, वह वरदान इस समय भरत को राज्य देने के लिए वह मुझ से मांग रही है।' राम हर्ष पाकर बोले, ''मेरी माता ने महापराक्रमी मेरे भाई भरत को राज्य देने का वरदान मांगा यह बहुत अच्छा किया। हे पिता ! मुझ पर कृपा करके आप इसके बारे में मुझे पूछते हो, फिर भी लोगों में वह अविनय की सूचना का कारण बने यह मुझे दुःख देता है। यदि तात संतुष्ट होते हो तो यह राज्य चाहे जिसे दो, उसमें मैं तो आपके एक सेवक जैसा हूँ। उसे निषेध करने की या संमति देने की भी कोई सत्ता नहीं है। भरत है वह मैं ही हूँ, हम दोनो आपके लिए समान हैं, इसलिए बड़े हर्ष से भरत का राज्य पर अभिषेक कीजिए।''

राम के ऐसे वचन सुनकर दशरथ राजा प्रीति और विस्मय पा गये। फिर उस प्रकार करने के लिए सचिवों को आज्ञा देने लगे। इतने में भरत बोला, 'हे स्वामी ! आपके साथ व्रत लेन के लिए मैंने पहले ही प्रार्थना की है जिससे उसे किसिके वचन से अन्यथा करने में आप योग्य नहीं है।' दशरथ ने कहा, ''हे वत्स ! मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ मत कर। तेरी माता को मैंने पूर्व ऐसा वरदान दिया था और उसने वह लंबे काल तक अमानत करके रखा था। तो आज तुझे राज्यदान देने के लिए आज उसने मांग लिया है, इसलिए हे पुत्र ! मेरी और तेरी माता की आज्ञा को अन्यथा करने के लिए तू योग्य नहीं है।'' फिर राम ने भरत को कहा, 'हे भ्राता ! यद्यपि आपके हृदय में राज्यप्राप्ति का किंचित भी गर्व नहीं है, फिर भी पिता के वचनों को सत्य करने के लिए आप राज्य ग्रहण कीजिए।' राम के ऐसे वचन सुनकर भरत ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से राम के चरणों में गिरकर अंजलि जोड़कर गद्‌गद स्वर में कहा, 'पूज्य बंधु, पिताश्री को और आप जैसे

महात्माओं को मुझे राज्य देना तो योग्य है, लेकिन मुझ जैसे को वह ग्रहण करना योग्य नहीं। क्या मैं राजा दशरथ का पुत्र नहीं हूँ ? या क्या मैं आप जैसे आर्य का अनुज बंधु नहीं हूं ? कि जिससे मैं गर्व करुं और सचमुच में मातृमुखी गिना जाऊं ?' यह सुनकर राम ने दशरथ राजा को कहा, 'मेरे यहां होने पर भरत राज्य ग्रहण नहीं करेगा, इसलिए मैं वनवास करने जाता हूँ।' इस प्रकार पिता की आज्ञा लेकर भक्ति से मस्तक झुकाकर राम हाथ में धनुष्य और भाथा लेकर चल निकले, और भरत ऊंचे स्वर में रुदन करते रहे। वनवास को जाते हुए राम को देखकर अत्यंत स्नेहपूर्ण ऐसे दशरथ राजा बारबार मूर्च्छा पाने लगे।

राम ने वहां से निकलकर अपनी माता अपराजिता (कौशल्या) के पास आकर कहा, "हे माता ! जैसा मैं आपका पुत्र हूँ, वैसा ही आपको भरत है। अपनी प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए मेरे पिता ने उसको राज्य दिया फिर भी मैं यहा होने पर वह राज्य नहीं लेता है इसलिए मुझे वन में जाना योग्य है। मेरी अनुपस्थिति में आप विशेष कृपावाली दृष्टि से भरत को देखना और कभी भी मेरे वियोग से दुःखी मत बनना।" राम की ऐसी वाणी सुनकर देवी मूर्च्छा पाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, तो दासियों ने चंदन के जल का सिंचन किया, जिससे स्वस्थ होकर वे बोली, "अरे ! मुझे स्वस्थ करके किसने जिलाया ? मुझे मूर्च्छा सुखमृत्यु के लिए ही है, क्योंकि मैं जीवित रहकर राम का विरह कैसे सह पाऊंगी ? अरे कौशल्या ! तेरा पुत्र वन में जायेगा और पति दीक्षा लेगा ऐसा सुनने पर भी तू मर क्यों नहीं जाती ? इसलिए सचमुच तू वज्रमयी है।" राम ने फिर से कहा, "हे माता ! आप मेरे पिता की पत्नी होकर पामर स्त्रियों के योग्य ऐसा क्या करती हो ? शेरनी का पुत्र वन में भ्रमण करने के लिए अकेला ही जाता है, फिर भी शेरनी स्वस्थ ही रहती है, जरा सा भी नहीं घबराती। हे माता ! यदि प्रतिज्ञा किया हुआ वरदान है तो मेरे पिता के सिर पर ऋण है। यदि मैं यहा रहूं और भरत राज्य न ले तो फिर पिता का अनृण्य (ऋणरहितपना) किस प्रकार हो ?"

इस प्रकार युक्तिवाले वचन से कौशल्या को समझाकर और दूसरी माताओं को नमस्कार करके राम बाहर निकले। फिर सीता ने दूर से दशरथ राजा को शीश झुकाकर अपराजिता देवी के पास आयी और राम के साथ जाने की आज्ञा मागी। तो जानकी को उत्संग में बैठाकर, नेत्र के उष्ण अश्रुजल से बाला की तरह नहलाती अपराजिता बोली, "वत्से ! विनीत रामचंद्र पिता की आज्ञा से वन में जा रहे हैं, यह तो उस नरसिंह पुरुष को दुष्कर नहीं है, लेकिन तू तो जन्म से ही उत्तम वाहनों में घूमी हुई हो, इसलिए पैदल चलने की व्यथा को किस प्रकार सहन कर पायेगी ? सुकुमारपन से कमल के उदर जैसा तेरा अंग है, वह जब ताप वगैरह से क्लेश पायेगा तब राम को भी क्लेश होगा, इसलिए पति के साथ अनुगमन करने में एवं

अनिष्ट कष्ट सहने में मैं निषेध या आज्ञा कुछ भी करने के लिए उत्साह नहीं रखती।'' यह सुनकर शौक रहित सीता प्रातःकाल के कमल जैसा प्रफुल्लित मुख करके अपराजिता को सर झुकाकर बोली, ''हे देवी ! आपके उपर मेरी भक्ति मुझे मार्ग में कुशलदायी होगी। इसलिए मेघ के पीछे विद्युत की तरह मैं राम के पीछे जाती हूँ।' इस प्रकार कहकर कौशल्या को फिर से शीश झुकाकर अपनी आत्मा में आत्माराम की तरह राम का ही ध्यान करते हुए सीता बाहर निकली। उस समय ''अहो ! ऐसी अत्यंत पतिभक्ति से जानकी पति को देवतुल्य माननेवाली स्त्रियों मे आज उदाहरणरुप बन पड़ी है। यह उत्तम सती कष्ट से किंचित भी भय पाती नहीं है। अहा ! ऐसे अत्युतम शील से अपने दोनों कुलो को पवित्र करती है।'' इस प्रकार खेद से गद्‌गद वाणी से वर्णन करते हुए नगर स्त्रियाँ वन में जाती हुई सीता को महाकष्ट से देख रही थी।

'राम वनवास करने के लिए निकले' ऐसी खबर सुनकर लक्ष्मण का क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुआ। वह हृदय में इस प्रकार सोचने लगा कि, ''मेरे पिता दशरथ प्रकृति से ही सरल है और स्त्रियां स्वाभाविक रुप में सरल ही नहीं होती। नहीं तो कैकेयी चीरकाल तक वरदान रख छोड़कर समय आने पर क्यों मांग ले ! पिता दशरथ ने भरत को राज्य दिया और अपने उपर से ऋण उतारकर पितृओं के ऋण का भय दूर किया। अब मैं निर्भय होकर मेरे क्रोध को विराम पहुँचाए बिना इस कुलाधम भरत से राज्य हरकर वापस राम को सौंप दूं ? लेकिन ये राम महासत्त्ववान है, इसलिए तृण समान छोडे हुए राज्य को वे वापस नहीं लेंगे और ऐसा करने से पिता को भी दुःख होगा, इसलिए पिता को तो दुःख न होना चाहिए। इसलिए भरत भले ही राजा हो जाय, मैं एक सेवक की भाँति राम के पीछे वन में जाऊंगा।'' इस प्रकार विचार करके सौमित्रि (लक्ष्मण) पिता की अनुमति लेकर अपनी माता सुमित्रा को पूछने गया। वहां जाकर उसे प्रणाम करके वह बोला, 'हे माता ! राम वन में जा रहे हैं, इसलिए उनके पीछे मैं भी जाऊंगा, क्योंकि समुद्र बिना मर्यादा की भाँति राम बिना लक्ष्मण रहने में समर्थ नहीं है।' पुत्र के ऐसे वचन सुनकर मुश्किल से धीरज रखकर सुमित्रा बोली, 'वत्स ! तुझे शाबाश है, मेरा पुत्र हो वह ज्येष्ठ बंधु का ही अनुसरण करें। लेकिन हे वत्स ! रामचंद्र मुझे नमस्कार करके कबके जा चूके हैं, इसलिए तूझे अंतर पड़ जायेगा, इसलिए अब तू विलम्ब मत कर।' माता के ऐसे वचन सुनकर 'माता ! आपको धन्य है। आप ही सचमुच मेरी माता हो।' यूं कहकर, उसको प्रणाम करके लक्ष्मण अपराजिता को (कौशल्या को) प्रणाम करने गया। उनको प्रणाम करके लक्ष्मण बोला, ''माता ! मेरे आर्य बंधु अकेले वन में गये हैं, इसलिए उनके पीछे जाने के लिए मैं उत्सुक हूँ। तो मैं आपकी अनुमति लेने आया हूँ।'' कौशल्या नेत्र में अश्रु लाकर बोली, 'वत्स ! मैं मंदभागी मारी गई हूँ, क्योंकि तू भी मुझे छोड़कर वन में जा रहा है। हे

लक्ष्मण ! राम के विरह से पीड़ित ऐसी मुझे आश्वासन देने के लिए तू एक तो यहीं रह, प्रयाण मत कर।' लक्ष्मण ने कहा, 'हे माता ! आप राम की माता हो, अधैर्य मत रखो। मेरे बंधु दूर चले जा रहे हैं, इसलिए मैं सत्वर (तुरत) उनके पीछे जाऊंगा। इसलिए हे देवी, मुझे विघ्न न पहुंचाओ। मैं सदैव राम के अधीन हूँ।' इस प्रकार कहकर प्रणाम करके लक्ष्मण धनुष-भाथा लेकर सत्वर राम-सीता के पीछे दौड कर पहुँच गये।

फिर जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हैं ऐसे वे तीनों विलास के लिए उपवन में जाए त्यों वनवास के लिए उद्यमी बनकर नगर में से बाहर निकले। जब प्राण की तरह राम, लक्ष्मण और सीता नगरी के बाहर निकले तब नगरी के नर तथा नारियां महा कष्टदायी दशा को पाये। नगरजन बड़े राग से उनके पीछे तेज गति में दौडने लगे और क्रूर कैकेयी का अत्यंत अपवाद बोलने लगे। राजा दशरथ भी अंतःपुर के परिवार सहित स्नेहरुपी धागे से खिंचकर रुदन करते हुए तत्काल राम के पीछे चले। जब राजा और सर्व प्रजाजन राम के पीछे बाहर निकले तब पूरी अयोध्यापुरी मानो उज्जड हो त्यों दिखने लगी। राम ने पिता और माताओं को विनयपूर्ण वाणी से समझाकर मुश्किल से वापस लौट आये और योग्य वचनों से पूरजनों को भी विसर्जित करके सीता लक्ष्मण सहित आगे चले। मार्ग में गाँव-गाँव में और शहर शहर में वृद्ध पुरुष उनको ठहरने की प्रार्थना करते थे, लेकिन राम किसी जगह नहीं रुकते थे।

यहां भरत ने राज्य अंगीकार नहीं किया, लेकिन उलटे ही बंधु (भाई) के विरह को सहन करने में असमर्थ ऐसे उसने अपनी माता कैकेयी पर कुछ आक्रोश किया। जिससे राजा दशरथ ने दीक्षा लेने में उत्सुक होकर राज्य लेने के लिए लक्ष्मण सहित राम को वापस लाने के लिए सामंत और सचिवों को भेजा। राम पश्चिम दिशा में जा रहे थे, उनके पीछे वे त्वरा से चले और उनसे मिलकर राजा की आज्ञापूर्वक उनको वापस लौटने की विज्ञप्ति दी। उन दीन बने सचिवों और सामंतो ने बहुत प्रार्थना की लेकिन राम वापस नहीं लौटे। क्योंकि महान पुरुषों की प्रतिज्ञा पर्वत समान चलायमान नहीं होती। राम उनको बार बार वापस लौटाने लगे, लेकिन राम के वापस लौटने की आशा में वे उनके साथ साथ ही चले।

क्रमशः राम, लक्ष्मण और जानकी आगे चलते हुए शिकारी प्राणियों के स्थान रुप एक मनुष्यविहिन और गाढ़ वृक्षोंवाली पारियात्रा[1] अटवी में आ पहुँचे। वहां मार्ग में गंभीर आवर्त्त से भयंकर और विशाल प्रवाहवाली गंभीरा नाम की एक नदी आयी। उसके तट पर खड़े रहकर राम ने सामंतों को कहा, 'आप इस जगह से निवृत्त हो जाइए, क्योंकि अब यहां से आगे बड़ा कष्टदायी मार्ग आयेगा, हमारे कुशल समाचार पिता को कहना, और अब से भरत को मेरे

१. विंध्याटवी

समान अथवा पिता के समान मानकर उनकी सेवा करना।' 'राम के चरण को अयोग्य ऐसे हमें धिक्कार है !' यूं कहकर बड़ा रुदन करते हुए और अश्रु से वस्त्र गीले करते हुए वे सामंत महामुश्किल से वापस लौटे। फिर तट पर रहे सामंतों ने अश्रुपूर्ण दृष्टि से देखे हुए राम, सीता और लक्ष्मण सहित वह दुस्तर नदी को पार उतर गये। राम जब दृष्टिमार्ग का उल्लंघन कर गये (दूर गये) तब सामंतादिक सर्व हृदय में महाकष्ट पाते हुए वापस लौटकर अयोध्या में आये और संपूर्ण वृत्तांत उन्होंने दशरथ राजा को बताया। वह सुनकर राजा ने भरत को कहा, 'हे वत्स ! राम-लक्ष्मण तो वापस आये नहीं, इसलिए अब तू राज्य ग्रहण कर और मेरी दीक्षा में विघ्नरुप मत बन।' भरत ने कहा, 'हे तात ! मैं कदापि यह राज्य ग्रहण नहीं करुंगा, मैं स्वयं जाकर मेरे अग्रबंधु को प्रसन्न करके वापस ले आऊंगा।' उस समय कैकेयी भी वहां आकर दशरथ राजा को कहने लगी, "हे स्वामी ! आपने तो आपकी सत्यप्रतिज्ञा अनुसार भरत को राज्य दिया, लेकिन तुम्हारा यह विनयी पुत्र राज्य ग्रहण नहीं करता और उसकी अन्य माताओं को एवं मुझे भी बहुत दुःख प्राप्त हुआ है। यह सब सोचे समझे बिना करनेवाली और पापिन ऐसी मैंने ही किया है। अरे ! आप सपुत्र होते हुए भी यह राज्य इस समय राजा बिना का हो गया है और कौशल्या, सुमित्रा और सुप्रभा का दुःश्रव रुदन सुनते ही मेरा हृदय भी फट जाता है। हे नाथ ! मैं भरत के साथ जाकर वत्स राम और लक्ष्मण को वापस ले आऊंगी। इसलिए मुझे वहां जाने की आज्ञा दीजिए।"

राजा दशरथ ने हर्ष से आज्ञा दी तो कैकेयी भरत और सचिवों के साथ त्वरा से राम के पीछे चली। कैकेयी और भरत छः दिन में जहां राम वगैरह थे वहां पहुंचे। वहां एक वृक्ष के नीचे जानकी, राम और लक्ष्मण को बैठे हुए देखा। उनको देखते ही कैकेयी रथ में से उतरी और 'हे वत्स ! हे वत्स ! यूं बोलते हुए प्रणाम करते ऐसे राम के मस्तक पर चुंबन करने लगी। सीता और लक्ष्मण भी उसके चरणकमल में झुके। उनको बाहु से दबाकर वह तार स्वर में रुदन करने लगी। भरत ने नेत्र में अश्रु लाकर राम के चरणों मे प्रणाम किया और तत्काल मूर्छित हो गया। क्योंकि स्नेह है वह महाविष तुल्य है। फिर जब रामचंद्र ने उसे अच्छी तरह समझाया तब भरत विनयपूर्वक बोला, "हे आर्यबंधु ! अभक्त की तरह मेरा त्याग करके आप यहां क्यों आये ?' 'भरत राज्य का अर्थी है।' ऐसे माता के दोष से मुझे जो अपवाद लगा है वह आप वन में मुझे साथ ले जाकर टाल दो, अथवा तो हे भ्राता ! यहां से वापस लौटकर अयोध्या में आइये और राज्यलक्ष्मी ग्रहण कीजिए। ऐसा करने से मेरा कौलीनशल्य[1] दूर हो जायेगा। आप राजा बनोगे तो यह जगन्मित्र सौमित्रि (लक्ष्मण) आपके सचिव होगे। यह

१. कुलीनपन को नाश करनेवाला - अधम कुल दिखानेवाला शल्य

मनुष्य (मैं भरत) आपका प्रतिहार (सेवक) होकर रहूंगा और शत्रुघ्न छत्र धरनेवाला होगा।'' भरत के ऐसा कहने के बाद कैकेयी बोली, 'हे वत्स ! इस भ्राता का वचन मान्य रखे, क्योंकि आप तो सदैव भ्रातृवत्सल हो। इस बारे में आपके पिता का दोष नहीं है और भरत का भी दोष नहीं है। सिर्फ स्त्री स्वभाव के कारण सुलभ ऐसी इस कैकेयी का ही दोष है। स्त्रियों में कुटिलता वगैरह जो जो अलग अलग दोष होते हैं, वे सब दोषों की खानरुप मुझ में ही रहे है। पति को, पुत्रों को और उनकी माताओं को अत्यंत दुःख उत्पन्न करानेवाला जो कर्म मैंने किया है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए, क्योंकि आप भी मेरे पुत्र हो।'' इस प्रकार आँख में अश्रु लाकर, कैकेयी ने कहा, तो राम बोले, ''हे माता ! मैं दशरथ जैसे पिता का पुत्र होकर प्रतिज्ञा का क्यों त्याग करुं ? पिता ने भरत को राज्य दिया और उसमे मैंने संमति दी तो हम दोनों के जीवित होते हुए वह वाणी वृथा कैसे हो ? इसलिए हम दोनों के आदेश से भरत राजा बने। पिता की तरह मेरी आज्ञा भी भरत को उल्लंघन करने योग्य नहीं है।'' इस प्रकार कहकर राम ने सीता द्वारा लाए हुए जल से सर्व सामंतों की साक्षी में वहीं भरत का राज्याभिषेक किया। फिर कैकेयी को प्रणाम करके भरत को कहकर उनको अयोध्या की और बिदा करके रामचंद्र दक्षिण दिशा में चले।

भरत अयोध्या में आये और पिता तथा बड़े भ्राता की आज्ञा से उन्होंने अखण्ड शासन वाले राज्य का भार स्वीकार किया। फिर राजा दशरथ ने महामुनि सत्यभूति से बड़े परिवार सहित दीक्षा ली। अपने पूज्य बंधु के वनवास से हृदय में दुःख पाते हुए सद्‌बुद्धिवाले भरत अरिहंत की पूजा में उद्यमी होकर एक पहरेदार की तरह राज्यरक्षा करने लगे।

सीता और लक्ष्मण के साथ गमन करते हुए पृथ्वी के देव समान रामचंद्र मार्ग में आए चित्रकूट पर्वत का उल्लंघन करके कुछ दिनों में अवंति देश के एक भाग में आ पहुंचे।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये सप्तमे पर्वणि रामलक्ष्मणोत्पत्ति परिणयवनगमनो नाम चतुर्थः सर्गः।।४।।

पंचम सर्ग

सीताहरण

मार्ग में श्रांत बनी (थकी) जानकी को विश्राम देने के लिए यक्षपति कुबेर की तरह रामचंद्र एक बड के नीचे बैठे। उस प्रदेश के चारोंओर देखकर राम ने लक्ष्मण को कहा, 'यह प्रदेश किसी के भय से हाल ही में उज्जड हो गया लगता है। देखो, अभी भी जिसकी नहरे सूख नहीं गई है ऐसे उद्यान, इक्षुदंड (गन्ने) सहित ये इक्षु के खेत और अन्न से भरपूर खलिहान इस देश को तुरंत में ही उज्जड होने का कह देते हैं।' उस समय कोई पुरुष वहां होकर जा रहा था, उसे राम ने पूछा, 'हे भद्र ! यह देश किस कारण से उज्जड हुआ है ? और तू किस तरफ जा रहा है ?' वह बोला, ''यह **अवंति** देश है, उसमें अवंति नाम की नगरी में शत्रुओं को शेर जैसा दुःसह **सिंहोदर** नाम का राजा है। उस राजा के अधीन इस देश में **दशांगपुर** नगर में उस नगर का नायक **वज्रकर्ण** नाम का एक बुद्धिमान सामंत राजा राज्य करता है। एक बार वह वज्रकर्ण वन में मृग्या खेलने गया। वहां प्रीति बढ़ाने वाले **प्रीतिवर्धन** नाम के एक महामुनि को कायोत्सर्ग में रहे हुए उसने देखे, तो उसने पूछा, 'ऐसे घोर अरण्य में वृक्ष की भाँति आप क्यों रहते हो ?' मुनि ने कहा, 'आत्महित के लिए।' वज्रकर्ण ने फिर से पूछा, 'खान-पान वर्जित ऐसे इस अरण्य में आप का क्या आत्महित होता है ?' ऐसे उसके प्रश्न से उसे योग्य जानकर मुनि ने आत्महितकारी धर्म कहा, जिससे बुद्धिमान वज्रकर्णने तत्काल श्रावकपना स्वीकारा और ऐसा दृढ अभिग्रह लिया कि 'अर्हंत देव और जैनमुनि के बिना अन्य किसी को मैं शीश नहीं झुकाउंगा।' फिर मुनि को वंदना करके वज्रकर्ण दशांगपुर में गया। श्रावकपना पालते हुए एक बार उसने विचार किया कि 'देवगुरु के बिना अन्य किसिको नमस्कार करना नहीं ऐसा मेरा अभिग्रह है, इसलिए यदि मैं सिंहोदर राजा को शीश नहीं झुकाऊंगा, तो वह मेरा बैरी हो जायेगा।' ऐसा विचार करके उस बुद्धिमान सामंत ने, अपनी मुद्रिका (अंगूठी) में मुनिसुव्रतस्वामी की मणिमय प्रतिमा स्थापित की। फिर अपनी ऊंगली में रहे, प्रभु के बिंब को नमन करके वह सिंहोदर राजा को छलने लगा। अति बलवान पुरुष के समक्ष माया का उपाय ही चलता है।

वज्रकर्ण के ऐसे कपट का वृत्तांत किसी गुप्त पुरुष ने सिंहोदर राजा को कह दिया, क्योंकि खल पुरुष सबको हानि करने वाले होते हैं। वज्रकर्ण के कपटवृत्तांत को जानकर बड़े सर्प की तरह निश्वास छोड़ते हुए सिंहोदर तत्काल वज्रकर्ण पर गुस्से हुआ। यह खबर किसी पुरुष ने आकर वज्रकर्ण को बतायी। वज्रकर्ण ने उस पुरुष को पूछा, 'मेरे उपर उसका कोप हुआ है, ऐसा तूने किस प्रकार जाना ?' तो उस पुरुष ने कहा, ''कुंदनपुर नगर में समुद्रसंगम नाम का एक श्रावक वणिक रहता है, उसे यमुना नाम की पत्नी है, उनका **विद्युद्दृंग** नाम का मैं पुत्र हूँ। मैं क्रमशः युवावय को प्राप्त हुआ तो कुछ किराने लेकर क्रयविक्रय करने के लिए मैं

उज्जयनि नगरी में गया। वहां **कामलता** नाम की एक मृगलोचना वेश्या मेरी नज़रों मे आयी। उसे देखते ही मैं कामदेव के बाण का स्थान बन पड़ा। 'उसके साथ मैं एक रात्रि ही रहूंगा' ऐसे विचार से मैंने उसका समागम किया, लेकिन पाश से हिरण की तरह मैं उसके राग में दृढता से बंध गया। इससे जन्म से कष्ट भोगकर मेरे पिता ने जो धन उपार्जित किया था, उसे मैंने उस वेश्या के वश होकर छः माह में उडा दिया। एक बार कामलता वेश्या ने मुझे कहा कि, 'सिंहोदर राजा की पटरानी **श्रीधरा** को जैसे कुंडल है वैसे कुंडल मुझे ला दे।' इस बार मैंने विचार किया कि 'मेरे पास द्रव्य नहीं है, तो ऐसे कुण्डल कैसे करवाऊ ? इसलिए मैं उसके ही कुण्डल चुरा लूं।' ऐसा विचार करके मैं रात्रि में साहस करके सैंध मारकर राजा के महल में घुसा। उस समय रानी श्रीधरा राजा को पूछ रही थी वह मेरे सुनने में आया कि 'हे नाथ ! आज उद्वेगी की भाँति आपको निंद्रा क्यों नहीं आ रही ?' सिंहोदर बोला, 'देवी जब तक मुझे प्रणाम नहीं करनेवाले व्रजकर्ण को मारुंगा नहीं तब तक मुझे निंद्रा कैसे आये ? हे प्रिया ! प्रातःकाल में मित्र, पुत्र और बांधवों सहित उस वज्रकर्ण को मैं मारुंगा, तब तक यह रात्रि मुझे जाग्रतावस्था में ही व्यतीत हो।' उसके ऐसे वचन सुनकर आपके उपर साधर्मिकपने की प्रीति के कारण कुंडल की चोरी छोड़कर तुरंत ही वहां से निकलकर यहां आपको कहने के लिए त्वरा (तुरंत) से आया हूँ।'' यह खबर सुनकर वज्रकर्ण ने तुरंत ही अपनी नगरी तृण और अन्न से अधिक पूर्ण कर दी। इतने में तो कुछ ही देर में आकाश में परचक्र से उडती हुई धूल उसे दिखाई दी। क्षणमात्र में तो चन्दन के वृक्षों को सर्प घेर ले त्यों सिंहोदर ने अत्याधिक सैन्य से दशांगपुर को घेर लिया। फिर एक दूत भेजकर वज्रकर्ण को कहलवाया कि 'हे कपटी ! तूने प्रणाम करने में माया रचकर मुझे लम्बे समय से ठगा है, इसलिए अब ऊंगली में मुद्रिका पहने बिना आकर मुझे प्रणाम कर, नहीं तो कुटुंब सहित तुझे यमसदन में पहुँचा दूंगा।' वज्रकर्ण ने उत्तर कहलवाया कि 'मुझे अर्हंत और साधु बिना अन्य किसिको प्रणाम नहीं करने का अभिग्रह है, इसलिए मैं ऐसा करता हूँ। मुझे कुछ पराक्रम का अभिमान नहीं है, लेकिन धर्म का अभिमान है, इसलिए एक नमस्कार के सिवा मेरा जो कुछ है वह सब यथारुचि आप ग्रहण कीजिए और मुझे एक धर्मद्वार दीजिए, जिससे मैं धर्म के लिए यहां से अन्यत्र चला जाऊ। धर्म ही मेरा धन बने।'

वज्रकर्ण ने इस प्रकार कहलवाया फिर भी सिंहोदर ने वह नहीं माना, क्योंकि मानी पुरुष धर्म और अधर्म को नहीं मानते। तबसे सिंहोदर वज्रकर्ण सहित उस नगर को घेरकर बाहर रहा है और उसके भय से पूरा प्रदेश उज्जड जैसा हो गया है। इस राजविग्रह को देखकर मैं भी परिवार सहित यहां भाग आया था। लेकिन आज कइं घर जल गए, उसके साथ मेरी जीर्ण झोंपडी जल गई। जिससे मेरी क्रूर स्त्री ने इन धनाढ्यों के शून्यग्रह में से घर की सामग्री चुरा

लाने के लिए मुझे भेजा है। दैवयोग से उसके दुर्वचन का भी मुझे शुभ फल मिला, क्योंकि आप जैसे देव समान पुरुष के मुझे दर्शन हुए।'' इस प्रकार उस दरिद्री पुरुष ने राम को पूरा वृत्तांत कह सुनाया, जिससे करुणानिधि रघुवंशी राम ने उसे एक रत्न सुवर्णमय सूत्र दिया, फिर उसे विदा करके राम दशांगपुर समीप आए, और नगर बाहर के चैत्य में चंद्रप्रभ प्रभु को नमस्कार करके वहीं रहे।

फिर राम की आज्ञा से लक्ष्मण दशांगपुर में प्रवेश करके वज्रकर्ण के पास गये। अलक्ष्य पुरुषों की स्थिति ऐसी ही होती है। आकृति पर से उनको उत्तम पुरुष जानकर वज्रकर्ण ने कहा, 'महाभाग ! मेरे भोजन-आतिथ्य को ग्रहण कीजिए।' लक्ष्मण ने कहा, 'मेरे प्रभु राम अपनी स्त्री के साथ बाहर के उद्यान में रहे हैं, इसलिए प्रथम उनको भोजन कराकर बाद में मैं खाऊंगा।' वज्रकर्ण ने तुरंत ही लक्ष्मण के साथ कइं सब्जी वगैरह वाला भोजन राम के लिए उद्यान में भिजवाया। भोजन करने के बाद राम ने समझाकर भेजा हुआ लक्ष्मण अवंतिपति सिंहोदर के पास आया। वहाँ आकर मीठे वचनों से कहा कि 'सर्व राजाओं को दास समान करनेवाले दशरथ राजा के पुत्र भरतराजा आपको वज्रकर्ण के साथ विरोध करने का निषेध करते हैं।' यह सुनकर सिंहोदर बोला, 'भरत राजा अपने जो भक्तिमान सेवक है उन पर कृपा करते हैं, दूसरे पर नहीं करते, इसी प्रकार यह मेरा दुष्ट सामंत वज्रकर्ण मुझे झुकता नहीं है तो कहिए, मैं उसके उपर किस प्रकार कृपा करुं ?' लक्ष्मण ने फिर से कहा, 'वह वज्रकर्ण आपके लिए अविनयी नहीं है, लेकिन धर्म के अनुरोध से उसने दूसरे को प्रणाम न करने की प्रतिज्ञा ली है, इसलिए आप वज्रकर्ण पर कोप न करे। राजा भरत का शासन आपको स्वीकार करने योग्य है, क्योंकि वे भरत राजा समुद्रांत पृथ्वी पर शासन करनेवाले हैं।'

लक्ष्मण के ऐसे वचन सुनकर सिंहोदर क्रोध से बोला, 'ये भरत राजा कौन है कि जो वज्रकर्ण के पक्ष में रहकर वाचाल होकर मुझे इस प्रकार कहलवाता है ?' यह सुनते ही लक्ष्मण के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और होठ फड़कने लगे। वे बोले, 'मूढ ! तू भरत राजा को जानता नहीं ? ले, अब तुझे सत्वर (तुरंत) उनकी पहचान करा दूं। उठ, युद्ध करने के लिए पूरी तरह से तैयार हो। चंदनगोह की तरह तू अभी मेरे भुजारुपी वज्र से ताडित नहीं हुआ है।' यह सुनते ही भस्म से छिपे अग्नि को स्पर्श करने के लिए बालक तैयार हो जाय त्यों सिंहोदर राजा सैन्य सहित लक्ष्मण को हणने (मारने) के लिए तैयार हुआ। लक्ष्मण अपनी भुजा से कमलदण्ड की तरह हाथी बांधने का खूंटा उखाडकर दंड ऊंचा करके खडे हुए यमराज की तरह आलानस्तंभ से शत्रुओं को मारने लगे। फिर उस महाभुज ने उछलकर हाथी पर बैठे हुए सिंहोदर को पशु की भाँति उसके ही वस्त्र से कण्ठ से बांध दिया। दशांगपुर के लोग आश्चर्य से देख रहे थे और

लक्ष्मण सिंहोदर को गाय की तरह खींचकर राम के पास ले गये। राम को देखकर सिंहोदर ने नमस्कार करके कहा, ''हे रघुकुलनायक ! आप यहां आये हो, यह मुझे मालूम नहीं था। अथवा हे देव ! मेरी परीक्षा के लिए आपने यह किया होगा, लेकिन यदि आप बल बताने के लिए तत्पर हो जाए तो फिर हमारे जीवन का क्या ? अर्थात् हम जी सकते ही नहीं हैं। हे नाथ ! मेरे इस अज्ञात दोष को क्षमा करे और जो कर्तव्य हो वह बताए। क्योंकि शिष्य के उपर गुरु की भाँति सेवक पर स्वामी का कोप मात्र शिक्षा के लिए ही होता है।'' राम ने कहा, 'वज्रकर्ण के साथ संधि कर लो।' उस वाणी को सिंहोदर ने तथेति (ऐसाही) कहकर स्वीकार ली।

फिर रामचंद्र की आज्ञा से वज्रकर्ण वहां आया और विनय से राम के समक्ष खडे रहकर अंजलि जोड़कर बोला, ''स्वामी श्री ऋषभदेव के वंश में आप बलभद्र और वासुदेव उत्पन्न हुए हो ऐसा हमने सुना था। आज सद्भाग्य से आप दोनों का हमें दर्शन हुआ है। चिरकाल से आप जानने में आये हो। आप दोनों महाभुज सर्व भरतार्द्ध के नाथ हो। मैं और अन्य राजा आपके ही किंकर है। हे नाथ ! इस मेरे प्रभु सिंहोदर को छोड़ दीजिए और अब से उसे ऐसी शिक्षा दीजिए कि जिससे वह दूसरे को प्रणाम नहीं करने का मेरा दृढ अभिग्रह सदैव सहन करे। 'अर्हंत देव और साधु-गुरु के सिवा दूसरे को नमस्कार नहीं करने।' ऐसा दृढ अभिग्रह प्रीतिवर्द्धन नाम के मुनि से मैंने ग्रहण किया है।'' भ्रूकुटि की संज्ञा से सिंहोदर ने राम की यह बात स्वीकार ली, तो सौमित्रि-लक्ष्मण ने मुक्त किया हुआ सिंहोदर राजा वज्रकर्ण को 'आलिंगन देकर मिला। फिर उसने राम की साक्षी में परम प्रीति से अपना आधा राज्य सहोदर बंधु की भाँति वज्रकर्ण को दिया। दशांगपुर के राजा वज्रकर्ण ने उज्जयिनि के राजा सिंहोदर से श्रीधरा के कुंडल मांगकर विद्युदृंग को दिये। वज्रकर्ण ने अपनी आठ कन्याएं और सामंत सहित सिंहोदर ने तीनसों कन्याएं लक्ष्मण को दी। उस समय लक्ष्मण ने उनको कहा कि 'इस समय ये कन्याएं आपके पास रखे, क्योंकि इस समय राज्य पर पिता ने भरत को बिठाया है, इसलिए जिस समय मैं राज्य ग्रहण करुंगा, तब तुम्हारी कन्याओं का पाणिग्रहण (शादी) करुंगा। इस समय तो हमें मलयाचल पर जाकर रहना है।' 'बहुत अच्छा' कहकर वज्रकर्ण और सिंहोदर ने ऐसा करना कबूल किया। फिर राम ने बिदा किए हुए वे सब अपने अपने नगर लौटे। राम वहां रात्रि बीताकर प्रातःकाल में सीता और लक्ष्मण सहित वहां से चलते हुए किसी निर्जल प्रदेश में आ पहुँचे। वहां सीता तृषातुर होने से उसे किसी वृक्ष के नीचे विश्रांति के लिए बैठाकर राम की आज्ञा से लक्ष्मण जल लेने चले। आगे चलते हुए अनेक कमलों से युक्त और प्रिय मित्र समान वल्लभ तथा आनंदकारी एक सरोवर उन्हे नजर आया। वहां **कुबेरपुर** का **कल्याणमाला** नाम का राजा क्रीडा करने आया था। उसने लक्ष्मण को देखा। तत्काल अति दुरात्मा कामदेव के बाणों से वह घायल हो गया। उसने लक्ष्मण को नमस्कार करके कहा, 'आप मेरे घर भोजन

के लिए अतिथि बनो।' उसके शरीर में कामविकार के चिह्न और स्त्री के लक्षण देखकर लक्ष्मण विचार करने लगे कि, 'यह जाति में स्त्री है, परंतु किसी कारण से उसने पुरुष का वेष धारण किया लगता है।' ऐसा विचार करके लक्ष्मण बोले, 'यहां से नजदीक में मेरे प्रभु स्त्री के साथ हैं, इसलिए उनके बिना मैं भोजन नहीं करुंगा।' फिर उस कल्याणमाला ने अपने भद्रिक आकृतिवाले और प्रिय बोलनेवाले प्रधानपुरुषों को भेजकर प्रार्थना करवाकर सीता सहित राम को अपने यहां बुलाया। भद्र बुद्धिवाले उन्होंने रामभद्र और सीता को नमस्कार किया और उनके लिए तत्काल एक पटकुटी (तंबु) खड़ी करवाई। राम ने उसमें रहकर स्नान-भोजन किया।

फिर अन्य परिवार को छोड़कर कल्याणमाला स्त्री का स्पष्ट वेष धरकर एक सचिव के साथ वहां आयी। लज्जा से नम्र मुखवाली उस स्त्री को राम ने कहा, "हे भद्रे ! पुरुष का वेष धरकर तू तेरे स्त्रीभाव को क्यों छुपाती है ?" कुबेरपति ने कहा, "इस कुबेरपुर में **वालिखिल्य** नाम का राजा था, उसे **पृथ्वी** नाम की प्रिया थी। एक बार रानी गर्भवती हुई। उस समय म्लेच्छ लोगों ने लडाई छेडी और वालिखिल्य राजा को बांधकर ले गए। इसके बाद पृथ्वी देवी को पुत्री का प्रसव हुआ, लेकिन बुद्धिशाली सुबुद्धि नाम के मंत्री ने नगर में 'रानी को पुत्र का प्रसव हुआ है' ऐसी आघोषणा कराई। पुत्रजन्म के समाचार जानकर यहां के मुख्य राजा सिंहोदर ने कहलवाया कि, 'जब तक वालिखिल्य राजा आए तब तक यह बालक ही राजा बने।' क्रमशः मैं पुरुष का वेष धारण करते हुए बड़ी हुई हूँ। आज तक माता और सचिवों के सिवा मुझे किसिने स्त्री रुप में नहीं पहचाना है। कल्याणमाला के नाम से प्रसिद्ध होकर मैं राज्य करती हूँ। सचिवों के विचारसामर्थ्य से जूठ में भी सत्यता प्रवर्तन हो रही है। मेरे पिता को छुडाने के लिए मैं म्लेच्छो को बहुत धन देती हूं, वे द्रव्य ले जाते हैं, लेकिन मेरे पिता को छोड़ते नहीं हैं। इसलिए हे कृपालु ! आप प्रसन्न होईए, और पहले ज्यों सिंहोदर राजा से वज्रकर्ण को छुडवाया, त्यों मेरे पिता को भी छुडवाइए।" राम ने कहा, 'हम तुम्हारे पिता को म्लेच्छ लोगों से छुडवाकर लाये तब तक तू पुरुषवेश धारण करके हंमेशा की तरह राज्य चलाना।' कल्याणमाला ने कहा कि, 'बडी महरबानी।' फिर उसने वापस पुरुषवेश धारण किया। फिर सुबुद्धि मंत्री बोला, 'इस कल्याणमाला का पति लक्ष्मण हो।' राम ने कहा, 'इस समय पिता के आदेश से हम देशांतर जा रहे हैं, इसलिए जब वापस आयेंगे, तब लक्ष्मण उसे ब्याहेगा।' इस प्रकार कबूल करके राम तीन दिन तक वहां रहे, फिर पिछली रात्रि में जब सब लोग निंद्रा में थे तब सीता और लक्ष्मण सहित रामचंद्र वहां से चल निकले। प्रातःकाल में राम, सीता और लक्ष्मण को नहीं देखा, तो कल्याणमाला रुखे मन से अपने नगर में गई और पहले की तरह राज्य करने लगी। क्रमशः राम नर्मदा नदी के समीप आए और वह उतरकर पथिकों ने रोका फिर भी वे विंध्याटवी में घूसे। वहां दक्षिण दिशा में कंटकी के एक वृक्ष पर स्थित पक्षी ने विरस शब्द किया और

क्षीर वृक्ष पर स्थित एक दूसरे पक्षी ने मधुर शब्द किया, परंतु वह सुनकर राम को हर्ष या शोक कुछ भी न हुआ, क्योंकि सगुन या असगुन को दुर्बल लोग ही मानते हैं। आगे चलते हुए ऊंचे हथियारवाला, असंख्य हाथी, रथ और अश्वों से भरपूर म्लेच्छ लोगों का सैन्य देश का घात करने के लिए निकला हुआ उन्हें नजर आया। उस सैन्य में रहा हुआ एक युवा सेनापति सीता को देखकर कामातुर हो गया, जिससे उस स्वच्छंदचारी ने तत्काल अपने अधीन म्लेच्छों को आज्ञा दी, 'अरे ! ये दोनों पथिकों को भगाकर अथवा मार डालकर इस सुंदर स्त्री को ले आओ।' आज्ञा मिलते ही वे सेनापति सहित बाण और प्रास वगैरह तीक्ष्ण आयुधों से प्रहार करते हुए राम पर दौड आये। उस समय लक्ष्मण ने रामचंद्र को कहा, 'आर्य ! जब तक श्वान की तरह मैं इन म्लेच्छों को भगा नहीं दूं, तब तक आप सीता के साथ यहीं रहे।' इस प्रकार कहकर लक्ष्मण ने धनुष्य चढ़ाकर उसका नाद किया। उस नाद मात्र से ही सिंहनाद से हस्तियों की तरह म्लेच्छ परेशान हो गये। 'जिसके धनुष्य का नाद ऐसा असह्य है तो उसके बाणों को सहन करने की तो बात ही क्या करनी ?' यूं सोचते हुए म्लेच्छ राजा तत्काल राम के पास आया। शस्त्र छोड़कर रथ में से उतरकर उसने दीन मुख से रामभद्र को नमस्कार किए। उस समय लक्ष्मण ने क्रोध से उसके सामने देखा।

म्लेच्छपति बोला, "हे देव ! कौशांबीपुरी में **वैश्वानर** नाम का एक ब्राह्मण रहता है। उसे सावित्री नाम की पत्नी है। उसका **रुद्रदेव** नाम का मैं पुत्र हूं। मैं जन्म से ही क्रूर कर्म करनेवाला, चोर और परस्त्रीलंपट बना हूँ। कोई ऐसा कुकर्म नहीं है कि जो मुझ पापी ने नहीं किया हो ! एक बार सेंध डालते (चोरी करते) हुए रंगे हाथ ही राजपुरुषों ने मुझे पकड़ा और राजा की आज्ञा से मुझे शूली पर चढ़ाने ले चले। कसाई के घर में रहे मेष की तरह शूली के पास दीन होकर खड़े हुए मुझे एक श्रावक वणिक ने देखा। जिससे उसने दण्ड देकर मुझे छुड़ाया। 'अब दुबारा चोरी मत करना' यूं कहकर उस महात्मा वणिक ने मुझे बिदा किया। और तब से मैंने उस देश का त्याग किया। क्रमशः भटकते भटकते मैं इस पल्ली में आ चढ़ा और **काक** ऐसे नाम से कुख्यात होकर पल्लीपति के पद पर पहुँचा। यहां रहकर लूंटेरों की मदद से मैं बडे शहर वगैरह लूंटता हूँ और स्वयंमेव जाकर राजाओ को भी पकड़ लाता हूँ। हे स्वामी ! आज व्यंतर की तरह मैं आपके वश हुआ हूँ, इसलिए मुझे आज्ञा दीजिए की आपका किंकर मैं आपका क्या कार्य करुं ? मेरे अविनय को क्षमा करें।" राम ने उस किरातपति को कहा कि, 'वालिखिल्य राजा को छोड़ दे।' उसने तत्काल वालिखिल्य को छोड़ दिया तो उसने आकर राम को प्रणाम किए। राम की आज्ञा से काक ने वालिखिल्य राजा को उसके कुबेरनगर में पहुंचाया। वहां उसने अपनी पुत्री कल्याणमाला को पुरुष के वेश में देखा। फिर कल्याणमाला ने और वालिखिल्य ने परस्पर राम-लक्ष्मण का संपूर्ण वृत्तांत एक-दूसरे को कहा।

काक अपनी पल्ली में वापस लौटा और राम वहां से आगे चले। क्रमशः विंध्याटवी का अतिक्रमण करके वे तापी नदी के समीप आए। फिर तापी उतरकर आगे बढ़ते हुए उस देश के अंतिम भाग पर स्थित अरुण नाम के एक गाँव में आए। वहां सीता तृषातुर हुई तो राम लक्ष्मण को साथ लेकर एक **कपिल** नाम के क्रोधी अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर गए। उसकी **सुशर्मा** नाम की स्त्री ने उनको अलग अलग आसन दिए और शीतल व स्वादिष्ट जल का पान कराया। उस समय पिशाच जैसा दारुण कपिल बाहर से घर आया, तो उनको बैठा देखकर रोष करके अपनी स्त्री को कहने लगा, 'अरे पापिनी ! तूने इन मलिन लोगों को मेरे घर में प्रवेश क्यों करने दिया ? तूने मेरा अग्निहोत्र अपवित्र किया।' इस प्रकार कहकर आक्रोश करते हुए उस क्रूर विप्र को क्रोध से हाथी की तरह पकड़कर लक्ष्मण आकाश में घुमाने लगे। राम ने कहा, 'हे मानद् ! एक कीडे जैसे और चिल्लाते हुए इस अधम ब्राह्मण पर कोप क्यो करना ? इसलिए उसे छोड दे।' ऐसी आज्ञा मिलते ही लक्ष्मण ने उस ब्राह्मण को धीमे से छोड़ दिया। फिर सीता और लक्ष्मण सहित राम उसके घर में से निकलकर आगे चले। क्रमशः वे एक दूसरे बड़े अरण्य में आये। वहां काजल के जैसे श्याम मेघ का समय (वर्षाऋतु का समय) आया। बरसात बरसने से राम एक बड के वृक्ष के नीचे रहे और बोले कि, 'इस बड के नीचे ही हम वर्षाकाल व्यतीत करेंगे।'• उस वचन को सुनकर उस बड पर रहनेवाला उस बड का अधिष्ठायक **इभकर्ण** नाम का यक्ष भयभीत हो गया, वह अपने प्रभु **गोकर्ण यक्ष** के पास गया और प्रणाम करके कहा, हे स्वामी ! किसी दुःसह तेजवाले पुरुषों ने आकर मुझे मेरे निवासरुप बड में से निकाल दिया है, इसलिए हे प्रभु शरणरहित ऐसे मेरा रक्षण करें, क्योंकि वे मेरे निवासवाले बड के वृक्ष के नीचे ही पूरी वर्षाऋतु तक रहनेवाले हैं।'' विचक्षण गोकर्ण ने अवधिज्ञान से जानकर कहा, 'जो पुरुष तेरे घर आए हैं वे आठवे बलभद्र और वासुदेव हैं। इसलिए वे तो पूजने योग्य हैं।' इस प्रकार कहकर वह गोकर्ण यक्ष रात्रि में उसके साथ वहां गया और रात्रि में ही नौ योजन विस्तार वाली, बारह योजन लंबी, धनधान्य से पूरित, जिसका किल्ला और अंदर के प्रासाद उंचे है और जिसके बाजार विविध वस्तुओं से पूर्ण हैं ऐसी **रामपुरी** नामक एक नगरी वहां बनाई। प्रातःकाल में मंगल शब्दों से बोध पाए राम ने उस वीणाधारी यक्ष को और बड़ी ऋद्धिवाली नगरी को देखा। अचानक बनी हुई नगरी को देखकर आश्चर्य पाए रामचंद्र को यक्ष ने कहा, 'हे स्वामी ! आप मेरे अतिथि हो। मैं गोकर्ण नाम का यक्ष हूँ, और यह नगरी मैंने आपके लिए रची है। आप जब तक यहां रहोंगे, तब तक रातदिन परिवार सहित मैं आपकी सेवा करुंगा। इसलिए आप यहां रुचि अनुसार सुखपूर्वक रहें।' इस प्रकार उसकी प्रार्थना से अनेक यक्षों से सेवित राम और लक्ष्मण वहां सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बार वह कपिल ब्राह्मण समिध वगैरह लेने के लिए हाथ में कुल्हाडी लेकर घूमते घूमते

उस बड़े अरण्य में आया। वहां उस नवीन नगरी को देखकर विस्मयपूर्वक विचार करने लगा कि 'यह तो माया होगी ? इंद्रजाल होगा या गंधर्वपुर होगा ?' ऐसा विचार कर रहा था कि उतने में ही एक सुंदर वेष धारण करके मानुषी रुप में खड़ी हुई एक यक्षिणी उसे नज़र में आयी। उसे देखकर कपिल ने पूछा कि 'यह नवीन नगरी किसकी है ?' वह बोली, 'गोकर्ण नाम के यक्ष ने राम, लक्ष्मण और सीता के लिए यह नवीन रामपुरी नाम की नगरी बसायी है। यहां दयानिधि राम दीनजनों को दान देते हैं और जो जो दुःखी यहां आते हैं वे सब कृतार्थ होकर जाते हैं।' इस प्रकार की हकीकत सुनकर कपिल समिध (लकड़ी) का भारा भूमि पर डालकर उसके चरणकमल में गिरकर बोला, 'हे भद्रे ! मुझे कहिए, उस राम के मुझे किस प्रकार दर्शन होंगे ?' यक्षिणी बोली, 'इस नगरी के चार द्वार हैं और हरेक द्वार पर यक्ष नित्य रक्षा करने के लिए खड़े रहते हैं। इसलिए अंदर प्रवेश करना दुर्लभ है, लेकिन उसके पूर्व द्वार समीप एक जिनचैत्य है, उसमें प्रवेश करके श्रावक बनकर यथाविधि वंदना करके यदि नगरी की ओर जायेगा, तो तेरा प्रवेश हो सकेगा।' उसकी वाणी से द्रव्य का अर्थी कपिल जैन साधुओं के पास गया और उनको वंदना करके उनसे जैनधर्म सुना। वह लघुकर्मी होने से तत्काल प्रतिबोध पाकर शुद्ध श्रावक हो गया, और अपने घर आकर अपनी पत्नी को धर्म सुनाकर उसे श्राविका बनाया। फिर जन्म के दारिद्र से दग्ध बना वह दम्पती राम से धन पाने की इच्छा से रामपुरी आये। वहां प्रथम पूर्वद्वार के पास स्थित चैत्य में देववंदन करके उन्होंने रामपुरी में प्रवेश किया। क्रमशः राजगृह में प्रवेश करते ही, राम, सीता और लक्ष्मण को कपिल ने पहचाना, तो स्वयं ने उन पर जो आक्रोश किया था उसका उसे स्मरण हो आया, जिससे वह भय पाकर भाग जाने का विचार करने लगा। उसे भयभ्रांत हुआ देखकर, लक्ष्मण दया लाकर बोले, 'हे द्विज ! तू भय मत पाना। यदि तू याचक होकर आया है तो यहां आ और जो चाहिए वह मांग ले।' यह सुनकर कपिल निःशंक होकर राम के पास आया और आशिष देकर यक्षों के दिए हुए आसन पर बैठा। फिर 'तू कहां से आता है ?' यूं राम ने पूछा तो वह बोला, 'मैं अरुण गाँव का निवासी ब्राह्मण हूँ। क्या आप मुझे नहीं पहचानते ? जब आप मेरे अतिथि बने थे तब मैंने आपको दुर्वचन कहकर आप पर आक्रोश किया था, फिर भी आपने दयालु होकर मुझे इस आर्यपुरुष से छुड़वाया था।'

वह सुशर्मा ब्राह्मणी पूर्व का वृत्तांत बताकर, सीता के पास आकर, दीन वचन से आशिष देकर बैठी। फिर उस ब्राह्मण को राम ने बहुत धन देकर कृतार्थ करके बिदा किया, तो वह अपने गाँव में गया। वहां उस कपिल ब्राह्मण ने यथारुचि दान देकर **नंदावतंस** नाम के सुरि से दीक्षा ली।

जब वर्षाऋतु बीत गई तब राम को वहां से जाने की इच्छा हुई। तो गोकर्ण यक्ष ने विनय

से अंजलि जोड़कर कहा, 'हे स्वामी ! यहां से जाना चाहते हो तो आपकी भक्ति करते हुए मुझसे कुछ भी अपराध हो गया हो तो क्षमा करना और मुझ पर प्रसन्न रहना। हे महाभुज ! आपकी योग्यता अनुसार पूजा करने में कोई भी समर्थ नहीं है।' यूं कहकर उसने स्वयंप्रभ नाम का एक हार राम को अर्पण किया। लक्ष्मण को दिव्यरत्नजडित दो कुंडल दिए और सीता को चूडामणि तथा इच्छानुसार बजती एक वीणा दी। फिर राम उस यक्ष का सम्मान करके वहां से स्वेच्छा से चले। तो यक्ष ने अपनी रची हुई वह नगरी समेट ली।

राम, लक्ष्मण और जानकी प्रतिदिन चलते हुए कुछ अरण्यों का उल्लंघन करके एक बार संध्या समय पर **विजयपुर** के पास आए, और उस नगर के बाहर के उद्यान में दक्षिण दिशा में एक गृह जैसे बड़े बड के वृक्ष के नीचे उन्होंने निवास किया। उस नगर का **महीधर** नाम का राजा था। **इन्द्राणी** नाम की उसकी पत्नी थी और उससे **वनमाला** नाम की एक पुत्री हुई थी। उस वनमाला ने बाल्यावस्था से ही लक्ष्मण की गुणसंपत्ति और रुपसंपत्ति सुनी थी। इसलिए उसके सिवा अन्य किसी को वरना नहीं चाहती थी। जब राजा दशरथ ने दीक्षा ली और राम-लक्ष्मण वन में निकले तब उस समाचार को सुनकर महिधर राजा ने बहुत खेद पाया। फिर चन्द्रनगर के राजा वृषभ के पुत्र सुरेन्द्ररुप के साथ उस वनमाला का संबंध किया। यह खबर सुनकर वनमाला मरने का निश्चय करके जिस रात्रि को राम-लक्ष्मण वहां आये, उसी रात्रि में अकेली नगर बाहर निकली और दैवयोग से वह उसी उद्यान में आ पहुंची। पहले उस उद्यान में रहे यक्षायतन में प्रवेश करके उसने वनदेवता की पूजा की और कहा कि 'जन्मांतर में भी लक्ष्मण मेरे पति हो' इसके बाद वहां से निकलकर उस बड के पास आयी। उसको सोये हुए राम और सीता के पहरेदार के रुप में जागते हुए लक्ष्मण ने देखा। उसे देखकर लक्ष्मण सोचने लगे कि, 'क्या यह वनदेवी होगी ? अथवा इस वटवृक्ष की अधिष्ठात्री होगी ? या कोई दूसरी यक्षिणी होगी ?' इतने में वह बोली कि, ''इस भव में लक्ष्मण मेरे पति नहीं हुए तो यदि मेरी उन पर सच्ची भक्ति होगी तो जन्मांतर में भी वे ही मेरे पति हो।'' इस प्रकार कहकर उत्तरीय वस्त्र से कंठपाश रचकर बड की शाखा के साथ बांधकर वह अपने शरीर को लटकाने लगी। उस समय 'हे भद्रे ! तू साहस करना मत ! मैं स्वयं ही लक्ष्मण हूँ' यूं बोलते हुए लक्ष्मण ने वहां जाकर पाश दूर करके उसे नीचे उतारा। रात्रि के शेष भाग में जब राम-सीता जागृत हुए तब लक्ष्मण ने उस वनमाला का पूरा वृत्तांत उनको बताया। वनमाला ने तत्काल लज्जा से मुख छिपाकर सीता और राम के चरणकमल में नमस्कार किया।

यहाँ महीधर राजा की स्त्री इन्द्राणी ने राजमहल में जब वनमाला को नहीं देखा तब करुण स्वर से पुकार की। जिससे महीधर राजा वनमाला को खोजने के लिए निकला। इधर-

उधर भटकते हुए उसने उसी वन में वनमाला को बैठी हुई देखी तो 'इस राजपुत्री के चोर को मारो' - यूं बोलते हुए सैनिक शस्त्र तानकर दौडे। उसे आते देखकर लक्ष्मण क्रोध से खड़े हो गये और ललाट पर भ्रूकुटि की तरह उन्होंने भी प्रत्यंचा को धनुष पर चढ़ाया। फिर शत्रुओं के अहंकार को हर ले ऐसा टंकारघोष किया। टंकार के नाद से कइं सुभट क्षोभ पा गये, कइं त्रस्त हो गये और कइं गिर गये। सिर्फ महीधर राजा अकेला आगे खड़ा रहा। उसने लक्ष्मण को देखा तो उन्हें पहचान कर वह बोला कि, 'हे सौमित्रि ! धनुष पर से प्रत्यंचा उतार लो। मेरी पुत्री के पुण्य से ही आप हमें प्राप्त हुए हो।' लक्ष्मण ने तत्काल धनुष पर से प्रत्यंचा उतार ली; तो महीधर राजा स्वस्थ हुआ। फिर वहां राम को देखकर रथ में से उतरकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि, 'आपके भाई लक्ष्मण के लिए प्रथम से ही उन पर अनुरागवाली मेरी इस पुत्री को मैंने पहले से कल्पा था। मेरे भाग्ययोग से उनका अभी अभी समागम हुआ है। लक्ष्मण जैसे जमाता और आपके जैसे संबंधी मिलने बड़े दुर्लभ हैं।' इस प्रकार कहकर बड़े सम्मानपूर्वक महीधर राजा जानकी, राम और लक्ष्मण को अपने घर ले गये। राम वगैरह वहां रहे हुए थे कि एक दिन सभा में बैठे महीधर राजा के पास **अतिवीर्य** राजा का दूत आकर कहने लगा, 'नंद्यावर्तपुर का राजा अतिवीर्य जो वीर्य का सागर है उसने भरत राजा के साथ विग्रह होने से आपको अपनी सहाय करने बुलाया है। दशरथ के पुत्र भरत राजा के सैन्य में कइं राजा आये हैं। इसलिए महाबलवान अतिवीर्य राजा ने आपको बुलवाया है।' उस समय लक्ष्मण ने पूछा कि, 'नंद्यावर्तपुर के राजा अतिवीर्य को भरत राजा के साथ विरोध होने का कारण क्या है ?' दूत बोला कि, 'मेरे स्वामी अतिवीर्य भरत राजा से भक्ति चाहते हैं। भरत उनकी भक्ति नहीं करता यहीं विरोध का कारण है।' यह सुनकर राम ने दूत को पूछा, 'हे दूत ! अतिवीर्य राजा के साथ युद्ध करने में क्या भरत राजा समर्थ है कि जिससे वह उसकी सेवा करना कबूल नहीं करता ?' दूत ने कहा, 'अतिवीर्य बड़ा बलवान है और भरतराजा भी सामान्य नहीं है, इसलिए उन दोनों में से किसकी विजय होगी यही संदेह है।' इस प्रकार कहते दूत को, 'मैं शीघ्र आ रहा हूँ' यूं कहकर महीधर राजा ने उसको बिदा किया। फिर उसने रामचंद्र को कहा, 'अहो ! अल्पबुद्धिवाले उस अतिवीर्य की कैसी अज्ञानता है कि जो मुझे भरत के साथ युद्ध करने बुला रहा है ! इसलिए अब भरत के साथ की सुहृदयता और उसके साथ की दुश्मनी बताए बिना बड़ी सेना के साथ वहां जाकर भरत के शासन की तरह मैं उसे मार डालूंगा।' राम बोले, 'राजन् ! आप यहीं रहें। आपके सैन्य और पुत्रों सहित मैं वहा जाऊंगा और यथायोग्य करुंगा।' महीधर ने वैसा करना कबूल किया; तो उसके पुत्र को और सैन्य को साथ लेकर रामचंद्र लक्ष्मण तथा सीता सहित नंद्यावर्तपुर समीप गए। राम ने उस नगर के उद्यान में सैन्य का पडाव डाला। उस समय क्षेत्र के अधिष्ठायक देवता ने आकर रामचंद्र को कहा, 'हे महाभाग !

आपकी क्या इच्छा है ? जो हो वह कहिए ! मैं वह करने को तैयार हूँ।' राम ने कहा, 'क्या करना है ?' तब देवता बोले, ''यद्यपि दूसरा सर्व योग्य है, फिर भी एक उपकार मैं करता हूँ कि, वह राजा अतिवीर्य स्त्रियों द्वारा जिता गया' ऐसी उसकी अपकीर्ति फैलाने के लिए मैं सैन्य सहित आपका कामिक स्त्री का रुप कर देता हूँ।'' इस प्रकार कहकर उसने तत्काल पूरा सैन्य स्त्रीराज्य हो त्यों स्त्रीरुप कर डाला। राम और लक्ष्मण भी सुंदर स्त्री बन गये।

फिर राम सैन्य सहित राजमंदिर समीप आए और 'महीधर राजा ने आपको सहाय करने के लिए यह सैन्य भेजा है' यूं द्वारपाल द्वारा अतिवीर्य राजा को कहलवाया। अतिवीर्य बोला, 'महीधर राजा स्वयं आया नहीं, तो बहुमानी (घमंडी) और मरना चाहते ऐसे उस राजा के सैन्य का भी क्या काम ? मैं अकेला ही भरत को जीत लूंगा। मुझे सहायता की क्या जरुरत है ? इसलिए इस अपकीर्ति करनेवाले उसके सैन्य को तत्काल वापस निकाल भेजो।' उस समय कोई मनुष्य बोला, 'देव ! महीधर राजा केवल स्वयं आया नहीं, इतना ही नहीं, उसने आपका हास्य करने के लिए सैन्य भी स्त्रियों का भेजा है।' यह सुनकर नंद्यावर्तपुर के राजा अतिवीर्य को बड़ा क्रोध चढ़ा, जिससे राम वगैरह सर्व स्त्रीरुप राजद्वार के पास आकर खड़े रहे थे; उनके लिए अपने सेवकों को उसने आज्ञा दी कि 'इन स्त्रियों को दासियों की तरह गरदन से पकड़ पकड़ कर हमारे नगर से बाहर निकाल दो। तत्काल उसके महापराक्रमी सामंत सेवक सहित उठकर उस स्त्री सैन्य को उपद्रव करने के लिए तैयार हुए तो लक्ष्मण ने एक हाथ से हाथी को बांधने का आलानस्तंभ उखाडकर उसे ही आयुध बनाकर उससे सबको भूमि पर गिरा दिया। सामंतो के भंग से अतिवीर्य को बड़ा क्रोध चढ़ा, तो एक भयंकर खड्ग तानकर वह स्वयं युद्ध करने उठा। लक्ष्मण ने तुरंत ही उसका खड्ग खींचकर उसे बाल पकड़कर खींचा और उसके ही वस्त्र से उसे बांध लिया। फिर मृग को बाघ पकड़े त्यों पकड़कर उसे नरव्याघ्र लक्ष्मण, त्रस्त पाने से चपल लोचनवाले नगरजनों की नजरों के सामने ही ले चले। उस समय दयालु सीता ने उसे छुड़वाया और लक्ष्मण ने उसके पास भरत की सेवा करवाना कबूल करवाया। फिर क्षेत्रदेवता ने सबका स्त्रीरुप समेट लिया, तो अतिवीर्य ने राम-लक्ष्मण को पहचाना, जिससे उनकी अनेक प्रकार से सेवा-भक्ति की। फिर उस मानी राजा को अपने मान के लिए विचार आया और अपना मान ध्वंस (नाश) पाया जानकर वैराग्य उत्पन्न हुआ, तो 'मैं क्या दूसरे किसी की सेवा करूं' यूं हृदय में अहंकार धरकर वह दीक्षा लेने का अर्थी बना। तत्काल उसने अपने पुत्र **विजयरथ** को राज्य पर बैठाया। उस समय 'आप मेरे दूसरे भरत जैसे हो इसलिए हर्षपूर्वक पृथ्वी पर राज्य करो, दीक्षा मत लो' यूं राम ने कहा। फिर भी उस महा मानवाले अतिवीर्य ने तत्काल दीक्षा ली। उसके पुत्र विजयरथ ने **रतिमाला** नाम की अपनी बहन लक्ष्मण को दी, लक्ष्मण ने उसको ग्रहण किया। वहां से राम सैन्य सहित विजयपुर गए और विजयरथ

भरत की सेवा करने अयोध्या गया। गौरवता के गिरि रुप भरत ने यह वृत्तांत जानकर आए हुए विजयरथ का सत्कार किया। सत्पुरुष भक्तवत्सल होते हैं। फिर विजयरथ ने रतिमाला से छोटी **विजयसुंदरी** नाम की एक अपनी सारभूत बहन थी, वह भरत को दी। उस समय अतिवीर्य मुनि विहार करते हुए वहाँ पधारे। भरत राजा ने अनेक राजाओं साथ सामने जाकर वंदना की और क्षमायाचना की। फिर भरत ने प्रसन्न होकर बिदा किया हुए विजयरथ आनंद से नंदावर्तपुर गया।

यहां रामचंद्र महीधर राजा की आज्ञा लेकर जाने के लिए तैयार हुए, उस समय जाने की इच्छावाले लक्ष्मण ने भी वनमाला से अनुमति मांगी। वनमाला अश्रुपूर्ण नयन करके बोली, "प्राणेश ! उस समय मेरे प्राण की रक्षा क्यों की ? यदि उस समय मैं मृत्यु पा गयी होती तो मेरी सुखमृत्यु होती, क्योंकि आपके विरह का यह असह्य दुःख मुझे नहीं सहन करना पड़ता। हे नाथ ! इसी समय मुझे ब्याहकर आप मुझे साथ ले लो, नहीं तो आपके वियोग का छल पाकर यमराज मुझे ले जायेगा।" लक्ष्मण बोले, "हे मनस्विनी ! इस समय मैं मेरे अग्रज (बड़े) बंधु राम की सेवा में तत्पर हूँ। आप साथ आकर मेरी भ्रातृसेवा में विघ्नकारी न बनों। हे वरवर्णिनी ! मेरे ज्येष्ठ बंधु को वांछित स्थान पर पहुँचाकर तुरंत ही तेरे पास आकर तुझे ले जाऊंगा, क्योंकि तेरा निवास मेरे हृदय में है। हे मानिनी ! दुबारा यहाँ आने के विश्वास के लिए यदि तुझे घोर शपथ देनेवाने हो तो ऐसे शपथ लेने के लिए मैं तैयार हूँ।" फिर वनमाला की इच्छा से लक्ष्मण ने 'यदि मैं दुबारा यहां न आऊँ तो मुझे रात्रिभोजन का पाप लगें' ऐसे शपथ लिए। फिर रात्रि के शेष भाग में राम सीता और लक्ष्मण सहित वहाँ से आगे चले। क्रमशः कइं वन उल्लंघन करके **क्षेमांजलि** नाम की नगरी के समीप आए। बाहर के उद्यान में लक्ष्मण के लाए हुए और सीता ने काटे हुए वनफल वगैरह का राम ने आहार किया। फिर राम की आज्ञा लेकर लक्ष्मण ने उस नगरी में प्रवेश किया। वहां ऊच्च स्वर में हो रही एक उद्घोषणा उसके सुनने में आयी कि 'जो पुरुष उस नगरी के राजा की शक्ति का प्रहार सहन करेगा उसे राजा अपनी कन्या ब्याहेगा।' यह सुनकर लक्ष्मण ने आकर उद्घोषणा कराने का कारण एक पुरुष को पूछा, तो उसने कहा, 'यहां **शत्रुदमन** नाम का एक पराक्रमी राजा है। उसे **कन्यकादेवी** नाम की रानी की कुक्षि से उत्पन्न हुई **जितपद्मा** नाम की एक कन्या है। वह कमललोचना बाला लक्ष्मी का स्थान है। उसके वर के बल की परीक्षा करने के लिए राजा ने ऐसा आरंभ किया है, लेकिन ऐसा वर मिलता नहीं है, इसलिए प्रतिदिन उद्घोषणा हुआ करती है।' इस प्रकार उस पुरुष से हकीकत सुनकर लक्ष्मण उस राजा की सभा में गया। राजा ने पूछा, 'आप कहां रहते हो और कहां से आ रहे हो ?' लक्ष्मण बोले, 'मैं भरत राजा का दूत हूँ। किसी कार्य से यहां से गुजर रहा था, आपकी कन्या की खबर सुनकर उसे ब्याहने के लिए मैं आया हूँ।' राजा

ने पूछा, 'आप मेरी शक्ति का प्रहार सहन करोगे ?' लक्ष्मण बोले, 'एक प्रहार तो क्या, मैं पांच प्रहर सहन करुंगा।' उस समय जितपद्मा राजकन्या वहां आयी। वह लक्ष्मण को देखते ही कामातुर हो गयी, जिससे उस पर अनुरागी होकर राजा को रोकने लगी। फिर भी राजा ने पांच दुसहः शक्तिओं का प्रहार लक्ष्मण पर किया। लक्ष्मण ने दो प्रहार हाथ पर, दो बगल में और एक दांत पर यूं पांच शक्ति प्रहार जितपद्मा के मन के साथ ग्रहण किए, तो जितपद्मा ने तुरंत ही लक्ष्मण के कण्ठ में स्वयंवरमाला डाली। राजा ने भी कहा, 'इस कन्या को ग्रहण करें।' लक्ष्मण बोले, 'मेरे बड़े भाई रामचंद्र बाहर उद्यान में है, जिससे मैं सर्वदा परतंत्र हूँ।' राजा शत्रुदमन ने 'वे दोनों राम-लक्ष्मण हैं' यूं जानकर राम के पास जाकर उनको नमस्कार किए और अपने घर ले आए। फिर वहां उनकी बड़ी धाम-धूम से पूजा की। ''एक सामान्य अतिथि भी पूजने योग्य है तो फिर उत्तम पुरुष की तो बात ही क्या करनी ?'' उनका सत्कार ग्रहण करके राम वहां से चले। उस समय सौमित्रि ने (लक्ष्मण ने) कहा, ''जब मैं वापस लौटूंगा, तब आपकी पुत्री से ब्याहूँगा।''

वहां से रात्रि के अंतिम प्रहर पर निकले राम सायंकाल में वंशशैल्य नाम के गिरि के तट पर स्थित **वंशस्थल** नाम के नगर समीप आ पहुँचे। वहां राजा को और सब लोगों को उन्होंने भयभीत स्थिति में देखा, तो राम ने एक पुरुष को उनके भय का कारण पूछा। उस पुरुष ने कहा, 'यहां तीन दिन से रात्रि के समय इस पर्वत पर भयंकर ध्वनि होता है, उस भय से सब लोग दूसरे स्थान पर जाकर रात्रि व्यतीत करते हैं, और प्रातःकाल में वापस यहां लौटते हैं। इस प्रकार लोगों की नित्य महाकष्टकारी स्थिति चल रही है।' यह सुनकर लक्ष्मण की प्रेरणा से और कौतुक से राम उस गिरि पर चढ़े। वहां दो मुनि कायोत्सर्ग में रहे हुए उन्हें दिखाई दिए। राम, लक्ष्मण और सीता ने उनकी भक्तिपूर्वक वंदना की। फिर उनके समक्ष राम ने गोकर्ण यक्ष ने दी हुई बीणा बजाना शुरु किया। लक्ष्मण ने ग्राम व राग से मनोहर ऐसा गान किया और सीतादेवी ने अंगहार से विचित्र नृत्य किया। उस समय सूर्य अस्त पाया और रात्रि वृद्धि पायी। इतने मैं अनेक वैतालों के रुप बनाकर **अनलप्रभ** नाम का देव वहाँ आया और स्वयं भी वेताल का रुप लेकर अट्टहास्य करते हुए और आकाश को फोड़ डाले ऐसे शब्द करते हुए वह दुराशयी उन दोनों महर्षियों को परेशान करने लगा। तत्काल राम-लक्ष्मण दोनों सीता को मुनि के पास छोड़कर कालरुप बनकर उस वैताल को मारने के लिए उद्धत बने। उस समय उनके तेज के प्रसार को सहन करने में असमर्थ बना वह देव वहाँ से अपने स्थानक पर चला गया और दोनों मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवताओं ने तुरंत ही आकर उनके केवलज्ञान का महोत्सव किया। फिर राम ने दोनों मुनियों की वन्दना करके उपसर्ग होने का कारण पूछा, तो **कुलभूषण** नाम के मुनि बोले -

"पद्मनी नाम की नगरी में **विजयपर्वत** राजा था। उसे **अमृतस्वर** नाम का एक दूत था। उसे **उपयोगा** नाम की पत्नी से **उदित** और **मुदित** नाम के दो पुत्र हुए थे। अमृतस्वर दूत को **वसुभूति** नाम का एक ब्राह्मण मित्र था। उसके उपर उपयोगा आसक्त बनने से वह अपने पति अमृतस्वर को मार डालना चाहती थी। एक बार राजा की आज्ञा से अमृतस्वर को विदेश जाना पड़ा, उसके साथ वसुभूति भी गया और मार्ग में कोई छल करके उसने अमृतस्वर को मार डाला। वसुभूति लौटकर नगरी में आकर लोगों को कहने लगा कि 'अमृतस्वर ने किसी कार्य के लिए मुझे वापस भेजा है।' फिर उसने उपयोगा को कहा कि, 'हमारे संभोग में विघ्न करनेवाले अमृतस्वर को मैंने मार्ग में छल से मार डाला है।' उपयोगा बोली, 'यह कार्य तुमने अच्छा किया, अब इन पुत्रों को भी मार डालो, फिर हमें निर्मक्षिकपन[1] होगा।' वसुभूति ने ऐसा करना कबूल किया। दैवयोग से उनका यह विचार वसुभूति की स्त्री ने सुना, जिससे इर्ष्या के कारण उसने यह वृत्तांत अमृतस्वर के पुत्र मुदित और उदित को बताया। उदित ने तत्काल क्रोध से वसुभूति को मार डाला। मृत्यु पाकर वहाँ से वसुभूति नलपल्ली में म्लेच्छरुप में उत्पन्न हुआ।

एक बार **मतिवर्द्धन** नाम के मुनि से धर्म सुनकर राजा ने दीक्षा ली। साथ साथ मुदित और उदित ने भी दीक्षा ली। एक बार उदित और मुदित मुनि सम्मेतशिखर पर के चैत्यों की वन्दना करने के लिए जाते हुए मार्ग भटक (भूल) जाने से उस नलपल्ली में आ पहुँचे। वहाँ वसुभूति का जीव जो म्लेच्छ बना था, उसने उन दोनों मुनियों को देखा, जिससे पूर्वभव के बैर के कारण वह तत्काल उन्हें मारने दौडा, उसको म्लेच्छ राजा ने अटकाया, क्योंकि वह म्लेच्छपति पूर्व जन्म में पक्षी था और ये उदित और मुदित दोनों किसान थे। उस समय उन्होंने उस पक्षी को किसी शिकारी से छुड़वाया था। इसलिए उस म्लेच्छपति ने यहां उनकी रक्षा की। फिर उन मुनियों ने सम्मेतगिरि पर जाकर वहां चैत्यों की वन्दना की और चिरकाल तक पृथ्वी पर विहार किया। अंत में अनशन करके मृत्यु पाकर वे दोनों मुनि महाशुक्र देवलोक में **सुन्दर** और **सुकेश** नाम के महर्द्धिक देवता हुए। वसुभूति का जीव जो म्लेच्छ था उसने अनेक भवभ्रमण करके किसी पुण्ययोग से मनुष्यभव पाया। उस भव में वह तापस बना। वहां मृत्यु पाकर वह ज्योतिष देवता में धूमकेतु नाम का मिथ्यादृष्टि दृष्ट देवता बना। उदित और मुदित के जीव महाशुक्र देवलोक में से च्यूत होकर इस भरतक्षेत्र में रिष्टपुर नाम के बड़े नगर में **प्रियंवद** नाम के राजा की पद्मावती स्त्री के उदर से **रत्नरथ** और **चित्ररथ** नाम के दो प्रसिद्ध पुत्र बने। धूमकेतु भी ज्योतिषी में से च्यूत होकर उसी राजा की कनकाभा नाम की देवी के उदर से **अनुद्धर** नाम का पुत्र बना। वह अपने सापत्न[2] बंधु रत्नरथ और चित्ररथ पर मत्सर रखने लगा, लेकिन वे

१. बीच में बाधा पहुंचाने वाला रहितपना। २.सौतेला।

उस पर मत्सर नहीं रखते थे। रत्नरथ को राज्यपर और चित्ररथ तथा अनुद्धर को युवराज पद देकर प्रियंवद राजा ने दीक्षा ली और सिर्फ छः दिन व्रत पालकर, मृत्यु पाकर वह देवता बना। राज्य का पालन करते हुए रत्नरथ को एक राजा ने **श्रीप्रभा** नाम की अपनी कन्या दी। उस कन्या के लिए पहले अनुद्धर ने मांग की थी, इसलिए उसे क्रोध चढ़ा तो युवराजपना छोड़कर वह रत्नरथ की भूमि को लूंटने लगा। रत्नरथ ने उसे रणभूमि में गिराकर पकड़ लिया। फिर बहुत परेशान करके आखिर में उसे छोड़ दिया, तो वह तापस बना। तापसपने में स्त्री के संग से अपने किये तप को उसने निष्फल कर दिया। वहां से मृत्यु पाकर बड़ा भवभ्रमण करके चिरकाल के बाद वह मनुष्य बना। दुबारा उस भव में भी तापस होकर उसने अज्ञान तप किया। उस भव में मृत्यु पाकर वह हमें उपसर्ग करनेवाला यह अनलप्रभ नाम का ज्योतिषी देवता बना है। उस चित्ररथ ने और रत्नरथ ने क्रमशः दीक्षा ली और कालक्रम से अचुत्यकल्प में **अतिबल** और **महाबल** नाम के दो महर्द्धिक देवता बने।

वहां से च्यूत होकर वे सिद्धार्थपुर के क्षेमंकर राजा की रानी विमलादेवी की कुक्षि में अवतरित हुए। क्रमशः उस विमलादेवी से मैं **कुलभूषण** और यह **देषभूषण** नाम के दो पुत्र हुए। राजा ने हमें **घोष** नाम के उपाध्याय के पास अभ्यास के लिए रखा। हमने बारह वर्ष तक वहां रहकर सर्व कलाओं का अभ्यास किया। तेरहवें वर्ष में घोष उपाध्याय के साथ हम राजा के पास आए। मार्ग में राजमंदिर के झरोखे में बैठी हुई एक कन्या हमें नजर आयी। उसे देखकर तत्काल हम उस पर अनुरागी बने, जिससे मन में उसके लिए ही चिंता होने लगी। फिर हमने राजा के पास आकर सब कलाएं दिखाई। राजा ने उपाध्याय की पूजा करके उन्हें बिदा किया। हम राजा की आज्ञा से हमारी माता के पास आये। वहां वह कन्या भी हमें दुबारा नजर आयी। माता ने कहा, 'हे वत्सों ! यह **कनकप्रभा** नाम की तुम्हारी बहन है। तुम घोष उपाध्याय के घर रहते थे उस अरसे में यह कन्या जन्मी है। इसलिए तुम उसे पहचान नहीं सकते।' यह सुनकर हम लज्जित हुए और अज्ञानता से उसकी इच्छा की थी इसलिए क्षणमात्र में वैराग्य पाकर हमने गुरु के पास जाकर दीक्षा ली। तीव्र तपस्या करते हुए हम इस महागिरि पर आये और यहां शरीर सें भी निस्पृह होकर कायोत्सर्ग में रहे। हमारे पिता हमारे वियोग से अनशन लेकर, मृत्यु पाकर **महालोचन** नाम के गरुडपति देव बने हैं। आसनकंप से हमें होते उपसर्ग को जानकर पूर्वजन्म के स्नेह से पीडित होकर वे इस समय यहां आये हैं।

एक बार पूर्वोक्त अनलप्रभ देव कौतुक से कुछ देवताओं के साथ केवलज्ञानी **अनंतवीर्य** महामुनि के पास गया। देशना पूर्ण होने के बाद किसी शिष्य ने अनंतवीर्य मुनि को पूछा, 'हे स्वामी ! मुनिसुव्रत प्रभु के तीर्थ में आप के बाद कौन केवलज्ञानी होगा ?' केवली बोले, 'मेरे

निर्वाण के बाद कुलभूषण और देशभूषण नाम के दो भाई केवलज्ञानी बनेंगे।' यह सुनकर अनलप्रभ देव अपने स्थानक पर गया। एक बार उसने विभंग ज्ञान से हमें यहां कायोत्सर्ग में रहे हुए जाना, इससे मिथ्यात्व के कारण अनंतवीर्य मुनि का वचन वृथा करने और हमारे साथ पूर्वजन्म का बैर लेने के लिए वह यहां आकर हमें दारुण उपद्रव करने लगा। उसे उपद्रव करते हुए चार दिन हुए। आज आप यहां आये तो आप के भय से वह भाग गया है और कर्म के क्षय से हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। वह देव उपसर्ग में तत्पर होते हुए भी हमें तो कर्मक्षय में सहायकारी बना है।''

उस समय वहां बैठा हुआ गरुडपति महालोचन देव बोला, 'हे राम ! आप यहां आए यह बहुत अच्छा किया। अब आपके उपकार का बदला मैं किस तरह चुकाऊं?' राम ने कहा, 'हमें कुछ भी कार्य नहीं है।' तो 'मैं किसी तरह आप के उपर उपकार करुंगा' यूं कहकर महालोचन देव अदृश्य हो गया।

यह समाचार सुनकर वंशस्थल का राजा **सुरप्रभ** वहां आया और उसने राम को नमस्कार करके उनकी उच्च प्रकार से पूजा की। राम की आज्ञा से उस पर्वत उपर उसने अर्हंत प्रभु के चैत्य बनवाए और तब से वह पर्वत राम के नाम से **रामगिरि** ऐसे नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर रामचंद्र सुरप्रभ राजा की आज्ञा लेकर वहां से चले। आगे चलते हुए राम ने निर्भय होकर महाप्रचंड ऐसे **दंडकारण्य** में प्रवेश किया। वहां एक बड़े पर्वत के गुहागृह में निवास करके वे अपने घर की भाँति स्वस्थतापूर्वक रहे। एक दिन भोजन के समय **त्रिगुप्त** और **सुगुप्त** नाम के दो चारण मुनि आकाश मार्ग से वहां आये। वे दोनों मासोपवासी थे, और पारणे के लिए आये थे। उनकी राम, सीता और लक्ष्मण ने भक्तिपूर्वक वंदना की। फिर सीता ने प्रासुक अन्नपान से उन मुनियों को प्रतिलाभित किया उस समय देवताओं ने वहां रत्नों की तथा सुगंधित जल की वृष्टि की। उस समय कंबुद्वीप के विद्याधरों का राजा **रत्नजटी** तथा दो देवता वहां आये। उन्होंने प्रसन्न होकर राम को अश्व सहित रथ दिया। सुगंधित जल की वृष्टि की गंध से **गंध** नाम का कोई रोगी पक्षी जो वहां रहता था वह वृक्ष पर से उतरकर नीचे आया। मुनि के दर्शन होते ही उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ, जिससे मूर्च्छा खाकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। सीता ने उसके पर जलसिंचन किया, तो थोड़ी देर में संज्ञा पाकर वह मुनियों के चरणों में गिरा, तो उन मुनियों को प्राप्त हुई स्पर्शौषधि लब्धि के प्रभाव से मुनिचरण के स्पर्श से वह तत्काल निरोगी हो गया। उसके पंख सोने जैसे हो गये, चौंच प्रवाल का भ्रम कराने लगी। चरण पद्मराग मणि जैसे हो गये और पूरा शरीर अनेक प्रकार के रत्नों से प्रभावाला बना। उसके मस्तक पर रत्नांकुर की श्रेणी समान जटा दिखने लगी, इसलिए उस पक्षी का **जटायु** ऐसा

नाम तब से प्रसिद्ध हुआ। उस समय राम ने उस मुनि को पूछा, 'गीध पक्षी मांसभक्षण करनेवाला और बुरी बुद्धिवाला होता है तो यह गीध पक्षी आपके चरण में आकर शांत क्यों हो गया ? और हे भदंत ! यह पक्षी पहले अत्यंत कुरुप था, और पलभर में ऐसी सुवर्णरत्न की कांतिवाला कैसे हो गया ?' सुगुप्त मुनि बोले -

"यहां पहले **कुंभकारकट** नाम का एक नगर था। वहां यह पक्षी दंडक नाम का राजा था। उस समय में श्रावस्ती नगरी में **जितशत्रु** नाम का राजा था। उसे **धारणी** नाम की पत्नी, **स्कंदक** नाम का पुत्र और **पुरंदरयशा** नाम की एक पुत्री थी। उस पुत्री को कुंभकारकट नगर का पति **दंडक** राजा ब्याहा था। एक बार दंडक राजा ने किसी कार्य के लिए जितशत्रु राजा के पास **पालक** नाम के एक ब्राह्मण जाति के दूत को भेजा। पालक वहां आया, उस समय जितशत्रु राजा जैन धर्म की गोष्ठि में तत्पर था। जिससे वह दुष्ट बुद्धिवाला पालक जैन धर्म को दूषित करने लगा। उस समय उस दुराशयी और मिथ्यादृष्टि पालक को स्कंदककुमार ने सभ्य संवादपूर्वक युक्ति से निरुत्तर कर दिया तो सभ्यजनों ने उसका बड़ा उपहास किया। इससे पालक को स्कंदक पर बड़ा क्रोध चढ़ा। राजा के बिदा करने पर वह वापस कुंभकारकट नगर गया।

क्रमशः स्कंदक ने विरक्त होकर पांचसौं राजपुत्रों के साथ मुनि सुव्रत प्रभु से दीक्षा ली। एक बार उन्होंने पुरंदरयशा को तथा अपने परिवार को बोध देने के लिए कुंभकारकट नगर जाने के लिए प्रभु से आज्ञा मांगी। प्रभु बोले, 'वहाँ जाने से परिवार सहित आपको मरणांत उपसर्ग होगा।' स्कंदक मुनि ने दुबारा मुनि सुव्रत स्वामी को पूछा, 'हे भगवन् ! हम उसमें आराधक होंगे या नहीं ?' प्रभु बोले, 'आपके सिवा सब आराधक होगे।' स्कंदक ने कहा, 'तो मेरा सब पूर्ण हुआ ऐसा मैं मानूंगा।' इस प्रकार कहकर स्कंधक मुनि ने परिवार सहित वहां से विहार किया। पांचसौं मुनियों के साथ विहार करते करते **स्कंदकाचार्य** क्रमशः कुंभकारकट समीप आये। उनको दूर से देखते ही क्रूर पालक ने पूर्व पराभव का स्मरण करके तत्काल साधु के उपयोगी ऐसे उद्यानों में जाकर पृथ्वी में शस्त्र गाढ़े। उनमें से एक उद्यान में स्कंदकाचार्य ठहरे। दंडक राजा परिवार सहित उनकी वंदना करने आया। स्कंदकाचार्य ने देशना दी, वह सुनकर कइं लोगों ने हर्ष पाया। देशना के अंत में हर्षित बना दंडक राजा घर आया।

इस अवसर पर उस दुष्ट पालक ने राजा को एकांत में ले जाकर कहा, 'ये स्कंदक मुनि बगुलाभक्त है और पाखंडी है। ये महासठ मुनि हजार हजार योद्धाओं के साथ युद्ध कर सके ऐसे सहस्रयोधी मुनिवेशधारी पुरुषों को साथ लेकर उनके द्वारा आपको मार कर आपका राज्य लेने के लिए यहां आये हैं। इस उद्यान में इस मुनिवेशधारी सुभटों ने अपने अपने स्थान में गुप्त प्रकार से शश्त्र गाड़े हैं। आप स्वयं जाकर उसकी जांच करें।' राजा ने पालक के कहने

पर से मुनियों के स्थान के नीचे खुदवाया तो वहां विचित्र प्रकार के शस्त्रों को गाड़े हुए देखे; जिससे उसने बड़ा खेद पाया। फिर दंडक ने सोचे बिना पालक को आज्ञा दी - "हे सचिव ! तुमने ये बहुत अच्छा जान लिया, क्योंकि मैं तो तुम्हारे से ही नेत्रवाला हूँ। अब इस दुर्मति स्कंदक को जो योग्य शिक्षा देनी हो वह दो। क्योंकि आप वह जानते हो। हे महामति ! अब दुबारा इसके बारे में मुझे पूछना मत।" इस प्रकार आज्ञा मिलते ही पालक ने शीघ्र जाकर मनुष्य को पेरने (पीलने) का एक यंत्र करवाया और उस उद्यान में लाकर उसमें स्कंदक के सम्मुख एक एक साधु को पेरने लगा। हरेक मुनि को पेरते समय पर स्कंदकाचार्य ने देशनापूर्वक सम्यक्त्व (अच्छे) प्रकार से आराधना करवाई। जब सर्व परिवार में आखिर में रहे एक बालमुनि को यंत्र के पास लाया गया तब स्कंदकाचार्य ने बड़ी करुणा आने से पालक को कहा, "पहले मुझे पेर। मेरा यह वचन मान्य रख। जिससे इन बालमुनि को पेरते हुए मैं न देखूं।" उस बालमुनि को पीड़ा करने से स्कंदक ज्यादा पीडा पाएगा यूं जानकर पालक ने उन्हें पीड़ा देने के लिए ही उनका वचन न मानते हुए उनकी नजरों के समक्ष ही पहले उन बालमुनि को पेर डाला। सब मुनि केवलज्ञान प्राप्त करके अव्ययपद को पा गये। स्कंदकमुनि ने अंतिम पचखाण लेकर ऐसा संकल्प किया कि, 'यदि इस तपस्या का फल हो तो मैं इस दंडक तथा पालक और उसके कुल ऐवं देश का नाश करनेवाला बनूं।' ऐसा संकल्प बांधते उस स्कंदकाचार्य को पालक ने पेर डाला। वहां से कालक्रमानुसार उनका क्षय करने के लिए वे कालाग्नि की तरह **वह्निकुमार** निकाय में देवता बनें।

पुरंदरयशा ने दिए हुए रत्नकंबल के तंतु से बनाया हुआ स्कंदकाचार्य का रजोहरण जो रुधिर से व्याप्त हो गया था उसे एक पक्षिणी हर गई। उसे भुजादण्ड मानकर यत्न से ग्रहण किया था, लेकिन दैवयोग से वह छूट जाने से देवी पुरंदरयशा के समक्ष ही गिरा। यह देखकर उसकी जांच करने पर अपने महर्षि भाई की यंत्र में पेरे जाने से हुई मृत्यु उसे मालूम पड़ी, जिससे 'अरे पापी ! तूने यह क्या पाप किया ?' यूं वह अपने पति दंडक राजा पर आक्रोश करने लगी। उसी समय उस शोकमग्न पुरंदरयशा को उठाकर शासनदेवी ने मुनिसुव्रतप्रभु के पास छोड़ा। वहां उसने तुरंत ही उनसे दीक्षा ली। अग्निकुमार बने स्कंदक के जीव ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत जानकर पालक और नगरजन सहित दंडक राजा को भस्म कर दिया। तब से यह दारुण और उज्जड ऐसा **दंडकारण्य** बना है और उस दंडक के नाम से ही पृथ्वी पर प्रसिद्ध है।

दंडक राजा संसार के कारणरुप अनेक योनियों में परिभ्रमण करके अपने पापकर्म से यह गंध नाम का महारोगी पक्षी बना है। हमारे दर्शन से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ और हमें

प्राप्त बनी स्पर्शोषधि लब्धि के प्रभाव से उसके सब रोग क्षय पा गए।''

इस प्रकार का अपने पूर्वभव का वृत्तांत सुनकर पक्षी दुबारा बड़ा खुश होकर मुनि के चरणों मे गिरा और धर्म सुनकर उसने श्रावकपना स्वीकारा। महामुनि ने उसकी इच्छा जानकर उसे जीवघात, मांसाहार और रात्रिभोजन के पच्चखाण कराए। फिर मुनि ने रामचंद्र को कहा, 'यह पक्षी आप का सहधर्मी है, और साधर्मी बंधु पर वात्सल्य करना तो कल्याणकारी है, यूं जिनेश्वर भगवंत ने कहा है।' ऐसे मुनिवचन सुनकर 'हा, वह मेरा परमबंधु है' यूं कहकर राम ने मुनि को वन्दना की, तो वे दोनो मुनि आकाशमार्ग से उड़कर दूसरी जगह गए। राम, लक्ष्मण और जानकी उस जटायु पक्षी को साथ रखकर दिव्य रथ में बैठे और क्रीडा के लिए अन्य स्थान पर विचरने लगे।

उस अरसे में पाताललंका में खर और चंद्रनखा के **शंबूक** और **सुंद** नाम के दो पुत्र युवावस्था को प्राप्त हुए। एक बार माता-पिता के रोकने पर भी शंबूक सूर्यहास खड्ग को साधने के लिए दण्डकारण्य में आया। वहां क्रौंचरवा नदी के तट पर एक वंशगह्वर में वह रहा। उस समय वह बोला, 'यहां रहते हुए जो मुझे रोकेगा, उसे मैं मार डालूंगा।' फिर एक बार एकांत भोजन करनेवाला, विशुद्धात्मा, ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय वह एक बड़ की शाखा के साथ अपने दोनों पैर बांधकर, अधोमुखि बनकर सूर्यहास खड़ग को साधनेवाली विद्या का जाप करने लगा। यह विद्या बारह वर्ष और सात दिन साधने से सिद्ध होती है। इस प्रकार चमगादड की तरह उलटे मस्तक पर रहते हुए उसे बारह वर्ष और चार दिन बीत गए। तो उसे साध्य होने की इच्छा से मान्य में रहा सूर्यहास खड्ग आकाश में तेज और सुगंध फैलाते हुए उस वंशगहवर के समीप आया। उस समय क्रीडा से इधर-उधर घूमते लक्ष्मण वहां आ पहुँचे तो सूर्य के किरणों के समूह जैसा सूर्यहास खड्ग उन्हें नजर आया। लक्ष्मण ने वह खड्ग हाथ में लिया और तुरंत उसे मान्य में से बाहर खींचा, क्योंकि ''अपूर्व शस्त्र देखने में क्षत्रियों को कूतूहल होता है।'' फिर 'यह कैसा तीक्ष्ण है ?' ऐसी परीक्षा करने के लिए लक्ष्मण ने उसके बड़ समीप रहे बंशजाल को कमल के दंड की तरह छेद डाला, जिससे वंशजाल में रहे शंबूक का मस्तककमल कट गया और वह लक्ष्मण के सम्मुख आकर गिरा। फिर लक्ष्मण ने उस वंशजाल में प्रवेश करके देखा तो वड की शाखा के साथ लटकता धड भी उसे नज़र आया। उस समय 'अरे ! यह कोई युद्ध नहीं करनेवाले और शस्त्रविहीन निरपराधी पुरुष को मैंने मार डाला। इस कृत्य से मुझे धिक्कार है।' इस प्रकार लक्ष्मण अपनी निंदा करने लगा। फिर यह सर्व वृत्तांत उसने राम के पास आकर कहा और वह खड्ग दिखाया। राम वह खड्ग देखकर बोले, 'हे वीर ! यह सूर्यहास खड्ग है और इसके साधनेवाले को ही तुमने मार डाला है। इसका कोई उत्तरसाधक भी

नदज़दीक में ही होना संभव है।'

उस समय पातालल्ंका में रावण की बहन चंद्रनखा को विचार आया कि, 'आज अवधि पूरी हो गई है इसलिए मेरे पुत्र को सूर्यहास खड्ग आज जरुर सिद्ध हो जायेगा। इसलिए शीघ्रता से उसके लिए पूजा की सामग्री और अन्नपान लेकर मैं वहां जाऊं। यूं सोचकर तत्काल हर्ष से वह वंशगह्वर के पास आयी। वहां अपने पुत्र का खुले केशवाला और जिसमें कुंडल लटक रहे थै ऐसा मस्तक नजर आया, तो 'हा ! वत्स शंबूक ! हा वत्स शंबूक ! तू कहां गया ?' यूं पुकार मचा मचाकर वह रोने लगी। इतने में जमीन पर अंकित लक्ष्मण के मनोहर पादचिह्नों की पंक्ति उसे नज़र आयी, जिससे वह ऐसा निश्चय करके कदम दबाते हुए तेजी से चली कि मेरे पुत्र को मार डाला है उसके कदमों की यह पंक्ति है। थोडे दूर जाते ही एक वृक्ष के नीचे सीता, लक्ष्मण के साथ बैठे हुए नेत्राभिराम ऐसे रामचंद्र को उसने देखा। सुंदर राम को देखकर चंद्रनखा तत्काल रतिवश हो गई। ओह ! महाशोक में भी कामिनियों को काम का कैसा आवेश होता है ?

फिर नागकन्या जैसी सुंदर कन्या का रुप धरकर वह कामपीडित चन्द्रनखा कांपते कांपते राम के पास आयी। उसे देखकर रामचंद्र बोले, 'भद्रे ! यमराज के स्थान जैसे इस दारुण दण्डकारण्य में तू अकेली कहां से आ पहुँची ?' वह बोली, ''मैं अवंति के राजा की कन्या हूँ। रात्रि में महल पर सो रही थी, वहां से कोई खेचर ने मेरा हरण किया और इस अरण्य में ले आया। इतने में किसी दूसरे विद्याधर कुमार ने उसे यहां देखा, तो हाथ में खड्ग लेकर वह बोला, 'अरे पापी ! हारलता को चील पक्षी ले जाए त्यों इस स्त्री रत्न को हरकर तूं कहा जायेगा ? मैं तेरा काल बनकर यहां आया हूँ।' उसके ऐसे वचन सुनकर, मुझे हरकर लाने वाले खेचर ने मुझे यहां रखकर उन दोनों ने चिरकाल तक खड्गाखड्गी युद्ध किया। आखिर में उन मत्त हाथियों की तरह उन दोनों की मृत्यु हो गयी। अब 'मुझे जाना कहा ?' यूं सोचते हुए इधर-उधर भटका करती हूँ। इतने में जंगल में छाएदार वृक्ष मिल जाय त्यों आप मुझे पुण्यरुप से प्राप्त हुए हो। हे स्वामी ! मैं एक कुलीन कुमारिका हूँ, इसलिए आप मेरे साथ विवाह करें। महत्त पुरुषों के पास की हुई याचकों की प्रार्थना वृथा नहीं होती।'' उसे देखते ही महाबुद्धिमान राम-लक्ष्मण परस्पर प्रफुल्ल नेत्र से सोचने लगे कि, 'यह कोई मायावी स्त्री है और नट की तरह वेशधारण करके यह सब कुट नाटक दिखाकर हमें छलना चाहती है।' फिर हास्य ज्योत्स्ना की बाढ़ से होठ को विकसित करते हुए राम बोले, 'मैं तो स्त्री सहित हूँ, इसलिए स्त्रीरहित ऐसे लक्ष्मण को तू भज।' राम के ऐसे वचनों से चन्द्रनखा ने लक्ष्मण के पास जाकर प्रार्थना की। तो वे बोले, 'तू पहले मेरे पूज्य बंधु के पास गई इसलिए तू भी मेरी पूजनीय बन गयी।

इसलिए अब इसके बारे में मेरे समक्ष बात भी मत कर।'

इस प्रकार अपनी याचना के खंडन से और पुत्र के वध से उसे अत्यंत क्रोध उत्पन्न हुआ। जिससे तत्काल पाताललंका में जाकर पुत्र के क्षय के बारे में पूरा वृत्तांत अपने स्वामी खर विद्याधर वगैरह को कहा, तो तत्काल पर्वत को उपद्रव करने में हस्ती जाय त्यों राम को उपद्रव करने के लिए चौदह हजार विद्याधरों के सैन्य को लेकर वे वहां आये। 'मैं हूँ, फिर भी पूज्य रामचंद्र स्वंय युद्ध करें ?' ऐसे विचार से लक्ष्मण ने युद्ध करने के लिए रामचंद्र से मांग की। राम ने कहा, 'हे वत्स ! भले ही विजय पाने के लिए तू जा, लेकिन यदि संकट आ जाय तो मुझे बुलाने के लिए सिंहनाद करना।' लक्ष्मण ने यह बात कबूल की और तत्काल उनकी आज्ञा पाकर धनुष्यमात्र लेकर गए; फिर सर्पों को गरुड की तरह उनको मारना शुरु किया। जब उनका युद्ध बढ़ने लगा तब अपने स्वामी का पक्ष बढ़ाने के लिए चन्द्रनखा अपने भाई रावण के पास शीघ्रता से आयी और रावण को कहा, "हे भाई ! किसी राम-लक्ष्मण नाम के दो अज्ञात मनुष्य दंडकारण्य में आये हैं। उन्होंने तुम्हारे भानजे को यमद्वार पहुंचाया है।' यह खबर सुनकर तुम्हारे बहनोई खर विद्याधर अपने अनुज बंधु और सैन्य को लेकर वहां गए हैं और इस समय वे लक्ष्मण के साथ युद्ध कर रहे हैं। अपने अनुज बंधु के बल से गर्व पाए राम सीता के साथ विलास करते हुए अलग ही बैठा हुआ है, और सीता रुपलावण्य की शोभा में स्त्रियों में सीमाचिह्न है। उसके जैसी कोई देवी, नागकन्या या मानुषी स्त्री नहीं है। वह कुछ अलग ही है। सर्व सुरासुर की स्त्रियों को दासी करे ऐसा उसका रुप तीन लोक में अनुपम और वाणी से न कहा जाय ऐसा है। हे बंधु ! इस समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक पृथ्वी पर जो जो रत्न हैं, वे सब रत्न तेरे ही योग्य हैं, इसलिए रुपसंपत्ति से दृष्टियों को अनिमेष होने के कारणरुप उस स्त्रीरत्न को तू ग्रहण कर, फिर भी यदि तू उसे नहीं पायेगा, तो तू रावण ही नहीं है।" उसके ऐसे वचन सुनकर रावण तत्काल पुष्पक विमान में बैठा और उसे आज्ञा दी कि, 'हे विमानराज ! जहां जानकी है वहा तू तुरंत जा।' तत्काल मानो वह जाने चाहते रावण के मन की स्पर्धा करता हो त्यों वह विमान अति वेग से जानकी के पास आया। वहां उग्र तेजवाले राम को देखते ही अग्नि से बाघ की तरह रावण भय पाकर उनसे दूर जाकर खड़ा रहा। वह तुरंत ही विचार में पडा कि 'यहां अति उग्र राम और उसने सीता का हरण, यह तो एक तरफ बाघ और एक तरफ नदी के जैसा महा कष्टकारी है।' ऐसा विचार करके रावण ने तत्काल अवलोकनी विद्या का स्मरण किया, तो तुरंत ही वह विद्या दासी की तरह अंजलि जोड़कर उसके पास आकर खड़ी हो गई। रावण ने उसको कहा कि, 'सीताहरण के कार्य में तू मुझे सहाय कर।' विद्यादेवी बोली, 'वासुकी नाग के मस्तक पर से रत्न लेना तो सरल है, लेकिन राम के समीप से सीता को लेना देवताओं के लिए भी सरल नहीं है। लेकिन उसका एक उपाय है,

वह यह है कि जब लक्ष्मण युद्ध करने गया तब राम को बुलाने के लिए सिंहनाद करने का संकेत तय किया हुआ है; इसलिए यदि उपाय करे तो रामचंद्र वहां जाय और सीता का हरण हो सके।' रावण ने ऐसा करने की आज्ञा दी तो देवी ने वहां से दूर जाकर साक्षात् लक्ष्मण के जैसा सिंहनाद किया। उस सिंहनाद को सुनकर राम संभ्रम से विचार में पड़े कि 'हस्तिमल जैसे मेरे अनुज बंधु लक्ष्मण के जैसा जिसका जगत में कोई प्रतिमल्ल नहीं है। लक्ष्मण को संकट में डाले ऐसे पुरुष मुझे नजर ही नहीं आते। फिर भी सिंहनाद प्रथम किए हुए संकेत अनुसार बराबर सुनाई में आ रहा है।' इस प्रकार तर्क-वितर्क में महामन वाले राम व्यग्र हो गये। उस समय सीता लक्ष्मण पर के वात्सल्यभाव से इस प्रकार बोली, 'हे आर्यपुत्र ! वत्स लक्ष्मण संकट में पड़े फिर भी आप वहां जाने में विलंब क्यों करते हो ? शीघ्रता से जाकर वत्स लक्ष्मण को सहायता दो।' सीता के ऐसे वचन से और सिंहनाद से प्रेरित राम असगुन को भी नहीं मानते हुए शीघ्रतापूर्वक वहां गये।

फिर मौका आया जानकर रावण नीचे उतरकर रुदन करती हुई जानकी को पुष्पक विमान में बैठाने लगा। जानकी को रोते हुए सुनकर 'हे स्वामिनी ! भय मत रखना, मैं आ पहुंचा हूँ।' 'अरे निशाचर ! खडे रह, खडे रह' यूं रोष से बोलता हुए जटायु पक्षी दूर से ही रावण पर दौडा और अपने तीक्ष्ण नाखूनों की नोंक से हल से भूमि की तरह उस बड़े पक्षी ने रावण के उरस्थल को नोंच डाला। रावण ने क्रोध करके दारुण खड्ग तानकर उसके पंख छेद डाले और उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर रावण निःशंक होकर सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर अपना मनोरथ पूर्ण करके शीघ्रतापूर्वक आकाशमार्ग से चला। उस समय 'शत्रुओं को मंथन करने वाले हे नाथ ! रामचंद्र ! हे वत्स लक्ष्मण ! हे पूज्य पिता ! हे महावीर बंधु भामण्डल ! बलिं को कौआ उठा जाय त्यों यह रावण छल से आपकी सीता को हर जा रहा है।' इस प्रकार रुदन करते हुए सीता भूमि और आकाश को रुलाने लगी।

मार्ग में अर्कजटी के पुत्र **रत्नजटी** खेचर ने यह रुदन सुनकर बिचार किया कि 'अवश्य यह राम की पत्नी सीता का रुदन लगता है, और यह शब्द समुद्र पर सुनाई देता है। इसलिए जरुर रावण ने राम-लक्ष्मण को छलकर उस सीता का हरण किया होगा ऐसा लगता है। तो इस समय मेरे स्वामी भामण्डल पर मैं उपकार करुं' ऐसा सोचकर वह रत्नजटी खेचर ने खड्ग खींचकर रावण पर आक्षेप करते हुए दौडा। युद्ध के लिए पुकारते उस रत्नजटी का कुछ हास्य करके रावण ने अपनी विद्या के सामर्थ्य से उसकी सब विद्याएं हर ली। जिससे तत्काल जिसके पंख छिदे हो ऐसे पक्षी की तरह रत्नजटी विद्या का हरण होते ही कंबुद्वीप में गिरा और वहां बसे कंबुगिरि (पहाड) पर रहने लगा।

यहां रावण ने विमान में बैठकर, आकाशमार्ग से समुद्र पर जाते हुए कामातुरता से बड़े अनुनयपूर्वक सीता को इस प्रकार कहा, "हे जानकी ! सर्व खेचर और भूचर लोगों का मैं स्वामी हूँ। उसकी पटरानी पद को आप प्राप्त हुई हो। फिर भी क्यों रोती हो ? हर्ष के स्थान पर शोक किसलिए करती हो ? पूर्व में मंदभागी राम के साथ आपको जोड़कर विधि ने योग्य नहीं किया था इसलिए मैंने अब योग्य किया है। हे देवी ! सेवा में दास समान मुझे आप पति रुप में मानो। मैं जब तुम्हारा दास बनूंगा, तो सब खेचर और खेचरियां भी तुम्हारे दास-दासी होकर रहेंगे।" इस प्रकार रावण कह रहा था, उस समय भक्ति से मंत्र की तरह 'राम' इन दो अक्षरों का जाप करते हुए सीता नीचे देखकर ही बैठी रही। तो उस कामातुर रावण ने जानकी के चरण में अपना मस्तक रखा और नमन किया। उस समय परपुरुष के स्पर्श से कायर ऐसी सीता ने अपने चरण उससे दूर ले लिए।

फिर सीता ने आक्रोश से उसे कहा, 'अरे निर्दय और निर्लज्ज ! कुछ समय में ही परस्त्री की कामना के परिणामरुप मृत्यु तुझे प्राप्त होगी'। उस समय सारण वगैरह सचिव और अन्य राक्षस सामंत रावण के सम्मुख आए। फिर बडे उत्साहवाला और महासाहसी काम करनेवाला पराक्रमी रावण बडे उत्सववाली लंकापुरी में आया। उस समय सीता ने ऐसा अभिग्रह लिया कि 'जब तक राम और लक्ष्मण के कुशल समाचार नहीं आयेंगे तब तक मैं भोजन नहीं करुंगी।' फिर लंका नगरी की पूर्वदिशा में रहे देवता ने क्रीडा करने के नंदनवन जैसा और खेचरों की स्त्रियों को विलास करने के धामरुप **देवरमण** नाम के उद्यान में रक्तअशोक वृक्ष के नीचे त्रिजटा और अन्य रक्षकों से घिरी जानकी को रखकर तेज का निधि रावण हर्ष पाते हुए अपने निवास में गया।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते
महाकाव्ये सप्तमे पर्वणि सीताहरणो नाम पंचमः सर्गः॥५॥

षष्ठ सर्ग

हनुमान द्वारा सीता की खोज

राम लक्ष्मण के जैसा सिंहनाद सुनकर जहां लक्ष्मण शत्रुओं के साथ रणक्रीडा कर रहे थे वहां धनुष्य लेकर शीघ्रता से आये। राम को आया देखकर लक्ष्मण ने कहा, 'हे आर्य ! सीता को अकेला छोड़कर आप यहां क्यों आये ?' राम बोले, 'हे लक्ष्मण ! आपने मुझे कष्टसूचक सिंहनाद से बुलाया, इसलिए मैं आया हूँ।' लक्ष्मण ने कहा, ''मैंने सिंहनाद किया नहीं और आपके सुनने में आया, इसलिए जरुर किसिने हमे छला है। आर्या सीता का हरण करने के लिए ऐसा उपाय करके हमें वहां से खिसकाया हो त्यों सचमुच लगता है। यह सिंहनाद करने में दूसरा थोड़ा सा भी कारण हो ऐसा मैं नहीं सोचता, इसलिए हे आर्य ! तत्काल सीता के रक्षण के लिए आप जाइए। मैं भी शत्रुओं को मारकर आपके पीछे पीछे आ रहा हूँ।'' लक्ष्मण के ऐसा कहने पर रामचंद्र तत्काल अपने स्थान पर आये। वहां जानकी नहीं दिखाई दी तो तत्काल मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। थोड़ी देर के बाद संज्ञा आने पर बैठे होकर देखा तो वहां मरणोन्मुख बने **जटायु** पक्षी को उन्होंने देखा। उसे देखकर तीक्ष्ण बुद्धि से रामचंद्र ने सोचा कि 'किसी मायावी ने छल करके मेरी प्रिया का हरण किया, उसके हरण से क्रोध पाकर उसका सामना करनेवाले इस महात्मा पक्षी को उसने ही मारा लगता है।' फिर राम ने उसका प्रति-उपकार करने के लिए श्रावक जटायु को अंत समय पर परलोक के मार्ग में पाथेयरुपी नवकार मंत्र सुनाया। तत्काल मृत्यु पाकर वह पक्षीराज माहेन्द्र कल्प में देवता बना और रामचंद्र सीता की खोज के लिए अटवी में इधर-उधर भटकने लगे।

यहां लक्ष्मण बड़ी सेनावाले खर के साथ अकेले युद्ध कर रहे थे, क्योंकि युद्ध में शेर के सहायक सखा होते ही नहीं। उस समय खर के अनुज भाई **त्रिशिरा** ने आगे आकर 'ऐसे के साथ तुम्हारा क्या युद्ध करना ?' यूं कहकर अपने ज्येष्ठ बंधु खर का निवारण किया और स्वयं युद्ध करने लगा। राम के अनुज बंधु लक्ष्मण ने रथ में बैठकर युद्ध करने के लिए तैयार हुए त्रिशिरा को पतंगे जैसा मानकर मार डाला। उस समय पाताललंका के पति चंद्रोदर राजा का पुत्र **विराध** सन्नद्धबद्ध बने अपने सर्व सैन्य को लेकर वहां आया। शत्रुओं का विनाश करने और उनकी आराधना करने की इच्छा से उसने राम के सहोदर लक्ष्मण को नमस्कार करके कहा, ''मैं आपके शत्रुओं पर द्वेष करनेवाला और उनका शत्रु हूँ, आपका सेवक हूँ, इस रावण के सेवकों ने मेरे पराक्रमी पिता चंद्रोदर को निकालकर पाताललंका पर अधिकार जमाया है। हे प्रभु ! अंधकार का नाश करने में सूर्य को सहायकारी कौन हो सकता है ? फिर भी आपके इन शत्रुओं का नाश करने में किंचित मात्र यह सेवक तैयार है। इसलिए उसे युद्ध करने की आज्ञा दो।'' लक्ष्मण ने हँसते हँसते कहा, 'मैं इसी समय इन शत्रुओं को मार डालूंगा, यह

तू देख लेना। युद्ध में अन्यों की सहाय लेना यह पराक्रमी वीरों के लिए लज्जाकारी है। आज से मेरे बड़े भाई रामचंद्र तेरे स्वामी हैं, और इसी समय से ही मैं तूझे पाताललंका के राज्य पर बैठाता हूँ।'

अपने विरोधी विराध को लक्ष्मण के पास आया जानकर खर बड़ा क्रोधित हुआ। वह धनुष्य को प्रत्यंचा चढ़ाकर बोला, 'अरे विश्वासी का घात करनेवाले, मेरा पुत्र शंबूक कहां है यह बता। ऐसा अपराध करके इस रंक विराध की सहायता से क्या तू रक्षित होना चाहता है ?' लक्ष्मण ने हंसकर कहा, "तेरा अनुज बंधु त्रिशिरा स्वयं भ्रातृज **शंबूक** को देखने के लिए उत्कंठित था, उसे मैंने ही उसके पीछे भेजा है। अब पुत्र और भाई के पास जाने की यदि तेरी बलवान उत्कंठा है तो तूझे भी मैं वहां भेजने के लिए धनुष्य के साथ सज्ज हूं। अरे मूढ ! चरण से एक जंतु की तरह प्रमाद से हुए प्रहार से मैंने तेरे पुत्र को मारा है, इसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं है, लेकिन अपनी आत्मा को सुभट माननेवाला तू यदि मेरे रणकौतुक को पूर्ण करेगा तो वनवास में भी दान देनेवाला मैं यमराज को प्रसन्न करुंगा।" लक्ष्मण के ऐसे वचन सुनते ही **खर** राक्षस गिरिशिखर पर हाथी की तरह लक्ष्मण पर तीक्ष्ण प्रहार करने लगा। किरणों के सूर्य की तरह लक्ष्मण ने भी हजारो शरपंखो (तीरों) से आकाश को ढक दिया। इस प्रकार लक्ष्मण तथा खर के बीच खेचरों को भयंकर और यमराज के महोत्सवरुप बड़ा युद्ध चला। उस समय आकाश में ऐसी वाणी हुई की "वासुदेव के सामने भी रण में जिसकी ऐसी शक्ति है वह खर राक्षस प्रतिवासुदेव से भी अधिक है।" यह वाणी सुनते ही 'इसका वध करने में कालक्षेप क्यों करना ?' ऐसा लज्जा से सोचकर क्रोध करके लक्ष्मण ने क्षुरप्र अस्त्र से तत्काल खर के मस्तक को छेद डाला। फिर खर का भाई **दूषण** राक्षस सेना सहित लक्ष्मण के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हुआ, परंतु दावानल ज्यों यूथ सहित हस्ति का संहार करे त्यों लक्ष्मण ने पलभर में सैन्य सहित उसका संहार कर डाला।

फिर विराध को साथ लेकर लक्ष्मण वापस लौटे। उस समय उनका वामनेत्र फड़का। जिससे उन्हें आर्या सीता और राम के बारे में अत्यंत अशुभ की शंका सताने लगी। फिर दूर आकर देखा तो एक वृक्ष के समीप राम को सीता रहित अकेला देखकर लक्ष्मण परम खेद को पाये। लक्ष्मण उनके समक्ष जाकर खडे रहे। फिर भी उनको देखे बिना राम विरह शल्य से पीडित होकर आकाश की ओर देखते हुए बोले, "हे वनदेवता ! मैं पूरे वन में भटका, लेकिन जानकी किसी जगह मुझे नजर नहीं आयी। इसलिए यदि आपने देखा हो तो कहो, भूत और शिकारी प्राणियों से व्याप्त ऐसे इस अरण्य में सीता को अकेला छोड़कर मैं लक्ष्मण के पास गया और हजारों राक्षस सुभटों के बीच में लक्ष्मण को अकेला छोड़कर वापस मैं यहा आया। अहा ! मुझ दुबुर्द्धि की यह कैसी बुद्धि ! हे प्रिय सीता ! इस निर्जन अरण्य में मैंने तुझे अकेला

क्यो छोड़ दिया ? हे वत्स लक्ष्मण ! रण के ऐसे संकट में तुझे अकेला छोड़कर मैं वापस क्यों आया ?'' इस प्रकार कहते कहते रामभद्र मूर्च्छा से पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय पक्षी भी आक्रंद करके उस महावीर को देखने लगे। फिर लक्ष्मण बोले, 'हे आर्य ! यह क्या करते हो ? यह आपका भाई लक्ष्मण सर्व शत्रुओं पर विजय पाकर आया है।' यह वाणी सुनते ही रामचंद्र ज्यों अमृत से सिंचित हुए हो त्यों होश में आये। और लक्ष्मण के सामने देखकर तत्काल अपने अनुज बंधु को आलिंगन दिया।

फिर लक्ष्मण ने नेत्रों में अश्रु लाकर कहा, ''आर्य ! जरुर किसी मायावी ने जानकी का हरण करने के लिये ही सिंहनाद किया होगा, लेकिन मैं उस दुष्ट के प्राण के साथ ही जानकी को वापस लाऊंगा। इसलिए अब चलिए, हम उसकी खोज पाने का प्रयत्न करें। पहले इस विराध को उसके पिता के पाताललंका राज्य पर बिठाओ। खर राक्षस के साथ युद्ध करते हुए मैंने इसे वचन दिया है।'' उस समय उनकी आराधना करना चाहते विराध ने वहीं से ही सीता की खोज करने के लिए विद्याधर सुभटों को भेजा। उनके आने तक राम और लक्ष्मण शोकाग्नि से विकराल होकर बार बार निश्वास लेते और क्रोध से होठ काटते हुए वहीं वन में ही रहे। विराध के भेजे हुए विद्याधर बड़ी दूर तक जा आए, फिर भी सीता की खबर नहीं पा सके। इसलिए वापस आकर वे नीचा मुख करके खड़े रहे। उनको अधोमुख रहे जानकर राम ने कहा, 'हे सुभटों ! आपने स्वामी के कार्य में यथाशक्ति अच्छा उद्योग किया फिर भी सीता की खोज नहीं मिली, इसमें आप का क्या दोष है ? जब दैव विपरीत होता है तब आप या अन्य कोई क्या कर सकेगा ?' उस समय विराध बोला, 'हे प्रभु ! आप खेद न करें। खेद न करना ही लक्ष्मी का मूल है, और यह आपका सेवक मैं तैयार हूँ। इसलिए आज मेरे साथ पाताललंका में मुझे प्रवेश कराने के लिए चलो। वहां रहकर आपको सीता की खोज मिलना बड़ा सुलभ होगा।' फिर राम सेना सहित विराध के साथ लक्ष्मण सहित पाताललंका की परिसर भूमि समीप आये। वहां शत्रुओं को मारनेवाला **सुंद** नाम का खर राक्षस का बड़ा पुत्र बड़ा सैन्य लेकर युद्ध करने के लिए सामने आया। पिता के वध के क्रोध से उस सुंद ने आगे चलने वाले अपने पूर्वविरोधी विराध के साथ घोर युद्ध करना शुरु किया। फिर लक्ष्मण रण में आये तो चंद्रनखा के कहने से सुंद वहां से भागकर लंका में रावण की शरण में गया। फिर राम और लक्ष्मण ने पाताललंका में प्रवेश किया और उन्होंने विराध को उसके पिता के राज्य पर बैठाया। वहां खर के महल में राम और लक्ष्मण रहे और विराध युवराज की तरह सुंद के घर में रहा।

यहां **साहसगति** विद्याधर जो लंबे समय से सुग्रीव की स्त्री **तारा** का अभिलाष धरकर हिमाचल की गुफा में रहकर विद्या साध रहा था उसे वहां **प्रतारणी विद्या** सिद्ध हुई। उस विद्या से वह कामरुपी (वांछित रुप धरनेवाले) देव की तरह सुग्रीव का रुप धरकर आकाश में दूसरे

सूर्य की भाँति **किष्किंधापुरी** समीप आया। उस समय सुग्रीव क्रीडा करने के लिए बाहर उद्यान में गया था, उस समय तारा देवी से सुशोभित ऐसे अंतःपुर में उसने प्रवेश किया। थोडी देर हुई न हुई कि उतने में असली **सुग्रीव** आया तो 'राजा सुग्रीव तो अंदर गये हैं' ऐसा कहते हुए द्वारपालों ने उसे अटकाया। एक-समान दो सुग्रीव को देखकर वाली के पुत्र के मन में संदेह उत्पन्न हुआ, जिससे अंतःपुर में किसी प्रकार की हानि न होने देने के लिए त्वरा से वहां गया, और मार्ग में आते हुए पर्वत से नदी की बाढ़ अटके त्यों वालीकुमार ने अंतःपुर में घुसते ही नकली सुग्रीव को अटकाया। फिर मानो जगत के साररुप सर्वस्व इकट्ठा किया हो त्यों चौदह अक्षौहिणी सेना वहां एकत्रित हुई। जब सेना ने दोनों का भेद नहीं जाना, तो सच्चे सुग्रीव और बनावटी सुग्रीव की तरफ वह दो भाग में बँट गई। फिर दोनों सैन्यों मे भालों के घिरने से आकाश में उल्कापातयुक्त बड़ा युद्ध चला। सवार के साथ सवार, महावत के साथ महावत, पैदल के साथ पैदल और रथी के साथ रथी - यूं युद्ध होने लगा। प्रौढ पति के समागम से मुग्धा स्त्री की तरह चतुरंग सेना के विमर्द से पृथ्वी कांपने लगी। 'अरे ! परगृह में प्रवेश करनेवाले चोर ! तू सामने आ।' यूं बोलते हुए सच्चे सुग्रीव ने गर्दन ऊंची करके जूठे सुग्रीव को युद्ध करने के लिए बुलाया, तो तिरस्कृत किए उन्मत हाथी की तरह वह जूठा सुग्रीव उग्र गर्जना करते हुए उसके सम्मुख युद्ध करने आया। क्रोध से लाल नेत्र करते हुए दोनो वीर यमराज के सहोदर हो त्यों जगत को त्रस्त करते हुए युद्ध करने लगे। दोनों वीर रण में चतुर होने से एक-दूसरे के तीक्ष्ण शस्त्रों को अपने अपने तीक्ष्ण शस्त्रों से तृण की समान छेदने लगे। उस समय दो महिष के युद्ध में वृक्ष के खंड की तरह उनके युद्ध में शस्त्रों के खंड ऐसे उछलने लगे कि जिससे आकाश में रहा हुआ खेचरियों का समूह भय पाने लगा। क्रोधी जन में शिरोमणि उन दोनों के अस्त्र जब छिद गए तब मानो चलित पर्वत हो त्यों दोनों ने मल्लयुद्ध आरंभ किया। पलभर में आकाश में उछलते और पल में पृथ्वी पर गिरते वे दोनों वीरचूडामणि मुर्गे समान दिखने लगे। अंत में दोनों समान बलवान होने से एक दूसरे को जीतने में असमर्थ होने पर वे दो वृषभ की तरह दूर जाकर खड़े रहे।

फिर सच्चे सुग्रीव ने अपनी सहायता के लिए हनुमान को बुलवाया, और जार सुग्रीव के साथ दुबारा उग्र युद्ध करना शुरु किया। हनुमान दोनों का भेद न जान सकने से देखते ही रहे, जिससे जार सुग्रीव ने उग्रतापूर्वक सच्चे सुग्रीव को कूट डाला। दूसरी बार युद्ध करने से सुग्रीव मन और शरीर से खिन्न हो गया, जिससे किष्किंधापुरी में से बाहर निकलकर किसी आवास में जाकर रहा। जार सुग्रीव स्वस्थ मन से राजमहल में ही रहा, लेकिन वालीकुमार के अटकाने से अंतःपुर में प्रवेश नहीं कर पाया। सच्चा सुग्रीव गरदन झुकाकर सोचने लगा कि, "अहा ! यह मेरा स्त्रीलंपट शत्रु छलकपट में चतुर दिखता है, लेकिन माया से वश किए

हुए मेरे अपने मनुष्य भी उसके हो गये हैं। अहा ! यह तो अपने घोडे से ही अपना पराभव हुआ है। अब माया के पराक्रम से उत्कृष्ट ऐसे शत्रु को मुझे किस तरह से मारना होगा ? अरे ! पराक्रम बिना के और वाली के नाम को लजानेवाले ऐसे मुझे धिक्कार है। उस महाबलवान वाली को धन्य है कि जो अखंडपुरुषव्रत रखकर राज्य को तृण की तरह छोड़कर परम पद को पा गया। मेरा पुत्र **चंद्ररश्मि** पूरे जगत में बलवान है, पर वह क्या कर सकेगा ? क्योंकि दोनों के भेद को नहीं जानने से वह किसे मदद करें और किसे मारे ? लेकिन उस चंद्ररश्मिकुमार ने एक काम बहुत बढ़िया किया है कि उस पापी को अंतःपुर में प्रवेश नहीं करने दिया। अब उस बलिष्ठ शत्रु का वध करने के लिए अति बलवान ऐसे किस वीर का मैं आश्रय करुं ? क्योंकि शत्रु अपने या दूसरे से भी हणने (मारने) योग्य ही है। इस शत्रु का घात करने में तीन लोक में वीर और मरुत्त के यज्ञ का भंग करनेवाले रावण को भजुं ? पर वह रावण स्वभाव से ही स्त्रीलंपट और तीन लोक में कंटकरुप है, इसलिए वह तो उसे और मुझे दोनों को मारकर स्वंय ही तारा को ग्रहण करेगा। ऐसी आपत्ति में सहाय करने में समर्थ अति उग्र ऐसा एक खर राक्षस था, लेकिन उसे तो लक्ष्मण ने मार डाला है। इसलिए इस समय तो वहा जाकर उन राम-लक्ष्मण को ही मित्र बनाऊं। क्योंकि शरण में आये विराध को उन्होंने तत्काल पाताललंका का राज्य दिया है। और इस समय पूर्ण पराक्रमवाले वे विराध के आग्रह से ही पाताललंका में रहे हैं।'' ऐसा विचार करके सुग्रीव ने अपने एक विश्वासपात्र दूत को एकांत में समजाकर विराध के पास भेजा। दूत ने पाताललंका में जाकर विराध को प्रणाम करके अपने स्वामी को प्राप्त हुए कष्ट का पूरा वृत्तांत सुनाया और कहा कि 'मेरे स्वामी सुग्रीव इस समय बड़ी आपत्ति में फँस गये हैं, इसलिए आपकी सहायता से राम-लक्ष्मण की शरण में जाना चाहते है।' यह सुनकर विराध ने दूत को कहा कि, 'तू जाकर कह कि सुग्रीव शीघ्र यहां आए, क्योंकि सत्पुरुषों का संग पुण्य से ही प्राप्त होता है।' इस प्रकार कहने से दूत तुरंत ही वहां से सुग्रीव के पास आया और वह संदेशा निवेदित किया। फिर सुग्रीव अश्वों के ग्रीवाभरण के शब्दो से सर्व दिशाएं गजाते हुए और वेग से दूर को अदूर करते हुए चल निकला और पलभर में ज्यों उपगृह में (नजदीक के घर में) आये त्यों वह पाताललंका में आ पहुंचा। विराध के नजदीक आते ही विराध हर्ष से सामने खड़ा हो गया, फिर विराध उसे साथ लेकर दयालु रामभद्र के पास गया और नमस्कार करवाये, और उसका पूरा दुःख निवेदित किया। सुग्रीव बोला, ''हे प्रभु ! मेरे इस दुःख में आप ही मेरी गति हो। जब छींक बिलकुल बंद हो जाती है, तब सूर्य ही शरण बनता है, इसलिए उसके सामने देखने से ही वापस प्राप्त हो जाती है।'' स्वयं स्त्रीवियोग से दुःखी थे फिर भी उसके दुःख का उच्छेद करने का राम ने कबूल (हा) किया। महान पुरुष अपने कार्य से अधिक दूसरे के कार्य में प्रयत्न करते हैं। फिर विराध ने सीता

के हरण का पूरा वृत्तांत सुग्रीव को बताया। तो सुग्रीव ने अंजलि जोड़कर रामभद्र को कहा, 'हे देव ! विश्व की रक्षा करने में समर्थ ऐसे आपको और विश्व को प्रकाश देनेवाले सूर्य को कुछ कारण की अपेक्षा नहीं है। फिर भी मैं कहता हूँ कि आपकी कृपा से मेरे शत्रु का नाश होगा तो सैन्य सहित मैं आपका अनुचर (सेवक) बनकर रहूंगा और अल्प समय में ही सीता की खोज कर लाऊंगा।' फिर राम सुग्रीव के साथ किष्किंधा नगरी में आये। विराध साथ आ रहा था, उसे समझाकर वापस लौटाया।

रामचंद्र किष्किंधापुरी के द्वार के पास आकर खडे रहे, तो सच्चे सुग्रीव ने जार सुग्रीव को युद्ध करने के लिए बुलाया। पुकारते ही जार सुग्रीव गर्जना करते हुए नगर के बाहर आया। ''भोजन के लिए ब्राह्मणों की तरह रण के लिए शूरवीर आलसी नहीं होते।'' फिर दुर्धर चरण के न्यास से पृथ्वी को कंपाते हुए दोनों वीर वन के उन्मत हाथी की तरह युद्ध करने लगे। राम उनको समान रुपवाले देखकर, अपना सुग्रीव कौनसा और दूसरा सुग्रीव कौनसा ? यूं संशय पाकर पलभर तटस्थता से खड़े रहे। फिर पहले तो 'इस प्रकार करना' ऐसा विचार करके राम ने वज्रावर्त धनुष की टंकार की। उस धनुष्य की टंकार मात्र से साहसगति विद्याधर की रुपांतर करनेवाली विद्या पल में ही हिरनी की तरह पलायन कर गयी, तो उसे पहचानकर राम ने कहा, 'अरे पापी ! माया से सबको मोहित करके तू परस्त्री के साथ खेलना चाहता है, लेकिन अब धनुष चढा।' इस प्रकार राम ने उसको तिरस्कृत किया। फिर एक ही बाण से राम ने उसके प्राण हर लिए। 'हिरन को मारने में शेर को दूसरी झपाटे की जरूरत ही नहीं पड़ती।' फिर विराध की तरह सुग्रीव को किष्किंधापुरी के राज्य पर बैठाया और उसके पुरजन तथा सेवक पहले के भाँति ही उस सच्चे सुग्रीव को झुकने लगे। फिर वानरपति सुग्रीव ने अंजलि जोड़कर अपनी अति सुंदर तेरह कन्या देने के लिए राम को प्रार्थना की। राम ने कहा, 'हे सुग्रीव ! सीता की खोज के लिए प्रयत्न करों। इन कन्याओं की या अन्य किसी चीझ की मुझे जरूरत नहीं है।' इस प्रकार कहकर राम नगर के बाहर उद्यान में रहे और उनकी आज्ञा से सुग्रीव ने नगरी में प्रवेश किया।

इस तरफ लंकापुरी में मंदोदरी वगैरह रावण के अंतःपुर की स्त्रियाँ खर, दूषण वगैरह के वध का वृत्तांत सुनकर रुदन करने लगी। रावण की बहन चंद्रनखा भी सुंद के साथ रुदन करते हुए और दो हाथ से छाती कूटते हुए रावण के घर में आयी। रावण को देखकर उसके कण्ठ से लगकर उच्च स्वर में रोते हुए बोली, ''अरे ! दैव ने मुझे मार ही डाला। मेरा पुत्र, मेरा पति, मेरे दो देवर और चौदह हजार कुलपति (सैनिक) मारे गये। हे बंधु ! तू जीवित होने पर भी अभिमानी शत्रुओं ने तेरी दी हुई पाताललंका की राजधानी भी हमसे छीन ली। इसलिए इस सुंद पुत्र को साथ लेकर मैं प्राण बचाकर भागकर तेरी शरण में आयी हूँ। इसलिए यह

बता, कि अब कहां जाकर रहुँ ?'' इस प्रकार रुदन करते हुए अपनी बहन को समजाकर रावण ने कहा, 'तेरे पति और पुत्र को हणनेवाले (मारनेवाले) को मैं कुछ समय में ही मार डालूंगा।'

एक बार रावण इस शोक से और सीता के विरह की पीडा से छलांग चूके व्याघ्र की तरह निराश होकर अपनी शय्या पर लोट रहा था, उस समय मंदोदरी ने आकर कहा कि, 'हे स्वामी ! साधारण मनुष्य की तरह यूं निश्चेट होकर क्यों पडे हो ?' रावण ने कहा, ''सीता के विरहताप से मैं किसी भी चेष्टा करने, कहने या देखने में समर्थ नहीं हूँ, लेकिन हे मानिनी ! तू यदि मुजे जिवीत रखना चाहती है तो तू मान छोड़कर सीता के पास जा और उसे विनयपूर्वक समजा कि जिससे वह विनयपूर्वक मेरे साथ क्रीडा करने की इच्छा दिखाए। मैंने गुरु के समक्ष ऐसा नियम लिया है कि 'नहीं चाहती ऐसी परस्त्री को मैं कदापि नहीं भोगूंगा' यह नियम अब मुझे अर्गलारुप (विघ्न) बन पडा है।'' रावण के ऐसे वचन सुनकर पति की पीडा से पीडित बनी कुलीन मंदोदरी तत्काल देवरमण उद्यान में आयी और उसने सीता को कहा कि, ''मैं मंदोदरी नाम की रावण की पटरानी हूँ, परंतु मैं तुम्हारी दासी बनकर रहूंगी, इसलिए तुम रावण को भजो। हे सीता ! आपको धन्य है कि जिसके चरणकमल हंमेशा सेने, सर्व विश्व को सेने योग्य चरणकमलवाले मेरे बलवान पति भी चाहते हैं। यदि रावण जैसा पति मिले तो फिर उसके पास एक रंक जैसा और पैदल चलता भूचर तथा तपस्वी रामभद्र पति मात्र क्या है ?'' मंदोदरी के ऐसे वचन सुनकर सीता क्रोध से बोली, ''शेर कहां और लौमडी कहां ! गरुड कहां और काकपक्षी कहां ! एवं तेरे पति रावण कहां ! और मेरे पति राम कहां ! अहो ! तेरे और पापी रावण के बीच दांपत्य योग्य ही हुआ लगता है, क्योंकि जो पुरुष (रावण) दूसरी स्त्री के साथ क्रीडा चाहता है, और तू उसकी स्त्री होकर उसकी कुट्टनी (दूती) बनती है। अरे पापी स्त्री ! तू मुख देखने योग्य भी नहीं है तो भाषण करने योग्य किस प्रकार होगी ? इसलिए शीघ्र इस स्थान पर से चली जा। मेरा दृष्टिमार्ग छोड दे।''

उस समय रावण भी वहां आया और बोला, ''हे सीता ! तू उसके उपर किसलिए कोप करती है ? यह मंदोदरी तो तेरी दासी है और हे देवी ! मैं स्वयं तेरा दास हूँ, इसलिए मुझ पर प्रसन्न हो। हे जानकी ! तू इस आदमी को (रावण को) दृष्टि से भी क्यों प्रसन्न नहीं करती ?'' महासती सीता ने विमुख होकर कहा, ''अरे दुष्ट ! मुझे, राम की स्त्री को हरण करने से तुज पर यमराज ने दृष्टि की है। हे हताश और अप्रार्थित वस्तु की प्रार्थना करनेवाले ! तेरी आशा को धिक्कार है। शत्रुओं के काल रुप अनुज बंधु सहित राम समक्ष तू कितना जिएगा ?'' इस तरह सीता ने उस पर आक्रोश किया, फिर भी रावण बार बार उसे पूर्वानुसार कहने लगा। अहा ! बलवान कामावस्था को धिक्कार हैं ! उस समय विपत्ति में मग्न हुई सीता

को देख न सकता हो त्यों सूर्य पश्चिम समुद्र में मग्न हुआ (अस्त पाया); और घोर रात्रि आरंभ हुई। उस समय घोर बुद्धिवाला रावण क्रोध से और काम से अंध बनकर सीता को उपसर्ग करने लगा।

उल्लू पक्षी धुत्कार करने लगे, सर्प फूत्कारने लगे, नहार विचित्र बोली बोलने लगे, बिल्ले परस्पर लड़ने लगे, व्याघ्र पूंछ पटकने लगे, पिशाच, प्रेत, वैताल और भूत खुल्ली कटार (कैची) लेकर घूमने लगे, मानो यमराज का सभासद हो ऐसे रावण ने रचे हुए वे सर्व भयंकर प्राणी उछलते हुए और बूरी चेष्टा करते हुए सीता के पास आये। मन में पंचपरमेष्टि नमस्कार का ध्यान धरते हुए सीता स्थिर बैठी रही। फिर भय से डरकर भी रावण को भजा नहीं। रात्रि का यह सर्व वृत्तांत प्रातःकाल में विभीषण को मालूम पड़ा, तो उसने रावण के पास आने से पहले सीता के पास आकर उसे पूछा, 'हे भद्रे ! आप कौन हो ? किसकी स्त्री हो ? कहां से आयी हो और आप को यहां कौन लाया है ? ये सब भय पाये बिना जैसा हो ऐसा कहो। मैं परस्त्री का सहोदर (भाई) हूं।' उसको मध्यस्थ जानकर सीता नीचे मुंह रखकर बोली, ''मैं जनक राजा की पुत्री और भामण्डल विद्याधर की बहन हूँ तथा रामभद्र की पत्नी और राजा दशरथ की पुत्रवधू हूँ। मेरा नाम सीता है। अनुज बंधु सहित पति के साथ मैं दंडकारण्य में आयी थी, वहां मेरे देवर लक्ष्मण क्रीडा करने के लिए इधर-उधर भटक रहे थे, इतने में आकाश में उपर रहा हुआ एक महाश्रेष्ठ खड्ग उन्हें नजर आया, तो कौतुक से उन्होंने हाथ में लिया। फिर नजदीक में वंशजाल थी, वह उन्होंने उससे काट डाली, जिससे उसके अंदर रहे उस खड्ग के साधक का मस्तक अनजाने में कट गया। 'यह मेरे समक्ष युद्ध नहीं करनेवाले किसी निरपराधी पुरुष को मैंने मार डाला, यह बहुत गलत हुआ' ऐसा पश्चात्ताप करते हुए मेरे देवर उनके बड़े भाई के पास आये। कुछ ही देर में मेरे देवर के पाव दबाती हुई उस खडगसाधक की उत्तरसाधिका कोई स्त्री कोपयुक्त चित्त से हमारे पास आयी। अद्‌भूत रुप में इन्द्र जैसे मेरे पति को देखकर उस कामपीडित स्त्री ने क्रीडा करने की मांग की, लेकिन मेरे पति ने उसे जानकर उसकी मांग का अस्वीकार किया, तो वह वहां से चली गई और राक्षसों का एक बड़ा उग्र सैन्य लेकर वापस आयी। फिर 'यदि संकट पड़े तो सिंहनाद करना' ऐसा संकेत करके लक्ष्मण उसके साथ युद्ध करने गये। फिर माया से जूठा सिंहनाद करके मेरे पति को मुझ से दूर करके, बूरी मनोकामना से यह राक्षस (रावण) अपने वध के लिए ही मुझे यहां ले आया है।''

इस प्रकार उसका सर्व वृत्तांत सुनकर विभीषण ने रावण के पास जाकर नमस्कारपूर्वक कहा, 'हे स्वामी ! आपने हमारे कुल को दूषण लगे ऐसा कार्य किया है। लेकिन जब तक राम-लक्ष्मण हमें मारने के लिए यहां नहीं आये, तब तक इस सीता को शीघ्र ही उनके पास छोड़ आओ।' विभीषण के ऐसे वचन सुनकर रावण क्रोध से लाल नेत्र करके बोला, 'अरे भीरु

(डरपोक) ! तू ऐसा क्यों बोलता है ? क्या तू मेरे पराक्रम को भूल गया ? यह सीता अनुनय (प्रेम) करने से अवश्य मेरी स्त्री होगी और फिर यदि वे बेचारे राम-लक्ष्मण यहां आयेंगे तो मैं उनको मार डालूंगा।' विभीषण ने कहा, "हे भ्राता ! ज्ञानी का वचन सत्य हो जायेगा ऐसा लगता है, कि राम की पत्नी सीता से ही हमारे कुल का क्षय होनेवाला है, नहीं तो इस भक्त बंधु का वचन तू क्यों न माने ? और मैंने मारे फिर भी दशरथ राजा क्यों जिंदा रहे ? हे महाभुज ! जो भावि वस्तु है वह वृथा होगी ही नहीं, फिर भी मैं तूजे प्रार्थना करता हूँ कि हमारे कुल का घात करनेवाली सीता को छोड़ दे।" मानो विभीषण की बात सुनी ही न हो ऐसा करके सीता के पास जाकर तत्काल सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर रावण घूमने लगा और अपनी समृद्धि दिखाने लगा कि, 'हे हंसगामिनी ! ये रत्नमय शिखरोंवाले और स्वादिष्ट जल के झरनोंवाले मेरे क्रीडापर्वत हैं। नंदनवन के जैसे ये उद्यान हैं और इच्छानुसार भोगनेयोग्य धारागृह हैं, हंस सहित क्रीडा नदियां है। हे सुंदर भ्रूकुटिवाली स्त्री ! स्वर्ग के खंड जैसे ये रतिग्रह हैं, जिसमें जब तक प्रीति हो तब तक तू मेरे साथ क्रीडा कर।' हंस की तरह राम के चरणकमल का ध्यान धरते हुए सीता रावण की ऐसी वाणी सुनकर पृथ्वी की तरह धीरज धरकर किंचित भी क्षोभ नहीं पायी। रावण ने सर्व रमणीय स्थानों में भटक भटककर आखिर में सीता को वापस अशोकवन में छोड़ा।

जब रावण को उन्मत बना हुआ देखा और अपने वचन की युक्ति में आये ऐसा न लगा तब विभीषण ने इसके बारे में विचार करने के लिए कुलप्रधानों को बुलवाया। फिर विभीषण बोला, "हे कुलसचिवों ! कामादिक अंतर्शत्रु भूत की तरह विषम है, उनमें से एक भी प्रमादीजन को परेशान करता है। हमारा स्वामी रावण अत्यंत कामातुर बना है, अकेला कामदेव ही बड़ा दुर्जय है, तो फिर यदि परस्त्री की इच्छा से उसे सहाय मिले तो फिर उसकी बात ही क्या करनी ? उस काम के प्रसंग से लंकापुरी का स्वामी अति बलवान होने पर भी वह अत्यंत दुःखसागर में जल्दी ही आ गिरेगा।" सचिव बोले, "हम तो नाम के ही सचिव हैं। सचमुच के सचिव तो आप ही हो, कि जिनकी दूरदर्शी दृष्टि है। जब स्वामी केवल काम को वश हुआ है तब मिथ्यादृष्टि पुरुष को जैनधर्म के उपदेश की तरह उसे हमारा मंत्र (विचार) क्या असर कर पायेगा ? सुग्रीव और हनुमान जैसे महापुरुष भी उस राम को मिल गये हैं लेकिन 'न्यायी महात्मा के पक्ष को कौन ग्रहण नहीं करेगा ?' सीता के निमित्त रामभद्र के हाथ हमारे कुल का क्षय ज्ञानी ने कहा है, फिर भी पुरुष के अधीन हो उस समय के योग्य कर्तव्य करना घटित है।" सचिवों के इस प्रकार के वचन सुनकर विभीषण ने लंका के किल्ले पर यंत्र वगैरह लगवा दिए। क्योंकि 'सचिव मंत्ररुपी नेत्र से अनागत (भविष्य) वस्तुओं को भी देखते हैं।'

यहां सीता के विरह से पीडित राम, लक्ष्मण के दिए हुए आश्वासन से बड़ी मुश्किल से

काल व्यतीत करते थे। एक बार राम ने लक्ष्मण को शिक्षा देकर सुग्रीव के पास भेजा। लक्ष्मण भाथे, धनुष और खड्ग को लेकर सुग्रीव के पास चला। चरणन्यास से पृथ्वी को चूर्ण करते हुए, पर्वत को कंपाते और गति की थपेट से लटकती भुजाओं से मार्ग के वृक्षों को गिराते हुए वे किष्किंधा में आये। उत्कट भ्रूकुटि से भयंकर ललाटवाले और लाल लोचनवाले लक्ष्मण को देखकर भय पाए हुए द्वारपालों ने तत्काल मार्ग दिया, तो वे सुग्रीव के मंदिर में आये। लक्ष्मण को आया देखकर कपिराज सुग्रीव अंतःपुर में से तत्काल बाहर निकला और भय से कांपते कांपते उनके पास खड़ा रहा। लक्ष्मण ने क्रोध से कहा, "अरे वानर ! अब तू कृतार्थ हो गया। काम हो जाने के बाद अंतःपुर में से परिवृत्त होकर निसंदेहपूर्वक सुख में निमग्न हो रहा है। स्वामी रामभद्र वृक्ष के नीचे बैठकर वर्ष जितने दिन व्यतीत करते हैं। क्या तू जानता नहीं है ? स्वीकारी हुई बात भी भूल गया लगता है। अब सीता की खोज के लिए खडे हो जा। साहसगति के मार्ग पर मत जा, वह मार्ग अभी संकुचन नहीं पा गया।" लक्ष्मण के ऐसे वचन सुनकर सुग्रीव उनके चरणों में गिरकर बोला, "हे स्वामी ! प्रसन्न हो जाइए, मेरे प्रमाद को सहन कीजिए, क्योंकि आप ही मेरे प्रभु हो।" इस प्रकार लक्ष्मण की आराधना करके, उनको आगे करके सुग्रीव रामभद्र के समीप आया और भक्ति से उनको प्रणाम किया। फिर सुग्रीव ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि हे सैनिकों ! आप सब पराक्रमी हो और सर्वत्र अस्खलित गतिवाले हो। इसलिए सब जगह घूमकर सीता की खोज करो।' इस प्रकार आज्ञा होते ही, सब सैनिक, सर्व द्वीपों में, पर्वतों मे, और गुफाओं मे शीघ्रतापूर्वक घूमने लगे।

सीता का हरण होने की खबर सुनकर भामण्डल रामचंद्र के पास आया और अत्यंत दुःखी होकर वहीं रहा। अपने स्वामी के दुःख से पीडित बना विराध बड़ा सैन्य लेकर वहां आया और चिरकाल के पैदल की तरह वह भी राम की सेवा करते हुए वहीं रहा। सुग्रीव स्वयं खोज करने निकला। वह क्रमशः कंबुद्वीप में आया तो उसे दूर से देखकर **रत्नजटी** सोचने लगा कि, 'क्या रावण ने मेरे अपराध को याद करके मेरा वध करने के लिए इस महाबाहु वानरपति सुग्रीव को भेजा होगा ? उस पराक्रमी रावण ने पहले मेरी सर्व विद्याएं हर ली हैं और अब यह वानरपति मेरे प्राण हर लेगा।' इस प्रकार सोच में पडे हुए रत्नजटी के पास सुग्रीव शीघ्रता से आया और बोला, 'हे रत्नजटी ! मुझे देखकर तू खड़ा भी क्यों नहीं हुआ ? क्या तू आकाशगमन करने में आलसी बन गया है ?' रत्नजटी बोला, 'जानकी का हरण करते हुए रावण के साथ मैं युद्ध करने गया, वहां उसने मेरी सर्व विद्याएं हर ली है।' फिर सुग्रीव उसे उठाकर तत्काल राम के चरण के पास लाया। राम ने उसे सब बात पूछी तो वह सीता का वृत्तांत कहने लगा, "हे देव ! क्रूर और दुरात्मा ऐसे रावण ने सीता को हर लिया है और कोप करके मेरी विद्याएं भी हर ली हैं। 'हे राम ! हे वत्स लक्ष्मण ! भ्राता भामण्डल !' यूं पुकार करके रुदन

करती हुई सीता को सुनकर मुझे रावण पर कोप चढ़ा था।'' इस प्रकार सीता का वृत्तांत सुनकर राम प्रसन्न हुए और उन्होंने सूर-संगीतपुर के पति रत्नजटी को आलिंगन दिया। फिर राम बार बार सीता के वृत्तांत के बारे में उसे पूछते थे और उनके मन की प्रीति के कारण वह बार बार कहता था।

फिर राम ने सुग्रीव वगैरह महासुभटों को पूछा कि, 'यहां से राक्षस की लंकापुरी कितनी दूर है ?' वे बोले, 'वह दूर या हो नजदीक हो, उससे क्या होगा ? क्योंकि जगत की विजय करनेवाले उस रावण के समक्ष हम सब तृण समान हैं।' राम बोले, 'वह जितायेगा या नहीं जितायेगा उसकी चिंता आपको नहीं करनी है। सिर्फ दर्शन के प्रतिभू कि तरह हमें वह बताएँ। फिर लक्ष्मण के छोडे हुए बाण जिसके गले के रुधिर का पान करेंगे ऐसे उस रावण को देखने से आप उसका सामर्थ्य जान लोगे।' लक्ष्मण बोले, 'यह रावण कौन मात्र है कि जिसने श्वान की तरह असार छल करके ऐसा कार्य किया ? संग्रामरुपी नाटक में सभासद बनकर रहे ऐसे आपके सामने ही उस छली रावण का मस्तिष्क मैं क्षत्रिय आचार से छेद डालूंगा।' उस समय जांबवान ने कहा, 'आपमें ये सब बात है ही, परंतु जो **कोटिशिला** को उठायेगा वहीं रावण को मारेगा ऐसा **अनलवीर्य** नाम के ज्ञानी साधू ने कहा है। तो हमारे विश्वास के लिए आप उस शिला को उठाये।' लक्ष्मण ने कहा, 'बहुत अच्छा।' इसलिए वे जहां कोटिशिला थी, वहां लक्ष्मण को तत्काल आकाशमार्ग से ले गये। लक्ष्मण ने लता की तरह उस शिला को भुजा से उठाया। देवताओं ने तत्काल 'साधू, साधू' शब्द बोलकर आकाश में से पुष्पवृष्टि की। यह देखकर सबको भरोसा बैठा। फिर वे पूर्व की भाँति लक्ष्मण को आकाशमार्ग से किष्किंधा में राम के पास ले आये। वहां वृद्ध कपि बोले, ''जरुर आपसे रावण का क्षय होगा। लेकिन, नीतिवान पुरुषों की ऐसी रीति है कि पहले दूत भेजना चाहिए। यदि संदेश ले जानेवाले दूत से प्रयोजन सिद्ध हो जाय तो फिर राजाओं को स्वयं प्रयास करने की कुछ आवश्यकता नहीं, परंतु किसी पराक्रमी और समर्थ दूत को वहां भेजना चाहिए, क्योंकि लंकापुरी में प्रवेश करना और निकलना यह भी बड़ा मुश्किल है, यूं सुनाई देता है। लंका में जाकर उस दूत का सीता को वापस अर्पण करने के लिए विभीषण को कहना होगा, क्योंकि राक्षसकुल में वह बड़ा नीतिमान पुरुष है। विभीषण सीता को छोड़ देने के लिए रावण को कहेगा और रावण यदि उसकी अवज्ञा करेगा तो वह तत्काल आपके पास आयेगा।'' वृद्ध कपियों के मशवरे में राम संमत हुए, तो सुग्रीव ने **श्रीभुति** के सामने देखकर **हनुमान** को बुलवाया। तेज में सूर्य जैसे हनुमान ने तत्काल वहां आकर सुग्रीव वगैरह से घिरे, सभा में बैठे हुए राम को प्रणाम किए।

फिर सुग्रीव ने राम को कहा कि, 'ये पवनंजय के विनयी पुत्र हनुमान विपत्ति के समय हमारे बंधु हैं। सर्व विद्याधरों में उनके जैसा अन्य कोई नहीं है। इसलिए हे स्वामी ! सीता की

खोज के लिए उसे ही आज्ञा दे।' उस समय हनुमान बोले कि, "मेरे जेसे अनेक कपि हैं, परंतु ये सुग्रीव राजा मुज पर स्नेह के कारण यूं कहते है। गव, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, नील, द्विविद, मैंद, जांबवान, अंगद, नल और अन्य दूसरे भी बड़े पराक्रमी कपि यहां उपस्थित हैं, उन सब में मैं भी आपका कार्य साधने के लिए उनकी संख्यापूर्ति करनेवाला हूँ। कहें तो राक्षसद्वीप सहित लंका को उठाकर यहा ले आऊं। और कहें तो रावण को बांधव सहित बांधकर ले आऊं ?" राम बोले, "वीर हनुमान ! तुम्हारे में ये सब संभवित है, परंतु इस समय तो तू लंकापुरी में जा और वहां सीता की खोज कर। यह मुद्रिका मेरी निशानी के लिए ले जा, यह सीता को देना और उसका चूडामणि निशानी की तौर पर यहां ले आना। उसे मेरा संदेशा भी इस प्रकार कहना कि, 'हे देवी ! रामभद्र आपके वियोग में पीडित होकर आपका ही ध्यान करते हैं। हे जीवितेश्वरी ! मेरे वियोग में जीवन का त्याग मत करना, क्योंकि कुछ समय में ही आप रावण को लक्ष्मण से मारा गया देखोगी।" हनुमान ने कहा कि, 'हे प्रभु ! जब तक आपकी आज्ञानुसार करके मैं लंका से वापस न लौटूं, तब तक आप यहीं रहना।' इस प्रकार कहकर परिवार सहित राम को शीश झुकाकर हनुमान एक तेज गतिवाले विमान में बैठकर लंका की और चला। आकाशमार्ग से चलते हुए हनुमान महेन्द्रगिरि के शिखर पर आया। वहां अपने मातामह महेन्द्र राजा का महेन्द्रपुर पत्तन उसकी नज़र में आया। हनुमान ने सोचा कि, 'यह मेरे मातामह का नगर है, कि जिसने मेरी निरापरधी माता को निकाल दिया था।' इस प्रकार पूर्ववार्ता याद करके क्रोधायमान होकर हनुमान ने तत्काल रणवाद्य बजाये, जिससे ब्रह्मांड को फोड डाले ऐसा प्रतिध्वनि दिशाओं में व्याप्त हो गया। शत्रु का ऐसा बल देखकर इन्द्र के जैसे पराक्रम वाला महेन्द्र राजा भी सैन्य सहित युद्ध करने के लिए अपने नगर के बाहर निकला। महेन्द्र और हनुमान के बीच रुधिर की वृष्टि से भयंकर उत्पात समय का मेघ हो ऐसा आकाश में घोर युद्ध प्रवर्तित हुआ। रणभूमि में वेग से घूमते हनुमान ने वृक्षों को तोड़ डाले त्यों शत्रु के सैन्य को तोड़ डाला। महेन्द्र का पुत्र **प्रसन्नकीर्ति** अपने भानजे का संबंध जाने बिना निशंकतापूर्वक शस्त्र प्रहार करते हुए हनुमान के साथ युद्ध करने लगा। दोनों समान बलवान और दोनों समान अमर्षवाले होने से वे दृढ युद्ध से परस्पर श्रम उत्पन्न करने लगे। इस प्रकार युद्ध करते हुए हनुमान को विचार आया कि 'मुझे धिक्कार है कि मैंने स्वामी के कार्य में विलंब करनेवाला यह युद्ध छेडा है ! जो क्षण भर में जीत सके वे दूसरे, लेकिन यह तो मेरा ननिहाल है, फिर भी जिसका आरंभ किया उसे निर्वाह करने के लिए अब तो अवश्य जीतना ही चाहिए।' ऐसा विचार करके हनुमान ने क्रोध से शस्त्रप्रहार करके प्रसन्नकीर्ति को परेशान कर दिया और उसके अस्त्र, रथ तथा सारथि को भग्न करके उसे पकड़ लिया। आखिर में अत्यंत युद्ध करके महेन्द्र राजा को भी पकड़ लिया। फिर हनुमान ने महेन्द्र राजा को नमन

करके कहा, ''मैं अंजना का पुत्र और आपका भानजा हूँ। राम की आज्ञा से सीता की खोज के लिए लंका तरफ जाते हुए मार्ग में यहां आते हुए मुझे याद आया कि मेरी माता को आपने निकाल दिया था, तो क्रोध उत्पन्न होने के कारण मैंने आपके साथ युद्ध किया है, इसलिए क्षमा करना। अब मैं स्वामी के कार्य के लिए जाता हूँ, आप मेरे स्वामी राम के पास जाओ।'' महेन्द्र ने अपने वीरश्रेष्ठ भानजे को आलिंगन करके कहा कि, 'प्रथम लोगों के मुख से तेरे पराक्रम की बातें सुनी थी, आज भाग्ययोग से तू पराक्रमी भानजा हमें नज़र आया है। अब तू शीघ्र स्वामी के कार्य के लिए जा। मार्ग में तेरा कुशल हो।' इस प्रकार कहकर महेन्द्र राजा अपना सैन्य लेकर राम के पास आये।

वहां से हनुमान आकाशमार्ग से जाते हुए **दधिमुख** नाम के द्वीप में आये। वहां दो महामुनियों को काउसग्गध्यान में रहें उसने देखे। उनके समीप में ही निर्दोष अंगवाली और विद्यासाधना में तत्पर ऐसी तीन कुमारिकाएं ध्यान करती हुई उन्हें दिखाई दी। उस समय अचानक उस पूरे द्विप में दावानल प्रकट हुआ, जिससे दो मुनि और तीन कुमारिकाए अचानक दावानल के संकट में आ गिरे। उनके उपर के वात्सल्यभाव से हनुमान ने विद्या द्वारा सागर में से जल लेकर मेघ की भाँति उस दावानल को बुझा दिया। तत्काल विद्या सिद्ध होने से ध्यान में रहे दोनों मुनियों को प्रदक्षिणा देकर वे तीनों कन्याएं हनुमान प्रति कहने लगी, 'हे परमार्हत ! आपने उपसर्ग से हमें बचाया है, यह अच्छा किया। आपकी सहाय से बेसमय भी हमारी विद्या सिद्ध हो गयी है।' हनुमान ने कहा, 'आप कौन हो ?' कन्याएं बोली, ''इस दधिमुख द्वीप के दधिमुख नगर में **गंधर्वराज** नाम का राजा है, उसकी **कुसुममाला** नाम की रानी के उदर से हम तीन कन्याएं जन्मी हुई हैं। हमारे लिए कइं खेचरपति हमारे पिता से मांग करते थे, उसमें एक **अंगारक** नाम का उन्मत खेचर भी हमारी माँग करता था, लेकिन हमारे स्वतंत्र विचारी पिता ने उसे या अन्य किसिको हमें दी नहीं। एक बार हमारे पिता ने किसी मुनि को पूछा, 'मेरी इन पुत्रियों का पति कौन होगा ?' तब उन्होंने कहा कि, 'जो साहसगति विद्याधर को मारनेवाला होगा वहीं तेरी पुत्रियों का पति होगा।' फिर मुनि के ऐसें वचन से हमारे पिता उसे खोजने लगे, फिर भी किसी जगह उसका पता मिला नहीं, इसलिए उसे जानने के लिए हमनें इस विद्यासाधन का आरंभ किया था। उस अंगारक ने हमारी विद्या का भ्रंश करने के लिए यह दावानल प्रकट किया था, उसे निष्कारण बंधु ऐसे आपने अच्छी तरह बुझा दिया और जो **मनोगामिनी** विद्या छः मास में सिद्ध होती है, वह विद्या आपकी सहायता से हमें पलभर में सिद्ध हो गयी है।'' फिर हनुमान ने साहसगति का वध राम ने किया है और उसके कार्य के लिए ही स्वयं लंका में जा रहे हैं ऐसी कथा शुरु से कह सुनायी। वह सुनकर तीनों कन्याएं हर्ष पाकर पिता के पास जाकर वह पूरा वृत्तांत निवेदित किया। राजा गंधर्वराज उन तीनों कन्या

और बड़े सैन्य को लेकर राम के पास आया।

वहां से वीर हनुमान उड़कर लंका के समीप आये। वहां कालरात्रि जैसी भयंकर **शालिका** नाम की विद्या उन्हे नज़र आयी। उस समय 'अरे वानर ! तू कहां जाता है ? अचानक तू मेरा भोज्य होकर गिरा है' यू आक्षेपपूर्वक कहती उस विद्या ने अपना मुख फाडा। हनुमान ने हाथ में गदा लेकर तत्काल उसके मुख में प्रवेश किया और फिर बादल के मध्य में से सूर्य निकले त्यों उसके उदर को फाड़कर बाहर निकला। उसने लंका के चारोंओर किल्ला बनाया था, उसे हनुमान ने विद्या के सामर्थ्य से एक मिट्टी के पात्र को तोड़ डाले त्यों पलभर में तोड़ दिया। उस किल्ले का **वज्रमुख** नाम का एक रक्षक था, वह धुरंधर क्रोध से युद्ध करने के लिए आया। उसे हनुमान ने युद्ध में मार डाला। वज्रमुख मारा गया तो **लंकासुंदरी** नाम की उसकी एक विद्या के बलवाली कन्या थी, उसने कोप से हनुमान को अपने साथ युद्ध करने बुलाया। पर्वत पर बिजली की तरह हनुमान पर बार बार प्रहार करते हुई वह रणभूमि में चतुराई से चली आयी। हनुमान अपने अस्त्रों से उसके अस्त्रों को छेदने लगे। आखिर में ताजी उगी हुई लता समान उसे अस्त्ररहित कर दिया। फिर 'यह वीर कौन है ?' यूं वह आश्चर्य से हनुमान को देखने लगी तो उसके उपर कामदेव ने अपने बाण से ताडन किया (अर्थात् वह कामपीडित हो गई)। उसने हनुमान को कहा कि, 'हे वीर ! पिता के वध से क्रोध पाकर मैंने आपके साथ सोचे-समजे बिना व्यर्थ युद्ध किया है। मुझे एक साधू ने पहले कहा था कि, 'जो तेरे पिता को मारेगा, वह तेरा स्वामी होगा।' इसलिए हे नाथ ! वश हुई इस कन्या का आप पाणिग्रहण करें। इस पूरे जगत में आपके जैसा अन्य कोई सुभट नहीं है, इसलिए आपके जैसे पति से मैं सर्व स्त्रियों मे गर्व धरकर रहूंगी।'' इस प्रकार कहती उस विनयवाली कन्या को हनुमान हर्षयुक्त चित्त से गांधर्वविधि द्वारा अनुराग सहित ब्याहे।

उस समय आकाशमार्ग में घूमने के श्रम से मानो स्नान करना चाहता हो त्यों सूर्य पश्चिम समुद्र में मग्न हो गया। पश्चिम दिशा को उद्देशकर जाते हुए ऐसे सूर्य ने संध्याकाल के बादलों के बहाने अपने वस्त्र खिसकाए हो त्यों लगने लगा। पश्चिम दिशा के उपर अरुण बादलों की परंपरा मानो अस्तकाल पर सूर्य को छोड़कर तेज अलग रहा हो ऐसी दिखने लगी। 'मेरा त्याग करके यह नवीन रागवाला सूर्य अब नवीन रागवाली पश्चिम दिशा का सेवन करता है' ऐसे अपमान से प्राची दिशा ग्लानि पा गई हो ऐसी दिखने लगी। क्रीडा स्थानों की पृथ्वी को त्याग करने की पीडा के कारण कोलाहल के बहाने पक्षी आक्रंद करने लगे। रजस्वला बनी ललना अपने प्यारे पति से दूर होने के कारण ज्यों ग्लानि पाए त्यों रंक चक्रवाकी पति के वियोग से ग्लानि पाने लगी। पति के जाने से पतिव्रता स्त्री की तरह सूर्यरुपी पति अस्त होते ही पद्मिनी ने अपने मुख का संकोच किया। वायव्य स्नान की प्राप्ति से हर्ष पाते ब्राह्मणों द्वारा वंदना की

हुई गायें अपने बछडो को मिलने के लिये उत्कंठित होकर त्वरा से वन में से वापस मुडी। ज्यों राजा युवराज को राज्यसंपत्ति दे त्यों सूर्य ने अस्त समय पर अपना तेज अग्नि को दिया। आकाश में से उतरते नक्षत्र श्रेणी की शोभा को चुरा लेते अर्थात् नक्षत्र श्रेणी जैसे दिखते दिए नगरस्त्रियाँ प्रत्येक स्थान पर जलाने लगी। सूर्य अस्त हुआ फिर भी अभी चंद्र का उदय न हुआ होने से मौका देखकर अंधकार फैलने लगा। क्योंकि 'खल पुरुष छल (ठगने) में चतुर होते है।' अंजनगिरि के चूर्ण से अथवा अंजन से पूर्ण हो ऐसा भूमि ओर आकाशरुपी पात्र अंधकार से पूर्ण दिखने लगा। उस समय स्थल, जल, दिशा, आकाश या भूमि कुछ नहीं दिखता था। ज्यादा क्या कहना ! अपना हाथ भी दिखाई नहीं देता। अंधकार से व्याप्त और खड्ग जैसे श्याम आकाश में तारे मानो विश्व पुरुष के कटिभाग में जडी हुई कोडियां हो त्यों दिखने लगे। कज्जल के जैसा श्याम और स्पष्ट नक्षत्रवाला आकाश पुंडरीक कमलवाली यमुना नदी के श्याम जलवाले द्रह जैसा दिखने लगा। जब एकाकार होते हुए अंधकार चारोंओर घूम चूका तब प्रकाश विहिन पूरा विश्व पाताल समान दिखने लगा। अंधकार वृद्धि पाते ही कामीजन को मिलने में उत्सुक दूत्तियाँ द्रह में मछलियों की तरह निःशंक होकर स्वेच्छापूर्वक विहार करने लगी। जानु तक पैर में आभूषण पहनकर, तमाल वृक्ष जैसे श्याम वस्त्र धरकर और अंग पर कस्तूरी का लेप करके अभिसारिकाएं घूमने लगी। इतने में उदयगिरिरूप प्रासाद के उपर सुवर्ण कलश जैसे किरणरुपी अंकुर के महाकंदभूत चंद्र उदय पाया। उस समय स्वाभाविक बैर के कारण कलंक के बहाने मानो चंद्र के साथ बाहुयुद्ध करता हो त्यों अंधकार नज़र आया। विशाल गोकुल में गायों के साथ वृषभ की तरह विशाल गगन में तारों के साथ चंद्र स्वेच्छापूर्वक क्रीडा करने लगा। उस समय कस्तूरी के रस से भरा रजतपात्र हो त्यों अंदर रहा कलंकवाला चंद्र दिखने लगा। आडे हाथ धरकर विरहीजन ने स्खलित किए हुए कामदेव के बाण हो त्यों चंद्रकिरण फैलने लगे। लंबे समय से भोगी हुई, लेकिन इस समय सूर्यास्त से दुर्दशावाली बनी पद्मिनी को छोड़कर भँवरे कुमुदिनी को भजने लगे। 'अहो ! नीच की मैत्री को धिक्कार है।' अपने प्रिय मित्र कामदेव को बाण तैयार करके देता हो त्यों चन्द्र किरणों के पात से शफाली लता के पुष्पों को गिराने लगा। चंद्रकांत मणियों मे से रस बरसाकर नवीन सरोवर रचता चंद्र, मानो नएं नएं जलाशय करने से अपनी कीर्ति जमाता हो त्यों दिखने लगा, और दिशाओं के मुख को निर्मल करती हुई चांदनी पद्मिनी की तरह इधर-उधर भटकती कुलटाओं के मुख को ग्लानि करने लगी।

उस समय लंकासुंदरी के साथ क्रीडा करते हुए हनुमान ने निःशंकता पूर्वक वह रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल में इन्द्र की प्रिय दिशा (पूर्व दिशा) में मंडन करता हुआ सूर्य सुवर्णसूत्र जैसे किरणों द्वारा उदय पाया। सूर्य के किरणों ने अव्याहत रुप से गिरकर विकसित कुमुदिनी को स्वप्नवाली कर दी। जागृत बनी रमणियों के छोडे हुए मुकुट के पुष्प केशपाश के वियोग

के कारण भ्रमर के नाद के बहाने रुदन करने लगे। रात्रिजागरण के प्रयास से लाल नेत्र वाली गणिकाएं कामीजन के स्थान में से निकलने लगी। भँवरों की पंक्तियाँ खण्डिता स्त्री के मुखकमल में से निःश्वास की श्रेणी निकले त्यों विकसित बने कमल के कोश में से निकलने लगी। उदय पाए सूर्य के तेज ने जिसका कांतिवैभव लूंट लिया है, ऐसा चंद्र लतातंतु के वस्त्र जैसा दिखने लगा। जो अंधकार पूरे ब्रह्मांड में भी समाता नहीं था, उसे मेघ को प्रचंड पवन उडा दे त्यों सूर्य ने किसी स्थान पर उडा दिया। रात्रि की तरह प्रतिबंध करनेवाली निंद्रा का अपसरण होते ही नगरजन अपना अपना काम करने में प्रवृत्त हुए।

उस समय पराक्रमी हनुमान लंकासुंदरी की सुंदर वचनों से संमति लेकर लंका नगर में घुसा। प्रथम बल के धामरुप हनुमान ने शत्रुओं के सुभटों को भयंकर ऐसे विभीषण के घर में प्रवेश किया। विभीषण ने सत्कार करके हनुमान को आने का कारण पूछा, तो हनुमान ने इस प्रकार साररुप गंभीर वचन कहें, "आप रावण के बंधु हो, इसलिए शुभ परिणाम का विचार करके उसने हरण की हुई राम की पत्नी सती सीता को उससे छुडवाओ। आपका भाई यद्यपि बलवान है, फिर भी उसने किया हुआ राम की पत्नी का हरण सिर्फ परलोक में ही नहीं, परंतु इस लोक में भी दुःखदायी है।" विभीषण बोला, "हे हनुमान ! आप ठीक कहते हो। प्रथम से ही सीता को छोड देने के लिए मैंने मेरे ज्येष्ठ बंधु को कहा था और दुबारा भी मैं आग्रह से मेरे बंधु को प्रार्थना करुंगा, कि जिससे वह मेरे दुबारा कहे गये वचनों से भी सीता को छोड़ दे।" इस प्रकार विभीषण ने कहा, तो हनुमान वहां से आकाश मार्ग से उड़कर जहां सीता को रखा गया था उस देवरमण उद्यान में गया। वहां अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई सीताजी को हनुमान ने देखा। उनके कपोल भाग पर केश उड़ रहे थे, लगातार गिरती अश्रुजल की धारा से उन्होंने भूमितल को आर्द्र किया था। हिमपीडित कमलिनी की तरह उनका मुखकमल ग्लानि पाया हुआ था। दूज के चंद्र की कला की तरह उनका शरीर अति कृश हो गया था, उष्ण निःश्वास के संताप से उसके अधरपल्लव कमजोर हो गये थे, स्थिर योगीनी की तरह वे राम का ही ध्यान करती थी, वस्त्र मलिन हो गये थे और अपने शरीर में भी निःस्पृह दिखती थी। उनको देखते ही हनुमान ने सोचा कि, "अहो ! ये सीता महासती है, उनके दर्शनमात्र से ही लोग पवित्र हो जाए ऐसा है। इस महासती का विरह राम को पीडा दे रहा है वह योग्य ही है, क्योंकि ऐसी रुपवान, सुशील और पवित्र पत्नी किसी पुरुष को ही प्राप्त होती है। यह रंक रावण राम के प्रताप से और अपने बड़े पाप से - इन दोनों कारणों से जरुर पतित होगा।"

फिर हनुमान ने विद्या से अदृश्य होकर साथ लायी हुई रामचंद्र की मुद्रिका सीता के उत्संग (गोद) में डाली, जिसे देखकर सीता ने हर्ष पाया। उनको हर्षित हुआ देखकर त्रिजटा

ने तत्काल रावण के पास जाकर कहा, 'सीता इतने समय तक खेद पायी हुई रहती थी, लेकिन आज आनंद में आयी है।' रावण ने मंदोदरी को कहा, 'मैं मानता हूँ कि अब सीता राम को भूल चूकी है और मेरे साथ अवश्य क्रीडा करना चाहती है, इसलिए तू जाकर उसे समजा।' पति के ऐसे वचन से मंदोदरी पति का दूतपना करने के लिए वापस सीता को ललचाने वहां गई और अति विनीत होकर सीता को कहा, "रावण अद्वैत ऐश्वर्य और सौंदर्य से उत्तम है, और रुप तथा लावण्य की संपत्ति से आप भी उसके योग्य ही हो। यद्यपि मूर्ख दैव ने आपका योग्य संयोग नहीं किया, लेकिन अब तो वह योग प्राप्त हो। हे जानकी ! समीप जाकर भजने योग्य रावण उलटे आपको भजने के लिए तत्पर है, इसलिए आप उसे भजो, और हे सुभ्रू ! मैं और उसकी अन्य पत्नियाँ आपकी आज्ञा को धारण करें।" सीता बोली, 'अरे ! पति का दूतपना करनेवाली पापिनी ! अरे दुर्मुखी ! तेरे पति की तरह तेरा मुख भी कौन देखे ? अरे दुष्ट ! बांधव सहित तेरे पति को खरप्रमुख राक्षसों की तरह मारने के लिए लक्ष्मण को यहां आया ही मानना, और मुझे राम के पास रही हुई समजना। अरे पापिष्ठे ! यहां से उठ जा, अब मैं तेरे साथ बोलना चाहती नहीं हूँ।' सीता ने जब इस प्रकार तिरस्कार किया तब मंदोदरी कोप करके वहां से चल नीकली।

उसके जाने के बाद हनुमान तुरंत ही प्रकट हुआ और सीता को नमस्कार करके अंजलि जोड़कर उसने कहा, 'हे देवी ! सद्भाग्य से राम लक्ष्मण सहित जय पाते हैं। आपकी खोज करने के लिए राम की आज्ञा से मैं यहां आया हूँ। मेरे वहाँ जाने के बाद राम शत्रुओं को मारने के लिए यहां आयेंगे।' सीता नेत्र में अश्रु लाकर बोली, "हे वीर ! आप कौन हो ? इस दुर्लंध्य समुद्र को किस तरह पार करके यहां आये ? मेरे प्राणनाथ लक्ष्मण सहित आनंद में है ? आपने उन्हें कहां देखा था और वे वहां रहकर किस तरह काल व्यतीत करते है ?" हनुमान बोला, "पवनंजय और अंजना का हनुमान नाम का मैं पुत्र हूँ। आकाशगामिनी विद्या से मैंने समुद्र का उल्लंघन किया है। उसके शत्रु का नाश करने द्वारा सर्व वानरों के अधिपति सुग्रीव को अपने सेवक समान करके राम लक्ष्मण सहित किष्किंधापुरी में रहे हैं। दावानल से गिरि की तरह अन्य को तपाते राम आपके वियोग में रातदिन परिताप पाया करते हैं। हे स्वामिनी ! गाय के विरह से वत्स (बछडा) की तरह आप के विरह से पीडित ऐसे लक्ष्मण निरंतर दिशाओं को शून्य देखते हुए कभी भी सुख नहीं पाते। पलभर शोक में और पलभर क्रोध में रहते आपके पति और देवर यद्यपि सुग्रीव उन्हें बार बार आश्वासन देता है फिर भी किंचित सुख नहीं पाते। भामण्डल, विराध और महेन्द्र वगैरह खेचर, देवताओं समान शक्रेन्द्र और इशानेन्द्र की सेवा करें त्यों, उनके पैदल (सेवक) होकर उनकी सेवा करते हैं। हे देवी ! आपकी खोज करने के लिए सुग्रीव ने मुझे बताया, तो रामभद्र ने अपनी अंगूठी आपको अभिज्ञान (पहचान) के रुप

में देने के लिए देकर मुझे यहां भेजा है, और आपसे चूडामणि का अभिज्ञान लाने के लिए मुझे कहा है, वह देखने से रामभद्र को मेरे यहां आने का भरोसा बैठेगा।''

इस प्रकार राम का वृत्तांत सुनने के हर्ष से और हनुमान के आग्रह से इक्कीस अहोरात्री के बाद उस दिन सीता ने भोजन किया। फिर सीता बोली, 'हे वत्से ! ये मेरा चूडामणि निशानी के तौर पर लेकर तू अब शीघ्र यहां से चले जा। यहां ज्यादा समय रहने से तूजे उपद्रव होगा। तूजे यहां आया जानकर वे क्रूर राक्षस यमराज की तरह जरूर तुजे मार डालने आयेंगे।' सीता के ऐसे वचन सुनकर हनुमान थोड़ा मुस्कुराकर, अंजलि जोड़कर विनय से बोले, 'हे माता ! आप मुझ पर के वात्सल्यभाव से भय पाकर यूं कहती हो, लेकिन तीन जगत को जीतने वाले राम-लक्ष्मण का मैं दूत हूँ। मेरे सामने सैन्य सहित वह बेचारा रावण कौन मात्र है ? हे स्वामिनी ! कहो तो सैन्य सहित रावण का पराभव करके आपको मेरे कंधे पर बिठाकर मैं मेरे स्वामी राम के पास ले जाऊँ ?' सीता हँसकर बोली, 'हे भद्र ! आप अपने स्वामी रामभद्र को लजाएंगे नहीं, ऐसा मुझे यह तुम्हारे वचन से निश्चय होता है। राम और वासुदेव (लक्ष्मण) के दूत ऐसे आपमें ये सर्व संभवित है, लेकिन मुझे थोड़ा सा भी परपुरुष का परिचय योग्य नहीं है, इसलिए अब आप तुरंत वहां जाओ। आपने यहां सर्व कार्य किया है और आपके जाने के बाद ही आर्यपुत्र राम जो प्रयास करना योग्य होगा वह करने लगेंगे।' हनुमान बोले, 'देवी ! अब मैं वहीं जा रहा हूँ, लेकिन जाते हुए मैं राक्षसों को मेरा पराक्रम दिखाता जाऊँगा। यह रावण अपनी आत्मा को सर्वत्र विजयी ही मानता है। वह अन्य के पराक्रम को मानता नहीं है, इसलिए वह रामदूत के पराक्रम को भले ही जान ले।' उसके ऐसे पराक्रम के वचन सुनकर 'बहुत अच्छा' कहकर सीता ने उसे अपना चूडामणि दिया, तो वह लेकर हनुमान चरणन्यास से पृथ्वी को कंपाता हुआ वहाँ से चला।

फिर वन के हाथी की तरह कर के पराक्रम को प्रसारते हुए हनुमान ने देवरमण उद्यान का ध्वंस (नाश) करना आरंभ किया। रक्तअशोक वृक्ष के शूगरहित, बकुल वृक्षों में अनाकुल, आम्रवृक्षों में करुणरहित, चंपक वृक्षों में निष्कंप, मंदार वृक्षों में अतिरोषी, कदली वृक्षों में निर्दय और अन्य रमणीय वृक्षों में भी क्रूर बनकर हनुमान, उसके भंग की लीला करने लगे। यह देखते ही उस उद्यान के चार द्वारपाल राक्षस हाथ में मुद्गर लेकर उसे मारने के लिए दौड आये। तट के गिरि पर बड़े सागर की लहरें निष्फल हो त्यों उनके हथियार हनुमान पर स्खलित हो (रुक) गये। हनुमान ने कोप करके उसी उद्यान के वृक्षों से उन पर प्रहार करना शुरु किया, क्योंकि ''बलवान को सर्व पदार्थ अस्त्र हैं।'' पवन की तरह अस्खलित ऐसे हनुमान ने वृक्षों की तरह उस उद्यान के रक्षक क्षुद्र राक्षसों को भी तत्काल मार डाला। वह देखकर कइं राक्षसों

ने आकर हनुमान ने किए हुए उद्यानरक्षकों के क्षय का सर्व वृत्तांत राक्षसपति रावण को कहा। यह सुनकर रावण ने हनुमान को मारने के लिए सैन्य सहित वहाँ जाकर शत्रु के घात करनेवाले **अक्षकुमार** को आज्ञा दी। रण के लिए उत्कंठित ऐसा अक्षकुमार वहां आकर आक्षेप करने लगा, तो हनुमान ने उसको कहा, 'भोजन से पहले फल की तरह तू रण में मुझे पहले ही प्राप्त हुआ है।' हनुमान के ऐसे वचन सुनकर 'अरे कपि ! तू वृथा गर्जना क्यों करता है ?' यो तिरस्कार करते हुए रावण के पुत्र अक्षकुमार ने नेत्र प्रसर को अवरोध करने वाले तीक्ष्ण बाणों की वृष्टि की। उद्वेल समुद्र ज्यों पानी से द्वीप को ढंक दे त्यों श्रीशैल ने (हनुमान ने) भी बाणों की उत्कर्ष बरसात से रावणपुत्र को ढंक दिया। फिर मात्र कौतुक द्वारा वे चिरकाल शस्त्राशस्त्री युद्ध करके रण का पार पाने चाहते अंजनापुत्र ने पशु की तरह अक्षकुमार को मार डाला। अपने भाई के वध के क्रोध से 'अरे मारुति ! खडा रह, खडा रह' यूं बोलते हुए **इंद्रजित** तत्काल रण में आया। वे दोनों महाबाहु वीरों को कल्पांतकाल जैसा दारुण और विश्व विक्षोभ करनेवाला बड़ा संग्राम बड़ी देर तक चला। जलधारा की तरह गाढ शस्त्रश्रेणी को बरसाते हुए वे दोनों आकाश में रहे पुष्करावर्त्त मेघ जैसे दिखने लगे। अविच्छिन्न टकराते उनके अस्त्रों से पलभर में संपूर्ण आकाश जल-जंतुओं के समूह की तरह दुःप्रेक्ष्य बन पड़ा। रावण के दुर्वार कुमार ने जितने अस्त्र छोडे, उन सबका मारुति ने उनसे बढ़कर अनेक गुना अस्त्रों से छेद डाले। हनुमान के अस्त्रों से घायल बने इन्द्रजित के सब सुभट मानो रक्तद्रवित चलित पर्वत हो ऐसा दिखने लगे। आखिर अपने संपूर्ण सैन्य को नाश पाया देखकर और अपने सभी आयुधों की निष्फलता देखकर इन्द्रजित ने हनुमान के उपर नागपाशास्त्र छोड़ा। दृढ नागपाश से चन्दन के वृक्ष की तरह हनुमान पैर से मस्तक तक बंध गया। यद्यपि नागपाश को तोड़कर शत्रुओं को जीतने में वह समर्थ था, फिर भी नागपाश के बन्धन सहित हनुमान कौतुक देखने के लिए बंध गए, तो इन्द्रजीत हर्ष पाकर उसे रावण के पास ले गया। विजय चाहने वाले राक्षस प्रफूल्ल नेत्र से उसे देखने लगे।

रावण ने हनुमान को कहा, 'हे दुर्मति ! यह तूने क्या किया ? वे राम लक्ष्मण जन्म से ही मेरे आश्रित और रंक हैं। वन में रहनेवाले, फलाहार करनेवाले, मलिन शरीरवाले और मलिन वस्त्र को पहननेवाले किरात जैसे वे तूज पर प्रसन्न बनेंगे तो भी तुझे कौन सी लक्ष्मी दे सकेंगे ? हे मंदबुद्धि ! राम-लक्ष्मण के कहने से तू यहाँ क्या समझकर आया कि जिससे यहां आते ही तू प्राणसंशय में आ गिरा ? वे भूचारी राम-लक्ष्मण बड़े चतुर दिखते हैं कि जिन्होने तेरे पास ऐसा काम करवाया। लेकिन छलिये तो परहस्त से ही अंगारे निकलवाते हैं। अरे ! तू पहले मेरा सेवक था और आज दूसरे का दूत होकर आया है, इसलिए अवध्य है, लेकिन सिर्फ शिक्षा के लिए ही तेरी इतनी विटम्बना की गई है।''

हनुमान बोले, 'अरे ! रावण ! मैं कब तेरा सेवक था और तू मेरा स्वामी कब था ? ऐसा बोलते हुए तू लज्जा क्यों नहीं पाता ? पहले एक बार तेरा सामंत खर स्वयं को बडा बलवान मानता था, उसे उसके शत्रु वरुण के बंदीगृह में से मेरे पिता को छुडवाया था। इसके बाद दूसरी बार तूने सहाय करने के लिए मुझे बुलवाया था, इसलिए मैं आया था; और वरुण के पुत्रों के संकट में से मैंने तेरी रक्षा की थी, परंतु इस समय तो तू पाप में तत्पर हुआ होने से मदद के योग्य नहीं है, इतना ही नहीं लेकिन परस्त्री का हरण करनेवाले तेरे साथ भाषण करने से भी पाप लगे ऐसा है। और हे रावण ! अकेले लक्ष्मण से भी तेरी रक्षा करे ऐसा कोई पुरुष तेरे परिवार में मुझे नजर नहीं आता तो उसके अग्र बंधु राम के सम्मुख तो कौन रक्षा करेंगा ?'

उसके ऐसे वचन सुनकर ललाट पर भ्रूकुटि को चढ़ाकर भयंकर रावण होठ काटते हुए इस प्रकार बोला, ''अरे कपि ! तूने मेरे शत्रु पक्ष का आश्रय किया है, और ऐसे वचनों से मुझे भी तूने तेरा शत्रु बनाया है, इसलिए तूजे जरूर मरने की इच्छा हुई लगती है, लेकिन तूजे तेरे जीवन पर ऐसा वैराग्य क्यों हुआ है ? अरे वानर ! जिसका अंग कुष्ठ रोग से विशीर्ण हुआ हो ऐसा मनुष्य मरना चाहे तो भी हत्या के भय से उसे कोई मारता नहीं है, तो तुज - दूत को कौन मारेगा ? लेकिन अरे अधम ! तुझे गधे पर चढ़ाकर, पंचशिखा करके लंका के प्रत्येक मार्ग पर लोगों के समूह के साथ घूमाया जायेगा।''

रावण के ऐसे वचनों से हनुमान ने क्रोध से नागपाश तोड़ डाला, क्योंकि 'कमलदंड से बंधा हाथी कितनी देर बंधा रहेगा ?' फिर तत्काल विद्युतदंड की भाँति उछलकर उसने रावण के मुकुट को पैर की लात से चूरेचूरा कर दिया, तो 'इस नीच को मारो और पकडो' यूं रावण ने पुकार मचायी, परंतु उसने तो अनाथ हो त्यों पूरी नगरी को चरणघात से तोड़ डाली और इस प्रकार क्रीडा करके गरुड की भाँति उडकर शीघ्रता से राम के पास आया। रामभद्र को नमन करके सीता का चूडामणि उनके सम्मुख धरा। जिससे साक्षात् सीताजी आयी हो त्यों उस चूडामणि को लेकर बार बार स्पर्श करके राम ने अपने हृदय में धारण किया। फिर राम ने पुत्र जैसी कृपा से हनुमान को आलिंगन देकर वहां का वृत्तांत पूछा, तो जिसकी भुजा के पराक्रम की हकीकत सुनने के लिए अन्य तत्पर हो रहे थे ऐसे हनुमान ने रावण का स्वयं किया अपमान और सीता की संपूर्ण प्रवृत्ति यथार्थ रुप में कह सुनायी।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते
महाकाव्ये सप्तमे पर्वणि सीताप्रवृत्यानयनो नाम षष्ठः सर्गः॥६॥

सप्तम सर्ग

रावण वध

सीता के यथार्थ समाचार आ जाने से सुग्रीव वगैरह सुभटों से घिरे राम लक्ष्मण सहित लंका पर विजय पाने के लिए आकाशमार्ग से चले। भामण्डल, नल, नील, महेन्द्र, हनुमान, विराध, सुषेण, जांबवान, अंगद और अन्य कोटीगम विद्याधरों के राजा अपने सैन्य की दिशाओं के मुख को आच्छादन करते हुए राम के साथ चले। विद्याधर युद्ध के अनेक वाजिंत्र बजाने लगे। उनके अत्यंत गंभीर नाद से आकाश संपूर्ण भरा गया। अपने स्वामी के कार्य की सिद्धि में अहंकार धरते खेचर विमान, रथ, अश्व, हाथी और अन्य वाहनों पर बैठकर आकाश में चले। सैन्य सहित समुद्र पर चलते हुए पलभर में सब **वेलंधर** पर्वत पर स्थित **वेलंधरपुर** समीप आये। उस नगर में **समुद्र** और **सेतु** नाम के समुद्र समान दुर्धर दो राजा थे। वे उद्दंड होकर राम के अग्र सैन्य के साथ युद्ध करने लगे। स्वामी के कार्य में चतुर ऐसे पराक्रमी **नल** ने समुद्र राजा को और **नील** ने सेतु राजा को बांध लिया, और उनको राम के पास लाकर प्रस्तुत किया। कृपालु राम ने उनको वापस अपने राज्य पर बैठाया। महान पुरुष पराभव पाए शत्रु पर भी कृपालु होते हैं। समुद्र ने रुप से सुंदर और स्त्रियों मे रत्नरुप अपनी तीन कन्याएं लक्ष्मण को दी। रात्रि वहीं बिताकर राम प्रातःकाल में सेतु और समुद्र राजा को साथ लेकर वहां से चले। पलभर में वे **सुवेलगिरि** समीप आ पहुंचे। वहां के **सुवेल** नाम के दुर्जय राजा को जीतकर राम एक रात्रि वहाँ रुके, प्रातःकाल में वापस वहाँ से चले। तीसरे दिन लंका के समीप आये हंसद्वीप के राजा **हंसरथ** को जीतकर रामभद्र ने वहीं निवास किया। मीन राशि में रहे शनि की तरह राम नजदीक आ जाने से संपूर्ण लंकापुरी क्षोभ पा गयी और उसे चारों ओर से प्रलयकाल की शंका भी होने लगी।

रामभद्र के नजदीक आने के समाचार मिलते ही **हस्त, प्रहस्त, मारीच** और **सारण** वगैरह रावण के हजारों सामंत युद्ध करने के लिए तैयार हुए। शत्रुओं का ताडन करने में पंडित ऐसे रावण ने करोडो सेवकों से रण संबंधित महादारुण वाजिंत्र बजवाए। उस समय विभीषण ने रावण के पास आकर कहा, "बंधु ! क्षणभर के लिए प्रसन्न हो जा और शुभ परिणामवाले मेरे वचनों पर विचार कर। पहले दो लोकों का घात करनेवाला परस्त्रीहरण का काम तूने सोचे समजे बिना किया है, और जिससे तेरा कुल लज्जा पाया है। अब ये रामभद्र अपनी स्त्री को लेने के लिए आये हैं तो उसकी स्त्री अर्पण करने रुप उसका आतिथ्य कर नहीं तो वे राम अन्य प्रकार से ले लेंगे और तुम्हारे साथ पूरे कुल को भी पकड़ लेंगे। साहसगति विद्याधर के और खर राक्षस के अंत रुप ये राम-लक्ष्मण की कहानी तो एक ओर रही, लेकिन दूत बनकर आये हनुमान को भी क्या तुमने नहीं देखा ? इन्द्र से भी अधिक तुम्हारी यह संपत्ति एक सीता के

कारण छोडो मत ! क्योंकि ऐसा करने से तुम्हें उभयभ्रष्ट (दोनों ओर से भ्रष्ट) होना पडेगा।'' विभीषण के ऐसे वचन सुनकर **इन्द्रजित** बोला, ''अरे विभीषण चाचा ! आप जन्म से ही भीरु (डरपोक) हो, आपने हमारे पूरे कुल को दूषित किया है। आप मेरे पिता के सहोदर (भाई) ही नहीं हो। अरे मूर्ख ! इन्द्र को भी जितनेवाले और सर्व संपत्ति के नायक ऐसे मेरे पिता के लिए आप ऐसी संभावना करते हो जिससे आप सचमुच मरना ही चाहते हो। पहले भी अनृत (जूठ) भाषण करके आपने मेरे पिता को छला था, क्योंकि दशरथ राजा के वध की प्रतिज्ञा लेकर आपने उस अनुसार किया नहीं। अब जब राम यहां आये हैं, तब भूचर मनुष्य से निर्लज्जतापूर्वक भय दिखाकर आप मेरे पिता से उस राम की रक्षा कराना चाहते हो, इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि आप राम के ही पक्ष के हो और उसने आपको अपने वश किया है, जिससे आप अब विचार विमर्श में भी संमिलित होने के अधिकारी नहीं हो, क्योंकि राजाओं को आप्त सचिव के साथ का विचार ही शुभ परिणाम देता है।'' विभीषण बोला, ''मैं शत्रुपक्ष का नहीं हूँ, लेकिन तू पुत्ररुप में कुल का नाश करनेवाला शत्रु जन्मा है ऐसा लगता है। यह तेरा पिता जन्मांध हो त्यों ऐश्वर्य और काम से अंध बना है। अरे मुग्ध ! क्षीरकण्ठ बालक ! तू क्या समझेगा ? हे रावण ! इस इन्द्रजित पुत्र से और तेरे आचरणसे तू कुछ समय में ही पतित हो जायेगा यूं अवश्य समज ले। अब तेरे लिए मैं व्यर्थ परिताप नहीं करुंगा।'' विभीषण के ऐसे वचन सुनकर दैवदूषित बने रावण को अधिक क्रोध चढ़ा; जिससे तत्काल भयंकर खड्ग तानकर विभीषण का वध करने खडा हुआ। भ्रूकुटि से भयंकर ऐसा विभीषण भी हाथी की तरह बड़ा स्तंभ उठाकर रावण के सामने युद्ध करने खड़ा रहा। तो कुंभकर्ण और इन्द्रजित दोनों ने बीच में आकर उन्हें युद्ध करते रोककर दो हाथी को ज्यों अपनी अपनी शालामें ले जाय त्यों उनके अपने अपने स्थान में ले गये। उस समय रावण ने कहा, 'अरे विभीषण ! तू मेरी नगरी में से चला जा, क्योंकि अग्नि की तरह तू आश्रय को भक्षण करनेवाला है।' रावण के ऐसे वचन से विभीषण तत्काल लंका में से निकलकर राम के पास जाने के लिए चल दिया। राक्षसों और विद्याधरों की मिलकर तीस अक्षौहिणी सेना रावण को छोड़कर उसके साथ चल निकली।

विभीषण को आता देखकर सुग्रीव वगैरह सर्व क्षोभ पा गये। क्योंकि ''डाकिन की तरह शत्रु पर भी तुरंत ही ज्यों-त्यों विश्वास नहीं बैठता।'' प्रथम तो आदमी भेजकर रामभद्र को अपने आने के समाचार कहलवाये, तो राम ने अपने विश्वासपात्र सुग्रीव के मुख के सामने देखा। सुग्रीव बोला, ''हे देव ! यद्यपि सर्व राक्षस जन्म से ही मायावी और स्वभाव से ही क्षुद्र होते हैं तथापि यह विभीषण यहाँ आ रहा है तो भले ही आये, हम उसका गुप्त प्रकार से शुभ-अशुभ भाव जान लेंगे और बाद में उसके भाव अनुसार योग्य व्यवस्था करेंगे।'' उस समय विभीषण को पूरी तरह से जाननेवाला **विशाल** नाम का एक खेचर बोल उठा, ''हे प्रभु ! राक्षसों में यह

विभीषण एक अकेला ही महात्मा और धार्मिक है। सीता को छोडने के बारे में रावण को कहने पर अति क्रोधी ऐसे उसके (भाई) रावण ने उसे निकाल दिया है, इसलिए वह आपकी शरण में आया है। इसमें थोडा सा भी हेर-फेर नहीं है।'' यह सुनकर राम ने द्वारपाल द्वारा विभीषण को अंदर प्रवेश करवाया। राम के चरण में मस्तक रखते ही उसे राम संभ्रम से गले लग गये। फिर विभीषण बोला, ''हे प्रभु ! मेरे अन्यायी अग्रबंधु (बड़े भाई) को छोड़कर मैं आपके पास आया हूँ, इसलिए मुझे भी सुग्रीव जैसा ही भक्त मानकर आज्ञा दो।'' उस समय राम ने उसे लंका का राज्य देना कबूल किया। महात्माओं को किया गया प्रणिपात कदापि व्यर्थ नहीं जाता।

हंसद्वीप में आठ दिन रहने के बाद रामचंद्र पूरी सेना सहित कल्पांतकाल की भाँति लंका की ओर चले। लंका के बाहर मैदान में विशाल सेना द्वारा बीस योजन भूमि को रोककर बल के पर्वतरुप राम रण के लिए सज्ज हो गये। मानो ब्रह्माण्ड के स्फोट से उत्पन्न हुआ हो त्यों राम की सेना का कोलाहल समुद्र के ध्वनि की तरह संपूर्ण लंकापुरी को बधिर करने लगा। जिनका अनन्य असाधारण बल है ऐसे **प्रहस्त** वगैरह रावण के सेनापति तत्काल हथियार ऊंचे करके, कवच पहनकर तैयार हो गये। कोई हाथी पर, कोई अश्व पर, कोई शेर पर, कोई गधे पर, कोई रथ में बैठकर, कोई कुबेर की तरह मनुष्य पर चढ़कर, कोई अग्नि की तरह मेष पर सवारी करके, कोई यमराज की भाँति महिष को वाहन बनाकर, कोई रेवंतकुमार की तरह अश्व पर सवार होकर और कोई देव की भाँति विमान मे बैठकर रणकर्म में चतुर ऐसे असंख्य वीर एक साथ एकत्रित होकर रावण के चारोंओर छा गये। फिर रत्नश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र **रावण** क्रोध से लाल नेत्र करके तैयार होकर विविध आयुधों से पूर्ण रथ में बैठा। मानो दूसरा यम हो ऐसा वीर **भानुकर्ण** हाथ में त्रिशूल लेकर रावण के समीप आकर पार्श्वरक्षक होकर खडा रहा। इन्द्रजित और मेघवाहन कुमार मानो ज्यों रावण की अन्य दो भुजाएं हो त्यों रावण के समीप आकर दोनों तरफ खड़े रहे। दूसरे भी महापराक्रमी पुत्र, कोटीगम सामंत और शुक्र, सारण, मारीच, मय और सुंद वगैरह भी वहां आकर उपस्थित हुए। इस प्रकार रणकर्म में कुशल ऐसी असंख्य सहस्र अक्षौहिणी सेनाओं से दिशाओं को आच्छादन करते हुए रावण लंकानगरी से बाहर निकला।

रावण के सैन्य में कोई शेर के ध्वजवाले[1], कोई अष्टापद ध्वजवाले, कोई चमूरु मृग के ध्वजवाले, कोई हाथी के ध्वजवाले, कोई मयूर के ध्वजवाले, कोई सर्प के ध्वजवाले, कोई मार्जार के ध्वजवाले और कोई श्वान के ध्वजवाले थे। किसिके हाथ में धनुष, किसिके हाथ में खड्ग, किसिके हाथ में षंडी, किसिके हाथ में मुद्गर, किसिके हाथ में त्रिशूल, किसिके हाथ में परिघ,

१. ऐसे चिह्न है जो उनके रथ पर के ध्वज समजने।

किसिके हाथ में कुठार और किसिके हाथ में पाश था। वे बार बार नाम लेकर शत्रुओं को बताते हए रणकर्म में बड़ी चतुराई से विचरने लगे। वैताढ्य गिरि की तरह अपनी सेना की विशालता से पचास योजन पृथ्वी पर रावण ने रणकार्य के लिए पडाव डाला। अपने अपने नायकों की प्रसंशा करते, परनायकों की निंदा करके, परस्पर आक्षेप करके, परस्पर कथा कहते और करास्फोट पूर्वक अस्त्र बजाते, राम और रावण के सैनिक कांसीजोड बेताल की तरह इकट्ठे मिले। 'जा, जा, खडे रह, खडे रह, भय मत पा, आयुध छोड दे, आयुध ग्रहण कर,' इस प्रकार युद्ध में सुभटों के मुख से वाणी निकलने लगी। दोनों सेना में शल्य, शंकु, बाण, चक्र, परिघ और गदाएं जंगल में पक्षियों की तरह आ-आकर गिरने लगे। परस्पर घात से भग्न हुए, खड्ग से और वेग से छिदे हुए उछलते मस्तक से पूरा आकाश मानो विविध केतु और विविध राहुवाला हो त्यों दिखने लगा। मुद्गरों के आघात से हाथियों को गिरा देते सुभट मानो हॉकी का खेल करते हो त्यों शोभायमान होने लगे। अन्य सुभटों ने कुठार के घात से छेदी पंच शाखाएं (दो हाथ, दो पैर और मस्तक) वृक्षों की शाखा की तरह गिरने लगी। वीर सुभट शत्रुओं के मस्तकों को छेदकर, मानो क्षुधातुर यमराज के यथायोग्य ग्रास हो त्यों पृथ्वी पर फैंकने लगे। महापराक्रमी राक्षसों और वानरों के बीच के उस युद्ध में चचेरे हिस्सेदारों में धन की तरह विजय साध्य होने में बड़ा विलंब हुआ।

जब चिरकाल युद्ध चला, तब महाबलवान वानरों ने वन की तरह राक्षसों के सैन्य का ध्वंस कर दिया। राक्षसों का सैन्य ध्वंस होते ही रावण की जय के प्रतिभूरुप **हस्त** और **प्रहस्त** दोनों युद्ध करने के लिए तैयार हुए। उन दोनों के साथ युद्ध करने के लिए **नल** और **नील** नाम के दो बड़े कपि उनके सम्मुख आकर खड़े रहे। प्रथम नल और हस्त वक्र अवक्र ग्रह की भाँति एक - दूसरे के सम्मुख रथारुढ होकर मिले। उन्होंने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर ऐसा आस्फालन किया कि, जिससे वे मानो परस्पर युद्ध करने का आमंत्रण करते हो त्यों दिखने लगा। फिर वे दोनों परस्पर ऐसे बाण बरसाने लगे कि जिससे उनके रथ बाण के शूल से भरपूर दिखने लगे। पलभर में नल की और पलभर में हस्त की जय पराजय होने से निपुण पुरुष भी उनके बल का अंतर नहीं जान सके। आखिरकार बलवान नल ने सभासद बनकर देखनेवाले वीरों के समक्ष लज्जा पाकर अव्याकुलतापूर्वक क्षुरप्र बाण से हस्त का मस्तक क्रोध करके छेद डाला। हस्त को ज्यों नल ने मारा त्यों उसी समय नील ने प्रहस्त को मार डाला। उस समय तत्काल नल और नील पर आकाश में से पुष्पवृष्टि हुई। हस्त और प्रहस्त की मृत्यु से रावण के सैन्य में से मारीच, सिंहजघन, स्वयंभू, सारण, शुक, चंद्र, अर्क, उद्दाम, बीभत्स, कामाक्ष, मकर, ज्वर, गभीर, सिंहरथ और अश्वरथ वगैरह राक्षसयोद्धा क्रोध से सामने आये। उनके साथ

मंदनाकुर, संताप, प्रथित, आक्रोश, नंदन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिकर वगैरह वानर पृथक् पृथक् युद्ध करने लगे, और कुर्कुट के साथ कुर्कुट के युद्ध की तरह ऊंचे उछलने लगे और गिरने लगे। इस प्रकार युद्ध होने पर मारीच राक्षस ने संताप वानर पर, नंदन वानर ने ज्वर राक्षस पर, उद्दाम राक्षस ने विघ्न वानर पर, दुरिच वानर ने शुक्र राक्षस पर और सिंहजघन राक्षस ने पथित वानर पर युद्ध करते हुए प्रहार किए। उस समय सूर्य अस्त पा गया, तो राम और रावण के सैन्य युद्ध से निवृत्त हुए और सैनिक अपने अपने मृत्यु पाये व घायल सुभटों को खोजने लगे।

रात्रि बीती और जब प्रभातबेला हुई तब देव प्रति दानव की तरह राक्षसयोद्धा राम के सैन्य के साथ युद्ध करने के लिए नजदीक आये। राक्षससैन्य के मध्य में मेरुगिरि की तरह हाथी के रथ में आरुढ हुआ रावण युद्ध करने चला। विविध अस्त्र धारण करते और तत्काल रक्तदृष्टि से मानो दिशाओं को भी जलाता हो त्यों रावण यमराज से भी ज्यादा भयंकर दिखने लगा। इन्द्र की तरह अपने प्रत्येक सेनापति को देखते हुए और शत्रुओं को तृण समान मानते हुए रावण रणभूमि में आया। उसको देखते ही आकाश में से देवताओं ने देखे हुए राम के पराक्रमी सेनापति सैन्य सहित युद्ध करने के लिए रणभूमि में आये। पलभर में तो किसी जगह उछलते रुधिर जल से मानो नदीवाला हो, किसी जगह गिरे हाथियों से जाने पर्वतवाला हो, किसी जगह रथ में से गिरी हुई मकरमुख ध्वजाओं से मानो मगरवाला हो, अर्धमग्न बने महारथों से मानो चक्रालु हो और किसी जगह नाचते कबंधो (धड) से मानो नृत्यस्थान हो ऐसा रणभूमि का परिसर दिखने लगा।

फिर रावण के हुंकार से प्रेरित सर्व राक्षसों ने सर्व बल से वानरों के सैन्य को हटा दिया। अपने सैन्य के भंग से क्रोध पाये सुग्रीव ने अपना धनुष्य चढाया और प्रबल सेना से पृथ्वी को कंपाते हुए वह सामने चला। उस समय 'राजन् ! आप यहीं खड़े रहो और मेरा पराक्रम देखो।' ऐसा कहकर सुग्रीव को अटकाकर **हनुमान** युद्ध करने चला। अनगिनत सेनानियों से दुर्मद ऐसे राक्षसों के दुःख से प्रवेश हो सके ऐसे सैन्य में समुद्र में मंदरगिरि की भाँति हनुमान ने प्रवेश किया। उस समय धनुष और भाथा धारण करते हुए महादुर्जय **माली** नाम का राक्षस मेघ की तरह उग्र गर्जना करते हुए हनुमान पर चढ़ आया। हनुमान और माली ये दोनों वीर धनुष्य की टंकार करते हुए पुंछ को पटकते सिंह की भाँति शोभा पा रहे थे, और वे परस्पर अस्त्रों से प्रहार करते परस्पर के अस्त्रो को छेद डालते थे और परस्पर गर्जना करते थे। क्रमशः ग्रीष्म ऋतु का सूर्य छोटे से सरोवर को जल रहित कर डाले त्यों हनुमान ने चिरकाल युद्ध करके वीर्यवान माली को अस्त्ररहित कर दिया। फिर 'अरे वृद्ध राक्षस ! यहाँ से चले जा। तुझे

मारने से क्या मिलेगा ?' इस प्रकार कहते हुए हनुमान के सामने आकर **वज्रोदर** राक्षस बोला, 'अरे पापी कद्वादी[1] ! ऐसा बोलते हुए मर जायेगा ! यहां आ, मेरे साथ युद्ध कर, शीघ्र ही था न था हो जायेगा।' वज्रोदर के ऐसे वचन सुनकर ज्यों केसरीसिंह हुंकार करे त्यों हनुमान ने बड़े अहंकार से गर्जना करके उसे बाण से ढंक दिया। वज्रोदर ने उस बाण वृष्टि को दूर करके वर्षाऋतु की तरह ज्यों सूर्य को बादल ढँके त्यों हनुमान को ढँक दिया। 'अहो ! वज्रोदर वीर हनुमान के लिए समर्थ है, और वीर मारुति वज्रोदर के लिए भी समर्थ है।' ऐसी रणक्रीडा देखनेवाले सभासद ऐसे देवों की वाणी होने लगी। उसे मान के पर्वतरुपी हनुमान सहन नहीं कर पाया, इसलिए एक साथ उत्पात मेघ की तरह विचित्र अस्त्र बरसाकर उसने सर्व राक्षसों के देखते ही वज्रोदर को मार डाला।

वज्रोदर के वध से क्रोध पाकर रावणका पुत्र **जंबूमाली** सामने आया, और हाथियों को महावत की भाँति मारुति ने तिरस्कारपूर्वक बुलाया। परस्पर वध करना चाहते वे दोनों महामल्ल सर्प से मदारी की तरह बाण द्वारा चिरकाल युद्ध करने लगे। एक दूसरे के बाणों से दो गुने बाणों को सामने छोडते हुए युद्ध करते वे वीर लेनदार और देनदार जैसी स्थिति को प्राप्त हुए। फिर हनुमान ने क्रोध करके जंबूमाली को रथ, घोडे और सारथि विहीन करके बड़े मुद्गर से उस शत्रु पर बहुत ताडन किया, जिससे जंबूमाली मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा। उसे देखकर **महोदर** नाम का राक्षस क्रोध से बाण बरसाते हुए हनुमान के सामने रण में आया। हनुमान को मारने की इच्छा से ज्यों जातिवान श्वान सूअर को घेर ले त्यों अन्य राक्षसों ने भी उसको चारों ओर से घेर लिया। हनुमान ने तीक्ष्ण बाणों से किसिकी भुजा में, किसिके मुख में, किसिके पैर में, किसिके हृदय में और किसि की कुक्षि में प्रहार किए। उस समय वन में दावानल की तरह और समुद्र में वडवाग्नि की तरह राक्षसों के सैन्य में महावीर मारुति प्रकाशित होने लगा और पलभर में पराक्रमियों में चुडामणिओं समान पवनकुमार ने ज्यों अंधकार को सूर्य भगाए त्यों राक्षसो को नष्ट कर दिया।

राक्षसों के भंग से क्रोध पाया हुआ **कुंभकर्ण** मानो भूमि पर आया इशानेन्द्र हो त्यों स्वयंमेव युद्ध करने दौडा। किसिको चरणप्रहार से, किसिको मुष्टिघात से, किसिको कोनीप्रहार से, किसिको झापट से, किसिको मुद्गरप्रहार से, किसिको त्रिशूल से और किसिको परस्पर टकराकर - इस प्रकार अनेक तरिकों से उसने कपियों का वध करना शुरु किया। कल्पांतकाल के समुद्र जैसे रावण के तपस्वी बंधु कुंभकर्ण को रण में आया देखकर सुग्रीव उसके सामने दौडा, और भामण्डल, दधिमुख, महेन्द्र, कुमुद, अंगद और अन्य कपिवीर भी अग्नि की तरह

१. कुत्सित वचन बोलनेवाला।

प्रज्वलित होकर रणभूमि मे दौडे आये। विचित्र अस्त्रों को एकसाथ बरसाते हुए श्रेष्ठ वानरों ने आकर ज्यों शिकारी शेर को रोके त्यों कुभकर्ण को रोक लिया। मानो दूसरी कालरात्रि हो त्यों कुंभकर्ण ने तत्काल मुनि के वाक्य जैसा अमोघ **प्रस्वापन** नाम का अस्त्र उन पर छोडा, जिससे दिन में कुमुदिनी के खंड की तरह अपने सैन्य को निद्रा पाया देखकर सुग्रीव ने **प्रबोधिनी** नाम की महाविद्या का स्मरण किया, तो उसके प्रभाव से 'अरे ! कुंभकर्ण कहां है ?' ऐसा कहते हुए और कोलाहल मचाते हुए वानर सुभट प्रातःकाल के पक्षियों की तरह निद्रा से जाग उठे। फिर अच्छी तरह युद्ध करनेवाले सुग्रीवाधिष्ठित कपिकुंजर कान तक धनुष्य तानकर कुंभकर्ण को उपद्रव करने लगे और रोगों को ज्यों वैद्य हणे (नाश करे) त्यों सुग्रीव ने कुंभकर्ण के सारथि, रथ और अश्वों को गदा से हण डाला। भूमि पर पडा कुंभकर्ण हाथ में मुद्गर लेकर मानो एक शिखरवाला गिरि हो त्यों दिखते हुए सुग्रीव पर दौडा। युद्ध करने के लिए दौडे आ रहे उस कुंभकर्ण के अंग को बड़े पवन से हाथी के स्पर्श से वृक्ष की तरह कइं कपि गिर गये। स्थल में नदी के वेग की तरह कपियों से स्खलना पाये बिना दौडते ऐसे उसने मुदगर से सुग्रीव के रथ को चूर्ण कर डाला। फिर इन्द्र ज्यों पर्वत पर वज्र डाले त्यों सुग्रीव ने आकाश में उड़कर कुंभकर्ण के उपर एक बड़ी शिला डाली। कुंभकर्ण ने मुद्गर से उस शिला के कण-कण को चूर्ण-चूर्ण कर डाला, जिससे मानो कपिओं को उत्पातदायी रजोवृष्टि (धूल) बताता हो त्यों वह दिखने लगा। फिर वाली के अनुजबंधु सुग्रीव ने तडतड शब्द करता हुआ महाउग्र विद्युत अस्त्र कुंभकर्ण पर छोडा। उस महाप्रचंड विद्युतदंड अस्त्र पर कुंभकर्ण ने अनेक अस्त्र छोडे, पर वे सब निष्फल हुए और जगत को भयंकर कल्पांतकाल में पर्वत की तरह कुंभकर्ण उस विद्युत दंडास्त्र के पात से पृथ्वी पर गिर पडा।

अपना भाई कुंभकर्ण मूर्छित होते ही भ्रूकुटि से भयंकर मुखवाला रावण मानो प्रत्यक्ष यमराज हो त्यों क्रोध से रणभूमि तरफ चला। उस समय **इन्द्रजित** ने आकर नमन करके कहा, 'हे स्वामी ! आपके रणभूमि में आते ही आपके समक्ष यम, वरुण, कुबर या इन्द्र भी ठहर न सके तो फिर यह वानर तो किस प्रकार खड़ा रहेगा ? इसलिए हे देव ! अभी आप रहने दो। मैं स्वयं ही जाकर मच्छर को मुष्टि द्वारा मारुं त्यों मार डालूंगा।' इस प्रकार कहकर रावण को मनाकर के महामानी इन्द्रजित बड़ा पराक्रम दिखाते हुए कपिसैन्य में घुसा। उस पराक्रमी वीर के आते ही ज्यों मेंढक सर्प का प्रवेश होते ही सरोवर को छोड़ दे त्यों कपियों ने रणभूमि को छोड़ दिया। वानरों को त्रस्त होता देखकर इन्द्रजित बोला, 'अरे वानरो ! खडे रहो, खडे रहो, मैं युद्ध नहीं करनेवाले को मारनेवाला नहीं हूँ। मैं रावण का पुत्र हूँ। मारुति और सुग्रीव कहां है ? अथवा उनसे काम चल जायगा, लेकिन वे शत्रुभाव रखनेवाले राम और लक्ष्मण कहां हैं ?' इस प्रकार गर्व से बोलते हुए और रोष से लाल नेत्रवाले इन्द्रजित ने सुग्रीव को युद्ध

करने के लिए बुलाया और अष्टापद के साथ अष्टापद की भाँति भामण्डल ने इन्द्रजित के छोटेभाई **मेघवाहन** के साथ युद्ध करना आरंभ किया। तीन लोक को भयंकर ऐसे वे मानो चार दिग्गजेन्द्र या चार सागर हो त्यों परस्पर टकराते हुए शोभा पाने लगे। उनके रथों के गमनागमन से पृथ्वी कंपायमान हो गई, पर्वत डोल उठे और महासागर भी क्षोभ पा गये। अति हस्तलाघवतावाले और अनाकुलपन से युद्ध करनेवाले उनके धनुष्य का आकर्षण और बाण के मोक्ष (छोडने) के बीच के समय का अंतर कुछ भी समज नहीं आता था। उन्होंने लोहमय शस्त्रो से और देवताधिष्ठित अस्त्रों से चिरकाल युद्ध किया, परंतु उनमें किसिने किसिका विजय नहीं किया। फिर इन्द्रजित और मेघवाहन ने क्रोधपूर्वक भामण्डल और सुग्रीव के उपर अति उग्र नागपाशास्त्र छोड़े। उससे वे ऐसे बंध गये कि श्वास लेने के लिए भी समर्थ नहीं रहे।

उस समय कुंभकर्ण को भी संज्ञा आयी, तो उसने तत्काल क्रोध से हनुमान पर गदा का प्रहार किया, जिससे हनुमान मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पडा। फिर सूंढ से हाथी की तरह उसने तक्षक नाग जैसी भुजाओं से उसे पकड़कर बगल में दबाया और वापस लौटा। उस समय विभीषण ने रामचंद्र को कहा, "हे स्वामी ! ये दोनों वीर[1] आपकी सेना में अति बलवान और बदन में नेत्र की तरह साररुप है। उन्हें रावण के पुत्र इन्द्रजित ने और मेघवाहन ने नागपाश से बाँध लिया है, लेकिन जब तक वे उनको लंका में न ले जाय, तब तक मैं जाकर उन्हें छुडा लाऊं, और हे रघुपति ! कुंभकर्ण ने हनुमान को अपनी बड़ी भुजाओं में बाध लिया है इसलिए उसे भी लंकापुरी में ले जाने से पहले ही छुडा लाना जरुरी है। हे प्रभु ! सुग्रीव, भामण्डल और हनुमान के बिना हमारा पूरा सैन्य वीरविहीन ही है, इसलिए मुझे आज्ञा दो, जिससे मैं उनको ले आऊं।" इस प्रकार विभीषण कहते थे कि रणचतुर ऐसा **अंगद** वीर वेग से दौडकर कुंभकर्ण के साथ आक्षेपपूर्वक युद्ध करने लगा। क्रोधांधता से कुभकर्ण ने अपना हाथ ऊंचा किया तो मारुति वीर पिंजरे में से पक्षी की तरह उसके भुजपाश में से उड़कर निकल गया। फिर भामण्डल और सुग्रीव को छुडाने के लिए विभीषण रथ में बैठकर रावण के दोनों कुमारों के साथ युद्ध करने चला।

उस समय इन्द्रजित और मेघवाहन सोचने लगे कि, 'ये विभीषण हमारे पिता का अनुज बंधु होकर हमारे साथ युद्ध करने आ रहा है। ये चाचा हमारे पिता समान है, इसलिए उनके साथ हमें किस प्रकार युद्ध करना ? इसलिए यहां से खिसक जाना ही योग्य है। पूज्य बुझुर्ग के सम्मुख खिसक जाने में कुछ लज्जा नहीं है। पाश में बंधे हुए शत्रु जरुर मृत्यु पायेंगे, इसलिए उनको यहां छोडकर हम चले जाए; जिससे चाचा हमारे पास आये ही नहीं।' इस प्रकार

१. सुग्रीव और भामण्डल।

सोचकर वे बुद्धिमान इन्द्रजित और मेघवाहन रणभूमि में से खिसक गये, तो विभीषण भामंडल और सुग्रीव को देखते हुए वहीं खड़ा रहा। राम-लक्ष्मण भी हिम से आच्छादित शरीरवाले सूर्यचंद्र की तरह चिंता से म्लान मुखवाले होकर वहीं खड़े रहे। उस समय रामभद्र ने, पहले जिसने स्वयं को वरदान दिया था, ऐसे **महालोचन** नामके सुवर्णकुमार-निकाय के देव का स्मरण किया। उस देवता ने अवधिज्ञान से वह वृत्तांत जानकर वहां आकर पद्म को (रामचंद्र को) **सिंहनिनादा** नाम की विद्या, मूशल, रथ और हल दिये[1]। और लक्ष्मण को **गारुडी** विद्या, रथ और रण में शत्रुओं का नाश करनेवाली **विद्युद्वदना** नाम की गदा दी। इसके अलावा दोनों वीरों को वारुण, आग्नेय और वायव्य प्रमुख दूसरे दिव्य अस्त्र और दो छत्र दिये। फिर लक्ष्मण सुग्रीव और भामण्डल के पास गये। उनके आते ही उनके वाहनरुप गरुड को देखकर सुग्रीव और भामण्डल का नागपाश के सर्प तत्काल भाग गये। उस समय राम के सैन्य में चारोंओर जय जय शब्द की ध्वनि हुई और राक्षसों के सैन्य की तरह सूर्य भी अस्त पा गया।

तीसरे दिन प्रातःकाल में राम और रावण के सैन्य दुबारा सर्वबल से रणभूमि के आंगन में आये तो यमराज के दांत की तरह स्फुरायमान अस्त्रों से महाभयंकर और बेसमय प्रलयकाल के संवर्त्त मेघ समान बडा संग्राम हुआ। मध्याह्न काल के ताप से तप्त वराहों द्वारा तालाव की तरह क्रोध पाये राक्षसों ने वानरों की सेना को क्षोभ पहुँचाया। अपनी पूरी सेना भग्नप्रायः हुई देखकर दूसरे शरीर में योगी प्रवेश करें त्यों सुग्रीव वगैरह पराक्रमी वीरों ने राक्षसो की सेना में प्रवेश किया तो गरुडों से सर्पों की तरह और जल से कच्चे घड़े की तरह कपिश्वरों से आक्रांत हुए सर्व राक्षस पराभव पा गये। राक्षसों का भंग होता देखकर रावण स्वयं ही क्रोध करके अपने बडे रथ के प्रचार से मानो पृथ्वी को फाड डालता हो त्यों चला। दावानल की तरह वेग से बढ़ते उस रावण के आगे कपिवीरों में से कोई एक भी क्षणभर के लिए भी टिक नहीं पाया। इसलिए उस के सामने युद्ध करने चले राम को विनय से रोककर विभीषण ने आकर रावण को रोका। उसे देखकर रावण बोला, "अरे विभीषण ! तू किसके आश्रय में गया है कि जिसने इस रण में क्रोध पाये मेरे मुख में प्रथम ग्रास की तरह तुझे डाल दिया ? शिकारी ज्यों सूअर पर श्वान को भेजे त्यों तुझे मेरे पर भेजते हुए उस आत्मरक्षा करनेवाले राम ने बड़ा अच्छा विचार किया लगता है। हे वत्स ! आज तक तेरे पर मेरा वात्सल्य है, इसलिए तू तुरंत से चला जा। आज मैं उस राम-लक्ष्मण को सैन्य सहित मार डालूंगा, इसलिए उन मरनेवालों में तू संख्या बढ़ानेवाला मत बन। तू हर्ष से स्वस्थान पर चले जा। अभी तक तेरे पृष्ठ पर मेरा हाथ है।" रावण के ऐसे वचन सुनकर विभीषण बोला, "अरे अज्ञ (अज्ञानी) ! राम यमराज की तरह क्रोध करके तेरे पर आ रहे थे, लेकिन मैंने ही उनको बहाना करके

१. मूशल और हल - ये बलदेव के मुख्य शस्त्र हैं।

अटकाया है, और युद्ध के बहाने तुझे बोध देने के लिए मैं यहां आया हूँ, इसलिए अब भी तू सीता को छोड़ दे, प्रसन्न होकर मेरा वचन मान। अरे दशानन ! मैं मृत्युभय से या राज्यलोभ से राम के पास नहीं आया। लेकिन मात्र अपवादभय से ही आया हूँ। इसलिए यदि तू सीता को वापस अर्पण करके उस अपवाद को टाल दे तो मैं राम को छोड़कर तुरंत ही तेरा आश्रय करूं।'' उसके ऐसे वचन सुनकर रावण क्रोध से बोला, 'अरे दुबुर्द्धि और भीरु विभीषण ! क्या तू अभी भी मुझे डराता है ? मैं तो सिर्फ भ्रातृहत्या के भय से ही तुझे इस प्रकार कहा था। मेरा दूसरा कोई हेतु न था।' इस प्रकार कहकर रावण ने तुरंत ही धनुष्य का आस्फालन किया। विभीषण बोला, 'मैंने भी भातृहत्या के भय से ही इस प्रकार कहा है। मेरा भी दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है।' यूं कहकर विभीषण ने भी धनुष्य का आस्फालन किया। फिर विचित्र प्रकार के अस्त्रों को खींचते और निरंतर बरसाते वे दोनों भाई उद्धतापूर्वक युद्ध करने में प्रवृत्त हुए। उस समय इन्द्रजित, कुंभकर्ण और अन्य राक्षस भी मानो यमराज के किंकर (नोकर) हो त्यों स्वामीभक्ति से वहां दौडे आये। कुंभकर्ण के सामने राम, ईन्द्रजित के सामने लक्ष्मण, सिंहजधन के सामने नील, घटोदर के सामने दुर्मर्ष, दुर्मति के सामने स्वयंभू, शंभु के सामने नल, मय राक्षस के सामने अंग़द, चंद्रनख के सामने स्कंद, विघ्न के सामने चंद्रोदर का पुत्र, केतु के सामने भामण्डल, जंबूमालि के सामने श्रीदत्त, कुंभकर्ण के पुत्र कुंभ के सामने हनुमान, सुमाली के सामने सुग्रीव, धूम्राक्ष के सामने कुंद और सारण राक्षस के सामने वाली का पुत्र चंद्ररश्मि - इस तरह दूसरे राक्षसों के सामने दूसरे कपि समुद्र में मगर के साथ मगर की तरह उच्च प्रकार का युद्ध करने लगे। इस प्रकार भयंकर से भी भयंकर ऐसा युद्ध चल रहा था। इन्द्रजित ने क्रोध करके लक्ष्मण पर तामस अस्त्र छोडा। शत्रु को तप्त करनेवाले लक्ष्मण ने अग्नि ज्यों मोम के पिंड को गला डाले त्यों पवनास्त्र से उस अस्त्र को गला दिया। फिर क्रोध से इन्द्रजित पर लक्ष्मण ने नागपाशास्त्र छोडा, जिससे जल में हस्ती ज्यों तंतु से बंध जाय त्यों इन्द्रजित उससे बंध गया। नागास्त्र से जिसके सर्व अंग बंधे हुए हैं, ऐसा इन्द्रजित वज्र की भाँति पृथ्वी को फाडते हुए नीचे गिरा, तो लक्ष्मण की आज्ञा से विराध ने उसे उठाकर अपने रथ में डाला और कारागृह के रक्षक की तरह त्वरा से अपनी छावनी में ले गया। राम ने भी नागपाश से कुंभकर्ण को बांध लिया, और राम की आज्ञा से भामण्डल उसे छावनी में ले गया। दूसरे भी मेघवाहन वगैरह योद्धाओं को राम के सुभट बांध बांधकर अपनी छावनी में ले गये।

इस घटना को देखकर रावण ने क्रोध और शोक से आकुल-व्याकुल होकर विभीषण पर जयलक्ष्मी के मूल जैसा त्रिशूल छोडा। उसे लक्ष्मण ने अपने तीक्ष्ण बाणों से कदलीखंड की भाँति अंतराल (बीच) में से ही कण कण में विशीर्ण कर डाला। फिर विजयार्थी ऐसे रावण ने धरणेन्द्र द्वारा दी हुई **अमोघविजया** नाम की शक्ति को हाथ में ली, और धगधग शब्द से प्रज्वलित होती

एवं तडतड करती शक्ति को प्रलयकाल के मेघ की विद्युतलेखाओं की तरह वह उसे आकाश में घूमाने लगा। उसे देखकर देवता भी आकाश में से खिसक गये। सैनिकों ने नेत्र मींच दिये और कोई भी स्वस्थ होकर खडा न रह सका। उस समय राम ने लक्ष्मण को कहा, 'हमारा आगंतुक ऐसा विभीषण यदि इस शक्ति से मारा जायगा तो इस आश्रित का घात करनेवाले हमको धिक्कार है !' राम के ऐसे वचन सुनकर मित्रवत्सल सौमित्रि (लक्ष्मण) विभीषण के आगे जाकर रावण पर आक्षेप करके खड़े रहे। गरुड पर बैठे हुए लक्ष्मण को आगे आया देखकर रावण ने कहा, 'अरे लक्ष्मण ! यह शक्ति मैंने तुझे मारने के लिए तैयार नहीं की, इसलिए तू अन्य के मृत्यु में आडे मत आ, अथवा तू भी मर जा, क्योंकि तू भी मेरे मारने योग्य है ही, और तेरे आश्रय में आया यह विभीषण रंक होकर मेरे सम्मुख खडा रहा है।' इस प्रकार कहकर रावण ने उत्पातवज्र जैसी वह शक्ति हाथ में घूमाकर लक्ष्मण पर डाली। लक्ष्मण पर आती उस शक्ति के उपर सुग्रीव, हनुमान, नल, भामण्डल, विराध और अन्य वीरों ने अपने अपने अनेक प्रकार के अस्त्रों से ताडन किया, लेकिन उन्मत्त हाथी ज्यों अंकुश की अवज्ञा करे त्यों सर्व अस्त्रों के समूह की अवज्ञा करके वह शक्ति समुद्र में वडवाग्नि की भाँति लक्ष्मण के उरस्थल पर पडी। जिससे चोट खाकर लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर गये, और उनके सैन्य में चारोंओर बड़ा हाहाकार मच गया। राम को तत्काल अत्यंत क्रोध चढा, जिससे पंचानन रथ में बैठकर उसे मारने की इच्छा से वे रावण के साथ युद्ध करने लगे। पलभर में ही उन्होंने रावण को रथविहीन कर दिया, तो रावण तेजी से दूसरे रथ पर बैठा। जगत में अद्वैत पराक्रमवाले राम ने इस प्रकार पांच बार उसका रथ तोडकर रावण को विरथ किया। उस समय रावण ने सोचा, 'यह राम अपने बंधु लक्ष्मण के स्नेह से स्वयंमेव मर जायेगा तो मुझे इस समय व्यर्थ ही क्यों उसके साथ युद्ध करना ?' ऐसा सोचकर रावण वापस लंका में आया और राम के शोक से आतुर बना हो त्यों सूर्य अस्त पा गया।

रावण भाग गया तो राम वापस लौटकर लक्ष्मण के पास आये। वहाँ वे लक्ष्मण को मूर्छित देखकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सुग्रिव वगैरह ने आकर राम के उपर चंदनजल से सिंचन किया तो उन्हें होश आया। फिर राम लक्ष्मण के पास बैठकर रुदन करते हुए इस प्रकार बोलने लगे, "हे वत्स ! तूजे क्या पीडा होती है ? कह, तूने मौन क्यों धरा है ? संज्ञा से भी बता, और तेरे अग्रबंधु को खुश कर। हे प्रियदर्शन वीर ! यह सुग्रीव वगैरह तेरे अनुचर तेरे मुख सामने देख रहे हैं, उनको वाणी से या दृष्टि से क्यों अनुग्रहित नहीं करता ? 'रावण रण में से जीवित गया' ऐसी लज्जा से यदि तू न बोलता हो तो बोल, मैं तेरा मनोरथ पूरा करुंगा। अरे दुष्ट रावण ! खडा रह, खडा रह। तू कहां जाता है ? तूजे थोडे समय में ही मैं महामार्ग पर भिजवा दूंगा।" इस प्रकार कहकर राम धनुष्य का आस्फालन करके खडे हुए कि तुरंत ही सुग्रीव ने

आकर विनयपूर्वक कहा, "स्वामी ! यह रात्रि है, निशाचर रावण लंका में चला गया है और हमारे स्वामी ये लक्ष्मण शक्ति के प्रहार से घायल हुए हैं। इसलिए धीरज रखो, अब रावण को मरा हुआ ही जान लो, परंतु इस समय तो लक्ष्मण को जाग्रत करने का उपाय बताओ।" फिर राम बोले, "अरे ! स्त्री का हरण हुआ और अनुज बंधु लक्ष्मण मारा गया फिर भी यह राम अब तक जीवित रहा है ? वह क्यों सेंकड़ो प्रकार से विदीर्ण नहीं होता ? हे मित्र सुग्रीव ! हे हनुमान ! हे भामण्डल ! हे नल ! हे अंगद ! हे विराध वगैरह सर्व वीर ! अब आप अपने अपने स्थानक पर चले जाओ। हे मित्र विभीषण ! आपको मैंने कृतार्थ नहीं किया, वह मेरे सीता के हरण से और लक्ष्मण के वध से भी अधिक शोक के लिए है, इसलिए हे बंधु ! कल प्रातःकाल में तुम्हारे बंधुरुप बैरी ऐसे रावण को मेरे बांधव लक्ष्मण के मार्ग पर जाता हुआ देखोगे। फिर उनको कृतार्थ करके मैं भी मेरे अनुज बंधु लक्ष्मण के पीछे जाऊंगा, क्योंकि लक्ष्मण के बिना मुझे सीता और जीवन क्या काम के हैं ?" विभीषण ने कहा, "हे प्रभु ! ऐसा अधैर्य क्यों रखते हो ? इस शक्ति से मारा गया पुरुष एक रात्रि तक जीवित रहता है, इसलिए जब तक यह रात्रि व्यतीत न हो जाय तब तक मंत्र, तंत्र वगैरह से लक्ष्मण के घात का प्रतिकार करने का प्रयत्न करो।" राम ने ऐसा करना कबूल किया, तो सुग्रीव वगैरह कपियों ने विद्या के बल से राम-लक्ष्मण के आस पास चार चार द्वारवाले सात किल्ले कर दिये। फिर पूर्व दिशा के द्वार पर क्रमशः सुग्रीव, हनुमान, तार, कुंद, दधिमुख, गवाक्ष और गवय रहे। उत्तर दिशा के द्वार पर अंगद, कूर्म, अंग, महेन्द्र, विहंगम, सुषेण और चंद्ररश्मि वगैरह क्रमशः रहे। पश्चिम दिशा के द्वार पर नील, समरशील, दुर्धर, मन्मथ, जय, विजय और संभव रहे, और दक्षिण दिशा के द्वार पर भामण्डल, विराध, गज, भुवनजित, नल, मैंद और विभीषण रहे। राम और लक्ष्मण को बीच में रखकर सुग्रीव वगैरह राजा आत्माराम हो त्यों उद्यमपूर्वक जाग्रत होकर रहने लगे।

इस अवसर पर किसिने जाकर सीता को कहा कि, 'रावण की शक्ति से लक्ष्मण मारे गये हैं और भाई के स्नेह के कारण रामभद्र भी प्रातःकाल में मृत्यु पायेंगे।' वज्र के निर्घोष (वाणी) जैसे ये भयंकर समाचार सुनकर पवन से मरी हुई लता की तरह सीता मूर्च्छा पाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। विद्याधरियों ने जल से सिंचन किया तो सीता सचेतन हुई। फिर बैठी होकर करुण स्वर में विलाप करने लगी कि "हा वत्स लक्ष्मण ! आपके अग्रजबंधु को अकेला छोड़कर आप कहां चले गये ? आपके बिना एक मुहूर्त भी रहने में वह समर्थ नहीं है। मुज मंदभागि को भी धिक्कार है कि जिसके लिए मेरे दैव जेसे स्वामी और देवर को ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ। हे पृथ्वी ! मुझ पर प्रसन्न हो और मेरे प्रवेश के लिए तू दो भाग में होकर मुझे मार्ग दे, अथवा हे हृदय ! प्राण को निकलने के लिए तू दो भाग में बँट जा।" इस प्रकार करुण स्वर में विलाप

करती हुई सीता को देखकर एक कृपाली विद्याधरी अवलोकिनी विद्या द्वारा देखकर बोली, 'हे देवी ! आपके देवर लक्ष्मण प्रातःकाल में अक्षतांग होंगे और रामभद्र सहित यहां आकर आपको आनंद पहुँचायेंगे।' उसकी ऐसी वाणी सुनकर सीता स्वस्थ हुई और चक्रवाकी की तरह सूर्योदय की राह देखते हुई जाग्रत रहीं। 'आज लक्ष्मण को मारा है' ऐसा जानकर रावण पलभर के लिए हर्ष पाया। क्षणभर के बाद वापस अपने भाई, पुत्रों और बंधुओं को याद करके रुदन करने लगा, ''हा वत्स कुंभकर्ण ! तूं मेरी दूसरी आत्मा ही था। हा पुत्र इन्द्रजित और मेघवाहन ! तुम मेरे दूसरे दो बाहु ही थे। हा वत्स जंबूमालि वगैरह वीर ! आप मेरे रुपांतर जैसे ही थे। अरे ! आप गजेन्द्रों की तरह पूर्व में अप्राप्त ऐसे बंधन को क्यों प्राप्त हुए ?'' इस प्रकार अपने बंधुओं के नये नये स्नेह के कारणों का बार बार स्मरण करके रावण बार बार मूर्च्छा पाने लगा और रुदन करने लगा।

उस समय राम के सैन्य में पहले किल्ले के दक्षिण द्वार के रक्षक भामण्डल के पास आकर कोई विद्याधर कहने लगा, 'यदि आप राम के पूरे हितकारी हो तो मुझे राम के दर्शन कराओ। मैं लक्ष्मण के जीवित रहने का उपाय करुंगा, क्योंकि मैं आपका हितकारी हूँ।' यह सुनकर भामण्डल तत्काल उसे भुजा से पकड़कर राम के पास ले गया। तो उसने प्रणाम करके विज्ञप्ति की कि,

''हे स्वामी ! संगीतपुर के राजा **शशीमण्डल** का **प्रतिचन्द्र** नाम का मैं पुत्र हूँ। मेरा जन्म **सुप्रभा** रानी की कुक्षि से हुआ है। एक बार मैं स्त्री सहित क्रीडा करने के लिए आकाशमार्ग से जा रहा था, कि **सहस्त्रविजय** नाम के विद्याधर ने मुझे देखा। उसने मैथुन संबंधी बैर से मेरे साथ चिरकाल युद्ध किया। अंत में चंडरवा शक्ति मारकर उसने मुझे पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय अयोध्यापुरी के **माहेन्द्रोदय** नाम के उद्यान में मुझे पृथ्वी पर लौटते हुए आप के कृपालुबंधु भरत ने देखा। तो तत्काल उन्होंने किसी सुगंधित जल से मुझे सिंचित किया, जिससे परग्रह में से चोर निकले त्यों मेरे शरीर में से वह शक्ति बाहर निकल गई और तुरंत मेरा घा भी भरा गया। मैंने आश्चर्य पाकर उस सुगंधित जल का माहात्म्य आपके अनुज बंधु को पूछा, तो वे बोले, 'एक बार विंध्य नाम का सार्थवाह गजपुर से यहा आया। उसके साथ एक महिष था। वह अतिभार से मार्ग में टूट पड़ा। नगर के लोग उसके मस्तक पर पैर रखकर जाने लगे। उपद्रव से पीडित वह महिष मृत्यु पा गया और अकाम निर्जरा के योग से **श्वेतंकर**[1] नगर के राजा **पवनपुत्रक** नाम का वायुकुमार देव बना। अवधिज्ञान से पूर्व में हुई अपनी कष्टदायी मृत्यु जानकर उसे कोप चढ़ा, जिससे उसने मेरे नगर में और देश में विविध प्रकार

१. यह नगर भुवनपति संबंधित लगता है।

की व्याधियाँ उत्पन्न की, लेकिन एक **द्रोणमेघ** नाम का राजा मेरा मामा था, वह मेरी भूमि में रहता था। फिर भी उसके देश के ग्रह (घर) में व्याधि उत्पन्न नहीं हुई इसलिए मैंने व्याधि नहीं होने का कारण पूछा, तो द्रोणमेघ ने कहा, 'मेरी **प्रियंकरा** नाम की रानी पहले रोग से अत्यंत पीडा पा रही थी। एक बार उसे गर्भ ठहरा, उसके प्रभाव से वह व्याधिमुक्त हो गयी। क्रमशः **विशल्या** नाम की एक पुत्री को उसने जन्म दिया। एक बार आपके देश की तरह मेरे देश में भी व्याधियों का उपद्रव उत्पन्न होने पर उस विशल्या के स्नानजल से सिंचन करने पर लोग निरोगी हो गये। एक बार **सत्यभूति** नाम के चारण मुनि को मैंने उसका कारण पूछा, तो उन्होंने विशल्या के पूर्वजन्म के तप का फल है ऐसा कहा। और विशेष में कहा कि 'इस विशल्या के स्नानजल से व्रण (घाव) का संरोहण, शल्य का अपहार और व्याधि का क्षय होगा, व राम के अनुज बंधु लक्ष्मण उसके पति होंगे।' उस मुनि की वाणी से, सम्यक् ज्ञान से और अनुभव से भी उस विशल्या के स्नानजल के प्रभाव के बारे में मुझे निश्चय हुआ है।' इस प्रकार कहकर मेरे मामा **द्रोणमेघ** ने मुझे विशल्या का स्नानजल अर्पण किया, जिसके सिंचन से मेरी भूमि भी निरोगी हो गयी। उसी स्नानजल से मैंने आपको सिंचित किया, जिससे आप शक्तिशल्यरहित हो गये और क्षणभर में आपके व्रण भी भरा गये।' इस प्रकार मुझे और भरत को उसकी प्रतीति हुई है इसलिए प्रातःकाल होने से पहले उस विशल्या का स्नानजल लाइये। अब शीघ्रता कीजिए। प्रातःकाल हो जाने के बाद क्या कर सकोगे ? शकट (गाडा) बिखर जाने के बाद गणेश क्या कर सकेंगे ?''

यह सुनकर राम ने विशल्या का स्नानजल लाने के लिए भामण्डल, हनुमान और अंगद को शीघ्रता से भरत के पास जाने की आज्ञा दी। वे पवन जेसे वेग से विमान में बैठकर अयोध्या आ पहुँचे। राजमहल पर भरत को सोते देखा। भरत को जगाने के लिए उन्होंने आकाश में रहकर गान करना शुरु किया। ''राज्यकार्य के लिए किसी भी उपाय से राजाओं को जगाना चाहिए।'' गान के स्वर से भरत जाग गये, तो अपने समीप नमस्कार करते हुए भामण्डल वगैरह को देखा। अचानक रात्रि में आने का कारण पूछने पर उन्होंने अपना कार्य बताया। ''आप्तजन के समक्ष आप्तजन को कुछ गुप्त रखना नहीं पड़ता।'' फिर 'मेरे वहाँ जाने से ही कार्य सिद्ध होगा' ऐसा सोचकर भरत उनके विमान में बैठकर कौतुकमंगल नगर आये। वहाँ भरत ने द्रोणमेघ से विशल्या की मांग की, तो उसने एक हजार अन्य कन्याओं सहित लक्ष्मण के साथ विवाह करके विशल्या को दी।

फिर भामण्डल वगैरह बड़ी शीघ्रता से भरत को अयोध्या में छोडकर, परिवार सहित विशल्या को लेकर राम के पास पहुँचे। प्रज्वलित दीपकवाले विमान में बैठकर आते भामण्डल

को देखकर पहले तो पलभर के लिए सूर्योदय के भ्रम से सब भय पा गये, इतने में तो भामण्डल ने आकर विशल्या को लक्ष्मण के पास छोडा। उसने लक्ष्मण को करस्पर्श किया, तो तत्काल लकड़ी से सर्पिणी छटककर निकले त्यों लक्ष्मण के शरीर में से महाशक्ति बाहर निकली। उस समय बाज़ पक्षी ज्यों चिडिया को पकडे त्यों आकाश में उछलती उस शक्ति को हनुमान ने छलांग लगाकर पकड़ ली। शक्ति बोली, "मैं देवतारुपी हूँ। मेरा इसमें कोई दोष नहीं है। मैं प्रज्ञप्तिविद्या की बहन हूँ और धरणेन्द्र ने मुझे रावण को दिया है। विशल्या के पूर्वभव के तप-तेज को सहन करने में मैं असमर्थ हूँ, इसलिए मैं चली जा रही हूँ। सेवक की तरह मैं निरपराधी हूँ, इसलिए मुझे छोड़ दो।" इस प्रकार शक्ति के कहने से वीर हनुमान ने उसे छोड़ दिया। छोडने मात्र में ही वह शक्ति मानो लज्जा पा गयी हो त्यों अदृश्य हो गयी। विशल्या ने दुबारा लक्ष्मण को करस्पर्श किया और धीरे धीरे गोशीर्षचन्दन का विलेपन किया। तत्काल घाव भरा जाने से लक्ष्मण निद्रा में से उठे हो त्यों बैठे हुए। रामभद्र ने हर्षाश्रु बहाते हुए अपने अनुजबंधु को आलिंगन दिया। फिर राम ने विशल्या का सर्व वृत्तांत लक्ष्मण को बताया और उसके स्नानजल का अपने और पराये - सभी घायल सैनिकों पर अभिसिंचन किया। फिर राम की आज्ञा से उसी समय एक हजार कन्या सहित विशल्या से लक्ष्मण विधिपूर्वक ब्याहे। विद्याधरों ने लक्ष्मण के नवीन जीवन का और विवाह का उत्साहपूर्वक जगत को आश्चर्यकारी उत्सव किया।

'लक्ष्मण सजीवन हुए' ऐसी खबर गुप्तचरों से सुनकर रावण अपने उत्तम सचिवों के साथ विचार करने लगा। रावण बोला, "मेरा ऐसा भाव था कि मेरी शक्ति से घायल बना लक्ष्मण प्रातःकाल में मृत्यु पायेगा। उसके पीछे उसके स्नेह से पीडित राम भी मर जायेगा। फिर कपि सब भाग कर चले जायेंगे, और कुंभकर्ण, इन्द्रजित वगैरह मेरे बंधु - पुत्र स्वयंमेव मेरे पास आयेंगे। लेकिन इस समय तो दैव की विचित्रता से लक्ष्मण तो सजीवन हुआ, तो अब कुंभकर्ण वगैरह को मुझे किस प्रकार से छुडवाने ?" सचिव बोले, "सीता को छोडे बिना, कुंभकर्ण वगैरह वीरों का छुटकारा नहीं होगा, लेकिन उलटा अशिव होगा। हे स्वामी ! इतने वीर तो चले गये तो चले गये, लेकिन अब तो हमारे कुल की रक्षा करें ! इसमें राम का अनुनय (विनय) किए बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है।" सचिवों के ऐसे वचन रावण को जँचे नहीं। इसलिए उनकी अवज्ञा करके अपने एक **सामंत** नाम के दूत को आज्ञा दी कि, 'राम के पास जाकर साम, दाम, और दंड पूर्वक उसे समजाकर आ।'

दूत राम की छावनी में आया और द्वारपाल को विज्ञप्ति करने द्वारा अंदर प्रवेश करके सुग्रीवादिक से घिरे राम को नमस्कार करके, धीर वाणी से इस प्रकार बोला, "महाराज रावण ने कहलवाया है कि मेरे बंधुवर्ग को छोड़ दो। सीता मुझे देने में संमति दो और मेरा आधा

राज्य ग्रहण करो। मैं आपको तीन हजार कन्या दूंगा। इतने से संतोष मानो, नहींतो फिर तुम्हारा पूरा सैन्य और जीवन कुछ भी नहीं रहनेवाला।'' पद्मनाभ (राम) बोले, ''मुझे राज्यसंपत्ति का प्रयोजन नहीं है। एवं अन्य स्त्रियों का या बडे भोग का भी प्रयोजन नहीं है। यदि रावण सिर्फ सीता का पूजन करके यहाँ भेजेगा, तो मैं उसके बंधु और पुत्रों को छोड़ दूंगा। अन्यथा छोडूंगा नहीं।'' सामंत बोला, ''हे रामभद्र ! आपको इस प्रकार करना योग्य नहीं है। मात्र एक स्त्री के लिए प्राणसंशय में क्यों पडते हो ? रावण द्वारा मारे गये लक्ष्मण एक बार सजीवन हुए, लेकिन दुबारा लक्ष्मण, आप और यह वानर किस प्रकार जी सकोगे ? अकेला रावण इस समग्र विश्व को मारने में समर्थ है। इसलिए उसका वचन सर्वथा मान्य करना चाहिए। नहीं मानोगे तो उसका परिणाम सोचो।''

सामंत के ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मण क्रोध से बोल उठा, ''अरे अधम दूत ! अब तक रावण अपनी और दूसरे की शक्ति को जानता नहीं, उसका पूरा परिवार मारा गया और बांधा गया। मात्र उसकी स्त्रियां ही बाकी रही, फिर भी वह अब तक स्वमुख से अपना पराक्रम बताया करता है, यह उसकी कैसी धीठता ! एक मूलरुप मूशल अवशेष रहा हो और अशेष जटा (शाखा) छिद गई हो ऐसे वटवृक्ष की तरह वह रावण अब एक अंग से रहा है, तो अब वह कितनी देर रह सकेगा ? इसलिए अब तू तत्काल जा और रावण को युद्ध करने के लिए भेज। उसे मारने के लिए मेरा भुज तैयार हो रहा है।'' इस प्रकार लक्ष्मण ने आक्षेप किया तो उसके उत्तर में सामंत बोलने जा रहा था कि, वानरों ने उठकर उसे गले से पकड़कर निकाल दिया। सामंत ने राम और लक्ष्मण के संपूर्ण वचन रावण को कहे। फिर रावण ने सचिवों को पूछा कि, 'कहिए, अब क्या करना ?' सचिव बोले, ''सीता को अर्पण करना ही उचित है। आपने व्यतिरेक[1] फल तो देख लिया। अब तो अन्वय[2] फल तो देखो। अन्वय और व्यतिरेक से सब कार्य की परीक्षा होती है। इसलिए हे राजा ! आप अकेले व्यतिरेक में ही क्यों लगे रहते हो ? आज तक आपके कइं बंधु और पुत्र अक्षत हैं, तो सीता को अर्पण करके उनके साथ इस राज्यसंपत्ति से वृद्धि पाओ।'' सचिवों के मुख से इस प्रकार सीता के अर्पण की वाणी सुनकर मानो मर्मस्नेह हणा गया (घाव लगा) हो त्यों रावण अंतर में बडा ही दुःखी हुआ और चिरकाल तक स्वयंमेव चिंतन करने लगा। फिर **बहुरुपा** विद्या को साधने का हृदय में निश्चय करके कषाय शांत करके शांतिनाथ के चैत्य में गया। भक्ति से जिसका मुख विकसित हुआ है, ऐसे रावण ने इन्द्र की तरह जलकलशों में से श्री शांतिनाथ का स्नात्र किया और गौशीर्ष चन्दन से विलेपन करके दिव्य पुष्पों से पूजा की। फिर श्री शांतिनाथ की इस प्रकार से स्तुति करने लगा-

१. विपरीत आचरण का फल। २. अनुकूल आचरण का फल।

"देवाधिदेव, जगत के त्राता ! और परमात्मारुप ! सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ प्रभु को मेरे नमस्कार हो ! इस संसारसमुद्र से तारनेवाले ऐसे हे शांतिनाथ भगवान ! सर्वार्थ सिद्धि के मंत्ररुप आपके नाम को भी बार बार नमस्कार है। हे प्रभु ! आपकी अष्ट प्रकार की पूजा जो करता है, उसके हाथ में अणिमा वगैरह आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती है। उन नेत्रों को धन्य है जो प्रतिदिन आपके दर्शन करते हैं। उससे भी उस हृदय को धन्य है कि जो नेत्र से देखे हुए आपको धारण कर रक्षता है। हे देव ! आपके चरणस्पर्श से ही प्राणी निर्मल होता है। क्या स्पर्शवेधी रस से लोहा भी सुवर्ण नहीं होता ? हे प्रभु ! आपके चरणकमल में प्रणाम से और आपके सम्मुख नित्य लोटने से मेरे ललाट पर आपके किरण की पंक्ति शृंगार तिलकरुप हो। हे प्रभु ! आपको उपहार किये हुए पुष्पगंधादिक पदार्थों से सदैव मेरी राज्यसंपत्तिरुप बेल (लता) का फल मुजे प्राप्त हो। हे जगतपति ! आपको बार बार यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जन्म-जन्मांतर में आपकी अत्यंत भक्ति प्राप्त हो।"

इस प्रकार श्री शांतिनाथ की स्तुति करके अक्षमाला को धारण करनेवाले रावण ने प्रभु के सम्मुख रत्नशिला पर बैठकर वह विद्या साधना आरंभ किया। मंदोदरी ने **यमदण्ड** नाम के द्वारपाल को कहा कि, 'सब पुरजन[1] आठ दिन तक जैनधर्म में तत्पर रहें ऐसा कह और जो ऐसा नहीं करेगा उसका वध किया जायेगा। इस प्रकार तू लंकापुरी में पडह बजवा।' मंदोदरी के आदेश से द्वारपाल ने उस प्रकार पूरी लंका नगरी में पडह बजवाकर आघोषणा करवाई। यह खबर गुप्तचरों ने आकर सुग्रीव को कही। सुग्रीव ने रामभद्र को कहा कि, 'हे प्रभु ! जब तक रावण बहुरुपा विद्या साध नहीं ले तब तक उसे साध्य कर लेना अच्छा है, क्योंकि तब तक ही वह साध्य है।' राम ने हँसकर कहा, 'ध्यानपरायण और शांत रावण को मैं किस तरह ग्रहण करुं ? मैं उसके जैसा कपटी नहीं हूँ।'

राम के ऐसे वचन सुनकर उनसे छिपकर अंगद वगैरह कपिवीर शांतिनाथ के चैत्य में रहे लंकापति को विद्या से भ्रष्ट करने के लिए वहाँ गये। उच्छृंखलतापूर्वक उन्होंने रावण को विविध प्रकार के उपसर्ग किए, फिर भी रावण थोडा सा भी ध्यानचलित नहीं हुआ। अंगद ने कहा, "अरे रावण ! तूने शरणरहित होकर, राम से भय पाकर, यह क्या पाखंड आरंभा है ? तूने हमारे स्वामी की परोक्ष में महासती सीता का हरण किया है, और हम तो तेरी इस पत्नी मंदोदरी का तेरी नजरों के समक्ष ही हरण करते है।" इस प्रकार कहकर बड़े रोषवाले उसने अनाथ टिटहरी की तरह करुण स्वर में रुदन करती मंदोदरी को केश से खिंचा, फिर भी ध्यान में लीन बने रावण ने उसके सामने देखा तक नहीं। उस समय आकाश को प्रकाशित

१. नगरनिवासी।

करती हुई बंहुरुपा विद्या प्रकट हुई। विद्या बोली, "अरे रावण ! मैं तुझे सिद्ध हो चूकी हूँ। कह, अब मैं क्या कार्य करुं ? मैं पूरा विश्व भी तेरे वश कर सकती हूँ, तो फिर यह रामभद्र लक्ष्मण तो क्या है ?" तब रावण ने कहा, "हे विद्या ! तूजसे संपूर्ण बात सिद्ध हो जाय त्यों है, परंतु जिस समय मैं स्मरण करुं, उस समय तू आना। अभी तो स्वस्थान पर जा।" फिर उसका कहा लक्ष्य में लेकर विद्या अदृश्य हो गयी और सर्व वानर पवन की भाँति उड़कर अपनी छावनी में आये।

रावण ने मंदोदरी और अंगद का पूरा वृत्तांत सुना, तो तत्काल उसने अहंकारगर्भित हुंकार शब्द किया। फिर स्नानभोजन करके वह देवरमण उद्यान में गया। वहां सीता को कहा, 'अरे सुंदरी ! मैंने लम्बे समय तक तेरा अनुनय (प्रार्थना) किया, अब नियमभंग का डर छोड़कर तेरे पति और देवर को मारकर मैं तेरे साथ जबरन क्रीडा करुंगा।' रावण की ऐसी विषभरी वाणी सुनकर रावण की आशा की तरह जानकी मूर्च्छा खाकर भूमि पर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद किंचित संज्ञा पाकर सीता ने अभिग्रह लिया कि, 'यदि राम-लक्ष्मण का मरण हो तब से मुझे अनशन व्रत हो।' सीता का ऐसा अभिग्रह सुनकर रावण को विचार आया कि, "इस स्त्री का राम के स्वाभाविक स्नेह है, तो इसके साथ मुझे राग करना यह तो स्थल में कमल रोपने जैसा है। मैंने विभीषण की अवज्ञा करके अच्छा कार्य नहीं किया, और मैंने सचिवों का भी अपमान किया है, और मेरे कुल को भी कलंकित किया है, परंतु यदि इस समय मैं सीता को छोड दूं तो वह विवेक नहीं होगा, परंतु उलटे ही 'राम से दबकर सीता को दे दिया' ऐसा अपयश प्राप्त होगा। इसलिए राम-लक्ष्मण को बांधकर यहां ले आऊं और फिर उन्हें यह सीता अर्पण करुं तो वह कार्य धर्म और यश को बढ़ानेवाला होगा।" ऐसा निश्चय करके दुर्मद रावण वह रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल में अपसगुनों ने रोका, फिर भी युद्ध करने चला।

राम और रावण के सैन्य में उग्र सुभटों की भुजा के आस्फोट से दिग्गजों को त्रस्त करता हुआ बड़ा युद्ध दुबारा शुरु हुआ। रुई को पवन की भाँति सब राक्षसों को मार्ग में से दूर करके लक्ष्मण रावण पर ही बाण छोड़ने लगे। लक्ष्मण का पराक्रम देखकर रावण को अपनी जय में संदेह हुआ, जिससे तत्काल, विश्व को भयंकर ऐसी बहुरुपा विद्या का उसने स्मरण किया। स्मरण करते ही वह विद्या आकर खड़ी रही। उसके द्वारा रावण ने तुरंत ही महाभयंकर अनेक रुप रचे। भूमि पर, आकाश में, पृष्ठ भाग में, अग्र भाग में, और दोनों ओर विविध प्रकार के आयुधों को बरसाते हुए अनेक रावण लक्ष्मण को नज़र आये। लक्ष्मण अकेले होने पर भी मानो उतने रुप धरे हो त्यों गरुड पर बैठकर इच्छाबुसार प्राप्त होते बाणों से अनेक रावणों को मारने लगे। वासुदेव लक्ष्मण के बाणों से रावण बेचैन हो गया। तो उसने अर्धचक्री के चिह्नरुप

जाज्वल्यमान चक्र का स्मरण किया। चक्र प्रकट होते ही रोषपूर्वक लाल नेत्र करके उसने आखिरी चक्ररुपी शस्त्र को आकाश में घुमाकर उसने लक्ष्मण पर छोड़ा। वह चक्र लक्ष्मण को प्रदक्षिणा देकर उदयगिरि के शिखर पर सूर्य आये त्यों लक्ष्मण के दाहिने हाथ में आकर रहा। यह देखकर रावण खेद पाकर चिंता में पड़ा कि, 'मुनि का वचन सत्य हुआ तथा विभीषण वगैरह के विचार का निर्णय भी सत्य हुआ ! रावण को खेदयुक्त देखकर विभीषण ने कहा, 'हे भ्राता ! यदि जीने की इच्छा हो तो अब भी सीता को छोड़ दे।' रावण ने क्रोध से कहा, 'मुझे इस चक्र की क्या जरुरत है ? मैं एक मुष्टिमात्र से इस शत्रु का और चक्र का तत्काल नाश कर डालूंगा।' ऐसे गर्वयुक्त वचन बोलनेवाले रावण की छाती को लक्ष्मण ने तत्काल उस चक्र से ही काशीफल की तरह फाड डाली। उस समय ज्येष्ठ मास की कृष्ण एकादशी के दिन पिछले प्रहर में रावण मृत्यु पाकर चौथी नरक में गया। उस समय आकाश में जय जय शब्द करते हुए देवताओं ने लक्ष्मण के उपर पुष्पवृष्टि की और जिसमें बड़े हर्ष से उठे हुए किलकिल नाद से जो भूमि और अंतरिक्ष भरा गया है ऐसे कपियों का तांडवनृत्य होने लगा।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये
सप्तमे पर्वणि रावणवधो नाम सप्तमः सर्गः॥७॥

अष्टम सर्ग

राम द्वारा सीता का परित्याग

रावण की मृत्यु के बाद ज्ञातिस्नेह से वश बने विभीषण ने 'अब कहां भाग जाना ?' ऐसे भयभ्रांत होकर विचार करते हुए राक्षसों को इस प्रकार आश्वासन दिया कि, "हे राक्षसवीर ! यह राम और लक्ष्मण (पद्म और नारायण) आठवें बलदेव और वासुदेव हैं। वे शरण करने योग्य है, इसलिए निःशंक होकर उनकी शरण में जाओ।' विभीषण के ऐसे वचन से वे राम-लक्ष्मण की शरण में आये तो पद्म और नारायण ने उन पर कृपा की। वीर पुरुष प्रजा पर समदृष्टिवाले ही होते हैं।

अब विभीषण ने मृत्यु पाये अपने बंधु रावण को देखकर शोक के आवेश में मृत्यु की इच्छा से अपनी कटार खींची। उस कटार से अपने उदर में वह घाव कर ही रहा था, लेकिन 'हा भ्रात, हा भ्रात' यूं ऊंचे करुण स्वर में रुदन करते हुए विभीषण को राम ने एकदम पकड़ लिया। फिर मंदोदरी वगैरह के साथ रावण के समीप रुदन करते हुए विभीषण को राम-लक्ष्मण समजाने लगे, "हे विभीषण ! आपके ऐसे पराक्रमी बंधु रावण के लिए कुछ भी शोक करना योग्य नहीं है, क्योंकि जिसके साथ संग्राम करने में देवता भी दूर से ही संदेह पाते थे। ऐसी वीर वृत्ति से मृत्यु पाया आपका बंधु सचमुच कीर्ति का पात्र हुआ है। इसलिए अब तो उसका उत्तरकार्य अच्छी तरह से करों। रुदन करने से क्या होगा ?" इस प्रकार कहकर महात्मा पद्मनाभ ने (राम ने) बंधन पाए कुंभकर्ण, इन्द्रजित, मेघवाहन वगैरह को छोड़ दिया, फिर विभीषण, कुंभकर्ण, इन्द्रजित, मेघवाहन और मंदोदरी ने एवं दूसरे संबंधियों ने मिलकर अश्रुपात करते करते गोशीर्षचन्दन के काष्ठ की चिता रचकर कपूर तथा अगरुमिश्र प्रज्वलित अग्नि से रावण के अंग का अग्निसंस्कार किया। राम ने पद्मसरोवर पर आकर स्नान करके जरा उष्ण ऐसे अश्रुजल से रावण को जलांजलि दी। फिर मधुर वाणी से मानो अमृतरस बरसाते हो त्यों राम और लक्ष्मण ने कुंभकर्ण वगैरह को इस प्रकार कहा, 'हे वीरों ! पूर्व की भाँति आप अपना राज्य करो। आपकी लक्ष्मी हमें नहीं चाहिए। आपका कुशल हो।' इस प्रकार राम के कहने से एक साथ शोक और विस्मय को धारण करते हुए कुंभकर्णादिक गद्‌गद् स्वर में बोले, "हे महाभूज ! हमें बहुत बडे ऐसे इस राज्य की भी कुछ जरुरत नहीं। हम तो मोक्ष साम्राज्य को साधनेवाली दीक्षा लेंगे।"

इस अवसर पर **कुसुमायुध** उद्यान में **अप्रमेयबल** नाम के एक चतुर्ज्ञानी मुनि आये। उनको उसी जगह उसी रात्रि में उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवताओं ने आकर उनके केवलज्ञान की महिमा की। प्रातःकाल में राम, लक्ष्मण और कुंभकर्ण वगैरह ने आकर उनकी वंदना करके

धर्म सुना। देशना के अंत में **इन्द्रजित** और **मेघवाहन** ने परम वैराग्य पाकर अपना पूर्वभव पूछा।

मुनि बोले, "इस भरत क्षेत्र के **कौशांबी** नगर में आप **प्रथम** और **पश्चिम** नाम के दो निर्धन बंधु थे। एक बार **भवदत्त** नाम के मुनि से धर्म सुनकर आपने व्रत ग्रहण किया और कषाय शांत करके विहार करने लगे। एक बार वे दोनों मुनि घूमते घूमते वापस कौशांबी में आये। वहाँ वसंतोत्सव में **इन्दुमुखी** रानी के साथ क्रीडा करते हुए वहाँ का राजा **नंदिघोष** उनको नजर आया। उसे देखकर पश्चिम मुनि ने ऐसा संकल्प बाँधा कि 'इस तपस्या करने से मैं ऐसी क्रीडा करनेवाले इस राजा और रानी का ही पुत्र बनूं।' अन्य साधुओं ने बहुत रोका, फिर भी वे ऐसे संकल्प से निवृत्त नहीं हुए, जिससे वे पश्चिम मुनि **रतिवर्द्धन** नाम के उनके पुत्र हुए। क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ और राजा बना रतिवर्द्धन पिता की तरह रमणियों से घिरकर विविध प्रकार की क्रीडा करने लगा। प्रथम नाम के मुनि मृत्यु पाकर संकल्परहित तप के योग से पांचवें कल्प में परमार्द्धिक देव बने। अवधिज्ञान से अपने भाई पश्चिम को कौशांबी नगरी में राजा रुप में उत्पन्न हुआ जानकर उसे बोध करने के लिए वह देव मुनिरुप में वहाँ आया। रतिवर्द्धन राजा ने उसे आसन दिया तो उस पर बैठकर भ्रातृसौहृद[1] के कारण उसका और अपना पूर्व भव कह सुनाया। यह सुनकर जातिस्मरण उत्पन्न होते ही रतिवर्द्धन ने संसार से विरक्त होकर तत्काल दीक्षा ली और वहाँ से मृत्यु पाकर वह भी ब्रह्मलोक में देवता बना। वहाँ से च्यूत होकर आप दोनो भाई महाविदेह क्षेत्र में विबुद्ध नगर के राजारुप भाई बने, और दीक्षा लेकर मृत्यु पाने पर अच्युत देवलोक में गये। वहाँ से च्यूत होकर इस प्रतिवासुदेव रावण के **इन्द्रजित** और **मेघवाहन** नाम के तुम दो पुत्र हुए हो। रतिवर्द्धन की माता जो इन्दुमुखी थी वह भवभ्रमण करके तुम दोनों की माता यह **मंदोदरी** बनी है। इस प्रकार पूर्वभव का वृत्तांत सुनकर कुंभकर्ण, इन्द्रजित, मेघवाहन और मंदोदरी वगैरह ने तत्काल व्रत ग्रहण किया। फिर राम ने मुनि को नमस्कार करके लक्ष्मण तथा सुग्रीव के साथ इन्द्र की तरह बड़ी समृद्धि से लंका में प्रवेश किया। उस समय विभीषण छड़ीदार की तरह नम्र होकर आगे चलते हुए राम को मार्ग दिखाता था तथा विद्याधरों की स्त्रियाँ राम का मंगल कर रही थी। क्रमशः पुष्पगिरि के मस्तक पर आये उद्यान में जाने पर हनुमान ने जैसा कहा था वैसी ही **सीता** राम को नजर आयी। अपनी आत्मा को उस समय ही जीवित माननेवाले राम ने मानो दूसरा जीवन हो त्यों उस सीता को लेकर अपने उत्संग में धारण किया। उस समय हर्ष पाये सिद्ध और गंधर्वो ने 'ये महासती सीता जय पाये' ऐसा आकाश में हर्षनाद किया। गाढ हर्ष के अश्रुजल से मानो उनके चरण को धोता हो त्यों लक्ष्मण ने सीता देवी को हर्ष से नमस्कार किया। 'मेरी आशिष से चिरकाल जिओ,

१. बंधुपन का स्नेह।

चिरकाल आनंद पाओ और चिरकाल विजय पाओ' यूं बोलते हुए सीता ने लक्ष्मण के मस्तक को सूंघा। फिर भामण्डल ने सीता को नमस्कार किया, तो सीता ने हर्ष से मुनिवाक्य समान (सफल) आशिष देकर उसे आनंद पहुँचाया। फिर सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद और दूसरों ने यहां आकर अपने अपने नाम कहने के साथं सीता को प्रणाम किया। राम से विकास पायी हुई सीता लम्बे समय बाद पूर्णचंद्र द्वारा विकास पायी हुई कुमुदिनी की तरह शोभित होने लगी।

फिर सुग्रीव वगैरह से घिरे हुए राम सीता के साथ भुवनालंकार नाम के हाथी पर बैठकर रावण के मंदिर में आये। वहाँ हजारों माणिक्यस्तंभ से युक्त ऐसे श्री शांतिनाथ प्रभु के चैत्य में वंदन करने की इच्छा से उन्होंने प्रवेश किया और राम-लक्ष्मण एवं सीता के साथ विभीषण ने दिये हुए पुष्पादिक उपस्कर से श्री शांतिनाथ की पूजा की। फिर विभीषण की प्रार्थना से सीता, लक्ष्मण और सुग्रीवादिक परिवार को लेकर राम विभीषण के घर गये। वहाँ विभीषण को मान देते हुए राम ने पूरे परिवार के साथ देवार्चन, स्नान और भोजनादि किया। फिर राम को सिंहासन पर बैठाकर विभीषण ने दो वस्त्र धारण करके अंजलि जोड़कर कहा, "हे स्वामी ! ये रत्न-सुवर्णादिक के भंडार, ये हाथी, घोडे वगैरह सैन्य और इस राक्षसद्वीप को आप ग्रहण कीजिए। मैं आपका एक सेवक हूँ। आपकी आज्ञा पाकर हम आपका राज्याभिषेक करना चाहते हैं, इसलिए इस लंकापुरी को पवित्र कीजिए और प्रसन्न होकर मुज पर भी अनुग्रह कीजिए।" राम बोले, "हे महात्मा ! पहले ही इस लंका का राज्य मैंने आपको ही दिया है, वह इस समय भक्ति में मोह पाकर क्यों भूल गये ?" इस प्रकार कहकर उसकी माँग का निषेध करके अपनी प्रतिज्ञा को पालनेवाले राम ने प्रसन्न होकर उसी समय लंका के राज्य पर विभीषण का अभिषेक किया। फिर इन्द्र ज्यों सुधर्मा सभा में आये त्यों राम, सीता, लक्ष्मण और सुग्रीवादिक सहित रावण के घर आये।

फिर पूर्व ब्याहने का कबूल की हुई सिंहोदर वगैरह राजाओं की कन्याओं को राम की आज्ञा से विद्याधर वहां लाये और अपनी अपनी प्रतिज्ञानुसार राम-लक्ष्मण उन कुमारियों को खेचर स्त्रियों से गीतमंगल गान कराते हुए विधिपूर्वक ब्याहे। सुग्रीवादिक से सेये जाते राम, लक्ष्मण ने निर्विघ्न भोग भोगते हुए लंका नगरी में छः साल व्यतीत किए। उस समय में विंध्यस्थली पर इन्द्रजित और मेघवाहन सिद्धिपद को पाये, जिससे वहाँ **मेघरथ** नाम का तीर्थ बना, और नर्मदा नदी में कुंभकर्ण सिद्धि पाये, जिससे वहाँ **पृष्ठरक्षित** नाम का तीर्थ बना।

यहां अयोध्या में राम-लक्ष्मण की माताएं अपने पुत्रों की वार्ता भी नहीं जान पाने से बड़ी दुःखी होकर रह रही थी, इतने में घातकी खण्ड में से **नारद** वहाँ आ पहुँचे। उसने भक्ति से नम्र ऐसी उन माताओं को पूछा कि 'आप चिंतातुर क्यों हो ?' अपराजिता बोली, "मेरे पुत्र

राम और लक्ष्मण पिता की आज्ञा से मेरी स्नूषा[1] सीता को साथ लेकर वन में गये हैं। वहाँ सीता का हरण होने से वे महाभूज (राम) पुत्र लंका में गये हैं। वहाँ युद्ध में रावण ने शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया, उस शक्ति का शल्य दूर करने के लिए विशल्या को वहाँ ले गये। इसके बाद वत्स लक्ष्मण जिए या क्या हुआ यह हम नहीं जानते।'' इस प्रकार कहकर 'हा वत्स !' यूं करुण स्वर में पुकारती और सुमित्रा को रुलाती हुई अपराजिता अत्यंत रुदन करने लगी। नारद बोले, ''आप स्वस्थ हो जाओ। आपके पुत्र के पास मैं जाऊँगा और उन्हें यहाँ ले आऊंगा। उनके समक्ष ऐसी प्रतिज्ञा लेकर नारद लोगों से खबर पाकर आकाशमार्ग से लंका में राम के पास आये। राम ने सत्कार करके नारद को पूछा कि 'आप क्यों पधारे हो ?' तो नारद ने उनकी माताओं के दुःख का पूरा वृत्तांत उनको कह सुनाया, जिससे दुःख पाये राम ने विभीषण को कहा कि, 'आपकी भक्ति से माताओं के दुःख को भी भूलकर हम यहां चिरकाल रहे। लेकिन अब हे महाशय ! हमारे वियोगदुःख से हमारी माताएं मृत्यु न पा जाय तब तक हम तत्काल वहाँ जायेंगे। इसलिए हमें अनुमति दो।' विभीषण नमस्कार करके बोला, 'हे स्वामी ! अब मात्र सोलह दिन यहां रहो। तब तक मैं मेरे कारिगरों से अयोध्या पुरी को रमणीय बना दू।' राम ने 'तथास्तु' यूं कहा, तो विभीषण ने अपने विद्याधर कारिगरों को भेजकर अयोध्यापुरी को सोलह दिन में स्वर्गपुरी जैसी बना दी। राम द्वारा सत्कार और बिदा पाये हुए नारद अयोध्या में आये और उनकी माताओं को पुत्र के आगमनोत्सव के समाचार दिये। फिर सोलहवें दिन मानो शक्रेन्द्र और इशानेन्द्र एकत्रित हुए हो त्यों राम और लक्ष्मण सब अंतःपुर सहित पुष्पक विमान मे बैठकर अयोध्या की ओर चले।

विभीषण, सुग्रीव और भामण्डल प्रमुख राजाओं का अनुसरण करते हुए राम क्षणभर में अयोध्यापुरी समीप आये। **पुष्पक** विमान में बैठकर आ रहे दोनों बंधु को दूर से देखकर भरत शत्रुघ्न के साथ गजेन्द्र पर बैठकर सामने आये। भरत समीप आये तो इन्द्र की आज्ञा से पालक विमान की तरह राम की आज्ञा से पुष्पक विमान पृथ्वी पर आया। प्रथम भरत दूर से ही अनुज बंधु के साथ गजेन्द्र पर से उतरा, तो उत्कंठित ऐसे राम-लक्ष्मण भी पुष्पक विमान में से उतर पड़े। फिर चरणों में पडे और अश्रुयुक्त लोचनवाले भरत को खड़ा करके राम उसके मस्तक पर बार बार चुंबन करते हुए उसे आलिंगन देकर मिले, और चरण में लौटते हुए शत्रुघ्न को भी उठाकर अपने वस्त्र से उसका शरीर पोंछकर आलिंगन दिया। भरत और शत्रुघ्न ने लक्ष्मण को नमन किया तो लक्ष्मण ने हाथ प्रसारकर संभ्रम से गाढ आलिंगन दिया। फिर राम तीन अनुज बंधुओं के साथ पुष्पक विमान में आरूढ हुए और पुष्पक विमान को तुरंत से अयोध्या में प्रवेश करने की आज्ञा दी। आकाश और भूमि में बजते वाजिंत्रों के साथ राम और लक्ष्मण

१. पुत्रवधू।

ने हर्षसहित अपनी अयोध्यापुरी में प्रवेश किया।

उस समय मेघ को मयूर देखे त्यों उत्कंठित और उन्मुख बने पुरजन अनिमेष नेत्र से राम लक्ष्मण को देखने लगे और निर्भर स्तुति करने लगे। स्थान स्थान पर पुरजन सूर्य की भाँति जिनको अर्घ्य देते थे ऐसे प्रसन्न मुखवाले राम-लक्ष्मण क्रमशः अपने महल समीप आये। सुहृदजन के हृदय को आनंद देनेवाले राम लक्ष्मण सीता के साथ पुष्पक विमान में से उतरकर मातृगृह में गये। दोनों भाइयों ने देवी अपराजिता को और दूसरी माताओं को प्रणाम किए। माताओं ने आशिष दी। फिर सीता, विशल्या वगैरह ने अपराजिता के और अन्य सासों को उनके चरणकमल में ललाट (मस्तिक) रखकर प्रणाम किए। इसलिए 'तुम भी हमारी आशिष से हमारी तरह वीर पुत्रों को जन्म देनेवाली बनो' ऐसी आशिष उन्होंने बहुओं को दी। अपराजिता देवी बार बार हाथ से लक्ष्मण का स्पर्श करते हुए और मस्तक में चुंबन करते हुए बोली, "हे वत्स ! सद्भाग्य से मुझे तुम्हारे दर्शन हुए हैं, मैं तो इस समय तुम दुबारा जन्मे हो ऐसा मानती हूँ। क्योंकि तुम विदेशगमन करके विजय पाकर आये हो। इस राम और सीता ने तुम्हारी सेवा से ही वनवास के अनेक प्रकार के कष्ट उल्लंघन किये हैं।" लक्ष्मण बोले, "हे माता ! वनवास में पिता की तरह आर्यबंधु राम ने और तुम्हारी तरह सीता ने मेरा लालन किया है, इसलिए मैं तो वन में भी सुख से ही रहता था। मेरे स्वेच्छाचारी दुर्लालित्य से ही आर्यबंधु राम को दुश्मनों के साथ बैर हुआ, और उसी से ही सीता का हरण हुआ। हे देवी ! उसके बारे में ज्यादा क्या कहना ? परंतु हे माता ! आपकी आशिष से ही शत्रुरुपी सागर का उल्लंघन करके परिवार सहित रामभद्र कुशलता से यहाँ आये हैं।" इस प्रकार वार्तालाप होने के बाद राम के समक्ष एक पैदलरुप में रहना चाहते भरत ने हर्ष से अयोध्या नगरी में बड़ा उत्सव कराया।

एक बार भरत ने रामभद्र को प्रणाम करके कहा कि "हे आर्य ! आपकी आज्ञा से इतने समय तक मैंने राज्य धारण किया। इस राज्य को पालने में आपकी आज्ञारुपी अर्गला (बंधन) यदि आडे न आयी होती तो मैं पिता के साथ ही उसी समय दीक्षा ग्रहण कर लेता। इसलिए अब मुजे व्रत लेने की आज्ञा दीजिए और यह राज्य आप ग्रहण कीजिए। संसार से उद्वेग पाया मैं अब आपके आने के बाद इस राज्य में रहने के लिए उत्साही नहीं हूँ।" राम अश्रुयुक्त नेत्र से बोले, 'हे वत्स ! ऐसा क्यों बोलते हो ? जैसा करते थे वैसा ही आप राज्य करिए। हम तो तुम्हारे निमंत्रण से ही आये हैं, इसलिए राज्य सहित हमारा त्याग करके हमको विरहवेदना किसलिए देते हो ? आप राज्य में रहो और पहले की भाँति मेरी आज्ञा मानो।' इस प्रकार आग्रह करते हुए राम को जानकर भरत प्रणाम करके वहाँ से चले जाने लगे तो लक्ष्मण ने

उठकर हाथ से पकड़ रखे। इस प्रकार व्रत लेने का निश्चय करके आये भरत को जानकर सीता और विशल्या वगैरह ससंभ्रम होकर वहां आयी, और भरत का व्रत लेने का आग्रह भुलाने के लिए उन्होंने जलक्रीडा का विनोद करने के लिए भरत को प्रार्थना की। उनके आग्रह से भरत अंतःपुर सहित क्रीडा करने गये और स्वयं विरक्त होने पर भी क्रीडासरोवर में मुहूर्त पर्यंत उनके साथ क्रीडा की। फिर जल में से निकलकर भरत राजहंस की भाँति सरोवर तट पर आये, इतने में **भुवनालंकार** नाम का हाथी स्तंभ का उन्मूलन करके वहाँ आया। मदांध होने पर भी वह गजेन्द्र भरत के दर्शन से सद्य (तुरंत) मदरहित हो गया। और उसे देखकर भरत भी हर्षित हुआ। उपद्रवकारी उस हाथी को छूटा हुआ सुनकर राम-लक्ष्मण सामंत सहित उसे बांधने के लिए संभ्रम से उसके पीछे आये। राम की आज्ञा से महावत उस हाथी को खूंटे से बांधने ले गये, इतने में **देशभूषण** और **कुलभूषण** नाम के दो मुनि वहां आये। उनके उद्यान में ठहरने की खबर सुनकर उन महामुनियों की वंदना के लिए पद्म (राम), लक्ष्मण और भरत परिवार सहित वहां गये। उनकी वंदना करके राम ने पूछा, 'हे महात्मा ! मेरा भुवनालंकार हाथी भरत को देखते ही मदरहित क्यों हो गया ?'

देशभूषण केवली बोले, ''पूर्व में **श्रीऋषभदेव** भगवंत के साथ चार हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी। फिर जब प्रभु निराहारपन में मौन रहकर विहार करने लगे, तब वे सर्व खेद पाकर वनवासी तापस बने थे। उसमें **प्रह्लादन** और **सुप्रभ** राजा के **चंद्रोदय** और **सुरोदय** नाम के दो पुत्र थे। उन्होंने उसके बाद चिरकाल भवभ्रमण किया। क्रमशः चन्द्रोदय गजपुर में हरिमती राजा की चन्द्रलेखा रानी की कुक्षि से **कुलंकर** नाम का पुत्र हुआ, और सुरोदय भी उसी नगर में विश्वभूति ब्राह्मण की अग्निकुंडा स्त्री से **श्रुतिरति** नाम का पुत्र हुआ। क्रमशः कुलंकर राजा बना। एक बार वह तापस के आश्रम में जा रहा था, वहां अवधिज्ञानी **अभिनंदन** नाम के साधू ने उसे इस प्रकार कहा, 'हे राजा ! तू जिसके पास जा रहा है वह तापस पंचाग्नि तप करता है, वहां दहन करने के लिए लाये हुए काष्ठ में एक सर्प रहा है। वह सर्प पूर्व जन्म में **क्षेमंकर** नाम का तुम्हारा पितामह (दादा) था, इसलिए वह काष्ठ फड़वाकर प्रयत्न से उसे बाहर निकलवाकर उसकी रक्षा कर।' यह वचन सुनकर राजा आकुल-व्याकुल हो गया और तत्काल वहाँ जाकर उस काष्ठ को फड़वाया। उसके अंदर मुनि के कहे अनुसार सर्प को रहा देखकर वह अत्यंत चकित हुआ। उसी समय कुलंकर राजा को दीक्षा लेने की इच्छा हुई। इतने में वह श्रुतिरति ब्राह्मण वहाँ आकर इस प्रकार कहने लगा, 'यह तुम्हारा धर्म कुछ आम्नारहित नहीं है, फिर भी यदि आपका दीक्षा लेने का आग्रह हो तो अंतिम अवस्था में दीक्षा लेना। इस समय किसलिए खेद पा रहे हो ?' इस प्रकार श्रुतिरति ब्राह्मण की वाणी सुनकर राजा का दीक्षा लेने

का उत्साह थोडा भग्न हो गया तो 'अब मुझे क्या करना ?' ऐसा वह विचार करने लगा और संसार में स्थित हुआ। उसे **श्रीदामा** नाम की रानी थी। वह श्रुतिरति पुरोहित के साथ सदैव आसक्त थी। एक बार उस दुर्मति रानी को ऐसी शंका हुई की 'हमारा संबंध राजा ने जरुर जान लिया है, इसलिए वह हमे मारे नहीं तब तक मैं उसे मार डालूं।' यूं सोचकर पुरोहित की संमति से उस श्रीदामा ने विष देकर अपने पति कुलंकर राजा को मार डाला। क्रमशः वह श्रुतिरति भी मृत्यु पाया और वे दोनो चिरकाल भवभ्रमण करके अनेक प्रकार की योनियों में पतित हुए।

कुछ समय बाद राजगृह नगर में **कपिल** नामके ब्राह्मण की **सावित्रि** नाम की स्त्री से **विनोद** और **रमण** नाम के दो युग्म (जुडवें) पुत्र हुए। रमण वेद पढ़ने के लिए देशांतर गया। कुछ काल के बाद वेदाध्यन करके राजगृह नगर में रात्रि में आया। 'यह बेसमय आया है' ऐसा सोचकर दरवान ने उसको नगर में घुसने नहीं दिया, तो सर्व को साधारण ऐसे एक यक्षमंदिर में वह रात्रिवास करके रहा। उस समय विनोद की **शाखा** नामकी स्त्री **दत्त** नाम के एक ब्राह्मण के साथ संकेत करके वहा आयी। उसके पीछे विनोद भी आया। पहले से ही वहां सोये रमण को उस स्त्री ने दत्त समजकर उठाया और उसके साथ रतिक्रीडा की। यह देखकर विनोद ने निःशंक होकर खड्ग से रमण को मार डाला, तो शाखा ने रमण की छुरी से विनोद को भी मार डाला। वे दोनों दुबारा चिरकाल भवभ्रमण करके विनोद **धन** नाम के धनाढ्य श्रेष्ठी का पुत्र बना और रमण भी भवभ्रमण करके उस धन की **लक्ष्मी** नाम की स्त्री की कुक्षि से **भूषण** नाम का पुत्र बना। धन के कहने से वह बत्तीस श्रेष्ठी कन्याओं को ब्याहा। एक बार उनके साथ क्रीडा करते हुए भूषण रात्रि में अपने घर की छत पर बैठा था, इतने में रात्रि के चौथे प्रहर में **श्रीधर** नाम के मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न होते ही देवताओं द्वारा प्रवर्तित महोत्सव उसे नजर आया। यह देखकर भूषण को धर्म के परिणाम हुए; जिससे तत्काल छत पर से नीचे उतरकर वह मुनि की वंदना के लिए चला। मार्ग में उसे सर्प डसा, तो शुभ परिणाम से मृत्यु पाकर वह चिरकाल तक शुभ गतिओं मे भ्रमण करके जंबुद्वीप के अपरविदेह क्षेत्र में रत्नपुर नगर के **अचल** नाम के चक्रवर्ती की **हरिणी** नाम की स्त्री से **प्रियदर्शन** नाम का धर्मतत्पर पुत्र बना। वह बाल्यावस्था से ही दीक्षा लेने की इच्छावाला था। फिर भी पिता के आग्रह से वह तीन हजार कन्याओं को ब्याहा और संवेग में भी लीन रहा। गृहवास में भी चौसठ हजार वर्ष तक उत्कृष्ट तप करके मृत्यु पाकर वह ब्रह्मदेवलोक में देवता बना। वह धन संसार में भटककर पोतनपुर में **अग्निमुख** ब्राह्मण की **शकुना** नाम की स्त्री से **मृदुमति** नाम का पुत्र हुआ। अविनीत होने से पिता ने उसे घर के बाहर निकाल दिया। वह भटकते भटकते सर्व कलाओं मे चतुर ऐसा धूर्त बना और दुबारा

घर आया। देवद्युत खेलने में वह किसी से जिता नहीं जाता था, इससे दिन प्रतिदिन उस देवसमान मृदुमति ने बहुत धन उपार्जित किया। **वसंतसेना** नाम की वेश्या के साथ भोग भोगकर आखिर में दिक्षा लेकर वह भी ब्रह्म देवलोक में देवता बना। वहां से च्यूत होकर पूर्वभव के कपटदोष से वह वैताढ्यगिरि पर **भुवनालंकार** नाम का यह हाथी बना है, और प्रियदर्शन का जीव ब्रह्मदेवलोक में से च्यूत होकर यह आपका महाभुज **भरत** बना है। भरत के दर्शन से उसे जातिस्मरण उत्पन्न होते ही वह गजेन्द्र सद्य मंदरहित हो गया, क्योंकि विवेक उत्पन्न होने के बाद रौद्रपना नहीं रहता।''

इस प्रकार अपना पूर्वभव सुनकर भरत ने अधिक विरक्त होकर एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली, और क्रमशः मोक्ष गये। हजार राजा भी चिरकाल व्रत पालकर विविध प्रकार की लब्धिया प्राप्त करके उसके सदृश पद को (मोक्ष को) प्राप्त हुए। भुवनालंकार हाथी वैराग्य से विविध प्रकार के तप करके अंत में अनशन स्वीकार के मृत्यु पाने के बाद ब्रह्मदेवलोक में देवता बना। भरत की माता कैकेयी भी व्रत लेकर निष्कलंकपना पालकर अव्ययपद को पा गयी।

भरत ने जब दीक्षा ली तब अनेक राजा, प्रजा और खेचरों ने भक्ति से राज्याभिषेक के लिए राम को प्रार्थना की। राम ने उनको आज्ञा दी कि, 'यह लक्ष्मण वासुदेव है, इसलिए उसका राज्याभिषेक करो।' उन्होंने तत्काल वैसा किया और राम को भी बलदेवपने का अभिषेक किया। फिर वे आठवें बलदेव व वासुदेव तीनखंड भरत के राज्य का पालन करने लगे।

राम ने विभीषण को क्रमागत राक्षसद्वीप, सुग्रीव को कपिद्विप, हनुमान को श्रीपुर, विराध को पाताललंका, नील को ऋक्षपुर, प्रतिसूर्य को हनुपुर, रत्नजटी को देवोपगीत नगर और भामण्डल को वैताढ्यगिरि पर का रथनुपूर नगर दिया। दूसरों को भी अलग अलग देश देकर राम ने शत्रुघ्न को कहा, 'हे वत्स ! जो देश तूजे जँचे वह स्वीकार ले।' शत्रुघ्न ने मांग की कि 'आर्य ! मुझे मथुरानगरी दीजिए।' राम बोले, 'वत्स ! वह **मथुरापुरी** दुःसाध्य है, क्योंकि वहाँ **मधु** नाम का राजा राज्य करता है। उसे पूर्व में चमरेन्द्र ने एक त्रिशूल दिया है, वह दूर से ही शत्रुओं के सर्व सैन्य को हणकर (मारकर) वापस उसके हाथ आता है।' शत्रुघ्न बोले, 'हे देव ! आप राक्षसकुल का नाश करनेवाले हो, और मैं आपका भाई हूँ, तो मेरे साथ युद्ध करते हुए उस मधु का रक्षण करनेवाला कौन है ? इसलिए मुझे मथुरा दीजिए, मैं स्वयं ज्यों उत्तम वैद्य व्याधि का उपाय करें त्यों उस मधुराजा का उपाय करुंगा।' शत्रुघ्न का ऐसा अति आग्रह जानकर राम ने कहा, 'भाई ! जब वह त्रिशूलरहित होकर प्रमाद में पड़ा हो तब उसके साथ तुझे युद्ध करना होगा।' ऐसी सूचना देकर राम ने उसे अक्षयबाण वाले दो भाथे दिये और **कृतांतवदन** नाम के सेनापति को साथ जाने की आज्ञा दी। परमविजय की आशा रखनेवाले

लक्ष्मण ने अग्निमुख बाण और अपना अर्णवावर्त्त धनुष्य दिया। फिर शत्रुघ्न निरंतर प्रयाण करते हुए मथुरा की ओर चले। कुछ दिनों में मथुरानगरी के समीप आकर नदीतट पर आवास किया। वहाँ रहकर प्रथम गुप्तरुप में चार[1] भेजे। उन्होंने वापस आकर शत्रुघ्न को कहा, 'मथुरा की पूर्व दिशा में एक कुबेरोद्यान है, वहाँ इस समय मधुराजा गया है और वहाँ अपनी **जयंती** रानी के साथ क्रीडा कर रहा है। उसका त्रिशूल इस समय शस्त्रागार में है, जिससे यह युद्ध करने का समय है।' फिर छल जानने वाले शत्रुघ्न ने रात्रि में मथुरा में प्रवेश किया और उद्यान में से वापस लौटकर नगर में प्रवेश करने आ रहे मधुराजा को अपने सैन्य द्वारा मार्ग में ही रोका।

फिर रामायण के रण के आरंभ में ज्यों खर को लक्ष्मण ने मारा था त्यों शत्रुघ्न ने मधु के लवण नाम के पुत्र को (युद्ध) के आरंभ में ही मार डाला। महारथियों में श्रेष्ठ ऐसा मधु, पुत्र के वध से क्रोध पाकर, धनुष्य टंकार करते हुए शत्रुघ्न के साथ युद्ध करने दौडा। परस्पर के अस्त्रो को अस्त्रो से छेदते हुए वे दोनो देव और दैत्य की भाँति बड़ी देर तक शस्त्राशस्त्री युद्ध करते रहे। इसके बाद दशरथ के चौथे पुत्र शत्रुघ्न ने लक्ष्मण के दिये हुए समुद्रावर्त्त धनुष्य का और अग्निमुख बाणों का स्मरण किया। स्मरण मात्र से ही वे धनुष्य और बाण प्राप्त हुए तो वह धनुष्य चढ़ाकर अग्निमुख बाण से शिकारी ज्यों शेर को मारे त्यों वीर शत्रुघ्न ने मधु पर प्रहार करना शुरु किया। उस बाण के घात से पीड़ित हुआ मधु चिंतन करने लगा कि, "इस समय त्रिशूल मेरे हाथ में आया नहीं और मैंने शत्रुघ्न को मारा नहीं। और मेरा यह जन्म भी निष्फल हो गया, क्योकि मैंने श्री जिनेन्द्र की पूजा नहीं की, चैत्य भी न कराये और दान भी नहीं दिया।" ऐसा चिंतन करते हुए मधु भावचारित्र्य स्वीकार करके नमस्कार मंत्र के स्मरण में तत्पर होकर मृत्यु पाने के बाद सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देवता बना। उस समय मधु के शरीर पर उसके विमानवासी देवों ने पुष्पवृष्टि की और 'मधुदेव जय पाओ' ऐसी आघोषणा की।

वह देवतारुपी त्रिशूल चमरेन्द्र के पास गया, और शत्रुघ्न ने छल से मधु को मारा यह बात कही। अपने मित्र के वध से क्रोध पाये चमरेन्द्र स्वयं शत्रुघ्न को मारने के लिए चला, तो वेणुदारी नाम के गरुडपति इन्द्र ने पूछा, 'आप कहां जा रहे हो ?' चमरेन्द्र ने कहा, 'मेरे मित्र को मारनेवाला शत्रुघ्न मथुरा में रहा है, उसे मारने के लिए जा रहा हूँ।' वेणुधारी इन्द्र बोला, 'रावण ने धरणेन्द्र से अमोघविजया शक्ति पायी थी, उस शक्ति को भी उत्कृष्ट पुण्यवाले लक्ष्मण वासुदेव ने जीत ली है और उसने रावण को भी मार डाला है, तो उसके सम्मुख उसका सेवक मधु तो क्या मात्र है ? लक्ष्मण की आज्ञा से शत्रुघ्न ने रण में मधु को मार डाला है।'

१. गुप्तचर, खबर लाने वाले सेवक

चमरेन्द्र बोला, 'जो शक्ति लक्ष्मण ने जीती वह तो विशल्या कन्या के प्रभाव से जीती है और अब तो वह विशल्या शादीशुदा है, इसलिए उसका प्रभाव चला गया है, तो उससे क्या होगा ? मैं अवश्य उस मित्रघाती को मारने जाऊँगा।' इस प्रकार कहकर चमरेन्द्र रोषपूर्वक शत्रुघ्न के देश में गया। वहाँ उसके शुभ राज्य में उसने सब लोगों को स्वस्थ देखा तो चमरेन्द्र ने विचार किया कि 'पहले प्रजा में उपद्रव करके इस मधु के रिपु को परेशान कर दूं' ऐसी बुद्धि से उसने शत्रुघ्न की प्रजा में विविध प्रकार के व्याधि उत्पन्न किये। कुलदेवता ने आकर शत्रुघ्न को यह व्याधि होने का कारण बताया तो वह अयोध्या में राम-लक्ष्मण के पास गया।

ऐसे समय में देशभूषण और कुलभूषण मुनि विहार करते करते वहाँ आये। राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने उनके पास जाकर वंदना की। फिर राम ने पूछा, "इस शत्रुघ्न को मथुरा लेने का आग्रह क्यों हुआ ?" देशभूषण मुनि बोले, -

"शत्रुघ्न का जीव मथुरा में अनेक बार उत्पन्न हुआ है। एक बार वह **श्रीधर** नाम का ब्राह्मण हुआ था। वह रुपवान और साधुओं का सेवक था। एक बार वह मार्ग से गुजर रहा था कि राजा की मुख्य रानी **ललिता** ने उसे देखा, तो उस पर राग उत्पन्न होते ही उसने उसे कामक्रीडा की इच्छा से अपने पास बुलाया। उस समय अचानक राजा आ चढ़े। उसे देखकर ललिता क्षोभ पायी तो तत्काल उसने 'यह चोर, यह चोर' ऐसी पुकार की। राजा ने उसे पकड़ लिया। राजा के आदेश से उसे राजसेवक वधस्थान पर ले गये। उस समय उसने व्रत लेने की प्रतिज्ञा की, तो कल्याण नाम के मुनि ने उसको छुड़वाया। मुक्त होने के बाद तुरंत ही उसने दीक्षा ली और तपस्या करके देवलोक में गया। वहां से च्यूत होकर मथुरापुरी में **चन्द्रप्रभ** राजा की रानी कांचनप्रभा की कुक्षि से वह **अचल** नाम का पुत्र बना। वह चंद्रप्रभ राजा को बड़ा प्रिय बना। उसके **भानुप्रभ** वगैरह अन्य आठ अग्रज सापत्न बंधु[1] थे। उन्होंने जाना कि यह राजा को प्रिय है इसलिए वहीं राजा होगा, जिससे ऐसा न होने देने के लिए उसे उन्होंने मारना आरंभ किया। यह विचार सचिवों को मालूम होते ही उन्होंने अचल को खबर दी, तो अचल वहां से भाग गया। वन में भटकते हुए एक बडा कांटा लगा। उसकी पीडा से वह आक्रंद करने लगा।

अब श्रावस्ती नगरी का रहनेवाला और पिता द्वारा निकाला गया वन में आया हुआ **अंक** नाम का कोई पुरुष सर पर इंधन का भारा लेकर जा रहा था उसने उस अचल को देखा, काष्ठ का भारा नीचे रखकर उसने उसके पैर में से कांटा निकाला। अचल हर्ष पाकर उसके हाथ में कांटा देकर बोला, 'हे भद्र ! आपने बहुत अच्छा किया। अब जब तुम्हें सुनाई दे कि मथुरापुरी में अचल राजा बना है, तब तुम वहाँ आना। तुम मेरे परम उपकारी हो।' फिर अचल वहां से

१. सौतेली माता से उत्पन्न हुए बडे भाई।

कौशांबी नगरी में गया। वहां **इन्द्रदत्त** राजा को **सिंहगुरु** के पास धनुष्य का अभ्यास करते हुए उसने देखा। फिर उसने सिंहाचार्य और इन्द्रदत्त को अपना धनुष्यचातुर्य बताया। जिससे हर्ष पाकर इन्द्रदत्त ने उसे कुछ पृथ्वी के साथ अपनी **दत्ता** नाम की पुत्री अर्पण की। फिर सैन्यबल प्राप्त होते ही उस अचल ने अंग वगैरह कइं देश साध लिये। एक बार वह सैन्य लेकर मथुरापुरी आया। वहाँ उसने सापत्न बंधुओं के साथ युद्ध किया, और आखिर में भानुप्रभ वगैरह आठों बंधुओं को पकड़कर बांध दिया। उनको छुडाने के लिए चन्द्रप्रभ राजा ने सचिवों को भेजा तो अचल ने सचिवों के समक्ष अपना पूरा वृत्तांत कहा। सचिवों ने तत्काल जाकर वह वृत्तांत चन्द्रप्रभ राजा को कहा, जिसे सुनकर हर्ष पाये हुए चन्द्रप्रभ ने महोत्सवपूर्वक अचल को नगरी में प्रवेश कराया। क्रमशः वह सबसे छोटा था फिर भी राजा ने उसे राज्य पर बैठाया और भानुप्रभ वगैरह को निकाल देने लगा, तब अचल ने उनको बडी मुश्किल से रखवाया और उन्हें अपने अदृष्ट सेवक किए।

एक बार नाट्यशाला में रहे अंक को प्रतिहारों से धक्के खाते हुए देखा तो अचल ने उसे अपने पास बुलवा मंगाया, और उसकी जन्मभूमि श्रावस्ती नगरी उसे दी। अद्वैत मैत्रीवाले वे दोनों साथ रहकर राज्य करने लगे। अंत में उन्होंने **समुद्राचार्य** से दीक्षा ली और कालयोग से मृत्यु पाकर दोनों ब्रह्मदेवलोक में देवता बने। वहां से च्यूत होकर हे राम ! अचल का जीव यह तुम्हारा अनुज बंधु शत्रुघ्न बना है। पूर्व जन्म के मोह से उसका मथुरा पर आग्रह रहा है, और अंक का जीव वहां से च्यूत होकर कृतांतवदन नाम का यह तुम्हारा सेनापति हुआ है।" इस प्रकार कहकर मुनि ने वहां से विहार किया और रामचंद्र वगैरह अयोध्या में आये।

प्रभापुर के राजा **श्रीनंदन** की **धारणी** नाम की स्त्री से क्रमशः सात पुत्र हुए। उनके **सुरनंद, श्रीनंद, श्रीतिलक, सर्वसुंदर, जयंत, चामर** और **जयमित्र** ऐसे नाम रखे। इसके बाद आठवाँ पुत्र एक मास का हुआ तब उसे राज्य पर बैठाकर श्रीनंद ने अपने सात पुत्रों सहित **प्रीतिकर** गुरु से दीक्षा ली। श्रीनंदन व्रत पालकर मोक्ष गया, और सुरनंदादिक सात पुत्र तप की शक्ति से जंघाचारण लब्धिवाले बने। ये महर्षि एक बार विहार करते करते मथुरापुरी में आये। उस समय वर्षाऋतु आने से वे एक पर्वत पर के गुहागृह में चातुर्मास रहे। वहां वे मुनि छट्ठ, अट्ठम वगैरह अनेक प्रकार की तपस्या करने लगे। वहां से उडकर दूर देश में जाकर पारणा करने लगे, और वापस मथुरा के समीप गिरि की गुहा में आकर रहने लगे। उनके प्रभाव से चमरेन्द्र ने उत्पन्न किया हुआ पूरा व्याधि संपूर्ण भूमि में से नाश पा गया। एक बार वे मुनि पारणा करने के लिए अयोध्यापुरी में गये। वहाँ **अर्हदत्त** सेठ के घर भिक्षा के लिए आये। सेठ उनको अवज्ञापूर्वक वंदना करके विचार करने लगा कि, 'ऐसे साधु कौन होगे कि जो वर्षाऋतु में भी विहार करते हैं ?

मैं उनको पूछुं, अथवा पाखंडी के साथ भाषण करना योग्य नहीं है।' सेठ ऐसा विचार कर रहे थे कि उनकी स्त्री ने आकर उनको वहोराया। फिर वे **द्युति** नाम के आचार्य के उपाश्रय में गये। आचार्य ने गौरवपूर्वक उनकी वंदना की, लेकिन उनके साधुओं ने 'ये बेसमय के विहारी है' ऐसा सोचकर वंदना नहीं की। द्यूति आचार्य ने आसन दिये, उस पर बैठकर उन्होंने वहीं पारणा किया। फिर 'हम मथुरापुरी से आये हैं और वापस वहीं जायेंगे' ऐसा कहकर वे वहां से उडकर अपने स्थान पर गये। उनके जाने के बाद द्युति आचार्य ने उन जंघाचारण मुनियों की गुणस्तुति की, तो उनके साधुओं ने अवज्ञा की थी इसलिए उन्हे पश्चात्ताप हुआ। यह वृत्तांत सुनकर अर्हदत्त श्रावक को भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ। फिर वह सेठ कार्तिक मास की शुक्ल सप्तमी को मथुरापुरी गया। वहां चैत्यपूजा करके सप्तर्षि को वंदना करके स्वयं किये हुए अवज्ञादोष को उनके आगे प्रकट करके क्षमा माँगी।

सप्तर्षियों के प्रभाव से अपना देश निरोगी बना है, ऐसी खबर सुनकर शत्रुघ्न भी कार्तिकी पूर्णिमा को मथुरा आया। शत्रुघ्न ने उनके पास जाकर वंदना करके कहा, 'हे महात्मा ! आप मेरे घर से भिक्षा ग्रहण कीजिए।' मुनि बोले, 'साधुओं को राजपिंड कल्पता नहीं है।' शत्रुघ्न ने दुबारा कहा, ''हे स्वामी ! आप मेरे अत्यंत उपकारी हो। आपके प्रभाव से मेरे देश में उत्पन्न हुआ दैविक रोग शांत बना है। अब लोगों के अनुग्रह के लिए यहां और थोड़ा समय रहिए, क्योंकि आपकी पूरी प्रवृत्ति परोपकार के लिये ही है।'' मुनि बोले, ''वर्षाकाल निर्गमन हुआ है इसलिए अब तो हम तीर्थयात्रा के निमित्त विहार करेंगे। मुनि एक जगह स्थिर रहते ही नहीं। आप इस नगरी में घर घर आर्हंतबिंब करवाइये, जिससे फिर कदापि किसिको कोई व्याधि नहीं होगा।'' इस प्रकार कहकर सप्तर्षि वहां से उड़कर अन्यत्र गये। शत्रुघ्न ने हरेक घर में जिनबिंब करवाये, जिससे सब लोग निरोगी बने। फिर मथुरापुरी की चारों दिशाओं मे उसने उन सप्तर्षियों की रत्नजडित प्रतिमाएं बनवाकर स्थापित की।

उस समय में वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी के आभूषणरुप रत्नपुर नाम के नगर में **रत्नरथ** नाम का राजा था। उसे **चंद्रमुखी** नाम की रानी थी। उसकी कुक्षि से **मनोरमा** नाम की एक पुत्री हुई। रुप में भी मनोरमा ऐसी वह कन्या क्रमशः युवावस्था में आयी। तो 'यह कन्या किसे देनी ?' ऐसा विचार राजा कर रहा था, इतने में अचानक नारद वहाँ आ चढ़े। उन्होंने कहा, 'यह कन्या लक्ष्मण के योग्य है।' वह सुनकर गोत्रबैर के कारण से रत्नरथ के पुत्रों को कोप चढ़ा, तो उन्होंने भ्रूकुटि की संज्ञा से सेवकों को आज्ञा दी कि ''इस लंपट पुरुष को मारो।'' मारने की इच्छा से उठते सेवकों को जानकर बुद्धिमान नारद पक्षी की भाँति वहाँ से उडकर लक्ष्मण के पास आये और उस कन्या को पट में अंकित करके लक्ष्मण को दिखाया। फिर अपना

सर्व वृत्तांत विशेष रुप से उन्होंने लक्ष्मण को बताया। कन्या का रुप देखकर लक्ष्मण को अनुराग हुआ, तो क्षणभर में राक्षस और विद्याधरों से युक्त लक्ष्मण राम को लेकर वहाँ आये। लक्ष्मण ने पलभर में रत्नरथ को जीत लिया, तो उन्होंने राम को श्रीदामा और लक्ष्मण को मनोरमा कन्या दी। फिर राम-लक्ष्मण वैताढ्यगिरि की पूरी दक्षिण श्रेणी को जीतकर अयोध्या में आये और सुखपूर्वक राज्य पालने लगे।

लक्ष्मण को सोलह हजार स्त्रियाँ हुई। उसमें **विशल्या, रुपवती, वनमाला, कल्याणमाला, रत्नमाला, जितपद्मा, अभयवती** और **मनोरमा** ये आठ पटरानियाँ हुई। उसे ढाइसों पुत्र हुए। उसमें आठ पटरानियों के आठ पुत्र मुख्य थे। वे इस प्रकार - विशल्या का पुत्र **श्रीधर**, रुपवती का पुत्र **पृथिवीतिलक**, वनमाला का पुत्र **अर्जुन**, जितपद्मा का पुत्र **श्रीकेशी**, कल्याणमाला का पुत्र **मंगल**, मनोरमा का पुत्र **सुपार्श्वकीर्ति**, रतिमाला का पुत्र **विमल** और अभयवती का पुत्र **सत्यकार्तिक** नाम के थे। राम को चार रानियां थी। उनमें **सीता, प्रभावती, रतिनिभा** और **श्रीदामा** ऐसे नाम थे।

एक बार सीता ऋतुस्नान करके सो रही थी, उस समय रात्रि के अंत में स्वप्न में दो अष्टापद प्राणी विमान में से च्यूत होकर अपने मुख में प्रवेश करते हुए उन्होंने देखे, तो उन्होंने यह स्वप्न राम को कहा; तो राम बोले, 'देवी ! आपको दो वीर पुत्र होंगे। लेकिन विमान में से दो अष्टापद प्राणी च्यूत हुए ऐसा जो आपने देखा, उससे मुझे हर्ष नहीं होता।' जानकी बोली, 'हे प्रभु ! धर्म और आपकी महिमा से सब शुभ ही होगा।' उस दिन से सीता ने गर्भ धारण किया। सीता पहले भी राम को अति प्रिय थीं, वह गर्भ धारण करने के बाद विशेष प्रिय बनीं और राम के नेत्र को आनंदकारी चंद्रिका समान दिखने लगी।

सीता को गर्भवती जानकर उनकी सपत्नियों को ईर्ष्या उत्पन्न हुई, जिससे वे कपटी स्त्रियों ने सीता को कहा, 'रावण का रुप कैसा था वह अंकित करके बताओ।' सीता बोलीं, 'मैंने रावण के सब अंग देखे नहीं हैं, सिर्फ चरण देखे हैं इसलिए मैं उसे किस प्रकार अंकित करके दिखाऊँ ?' सपत्नियाँ बोली, 'उसके चरण ही अंकित करके दिखाओ। हमें वह देखने का बड़ा कौतुक है।' सपत्नियों के आग्रह से सरल स्वभाववाली सीता ने रावण के चरण अंकित किए। उस समय अचानक राम वहाँ आ पहुँचे, तो तत्काल वे बोल उठी - 'स्वामी ! देखिये, आपकी प्रिया सीता आज तक रावण को याद करती है। हे नाथ ! देखिये, स्वयं सीता ने रावण के दो चरण आलेखित किये हैं। इस समय सीता उसकी ही इच्छा करती है वह आप ध्यान में रखना।' यह देखकर राम ने गंभीरतापूर्वक बड़ा मन रखा, और सीता देवी को मालूम न पड़े त्यों वहां से तत्काल वापस लौट गये। सीता के दोष को सपत्नियों ने अपनी दासियों द्वारा लोगों

मे प्रकाशित किया, जिससे लोग भी प्रायः उसका अपवाद बोलने लगे।

एक बार वसंतऋतु आयी, तो राम ने सीता के पास आकर कहा, 'हे भद्रे ! आप गर्भ से खेदित हो, इसलिए आपको विनोद कराना चाहती हो त्यों यह वसंतलक्ष्मी आयी है। बकुल वगैरह वृक्ष स्त्रियों के अभिलाष से ही विकास पाते हैं, इसलिए चलो हम महेन्द्रोदय उद्यान में क्रीडा करने जाये।' सीता बोली, 'स्वामी ! मुझे देवार्चन करने का अभिलाष हुआ है, उस उद्यान के विविध प्रकार के सुगंधित पुष्पों से पूर्ण करें।' राम ने तत्काल अति श्रेष्ठ प्रकार से देवार्चन कराया। फिर परिवार सहित सीता को लेकर राम महेन्द्रोदय उद्यान में गये। वहाँ राम ने सुखपूर्वक बैठकर जिसमें अनेक नगरजन विचित्र क्रीडा करते है और जो अर्हंत की पूजा से व्याप्त है ऐसा वसंतोत्सव देखा। उस समय सीता का दाहिना नेत्र फड़क उठा, तो सीता ने संदेह से वह राम को बताया, 'यह चिह्न अच्छा नहीं है' ऐसा राम ने कहा, तो सीता बोली, 'क्या मेरे राक्षसद्वीप के निवास से अब भी दैव को संतोष नहीं हुआ ? क्या अब भी निर्दय दैव मुझे आपके वियोग के दुःख से भी अधिक दुःख देगा ? अन्यथा इतना बुरा निमित्त किसलिए हो ?' राम बोले, 'हे देवी ! खेद मत पाइये। कर्म के अधीन ऐसे सुख और दुःख सब प्राणियों को अवश्य भोगने ही पड़ते हैं, इसलिए आप हमारे मंदिर में चलो। देवता का अर्चन करो और सत्पात्र को दान दो। क्योंकि आपत्ति में एक धर्म की ही शरण है।' फिर सीता घर जाकर बडे संचयपूर्वक अर्हंत की पूजा करने लगी और सत्पात्र में उज्ज्वल दान देने लगी।

उस समय नगरी का यथार्थ वृत्तांत जानकर कहने के लिए खास नियुक्त राजधानी के बड़े अधिकारी राम के पास आये। विजय, सुरदेव, मधुमान, पिंगल, शूलधर, काश्यप, काल और क्षेम ऐसे उनके नाम थे। वे राम के समक्ष आकर वृक्ष के पत्र की तरह काँपने लगे। वे राम को कुछ भी बता नहीं सके, क्योंकि राजतेज बड़ा दुःसह है। उनको राम ने कहा, 'हे नगरी के महान अधिकारियों ! आपको जो कहना हो वह कहिए। एकांत हितवादी ऐसे आपको अभय है।' राम के अभयवचन से थोड़ा सा अवष्टंभ पाकर विजय नाम का अधिकारी जो उनमें मुख्य था वह सर्व प्रकार से सावधानीपूर्वक इस प्रकार बोला, "हे स्वामिन् ! आपको एक बात अवश्य बतानी है, यदि मैं न बताऊं तो मैंने स्वामी को छला है ऐसा माना जायेगा। परंतु जो बताना है, वह बड़ा दुःश्रव (मुश्किल) है। हे देव ! देवी सीता पर एक अपवाद आया है। वह दुर्घट है फिर भी लोग घटाते हैं और जिस युक्ति से योग्य हो त्यों दुर्घट होने पर भी विद्वान को उसके पर श्रद्धा करनी - ऐसा नीति का वचन है। लोग कहते हैं कि 'रतिक्रीडा करने की इच्छावाले रावण ने सीता का हरण करके उसे अपने घर में अकेला रखा, सीता उसके घर में लंबे समय तक रही, सीता रक्त हो या विरक्त हो, लेकिन स्त्रीलोलुप ऐसा रावण उसे समजाकर या जबरन

भी भोग कर दूषित किये बिना रहा नहीं होगा।' इस प्रकार लोग अपवाद बोलते हैं, इस तरह हम आपको कहते हैं इसलिए हे राम ! ऐसे युक्तिवाले अपवाद आप सहन मत करना। हे देव ! आपने जन्म से ही अपने कुल के जैसी निर्मल कीर्ति पायी है, तो ऐसे अपवाद को सहन करके आपके यश को मलिन मत करना।''

'सीता कलंक की अतिथि हुई' ऐसा निश्चय करके राम दुःख से मौन धरकर रहे। प्रायः प्रेम छोड़ना तो बड़ा असंभव है। फिर राम ने धैर्य रखकर उनको कहा, ''हे महापुरुषो ! आपने मुझे ठीक बताया। राजभक्त पुरुष किसी बात में उपेक्षा करते हीं नहीं। मैं सिर्फ स्त्री के लिए ऐसा अपयश सहन करुंगा नहीं।'' ऐसी प्रतिज्ञा करके राम ने उन अधिकारियों को बिदा किया। फिर रात्रि में राम गुप्त रुप से घर के बाहर निकले। उस समय जगह जगह पर लोगों के मुख से अपवाद सुनाई पडे कि ''रावण सीता को ले गया, सीता चिरकाल उसके घर में रही, फिर भी राम उसे वापस लाये और अब भी उसे सती मानते हैं। वह रागी रावण उसे ले गया था फिर भी उसने उसका उपभोग न किया हो ऐसा कैसे हो सकता है ? राम ने इतना भी नहीं सोचा, लेकिन रागी मनुष्य दोष को देखते ही नहीं।'' इस प्रकार सीता का अपवाद सुनकर राम घर गये। दुबारा अपवाद संबंधित बात सुन लाने के लिए खबरियों को आज्ञा दी।

राम सोचने लगे कि, ''जिसके लिए मैंने राक्षसकुल का भयंकर रुप में नाश किया उस सीता के सर पर यह कैसा कलंक आया ? मैं जानता हूँ कि सीता महासती है। रावण स्त्रीलंपट है और मेरा कुल निष्कलंक है। अब मुझे करना क्या ?'' वे खबरी सीता का अपवाद सुनकर आये और लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण सहित बैठे हुए राम के पास स्फूट रुप में कहने लगे। यह सुनकर लक्ष्मण ने क्रोध से कहा, ''जो जूठे कारणों से दोष की कल्पना करके सती सीता की निंदा करते हैं उनके लिए मैं कालरुप हूँ।'' राम बोले, ''भाई ! पहले हमने नियुक्त किये हुए गाँव के महत्तर पुरुषों ने आकर यह अपवाद मुझे कहा था। मैंने स्वयं भी उसे सुना है और इस समय ये खबरी भी कहते हैं। ये लोग मेरे कहने से प्रत्यक्ष सुनकर आये हैं। लोग सीता के स्वीकार की तरह ही यदि उसका त्याग करेंगे तो फिर हमारा अपवाद नहीं कहेंगे।'' लक्ष्मण बोले, ''आर्य ! लोगों के कहने से सीता का त्याग मत करना। क्योंकि लोग तो ज्यों त्यों बोलेंगे। उनके मुख बांधे नहीं जाते। लोग अच्छे राज्य में स्वस्थ हो तो भी राजा के दोष कहा करते हैं, जिससे राजा को उन्हें शिक्षा करनी या तो उपेक्षा करनी चाहिए।'' राम बोले, ''लोग ऐसे होते हैं यह बात सही है, लेकिन जो बात सब लोगों को विरुद्ध लगे उसका यशस्वी पुरुष को सदा त्याग करना चाहिए।'' इस प्रकार कहकर राम ने कृत्तांतवदन नाम के सेनापति को आज्ञा दी कि 'सीता गर्भवती है, फिर भी उसे अरण्य में छोड आईये।' यह सुनकर लक्ष्मण

ने रुदन करते हुए राम के चरणों में गिरकर कहा, 'हे आर्य ! इस महासती सीता का त्याग करना योग्य नहीं है।' राम ने कहा कि, 'अब इस बारे में मुझे कुछ भी कहना मत।' वह सुनकर वस्त्र से मुख ढककर रुदन करते हुए लक्ष्मण घर में गये। फिर राम ने कृतांतवदन को कहा, 'समेतशिखर की यात्रा के बहाने सीता को वन में ले जा, क्योंकि उसका ऐसा अभिलाष (मनोरथ) भी है।' फिर सेनापति ने आकर समेतशिखर की यात्रा संबंधित राम की आज्ञा सीता को बताई और उसे रथ में बैठाकर चला।

रथ में बैठकर जाते हुए सीता को उस समय कइं असगुन होने लगे, फिर भी सरलता के कारण वे शंकारहित होकर बैठी रही। क्रमशः बडी दूर जाने के बाद गंगासागर पार करके **सिंहनिनादक** नाम के अरण्य में पहुँचे, तब कृतांतवदन कुछ विचार करके खडा रहा। उसके नेत्र में से अश्रु टपकने लगे और उसका मुख ग्लानि पा गया। यह देखकर सीता बोली, 'सेनापति ! आप शोकयुक्त बने हो त्यों दुःखी मन से यहाँ क्यों खडे रहे हो ?' कृतांतवदन बोला, ''हे माता ! मैं दुर्वचन किस प्रकार कह सकूं ? सेवकपने से दूषित ऐसे मुझे यह अकृत्य करना पडा है। हे देवी ! राक्षस के घर रही, इस संबंधित लोकापवाद से भय पाकर राम ने इस गाढ़ वन में आपको त्याग दिया है। जब गुप्तचरों ने आपका लोकापवाद बताया तब राम आपका त्याग करने के लिए तैयार हुए। उस समय लोगों पर क्रोध से लाल नेत्र करते हुए लक्ष्मण ने राम को बहुत रोका, लेकिन राम ने उन्हें सिद्धाज्ञा से अटकाया, तो वे रोते रोते चले गये। फिर मुझे उन्होंने यह कार्य करने की आज्ञा दी। हे देवी ! मैं बड़ा पापी हूँ। अनेक प्रकार के हिंसक प्राणियों से भरपूर और मृत्यु के गृहरुप इस अरण्य में मेरे द्वारा छोडी गई आप केवल आपके प्रभाव से ही जियोगी।''

सेनापति के ऐसे वचन सुनकर सीता मूर्च्छा पाकर रथ में से पृथ्वी पर गिर पडी। सेनापति उनको मृत्यु पाया समझकर, अपने को पापी मानकर अत्यंत रुदन करने लगा। कुछ देर में वन के शीतल वायु से सीता कुछ सचेत हुई, लेकिन इस प्रकार बार बार मूर्च्छा और चेतना वह पाने लगी। इस तरह बहुत समय व्यतीत हो जाने के बाद वह स्वस्थ होकर बोली, 'यहाँ से अयोध्या कितनी दूर है ? अथवा राम कहां रहे है ?' सेनापति बोला, 'हे देवी ! अयोध्या नगरी यहाँ से बहुत दूर है, उसके बारे में क्या पूछना ? और उग्र आज्ञा देनेवाले राम की तो बात करने से भी क्या ?' उसके ऐसे वचन सुनने पर भी रामभक्त सीता दुबारा बोली, ''हे भद्र ! मेरा इतना संदेशा राम को बराबर कहना, 'यदि आप लोकापवाद से भय पाये होते तो आपने मेरी परीक्षा क्यों न की ? सब लोग को जब शंका होती है तब दिव्य वगैरह से परीक्षा करते हैं। मैं मंदभाग्यवाली तो इस वन में भी मेरे कर्मों को भोगूंगी, लेकिन आपने यह कार्य

आपके विवेक या कुल के योग्य किया नहीं है। हे स्वामी ! जिस प्रकार दुर्जन की वाणी से आपने मुझे एकदम छोड़ दिया त्यों मिथ्यादृष्टि की वाणी से श्री जिनभाषित धर्म को छोडना मत।''' इस प्रकार कहकर सीता मूर्च्छा खाकर भूमि पर गिर पड़ी। फिर सावधान होकर बोली, ''अरे ! मेरे बिना राम जियेंगे कैसे ? हा इति खेदे ! मैं मर गई। हे वत्स ! राम को कल्याण और लक्ष्मण को आशिष कहना। मार्ग में तुझे निरुपद्रवता हो। अब तू राम के पास शीघ्रता से जा।'' फिर 'महाविपरीत गतिवाले फिर भी सतियों मे मुख्य ऐसी यह सीता अब भी उसके उपर ऐसी महाभक्ति रखती है' ऐसा विचार करते हुए कृतांतवदन सेनापति सीता को प्रणाम करके और उसे वहाँ छोडकर मुश्किल से वहाँ से वापस लौटा।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते
महाकाव्ये सप्तमे पर्वणि सीतापरित्यागो नामाष्टमः सर्गः॥८॥

नवम सर्ग

सीता की शुद्धि और व्रतग्रहण

सीता भय से उद्भ्रांत (सोचकर) होकर वन में इधर-उधर घूमने लगी, और पूर्व के दुष्कर्म से दूषित ऐसी अपनी आत्मा की निंदा करने लगी। बार बार रुदन करते हुए और कदम कदम पर स्खलित (रुकती) होती हुई सीता आगे चली। वहाँ उन्होंने एक बडे सैन्य को आते हुए देखा। मृत्यु और जीवन में समान हृदयवाली सीता ने सैन्य को देखा फिर भी भय छोड़कर नमस्कार मंत्र में परायण हुई। उनको देखकर उलटे ही सब सैनिक 'यह दिव्यरुपवाली कौन स्त्री भूमि पर रही होगी ?' ऐसा कहते हुए उनसे भय पा गये। सीता का रुदन सुनकर उसके स्वर पर से उसके मन की ग्लानि सुनकर उस सैन्य के राजा के जानने में आया कि 'यह कोई महासती गर्भवती है।' फिर वह कृपालु राजा सीता के पास आया, तो उसे देखकर संदेह पायी सीता ने अपना वेश[1] उतारकर उसके समक्ष धरा। राजा बोला, "हे बहन ! आप ज़रा भी भय मत पाओ। आपके ये आभूषण आपके अंग पर ही रहो। निर्दय से भी निर्दय ऐसा आपका स्वामी कौन है कि जिसने आपका ऐसी दशा में त्याग किया ? जो हो वह कहो, कुछ भी शंका रखना मत। मैं आपके कष्ट से कष्टवाला हूँ।"

फिर उस राजा का सुमति नामक सचिव सीता के पास आकर कहने लगा कि, "**गजवाहन** नाम का राजा और **बंधुदेवी** रानी का पुत्र यह **वज्रजंघ** नाम का राजा है। वह पुंडरीक नगर का स्वामी है और परम श्रावक महासत्त्ववान और परनारी सहोदर है। इस वन में हाथियों को लेने के लिए आये थें, उस कार्य से कृतार्थ होकर वापस लौट रहे थे कि इतने में आपके दुःख से दुःखी बनकर यहाँ आया है, इसलिए आपको जो दुःख हो वह कहो।" यह सुनकर विश्वास पाकर सीता ने रोते रोते और उस कृपालु राजा तथा सचिव को रुलाते हुए अपना पूरा वृत्तांत कहा। राजा ने निष्कपटता से कहा कि "आप मेरी धर्मबहन हो, क्योंकि एक धर्म को प्राप्त हुए सभी परस्पर बंधु लगते हैं। मुझे आपके भाई भामण्डल जैसा मानकर आप मेरे घर चलो।" 'स्त्रियों को पतिगृह से दूसरा स्थान भ्रातृगृह ही है।' राम ने लोकापवाद से ही आपका त्याग किया है, कुछ स्वेच्छा से नहीं किया है। इसलिए मैं मानता हूँ कि अब वे राम पश्चात्ताप से आपके जैसे ही कष्टवान होंगे। वे विरहातुर दशरथकुमार चक्रवाक पक्षी की तरह एकाकी होने से आकुलव्याकुल होकर आपको कुछ समय में खोजने निकलेंगे।" इस प्रकार कहते हुए सीता ने उसके यहां जाना स्वीकारा। तो वह निर्विकारी वज्रजंघ राजा ने वहाँ शिबिका मंगवाई। उसमें बैठकर सीता ज्यों मिथिलापुरी में जाय त्यों पुंडरीकपुर में गई और वहाँ अहर्निश धर्मपरायण

---

१. आभूषण वगैरह।

होकर वज्रजंघ ने बताये हुए एक गृह में निवास करके रही।

अब कृतांतवदन सेनानी वापस लौटकर अयोध्या में आया। उसने रामभद्र के पास जाकर कहा कि "मैं सिंहनिनाद नाम के वन में सीता को छोड़ आया हूँ। वहाँ बार बार मूर्च्छा पाती और बार बार सचेत होती सीता ने मुश्किल से कुछ धैर्य का अवलंबन करके आपको इस प्रकार संदेश कहलवाया है कि, 'नीतिशास्त्र में, स्मृति में या किसी देश में ऐसा आचार होगा कि एक पक्ष के कहे दोष से दूसरे पक्ष को (पूछे बिना) शिक्षा हो ?' आप सदैव सोच-विचार के कार्य करनेवाले हो, फिर भी यह कार्य सोचे बिना किया है, लेकिन उसमें मैं मेरे भाग्य का ही दोष मानती हूँ। आप तो सदा निर्दोष ही हो, परंतु हे प्रभु ! जिस प्रकार दुर्जन के वचन से निर्दोष होने पर भी आपने मेरा त्याग किया, इस प्रकार अब मिथ्यादृष्टि के वचन से जैनधर्म का त्याग करना मत।' इस प्रकार कहकर सीता मूर्च्छा पाकर गिर गई। फिर थोड़ी देर बाद बैठी होकर बोली, 'अरे ! राम मेरे बिना कैसे जियेंगे ? मैं मर गई।' " कृतांतवदन के मुख द्वारा इस प्रकार के सीता के वचन सुनकर राम मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। लक्ष्मण ने तत्काल संभ्रम से वहाँ आकर चंदनजल का सिंचन किया। राम सचेत होकर बोले, 'वह महासती सीता कहां है, कि जिसका मैंने खल (शठ) लोगों के वचन से त्याग किया है ?' लक्ष्मण बोले, 'हे स्वामी ! महासती अभी भी अपने प्रभाव से उसी वन में रक्षित हुई होगी। इसलिए जब तक मैं आपके विरह से वह मृत्यु नहीं पा जाय तब तक मे आप स्वयंमेव जाकर खोज करके उन्हें वापस ले आइए।' लक्ष्मण के ऐसे वचन सुनकर राम कृतांतवदन सेनानी और दूसरे खेचरों को साथ लेकर विमान में बैठकर उस दारुण अरण्य में गये। वहाँ स्थल-स्थल, जल-जल, पर्वत-पर्वत और वृक्ष-वृक्ष सब जगह राम ने सीता को खोजा। लेकिन किसी जगह वह नजर नहीं आयी। फिर राम अति दुःखी बनकर बहुत देर तक दुबारा सोचने लगे कि 'जरुर किसी बाघ, शेर या दूसरे शिकारी प्राणी ने सीता का भक्षण किया होगा।' आखिर सीता की प्राप्ति संबंधी आशा छोड़कर राम वापस अयोध्या में आये। पुरजन बार बार सीता के गुणों की प्रशंसा करते हुए राम की निंदा करने लगे। राम ने अश्रुवाले नेत्र से सर्व सीतामय अथवा सर्व सीताशून्य मानकर उसका प्रेतकार्य किया। उनके हृदय में, दृष्टि समक्ष और वाणी में एक सीता ही थी। सीता किस जगह रही थी यह राम के जानने में नहीं आया।

यहां वज्रजंघ राजा के घर सीता ने जुड़वे पुत्र को जन्म दिया। उनके **अनंग लवण** और **मदनांकुश** ऐसे नाम रखे। बड़े मनवाला वज्रजंघ राजा अपने को पुत्र हो उससे भी ज्यादा हर्ष पाया और उसने उनके जन्म और नाम के महोत्सव किये। धात्रियों से लालन-पालन कराते और लीला से दुर्ललित ऐसे वे दोनों भाई भूचर अश्विनीकुमारों की तरह क्रमशः बढ़ने लगे। ऐसा

करते करते वे महाभुज बाल कलाग्रहण के और हाथी के बच्चे की तरह शिक्षायोग्य होकर राजा वज्रजंघ के नेत्रों को उत्सवरुप बन पड़े। उस समय एक **सिद्धार्थ** नाम का अणुव्रतधारी सिद्धपुत्र जो विद्याबल की समृद्धि से संपूर्ण और कला में तथा आगम में विचक्षण था, वह आकाशगामी होने से त्रिकाल मेरुगिरि पर के चैत्यों की यात्रा करता था। वह भिक्षा के लिए सीता के घर आया। सीता ने श्रद्धापूर्वक भातपानी से उसका सत्कार किया। फिर उसको सुखविहार पूछा। वह कहकर उसने सीता को उसका स्वरुप पूछा, तो सीता ने भाई की तरह उसके पास प्रारंभ से लेकर पुत्रजन्म तक का अपना सर्व वृत्तांत कहा। यह सुनकर अष्टांगनिमित्त को जाननेवाले उस दयानिधि सिद्धार्थ ने कहा कि, "आप वृथा शोक क्यों करती हो ? क्योंकि आपको लवण और अंकुश जैसे दो पुत्र हैं। श्रेष्ठ लक्षणवाले ये आपके पुत्र साक्षात राम-लक्ष्मण जैसे हैं, वे कुछ समय में आपका मनोरथ पूरा करेंगे।" इस प्रकार उसने सीता को आश्वासन दिया। फिर सीता ने आग्रह से उसकी प्रार्थना करके अपने पुत्रों को अध्यापन कराने के लिए उनको अपने पास रखा। सिद्धार्थ ने सीता के भव्य पुत्रों को सर्व कला इस प्रकार सिखाई कि जिससे वे देवों को भी दुर्जय बन पड़े। सर्व कला सीख रहे और वे युवावस्था को प्राप्त हुए। उस समय मानो नवीन कामदेव और वसंत सहचारी बना न हो ऐसे वे दिखने लगे। वज्रजंघ ने अपनी रानी लक्ष्मीवती के उदर से उत्पन्न हुई **शशिचूला** नाम की पुत्री और अन्य बत्तीस कन्याएं लवण को ब्याही, और पृथ्वीपुर के राजा **पृथु** की **अमृतवती** रानी से उत्पन्न हुई **कनकमाला** नाम की कन्या का अंकुश के लिए मांग की। बड़े पराक्रमी पृथु राजा ने कहलवाया कि 'जिसका वंश मालूम न हो उसको पुत्री किस प्रकार दी जाय ?' यह सुनकर वज्रजंघ ने क्रोध से उस पर चढ़ाई की। उसके साथ युद्ध में प्रथम **व्याघ्ररथ** नाम के पृथुराजा के मित्रराजा को बांध लिया, तो पृथुराजा ने अपने मित्र पोतनपुर के पति को सहायता के लिए बुलवाया। क्योंकि 'विपत्ति के समय मंत्र की तरह मित्र को याद करना योग्य है।' वज्रजंघ ने आदमी भेजकर अपने पुत्रों को युद्ध में बुलवाया। उस समय बहुत रोकने पर भी लवण और अंकुश उनके साथ आये।

दूसरे दिन दोनों सेना के बीच बड़ा युद्ध प्रारंभ हुआ। उसमें बलवान शत्रुओं ने वज्रजंघ के सैन्य का भंग कर दिया, तो अपने मातुल (मामा) के सैन्य का भंग होते देखकर लवण और अंकुश ने क्रोध पाया। जिससे तत्काल निरंकुश हाथी की भाँति वे दोनों अनेक प्रकार के शस्त्रों का प्रहार करते हुए दौडे। वर्षाऋतु के प्रवाह की बाढ़ को ज्यों वृक्ष नहीं सह पाये त्यों वे बलवान वीरों के वेग को शत्रु थोड़ा सा भी सहन नहीं कर पाये, जिससे पृथु राजा सैन्य सहित मीछेहठ करने लगा, तो राम के पुत्रों ने हँसते हँसते उससे कहा, 'आप प्रसिद्ध वंशवाले होने पर भी हम कि जो अज्ञात वंशवाले हैं उनसे बचकर रण में से क्यों पलायन करते हो ?'

उनके ऐसे वचन सुनकर पृथु राजा वापस मुड़कर बोला, 'आपके ऐसे पराक्रम से मैंने आपका वंश अब जान लिया है। वज्रजंघ राजा ने अंकुश के लिए मेरी जिस कन्या की माँग की वह सचमुच मेरे हित की ही बात है, क्योंकि ऐसा वर खोजने पर भी कहाँ मिलेगा ?' इस प्रकार नम्रतापूर्वक कहकर पृथुराजा ने पहले याची हुई अपनी कनकमाला नाम की कन्या उसी समय अंकुश को दी और अपनी पुत्री का वर अंकुश बने तो ठीक ऐसी स्पृहा रखनेवाले पृथु राजा ने सभी राजाओं के समक्ष उसी समय वज्रजंघ राजा के साथ संधि की। वज्रजंघ राजा वहीं छावनी डालकर कइं दिन रहा।

एक दिन वहाँ **नारद** मुनि आ चडे। वज्रजंघ राजा ने उनका अच्छी तरह से सत्कार किया। फिर सब राजा बैठे थे, वहाँ उनके समक्ष वज्रजंघ ने नारद को कहा, 'हे मुनि ! ये पृथु राजा अपनी कन्या अंकुश को देनेवाले हैं, तो इस लवण और अंकुश का जो वंश हो वह हमारे संबंधी इन पृथु राजा को बताओ, कि जिससे वह अपने जामाता का वंश जानकर संतोष पाये।' नारद हँसकर बोले, "ये दोनो कुमार का वंश कौन न जाने कि जिसकी उत्पत्ति का प्रथम अंकुर भगवान श्री ऋषभदेव है ? इन कुमारो के वंश में पहले हो चूके भरत वगैरह चक्रवर्ती राजा कथा में प्रसिद्ध हो गये हैं, और इस समय उनके प्रत्यक्ष राजकर्ता पिता राम लक्ष्मण को कौन नहीं जानता ? जब ये राजकुमार गर्भ में थे तब अयोध्या के लोग अपवाद बोलने लगे, जिससे भय पाकर राम ने सीता का त्याग किया।" उस समय अंकुश ने हास्य करके कहा, "हे मुनि ! राम ने दारुण वन में सीता का त्याग किया वह अच्छा कार्य नहीं किया। अपवाद की निराकृति कइं कारणों से बनती है, फिर भी विद्वान होकर राम ने ऐसा कार्य क्यों किया होगा ?" लवण ने पूछा, "वह अयोध्यापुरी यहाँ से कितनी दूर है कि जहाँ हमारे पिता अनुज बंधु के साथ परिवार सहित रहे हैं ?" नारद ने कहा, "विश्व में निर्मल ऐसे आपके पिता जहाँ रहते हैं वह अयोध्यापुरी यहाँ से एकसो साठ योजन दूर है।" फिर लवण ने नम्रतापूर्वक वज्रजंघ राजा को कहा कि, 'हम वहाँ जाकर रामलक्ष्मण को देखना चाहते हैं।' वज्रजंघ ने उनकी मांग स्वीकारी और वहाँ जाने का तय होने से पृथुराजा ने अपनी स्त्री कनकमाला को बड़े उत्सवपूर्वक तुरंत ही अंकुश को ब्याही।

फिर वज्रजंघ और पृथुराजा सहित लवण और अंकुश मार्ग में कइं देशों को साधते साधते **लोकंपुर** नाम के नगर समीप आये। वहाँ धैर्य और शौर्य से शोभित ऐसा **कुबेरकांत** नाम का अभिमानी राजा था। उसे उन्होंने रणभूमि में जीत लिया। वहाँ से आगे चलते हुए लम्पाक देश में **एककर्ण** नाम के राजा को जीत लिया और विजयस्थली में **भ्रातृशत** नाम के राजा को जीत लिया। वहाँ से गंगानदी पार करके कैलासपर्वत की उत्तरदिशा में चले। वहाँ नंदनचारु राजा

के देशों पर विजय पायी। आगे बढ़ते हुए रुष, कुंतल, कालांबु, नंदिनंदन, सिंहल, शलभ, अनल, शूल, भीम और भूतरवादी राजाओं को जीतते जीतते वे सिंधुनदी के विलोम (सामने) तट पर आये। वहाँ आर्य और अनार्य अनेक राजाओं को उन्होंने साध लिया। इस प्रकार कइं देशों के राजाओं को साधकर उन सब राजाओं के साथ वे वापस लौटकर पुंडरिकपुर में आये। वहाँ 'अहो ! वज्रजंघ को धन्य है कि जिसके भानजे ऐसे पराक्रमी हैं।' यूं कहते हुए नगरजनों ने देखे हुए और वीर राजाओं से घिरे वे दोनों वीर अपने घर आये, और विश्वपावनी सीता के चरण में प्रणाम किया। सीता ने हर्षाश्रु से नहलाकर उनके मस्तक पर चुंबन किया और 'तुम रामलक्ष्मण जैसे बनो' ऐसी आशिष दी।

फिर दोनों भाइयों ने वज्रजंघ को कहा, 'हे मामाजी ! आपने पहले हमें अयोध्या जाने की संमति दी है, तो अब इसे कार्यान्वित कीजिए। ये लंपाक, रुष, कालांबु, कुंतल, शलभ, अनल, शूल और दूसरे देश के राजाओं को साथ आने की आज्ञा दे, प्रयाणभेरी बजवाईए और सेनाओं से दिशाओं को ढँक दीजिए कि जिससे हमारी माता का त्याग जिसने किया है उस राम का पराक्रम हम देख ले।' यह सुनकर सीता रुदन करते हुए गद्‌गद शब्दों में बोली, "हे वत्सो ! ऐसा विचार करने से तुम अनर्थ की इच्छा क्यों करते हो ? तुम्हारे पिता और चाचा देवताओं को भी दुर्जय हैं, उन्होंने तीन लोक के कंटकरुप राक्षसपति रावण को भी मार डाला है। हे बालको ! यदि आपको आपके पिता को देखने की उत्कंठा हो तो नम्र होकर वहाँ जाओ। पूज्यजन के पास विनय करना योग्य है।" कुमार बोले, "हे माता ! आपका त्याग करनेवाले वे पिता शत्रुपद को प्राप्त हुए है, तो हमें उनका किस प्रकार विनय करना ? हम दोनों आपके पुत्र यहाँ आये हैं, ऐसा वचन उनके समक्ष जाकर हमसे किस प्रकार कहा जाय कि जो वचन उनको भी लज्जादायी लगें ? हमारे उस पराक्रमी पिता को युद्ध के लिए दिया हुआ आह्‌वाहन ही आनंददायी बन पडेगा, क्योंकि वह वचन दोनों कुल को यशकारी है।" इस प्रकार कहकर सीता रुदन करती रही फिर भी वे दोनों कुमार बड़े उत्साह से बड़ा सैन्य लेकर अयोध्या की और चले। कुठार और कुदाल धारण करनेवाले दश हजार मनुष्य उनके आगे चलने लगे कि जिन्होंने मार्ग में से वृक्षादिक छेद डाले और पृथ्वी को समतल कर दी। युद्ध की इच्छावाले वे दोनों वीर क्रमशः सेना द्वारा सब दिशाओं को भरते हुए अयोध्या समीप आ पहुँचे। अपनी नगरी के बाहर शत्रु का बड़ा सैन्य आया सुनकर राम लक्ष्मण चकित हो गये और हास्य करने लगे। लक्ष्मण बोले, 'आर्यबंधु राम के पराक्रमरुपी अग्नि में पतंगे की तरह गिरकर मरने के लिये यह कौन आया होगा ?' इस प्रकार कहकर शत्रुरुपी अंधकार में सूर्य समान लक्ष्मण, राम और सुग्रीवादिक से युक्त होकर युद्ध करने चले।

इस अवसर पर भामण्डल राजा नारद से सीता संबंधित सर्व समाचार सुनकर संभ्रम सहित तत्काल पुंडरीकपुर में सीता के पास आया। सीता ने रुदन करते हुए कहा, 'हे भ्राता ! राम ने मेरा त्याग किया है, और मेरे त्याग को सहन नहीं कर पाने से तेरे दोनों भानजे उनके साथ युद्ध करने गये हैं।' भामण्डल बोला, ''राम ने रभसवृत्ति (अनजाने) से तुम्हारा त्याग करके एक साहस तो किया है, अब पुत्रों का वध करके दूसरा साहस नहीं करेंगे ! राम यह उनके पुत्र हैं ऐसा नहीं जानते, इसलिए जब तक वे उनको मारे नहीं तब तक चलो, हम विलंब रहित वहाँ जा पहुँचे।'' इस प्रकार कहकर भामंडल जानकी को अपने विमान में बैठाकर लवण्ण और अंकुश की छावनी में आया। लवण और अंकुश ने सीता को नमस्कार किया। फिर सीता ने बताया कि, 'ये भामण्डल तुम्हारा मामा है।' तो लवण और अंकुश ने भामण्डल को भी प्रणाम किये। भामण्डल उन्हें मस्तक पर चुंबन करके उत्संग में बैठाकर हर्ष से रोमांचित होकर गद्‌गद स्वर में बोला, 'मेरी बहन सीता प्रथम वीर पत्नी तो थी, अब सद्‌भाग्य से वीर माता भी बनी हैं। आपके जैसे वीर पुत्रों से वह चन्द्र समान सचमुच निर्मल है। हे मानदायी भानजों ! यद्यपि आप वीर पुत्र हो और वीर भी हो फिर भी पिता और चाचा के साथ युद्ध मत करना। रावण जैसा योद्धा भी उनके समक्ष युद्ध में समर्थ नहीं हुआ है तो तुम भुजा की खुजलीमात्र से साहस द्वारा ऐसे महावीरो के साथ युद्ध करना आरंभ क्यों करते हो ?' लवण और अंकुश बोले, 'हे मातुल ! आप स्नेह से ऐसी भीरुता रखो मत। आपकी बहन और हमारी माता भी ऐसे ही भीरु वचन कहती हैं। हम जानते हैं कि राम लक्ष्मण के सामने युद्ध में कोई समर्थ नहीं है, लेकिन अब युद्ध छोड़कर हम किसलिए उनको लज्जा उत्पन्न करायें ?'' इस प्रकार वे कह रहे थे कि उनके सैनिकों का राम के सैनिको के साथ प्रलयकाल के मेघ की तरह युद्ध शुरु हुआ। तो 'सुग्रीवादिक खेचर इन महीचर सैन्य को मारे नहीं' ऐसी शंका से भामण्डल युद्ध में आये। फिर अतिशय रोमांच से जिनके कवच भी उच्छ्वास पा गये हैं ऐसे वे महाबल कुमार युद्ध करने के लिए तत्पर हुए। निःशकंतापूर्वक युद्ध करते हुए सुग्रीवादिक ने युद्ध में विरुद्ध पक्ष में भामण्डल को देखकर उसे पूछा कि, 'ये दोनों कुमार कौन हैं ?' भामण्डल ने कहा, 'ये राम के पुत्र हैं' तो यह खबर जानकर सुग्रीवादि खेचर तत्काल सीता के पास आकर प्रणाम करके उनके पास भूमि पर बैठे। उस समय प्रलयकाल में उद्‌भ्रांत बने समुद्र की तरह दुर्धर और महापराक्रमी लवण और अंकुश ने पलभर में राम के सैन्य को भग्न कर दिया। वन में शेर की तरह वे जहां जहां घूमे वहां वहां रथी, घुडसवार या हस्तीसवार कोई भी आयुध हाथ में लैकर खड़ा नहीं रह पाया। इस प्रकार राम के पूरे सैन्य को भग्न करके किसिसे भी अस्खलित ऐसे वे वीर राम और लक्ष्मण के साथ युद्ध करने आये। उन्हें देखकर राम-लक्ष्मण परस्पर कहने लगे, 'हमारे शत्रु यह सुंदर कुमार कौन होंगे ?' राम ने कहा, 'इन कुमारों पर

मन स्वाभाविक स्नेह धरता है, वह मन उन पर जबरन भी किस प्रकार द्रोह कर सकेगा ? उनको आलिंगन करने की इच्छा होती है, तो उनके साथ किस प्रकार वर्ताव करें ?' इस प्रकार रथ में बैठकर बोलते हुए ऐसे राम प्रति लवण और नम्र बने लक्ष्मण प्रति अंकुश ने कहा कि, "वीर युद्ध में श्रद्धावाले ऐसे हमने जगत में अजेय ऐसे पराक्रमी रावण को भी जीतनेवाले आपको देखा यह बहुत अच्छा हुआ। आपकी जो युद्धश्रद्धा को रावण ने भी पूरा नहीं किया, उस श्रद्धा को हम पूरा करेंगे और आप हमारी श्रद्धा को पूरी करेंगे।"

इस प्रकार कहने के बाद राम लक्ष्मण ने और लवण अंकुश ने अपने अपने धनुष्य का भयंकर ध्वनियुक्त आस्फालन किया। कृतांत सारथि ने राम के रथ को और वज्रजंघ राजा ने अनंगलवण के रथ को आमने-सामने जोड दिया। तथा लक्ष्मण के रथ को विराध ने और अंकुश के रथ को पृथु राजा ने आमने-सामने जोड दिया। फिर उन चारों का परस्पर युद्ध शुरू हुआ। उनके अग्र सारथि रथ को चतुरतापूर्वक घूमाने लगे और चारों वीर द्वंद्व युद्ध से विविध शस्त्रों का प्रहार करने लगे। उसमें लवण और अंकुश राम लक्ष्मण के साथ का अपना संबंध जानते हैं इसलिए वे सापेक्षतापूर्वक सोचकर युद्ध करते थे और राम लक्ष्मण उस संबंध से अज्ञात होने के कारण निरपेक्षतापूर्वक युद्ध करते थे। विविध आयुधों से युद्ध करने के बाद युद्ध का अंत लाना चाहते राम ने कृतांत को कहा कि "रथ को बराबर शत्रु के सामने रख।" कृतांत बोला, "मैं क्या करुं ? हमारे रथ के अश्व थक चूके हैं, इस शत्रु ने बाणों से उनके अंग अंग बेध डाले हैं। मैं चाबुक का मार मारता हूँ, फिर भी अश्व त्वरा नहीं करते, और शत्रु के बाणों से पूरा रथ भी जर्जरित हो गया है। इतना ही नहीं, मेरे हाथ भी शत्रु के बाण के आघात से जर्जरित हुए हैं। इसलिए घोडे की लगाम को ओर चाबुक को हिलाने की शक्ति मुझ में बिलकुल नहीं रहीं है।" राम बोले, "मेरा वज्रावर्त्त धनुष भी मानो चित्रस्थ हो त्यों शिथिल बन गया है, इसलिए वह भी कार्य नहीं कर सकता। यह मुशलरत्न शत्रु का नाश करने में असमर्थ हो गया, इस समय तो वह मात्र अन्न कूटने की योग्यतावाला ही रहा है। यह हलरत्न जो दुष्ट राजाओं रुपी हाथियों को वश करने में अनेक बार अंकुशरुप बना है, वह भी इस समय तो मात्र पृथ्वी को जोतने योग्य बना है। जो अस्त्र सदैव यक्षों से रक्षित और शत्रुओं का क्षय करनेवाले हैं उन अस्त्रों की यह क्या दशा हुई ?" इस प्रकार राम के अस्त्र ज्यों निष्फल हुए त्यों मदनांकुश के साथ युद्ध करते हुए लक्ष्मण के अस्त्र भी निष्फल हुए। उस समय अकुंश ने लक्ष्मण के हृदय में वज्र जैसा बाण मारा, जिससे लक्ष्मण मूर्च्छा खाकर रथ में गिर पड़े।

लक्ष्मण की मूर्च्छा देखकर दुःखी बने विराध ने रथ को रणभूमि में से अयोध्या तरफ चलाया, इतने में तो लक्ष्मण की चेतना लौट आयी, तो वह आक्षेपपूर्वक बोले, 'अरे विराध !

यह तूने नवीन क्या किया ? राम के भाई और दशरथ के पुत्र को यह अनुचित है ? जहां मेरा शत्रु हो वहाँ रथ को तत्काल ले जा, जिससे अब अमोघ वेगवाले चक्र से मैं उसका मस्तक छेद डालूं।' लक्ष्मण के ऐसे वचन सुनकर विराध ने अंकुश की तरफ रथ को चलाया, तो 'खडा रह, खडा रह' यूं कहकर लक्ष्मण ने हाथ में चक्र लिया। घूमते सूर्य का भ्रम कराता और अस्खलित गतिवाला वह चक्र आकाश में घुमाकर लक्ष्मण ने क्रोध से अंकुश पर छोडा। इस आते हुए चक्र को रोकने के लिए अंकुश और लवण ने उसके उपर अनेक शस्त्र छोडे, फिर भी वह स्खलित नहीं हुआ और तेजी से आकर अंकुश की प्रदक्षिणा करके ज्यों पक्षी वापस अपने घोंसले में आये त्यों लक्ष्मण के हाथ में लौट आया। लक्ष्मण ने दूबारा छोडा, तो उस समय भी ज्यों भागा हुआ हाथी गजशाला में लौट आये त्यों वह वापस लक्ष्मण के हाथ में आया। यह देखकर खेद पाये राम लक्ष्मण सोचने लगे कि, 'क्या इस भरत में ये दोनो कुमार ही बलभद्र और वासुदेव होंगे ? हम नहीं होंगे ?'

वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि अचानक **नारदमुनि** सिद्धार्थ सहित वहां आये। उन्होंने खेद पाये राम लक्ष्मण को इस प्रकार कहा, "अरे रघुपति ! हर्ष के स्थान पर आप खेद क्यों करते हो ? पुत्र से पाया पराभव किसके वंश के उद्योत के लिये नहीं होता ? ये दोनों कुमार लवण और अंकुश नाम के आपके पुत्र सीता की कुक्षि से उत्पन्न हुए हैं वे युद्ध के बहाने आपको देखने आये हैं, वे आपके शत्रु नहीं हैं। आपका चक्र ही उनके उपर नहीं चला, यह तो उसकी मुख्य निशानी है। पहले भी भरत का चक्र बाहुबलि पर नहीं चला था।" फिर सीता के त्याग से लेकर पुत्रों के युद्ध तक विश्व को विस्मयकारी संपूर्ण वृत्तांत नारद ने कह सुनाया। वह सुनकर विस्मय, लज्जा, खेद और हर्ष[1] से समकाल में आकुल-व्याकुल बने राम मूर्छा पा गये। फिर थोडी देर बाद चंदनजल के सिंचन से संज्ञा को प्राप्त हुए, तो पुत्रवात्सल्य से पूर्ण हृदयवाले राम-लक्ष्मण को साथ लेकर तुरंत ही अश्रु सहित लवणांकुश के पास जाने लगे। उनको आते हुए देखकर विनयवान लवण और अंकुश तत्काल रथ में से उतरकर सब अस्त्र छोड़कर क्रमशः राम लक्ष्मण के चरणों में गिरे। उनको आलिंगन करके उत्संग मैं बैठाकर राम ने उनके मस्तक पर चुंबन किया। फिर शोक और स्नेह से आकुल होकर वे उच्च स्वर में रुदन करने लगे। राम के उत्संग में से अपने उत्संग में लेकर लक्ष्मण ने उनके मस्तक पर चुंबन करते हुए और दृष्टि को अश्रुपूर्ण करते हुए अपनी भुजाओं से उनको आलिंगन दिया। पिता की तरह चरणकमल में लौटते उन विनीत पुत्रों को शत्रुघ्नने भी दूर से भुजा फैलाकर आलिंगन किया। दोनों सैन्य के अन्य राजा भी मानो विवाहप्रसंग में एकत्रित हुए हो त्यों एकत्रित होकर हर्ष पाने लगे।

१. पुत्रो का पराक्रम देखकर विस्मय, उनसे हुई अपनी हार से लज्जा, सीता त्याग की बात ताजी हो जाने से उसका वियोगजन्य खेद और पुत्र के आगमन से हर्ष।

अब अपने पुत्रों का पराक्रम और उनके पिता के साथ उनका समागम देखकर हर्ष पायी सीता विमान में बैठकर पुंडरीकपुर चली गयी। अपने जैसे ही पुत्रलाभ से रामलक्ष्मण बडा हर्ष पाये, और स्वामी के हर्ष से सब भूचर और खेचर भी हर्ष पाये। भामण्डल ने पहचान कराये हुए वज्रजंघ राजा ने राम लक्ष्मण के लम्बे काल के सेवक की भाँति नमस्कार किया। राम ने कहा, 'हे भद्र ! आप मुझे भामण्डल समान हो। आपने मेरे पुत्रों को बड़ा करके ऐसी दशा में पहुँचाया हैं।' इस प्रकार कहकर राम लक्ष्मण ने पुष्पक विमान में बैठकर अर्धासन पर बैठाये हुए पुत्रों सहित नगरी में प्रवेश किया। मार्ग में लोग विस्मय से ऊंची ऐडी करके, ऊंची गर्दन से जिनके पुत्रों को देखते और स्तुति करते थे ऐसे राम अपने मंदिर के पास आये। वहाँ राम लक्ष्मण अपने पुत्रों के साथ विमान में से उतरे। उसके बाद अयोध्या में पुत्र आगमन का बड़ा उत्सव हर्षपूर्वक करवाया।

एक बार लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान और अंगद वगैरह ने मिलकर राम को कहा कि, 'देवी सीता आपके विरह से परदेश में रहती हैं। इस समय इन कुमारों के बिना अति कष्ट में रहती होगी, इसलिए हे स्वामी ! यदि आप आज्ञा दे तो हम उन्हें यहाँ ले आये, नहीं तो वह पतिपुत्र रहित सीता सती जरुर मृत्यु पा जायेंगी।' राम ने थोडा विचार करके कहा, "अब सीता को ऐसे ही किस प्रकार लाया जाय ? लोकापवाद गलत हो तो भी वह बलवान विघ्नकारी है। मैं जानता हूँ कि सीता सती है, वह भी अपनी आत्मा को निर्मल जानती है, तो कुछ भी दिव्य करने में भय जैसा नहीं है। इसलिए वह देवी सर्व लोगों के समक्ष प्रत्यक्ष दिव्य करें और वह शुद्ध सती के साथ मेरा दुबारा गृहवास हो।" 'एवमस्तु' यो कहकर उन्होंने नगरी के बाहर विशाल मण्डप और उसके अंदर मंचो की श्रेणियां बनवाई। उसमें राजा, नगरजन, अमात्य और सुग्रीव, विभीषण वगैरह प्रमुख खेचर आकर बेठे। फिर राम की आज्ञा से सुग्रीव वहां से उठकर पुंडरीकपुर आया, और सीता को नमस्कार करके कहा, 'हे देवी ! राम ने आपके लिए यह **पुष्पक** विमान भेजा है, इसलिए उसमें बैठकर आप उनके पास पधारे।' सीता बोली, 'आज तक मुझे अरण्य में त्याग करने का दुःख शांत नहीं हुआ है, तो दुबारा दूसरे दुःख को देनेवाले राम के पास मैं किस प्रकार आऊँ ?' सुग्रीव ने दुबारा नमन करके कहा, "हे सती ! आप कोप न करें। राम आपकी शुद्धि के लिए बनाये हुए मंडप में सर्व नगरजनों के साथ मंच पर आकर बैठे हैं।" सुग्रीव ने इस प्रकार कहा तो पहले से ही शुद्ध होना चाहती सीता तत्काल उस विमान में बैठकर अयोध्या समीप आयी और नगर के बाहर महेन्द्रोदय उद्यान में उतरी। वहाँ लक्ष्मण और अन्य राजाओं ने अर्घ्य देकर उनको नमस्कार किया।

इसके बाद लक्ष्मण उनके सम्मुख बैठकर सर्व राजाओं सहित बोले, 'हे देवी ! आपकी

नगरी में और आपके गृह में प्रवेश करके उसे पवित्र करें।' सीता बोली, 'हे वत्स ! शुद्धि प्राप्त करने के बाद मैं नगरी में और गृह में प्रवेश करुंगी। क्योंकि इसके सिवा कदापि यह अपवाद शांत नहीं होगा।' सीता की ऐसी प्रतिज्ञा राजाओं ने राम को बतायी तो राम ने वहाँ आकर सीता को न्यायनिष्ठुर[1] (न्यायनिष्ठ) वचन कहे, "आप रावण के घर रही फिर भी यदि उसके साथ आपका भोग न हुआ हो तो इन सब लोगों के समक्ष शुद्धि के लिये दिव्य कीजिए।" सीता ने हँसते हँसते राम को कहा, "आपके जैसा अन्य कोई भी प्राज्ञ पुरुष नहीं होगा कि जो दोष जाने बिना महावन में त्याग करें और पहले दण्ड देकर अब मेरी परीक्षा करते हो। इससे भी आपका विचक्षणपना दिखाई देता है, परंतु मैं तो वह करने के लिए आज भी तैयार हूँ।" उसके ऐसे वचन सुनकर राम बिलखकर बोले, "हे भद्रे ! मैं जानता हूँ कि आप में बिलकुल दोष नहीं है, फिर भी लोगों ने उत्पन्न किये हुए दोष को टालने के लिये मैं इस प्रकार कहता हूँ।" सीता बोली, 'मैं पांच प्रकार के दिव्य करने के लिए तैयार हूँ। कहिए तो अग्नि में प्रवेश करुं, कहिए तो मंत्रित तांदूल (चावल) भक्षण करुं, कहिए तो तराजू पर चढूं, और कहिए तो तपाये हुए कोश[2] का पान करुं, और कहिए तो जिह्वा से शस्त्र के फल को ग्रहण करुं। कहिए, इसमें से आपको जो जंचे वह करुं।' उस समय अंतरिक्ष में रहकर सिद्धार्थ और नारद ने तथा भूमि पर रहे लोगों ने कोलाहल को अटकाकर इस प्रकार कहा, 'हे राघव ! यह सीता निश्चय से सती, सती, महासती हैं। इसमें आपको कुछ भी विकल्प नहीं करना है।' राम ने कहा, "हे लोगों ! आपमें बिलकुल मर्यादा नहीं है, संकल्पदोष आपसे ही उत्पन्न हुआ है। पहले आपने ही उनको दूषित कहा था, और इस समय वापस यहां ऐसा कहते हो और फिर दूर जाकर दूसरा कुछ कहोगे। पहले सीता किस प्रकार दोषित थीं और इस प्रकार किस समय शीलवान हुई यह कहो और फिर दुबारा दोष ग्रहण करने में आपको प्रतिंबध नहीं है, इसलिए मैं कहता हूं की सीता सर्व की प्रतीति के लिए प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करें।" इस प्रकार कहकर राम ने तीनसो हाथ लंबा चौडा और दो पुरुषप्रमाण गहरा एक खड्डा खुदवाया और वह चंदन के काष्ठों से भरवाया।

उस समय वैताढ्यगिरि की उत्तरश्रेणी में **हरिविक्रम** राजा का **जयभूषण** नाम का कुमार था। वह आठसो स्त्रियों को ब्याहा था। एक बार **किरणमंडला** नाम की उसकी एक स्त्री को **हेमशिख** नाम के उसके मामा के पुत्र के साथ सोयी हुई उसने देखी, तो उसने उस स्त्री को निकाल दिया और स्वयं तत्काल दीक्षा ली। किरणमंडला मृत्यु पाकर **विद्युद्रंष्ट्रा** नाम की राक्षसी बनी। जयभूषण मुनि घूमते घूमते अगली रात्रि को अयोध्या के बाहर आकर प्रतिमारुप में रहे। उस समय विद्युद्रंष्ट्रा उनको वहां आकार उपद्रव करने लगी। मुनि को तो शुभ ध्यान के बल

१. न्यायपूर्ण, न्याय से भरपूर। २. लोहे का रस अथवा सीसे का रस।

से उसी दिन केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तो उनका उत्सव करने के लिए इन्द्रदिक देव वहां आये। उस समय यहां सीता की शुद्धि हो रही थी, यह देखकर देवताओं ने आकर इन्द्र को बताया कि, 'हे स्वामी ! लोगों के जूठे अपवाद से सीता आज अग्निप्रवेश कर रही है।' यह सुनकर इन्द्र ने सीता का सान्निध्य करने के लिए तुरंत ही अपनी पैदल सेना के अधिपति को आज्ञा दी, और स्वयं जयभूषणमुनि के केवलज्ञान का उत्सव किया।

अब राम की आज्ञा से सेवकों ने चंदन काष्ठ से व्याप्त ऐसे उस गर्त्त में चारोंओर से नेत्रों को भी दुःप्रेक्ष्य ऐसी अग्नि प्रज्वलित की। ज्वालाओं से विकराल अग्नि को देखकर राम ने हृदय में सोचा, 'अहो ! यह तो अति विषम कार्य बन पड़ा ! यह महासती तो निःसंदेह अग्नि में प्रवेश करेगी, लेकिन प्रायः दैव की और दिव्य की विषम गति है। मेरे साथ यह सीता वनवास में निकली, रावण ने उसका हरण किया, फिर मैंने उसका त्याग किया और अंत में यह महाकष्ट उपस्थित किया। ये सब मुझसे ही हुआ है।' इस प्रकार राम विचार कर रहे थे कि, सीता खड्डे के पास आकर खड़ी रही और सर्वज्ञ का स्मरण करके इस प्रकार बोली, "हे लोकपालों ! हे लोगों ! सब सुनो। यदि मैंने राम के सिवा अन्य किसी पुरुष की अभिलाषा की हो तो यह अग्नि मुझे जला डाले, नहीं तो जल की तरह शीतल, स्पर्शवान बनें।" इस प्रकार कहकर नमस्कार मंत्र का स्मरण करके सीता ने उस अग्निकुंड में प्रवेश किया।

सीता ने जैसे ही अग्निप्रवेश किया, कि तत्काल अग्नि बुझ गई और वह खड्डा स्वच्छ जल से पूर्ण होकर वापीरुप बन गया। उसके सतीपने से संतुष्ट बने देव के प्रभाव से सीता लक्ष्मी की भाँति उस जल पर कमल पर रचे सिंहासन पर बिराजमान हुई। किसी जगह हुंकार ध्वनि, किसी जगह गुल गुल अवाज, किसी जगह भेरी जैसा नाद, किसि जगह ढोल जैसा ध्वनि, किसि जगह दिलि दिलि शब्द और किसि जगह खल खल नाद करता हुआ वह जल समुद्र जल की तरह आवर्तयुक्त नजर आया। फिर उद्वेल समुद्र की तरह उस वापी में से जल उछलने लगा और उसने बडे मंचों को भी डुबाना शुरु किया। विद्याधर तो उससे भयभ्रांत होकर उडकर आकाश में चले गये, लेकिन भूचर मनुष्य 'हे महासती सीता ! हमारा रक्षण करों, रक्षण करों' यूं पुकार मचाने लगे। फिर सीता ने ऊंचे आते उस जल को दो हाथ से दबाया तो उसके प्रभाव से वह जल वापी के प्रमाण जितना हो गया। उत्पल, कुमुद और पुंडरिक जाति के कमलों से पूर्ण हंसों से शोभित, कमलो की सुगंधी से उद्भ्रांत बने भ्रमर जिसमें संगीत कर रहे हैं, ऐसी और जिसके साथ तरंगे टकरा रही है ऐसे मणिमय सोपान से सुंदर और दोनो और रत्नजडित पाषाणों से बांधी हुई वह वापी बड़ी सुंदर दिखने लगी। सीता के शील की प्रसंशा करते हुए नारदादिक आकाश में नृत्य करने लगे। संतुष्ट बने देवों ने सीता पर पुष्पवृष्टि की। 'अहो !

राम की पत्नी सीता का कैसा यशस्वी शील है !'

इस प्रकार अंतरिक्ष और भूमि पर व्याप्त लोगों की ऐसी आघोषणा होने लगी। फिर माता का प्रभाव देखकर लवण-अंकुश बडा हर्ष पाये। फिर हंस की भाँति तैरते तैरते वे उसके पास गये। सीता ने मस्तक सूंघकर उनको अपनी दोनों और बैठाया। वे कुमार नदीतट पर रहे हाथी के दो बच्चों की तरह शोभा पाने लगे। उस समय लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भामण्डल, विभीषण और सुग्रीव वगैरह वीरों ने आकर सीता को भक्ति से नमस्कार किया। फिर अतिमनोहर कांतिवाले राम भी सीता के पास आये, और पश्चात्ताप तथा लज्जा से पूर्ण ऐसे उन्होंने अंजलि जोड़कर इस प्रकार कहा, "हे देवी ! स्वभाव से ही असत्दोष को ग्रहण करनेवाले नगरवासियों के छंद का अनुसरण करके मैंने आपका त्याग किया था, इसलिए मुझे क्षमा करना। जिसमें महा उग्र शिकारी प्राणी रहे हैं ऐसे अरण्य में आप आपके प्रभाव से जीवित रही वह भी एक दिव्य ही था फिर भी वह मुझे मालूम नहीं पड़ा। लेकिन अब तो यह सब क्षमा करके इस पुष्पक विमान मे बैठो, मेरे साथ घर चलो और पहले की तरह मेरे साथ रहो।" सीता बोली, 'इसमें आपका, लोगों का या अन्य किसिका दोष नहीं है, लेकिन मेरे पूर्वकर्म का ही दोष है। इसलिए दुःख के ऐसे आवर्त्त को देनेवाले कर्म से निर्वेद पाकर मैं तो अब उसका उच्छेद करनेवाली दीक्षा ही ग्रहण करुंगी।' इस प्रकार कहकर उसी समय सीता ने अपने मुष्टि से ही केश का लोच किया, और प्रभु ज्यों अपने केश इन्द्र को देते हैं, त्यों उसने वह केश राम को अर्पण किये। यह देखकर राम को तत्काल मूर्च्छा आ गई। वे स्वस्थ बने उससे पहले ही सीता जयभूषण मुनि के पास चली गई। जयभूषण केवली ने उसी समय विधिपूर्वक उसे दीक्षा दी और तपपरायण उस साध्वी को **सुप्रभा** गणिनी के परिवार में सौंप दी।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरिते महाकाव्ये
सप्तमे पर्वणि सीताशुद्धिव्रतग्रहणो नाम नवमः सर्गः॥९॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

दशम सर्ग

राम का निर्वाणगमन

मूर्छित बने राम को चन्दन के जल से सिंचन किया तो वे स्वस्थ होकर बोले कि, 'वह मनस्विनी सीता देवी कहां है ? अरे भूचरों और खेचरों ! यदि तुम्हे मरने की इच्छा न हो तो उस लोच की हुई मेरी प्रिया सीता मुझे तत्काल दिखाओ। हे वत्स लक्ष्मण ! भाथा और धनुष्य ला, मैं इतना दुःखी हूं फिर भी ये सब उदासीन और सुस्थित क्यों है ?' इस प्रकार कहकर, धनुष्य को ग्रहण करते राम को लक्ष्मण ने कहा, "हे आर्य ! यह क्या करते हो ? ये सब लोग आपके सेवक हैं। न्यायनिष्ठ ऐसे आपने दोष के भय से सीता का ज्यों त्याग किया था, त्यों स्वार्थनिष्ठ सीता ने संसार के भय से हम सबका त्याग किया है। आपकी प्रिय सीता ने यहां प्रत्यक्ष रुप में अपने आप अपने केश का लोच करके जयभूषण मुनि के पास जाकर दीक्षा ली है। उन महर्षि को हाल में ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। उस ज्ञान की महिमा करनी यह आपका भी कृत्य है। और हे स्वामी ! महाव्रतधारी सीता स्वामिनी भी वहां रही है, इसलिए वह निर्दोष साध्वी शुद्ध सतीमार्ग की भाँति इस समय मोक्षमार्ग बता रही है।" लक्ष्मण के ऐसे वचन सुनकर राम स्वभाव में स्थित होकर बोले, "हे बंधु ! उस केवली के पास मेरी प्रिया ने व्रत धारण किया यह बहुत अच्छा किया।" इस प्रकार कंहकर रामचंद्र परिवार सहित जयभूषण मुनि के पास गये और उनको नमस्कार करके राम ने देशना सुनी। देशना के अंत में राम ने मुनि को पूछा, 'हे स्वामी ! मैं आत्मा को नहीं जानता, तो मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ ? यह मुझे कहो और मुझ पर प्रसन्न हो।' केवली बोले, 'राम ! आप केवल भव्य ही हो इतना ही नहीं, इसी जन्म में ही केवलज्ञान पाकर सिद्धि को भी पानेवाले हो।' राम ने दुबारा पूछा, 'हे स्वामिन् ! मोक्ष तो दीक्षा लेने से होता है, और दीक्षा सर्व का त्याग करने से होती है, परंतु ये बंधु लक्ष्मण मुजसे दुस्त्याज्य है।' मुनि बोले, "आपको अभी बलदेवपने की संपत्ति भोगनी है, उसके अंत में निःसंग होकर, दीक्षा लेकर आप शिवसुख पाओगे।"

फिर विभीषण ने नमस्कार करके मुनि को पूछा, 'हे स्वामी ! रावण ने पूर्व जन्म के किस कर्म से सीता का हरण किया ? और किस कर्म से लक्ष्मण ने उसे युद्ध में मारा ? और यह सुग्रीव, भामण्डल, लवण, अंकशु और मैं किस कर्म से इन राम पर अत्यंत रागी हुए हैं ?' मुनि बोले, 'इस दक्षिण भरतार्ध में **क्षेमपुर** नाम के नगर में **नयदत्त** नाम का एक वणिक था। उसे **सुनंदा** नाम की स्त्री से **धनदत्त** और **वसुदत्त** नाम के दो पुत्र हुए। उन दोनों को **याज्ञवल्क्य** नाम के एक ब्राह्मण के साथ मैत्री हुई। उस नगर में **सागरदत्त** नाम का एक वणिक रहता था, उसे **गुणधर** नाम का पुत्र और **गुणवती** नाम की कन्या थी। सागरदत्त ने नयदत्त के योग्य

गुणवान पुत्र **धनदत्त** को गुणवती कन्या दी, और कन्या की माता **रत्नप्रभा** ने धन के लोभ से **श्रीकांत** नाम के वहाँ के एक धनिक को गुप्त रुप से गुणवती कन्या दी। यह बात याज्ञवल्क्य के जानने में आयी तो मित्र की वंचना (ठगाई) को सहन नहीं करनेवाले याज्ञवल्क्य ने अपने मित्र नयदत्त के पुत्रों को खबर दी। वह सुनकर वसुदत्त ने रात्रि में जाकर श्रीकांत को मार डाला और श्रीकांत ने भी खड्ग द्वारा वसुदत्त को मार डाला। वे दोनों वहां से मृत्यु पाकर विंध्याटवी में मृग बने। गुणवती कँवारी ही मृत्यु पाकर उसी वन में हिरनी बनी। वहां भी उसके लिए युद्ध करके उन दोनों ने मृत्यु पायी। इस प्रकार परस्पर बैर से उन्होंने चिरकाल तक भवभ्रमण किया।

अब यहां धनदत्त अपने भाई के वध से पीडित होकर धर्मरहितपन में भटकने लगा। एक बार रात्रि को क्षुधातुर बने उसने किसी साधुओं को देखा, तो उनके पास उसने भोजन मांगा। उनमें से एक मुनि बोले, 'हे भाई ! मुनि दिन को भी भातपानी का संग्रह नहीं रखते तो रात्रि में तो कहां से मिले ? और हे भद्र ! तूझे भी रात्रि में भोजन या पान करना योग्य नहीं है, क्योंकि ऐसे अंधकार में अन्नादिक में रहे जीवों को कौन जान सकता है ?' इस प्रकार मुनि ने दिए हुए बोध से उसके हृदय में मानो अमृत सिंचन हुआ हो ऐसा लगा। फिर वह श्रावक होकर मृत्यु पाने के बाद सोधर्म देवलोक में देवता बना। वहाँ से च्यूत होकर वह **महापुर** नगर में **धारिणी** और **मेरु** सेठ का **पद्मरुचि** नाम का परमश्रावक पुत्र बना। एक बार पद्मरुचि अश्वारुढ होकर दैवयोग से गोकुल जा रहा था। वहां मार्ग में एक वृद्ध वृषभ को गिरकर मरते हुए उसने देखा, तो उस कृपालु सेठ ने अश्व पर के उतरकर उसके नजदीक आकर उसके कान में पंचपरमेष्ठि नमस्कार मंत्र सुनाया। उस मंत्र से प्रभाव से मृत्यु पाने के बाद वह उसी नगर में **छन्नच्छाय** राजा की **श्रीदत्ता** रानी के उदर से **वृषभध्वज** नाम का पुत्र बना। वह कुमार स्वेच्छा से घूमते घूमते एक बार वृद्ध वृषभ की मृत्युभूमि के पास आया। वहाँ पूर्वजन्म के स्थान के दर्शन से उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। इससे उसने वहाँ एक चैत्य बनवाया। उस चैत्य की एक ओर दीवार पर उसने मरणस्थिथि पर आये वृद्ध वृषभ का चित्र अंकित किया तथा उसके पास उसके कान में नमस्कार मंत्र देते उस पुरुष को उसके समीप जीन सहित उसके अश्व को अंकित किया। फिर चैत्य के रक्षकों को आज्ञा दी कि, 'जो कोई इस चित्र को परमार्थ रुप में जान ले उस पुरुष की मुझे तत्काल खबर देना।' इस प्रकार कहकर कुमार वृषभध्वज अपने मंदरि में गया।

एक बार वह पद्मरुचि सेठ उस चैत्य में वंदना करने के लिए आया। वहाँ अर्हंत को वंदना करके उसने उस दीवार पर अंकित चित्र देखें तो चकित होकर बोला कि, ''इस चित्र का वृत्तांत

तो पूरा मुझे ही लागू होता है।'' रक्षकों ने जाकर तत्काल राजकुमार वृषभध्वज को यह खबर दी, तो वह तुरंत वहाँ आया और उसने पद्मरुचि को पूछा कि 'क्या आप इस चित्र का वृत्तांत जानते हो ?' उसने कहा, 'मृत्यु पाते हुए इस वृषभ को नमस्कारमंत्र देते हुए मुझे किसी प्रसिद्ध पुरुष ने यहाँ अंकित किया है।' यह सुनकर वृषभध्वज उसे नमस्कार करके बोला, ''हे भद्र ! जो यह वृद्ध वृषभ था वह नमस्कार मंत्र के प्रभाव से मैं यह राजपुत्र बना हूँ। यदि आप कृपालु ने उस समय मुझे नमस्कार मंत्र न दिया होता तो मैं तिर्यंच योनि में अथवा किसी अधम योनि में गया होता। आप सर्वथा मेरे गुरु, स्वामी और देव हो, इसलिए आपने दिया हुआ यह विशाल राज्य आप ही भोगिए।'' इस प्रकार कहकर वृषभध्वज श्रावकव्रत को पालते हुए पद्मरुचि के साथ अभेदपन से रहने लगा। फिर चिरकाल तक सम्यक् प्रकार से श्रावकपन पालकर मृत्यु पाकर वे दोनों इशान कल्प में परमार्द्धिक देवता बने। पद्मरुचि वहां से च्यूत होकर मेरुगिरि के पश्चिम तरफ वैताढ्यगिरि पर **नंदावर्त्त** नाम के नगर में **नंदीश्वर** नाम के राजा और **कनकाभा** नाम की रानी का **नयनानंद** नाम का पुत्र हुआ। वहां राज्य भोगकर दीक्षा लेकर **माहेन्द्र** नाम के चौथे देवलोक में देवता बना। वहां से च्यूत होकर पूर्वविदेह में क्षेमापुरी के राजा **विपुलवाहन** की **पद्मावती** रानी से **श्रीचंद्रकुमार** हुआ। वह राज्य भोगकर **समाधिगुप्त** मुनि से दीक्षा लेकर कालक्रम से ब्रह्म नामक पांचवे देवलोक में इन्द्र बना। वहां से च्यूत होकर उसका जीव यह महाबलवान बलभद्र **रामचंद्र** बना है, और वृषभध्वज का जीव क्रमशः यह **सुग्रीव** बना है। उस श्रीकांत का जीव भवभ्रमण करके **मृणालकंद** नगर में **शंभु** राजा और **हेमवती** रानी का **वज्रकंठ** नाम का पुत्र हुआ। वसुदत्त भव में भटककर उस **शंभु** राजा के पुरोहित **विजय** और उसकी स्त्री **रत्नचूडा** का **श्रीभूति** नाम का पुत्र हुआ। वह गुणवती भवभ्रमण करके उस श्रीभूति की **सरस्वती** नाम की स्त्री से **वेगवती** नाम की पुत्री हुई। वह युवावस्था में आते ही एक बार एक **सुदर्शन** नाम के प्रतिमाधारी मुनि को लोग वंदन करने जा रहे थे, तो उन्हें देखकर हास्य से कहा, 'हे लोगों ! इस साधु को मैंने पहले स्त्री के साथ क्रीडा करते देखे हैं, उस स्त्री को उन्होंने इस समय दूसरी जगह भेज दिया है, इसलिए ऐसे साधु की आप क्यों वंदना करते हो ?' यह सुनकर तत्काल सब लोग विषम (खराब) परिणामी होकर उस कलंक की उद्घोषणा करते हुए उस मुनि को उपद्रव करने लगे। इसलिए, 'जब तक यह कलंक मुज पर से उतरेगा नहीं, तब तक मैं काउस्सग्ग निवृत्त करुंगा नहीं' ऐसा उस मुनि ने अभिग्रह किया। फिर शासनदेवता के रोष से वेगवती का मुख तत्काल व्याधिग्रस्त हो गया और साधु पर उसने रखे कलंक का वृत्तांत सुनकर उसके पिता ने वेगवती का बड़ा तिरस्कार किया। पिता के रोष से और रोग से भय पाकर वेगवती ने सुदर्शन मुनि के पास आकर सब लोगों के सम्मुख ऊंचे स्वर में इस प्रकार कहा कि, 'हे स्वामी ! आप बिलकुल निर्दोष हो। मैंने आपके उपर यह जूठा दोषारोपण

किया है, इसलिए हे क्षमानिधि ! मेरे इस अपराध को क्षमा करें।' यह वचन सुनकर लोग वापस फिर से उस मुनि को पूजने लगे। तब से वह वेगवती परम श्रद्धालु श्राविका बनी। उसे रुववती देखकर शंभु राजा ने उसकी मांग की। श्रीभूति ने प्रत्युत्तर दिया कि 'मेरी कन्या मैं किसी मिथ्यादृष्टि को नहीं दूंगा।' यह सुनकर शंभु राजा ने श्रीभूति को मार डालकर वेगवती के साथ जबरन भोग किया। उस समय वेगवती ने शाप दिया कि 'मैं भवांतर में तेरे वध का कारण बनूंगी।' फिर शंभु राजा ने उसे छोड दिया तो हरिकांता आर्या के पास दीक्षा लेकर आयुष्य पूर्ण करके वह वेगवती ब्रह्मदेवलोक में गयी। वहां से च्यूत होकर वह जनक राजा की पुत्री सीता बनी, और पूर्व के शाप के कारण शंभुराजा का जीव राक्षसपति **रावण** की मृत्यु के लिये वह कारण बनी। पहले सुदर्शन मुनि पर जूठा दोषारोपण करने से इस भव में लोगों ने उस पर जूठा कलंक लगाया।

शंभुराजा का जीव भवभ्रमण करके **कुशध्वज** नाम के ब्राह्मण की **सावित्री** नाम की स्त्री से **प्रभास** नाम के पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ। एक बार उसने **विजयसेन** नाम के मुनि से दीक्षा ली और परिषह सहते हुए उसने बडा तप किया। एक बार **कनकप्रभ** नाम के इन्द्र जैसी बडी समृद्धिवाले विद्याधरों के राजा को समेतशिखर यात्रा के लिए जाते हुए प्रभास मुनि ने देखा, तो उसने 'इस तप के परिणामस्वरुप मैं इस विद्याधर राजा जैसी समृद्धिवाला बनूं' ऐसा संकल्प बांधा। वहां से मृत्यु पाकर वह तीसरे देवलोक में उत्पन्न हुआ। हे विभीषण ! वहां से च्यूत होकर वह आपका बड़ा भाई **रावण** बना। उस समय कनकप्रभ की समृद्धि देखकर संकल्प करने से वह सर्व खेचरों का अधिपति बना। धनदत्त और वसुदत्त का मित्र जो याज्ञवल्क्य ब्राह्मण था, वह कुछ भव में भटककर तू **विभीषण** बना। राजा का मारा हुआ वह श्रीभूति स्वर्ग में गया। वहां से च्यूत होकर सुप्रतिष्ठपुर में **पुनर्वसु** नाम का विद्याधर बना। एक बार कामातुर बने उसने पुंडरिक विजय में से **त्रिभुवनानंद** नाम के चक्रवर्ती की **अनंगसुंदरी** नाम की कन्या का हरण किया। चक्रवर्ती ने उसके पीछे विद्याधर भेजे। उनके साथ युद्ध करने में आकुलव्याकुल बने उस पुनर्वसु के विमान में से अनंगसुंदरी एक लतागृह पर गिर गई। इसकी प्राप्ति के लिए संकल्प बांधकर पुनर्वसु ने दीक्षा ली और वहां से मृत्यु पाकर देवलोक में जाकर वहां से च्यूत होने पर उसका जीव यह **लक्ष्मण** बना।

वह अनंगसुंदरी वन में रहते हुए उग्र तप करने लगी। अंत में उसने अनशन किया। उस स्थिति में उसे कोई अजगर निगल गया। समाधि से मृत्यु पाकर वह देवलोक में देवी बनी। वहाँ से च्यूत होकर वह इस लक्ष्मण की **विशल्या** नाम की पत्नी हुई है। जो वह गुणधर नाम का गुणवती का भाई था वह भ्रमण करके **कुंडलमति** नाम का राजपुत्र बना। उस भव में

चिरकाल श्रावकपना पालकर मृत्युं के बाद वह इस सीता का सहोदर **भामण्डल** हुआ है।

काकंदी नाम की नगरी में वामदेव नाम के ब्राह्मण को श्यामला नाम की स्त्री से **वसुनंद** और **सुनंद** नाम के दो पुत्र हुए। एक बार वे दोनो घर पर थे, तब एक मासोपवासी मुनि पधारे। उनको उन्होंने भक्तिपूर्वक प्रतिलाभित किया (वोहराया)। इस दानधर्म के प्रभाव से दोनों मृत्यु पाकर उत्तरकुरु में जुडवे बने। वहां से मृत्यु पाकर वह सौधर्म देवलोक में देवता बने। वहां से च्यूत होकर वापस काकंदीपुरी में ही वामदेव राजा की सुदर्शना नाम की स्त्री से **प्रियंकर** और **शुभंकर** नाम के दो पुत्र हुए। वहां चिरकाल राज्य पालकर दीक्षा लेने के बाद मृत्यु पाकर ग्रैवेयक में देवता बने। वहां से च्यूत होकर वे ये **लवण** और **अंकुश** बने हैं। उनकी पूर्वभव की माता सुदर्शना चिरकाल भवभ्रमण करके यह **सिद्धार्थ** बना है, जिसने इस राम के दोनों पुत्रों का अध्यापकपना किया है।''

इस प्रकार जयभूषण मुनि से सर्व के पूर्वभव सुनकर कइं लोग संवेग पाये। राम के सेनापति कृतांत ने तत्काल दीक्षा ली। राम लक्ष्मण जयभूषण मुनि को वंदना करके वहां से उठकर सीता के पास आये। सीता को देखकर राम को चिंता हुई कि ''यह सीता शिरीष के पुष्प जैसी कोमल राजपुत्री है, वह शीत और ग्रीष्म के क्लेश को कैसे सहन कर पायेगी ? और यह कोमल स्त्री सर्व भार से अधिक और हृदय से भी दुर्वह ऐसे संयमभार को किस प्रकार वहन करेगी ? अथवा जिसके सतीव्रत को रावण भी भग्न नहीं कर पाया ऐसी यह सती संयम में भी अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करनेवाली होगी।'' ऐसा विचार करके राम ने सीता की वंदना की, तो श्रद्धा से शुद्ध हृदयवाले लक्ष्मण ने और अन्य राजाओं ने भी वंदना की। फिर राम परिवार सहित अयोध्या में आये।

सीता और कृतांतवदन उग्र तप करने लगे। कृतांतवदन तप करके मृत्यु पाकर ब्रह्मदेव लोक में गया। सीता ने साठ वर्ष तक विविध तप किया और तीस अहोरात्रि अनशन करके मृत्यु पाकर वह बाइस सागरोपम के आयुष्यवाला **अच्युतेन्द्र** बना।

वैताढ्यगिरि पर आये कांचनपुर में **कनकरथ** नाम का विद्याधर का राजा था। उसे **मंदाकिनी** और **चंद्रमुखी** नाम की दो कन्याएं थी। उनके स्वयंवर में उसने राम लक्ष्मणादिक राजाओं को पुत्र सहित बुलाया। सब राजा आकर स्वयंवर मंडप में बैठे। मंदाकिनी स्वेच्छा से अनंगलवण को और चंद्रमुखी मदनांकुश को वरी। यह देखकर **श्रीधर** वगैरह लक्ष्मण के ढाइसो पुत्र क्रोध करके एक साथ युद्ध करने के लिए उठे। उनको युद्ध के लिए तैयार होते सुनकर लवण और अंकुश बोले कि 'उनके साथ कौन युद्ध करे ? क्योंकि ये भाई अवध्य हैं। ज्यों मेरे पिता में बडे का या छोटे का कुछ भेद नहीं हैं, त्यों उनके पुत्रों श्रीधरादि और हममें भी भेद

नहीं हो।' उनके ऐसे वचन खबरियों से जानकर लक्ष्मण के पुत्र स्वयं ऐसा अकृत्य आरंभ किया इसलिए अपनी आत्मा को कोसने लगे, और तत्काल वैराग्य पाकर, मातापिता से आज्ञा लेकर उन्होंने **महाबल** मुनि के चरणकमल में जाकर दीक्षा ली। फिर अनंगलवण और मदनांकुश उनक कन्याओं को ब्याहकर बलभद्र और वासुदेव के साथ अयोध्यापुरी में आये। एक बार भामण्डल राजा अपने नगर में राजमहल पर बैठा था, उस समय शुद्ध बुद्धिवाला वह अपने मन में इस प्रकार सोचने लगा कि, "वैताढ्य की दोनों श्रेणियों को वश करके सर्व जगह अस्खलित रुप में लीलापूर्वक विहार करके मैंने संसार संबंधित पूर्ण सुख पाया है। अब अंत में दीक्षा लेकर पूर्ण वांछनावाला बनूं।" इस प्रकार सोच ही रहा था कि उसके मस्तक पर आकाश में से बिजली गिरी, जिससे तत्काल मृत्यु पाकर वह देवकुरु में युगलिक रुप में उत्पन्न हुआ।

एक बार चैत्री पूर्णिमा के दिन **हनुमान** शाश्वता चैत्य की वंदना के करने के लिए मेरु पर्वत पर गये थे, वहाँ उसने सूर्य को अस्त होते हुए देखा। यह देखकर उसे विचार आया कि 'अहो ! इस जगत में सर्व का उदय और अस्त होता रहता है, इस बारे में इस सूर्य का प्रत्यक्ष दृष्टांत है। इसलिए जिसमें सब नाशवंत है, ऐसे इस जगत को धिक्कार है !' ऐसा विचार करके हनुमान ने अपने नगर में जाकर पुत्र को राज्य दिया और **धर्मरत्न** आचार्य से दीक्षा ली। उसके साथ साडे सातसों राजाओं ने भी दीक्षा ली, और उसकी पत्नियों ने **लक्ष्मीवती** आर्या से चारित्र्य ग्रहण किया। क्रमशः हनुमान मुनि ध्यानरुप अग्नि से सर्व कर्मों को जड में से जलाकर शैलेशी अवस्था प्राप्त करके अव्ययपद (मोक्ष) को पा गये।

हनुमान ने दीक्षा ली ऐसे समाचार जानकर राम सोचने लगे कि, 'भोगसुख का त्याग करके हनुमान ने कष्टकारी दीक्षा क्यों ली होगी ?' राम की ऐसी विचारणा अवधिज्ञान से जानकर सौधर्म इन्द्र ने सभा के बीच कहा, "अहो ! कर्म की गति विषम है ! राम जैसे चरमदेही (अंतिम भववाले) पुरुष इस समय धर्म पर हँसते है, इतना ही नहीं, वे उलटे ही विषयसुख की प्रशंसा करते हैं, यह कैसी बात ! लेकिन वह मुझे मालूम पडा। राम और लक्ष्मण का परस्पर ऐसा गाढ स्नेह है जो रामचंद्र को संसार पर बैराग आने नहीं देता।" इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर सुधर्मा सभा में से दो देवता कौतुक से उनके स्नेह की परीक्षा के लिये अयोध्या में लक्ष्मण के घर आये। उन्होंने तत्काल माया रचकर अंतःपुर की सभी स्त्रियों को करुण स्वर में आक्रंद करती हुई लक्ष्मण को दिखाई। वे ऐसा विलाप करने लगी कि 'हा पद्म (राम) ! हा पद्मनयन ! हा बंधुरुप कमल के सूर्य समान ! सर्व विश्व को भयंकर ऐसी यह आपकी अकाल मृत्यु क्यों हुई !' इस प्रकार रुदन करती हुई और खुले केश रखकर छाती कूटती हुई अंतःपुर की स्त्रियों को देखकर लक्ष्मण अति खेद पाकर बोले, 'अरे ! क्या मेरे जीवन के भी जीव ऐसे मेरे बंधु

राम मृत्यु पा गये ! छल से घात करनेवाले दुष्ट यमराज ने यह क्या किया !' इस प्रकार बोलते हुए लक्ष्मण के प्राण उसी वचन के साथ निकल गये ! अहो ! कर्म का विपाक दुरतिक्रम[१] है। फिर उसका शरीर सुवर्ण स्तंभ के आधार से सिंहासन पर स्थित होकर खुले मुख और लेप्यमय मूर्ति जैसा निष्क्रिय - स्थिर हो गया। इस प्रकार सहज में ही लक्ष्मण को मृत्यु पाया जानकर दोनो देवताओं ने खेद पाया और 'हमने यह क्या किया ?' यूं परस्पर पश्चात्तापपूर्वक कहने लगे और 'अरे ! इस विश्वाधार पुरुष को हमने मार डाला !' यूं अपनी आत्मा को कोसते हुए वे अपने देवलोक में चले गये।

लक्ष्मण को मृत्यु पाया देखकर अंतःपुर की स्त्रियाँ केश खुले छोडकर परिवार सहित महाआक्रंद करने लगी। उनका आक्रंद सुनकर रामचंद्र वहां दौड आये और बोले, 'अरे ! कुछ भी अमंगल जाने बिना आपने यह क्या आरंभ किया है ? यहां मैं जीवित हूँ और मेरा यह अनुजबंधु लक्ष्मण भी जीवित है। यदि कोई रोग उसे कष्ट दे रहा है तो उसका उपाय इसी समय औषधों से करते हैं।' इस प्रकार कहकर राम ने वैद्यों को और ज्योतिषियों को बुलवाया तथा मंत्र-तंत्र के अनेक प्रयोग कराये। मंत्र-तंत्र के सर्व प्रयोग निष्फल होते ही राम को मूर्छा आ गयी। पलभर में कुछ संज्ञा पाकर उच्च स्वर में वे विलाप करने लगे। उसे सुनकर विभीषण, सुग्रीव और शत्रुघ्न वगैरह भी अश्रुपात करते हुए और 'हम मारे गये' यूं बोलते हुए मुक्त कंठ से रुदन करने लगे। कौशल्यादिक माताएं पुत्रवधूओं के साथ अश्रु बहाते हुए बार बार मूर्छा पाकर करुण स्वर में आक्रंद करने लगी। प्रत्येक मार्ग में, प्रत्येक गृह में और प्रत्येक दुकान पर आक्रंद प्रवर्तित होने से सब रस को हरनेवाला शोकाद्वैत हो गया। उस समय लवण और अंकुश ने नमस्कार करके रामभद्र को कहा, 'हमारे इस लघुपिता की मृत्यु होने पर हम इस समय संसार से अति भय पाये हैं। यह मृत्यु सबको अचानक प्राप्त होती है इसलिए सभी पुरुषों को शुरु से ही परलोक के लिए तत्पर रहना चाहिए। इसलिए हे पिता ! हमें दीक्षा लेने की आज्ञा दो। इस लघुपिता लक्ष्मण के बिना अब हमें घर में रहना सहज भी युक्त नहीं है।' इस प्रकार कहकर लवण और अंकुश ने राम को नमन करके **अमृतघोष** मुनि से दीक्षा ली और क्रमशः वे दोनों मोक्ष पधारे।

भाई के मरण से और पुत्र के वियोग से राम बार बार मूर्च्छा खाकर मोह से इस प्रकार कहने लगे, "हे बांधव ! मैंने हाल ही में तुम्हारा कुछ भी अपमान नहीं किया, फिर भी तुमने अचानक ऐसा मौन क्यों धारण किया है ? हे भाई तुमने ऐसा किया तो मुझे मेरे पुत्रों ने भी छोड दिया। मनुष्यों को सो छिद्र पडने से उसमें सैंकडो भूत घुसते हैं।" इस प्रकार उन्मत्त समान बोलते राम को देखकर विभीषणादिक इकट्ठे होकर उनके पास आये और गद्‌गद होकर कहने

१. उल्लंघन हो न सके ऐसा।

लगे, "हे प्रभु ! आप ज्यों वीर पुरुषों में वीर हो, त्यों धीर पुरुषों में भी धीर कहलाते हो, इसलिए ऐसा लज्जादायी अधैर्य छोड़ दो। अब तो लोकप्रसिद्ध और समय के योग्य ऐसा लक्ष्मण का जो और्ध्वदैहिक कृत्य, वही अंगसंस्कार पूर्वक करना चाहिए।" उनके ऐसे वचन सुनकर राम कोप से होठ को फफडाते हुए बोले, "अरे दुर्जनों ! अभी मेरा भाई लक्ष्मण तो जीवित है, फिर भी आप ऐसा वचन क्यों बोलते हो ? बंधु सहित आप सबका अग्निदाहपूर्वक मृतकार्य करना चाहिए। यह मेरा भाई तो दीर्घायुष बने। हे भाई ! हे वत्स ! हे लक्ष्मण ! अब शीघ्र (तुरंत) बोलो। तुम्हारे न बोलने से ये दुर्जन प्रवेश करते हैं। तुम बहुत समय से मुझे किसलिए खेद उत्पन्न करा रहे हो ? अथवा हे भाई ! इन दुर्जनों के समक्ष तुम्हें कोप करना उचित नहीं है।" इस प्रकार कहकर लक्ष्मण को कंधे पर डालकर राम वहाँ से अन्यत्र चले। राम कभी लक्ष्मण के शव को स्नानागृह में लाकर स्वयं स्नान कराते, फिर स्वहस्त से चंदन का विलेपन करते, कभी दिव्य भोजन मंगवाकर भोजन से पात्र भरकर उस लक्ष्मण के शव के पास रखते, कभी अपने उत्संग (गोद) में लेकर उसके मुख पर बार बार चुंबन करते, कभी वस्त्र औढाकर उसे शय्या पर सुलाते, कभी स्वयं बुलवाकर स्वयं ही प्रत्युत्तर देते और कभी स्वयं ही संवाहक होकर उसके अंग को मर्दन करते। इस प्रकार स्नेह में उन्मत्तपने से दूसरा सब काम भूलकर विकलपने की चेष्टा करते हुए राम को छः मास बीत गये। राम ऐसे उन्मत्त हो गये हैं यह समाचार सुनकर इन्द्रजित के तथा सुंद राक्षस के पुत्र एवं अन्य खेचरशत्रु भी राम को मारने की इच्छा से राम के पास आये और जिसमें शेर सो रहा हो ऐसी गिरिगुहा को ज्यों छल-कपटवाले शिकारी अवरोध करें त्यों जिसमें उन्मत बने राम रहे हैं ऐसी अयोध्यापुरी को उन्होंने बड़ी सेना सहित आकर घेर लिया। यह देखकर राम ने लक्ष्मण को गोद में लेकर अपने धनुष्य का आस्फालन किया, जो वज्रावर्त्त धनुष्य बेसमय भी संवर्त्त का प्रवर्त्तक बने ऐसा था। उस समय राम के साथ के पूर्व के दृढ स्नेह से आसन का कंप होते ही जटायु देव महेन्द्र देवलोक में से कुछ देवताओं के साथ वहां आया। उसको देखकर 'आज भी देवता राम के पक्ष में है' यूं जानकर इन्द्रजित के पुत्र वगैरह खेचर वहां से भय पाकर तत्काल भाग गये। फिर जिसके देवता भी मित्र हैं और जिसके साथ उसका चाचा विभीषण है ऐसे राम से भय और लज्जा पाकर वे परम संवेग को प्राप्त हुए, और वैराग्य द्वारा गृहवास से पराङ्मुख होकर उन्होंने **अतिवेग** नाम के मुनि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की।

जटायु देव ने राम के पास आकर उनको बोध करने के लिए एक सूखे वृक्ष को बार बार जल सिंचने लगा, पषाण पर खाद डालकर कमल बोने लगा, मरे हुए वृषभ को हल में जोडकर उससे जमीन जोतकर बेसमय बीज बोने लगा और यंत्र में रेत डालकर उसमें से तेल निकालने के लिए उसे पैरने लगा। इस प्रकार सब असाध्य कार्य राम के समक्ष साधने लगा। यह देखकर

राम बोले, "अरे मुग्ध ! इस सूखे वृक्ष पर वृथा जलसिंचन किसलिए करता है ? उसे फल बैठने अति दुष्कर हैं, क्योंकि किसी जगह कदापि मूशल फलता नहीं और अरे मूर्ख ! इस पाषाण पर कमल के खंड को क्यों बोता है ? और इस निर्जल प्रदेश में मरे हुए वृषभ द्वारा बीज क्यों बोता है ? और रेती में से कदापि तेल भी नहीं निकलता, फिर भी उसे क्यों पैरता है ? उपाय को नहीं जानते ऐसे तेरे ये सर्व प्रयास वृथा हैं।" यह सुनकर जटायु देव हँसकर बोला, 'हे भद्र ! यदि आप इतना जानते हो तो अज्ञान के चिह्नरुप इस शव को कंधे पर क्यों ढोते हो ?' यह सुनकर लक्ष्मण के शरीर को आलिंगन करके राम उसके प्रति बोले, 'अरे ! मेरे बंधु के लिए ऐसा अमंगल क्यों बोलता है ? तू मेरी नज़र से दूर हट।'

इस प्रकार राम ने जटायु को कहा, तो उस समय कृतांतवदन सारथि जो देवलोक मे उत्पन्न हुआ था, वह भी अवधिज्ञान से यह बात जानकर राम को बोध करने के लिए वहां आया। वह देव भी मनुष्य का रुप धारण करके अपने कंधे पर एक स्त्री का शव लेकर राम के समीप से गुजरा। यह देखकर राम बोले, 'अरे मुग्ध ! इस स्त्री के शव को कंधे पर ढोने से तू उन्मत बना हुआ लगता है।' कृतांतदेव बोला, 'अरे ! तुम ऐसा अमंगल क्यो कहते हो ? ये मेरी प्रिय स्त्री तो जीवित है और फिर आप स्वयं भी इस शब को क्यों ढोते हो ? अरे बुद्धिमान ! यदि मैंने वहन की हुई मेरी स्त्री को यदि आप मरी हुई मानते हो तो यह तुम्हारे कंधे पर रखे हुए मृतक पुरुष को मरा हुआ क्यों नहीं मानते ?' इस प्रकार दूसरे भी कइं हेतु उसने दिखाये, जिससे राम को चेतना प्राप्त हुई, तो तत्काल उन्होंने सोचा कि सचमुच मेरा यह अनुज बंधु लक्ष्मण जीवित नहीं है। मृत्यु ही पाया लगता है। जब राम को इस प्रकार बोध हुआ तब जटायु और कृतांतदेव अपनी पहचान देकर अपने अपने स्थानक पर गये।

फिर राम ने अनुज बंधु लक्ष्मण का मृतकार्य किया और दीक्षा लेने की इच्छा से शत्रुघ्न को राज्य लेने की आज्ञा दी, परंतु 'मैं भी आपके साथ ही दीक्षा लूंगा,' ये बोलते हुए शत्रुघ्न ने राज्य और संसार से विमुख होकर राज्य लेने की ना कही तो राम ने लवण के पुत्र अनंगदेव को राज्य दिया और स्वयं चौथे पुरुषार्थ (मोक्ष) को साधने के लिए तत्पर हुए। फिर **अर्हद्दास** श्रावक ने बताये हुए मुनिसुव्रतस्वामी की अविछिन्न परंपरा में हुए **सुव्रत** नाम के महामुनि के पास वे गये। उनसे शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण और विराध वहैरह अनेक राजाओं के साथ राम ने दीक्षा ली। जब रामभद्र संसार में से निकले तब उनके साथ सोलह हजार राजा वैराग्य पाकर संसार में से निकंले तथा सडत्तीस हजार स्त्रियों ने भी दीक्षा ली। वे सब **श्रीमती** साध्वी के परिवार में रहीं।

गुरु के चरण समीप चौदहपूर्व और द्वादशांगीरुप श्रुत का अभ्यास करते हुए रामभद्र मुनि

ने विविध प्रकार के अभिग्रह सहित साठ वर्ष तक तपस्या की। फिर गुरु की आज्ञा से राम ने एकलविहारीपन स्वीकार किया, और निर्भयता से किसी अटवी में स्थित गिरिगुहा में जाकर रहे। उसी रात्रि में ध्यान में स्थित रहे रामभद्रमुनि को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ, उससे वे चौदह राजलोक प्रमाण पूरा विश्व करस्थवत् देखने लगे। इस प्रकार देखते ही, दो देवताओं के मायाकपट से मरे अपने अनुजबंधु लक्ष्मण को नरक में पड़ा देखा। यह देखकर राम मुनि इस प्रकार चिंतन करने लगे कि "मैं पूर्व जन्म में **धनदत्त** नामक वणिकपुत्र था और यह लक्ष्मण उस भव में भी मेरा अनुज बंधु **वसुदत्त** नाम का था। उस भव में वह वसुदत्त कुछ भी सुकृत्य करे बिना मृत्यु पा गया था और अनेक भव में परिभ्रमण करके मेरा अनुज बंधु लक्ष्मण बना था। यहाँ भी उसके सो वर्ष कुमारावस्था में बेकार चले गये। बाकी तीनसों साल मांडलिकपन में, चालीस वर्ष दिग्विजय में और ग्यारह हजार पांचसों साठ वर्ष राज्य में, यूं बारह हजार साल का पूरा आयुष्य क्रमशः कुछ भी सत्कर्म किए बिना अंत में नरक को देनेवाला हो गया। माया रचनेवाले उन दो देवताओं का इसमें कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि प्राणियों को कर्म का विपाक ही ऐसा होता है।" ऐसा चिंतन करते हुए राम कर्म का उच्छेद करने में अधिक उद्यमी होकर विशेष करके तपसमाधिनिष्ठ और ममतारहित बने।

एक बार छट्ठे उपवास के अंत में युगमात्र दृष्टि डालते राम **स्यंदनस्थल** नाम के नगर में पारणा करने के लिए गये। चंद्र के जैसे नयनोत्सवरुपी राम को पृथ्वी पर चलकर आता देखकर नगरजन अति हर्ष से उनके सम्मुख आये। नगर की स्त्रियाँ उनको भिक्षा देने के लिए अपने अपने गृहद्वार पर विचित्र भोजन से पूर्ण ऐसे पात्र हाथ में लेकर खड़ी रही। उस समय नगरजनों का हर्षकोलाहल ऐसा हुआ कि जिससे हाथी भी खूंटे उखाडकर भागे और घोडे ऊंचे कान करके भड़के। राम उज्झित[1] धर्मवाला आहार लेने की इच्छावाले होने से नगरजनों का दिया हुआ आहार लिए बिना ही राजगृह में गये। वहाँ **प्रतिनंदी** राजा ने उज्झित धर्मवाले आहार से राम को प्रतिलाभित किया। राम ने विधिपूर्वक आहार किया। देवताओं ने वहाँ वसुधारादि पांच दिव्य किए। फिर रामचंद्र वापस उसी अरण्य में चले गये। 'अब दुबारा नगर में क्षोभ न हो और किसिको मेरा संघट न हो।' ऐसी बुद्धि से शुद्ध विचारवाले राम ने इस प्रकार अभिग्रह धारण किया कि 'यदि अरण्य में ही भिक्षा के अवसर पर भिक्षा मिले तो ही मुझे पारणा करना, नहीं तो पारणा करना ही नहीं,' ऐसा अभिग्रह धारण करके शरीर में भी अपेक्षारहित ऐसे राम परम समाधि को प्राप्त होकर प्रतिमाधर बनकर रहे।

एक बार विपरीत शिक्षा दिये हुए वेगवान अश्व ने आकर्षित किया हुआ प्रतिनंदी राजा उस

१. तजा हुआ, भिक्षाचरों को देने के लिए निकाला हुआ, सबके भोजन करने के बाद बचा हुआ आहार।

तरफ आया। वहाँ आये **नंदनपुण्य** नाम के सरोवर में कीचड़ के अंदर उसका अश्व खूंप गया। उसके पीछे उसे ढूंढते ढूंढते उसका सैन्य भी आया। फिर कीचड में से अश्व को निकालकर प्रतिनंदी राजा ने वहीं छावनी डाली और स्नान करके वहीं परिवार सहित भोजन किया। उस समय ध्यान पूरा करके राम मुनि पारणा करने की इच्छा से वहाँ आये। प्रतिनंदी राजा उनको देखकर खड़ा हुआ, और बाकी बचे भातपानी से उसने राम को प्रतिलाभित किया, तो रामर्षि ने पारणा किया और आकाश में से पुष्पवृष्टि हुई। फिर राममुनि ने देशना दी, वह सुनकर प्रतिनंदी आदि राजा सम्यक्त्व युक्त द्वादश व्रतधारी श्रावक बने, तप से महातपस्वी राम वनवासी देवताओं द्वारा पूजे जाते हुए उस वन में चिरकाल तक रहे। राम मुनि भव का पार पाने की इच्छा से एक माह, दो माह, तीन माह और चार माह पर पारणा करने लगे। कोई बार पर्यंकासन पर रहते, कोई बार भुजा प्रलंबित करके खड़े रहते, कोई बार उत्कटित आसन में रहते, कोई बार ऊंचे बाहु करके रहते, कोई बार अंगूठे पर रहते, तो कोई बार पैर की ऐडी पर रहते। यूं विविध प्रकार के आसनों से ध्यान करते हुए राम दुस्तप तप करने लगे।

एक बार राममुनि विहार करते करते **कोटिशिला** नाम की शिला पर आये। जो शिला पहले लक्ष्मण ने विद्याधरों के समक्ष उठायी थी, उस शिला पर रहकर रात्रि में प्रतिमा धारण करते हुए राम क्षपकश्रेणि का आश्रय करते हुए शुक्लध्यानांतर[1] दशा को प्राप्त हुए। उस समय अवधिज्ञान से राम की इस प्रकार की स्थिति जानकर इन्द्र बनी सीता ने सोचा कि, 'यदि ये राम पुनः भवी[2] बने तो मैं वापस उनके साथ जुडूं, इसलिए क्षपकश्रेणी में बर्तते इन राम मुनि को अनुकूल उपसर्ग से ऐसे उपद्रवित करुं कि जिससे वह मृत्यु पाकर मेरे मित्ररुप देव बने।' ऐसा चिंतन करते हुए सीतेन्द्र राम के पास आये और वहाँ वसंतऋतु से विभूषित एक बड़ा उद्यान रचा। उसमें कोयल कुंजन करने लगी, मलयानिल (पवन) बहने लगा, पुष्पों की सुगंध से हर्ष पाते भंवरे गुंजार करते हुए घूमने लगे और आम्र, चंपक, कंकिल्ली, गुलाब व बोरसल्ली के वृक्षों ने सद्य कामदेव के नवीन अस्त्ररुप पुष्पों को धारण किया। फिर सीतेन्द्र ने सीता का रुप रचकर अन्य स्त्रियों को साथ लेकर राम के पास आकर कहा, "हे प्रिय ! मैं आपकी प्रिया सीता हूँ और आपके पास आयी हूँ। हे नाथ ! उस समय अपने को पीडित माननेवाली मैंने आपके जैसे रागी पति को छोड़कर दीक्षा ली, लेकिन बाद में मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ है। ये विद्याधरों की कुमारिकायों ने आज मेरी प्रार्थना करके कहा 'आपके पति राम को प्रार्थना करके हमारे पति बनाओ। आप दीक्षा छोड़ दो और वापस राम की पटरानी बनो। आपकी आज्ञा से हम भी राम की पत्नियां बनेगी।' इसलिए हे राम ! इन विद्याधरों की कन्याओं से ब्याहो। मैं पूर्व की भाँति आपके साथ क्रीडा करुंगी। मैंने किये हुए उस अपमान को क्षमा करों।" इस

१. शुक्लध्यान के प्रथम दो पायों ध्यान करने के बाद की दशा। २. संसारी - गृहस्थी।

प्रकार सीतेन्द्र के कहने के बाद उसने रची हुई खेचरकुमारियों ने कामदेव को सजीवन करने में औषधरुपी विविध प्रकार का संगीत करना प्रारंभ किया। सीतेन्द्र के ऐसे वचनों से विद्याधरियों के संगीत से और रची हुई वसंतऋतु से रामभद्र महामुनि जरा सा भी क्षोभ नहीं पाये। जिससे माघ माह की शुक्ल द्वादशी को रात्रि के अंतिम प्रहर में राममुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सीतेन्द्र और अन्य देवताओं ने विधिपूर्वक भक्ति से केवलज्ञान की महिमा की। फिर सुवर्णकमल पर बैठकर दिव्य चँवर और दिव्य छत्र से शोभित रामर्षि ने धर्मदेशना दी।

देशना के अंत में सीतेन्द्र ने अपने अपराध की क्षमा माँगकर प्रणाम करके लक्ष्मण और रावण की गति पूछी, तो रामर्षि बोले, "इस समय शंबूक सहित रावण और लक्ष्मण चौथी नरक में है, क्योंकि प्राणियों की गति कर्म के अधीन है। नरक के आयुष्य का अनुभव करके वह रावण और लक्ष्मण पूर्वविदेह के आभूषण रुप **विजयावती** नगरी में **सुनंद** और **रोहिणी** के पुत्र **जिनदास** और **सुदर्शन** नाम के पुत्र होगे। वहां निरंतर जिनधर्म पालेंगे। वहां से मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में देवता होंगे। वहाँ से च्यूत होकर वापस विजयापुरी में ही श्रावक बनेंगे। वहां से मृत्यु पाकर हरिवर्ष क्षेत्र में दोनों जुडवे पुरुष होंगे। वहां से मृत्यु पाकर देवलोक में जायेंगे। वहां से च्यूत होकर वापस विजयापुरी में कुमारवर्ती राजा और लक्ष्मीरानी के **जयकांत** और **जयप्रभ** नाम के कुमार होंगे। वहाँ जिनोक्त संयम को पालकर मृत्यु पाकर दोनो **लांतक** नाम के छट्ठे कल्प में देवता होंगे। उस समय तू अच्यूत देवलोक में से च्यूत होकर इस भरतक्षेत्र में **सर्वरत्नमति** नाम का चक्रवती बनेगा और ये दोनों लांतक देवलोक में से च्यूत होकर **इन्द्रायुध** और **मेघरथ** नाम के तेरे पुत्र होंगे। फिर तू दीक्षा लेकर वैजयंत नाम के दूसरे अनुत्तर विमान में जायेगा। इन्द्रायुध जो रावण का जीव है वह शुभ तीन भव करके तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन करेगा और तीर्थंकर बनेगा। उस समय तू वैजयंत विमान मैं से च्यूत होकर तू उसकी गणधर बनेगी। अंत में तुम दोनो मोक्ष पाओगे। लक्ष्मण का जीव जो तेरा पुत्र मेघरथ वह शुभगतियों को पायेगा। इसके बाद पुष्करवर द्वीप के पूर्वविदेह के आभूषणरुप **रत्नचित्रा** नगरी में वह **चक्रवती** बनेगा। चक्रवर्ती की संपत्ति भोगकर व दीक्षा लेकर क्रमशः वह तीर्थंकर बनेगा और अंत में निर्वाण को पायेगा।"

इस प्रकार सुनकर सीतेन्द्र रामर्षि को नमन करके पूर्व के स्नेह के कारण जहां लक्ष्मण दुःख भोग रहे थे वहां आये। वहां शंबूक को और रावण को सिंहादिक रुप रचकर लक्ष्मण के साथ क्रोध से युद्ध करते देखे। उस समय 'आपको परस्पर युद्ध करनेवालों को इसमें कुछ दुःख नहीं होगा' यूं बोलते हुए परम-अधार्मिकों ने क्रोध से उनको अग्निकुंड में डाला। वहाँ वे तीन जन जलने लगे। उसके अंदर अंग गलित होने से ऊंचे स्वर से पुकारते हुए उनको खींचकर

वापस परम-अधार्मिकों ने जबरन तपाये हुए तेल की कुंभी में डाला। वहां भी देह विलीन हो जाने के बाद उनको भट्ठी में डाला। वहां तडतडाट शब्द से फूटते हुए वे अत्यंत दुःखी हुए। इस प्रकार उनका दुःख देखकर सीतेन्द्र ने परम-अधार्मिकों को कहा; 'अरे दुष्ट ! क्या तुम नहीं जानते कि ये तीन उत्तम पुरुष हैं ? हे असुरों तुम दूर खिसक जाओ और इन महात्माओं को छोड़ दो।' इस प्रकार असुरों को रोककर उन्होंने शंबूक और रावण को कहा, 'आपने पहले ऐसा दुष्कृत्य किया है कि जिससे ऐसे नरक में आये हो। इस प्रकार उसका परिणाम देखने के बाद भी अब तक आप पूर्व बैर क्यों नहीं छोड़ते ?' इस प्रकार उनको युद्ध करते हुए रोककर सीतेन्द्र ने केवलज्ञानी राम ने उनका जो आगामी भवसंबंध कहा था वह सब लक्ष्मण और रावण को बोध देने के लिए कह सुनाया, तो वे बोले, 'हे कृपानिधि ! आपने बहुत अच्छा किया। आपके शुभ उपदेश से हम अब तक के दुःख भूल गये हैं, लेकिन पूर्व जन्मोपार्जित क्रूर कर्मों ने हमें यह लंबे काल का नर्कावास दिया है। इसका विषम दुःख अब कौन दूर करेगा ?' उनके ऐसे वचन सुनकर सीतेन्द्र करुणा लाकर बोले कि 'मैं आप तीनों को इस नरक में से देवलोक में ले जाऊंगा।' यूं कहकर उसने अपने हाथों से तीनों को उठाया, लेकिन तत्काल वे पारे की भाँति कण कण होकर उसके हाथ में से बिखर गये और फिर उनके अंग वापस जुड़ गये। इसलिए फिर सीतेन्द्र ने उठाये, उस समय भी पूर्व कि तरह बेरविखेर (अलग) हो गये और वापिस मिल गये। फिर उन्होंने सीतेन्द्र को कहा, 'हे भद्र ! आपके उद्धार करने से उलटा हमें अधिक दुःख होता है, इसलिए अब हमें छोड़ दो और आप देवलोक में जाओ।' फिर उनको छोड़कर सीतेन्द्र राम के पास आये, और राम को नमन करके शाश्वत अर्हंत की तीर्थयात्रा करने के लिए नंदीश्वरादिक तीर्थों में गये। वापस लौटते हुए मार्ग में देवकुरु क्षेत्र में भामण्डल राजा के जीव को युगलिक रुप में देखा, तो पूर्व के स्नेह से उसे भी अच्छी तरह प्रतिबोध करके सीतेन्द्र अपने कल्प में गये।

भगवान रामर्षि केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद पचीस वर्ष तक पृथ्वी में विचरकर भवी जीवों को बोध देकर पंद्रह हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके आखिर में कृतार्थ होकर शैलषी रुप अंगीकार करके शाश्वत सुखवाले आनंदमय पद को (मोक्ष को) प्राप्त हुए।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये
सप्तमे पर्वणि रामनिर्वाणगमनो नाम दशमः सर्गः॥१०॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

समाप्तं चेदं रामायणम्

एकादश सर्ग

श्री नमिनाथजी चरित्र

देवताओं ने जिनके चरण को पूजा है, जो कर्मरुपी वृक्षों में गजेन्द्ररुप है, और पृथ्वी में कल्पवृक्ष रुप है, ऐसे श्री नमिजिनेन्द्र को नमस्कार हो। अब इस विश्व के इस लोक और परलोक के उपकार के लिए उन प्रभु का पवित्र चरित्र कहा जायेगा।

इस जंबूद्वीप के पश्चिम विदेह में भरत नाम के विजय में संपत्ति के भंडाररुप **कौशांबी** नाम की नगरी है। उस नगरी में इन्द्र समान अखण्ड शासनवाला और सर्व अर्थ को सिद्ध करनेवाला **सिद्धार्थ** नाम का राजा था। उसमें गांभीर्य, धैर्य, औदार्य, वीर्य और बुद्धि वगैरह सर्व अद्‌भुत गुण परस्पर स्पर्धा करते हो त्यों आकर रहे थे। अति उन्नतिवाले उस राजा की विस्तार पायी संपत्ति मार्ग वृक्ष की छाया की तरह विश्व पर उपकार के लिए थी। कमल में राजहंस की भाँति उनके अत्यंत निर्मल मन में निरंतर एक धर्म ही निवास कर रहा था।

एक बार उस सिद्धार्थ राजा ने भव से विरक्त होकर तृण की तरह सब लक्ष्मी को छोड़कर **सुदर्शन** मुनि से दीक्षा ली। वह राजर्षि बीस स्थानकों में से कुछ स्थानकों की आराधना से तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित करके सम्यक् प्रकार से व्रत पालकर मृत्यु पाने के बाद **अपराजित** विमान में देवरुप में उत्पन्न हुआ।

इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र में जहाँ धर्म में आदरवंत लोग रहे हैं ऐसी **मिथिला** नाम की नगरी है। रत्नसुवर्णमय हवेलियाँ और दुकानों से गर्भित ऐसा उस नगरी का किल्ला मानो पृथ्वी के सर्वस्व का पिटारा हो त्यों शोभित है। चारोंओर रत्नजडित ऐसी उस नगरी के उद्यान की वापिकाएं उसके तीर पर रहे वृक्षों के पराग से पंकिल हो रही हैं। उस नगरी में सर्व शत्रुओं का विजय करनेवाले और परम लक्ष्मी से पृथ्वी के इन्द्रपद को धारण करनेवाला **विजय** नाम का राजा था। युवान पुरुषों को कामदेव जीते त्यों भ्रूकुटी चढाये बिना और सेना को सज्ज किये बिना वह लीला मात्र में शत्रुओं को जीत लेता था और वह राजा समुद्र जैसा अथाह, चंद्र जैसा आह्लादक, पवन जैसा बलवान और सूर्य समान तेजस्वी था। मानो अंगवती भूमि हो ऐसी सर्व अंतःपुर के मंडनरुप और शीलरुप मंडन से शोभित **वप्रा** नाम की उस राजा की मुख्य रानी थी। वह रानी गंगा जैसी स्वच्छ, गंभीर, जगत को पावनकारी और चंद्रिका की भाँति नयन को आनंद देनेवाली थी। और सत्य, वचन व शीलादिक जो जो उत्तम गुण दिखाई देते हैं, उन उज्जवल गुणों से वह वप्रादेवी स्त्रियों मे एक उदाहरण रुप थी।

यहाँ सिद्धार्थ राजा के जीव नें अपराजित विमान में तैतीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण किया। फिर वहाँ से च्यूत होकर आश्विन माह की पूर्णिमा के अश्विनी नक्षत्र में वप्रादेवी के उदर

में आकर अवतरित हुआ। उस समय तीन जगत में उद्योत हुआ। रात्रि के अवशेष भाग में तीर्थंकर के जन्म को सूचित करनेवाले चौदह महास्वप्न वप्रादेवी ने देखे। पिता के मनोरथ की तरह वह गर्भ क्रमशः बढ़ने लगा और माता को अति लावण्य देनेवाला तथा सुख देनेवाला हुआ। गर्भसमय पूर्ण होते ही श्रावण मास की कृष्ण अष्टमी को अश्विनी नक्षत्र में नीलकमल से लांछित और सुवर्ण कांतिवाले कुमार को देवी ने जन्म दिया। आसनकंप से यह हकीकत जानकर दिक्कुमारियों ने वहाँ आकर देवी और कुमार का विधिपूर्वक सूतकर्म किया। फिर शक्रेन्द्र प्रभु को मेरुगिरि के मस्तक पर ले गये। वहाँ अच्युतादि चौसठ इन्द्रों ने तीर्थजल से प्रभु को स्नात्र कराया। स्नात्र करने के बाद शक्रेन्द्र ने पुष्पादि से प्रभु का अर्चन करके आरती उतारकर इस प्रकार स्तुति करना प्रारंभ किया -

"हे परमेश्वर ! मोक्षमार्ग को कहनेवाले, सर्व कर्म का संहार करनेवाले, अनेक कषायों को प्रहार करनेवाले ऐसे आप जय पाओ। हे जगद्गुरु ! कुमति को टालनेवाले, जगत के नाखुदा (नायक) और सद्बोध के प्रवर्तक ऐसे आपको नमस्कार करता हूँ। सर्व विश्व को ऐश्वर्य देनेवाले, विश्व के पाप का तिरस्कार करनेवाले, अविकारी और उपकारी ऐसे आपसे यह पूरा जगत सनाथ है। धर्म के बीज को बोनेवाले, अतिशय संपत्ति को धरनेवाले और श्रुतस्कंध के रचनेवाले ऐसे आपको नमस्कार हैं। कुमार्ग को निवृत्त करनेवाले, मुक्तिमार्ग को दिखानेवाले और सबको उपदेश करनेवाले ऐसे आपसे अब धर्म की उत्पत्ति होगी। नवीन तीर्थ की प्रतिष्ठा करनेवाले, तपसंपत्ति का आचरण करनेवाले और जगत के अधिष्ठाता ऐसे आपके हम किंकर हैं। हे त्रैलोक्यशरण प्रभु ! मोक्ष को देनेवाले और विश्व को अभय देनेवाले ऐसे आपकी शरण को मैं प्राप्त हुआ हूँ। हे जगत्पति ! जैसे इस भव में आप मेरे स्वामी हुए हो, उसी प्रकार भवांतर में भी आप मेरे स्वामी बनो, इसके अलावा मेरा कोई अन्य मनोरथ नहीं है।"

इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र ने प्रभु को लेकर वप्रादेवी की करवट में ज्यों थे त्यों वापस रख दिये। प्रातःकाल में विजय राजा ने कारागृह में से कैदियों को छोड़कर बड़े हर्ष से पुत्र जन्म का महोत्सव किया। प्रभु जब गर्भ में थे तब शत्रुओं ने मिथिला नगरी को घेरा था, उस समय वप्रादेवी महल पर चढ़ी थी, उनको देखकर गर्भ के प्रभाव से सब शत्रु आकर विजय राजा को नमन कर गये थे, उस पर से राजा ने प्रभु का **नमि** ऐसा नाम रखा। इन्द्रं ने आदेश दी हुई धात्रियों से सदैव पालन किये गये श्री नमिनाथ दूसरे चंद्र हो त्यों बढ़ने लगे। बाल्यावस्था व्यतीत होते ही प्रभु पंद्रह धनुष ऊंची कायावाले बने, और पिता की आज्ञा से राजकन्या के साथ ब्याहे। जन्म से ढाई हजार वर्ष बाद भोगफलकर्म को जाननेवाले प्रभु ने पिता का दिया हुआ राज्य स्वीकारा। राज्यावस्था में पांच हजार वर्ष गये तो लोकांतिक देवताओं ने आकर प्रभु को कहा,

'तीर्थ प्रवर्तन कीजिए।' फिर नमिनाथ प्रभु **सुप्रभ** नाम के पुत्र को राज्य पर बैठाकर, तिर्यक्जृंभक देवताओं द्वारा भरे द्रव्य से वार्षिक दान देने लगे। वार्षिक दान दिये जाने के बाद सुप्रभ वगैरह राजाओं से और इन्द्रादिक देवों से घिरे प्रभु **देवकुरु** नाम की शिबिका में बैठकर सहस्राम्र वन की ओर चले।

क्रमशः जहाँ भँवरों का समूह कदंब वृक्षों को चुंबन करने में आसक्त था, उद्यानपाल मल्लिका के पुष्पों को चुनने में व्याकुल थे, झड़ते गुलाब के पुष्पों से जिसका भूमितल गुलाबी रंग का हुआ था, जहां शिरीष पुष्पों के समूह से कामीजन संथारा करता थे, और चलते रहट में से उछलते जलबिंदुओं से जहाँ ग्रीष्मऋतु होने पर भी वर्षाऋतु दिखती थी - ऐसे सहस्राम्र वन में प्रभु ने प्रवेश किया और आषाढ मास की कृष्ण नवमी को अश्विनी नक्षत्र में दिन के पिछले प्रहर प्रभु ने छट्ठ तप करके एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली। तत्काल प्रभु को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ।

दूसरे दिन वीरपुर में **दत्त** राजा के घर प्रभु ने क्षीर से पारणा किया। देवताओं ने वहाँ वसुधारादि पाँच दिव्य किए। दत्त राजा ने उस जगह पीठ बनवाई और प्रभु ने वहाँ से अन्यत्र विहार किया। नौ मास तक विहार करने के बाद अपने दीक्षास्थान वाले सहस्राम्र वन में प्रभु पधारे और छट्ठ का तप करके बोरसल्ली के वृक्ष के नीचे प्रतिमारुप में रहे। मागशिर्ष माह की शुक्ल एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में धातीकर्म का क्षय होने से प्रभु को उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवताओं ने तत्काल वहाँ आकर समवसरण रचा, जो एकसो अस्सी धनुष ऊंचा, आसोपालव (अशोक) के वृक्ष से सुशोभित था। उस आसोपालव के वृक्ष को प्रदक्षिणा देकर, तीर्थ को नमस्कार करके प्रभु पूर्वाभिमुख रत्नसिंहासन पर बिराजमान हुए। तत्काल व्यंतर देवताओं ने अन्य तीन दिशाओं में रत्नसिंहासन के उपर प्रभु के तीन प्रतिबिंब रचे। श्रीमान् चतुर्विध संघ आकर योग्य स्थान पर बैठा। फिर सौधर्मेन्द्र भगवंत को नमस्कार करके इस प्रकार स्तुति करने लगा -

"हे प्रभु ! आप केवलज्ञान रुप नेत्रों से इस पूरे जगत को देखते हो। हे तीन नेत्रोंवाले ! आपको नमस्कार हैं। पैतीस अतिशय सहित वचनवाले और चौतीस अतिशयवाले परमेष्ठि स्वरुप आपको नमस्कार है। हे नाथ ! मालवकौषिकी है; मुख्य जिसमें ऐसे ग्राम और राग से मनोहर और सर्व भाषा का अनुसरण करनेवाली आपकी वाणी की हम उपासना करते हैं। गरुड के दर्शन से ज्यों दृढ नागपाश भी टूट जाता है, त्यों आपके दर्शन से प्राणियों के दृढ कर्मपाश भी टूट जाते हैं। आपके दर्शन से प्राणी मानो मोक्ष की निःश्रेणी हो त्यों गुनठाणे की श्रेणी पर शनैः शनैः (धीरे कदम) चढ़ता है। हे स्वामी ! सुने हुए, याद किये हुए, स्तुति किये

हुए, ध्यान किये हुए, देखे हुए, और स्पर्शे हुए तथा नमस्कार किये हुए आप अनेक प्रकार से सुख के लिये ही होते हो। हे स्वामी ! हमारे पूर्व के पुण्यानुबंध से पुण्य ही है, कि जिससे असाधारण सुख देनेवाले ऐसे आप आज हमें दृष्टिगोचर हुए हो। हे नाथ ! हमारा स्वर्ग राज्य वगैरह सुख का चाहे सो हो, लेकिन आपकी देशना की वाणी कदापि हमारे हृदय से जायेगी नहीं।" इस प्रकार इन्द्र प्रभु के गुण के स्तुति करके विराम पाया। फिर तीन जगत के गुरु प्रभु ने इस प्रकार धर्मदेशना दी -

"यह संसार असार है। धन नदी की लहर जैसा चंचल है, और शरीर बिजली के विलास जैसा नाशवंत है। इसलिए चतुरजनों को चाहिये कि वे तीनों में सदैव अनास्था रखकर मुमुक्षु होकर मोक्षमार्ग रुपी यतिधर्म के लिये प्रयत्न करना। यदि ऐसा करने में अशक्त हो तो उसकी आकांक्षा रखकर सम्यक्त्व रुप बारह प्रकार के श्रावक धर्म के लिये तत्पर रहना। श्रावक को प्रमाद छोड़कर मन, वचन, काया से धर्म संबंधित चेष्टाओं द्वारा ही अहोरात्रि (समय) व्यतीत करने। श्रावक को ब्राह्म मुहूर्त में उठकर परमेष्ठि मंत्र का स्मरण करके सोचना चाहिए की मेरा क्या धर्म है ? मैं किस कुल का हूँ ? और मैरा क्या व्रत है ? फिर पवित्र होकर पुष्प, नैवेद्य और स्तोत्र से गृह चैत्य में देवपूजा करके, यथाशक्ति पचखाण करके, फिर बड़े देरासर में जाना। वहाँ विधिपूर्वक प्रवेश करके प्रभु को तीन प्रदक्षिणा करनी और पुष्पादिक से प्रभु को पूजकर उत्तम स्तोत्र से स्तुति करनी। फिर गुरु के पास जाकर वंदनापूर्वक विशुद्धात्मावाले प्राणी को पचखाण प्रकाशित करना। (पचखाण लेना) गुरु के दर्शन होते ही खड़े हो जाना। उनके आगमन के समय सामने जाना। मस्तक पर अंजलि जोड़नी, स्वयं आसन छोड़ (बीछा) देना और गुरु आसन पर बैठे तब भक्तिपूर्वक पर्युपासना (सेवा) करनी; तथा जब गुरु जाय तब पीछे जाना। इस प्रकार करने से गुरु महाराज की प्रतिपत्ति होती है। फिर गुरु के पास से वापस लौटकर अपने घर जाना; और फिर सद्बुद्धिपूर्वक धर्म से अविरोध युक्त अर्थचिंतन (व्यापार उद्योग) करना। फिर मध्याह्न काल में वापस जिनपूजा करके भोजन करना। इसके बाद शास्त्रवेत्ताओं के साथ शास्त्रों का रहस्य सोचना। इसके बाद संध्या समय पर दुबारा देवार्चन करके आवश्यक कर्म (प्रतिक्रमण) करना। और उत्तम प्रकार से स्वाध्याय ध्यान करना। रात्रि में योग्य समय पर देवगुरु के स्मरण से पवित्र होकर अल्पनिंद्रा करनी। और प्रायः अब्रह्मपन को त्यजना। बीच में यदि निंद्रा का छेद हो (निद्रा उड जाय) तो स्त्री के अंग के बारे में चिंतन करना, और महात्मा मुनियों ने जिनसे निवृत्ति कर दी हैं उसका विचार करना। स्त्री शरीर, ग्रंथिया, विष्टा, मूत्र, मल, श्लेष्म, मज्जा और अस्थि से भरपूर है और स्नायु से सी हुई चर्म की थेलीरूप है। यदि स्त्री के शरीर के अंदर के और बाह्य भाग का विपर्यरुप किया जाय अर्थात्

अंदर के भाग को बाहर लाया जाय तो हरेक कामी पुरुष को गीध और लोमड़ी से उसके शरीर का रक्षण करना पडेंगा। यदि कामदेव स्त्रीरुप शस्त्र से इस जगह को जीतना चाहता हो तो वह मूढ बुद्धिवाला हलके पीच्छ का शस्त्र क्यों नहीं लेता ? अहो ! संकल्प से उत्पन्न होनेवाले कामदेव ने इस विश्व को बहुत विडंबित किया है, लेकिन उस दुःख की जड संकल्प ही है, ऐसा चिंतन करना। जो जो विघ्नकारी दोष हो उसका प्रतिकार सोचना, और ऐसे दोष से मुक्त ऐसे मुनियों के लिये हर्ष पाना। सर्व जीवों के लिये रही महा दुःखदायी भवस्थिति के बारे में विचार करके स्वभाव से ही सुखदायी ऐसे मोक्षमार्ग की खोज करनी। उसमें जिनेश्वर देव, दयाधर्म और मुनि गुरु हैं ऐसे श्रावकपन से कौन सा अमूढ (पंडित) जन श्लाघा न करेगा ? और उत्तम प्राणी को तो ऐसे ऐसे समय पर ऐसे मनोरथ करने की 'मैं जिनधर्म रहित चक्रवर्ती होना नहीं चाहता, परंतु जिनधर्मवासित किंकर या दरिद्री होना चाहता हूँ, और सब अंग छोडकर जिर्ण वस्त्र पहनकर, मलिन शरीर रखकर व माधुकरी वृत्ति स्वीकार करके मैं मुनिचर्या को कब आचरूंगा ? दुःशील जनों का संसर्ग छोड़कर, गुरुके चरणरज का स्पर्श करके, योग का अभ्यास करते हुए मैं इस संसार को छेदने में कब समर्थ बनूंगा ? अर्धरात्रि में नगर के बाहर, कायोत्सर्ग करके स्तंभति बने मेरे शरीर के साथ वृषभ कब अपने स्कंध को घिसा करेंगे ? वन में पद्मासन करके और मृग के बच्चे को उत्संग में रखे हुए ऐसे मेरे मुख को वृद्ध मृग कब आकर सूंघेगे ? शत्रु और मित्र में, तृण और स्त्री में, सुवर्ण और पाषाण में, मणि और मृतिका में व मोक्ष और संसार में मेरी बुद्धि कब समान बनेगी ?' इस प्रकार मुक्तिगृह की सीढी रुप गुणश्रेणी पर चढ़ने के लिए परम आनंदरुपी लता के मूलभूत मनोरथ हंमेशां करते रहना चाहिए। इस प्रकार अहोरात्रि (दिनरात) की चर्या प्रमादरहितपन से आचरते हुए व यथार्थ प्रकार से कहे हुए व्रतों के लिये स्थित रहता श्रावक गृहस्थपन में भी विशुद्ध रहता है।''

प्रभु ने इस प्रकार देशना दी। जिसे सुनकर कइं मनुष्यों ने दीक्षा ली। उसमें **कुंभ** वगैरह सत्रह गणधर हुए। प्रभु की देशना के अंत में कुंभ नाम के गणधर ने देशना दी। उस देशना को पूर्ण होने के बाद इन्द्रादिकें देव प्रभु को नमस्कार करके अपने अपने स्थान पर गये।

श्री नमिनाथ प्रभु के तीर्थ में तीन नेत्रवाला, चार मुखवाला, सुवर्ण जैसे वर्णवाला, वृषभ के वाहन पर बेठनेवाला, चार दक्षिण भुजा में बीजौरा , शक्ति, मुद्गर व अभय तथा चार वामभुजा में नकुल, फरसी, वज्र व अक्षमाला को धारण करनेवाला **भ्रूकुटि** नाम का यक्ष हुआ। तथा श्वेत अंगवाली, हँस के वाहन पर बैठने वाली, दो दक्षिण भुजा में वरद और खड्ग तथा दो वाम भुजा में बिजौरा व कुंत को धारण करनेवाली **गांधारि** नाम की शासनदेवी हुई। ये दोनों देवता नमिनाथ प्रभु के शासनदेवता हुए। ये दोनो यक्ष व यक्षिणी निरंतर जिनके समीप रहते

थे ऐसे प्रभु ने नौ मास कम ढाई हजार वर्ष तक पृथ्वी पर विहार किया। इतने समय में प्रभु ने बीस हजार साधू, इकतालीस हजार साध्वियाँ, साडे चारसौं चौदह पूर्वधारी, एक हजार छसौं अवधिज्ञानी, बारह सौं आठ मनःपर्यवज्ञानी, सोलहसो केवलज्ञानी, पाँच हजार वैक्रियलब्धिवाले, एक हजार वादलब्धिवाले, एक लाख सत्तर हजार श्रावक और तीन लाख अडतालीस हजार श्राविका - इतना परिवार हुआ।

अपना मोक्षकाल नजदीक जानकर प्रभु समेतगिरि पर पधारे। वहाँ एक हजार मुनियों के साथ प्रभु ने अनशन ग्रहण किया। एक माह के अंत में वैशाख मास की कृष्ण दशम को अश्विनी नक्षत्र में श्री नमिनाथ प्रभु उन मुनियों के साथ अव्ययपद (मोक्ष) को प्राप्त हुए। कुमारावस्था में ढाई हजार वर्ष, राज्य में पाँच हजार वर्ष और व्रत में ढाई हजार वर्ष - यूं श्री नमिनाथ प्रभु का कुल दस हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण हुआ। मुनिसुव्रत प्रभु के निर्वाण के बाद छः लाख वर्ष बीते तब श्री नमिनाथ का निवार्ण हुआ। प्रभु के निर्वाण की खबर अवधिज्ञान से जानकर सभी इन्द्रों ने देवताओं सहित वहाँ आकर परिवार सहित श्री नमिनाथ भगवान का शरीरसंस्कारपूर्वक निर्वाणोत्सव किया।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये सप्तमे पर्वणि नमिनाथचरित्रवर्णनो नाम एकादशः सर्गः॥११॥

द्वादश सर्ग

श्री हरिषेण चक्रवर्ती का चरित्र

श्री नमिनाथ प्रभु विहार करते थे, उस समय में **हरिषेण** नाम के चक्रवर्ती हुए थे, उनका चरित्र अब कहा जायेगा।

इस भरतक्षेत्र में **श्री अनंतनाथ** प्रभु के तीर्थ में **नरपुर** नाम के नगर में, नर में अभिराम ऐसा **नराभरिराम** नाम का राजा हुआ था। वह राजा क्रमशः संसार से उद्वेग पाकर दीक्षा लेकर मृत्यु पाने के बाद सनत्कुमार देवलोक में परमार्द्धिक देवता बना।

श्री पांचाल देश के आभूषण जैसा, समृद्धि में स्वर्ग जैसा और शत्रुओं से भी अकम्प्य ऐसा **कांपिल्य** नाम का एक उत्तम नगर है। उस नगर में शेर जैसा पराक्रमी और ईक्ष्वाकु वंश में तिलकरुप **महाहरि** नाम का पृथ्वी पर सुख्यात राजा हुआ। जिसका मुखकमल सदा प्रफुल्लित रहता था ऐसे उस राजा को शीलरुपी अलंकार को धारण करनेवाली और रुप में पृथ्वी को अलंकृत करनेवाली **महिषी** नाम की पटरानी थी। नराभिराम राजा का जीव स्वर्ग में से च्यूत होकर उसके उदर में अवतरित हुआ। उस रात्रि में रानी को चौदह महा स्वप्न आने से 'यह पुत्र चक्रवर्ती की समृद्धिवाला होगा' ऐसी प्रसिद्धि हुई। समय आने पर उसने **हरिषेण** नाम के सुवर्ण समान कांतिवाले पुत्र को जन्म दिया, उसकी पंद्रह धनुष ऊंची काया हुई और पिता ने युवराजपद पर उसका अभिषेक किया।

पिता का राज्य पालते हुए उस महापराक्रमी हरिषेण को एक बार रत्नशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ। फिर क्रमशः पुरोहित, वर्द्धकि, गृहपति और सेनानी वगैरह तेरह रत्न भी प्रकट हुए। तो पहले चक्र के पीछे चलते हुए वे पूर्व दिशा की ओर मागध तीर्थ में गये। वहाँ दिग्विजय के प्रारंभ में **मागधकुमार देव** को साधा। वहाँ से दक्षिण दिशा तरफ जाकर दक्षिण समुद्र में रहे **वरदामपति** को उस महाभुज ने पलभर में वश किया। फिर पृथ्वी पर रहा इन्द्र हो त्यों अखंड पराक्रमी ऐसे हरिषेण ने पश्चिम दिशा में जाकर **प्रभासदेव** को साधा। वहाँ से दिग्गज जैसे पराक्रमी उस दसवें चक्री ने महानदी सिंधु के समीप जाकर **सिंधुदेवी** को वश किया। फिर दिशाओं को साधने में पंडित ऐसे उसने वहाँ से वैताढ्य समीप आकर **वैताढ्याद्रिकुमार** देव को विधिपूर्वक सिद्ध किया, और वहीं उस कृतार्थ वीर ने तमिस्रा गुफा के अधिष्ठायक देव को भी साधा। फिर सेनापति से सिंधुनदी का पश्चिम निष्कुट भी जिता दीया। फिर जिसके दक्षिण कुंभस्थल पर मणिरत्न रखा है ऐसे हाथी पर बैठकर सेनापति ने जिसके द्वार खोले हैं, ऐसी तमिस्त्र गुफा में उसने प्रवेश किया। काकिणी रत्न से बनाये मांडले द्वारा जिसने उद्योत हुआ है ऐसी उस तमिस्त्रा गुफा का, उन्मग्ना और निमग्ना नदी को उस पर बाँधे हुए पुल से उतरकर

श्री नेमिनाथ भगवान

श्री भोरोल तीर्थ

-: सौजन्य दाता :-

बालुबा जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ उपाश्रय

सुभानपुरा, वडोदरा

पार किया। फिर जिसका उत्तरद्वार अपने आप खुल गया है, ऐसी उस गुफा में से निकलकर आपात जाति के स्वच्छंदी म्लेच्छो को उसने जीत लिया और सेनापति से सिंधु का पश्चिम निष्कुट सिद्ध करवाकर क्षुद्र हिमालय के पास आकर उसके अधिष्ठायक देव को जीत लिया। फिर काकिणी रत्न से **ऋषभकूट** पर अपना नाम लिखकर आगे चलते हुए गंगानदी के पास आकर **गंगादेवी** को साध लिया और सेनापति द्वारा उसका पूर्व निष्कुट सधवाया। इसके बाद वैताढ्यगिरि उपर की दोनो श्रेणियों के विद्याधरों ने जिसको नजराना दिया है ऐसे उस चक्रवर्ती ने खंडप्रपाता गुफा के स्वामी **नाट्यमालदेव** को साध लिया और सेनापति ने खोली हुई उस खंडप्रपाता गुफा में प्रवेश किया। उस गुफा में चक्र का अनुसरण करके चलते हुए पहले की तरह वे बाहर निकले फिर सेनापति से गंगा का पूर्व निष्कुट सिद्ध करवाकर गंगाकिनारे पर पड़ाव डाला। वहाँ उनके उत्कृष्ट पुण्यप्रभाव से गंगा के मुख समीप मागधतीर्थ में बसनेवाले नौ निधि उन्हें स्वयंमेव सिद्ध हुए।

इस प्रकार चक्रवर्ती की संपूर्ण लक्ष्मी पाकर, षट्खंड भरत की विजय करके, संपत्ति में इन्द्र जैसा हरिषेण चक्रवर्ती कांपिल्यपुर में वापस आया। वहाँ देवों ने और मानवों ने उन पर चक्रवर्तीपन का अभिषेक किया। नगर में इसके संबंधित महोत्सव बारह वर्ष तक चला। फिर भारतवर्ष के सर्व राजा जिनकी आज्ञा मानते हैं, ऐसा वह महाभुज चक्रवर्ती धर्म की अबाधा से अनेक प्रकार के सुखभोग भोगने लगा। अंत में मोक्षगमन में उत्सुक ऐसे उस चक्रवर्ती ने संसार से विरक्त होकर एक लीला मात्र में राज्य छोड़कर दीक्षा ग्रहण की। उस हरिषेण चक्रवर्ती ने सवा तीन सौं वर्ष कुमारावस्था में, उतने ही वर्ष मंडलिकपने में, डेढसो वर्ष विजय करने में, आठ हजार आठसों पचास वर्ष चक्रवर्तीपने में और साढे तीन सों वर्ष दीक्षा की अ[illegible] में - यूं सर्व मिलाकर दस हजार वर्ष का आयुष्य भोगकर तीव्र व्रत आराधना द्वारा घातीकर्म का नाश करके केवलज्ञान पाकर नित्यसुखवाले पद (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये सप्तमे पर्वणि हरिषेणचक्रवर्तीचरित्रवर्णनो नाम द्वादशः सर्गः॥१२॥

त्रयोदश सर्ग

श्री जय चक्रवर्ती का चरित्र

श्री नमि भगवान के तीर्थ में दूसरे **जय** नाम के चक्रवर्ती हुए हैं, उनका पवित्र चरित्र अब कहते हैं।

इस जंबुद्वीप में ऐरवतक्षेत्र में **श्रीपुर** नाम का नगर है। उसमें **वसुंधर** नाम का एक सुख्यात राजा हुआ, उसे **पद्मावती** नाम की अतिप्रिय रानी थी, वह मृत्यु पाते ही मन में उद्वेग पाये उस राजा ने **विनयंधर** नाम के अपने पुत्र को राज्य पर बैठाया और स्वयं मनोहर नाम के वन में **वरधर्म** नाम के मुनि से धर्मतत्त्व सुनकर प्रतिबोध पाकर, दीक्षा ग्रहण की। चिरकाल दीक्षा पालकर मृत्यु पाने के बाद वह सातवें कल्प में देवपने को प्राप्त हुआ।

मगध देश में उसके मंडनरुप **राजगृही** नाम की नगरी है। वह लक्ष्मी का एक कुलगृह और स्वर्गपुरी का सहोदर हो त्यों लगता है। उस नगर में ईक्ष्वाकु वंश के तिलकरुप और न्यायमार्ग के उत्पत्तिस्थान **विजय** नाम का विजयी राजा हुआ। उसे **वप्रा** नाम की एक शीलवती रानी थी। वह रुपलावण्य की संपत्ति में पृथ्वी पर रही कोई देवी हो ऐसी लगती थी। कुछ काल जाने के बाद वसुंधर राजा का जीव महाशुक्र देवलोक में से च्यूत होकर उसकी कुक्षि में अवतरित हुआ। चौदह स्वप्न से सूचित ऐसा वह पुत्र जन्मा। उसका **जयकुमार** नाम पड़ा। वह युवावस्था पाया तो बारह धनुष ऊंची कायावाला और सुवर्ण जैसा कांतिमान बना। पिता ने उसका राज्य पर अभिषेक किया। एक बार उसके आयुधगृह में चक्रवर्ती के प्रथम चिह्न रुप **चक्ररत्न** उत्पन्न हुआ। फिर क्रमशः **छत्ररत्न, मणिरत्न, दंडरत्न, खड्गरत्न, चर्मरत्न** और **काकिणी रत्न** यूं कुल सात एकेंद्रिय रत्न उत्पन्न हुए। इसके अलावा **पुरोहितरत्न, गृहिरत्न, हस्तिरत्न, अश्वरत्न, सेनापतिरत्न, वार्द्धकिरत्न** और **स्त्रीरत्न** - ये सात पंचेन्द्रिय रत्न उत्पन्न हुए।

फिर जय चक्रवर्ती दिगविजय करने के लिए चक्र का अनुसरण करते हुए प्रथम पूर्वसागर तरफ आये। वहाँ मागधकुमार देव को वश किया। वहाँ से निवृत्त होकर दक्षिण सागर के पास आकर वरदामदेव को साधा। "इस पृथ्वी पर चक्रवर्ती के सम्मुख देव भी समर्थ नहीं है।" वहाँ से पश्चिमसागर की ओर जाकर सिर्फ एक बाण छोडने से लीलामात्र में प्रभास देव को वश कर दिया। फिर इन्द्र जैसे पराक्रमी उस चक्रवर्ती ने दूसरे सिंधुराज की तरह सिंधुदेवी को और वैताढ्यगिरि के अधिष्ठायक वैताढ्याद्रिकुमार देव को साध लिया। फिर स्वयं ने कृतमालदेव को वश किया और सेनापति से सिंधु महानदी के पश्चिम निष्कुट को सिद्ध कराया। फिर उस महाभुज ने यथाविधि तमिस्रा गुफा में प्रवेश करके दूसरी ओर निकलकर आपात जाति के किरातों को जीत लिया। फिर देव समान पराक्रमवाले जय चक्रवर्ती ने सेनापति द्वारा सिंधु के

उपर का पश्चिम निष्कुट सिद्ध कराया और स्वयं ने हिमवत्कुमार को जित लीया। फिर ऋषभकूट पर काकिणी रत्न से अपना नाम लिखकर सेनानी से गंगा के उपर का पूर्व निष्कुट सिद्ध करवाकर स्वयं ने विजय पायी। इसके बाद स्वयं ने गंगादेवी साधकर विद्याधरों को जीतकर, खंडप्रपाता गुफा में रहे नाट्यमाल देव को साध लिया। खंडप्रपाता गुहा द्वारा वैताढ्यगिरि नीचे से नीकले और गंगा का प्राची निष्कुट सेनापति से सिद्ध कराया। फिर चक्रवर्ती ने गंगानदी के किनारे पडाव डाला, वहाँ गंगानदी के मुख में रहते नैसर्प वगैरह नव निधि उनके वश हुए।

इस प्रकार चक्रवर्ती की संपूर्ण लक्ष्मी पाकर जय चक्रवर्ती अपने नगर में वापस आये। वहाँ देवों और मानवों ने उनका चक्रवर्तीरुप में अभिषेक किया। फिर अखंडित पराक्रमवाले जयचक्रवर्ती ने षट्खंड पृथ्वी को चिरकाल तक भोगा, और क्रमशः संसार से उद्वेग पाकर दीक्षा ग्रहण की। जय चक्रवर्ती ने तीनसों वर्ष कुमारावस्था में, उतने ही वर्ष मांडलिकरुप में, सों वर्ष दिग्विजय में, एक हजार नौसो वर्ष चक्रवर्तीरुप में और चारसो वर्ष दीक्षापालन में - यूं कुल मिलाकर तीन हजार वर्ष व्यतीत किए। इस प्रकार सर्व आयुष्य पूर्ण करके व्रत को अच्छी तरह पालकर, घातीकर्म का क्षय होते ही उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, ऐसे जयचक्रवर्ती अक्षय सुख के स्थानरुपी केवल्य (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्र विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये सप्तमे पर्वणि जयचक्रवर्तिचरित्रवर्णनो नाम त्रयोदशः सर्गः॥१३॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

॥ स्वागतावृत्तम् ॥

रामलक्ष्मणदशाननानमिस्तीर्थ कृच्च हरिषेण चक्रभृत् ।
चक्रभृच्च जय इत्यमुत्र षट् वर्णिताः श्रुतिसुखाय सन्तु वः ॥१॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

॥ समाप्तं चेदं सप्तमं पर्व ॥

श्री त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र

(भाग तीसरा)

पर्व-८

श्री नेमिनाथादि चरित्र

पहला सर्ग

श्री अरिष्टनेमि के पूर्व भव का वर्णन

सर्व जगत के पति, जन्म से ही ब्रह्मचारी और कर्मरुपी वल्ली के वन को छेदने में नेमि[1] चक्र समान श्री **अरिष्टनेमि** को नमस्कार हो। अब अर्हंत श्री नेमिनाथ, वासुदेव कृष्ण, बलदेव बलभद्र और प्रतिवासुदेव जरासंध का चरित्र कहा जायेगा।

इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र में पृथ्वी के शिरोरत्न जैसा **अचलपुर** नाम का नगर है। उस नगर में युद्ध में पराक्रम से शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला **विक्रमधन** नाम का यथार्थ नामवाला राजा था। वह राजा शत्रुओं को यमराज समान दुःप्रेक्ष्य था और मित्रों को चंद्र समान नेत्रानंददायी था। प्रचंड तेजवाले उस राजा का भुजदण्ड स्नेहीजन को कल्पवृक्ष तुल्य और वैरीजन को वज्रदंड तुल्य था। सागर में नदियां आकर मिले त्यों दिशाओं में से संपत्तियाँ आ आकर उसे मिलती थी और पर्वत में से झरने निकले त्यों उसकी कीर्ति प्रकट होती थी। उस राजा को पृथ्वी जैसी सदा स्थिर और उज्ज्वलशील रुप अलंकार को धारण करनेवाली **धारिणी** नाम की रानी थी। सर्व अंग में रुप से सुंदर और पवित्र लावण्य द्वारा शोभित वह रानी मानो राजा की मूर्तिमंत लक्ष्मी हो त्यों शोभा पाती थी। गति और वाणी में हँसी समान और लक्ष्मी के स्थानरुपी पद्म समान उस रमणी ने पुष्प में भँवरी की तरह अपने भरतार के हृदय में स्थान किया था।

एक बार उस धारिणी देवी ने रात्रि के शेष भाग में जिसमें भ्रमर और कोकिला मत्त हो रहे है, और जिस में मंजरी के पुंज उत्पन्न हुए हैं, ऐसे एक आम्रवृक्ष को फलित हुआ स्वप्न में देखा। उसे वृक्ष को हाथ में लेकर किसी रुपवान पुरुष ने कहा कि 'यह आम्रवृक्ष आज तेरे आंगन में बोया जा रहा है, वह ज्यों ज्यों काल बीतेगा, त्यों त्यों उत्कृष्ट फलवाला होकर अलग अलग स्थान पर नौ बार बोया जायेगा।' इस स्वप्न का वृत्तांत रानी ने राजा को कहा तो राजा ने उसका स्वप्नवेत्ताओं के साथ विचार किया। निमित्तिए ने हर्ष पाकर कहा, "हे राजन्! इस

१. तीक्ष्ण धारवाला।

स्वप्न से ऐसा सिद्ध होता है कि आपके यहाँ एक उत्कृष्ट भाग्यवान पुत्र होगा, और स्वप्नगत आम्रवृक्ष जो अलग अलग जगह नौ बार बोया जायेगा यूं कहा, इसका आशय तो मात्र केवली ही जानते हैं। हमारे जानने में नहीं आता।'' निमित्तिए के ऐसे वचन सुनकर धारिणी देवी बड़ी खुश हुई और तब से निधि को ज्यों पृथ्वी धारण करे त्यों उन्होंने महाउत्तम गर्भ धारण किया। समय आने पर सूर्य को ज्यों पूर्व दिशा जन्म दे त्यों जगत के हर्ष के कारणरुप और पवित्र आकृति को धारण करनेवाले एक पुत्र को धारिणीदेवी ने जन्म दिया। राजा ने महादानपूर्वक पुत्र का जन्ममहोत्सव किया और उत्तम दिन पर उसका **धनकुमार** नाम रखा। धात्रीमाताओं की भाँति राजाओं द्वारा एक उत्संग में से दूसरे उत्संग में जाता वह धनकुमार मातापिता के हर्ष के साथ वृद्धि पाया। क्रमशः उसने सर्व कलाएं संपादन की और कामदेव के क्रीडावन जैसी युवावस्था को प्राप्त हुआ।

उस अरसे में **कुसुमपुर** नाम के नगर में सिंह जैसा पराक्रमी और रणकार्य में यशस्वी **सिंह** नाम का राजा था। उसे चंद्रलेखा जैसी निर्मल और प्राण समान प्यारी **विमला** नाम की रानी थी। वह पृथ्वी पर घूमनेवाली देवी हो ऐसा लगता था। सिंहराजा को उस रानी से कइं पुत्रों के बाद **धनवती** नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। अपनी रुपसंपदा से रति वगैरह रमणियों के रुप को जीत लेती वह बाला क्रमशः वृद्धि पायी और उसने सर्वकला संपादन की। एक बार वसंतऋतु आने पर वह बाला सखियों के परिवार के साथ उद्यान की शोभा देखने गई। उस उद्यान में प्रफुल्लित सप्त पर्ण के वृक्ष पर घूमते भँवरों का संगीत हो रहा था, बाण जाति के वृक्षों की नवीन कलियाँ कामदेव के बाणरुप बनी थी, उन्मत्त ऐसे सारसपक्षी के जोडे क्रेंकार शब्द कर रहे थे, स्वच्छ जलवाले सरोवर में कलहंसों का समूह क्रीडा कर रहा था और गीत गाती बागबान की स्त्रियों से रमणीय ऐसा ईक्षुदंड से वह सरोवर मनोहर दिखता था। रमणीय ऐसे उद्यान में वह बाला स्वच्छंदतापूर्वक घूमने लगी।

राजकुमारी आनंद से घूम रही थी, इतने में एक अशोकवृक्ष के नीचे हाथ में चित्रपट लेकर खड़ा हुआ एक विचित्र चित्रकार उसे नजर आया। उससे धनवती की **कमलिनी** नाम की एक सखी नें जबरन चित्रपट ले लिया। उस चित्रपट में सुंदर पुरुष का रुप अंकित हुआ देखकर चकित होकर उसने चित्रकार को पूछा, ''सुर, असुर और मनुष्यों में ऐसा अद्‌भुत रुप किसका है ? अथवा उनमें ऐसा कोई सुंदर रुप संभवित नहीं है, इसलिये क्या तूने तेरा कौशल्य बताने के लिये ही इस रुप को मात्र स्वबुद्धि से ही अंकित किया है ? क्योंकि अनेक प्राणियों को निर्माण करने में थक गये वृद्ध विधि में ऐसा सुंदर रुप रचने की प्रवीणता कहाँ से होगी ?'' यह सुनंकर चित्रकार हसकर बोला, ''मैंने जैसा रुप देखा है, वैसा ही इस चित्र में आलेखित

किया है, इसमें मेरा थोडा सा भी कौशल्य नहीं है। अचलपुर के **विक्रम** राजा के युवा और अनुपम आकृतिवाले पुत्र **धनकुमार** का यह चित्र है, जो इस कुमार को प्रत्यक्ष देखकर फिर यह चित्र देखता है वो मुझे ऊलटे ही 'कूटलेखक' कहकर बार बार निंदता है। हे मुग्धे ! तूने कुमार को देखा न होने से यह चित्र देखकर तू विस्मय पाती हैं, क्योंकि तू कुए के मेंढक जैसी है, लेकिन इस धनकुमार के अद्‌भुत रुप को देखकर तो देवांगनाए भी मोह पाती है। मैंने तो मात्र मेरे दृष्टिविनोद के लिये इस चित्र को आलेखा है।'' उस समय वहाँ पास खड़ी धनवती उस बात को सुनकर और चित्र देखकर मानो कामदेव के बाण लगे हो त्यों हो गयी। फिर कमलिनी बोली, ''भद्र ! तूने दृष्टिविनोद के लिये भी इस अद्‌भुत चित्र को बहुत सुंदर आलेखा है, इसलिए तू सचमुच निपुण और विवेकी है।''

इस प्रकार कहकर कमलिनी चलने लगी। उस समय धनवती शून्य हृदयवाली हो गयी। उसका मुख मुरझाये हुए डंठलवाले कमल जैसा हो गया और पीछे देखते देखते तथा कदम कदम पर स्खलित होती हुई वह मुश्किल से घर आयी। चित्रस्थ धनकुमार के रुप से आक्षिप्त हुई राजकुमारी धनवती मरुस्थल में रहती हँसी की तरह किसी भी स्थानक पर आनंद नहीं पायी। दुर्बल शरीरवाली वह क्षुधा (भुख) और तृषा को भी नहीं जानती थी, और रात्रि में निंद्रा भी नहीं लेती थी। संक्षिप्त में उसकी स्थिति वन में से आकर्षण करके लायी हुई हथिनी जैसी हो गयी। धनकुमार के रुप को और चित्रकार ने कही बात को याद कर करके वह बाला बार बार शिरःकंप, अंगुलिनृत्य और भ्रूकुटि के उत्क्षेप को कर रही थी। धनकुमार के ध्यान में परवश बनी वह राजकुमारी जो कुछ भी चेष्टा करती वह जन्मांतर के कृत्य की तरह तत्काल वापस भूल जाती थी और उद्वर्तन, स्नान, विलेपन और अलंकारादिक को छोड़कर वह रमणी ज्यों योगिनी इष्टदेवता का ध्यान धरें त्यों अहर्निश उसका ध्यान धरती थी।

एकबार उसकी सखी कमलिनी ने उसको पूछा कि, 'हे कमलाक्षी ! तू किस आधि (मानसिक पीडा) अथवा व्याधि से पीडित है कि जो तू ऐसी हो गयी है।' उसका ऐसा प्रश्न सुनकर कृत्रिम कोप करके धनवती बोली, 'हे सखी ! बाहर के मनुष्य की तरह तू क्यों पूछती है ? तू क्या नहीं जानती ? तू मेरा दूसरा हृदय है। मेरे जीवितव्य जैसी है, सिर्फ सखी ही नहीं, इसलिए तेरे ऐसे प्रश्न से मुझे लज्जा आती है।' कमलिनी बोली, ''हे मानिनी ! तूने मुझे डांटा यह योग्य है। तेरे हृदय के शल्य और उँचे मनोरथ को मैं जानती हूँ। वह चित्र देखकर तू धनकुमार को चाहती है। मैंने जो यह अनजान बनकर पूछा वह तो सिर्फ तेरा मजाक करने के लिये ही पूछा है। तेरा अनुराग योग्य स्थान पर है, और तो मैंने जब से वह जाना है तबसे ही उसके लिये मैं चिंतातुर हूँ। मैंने एक ज्ञानी को पूछा था कि मेरी सखी को वांछित वर मिलेगा या नहीं ? तब उसने प्रतीति दिखाकर 'मिलेगा' ऐसा कहा है। इसलिये हे बहन ! धीरज रख। तेरा मनोरथ

शीघ्र सिद्ध होगा।'' इस प्रकार सखी के आश्वासन से धनवती धीरज धारण करके रही।

एक बार वह बाला दिव्य वेश धारण करके पिता को वंदन करने गयी। उसके बिदा होने के बाद राजा सोचने लगा कि, 'अब यह पुत्री वर के योग्य हुई है, तो इस पृथ्वी पर उसके योग्य वर कौन होगा ?' इस प्रकार राजा बड़े समय से चिंता कर रहा था कि, प्रथम विक्रमधन राजा के पास भेजा हुआ दूत आया। वह राज्यकार्य बताकर खडा रहा, तो सिंहराजा ने उसे पूछा कि 'तूने वहाँ आश्चर्यकारी क्या देखा ?' दूत बोला, ''विक्रमधन राजा के पुत्र धनकुमार का रुप मैंने ऐसा देखा है कि उसके जैसा सुंदर रुप विद्याधरों में या देवताओं में भी मुझे दिखाई नहीं दिया। उसे देखकर मैंने निश्चय किया है कि यह राजपुत्र हमारी राजकुमारी धनवती के योग्य वर है। इसलिये वरकन्या का संबंध होने के लिये विधि का सृष्टिप्रयास सफल बनो।' राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि, ''हे दूत ! तूझे शाबाशी है, तूने मेरे कहे बिना ही अपने आप मेरे कार्य की चिंता की और राज्यकन्या के लिये वर के चिंतारुपी सागर में डूबे हुए ऐसे मेरा उद्धार किया। अब हे बुद्धिमान दूत ! धनकुमार को धनवती देने के लिये विक्रमधन राजा की आज्ञा से जाकर मेरी आज्ञा से तू प्रार्थना कर।'' राजा और दूत के बीच इस प्रकार बात हो रही थी कि उसी समय धनवती की **चंद्रवती** नाम की छोटी बहन पिता को वंदन करने के लिये आयी थी। उसने यह सब हकीकत सुनी। राजा की आज्ञा लेकर दूत अपने घर गया, तो चंद्रवती हर्ष पाते हुए धनवती के पास आयी, और जो सुना था वह सब उसे कह सुनाया। धनवती ने उसकी सखी कमलिनी को कहा कि, 'इस चंद्रवती की वाणी पर मुझे विश्वास नहीं बैठता। वह अज्ञान से कहती है, कुछ परमार्थ को नहीं समजती। उस दूत को पिता ने किसी दूसरे काम पर भेजा होगा और यह मुग्धा (भोली) चंद्रवती सब मेरे लिये ही समजी है।' कमलिनी बोली, ''हे बहन ! वह दूत अब भी यहीं है, इसलिये उसके ही मुख से सच्ची बात जान ले, क्योंकि दीया होने पर अग्नि को कौन देखता है ?' इस प्रकार कहकर वह भावुक सखी उस दूत को वहाँ ले आयी। उसके मुख से संपूर्ण वृत्तांत सुनकर धनवती हर्ष पायी। फिर धनवती ने एक पत्र लिखकर उस दूत को दिया और कहा कि 'यह लेख धनकुमार को देना।'

दूत तुरंत अचलपुर आया और सभा मे बैठे हुए विक्रमधन राजा के पास आकर खड़ा रहा। विक्रम राजा ने पूछा कि ''सिंहराजा कुशल है ? दुबारा तुरंत तुम्हारे आने से मेरे मन में संकल्प विकल्प होता है।'' दूत ने कहा, ''सिंहरथ राजा कुशल है और तुम्हारे पुत्र धनकुमार को अपनी पुत्री धनवती देने के लिये मुझे दुबारा तुरंत से यहाँ भेजा है। रुप में जैसा उत्कृष्ट यह धनकुमार है वैसी ही हमारे राजा की पुत्री धनवती भी रुप में उत्कृष्ट है। इसलिये सुवर्ण और मणि के समान उनका योग्य संयोग इसी समय हो। आप दोनों का स्नेह पहेले से ही

है तो अब इस संबंध से जुडकर जलसिंचन द्वारा वृक्ष की भाँति विशेष रुप से पृष्ठ (मजबूत) हो।'' विक्रमधन ने 'बहुत अच्छा' यूं कहकर उसकी बात कबूल करके उसको बिदा किया।

फिर दूत द्वारपाल के पास निवेदन करवाकर धनकुमार के पास आया। धनकुमार को नमन करके योग्य आसन पर बैठाकर उसे अपने आगमन का कारण बताया, और फिर 'यह पत्र राजकुमारी धनवती ने आपको देने के लिये दिया है' यूं कहकर कुमार को पत्र दिया। धनकुमार ने हाथ से उस पत्र की मुद्रा तोड़कर कामदेव के शासन जैसा वह पत्र पढ़ना शुरु किया। उसमें लिखा था कि, ''यौवन की तरह शरदऋतु ने जिसकी शोभा विशेष बढ़ाई है ऐसी पद्मिनी मुख से ग्लानि पाते हुए सूर्य के करपीडन को[1] चाहती है।'' इस प्रकार पढ़कर उसका भावार्थ जानकर धनकुमार सोचने लगा कि यह उसकी अद्‌भुत उक्ति[2] मेरे उपर का उसके हृदय में अतिशय बढ़ता स्नेह दिखाती है। ऐसा विचार करके धनकुमार ने भी अपने हाथ से धनवती पर एक पत्र लिखकर एक मुक्ताहार के साथ दूत को अर्पण किया। धनकुमार ने बिदा किया हुआ वह दूत तत्काल कुसुमपुर आया और अपने राजा को विक्रम राजा ने स्वीकृत किये हुए संबंध की बात कह सुनायी। फिर धनवती के पास आकर वह पत्र और मुक्ताहार दिया और कहा कि, 'धनकुमार ने यह हार और स्वहस्तलिखित यह पत्र आपको देने के लिये दिया है।' चंद्र के किरण जैसे निर्मल उस हार को अपने करकमल में लेकर पत्र की मुद्रा तोड़कर वह पढ़ने लगी। उसमें इस प्रकार लिखा था, ''सूर्य करपीडन करके पद्मनी को जो प्रमोद (आनंद) देता है, वह उसके स्वभाव से ही सिद्ध है। उसमें याचना करने की वह कुछ अपेक्षा नहीं रखता।'' इस प्रकार पढ़कर राजकुमारी हर्ष पायी। उसके शरीर में पुलकावलि (रोमांच) विकस्वर हो गयी और उसने सोचा कि ''इस श्लोक का अर्थ सोचते हुए जरुर मेरे श्लोक का भावार्थ उनको समज में आया है और इस अमृत जैसे उज्ज्वल मुक्ताहार को उन्होंने मुझे कण्ठ में पहनने के लिये भेजा है। इसके उपर से उन्होंने कंठालिंगन करने का सचमुच वचन दिया है।'' इस प्रकार सोचकर धनवती ने तत्काल वह हार कण्ठ में धारण किया और दूत को पारितोषिक देकर बिदा किया।

फिर पवित्र दिन पर सिंहराजा ने वृद्ध मंत्रियों के साथ बड़ी समृद्धि सहित धनवती को अचलपुर भेजा। चलते समय विमल हृदयवाली उसकी विमला माता ने उसे आशिषपूर्वक सीख दी कि ''सासु, ससुर और पति पर सदा देव जैसी भक्तिवाली बनना। सपत्नियों में अनुकूल रहना। परिवार पर दाक्षिण्यता रखना और पति से मान मिलने पर गर्वरहित और अपमान होने पर भी अविकारी रहना।'' इस प्रकार शिक्षा देकर नेत्र में से अश्रु बहाती और बार बार

१. करपीडन - सूर्य पक्ष द्वारा किरण डालना और अन्य पक्ष से पाणिग्रहण करना। २. उक्ति - एक को कहकर दूसरे को समजाना।

आलिंगन करती विमला ने उसे मुश्किल से बिदा किया। छत्र, चँवर से मंडित ऐसी धनवती माता को नमन करके उत्तम शिबिका में बैठकर परिवार सहित आगे चली। क्रमशः वह अचलपुर आ पहुँची। मानो साक्षात् धनकुमार की स्वयंवरा लक्ष्मी आयी हो ऐसी धनवती को देखकर पुरजन आश्चर्य पाये। उसने बाहर के उद्यान में अपना मुकाम किया। फिर शुभ दिन पर बड़ी समृद्धि के साथ उनका विवाह हुआ। ज्यों नागवल्ली से सुपारी का वृक्ष और ज्यों विद्युत से नवीन मेघ शोभा पाये त्यों उस नवोढ़ा से अभिनव यौवन वाला धनकुमार शोभा पाने लगा। रति के साथ कामदेव की तरह धनवती के साथ क्रीडा करते हुए धनकुमार ने एक मुहूर्त की तरह कुछ काल निर्गमन किया।

एक बार धनकुमार प्रत्यक्ष रेवंत हो ऐसे अश्व पर बैठकर सुवर्ण के कुंडल को चलायमान करते हुए उद्यान में गया। वहाँ पृथ्वी को पवित्र करनेवाले और चतुर्विध ज्ञानधारी **वसुंधर** नाम के मुनि को उन्होंने देशना देते देखा तो उन्हें प्रणाम करके योग्य स्थान पर बैठकर भक्तिवाला वह कुमार कर्ण में अमृत समान उनकी देशना सुनने लगा। फिर राजा विक्रमधन, देवी धारिणी और धनवती भी वहाँ आये। वे सब मुनि की वंदना करके धर्मदेशना सुनने लगे। देशना पूर्ण होने के बाद विक्रमधन राजा ने मुनि को पूछा, "यह धनकुमार गर्भ में था तब उसकी माता ने स्वप्न में एक आम्रवृक्ष देखा था। उस समय किसी पुरुष ने कहा था कि, अलग अलग स्थान पर नौ बार यह वृक्ष बोया जायेगा और उत्तरोत्तर उसे उत्कृष्ट फल प्राप्त होगे। हे महात्मन! इस कुमार का जन्म होने से इस स्वप्न का फल तो हमारे जानने में आया है, लेकिन नौ बार आरोपण होने का क्या अर्थ है ? यह प्रसन्न होकर कहिए।" यह सुनकर उस महामुनि ने सम्यग ज्ञान के लिये उपयोग देकर किसी जगह दूर रहे केवली को मन द्वारा ही समाधि में रहकर पूछा। केवली ने केवलज्ञान की लक्ष्मी द्वारा प्रश्न को जानकर नौ भव को सूचित करते हुए श्री अरिष्टनेमि प्रभु का चरित्र बता दिया। इस प्रकार मनःपर्यव और अवधिज्ञान से जानकर उस मुनि ने विक्रमधन राजा को कहा कि, "यह आपका पुत्र धनकुमार इस भव से लेकर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट ऐसे नौ भव करेगा और नौवे भव में इस भरतक्षेत्र के यदुवंश में वे बाइसवें तीर्थंकर होंगे।" मुनि का ऐसा वचन सुनकर सब अतिशय हर्ष पाये और वहाँ से सबका जिनधर्म में भद्रिक भाव हुआ। फिर विक्रमधन राजा मुनि को नमन करके धनकुमार वगैरह के साथ घर आया और वे महात्मा मुनि विहार कर्म में तत्पर होकर वहाँ से अन्यत्र चले गये। धनकुमार ऋतुओं के योग्य क्रीडाओं से दोगुंदक देव की तरह धनवती के साथ विषयसुख का अनुभव करने लगा।

एक बार धनकुमार रुप में लक्ष्मी की सपत्नी जैसी धनवती को साथ लेकर मज्जन क्रीडा

करने क्रीडासरोवर पर गया। वहाँ अशोकवृक्ष के नीचे मानो मूर्तिमंत शांत रस हो ऐसे एक मुनि मूर्च्छा खाकर भूमि पर पड़े हुए थे जो धनवती की नजर में आये। धर्म और श्रम से उनको तृषा (प्यास) लगी थी और जिससे उनके तालु एवं होठ सुखा गये थे तथा फटे हुए चरणकमल में निकलते रुधिर से वे पृथ्वी को सिंचन करते थे। उन मुनि को धनवती ने अपने पति को दिखाये। फिर दोनों जन संभ्रम पाकर शीघ्रता से उनके पास गये और अनेक प्रकार के शीतल उपचार करके उन्हें सचेत किया, फिर स्वस्थ बने मुनि को प्रणाम करके वह धनकुमार बोला, "हे महात्मन् ! मैं आज सर्व प्रकार से धन्य हूँ, क्योंकि पृथ्वी में कल्पवृक्ष जैसे आपको मैंने प्राप्त किया है। पर्यन्त देश में रहनेवाले ऐसे हमको मरुदेश में रहनेवाले प्राणियों को छायावृक्ष की तरह आपका संसर्ग बड़ा दुर्लभ हैं। हे भगवन् ! आपको इतना पूछता हूं कि आपकी यह दशा किस प्रकार हुई ? लेकिन यदि आपको यह कहते हुए खेद न हो तो और छिपाने जैसा न हो तो हमें बताईए।"

मुनि बोले, "परमार्थ से मुझे संसारवास का ही खेद है। दूसरा खेद नहीं है और यह खेद तो विहारक्रम से हुआ है, कि जो शुभ परिणामवाला है। मेरा नाम **मुनिचंद्र** है। पूर्व में गुरु और गच्छ के साथ विहार कर रहा था, क्योंकि साधुओं की एक जगह स्थिति नहीं होती। गच्छ के साथ चलते हुए एक बार मैं दिग्मूढ होकर अरण्य में भटक गया। फिर सार्थभ्रष्ट होकर इधर-उधर घूमने लगा। आखिर में क्षुधा और तृषा से पीडित होकर, इस जगह आते ही मूर्च्छा खाकर मैं पृथ्वी पर पड़ा। फिर आपने जो शुभ उपाय किये, उससे में सचेत हुआ। हे महाभाग ! हे अनघ ! आपको बार बार धर्मलाभ हो। ज्यों मैं क्षणभर के लिये पहले अचेतन होकर पड़ा था, उसी तरह इस संसार में सब ऐसा ही है, इसलिये हितेच्छु जन को निरंतर धर्म ही करना चाहिए।" इस प्रकार कहकर उस मुनिचंद्र मुनिश्वर ने उनको योग्य ऐसा श्री जिनोक्त सम्यक्त्वयुक्त गृहीधर्म कह सुनाया। तो धनकुमार ने धनवती सहित मुनिचंद्र मुनि के समक्ष सम्यक्त्वप्रधान गृहस्थधर्म स्वीकारा। फिर उन्होंने उस मुनि को घर लेजाकर अन्नपान से प्रतिलाभित किया, और धर्मशिक्षा के लिये कुछ काल तक उनको वहीं रखे। फिर धनकुमार को सूतित करके मुनि अपने गच्छ में जा मिले। तब से धनवती और धनकुमार परम श्रावक बने। वह दंपती पहले से ही परस्पर प्रीतिवाला था। उसमें भी एक धर्म में जुड़ने से विशेष प्रीतिवाला बना। अंतकाल में विक्रमधन राजा ने धनकुमार को अपने राज्य पर अभिषिक्त किया, तबसे धनकुमार श्रावकधर्म सहित विधिपूर्वक पृथ्वी का भी पालन करने लगा।

एक बार उद्यानपाल ने आकर धनकुमार को कहा कि, "जो प्रथम आये थे, वह वसुंधर मुनि उद्यान में पधारे हैं।" यह सुनकर धनकुमार धनवती को साथ लेकर तत्काल उद्यान में

आया और उन मुनि की वंदना करके उनके पास संसारसागर पार करानेवाली बड़ी नाविका जैसी देशना सुनी। फिर संसार से उद्वेग पाये धनकुमार ने धनवती से उत्पन्न हुए **जयंत** नाम के पुत्र को शुभदिन देखकर राज्य पर बैठाया और स्वयं धनवती के साथ वसुंधर मुनि से दीक्षा ली। उनके साथ उनके भाई **धनदत्त** और **धनदेव** ने भी दीक्षा ली। धनमुनि गुरु के साथ रहकर दुष्कर तप करने लगे। क्रमशः गीतार्थ बने उन मुनि को आचार्यपद दिया। कइं राजाओं को प्रतिबोध देकर उनके पर दीक्षा का अनुग्रह करके आखिर में सद्बुद्धिवाले धनर्षि ने धनवती के साथ अनशन ग्रहण किया। एक माह के अंत में मृत्यु पाकर वे दोनो सौधर्म देवलोक में शक्र के सामानिक महर्द्धिक देवता बने। धनकुमार का बंधु धनदेव और धनदत्त तथा अन्य भी अखंडित व्रत पालकर मृत्यु पाने के बाद सौधर्म देवलोक में देवता बने।

इस भरतक्षेत्र में वैताढ्यगिरि की उत्तर श्रेणी के आभूषणरुप **सूरतेज** नाम के नगर में **सूर** नाम का एक खेचर का चक्रवर्ती राजा हुआ। मेघ को विद्युत की तरह उसे **विद्युन्मति** नाम की एक अति प्रेमपात्र पत्नी थी। धनकुमार का जीव आयुष्य पूर्ण करके सैधर्म देवलोक से च्यूत होकर उस सूर राजा की पत्नी विद्युन्मति के उदर में अवतरित हुआ। पूर्ण समय होने पर चंद्र को पूर्णिमा का प्रसव हो त्यों विद्युन्मति ने शुभ लक्षण संपन्न पुत्र को जन्म दिया। शुभ दिन पर पिता ने आनंददायी बडा उत्सव करके उसका **चित्रगति** ऐसा नाम रखा। क्रमशः बड़े होकर उंसने कलाचार्य से सर्व कलाएं प्राप्त की और दूसरा कामदेव हो त्यों युवावस्था को प्राप्त हुआ।

उस अरसे में उसी वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी पर स्थित **शिवमंदिर** नाम के नगर में **अनंगसिंह** नाम का राजा हुआ। उसे **शशिप्रभा** नाम की एक चंद्रमुखी रानी थी। उसके उदर में धनवती का जीव सौधर्म देवलोक में से च्यूत होकर अवतरित हुआ। समय आने पर शशिप्रभा ने एक पवित्र अंगवाली पुत्री को जन्म दिया। कइं पुत्रों के बाद वह अवतरित हुई थी इसलिए अतिप्रिय हो गई। पिता ने शुभ दिन पर उसका **रत्नवती** ऐसा नाम रखा। सजल स्नान में वल्ली वृद्धि पाये त्यों वह प्रतिदिन वृद्धि पाने लगी। कुछ काल में ही स्त्रियों के योग्य ऐसी सर्व कलाएं उसने ग्रहण कर ली और शरीर में मंडनरुपी पवित्र युवावय को प्राप्त हुई। एक बार उसके पिता ने किसी निमित्तिए को पूछा कि, 'इस कन्या का वर कौन होगा ?' निमित्तिए ने कुछ सोचकर कहा, 'जो आपके पास से खड्गरत्न ले लेगा और सिद्धायतन में वंदना करते हुए जिसके पर देवता पुष्पवृष्टि करेंगे, वह नरलोक में मुकुटरुप पुरुष योग्य समागम से तुम्हारी इस पुत्री रत्नवती को ब्याहेगा।' जो मुझ से भी खड्गरत्न छिन ले ऐसा अद्भुत पराक्रमी पुरुष मेरा जामाता होगा ऐसा जानकर प्रसन्न बने राजा ने उस निमित्तिए को खुश करके बिदा किया।

उस समय में भरतक्षेत्र के **चक्रपुर** नाम के नगर में गुण में नारायण जैसा **सुग्रीव** नाम

का राजा बना। उसे **यशस्वती** नाम की रानी से **सुमित्र** नाम का पुत्र हुआ और दूसरी **भद्रा** नाम की रानी से **पद्म** नाम का पुत्र हुआ। वे क्रमशः अग्रज[1] और अनुज[2] हुए। उसमें सुमित्र, गंभीर, विनीत, नमन करनेवाले पर वात्सल्यवान, कृतज्ञ और जैनधर्मी बना। और पद्म उससे संपूर्ण रुप में उलटा और मिथ्यात्वी बना। एक बार अभद्र बुद्धिवाली भद्रा रानी ने सोचा कि 'जब तक सुमित्र जिवीत है तब तक मेरे पुत्र को राज्य नहीं मिलेगा।' ऐसा सोचकर उसने सुमित्र को उग्र जहर दिया। सुमित्र विष से मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिरा और समुद्र की लहर की तरह विष का वेग उसके शरीर में फैल गया। सुग्रीव राजा यह खबर सुनकर सभ्रम से अचानक सचिवों सहित वहाँ आया और मंत्र-तंत्र के अनेक उपचार कराने लगा। फिर भी विष के वेग की थोड़ी सी भी उपशांति नहीं हुई और 'भद्रा ने सुमित्र को जहर दिया है' ऐसा नगर में उसका अपवाद फैल गया। स्वयं किये हुए पाप के संदेह से भद्रा कहीं पर भाग गई। राजा ने पुत्र के निमित्त अनेक प्रकार की जिनपूजा और शांतिक पौष्टिक कर्म करवाये, पुत्र के सद्‌गुण याद करके राजा अविच्छिन विलाप करने लगा, और सामंत तथा सचिव भी निरुपाय होकर ऐसा ही करने लगे।

उस समय चित्रगति विद्याधर आकाश में क्रीडा के बहाने घूम रहा था, वह विमान सहित वहाँ आ चढ़ा। उसने पूरे नगर को शोकातुर देखा। फिर विष संबंधी सर्व वृत्तांत जानकर वह विमान में से नीचा उतरा और विद्या से मंत्रित ऐसे जल से उसने कुमार पर सिंचन किया। तत्काल नेत्र खोलकर स्वस्थ हृदय से सुमित्र बैठा हुआ और यह क्या है ? यह पूछने लगा। 'मंत्रशक्ति निरवधि है।'

राजा ने सुमित्र को कहा, "हे वत्स ! तेरी वैरी सौतेली (अपर) माता भद्रा ने तुझे विष दिया था और अकारण इस बंधु महापुरुष ने उस विष का शमन कर दिया है।" सुमित्र ने अंजलि जोड़कर चित्रगति को कहा, "परोपकार बुद्धि से ही आपका कुल मुजे पहचान आया है, फिर भी स्वकुल को बताकर मुझ पर अनुग्रह करों, क्योंकि महान पुरुषों का वंश सुनने के लिये किसका मन उत्कंठित न होगा ?" फिर चित्रगति के साथ आये उसके सचिव के पुत्र ने सबको श्रवण में सुखदायी ऐसे उसके पूरे कुलादिक का वृत्तांत कह सुनाया। वह सुनकर सुमित्र ने हर्ष से कहा कि, "आज मुज पर विष का और विष देनेवाले का उपकार चढ़ा है, नहीं तो आप जैसे महात्मा का मुझे योग कैसे होता ? और आपने मुजे मात्र जीवन ही नहीं दिया, लेकिन पचखाण और नवकार मंत्र से रहित ऐसी मृत्यु से होनेवाली दुर्गति से मुझे बचाया है। हे कृपानिधि ! वर्षाऋतु के मेघ से जीवलोक की तरह अतुल उपकारी ऐसे आप पर मैं क्या

१. पहले हुआ (बड़ा) २. बाद में जन्मा हुआ (छोटा)।

प्रति-उपकार करूं ?'' इस प्रकार कहते हुए और मित्रता पाये हुए सुमित्र से चित्रगति ने अपने नगर में जाने की आज्ञा मांगी। उस समय सुमित्र ने कहा, ''प्रिय भाई ! यहाँ समीप में ही **सुयशा** नाम के केवली हैं, वे विहार करते करते इस तरफ आ रहे है, क्रमशः वे यहा आ जाय तो उनकी वंदना करके जाना, तब तक यहीं उनका इंतजार करके रहो।'' चित्रगति ने वह कबूल किया और वहाँ रहकर युगलिक की तरह सुमित्र के साथ खेलते हुए कइं दिन बीता दिये।

एक दिन वे दोनों उद्यान में गये। वहाँ देखते हैं तो चलित (जीवित) कल्पवृक्ष जैसे सुयशा नाम के केवली पधारे हैं। सुवर्णकमल पर बैठे हुए, अनेक देवताओं से घिरे और उनके समागम की इच्छा लम्बे समय से रखी थी ऐसे उन मुनि को देखकर प्रदक्षिणा करके वंदना करने के बाद दोनो जन उनके समीप बैठे। यह खबर सुनकर सुग्रीव राजा भी उनकी वंदना के लिये आया। मुनि ने मोहरुपी निंद्रा में प्रातःकाल जैसी धर्मदेशना दी। देशना के अंत में चित्रगति ने मुनि को नमस्कार करके कहा, ''हे भगवंत ! आपने कृपा करके मुझे बड़ा अच्छा बोध दिया है। हे प्रभु ! श्रावकपना तो मेरे कुलक्रम से चला आ रहा है, लेकिन अभाग्य के कारण आगे रहे हुए निधि की तरह आप यहाँ विचर रहे हो यह मुझे मालूम नहीं पड़ा। यह सुमित्र मेरा अतुल उपकारी है कि जिसने ऐसे सद्धर्म का उपदेश करनेवाले आपके चरणों का दर्शन कराया।'' इस प्रकार कहकर उस सद्बुद्धिवाले चित्रगति ने उस मुनि से सम्यक्त्वपूर्वक गृहस्थ धर्म स्वीकारा।

फिर सुग्रीवराजा ने मुनि को प्रणाम करके पूछा, ''हे भगवन ! मेरे इस महात्मा पुत्र को विष देकर वह भद्रा स्त्री कहाँ गई ?'' मुनि बोले, ''वह स्त्री यहाँ से भागकर अरण्य में गई। वहाँ चोरों ने उसके आभूषण ले लिये और उसे पल्लीपति को सौंप दिया। पल्लीपति ने एक वणिक को उसे बेच दी, वहाँ से वह भाग गई और मार्ग में बड़े दावानल से दग्ध हो गई। वहाँ रौद्र ध्यान से मृत्यु पाकर वह प्रथम नरक में गई है। वहाँ से च्यूत होकर वह एक चांडाल के घर स्त्री बनेगी। वह गर्भवती होते ही उसकी सपत्नी कलह करके उसको कटार से मार डालेगी। वहाँ से मृत्यु पाकर वह तीसरी नरक में जायेगी और तिर्यंच योनि में उत्पन्न होगी। इस प्रकार आपके सम्यक्त्व दृष्टि पुत्र को जहर देने के पाप से वह संसार में परिभ्रमण करके अनंत दुःख भोगेगी।''

सुग्रीव राजा ने कहा, ''हे भगवन् ! उस स्त्री ने जिसके लिये ऐसा कृत्य किया, उसका वह पुत्र तो यहां है और वह नरक में गई है, इसलिये रागद्वेषादिक से महादारुण ऐसे इस संसार को धिक्कार है, इसलिये मैं तो अब ऐसे संसार के त्याग के कारणरुप दीक्षा को ग्रहण करुंगा।'' उस समय उसको प्रणाम करके सुमित्र ने इस प्रकार कहा कि, ''हे पिता ! मेरी माता

के इस प्रकार के कर्मबंधन के कारणरुप ऐसे मुझको धिक्कार है। इसलिये हे स्वामिन् ! मुझे आज्ञा दो, जिससे मैं तत्काल दीक्षा ग्रहण करूं, क्योंकि ऐसे अति दारुण संसार में रहने की इच्छा कौन करे ?'' इस प्रकार कहते हुए पुत्र को आज्ञा से रोककर सुग्रीव राजा ने उसे राज्य पर बैठाया और स्वयं व्रत ग्रहण किया। फिर सुग्रीव राजर्षि ने उस केवली के साथ विहार किया। सुमित्र चित्रगति के साथ अपने नगर में आया। अपनी सौतेली माता भद्रा के पुत्र पद्म को उसने कइं गाँव दिये, परंतु वह दुर्विनीत उतने से असंतुष्ट होकर वहाँ से किसी जगह चला गया। चित्रगति मुश्किल से सुमित्र राजा की आज्ञा लेकर उत्कंठित मातापिता को मिलने के लिये अपने नगर गया। वहां देवपूजा, गुरु की उपासना, तप, स्वाध्याय और संयमादिक में निरंतर तत्पर रहने से वह उसके मातापिता को अत्यंत सुखदायी बन पड़ा।

एक बार सुमित्र की एक बहन जो कलिंग देश के राजा के साथ ब्याही थी, उसे अनंगसिंह राजा का पुत्र और रत्नवती का भाई **कमल** हर गया। 'अपनी बहन का हरण होने से सुमित्र शोक में है' ऐसी खबर एक खेचर के मुख से उसके मित्र चित्रगति ने सुनी, तो 'मैं तुम्हारी बहन को ढूंढकर कुछ समय में ही ले आऊंगा' इस प्रकार खेचरों द्वारा सुमित्र को धीरज बंधवाकर चित्रगति उसकी खोज में तत्पर हुआ। फिर 'कमल ने उसका हरण किया है' ऐसी खबर जानकर चित्रगति सर्व सैन्य को लेकर शिवमंदिर नगर आया। वहाँ ज्यों हाथी कमल के खंड का उन्मूलन करे त्यों उस शूर राजा के शूरवीर पुत्र ने लीलामात्र में कमल का उन्मूलन किया। पुत्र का पराभव हुआ जानकर अनंगसिंह राजा शेर समान क्रोध पाया, और सिंहनाद करके सेना लेकर दौड आया। विद्याबल से, सैन्यबल से और भुजबल से उनके बीच देवताओं को भी भयंकर लगे ऐसा महान संग्राम हुआ। आखिर में अनंगसिंह ने चित्रगति शत्रु को जीतना असंभव जानकर उसे जीतने की इच्छा से देवताओं का दिया हुआ क्रमागत खड्गरत्न याद किया। सेंकडों ज्वालाओं से दुरालोक[१] और शत्रुओं के अंतक[२] जैसा वह खड्गरत्न क्षणभर में उसके हाथ में आकर खड़ा रहा। वह खडग हाथ में लेकर अनंगसिंह बोला, ''अरे बालक ! अब तू यहाँ से खिसक जा, नहीं तो मेरे समक्ष खड़े रहने से तेरा मस्तक कमलनाल की तरह इस खडग से मैं छेद डालूंगा।'' चित्रगति आश्चर्य से बोला, ''अरे मूढ़ ! इस समय मुझे तू कुछ अलग ही हो गया हो ऐसा लगता है, क्योंकि एक लोहखंड के बल से तू ऐसा गरज रहा है, परंतु अपने बल से रहित ऐसे तुझे धिक्कार है।'' इस प्रकार कहकर चित्रगति ने विद्या से सर्व जगह अंधकार रचा, जिससे शत्रु सम्मुख रहते हुए भी कोई देख नहीं सकते थे और चित्रांकित जैसे हो गये। फिर चित्रगति ने उसके हाथ में से खड्ग छिन लिया और सुमित्र की बहन को लेकर शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चला गया। क्षणभर के अंधकार के बाद प्रकाश हुआ, तो अनंगसिंह

१. दुःख से देख सके ऐसा। २. अंतक याने अंत करने वाला, काल।

राजा ने देखा तो अपने हाथ में खड्ग नहीं देखा और शत्रु भी अपने समक्ष दिखाई नहीं दिया। पलभर तो उसे इस कारण से खेद हुआ, लेकिन फिर ज्ञानी का वचन याद आया कि मेरे खड्ग को हरनेवाला मेरा जामाता होगा, इसलिये वह प्रसन्न हुआ, लेकिन अब किस प्रकार उसे जाना जायेगा ? यूं सोचते हुए याद आया कि सिद्धायतन में वंदन करते हुए उस पर देवता पुष्पवृष्टि करेंगे। इससे वह जाना जायेगा, इस प्रकार ज्ञानी ने कहा है, इसलिये चिंता करने जैसा नहीं है, इस प्रकार सोचकर वह अपने घर गया।

बुद्धिमान चित्रगति कृतार्थ होकर अखंड शीलवाली सुमित्र की बहन को लेकर सुमित्र के पास आया और उसे सुमित्र को अर्पण की। सुमित्र राजा अपने विवेक से पहले से ही संसार पर उद्विग्न था, उसमें उसकी बहन का हरण होने के बाद तो उसने विशेष निर्वेद पाया था, इसलिये बहन आयी की तुरंत ही अपने पुत्र को राज्य सौंपकर चित्रगति के समक्ष उसने सुयशा मुनि के पास जाकर दीक्षा ली। फिर चित्रगति अपने नगर गया। बुद्धिवान सुमित्र राजर्षि ने गुरु से नौ पूर्व में कुछ कम का अध्ययन किया। फिर गुरु की आज्ञा पाकर सुमित्र मुनि अकेले विहार करते हुए मगध देश में आये। वहाँ किसी गाँव के बाहर कायोत्सर्ग करके रहे। इतने में उनका सापत्न बंधु पद्म वहाँ आ पहुँचा। उसने सर्व जीव के हितकारी सुमित्र मुनि को गिरि की तरह स्थिर होकर ध्यान में रहे हुए देखा। उस समय मानो अपनी माता भद्रा को मिलने जाना चाहता हो त्यों नरकाभिमुख बने पद्म ने कान तक खिंचकर सुमित्र के हृदय में एक बाण मारा। परंतु 'इस भाई ने मुझे बाण मारकर मेरा कुछ भी धर्मभ्रंश नहीं किया, लेकिन कर्म का छेद करने में सहायक मित्र बने होने से उलटा ही वह मुझे हितकारी बना है। मैंने पहले भी इस भद्र को राज्य न दिया इसलिये उसका अपकार किया है। मुझे वह क्षमा करें और दूसरे सब प्राणी भी मुझे क्षमा करें। इस प्रकार शुभ ध्यान ध्याते हुए, सर्वप्रकार के प्रत्याख्यान करके, नमस्कार मंत्र को रटते हुए मृत्यु पाकर सुमित्र मुनि ब्रह्मदेवलोक में इन्द्र के सामानिक देवता बने। पद्म वहाँ से भागकर जा रहा था कि रात्रि में उसे कृष्ण सर्प डशा, जिससे मृत्यु पाकर वह सातवें नर्क में गया।

सुमित्र के मृत्यु की खबर सुनकर महामति चित्रगति चिरकाल शोक करके यात्रा करने के लिये सिद्धायतन में गया। उस समय वहाँ यात्रा में कइं खेचरेश्वर एकत्रित हुए थे। उसमें अनंगसिंह राजा भी अपनी पुत्री **रत्नवती** को लेकर आया था। चित्रगति ने शाश्वत प्रभु की विचित्र प्रकार से पूजा की और फिर अंग में रोमांचपूर्वक भक्ति से विचित्र ऐसी वाणी द्वारा उसने प्रभु की स्तुति की। उस समय देवता बना सुमित्र अवधिज्ञान से जानकर वहाँ आया और उसने अन्य देवों के साथ चित्रगति पर पुष्पवृष्टि की। खेचर हर्ष पाकर चित्रगति की प्रशंसा करने लगे, तो

अनंगसिंह राजा ने भी अपनी पुत्री के वर के रुप में उसे पहचाना। फिर सुमित्र देव प्रत्यक्ष होकर बड़े हर्ष से बोला, "हे चित्रगति ! आप मुझे पहचानते हो ?" चित्रगति ने कहा, "आप कोई महर्द्धिक देव हो ऐसा मैं जानता हूँ।" फिर सुमित्र देव ने उसे पहचान दिलाने के लिये अपना मूल रुप दिखाया। चित्रगति उसे आलिंगन करके बोला, "हे महामति ! आपकी कृपा से ही मैं यह निरवद्य जैनधर्म को पाया हूँ।" सुमित्र ने कहा, "हे भद्र ! आपने कृपा करके मुझे जीवित दान दिया, जिससे मैं ऐसी समृद्धि को पा सका हूँ, परंतु यदि मैं उस समय पचखाण और नवकार मंत्र से रहित होकर मृत्यु पाया होता तो मैं मनुष्य जन्म भी नहीं पाता और इस स्थिति को भी नहीं पाता।" इस प्रकार परस्पर एकदूसरे की प्रशंसा करनेवाले उन दोनों कृतज्ञ मित्रों को देखकर **श्रीसूर** चक्रवर्ती प्रमुख सर्व खेचरेश्वर बडा हर्ष पाये। उस समय रुप और चारित्र में अनुपम ऐसे चित्रगति को देखकर अनंगसिंह की पुत्री रत्नवती काम के बाणों से घायल हो गयी। अपनी पुत्री को व्याकुल हुआ देखकर अनंगसिंह ने सोचा, "ज्ञानी ने जो पहले कहा था वह बराबर मिलता आया है। खडगरत्न हर लिया, पुष्पवृष्टि भी हुई और मेरी पुत्री को तत्काल अनुराग भी उत्पन्न हुआ, इसलिये ज्ञानी के कहने अनुसार यह पुरुष मेरी पुत्री रत्नवती के योग्य वर है। ऐसी पुत्री और जामाता से मैं इस जगत में श्लाघ्य बनूंगा, परंतु इस देवस्थान में लग्न संबंधित सांसारिक कार्य के बारे में बोलना योग्य नहीं है।" इस प्रकार सोचकर अनंगसिंह परिवार सहित अपने घर गया और सुमित्र देव को तथा खेचरों को सत्कार पूर्वक बिदा करके चित्रगति अपने पिता के साथ अपने घर गया।

अनंगसिंह ने घर आकर एक सचिव को सूर चक्री के पास भेजा। उसने वहाँ जाकर प्रणाम करके निष्कपट विनयपूर्वक इस प्रकार कहा, "हे स्वामी ! आपका कुमार चित्रगति कामदेव जैसा है। वह अपने अनुपम रुपलावण्य से किसे आश्चर्य नहीं पहुँचाता ? हे प्रभु ! आपकी आज्ञा से अनंगसिंह की पुत्री रत्न समान रत्नवती इस चित्रगति रुपी रत्न के साथ जुडे। उन दोनों के विवाह के लिये आप ही शक्तिमान हो, इसलिये हे नरसिंह ! अनंगसिंह राजा का वचन मानिए और आज ही मुजे बिदा कीजिये।" सूर राजा ने उचित योग की इच्छा से उसका वचन स्वीकारा। फिर महोत्सवपूर्वक उनका विवाह किया गया। चित्रगति उसके साथ विषयसुख भोगने लगा और अर्हत पूजादि धर्म भी करने लगा। जो पहले धनदेव और धनदत्त का जीव था वे वहाँ से च्यूत होकर इस भव में भी **मनोगति** और **चपलगति** नाम के चित्रगति के अनुज बंधु बने थे। उन दोनों बंधु को और रत्नवती को साथ लेकर चित्रगति इन्द्र की भाँति नंदिश्वरादिक द्वीप में यात्रा करने लगा। हंमेशा समाहित होकर अरिहंत के पास जाकर धर्म सुनने लगा तथा स्त्री और भाइयों सहित साधुओं की सेवा में तत्पर रहने लगा।

एक बार सूरीचक्री ने उसे राज्य पर बैठाकर दीक्षा ली, और आखिरकार वे मोक्ष गये। फिर अनेक विद्याओं को साधकर मानो नवीन सूरचक्री हो ऐसा चित्रगति अनेक खेचरपतियों को अपना सेवक बनाकर अपना अखंड शासन चलाने लगा। एक बार **मणिचूड** नाम का उसका कोई सामंत राजा मृत्यु पाया। उसे **शशि** और **शूर** नाम के दो पुत्र थे। वे पिता के मरण के बाद राज्य के लिये लड़ने लगे। यह सुनकर चित्रगति वहाँ गया और दोनों को राज्य बांट दिये तथा युक्तिवाली धर्मवाणी से समजाकर उन्हें सन्मार्ग पर स्थापित किया। फिर एक बार वे वापस वन के हस्ती की तरह युद्ध करके मृत्यु पाये। यह सुनकर महामति चित्रगति सोचनें लगा, "इस नाशवंत लक्ष्मी के लिये ही मंदबुद्धिवाला युद्ध करता है, मृत्यु पाता है और दुर्गति में गिरता है, उनको धिक्कार है। ज्यों शरीर की अपेक्षा रखे बिना वे लक्ष्मी के लिये उत्साह रखते है, त्यों यदि मोक्ष के लिये उत्साह रखे तो उनको क्या कमी रहेगी ?" ऐसा सोचकर संसार से उद्वेग पाकर चित्रगति ने रत्नवती के ज्येष्ठ पुत्र **पुरंदर** को राज्य पर बिठाया। फिर रत्नवती और अपने दो अनुज बंधुओं सहित **दमधर** नाम के आचार्य से उसने चारित्र ग्रहण किया। चिरकाल तप करके आखिर में पादपोपगम अनशन करके मृत्यु पाकर चित्रगति माहेन्द्र कल्प में परमार्द्धिक देवता बना। रत्नवती और दो कनिष्ठ बंधु भी देवलोक में ही परस्पर प्रीति रखनेवाले देवता बने।

पूर्व विदेह में पद्म नाम के विजय में **सिंहपुर** नाम का एक देवनगर जैसा नगर है। उस नगर में जगत को आनंद देनेवाला और सूर्य के समान दूसरे के तेज को मंद करनेवाला **हरिणंदी** नाम का एक राजा था। उसे अमृत बरसानेवाली कौमुदी जैसी नाम से और दर्शन में **प्रियदर्शना** नाम की एक पटरानी थी। **चित्रगति** का जीव माहेन्द्र देवलोक में से च्यूत होकर उस प्रियदर्शना की कुक्षि में महास्वप्न सूचित होकर अवतरित हुआ। पूर्ण समय पर ज्यों पांडुकवन की भूमि कल्पवृक्ष को जन्म दे त्यों देवी प्रियदर्शना ने एक प्रियदर्शन पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उसका **अपराजित** ऐसा नाम रखा। धात्रियों से लालित किया गया वह बालक क्रमशः बड़ा हुआ। सर्व कला संपादन करके युवावस्था प्राप्त होते ही वह मूर्ति से कामदेव जैसा पुण्य लावण्य का समुद्र बना। उसका बाल्यावस्था से ही धूलिक्रीडा करनेवाला और साथ अभ्यास करनेवाला **विमलबोध** नाम का एक सचिवपुत्र परम मित्र बना।

एक बार वे दोनों मित्र अश्वारुढ होकर क्रीडा करने के लिये बाहर गये। इतने में उनके तीव्र गतिवाले अश्व उनको हरकर एक दूर के बड़े जंगल में ले गये। वहाँ पहुँचते ही अश्व श्रांत होकर खड़े रहे, इतने में वे एक वृक्ष के नीचे उतर पड़े। फिर राजपुत्र अपराजित ने अपने मित्र विमलबोध को कहा, 'हे मित्र ! ये अश्व हमें यहाँ हर लाये जो अच्छा हुआ। नहीं तो अनेक आश्चर्य

से पूर्ण ऐसी पृथ्वी किस प्रकार देखते ? शायद हम बाहर जाने की आज्ञा मागते तो भी हमारे विरह को सहन नहीं करनेवाले हमारे माता-पिता हमें शायद छुट्टी भी नहीं देते। इसलिये यह ठीक हुआ है। हमें अश्वों ने हरा हैं इसलिये हमारे मातापिता को दुःख तो लगेगा, लेकिन हम तो इससे यथेच्छापूर्वक घूम सकेंगे। और माता पिता तो दुःख आन पड़ा यूं मानकर सहन करेंगे।' राजपुत्र के इस वचन को सचिवपुत्र ने 'एवमस्तु' कहकर सहारा दिया। इतने में 'रक्षण करो, रक्षण करो' यूं पुकारता हुआ कोई पुरुष वहाँ आया। उसके सर्व अंग कांप रहे थे और लोचन चंचल बने हुए थे। उसको शरण में आया देखकर कुमार ने कहा, 'भय मत पाना।' सचिवपुत्र ने कहा, 'आप ये सोचे समजे बिना बोले हो, क्योंकि शायद यह पुरुष अन्यायी निकलेगा तो अच्छा नहीं कहलायेगा।' अपराजित बोला, 'न्यायी हो या अन्यायी हो, परंतु यदि वह शरण में आये तो उसकी रक्षा करनी ऐसा सदा शास्त्रधर्म ही है।' कुमार यूं कहते ही है इतने में 'मारो, मारो' यूं बोलते हुए और तीक्ष्ण खड्ग को तानते हुए अनेक आरक्षक पुरुष वहाँ आये और 'अरे यात्रियों ! पूरे नगर को लूंटनेवाले इस पुरुष को छोड़ दो। हमें उसे मारना है।' इस प्रकार वे दूर से कहने लगे। कुमार हँसकर बोला, 'यह पुरुष मेरी शरण में आया है, तो अब वह इन्द्र से भी मारना असंभव है, तो दूसरे की तो बात ही क्या करनी ?' इस प्रकार कहा फिर भी आरक्षक क्रोध से उस पर प्रहार करने आये। तो हिरणों को सिंह मारे त्यों उनको मारने के लिये कुमार खड्ग खींचकर दौडा, तो वे सब तत्काल भाग गये। उन्होंने जाकर अपने स्वामी कौशलपति को कहा, कौशलेश ने चोर के रक्षक को मारने की इच्छा से बड़ा सैन्य भेजा। अपराजित ने उस सैन्य को पलभर में जीत लिया तो राजा स्वयं घुडसवार और गजसवारों से युक्त होकर वहां चढ़ आया। उसे देखकर अपराजित कुमार चोर को सचिवपुत्र को सौंपकर दृढ परिकरबद्ध होकर युद्ध करने समक्ष आया। फिर शेर की तरह एक हाथी के दाँत पर पैर रखकर उसके कुंभस्थल पर चढ़ गया और उपर बैठे हुए गजसवार को मार डाला। फिर उस हाथी पर बैठकर अपराजित युद्ध करने लगा। उसे पहचानकर एक सचिव ने राजा को पहचानाया, तो कौशलेश्वर आज्ञापूर्वक सैनिको को युद्ध करते हुए रोककर बोले कि, 'यह कुमार तो मेरे मित्र हरिनंदी का पुत्र है। तो कुमार को उद्देशकर बोला कि, 'तूजे शाबाशी है। अद्‌भुत ऐसे पराक्रम से तू मेंरे मित्र का सच्चा पुत्र है, क्योंकि शेर के बालक बिना हाथी को मारने में कौन समर्थ होता है ? हे महाभुज ! अपने ही एक घर से दूसरे घर कोई जाय त्यों भाग्ययोग से तू मेरे घर आया है यह बहुत अच्छा हुआ है।' इस प्रकार कहकर उसने हाथी पर बैठे बैठे ही उसे आलिंगन किया। फिर लज्जा से जिसका मुखकमल नम्र हुआ है ऐसे उसको अपने हाथी पर अपने पास बैठाकर पुत्र की भाँति वात्सल्यभाव से अपने घर लाया। उस चोर को बिदा करके अपराजित के पीछे सचिवपुत्र भी वहाँ आये।

फिर दोनो मित्र कोशलराजा के घर सुख से रहने लगे। एक बार आनंद पाये कोशलपति ने **कनकमाला** नाम की अपनी एक कन्या अपराजित से ब्याही। कुछ दिन वहाँ रहकर एक दिन अपने को देशांतर जाने में विघ्न न हो इसलिये किसिको कहे बिना अपराजित कुमार मित्रसहित रात्रि में गुप्त प्रकार चल निकले।

आगे चलते हुए कालिका देवी के एक मंदिर के नज़दिक 'अरे ! यह पृथ्वी पुरुष बिना की हो गयी' ऐसा किसी का रुदन रात्रि में उनको सुनाई दिया। स्वर के अनुसार 'यह कोई स्त्री रो रही है' ऐसा निश्चय करके कृपालु कुमार शब्दघाती बाण की तरह उस शब्द के अनुसार चला। वहाँ प्रज्वलित अग्नि के पास बैठी हुई एक स्त्री और तीक्ष्ण खड्ग को तानकर खडा एक पुरुष उसे नजर आये। उस समय 'जो पुरुष हो वे इस अधम विद्याधर से मेरी रक्षा करें' यूं बोलती हुई कसाई के घर में रही बकरी की तरह वह स्त्री वापस आक्रंद करने लगी। यह देखकर कुमार ने उस पुरुष को आक्षेपपूर्वक कहा, 'अरे पुरुषाधम ! मेरे साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो जा। इस अबला पर क्यों पराक्रम दिखाता है ?' यह सुनकर 'इस स्त्री की तरह तुझ पर भी मेरा पराक्रम है' यूं बोलते हुए वह खेचर खडग खींचकर युद्ध करने के लिये कुमार के समीप आया। फिर दोनों कुशल पुरुषों ने परस्पर के आघात को छलते हुए बड़ी देर तक खडगाखडगी युद्ध किया। फिर भुजायुद्ध करने लगे। बाहुयुद्ध में भी अपराजित को अजेय मानकर उस विद्याधर ने उसे नागपाश से बांध लिया। कुमार ने बडा कोप करके ज्यों उन्मत हाथी उसे बांधे हुए रस्से तोड डाले त्यों उसके पाश को तोड डाला।

फिर उस विद्याधर ने असुरकुमार की तरह क्रोध पाकर विद्या के प्रभाव से विविध प्रकार के आयुधों से कुमार पर प्रहार किया, परंतु पूर्व पुण्य के प्रभाव से और देह के सामर्थ्य से वे प्रहार कुमार को हराने में थोड़े से भी समर्थ नहीं बने। उस समय सूर्य उदयाचल पर चढ़ा तो कुमार ने खड्ग से खेचर के मस्तक पर घाव किया, जिससे मूर्च्छा खाकर वह पृथ्वी पर घिर पड़ा। उसी समय मानो कुमार की स्पर्धा करता हो त्यों कामदेव ने भी अपने बाणों (तीर) से उस स्त्री के उपर प्रहार किये। फिर कुछ उपचार से उस खेचर को सचेत करके कहा कि, 'अब भी यदि समर्थ हो तो वापस युद्ध कर।' विद्याधर बोला, "हे वीर ! आपने मुझे भली प्रकार से जीत लिया है, इतना ही नहीं, पर इस स्त्री के वध से और उससे प्राप्त होनेवाले नरक से भी मुझे अच्छी तरह बचाया है। हे बंधु ! मेरे वस्त्र के छोर पर ग्रंथि में एक मणि और एक मूलिका बाँधी है। उस मणि के जल से मूलिका घिसकर मेरे इस घाव पर लगा दे। कुमार ने ऐसा किया तो वह तत्काल सज्ज हो गया। फिर कुमार के पूछने से वह अपना वृत्तांत कहने लगा -

"वैताढ्य पर्वत पर **रथनूपुर** नगर के **अमृतसेन** नाम के खेचरपति की **रत्नमाला** नाम

की यह दुहिता (पुत्री) है। इसके वर के लिये पूछने पर 'गुणरत्न का सागर हरिणंदी राजा का अपराजित नाम का युवा पुत्र इस कन्या का वर होगा' ऐसा किसी ज्ञानी ने कहा था। तब से यह बाला उसके उपर ही अनुरक्त थी, इसलिये अन्य किसी पर उसका मन दौडाती नहीं थी। एक बार यह बाला मुझे नजर आयी, जिससे मैंने विवाह के लिए उसकी माँग की। उसने कहा, 'कुमार अपराजित ! मेरा पाणिग्रहण करे अथवा मेरे अंग को अग्निदाह दो। इसके सिवा दूसरी गति नहीं है।' उसके ऐसे वचन से मुझे बड़ा कोप चढ़ा। मैं **श्रीषेण** विद्याधर का **सूरकांत** नाम का पुत्र हूँ और इस दिन से मुझे उसके पाणिग्रहण का आग्रह बंध गया है। फिर नगर में से निकलकर कइं दुसाध्य विद्याएं भी मैंने सिद्ध की और फिर दुबारा विविध उपायों से मैंने उसकी प्रार्थना की। फिर भी इस बाला ने जब मेरी इच्छा स्वीकारी नहीं तब मैं उसका हरण करके यहाँ लाया, क्योंकि कामांध पुरुष क्या नहीं करते ? इस स्त्री ने मेरी प्रार्थना स्वीकारी नहीं, इसलिये अब उसके शरीर को अग्नि से दहन करनेरुप उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये खडग से खंडित करके उसे अग्नि मैं डालने के लिये मे तत्पर हुआ। इतने में आपने आकर उसे मृत्यु से बचाया और मुझे दुर्गति में से बचाया। इसलिये आप हम दोनों के उपकारी हो। हे महाभुज ! अब कहिये ! आप कौन हो ?''

फिर सचिवपुत्र ने उस कुमार का कुल नाम वगैरह कह सुनाया। वह सुनकर अचानक प्राप्त हुए इष्ट समागम से रत्नमाला बड़ी प्रसन्न हो गयी। उस समय खोजने निकले हुए **कीर्तिमति** और **अमृतसेन** नाम के उसके मातापिता वहाँ आ पहुँचे। उनके पूछने पर सचिवपुत्र ने उनको पूरा वृत्तांत बताया, इसलिये जो त्राता (रक्षक) वही ब्याहनेवाला हुआ ऐसा जानकर वे दोनों बड़े प्रसन्न हुए। फिर उनके देने पर अपराजित रत्नमाला से ब्याहा और उसके कहने से सूरकांत विद्याधर को अभयदान दिया। सूरकांत विद्याधर ने उस निःस्पृह कुमार अपराजित को वह मणि और मूलिका दिये और सचिवपुत्र को दूसरा वेश धर सके ऐसी एक गुटिका दी। फिर 'जब मैं मेरे स्थानक पर जाऊं तब तुम्हारी इस पुत्री को वहाँ भेजना।' यूं अमृतसेन को कहकर अपराजितकुमार वहाँ से आगे चला। पुत्री सहित अमृतसेन तथा सूरकांत विद्याधर अपराजित को याद करते करते अपने स्थानक पर गये।

कुमार को आगे चलते हुए एक महान अटवी आयी, उसमें उसे बडी तृषा लगने से वह एक आम्रवृक्ष के नीचे बैठा और सचिवपुत्र जल खोजने के लिये गया। दूर जाकर जल लेकर सचिवपुत्र वापस आया, तो उसने आम्रवृक्ष के नीचे अपराजित कुमार को उसने देखा नहीं, जिससे वह चिंतन करने लगा कि, 'क्या भ्रांति से वह स्थान भूलकर दूसरे स्थान पर आ गया हूं ! अथवा क्या अति तृषा से वह कुमार स्वयं ही जल के लिये गये होंगे ?' ऐसा सोचकर

कुमार को खोजने के लिये वह वृक्ष वृक्ष घूमा, लेकिन किसी जगह उसका पता न मिलने से वह मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिरा। कुछ देर बाद वह सचेत होकर करुण स्वर में रोने लगा और बोलने लगा कि, 'हे कुमार ! तेरी आत्मा को बता, मुझे वृथा खेद क्यों देता है ? हे मित्र ! कोई भी मनुष्य तुझे अपकार करने या प्रहार करने में समर्थ नहीं है, इसलिये तेरे अदर्शन में कुछ अमंगलमय हेतु का संभव नहीं है।' इस प्रकार बहुत प्रकार से विलाप करके वह उससे खोजने के लिये गाँव-गाँव घूमते घूमते **नंदीपुर** नाम के नगर में आया। उस नगर के बाहर उद्यान में मंत्रीपुत्र दुःखी मन से खडा था, इतने में दो विद्याधर वहाँ आकर उसे इस प्रकार कहने लगे-

"एक महावन में **भुवनभानु** नाम का एक विद्याधरों का राजा है। वह महा बलवान और परम ऋद्धिवाला विद्याधर एक महल बनाकर उस वन में ही रहता है। उसे **कमलिनी** और **कुमुदिनी** नाम की दो पुत्रियाँ हैं। उनका वर तुम्हारा प्रिय मित्र होगा, ऐसा किसी ज्ञानी ने कहा है। इस पर से हमारे स्वामी ने उसको लाने के लिये हमें भेजा था। हम उस वन में आये, तब वहां तुम दोनों मित्र हमारे देखने में आये। फिर आप जल लेने गये तो हमने अपराजित कुमार का हरण करके उसे हमारे स्वामी भुवनभानु के पास ले गये। उदय पाये हुए भानु जैसे आप (उनको) को देखकर भुवनभानु खडे हुए और उनको संभ्रमपूर्वक एक उत्तम रत्नसिंहासन पर बैठाया। फिर हमारे स्वामी ने उनकी सत्य ऐसी गुण स्तुति करके आपके मित्र को शरमा दिया और फिर अपनी दो पुत्रियों के विवाह के लिये उनकी याचना की। लेकिन तुम्हारे वियोग से पीड़ित ऐसे कुमार ने कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। सिर्फ तुम्हारा ही चिंतवन करते हुए वे मुनि की तरह मौन रहे। फिर हमारे स्वामी ने आपको लाने की हमें आज्ञा दी, इसलिये हम आपको खोजने के लिये निकले। खोजते खोजते यहाँ आये, तो सद्भाग्य से आपके दर्शन हुए है। हे महाभाग्य ! अब खड़े हो जाओ और तुरंत वहाँ चलो, क्योंकि वे दोनों राजकुमारी और राजकुमार का विवाह होना आपके अधीन है।" उनके ऐसे वचन सुनकर मंत्रीकुमार मानो मूर्तिमंत हर्ष हो त्यों (तुरंत) हर्ष पाकर उनके साथ कुमार के पास आये। फिर शुभ दिन पर कुमार ने उन दोनों राजकुमारियों का पाणिग्रहण किया। फिर कुछ काल वहाँ रहकर पूर्व की तरह उन राजकुमारियों को वहाँ रखकर देशांतर जाने निकले।

सूरकांत विद्याधर नें दिये हुए मणि से जिनका वांच्छित सदैव पूर्ण है ऐसे वे राजपुत्र और सचिवपुत्र चलते चलते वहाँ से **श्रीमंदिरपुर** आये और वहाँ कुछ काल रहे। एक बार उस नगर में अतुल कोलाहल उत्पन्न हुआ और कवच धरकर तथा अस्त्र तानकर घूमते अनेक सुभट उन्हें नज़र आये। राजपुत्र ने सचिवपुत्र को पूछा कि 'यह क्या हुआ है ? तब सचिवपुत्र ने लोगों

से जानकर कहा कि 'इस नगर में **सुप्रभ** नाम का राजा है, उस पर किसी पुरुष ने छलबल से राजमहल में प्रवेश करके छुरी से सख्त प्रहार किया है। उस राजा को राज्यधारण करनेवाला कोई पुत्र नहीं है, इसलिये अपनी अपनी आत्मरक्षा करने के लिये पुर के लोग आकुल-व्याकुल होकर पूरे नगर में घूम रहे हैं। उसका यह महान कोलाहल हो रहा है।' इस प्रकार के सचिवपुत्र के वचन सुनकर 'इस राजा को छल से घात करनेवाले दुष्ट क्षत्रिय को धिक्कार है' ऐसा कहते कुमार अपराजित का मुख करुणा से ग्लानि पा गया।

अब यहां **कामलता** नाम की एक प्रधान गणिका ने आकर राजमंत्री को कहा, 'इस राजा का घाव संरोहणि औषधि से भरा जायेगा। हमारे नगर में मित्र सहित कोई विदेशी पुरुष आया है, वह उदार, धार्मिक, सत्ववंत और मूर्तिमंत कोई देव जैसा है। वह कुछ उद्योग भी करता नहीं है, फिर भी सर्व अर्थसंपन्न है, जिससे उस महाप्रभावी पुरुष के पास कुछ चमत्कारी औषध होना चाहिए।' यह सुनकर सचिव कुमार के पास आये और उसे प्रार्थना करके राजा के पास ले गये। राजा उसके दर्शन से ही अपनी आत्मा को स्वस्थ बनी हुई मानने लगा। कृपालु कुमार ने राजा का घाव देखा तो प्रथम से भी ज्यादा दया आयी। जिससे मित्र से वह मणि-मूलिका लेकर, मणि धोकर, वह पानी राजा को पिलाया और उस पानी से वह मूलिका घिसकर राजा के घांव पर लगायी, तो तत्काल राजा का शरीर सज्ज हो गया। उसने आश्चर्य पाकर राजपुत्र को पूछा, "हे कृपानिधि ! निष्कारण बंधु ऐसे आप यहा कहाँ से आये हो ?" सचिवपुत्र ने सर्व वृत्तांत निवेदन किया। राजा ने कहा, 'यह तो मेरे मित्र हरिणंदी का पुत्र है। अहो ! मेरा कैसा प्रमाद कि जिससे मैंने मेरे भ्रातृपुत्र को भी पहचाना नहीं। अथवा मुझपर जो प्रहार हुआ वह मेरे प्रमाद का ही फल है। फिर उसके सद्‌गुणों से खरीद हुए राजा ने मानो रुप में दूसरी रंभा हो ऐसी **रंभा** नाम की अपनी कन्या आग्रह से उसको ब्याही। रंभा के साथ क्रीडा करते हुए कुछ काल वही निर्गमन करके राजपुत्र पहले की भाँति सचिवपुत्र के साथ गुप्त प्रकार से नगर में से निकल गया। वहाँ से **कुंडपुर** समीप आया। वहाँ दिव्य सुवर्णकमल पर बैठे एक केवलज्ञानी मुनि उनको नज़र आये। उन्होंने तीन प्रदक्षिणा करके नमन करके पास बैठकर कानों में अमृत बरसाती हुई धर्मदेशना सुनी। देशना पूर्ण होने के बाद नमस्कार करके अपराजित ने पूछा, 'हे महात्मन् ! मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ ?' केवली बोले, 'हे भद्र ! तूं भव्य है। तू इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र में बाइसवा तीर्थंकर बनेगा और तेरा यह मित्र तेरा मुख्य गणधर होगा।' यह सुनकर वे दोनो खुश हुए। फिर उस मुनि की सेवा करते हुए और स्वस्थ होकर धर्म को पालते हुए वे कुछ दिन वहीँ रहे। केवली ने वहाँ से विहार किया तो वे दोनों भी स्थान स्थान पर जिनचैत्यों को वंदन करते हुए विचरने लगे।

जनानंद नाम के नगर में **जितशत्रु** नाम का एक राजा था। उसे **धारिणी** नाम की शील धरनेवाली रानी थी। वह रत्नवती स्वर्ग में से च्यूत होकर उसकी कुक्षि में अवतरित हुई। उसने पूर्ण समय पर एक पुत्री को जन्म दिया। उसका **प्रितीमति** ऐसा नाम रखा। क्रमशः वह बड़ी हुई और सब कलाएं संपादन की। उसी प्रकार कामावस्थारुप युवावस्था को प्राप्त हुई। सर्व कलाओं को जाननेवाली उस बाला के सम्मुख सुज्ञ पुरुष भी अज्ञ (अज्ञानी) हो जाते थे, जिससे उसकी दृष्टि किसी पुरुष पर जरा भी नहीं जँचती थी। उसके पिता जितशत्रु राजा सोचने लगे कि 'यदि इस चतुर कन्या को मैं किसी ऐरे-गैरे वर के साथ ब्याहूंगा, तो वह जरुर प्राणत्याग करेगी।' ऐसा विचार करके राजा ने उसे एकांत में पूछा कि, 'हे पुत्री ! तूजे कैसा वर मान्य है ?' प्रीतिमति बोली, 'जो पुरुष कलाओं मे मुझे जीत ले, वही मेरा पति हो।' राजा ने वह स्वीकारा। फिर उसकी वह प्रतिज्ञा पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुई तो कइं राजा व राजपुत्र कलाभ्यास करने लगे।

एक बार जितशत्रु राजा ने प्रीतिमति के स्वयंवर का आरंभ किया और नगर के बाहर मण्डप बनाकर उसमें अनेक मंच स्थापित किये गये। फिर बड़े बड़े राजा और राजपुत्रों को आमंत्रित किया गया। अपने पुत्र के वियोग में पीडित ऐसे एक राजा हरणिंदी सिवा सब भूचर और खेचर राजा अपने अपने कुमारों को लेकर वहाँ आये। विमानों मे देवों की तरह वे सब मंचों पर आरूढ हुए। उस समय दैवयोग से कुमार अपराजित भी घूमते घूमते वहाँ आ पहुँचा। उसे सचिवपुत्र विमलबोध ने कहा, 'हम यहाँ बराबर मौके पर आ चढ़े है, तो अब कलाओं का विचार, उसका ज्ञान और इस कन्या का अवलोकन हम करें। लेकिन कोई परिचित मनुष्य हमें देखे नहीं त्यों हमें रहना चाहिये।' इस प्रकार विचार करके उन्होंने गुटिका प्रयोग से अपना और सचिवपुत्र का रुप सामान्य कर दिया। फिर वे दोनों देवता की तरह क्रीडा से विकृत आकृति धारण करके स्वयंवर मंडप में आये।

उस समय पृथ्वी पर आयी हुई कोई देवी हो त्यों अमूल्य वेष धारण कररके दो चँवरों से सेवा पाती, सखियों और दासियों से युक्त मानो दूसरी लक्ष्मी हो वैसी राजकुमारी प्रीतिमति वहाँ आयी, तो उनके आगे चलनेवाले आत्मरक्षक और छड़ीदारों ने लोगों को दूर खिसकाया। वह स्वयंवर मण्डप में आयीं तो मालती नाम की उसकी एक सखी उंगली से निर्देश करके इस प्रकार बोली, "हे सखी ! भूचर और खेचर राजा भी अपने को गुणयुक्त मानकर यहाँ आये हैं। यह कदंब देश का भुवनचंद्र नाम का राजा है। यह वीर पृथ्वी पर सुख्यात और पूर्व दिशा के अलंकार समान है। यह **समरकेतु** नाम का राजा है, जो शरीर की शोभा में कामदेव जैसा और प्रकृति से ही दक्षिण[1] दिशा के तिलकरुप है। यह कुबेर जैसा **कुबेर** नाम का उत्तर दिशा

१. दाक्षिण्यता वाला।

का राजा है, वह शत्रुओं की स्त्रियों में अश्रांत (न थके) और विस्तारवाली कीर्तिरुप लतावन को धरनेवाला है। कीर्ति से सोमप्रभा (चंद्रकांति) को जीतनेवाला यह **सोमप्रभ** नाम का राजा है, और दूसरे **धवल, शूर** और **भीम** वगैरह बड़े राजा हैं, यह खेचरपति **मणिचूड** नाम का महापराक्रमी राजा है। यह **रत्नचूड** नाम का राजा हैं, बडी भुजावाला यह **मणिप्रभ** नाम का राजा है और यह **सुमन, सोम** तथा **सूर** वगैरह खेचरपति राजा है। हे सखी ! इन सर्व को देख, और उनकी परीक्षा कर। ये सब कलाओं के जानकार हैं।'' उसके ऐसे वचन से प्रीतिमति ने जो जो राजा को नेत्र से देखा उन उन राजा को मानो उसने आज्ञा दी हो ऐसा कामदेव बाणो से मारने लगा। फिर मानो उसके पक्ष में साक्षात् सरस्वती रही हो त्यों उस प्रीतिमति ने मधुमत्त कोकिला (कोयल) के जैसे स्वर से एक तर्कवाला प्रश्न पूछा। वह सुनकर जिनकी बुद्धि मारी गई है ऐसे वे सब भूचर और खेचर मानो गले से पकडा गये हो त्यों उसका कोई भी उत्तर नहीं दे सके। लज्जा से उनके मुख झुक गये हैं वैसे वे राजा और राजपुत्र दुःखी होकर परस्पर कहने लगे कि, 'पहले किसी से भी नहीं जीते गए हमको इस स्त्री ने जीत लिया। इसलिये जरुर स्त्रीजाति के संबंध से वाग्देवी सरस्वती ने उसका पक्ष लिया लगता है।'

उस समय जीतशत्रु राजा सोच में पड़ा कि 'क्या विधि इस कन्या को बनाकर प्रयास से खिन्न हुआ होगा कि जिससे इस कन्या के योग्य कोई पति उसने नहीं बनाया होगा ! इन सब राजाओं में से और राजकुमारों में से मेरी पुत्री को कोई जंचा नहीं ? तो जो कोई हीन जातिवाला पति होगा तो उसकी क्या गति होगी ?' राजा का ऐसा भाव जानकर सचिव बोला कि, 'हे प्रभु ! खेद मत करना। कुछ ही काल में उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट पुरुष मिल जायेगा क्योंकि 'पृथ्वी बहुरत्ना है' अब आप ऐसी आघोषणा करवाइए कि जिससे कोई राजा या राजपुत्र या कोई अन्य इस कन्या को जील लेगा वह उसका पति होगा।'' इस प्रकार का विचार जानकर राजा ने मंत्री को शाबाशी दी और तत्काल ऐसी आघोषणा करवाई। वह सुनकर अपराजित कुमार विचार करने लगा कि ''शायद स्त्री के साथ विवाद में विजय हो तो भी उसमें कुछ उत्कर्ष नहीं, परंतु उसे कोई न जीते तो उससे सबके पुरुषपने का क्षय होता है, इसलिये उत्कर्ष हो या न हो लेकिन इस स्त्री को तो सबसे जीत लेना ही योग्य है।'' ऐसा विचार करके अपराजितकुमार तत्काल प्रीतिमती के पास आया। बादल से ढंके हुए सूर्य की तरह वह दुर्वेश से ढंका था, फिर भी उसे देखकर पूर्वजन्म के स्नेहसंबंध से प्रीतिमती के मन में प्रीति उत्पन्न हुई। फिर उसने अपराजित के सामने पूर्वपक्ष किया तो अपराजित ने उसे तत्काल निरुत्तर करके जीत लिया। प्रीतिमती ने तुरंत ही उसके कण्ठ में स्वयंवरमाला आरोपित की। यह देखकर सब भूचर और खेचर राजा उस पर कोपायमान हुए। वे कहने लगे कि 'यह वाणी में बातूनी जैसा

और आकडे के तूल (रुई) समान हलका कौन हैं कि जो कापडी[1] हम सब यहाँ होने पर इस कन्या को ब्याह जाना चाहता है ?' इस प्रकार कहकर सब राजा घुडसवार और गजसवारों के साथ अस्त्र तानकर, कवच पहनकर युद्ध का आरंभ करने के लिये तैयार हुए तो अपराजित कुमार भी एकदम उछलकर किसी गजसवार को मारकर उसके हाथी पर बैठकर उसके ही अस्त्रों से युद्ध करने लगा। पलभर के बाद वापस किसी रथी को मारकर, उसके रथ में बैठकर युद्ध करने लगा। इस प्रकार पलभर भूमि पर और पलभर वापस हाथी पर बैठकर युद्ध करने लगा। वह एक फिर भी अनेक की तरह होकर इन्द्र के वज्र जैसा फुर्तीला हुआ और उसने क्रोध से शत्रु के सैन्य को भग्न कर दिया। फिर 'पहले एक स्त्री ने शास्त्र से जीत लिया और अब इस एकाकी किसी पुरुष ने शस्त्र से जीत लिया।' ऐसी लज्जा से सब राजा एकत्रित होकर युद्ध करने आये, तो अपराजित कुमार एकदम उछलकर सोमप्रभ (राजा) के हाथी पर चढ़ गया। उस समय सोमप्रभ ने कुछ लक्षणों से और तिलकादिक चिहनो से कुमार को पहचाना। उसने तत्काल उस महाभुज को आलिंगन किया और कहा कि 'अरे ! अतुल्य पराक्रमी भानजे ! सद्भाग्य से मैंने तुझे पहचाना।' फिर उसने यह खबर सब राजाओं को दी तो सर्व राजा युद्ध से विराम पाये और वे ही सब उसके स्वजन होकर हर्ष से विवाहमण्डप में आये। फिर जितशत्रु राजा ने शुभ दिन पर परस्पर अनुरुक्त ऐसे अपराजित और प्रीतिमति का विवाहोत्सव किया। अपराजितकुमार ने अपना स्वाभाविक मनोज्ञ रुप प्रकट किया। सब लोग उसके पराक्रम से और रुप से उसके उपर अनुरुक्त हुए। जितशत्रु राजा ने सब राजाओं को योग्य सत्कार करके बिदा किया। अपराजित कुमार प्रीतिमती के साथ क्रीडा करते हुए कुछ काल वहाँ रहा। जीतशत्रु राजा के सचिव ने अपनी रुपवती कन्या सचिवपुत्र विमलबोध के साथ ब्याही, जिससे वह भी उसके साथ क्रीडा करने लगा।

एक बार हरिणंदी राजा का एक दूत वहाँ आया। कुमार ने उसे देखकर संभ्रम से आलिंगन किया। फिर कुमार ने पिता का और माता का कुशल पूछा, तो दूत नेत्र में अश्रु लाकर बोला, 'आपके माता-पिता का शरीर धारण मात्र कुशल है, क्योंकि आपके प्रवासदिन से लेकर उनके नेत्र अश्रु से पूर्ण रहे हैं। आपका नया नया चरित्र लोगों से सुनकर वे पलभर के लिये खुश होते हैं, लेकिन वापस आपका वियोग याद आने पर मूर्च्छा पा जाते हैं। हे प्रभु ! आपका यहाँ का वृत्तांत सुनकर मुझे उसका वास्तविकपन जानने के लिये यहाँ भेजा है, तो अब आप मातापिता को खेद देने योग्य नहीं हो।' दूत के ऐसे वचन सुनकर कुमार नेत्र में अश्रु लाकर गद्गद स्वर से बोला, 'माता-पिता को ऐसा दुःख देनेवाले मुझ जैसे अधम पुत्र को धिक्कार है।' फिर जितशत्रु राजा की आज्ञा लेकर अपराजित कुमार वहाँ से चला। उस समय दो पुत्रियों

१. कार्पटिक - संन्यासी।

को लेकर भुवनभानु राजा वहाँ आया। तथा पहले जिन जिन राजकन्याओं को वह ब्याहे थे, उनको लेकर उनके पिता भी वहाँ आये। अभय पानेवाला सूरकांत विद्याधर भी वहाँ आया। फिर प्रीतिमती और अन्य पत्नियों से तथा अनेक भूचर और खेचर राजाओं से घिरे हुए, भूचर-खेचर सैन्य से भूमि और आकाश को आच्छादित करते हुए अपराजित कुमार थोडे दिन में ही सिंहपुर नगर आ पहुँचा। हरिणंदी राजा ने सामने जाकर पृथ्वी पर लोटे हुए कुमार को आलिंगन करके गोद में बैठाकर बार बार उसके मस्तक पर चुंबन किया। फिर माता ने नेत्र में अश्रु लाकर प्रणाम करते हुए कुमार के पृष्ठ पर कर से स्पर्श किया और उसके मस्तक पर चुंबन किया। प्रीतिमति वगैरह वधुओं ने अपने पूज्य सासु-ससुर के चरण में नमन करके प्रणाम किया, तो विमलबोध ने उनके नाम ले लेकर सबको पहचान कराई। फिर अपराजित ने साथ आये हुए भूचर और खेचरों को बिदा किया और मातापिता के नेत्र को उत्सव कराते हुए वहाँ रहकर सुखपूर्वक क्रीडा करने लगा।

मनोगति और चपलगति जो माहेन्द्र देवलोक में उत्पन्न हुए थे, वे वहाँ से च्यूत होकर **सूर** और **सोम** नाम के अपराजित कुमार के अनुज बंधु हुए। एक बार राजा हरिणंदी ने अपराजित कुमार को राज्य पर बैठाकर दीक्षा ली और वे राजर्षि तपस्या करके परम पद को प्राप्त हुए। अपराजित राजा की पटरानी प्रीतिमती बनी और विमलबोध सचिव बना। दो अनुज बंधु मंडलेश्वर हुए। अपराजित राजा ने पहले से ही अन्य राजाओं को दबाया था, इसलिये वह सुखपूर्वक राज्य करने लगा और निर्विघ्नतापूर्वक भोग भोगने लगा। पुरुषार्थ से अर्चित (यथा योग्य रुप से पुरुषार्थ को साधते) अपराजित राजा विचित्र चैत्य और लाखों रथयात्रा करते हुए काल निर्गमन करने लगा।

एक बार अपराजित राजा उद्यान में गया था। वहाँ मूर्ति में कामदेव समान **अनंगदेव** नाम का एक सार्थवाह का समृद्धिवान पुत्र उसे नजर आया। वह दिव्य वेष को धारण करनेवाला, समान उम्र के मित्रों से घिरे हुए था। कइं रमणीय रमणियों के साथ क्रीडा कर रहा था। याचकों को दान देता था, बंदीजन उसकी स्तुति करते थे और गीतगान सुनने में वह आसक्त था। उसे देखकर अपराजित राजा ने अपने आदमियों को पूछा कि, 'यह कौन है ?' उन्होंने कहा कि, 'यह **समुद्रपाल** नाम के सार्थवाह का **अनंगदेव** नाम का धनाढ्य पुत्र है।' यह सुनकर 'मेरे नगर के व्यापारी भी ऐसे धनाढ्य और उदार है, जिससे मैं धन्य हूँ' यूं अपनी प्रसंशा करते करते अपराजित राजा घर आया।

दूसरे दिन राजा बाहर जा रहा था, कि चार पुरुषों द्वारा उठाया हुआ, और जिसके आगे विरस वाद्य बजता है ऐसा एक मृतक उसे नजर आया। उसके पीछे छाती कूटते हुए, खुले केश

से रुदन करती और कदम कदम पर मूर्च्छा खाती अने स्त्रियाँ जा रही थी। उसे देखकर राजा ने सेवको को पूछा कि, 'यह कौन मर गया ?' वे बोले, 'वह सार्थवाह का पुत्र **अनंगदेव** अचानक विषूचिका (कोलेरा) के व्याधि से मृत्यु पाया है।' यह सुनते ही अपराजित राजा बोला, 'अहो ! इस असार संसार को धिक्कार है और विश्वासी को घात करनेवाले विधि को भी धिक्कार है। हा ! मोहनिद्रा से अंध-चित्त वाले प्राणियों का यह कैसा प्रमाद (आलस्य) है ?' इस प्रकार महान संवेग को धारण करते हुए अपराजित राजा अपने घर वापस गया और कुछ दिन ऐसे खेद में बिताये। एक बार जो केवली पहले कुंडपुर में देखे थे, वे केवली ज्ञान से अपराजित राजा को बोध के योग्य हुए जानकर उसके उपकार के लिये वहाँ पधारे। उनसे धर्म सुनकर **पद्म** नाम के प्रीतिमति से उत्पन्न पुत्र को राज्य पर बैठाकर अपराजित राजा ने दीक्षा ली। उनके साथ उनकी प्रिया प्रीतिमति, अनुज बंधु सूर तथा सोम और सचिव विमलबोध उन सबने दीक्षा ली। वे सब तपस्या करके मृत्यु पाकर **आरण** नाम के ग्यारहवे देवलोक में परस्पर प्रीतिवाले, इन्द्र के सामानिक देवता बने।

इस जंबुद्वीप में भरक्षेत्र के कुरुदेश के मंडन रुप **हस्तिनापुर** नाम का नगर है। उस नगर में चंद्र समान आह्लादकारी **श्रीषेण** नाम का राजा हुआ। उसे लक्ष्मी के जैसी **श्रीमती** नाम की पटरानी थी। एक बार उस रानी ने रात्रि के शेष समय में स्वप्न में शंख समान उज्ज्वल, पूर्णचंद्र अपने मुखकमल में प्रवेश करते हुए देखा। प्रातःकाल में यह वृत्तांत उसने अपने पति श्रीशेण राजा को बताया। राजा ने स्वप्नवेत्ता को बुलाकर उसका निर्णय किया। उन्होंने कहा कि 'चंद्र समान सर्व शत्रुरुपी अंधकार का नाश करे ऐसा एक पुत्र देवी को होगा।' उसी रात्रि में **अपराजित का जीव** आरण देवलोक से च्यूत होकर श्रीमती देवी की कुक्षी में अवतरित हुआ। समय आने पर सर्व लक्षणो से पवित्र ऐसे एक पुत्र को देवी ने जन्म दिया। पिता ने पूर्वज के नाम से उसका **शंख** ऐसा नाम रखा। पांच धात्रियों द्वारा पाला पोषा हुआ वह कुमार क्रमशः बड़ा हुआ। गुरु को मात्र साक्षीभूत करके प्रतिजन्म में अभ्यास की हुई सब कलाएं उसने लीलामात्र में संपादन कर ली। **विमलबोध मंत्री का जीव** आरण देवलोक में से च्यूत होकर श्रीषेण राजा के **गुणनिधि** नाम के सचिव का **मतिप्रभ** नाम का पुत्र हुआ। वह कामदेव को वसंत की तरह शंखकुमार के साथ रजक्रीडा करनेवाला और सहाध्यायी मित्र बना। मतिप्रभ सचिवपुत्र और अन्य राजकुमारों के साथ विविध प्रकार की क्रीडा करते हुए शंखकुमार युवावय को प्राप्त हुआ। एक बार उसके देश के लोग दूर से पुकार करते हुए आकर श्रीषेण राजा को विज्ञप्ति देने (करने) लगे, "हे राजेन्द्र ! आपके देश की सीमा पर अति विषम ऊंचाईवाला, विशाल शिखरोंवाला और शशिरा नाम की नदी से अंकित चंद्र नाम का पर्वत स्थित है। उस पर्वत के दुर्ग में **समरकेतु** नाम का एक पल्लपति रहता है, वह निःसंदेहतापूर्वक हमें लूंटता है, इसलिये

हे प्रभो ! उससे हमारा रक्षण करो।'' यह सुनकर उसके वध के लिये प्रयाण करना चाहते राजा ने रणभेरी बजवाई। उस समय शंखकुमार ने आकर नमस्कार करके नम्रतापूर्वक कहा, ''पिताजी ! ऐसे पल्लीपति के लिये आप इतना सारा आक्षेप (प्रयास) किसलिए करते हो ? मच्छर को मारने के लिये हाथी और खरगोश को मारने के लिये शेर को तैयार होने की जरुरत नहीं होती, इसलिये तात ! मुझे आज्ञा दो। मैं उसे बांधकर यहाँ लाऊँगा। आप स्वयं प्रयाण करना छोड़ दो, क्योंकि वह आपको ऊलटे ही लज्जादायी है।'' पुत्र के ऐसे वचन सुनकर राजा ने उसे तत्काल सेना के साथ बिदा किया।

शंखकुमार क्रमशः उस पल्ली के समीप आया। कुमार को आता देखकर कपट में श्रेष्ठ ऐसा वह पल्लीपति दुर्ग को शून्य (खुला) रखकर अन्य गह्वर में घुस गया। कुशाग्र बुद्धिवाले कुमार ने उस दूर्ग में एक सामंत को सार सार सैन्य सहित प्रवेश करवाया, और स्वयं कुछ सैनिकों को लेकर एक लतागृह में छिप गया। छल करनेवाले पल्लीपति ने उस दुर्ग को घैर लिया। फिर 'अरे कुमार ! अब तूं कहां जायेगा ?' यूं बोलकर जैसे ही उस पल्लीपति ने गर्जना की तब कुमार ने बाहर से आकर अपने अत्याधिक सैन्य से उसे घेर लिया। एक और से दुर्ग के किले पर रहे पहले भेजे हुए सैन्य और दूसरी ओर से कुमार के सैन्य के बीच में रहे पल्लीपति को मारना शुरु किया, तो पल्लीपति कंठ में कुहाडा धारण करके शंखकुमार की शरण में आया और बोला, ''हे राजकुमार ! मेरे मायामंत्रों के उपाय को जाननेवाले आप एक ही हो। हे स्वामी ! सिद्ध पुरुष को भूत की तरह अब मैं तुम्हारा दास बना हूँ, इसलिये मेरा सर्वस्व ग्रहण कीजिये, और प्रसन्न होकर मुझपर अनुग्रह करे।'' कुमार ने उसके पास चोरी का जो धन था वो लेकर, जिसका था वह उसे सौंप दिया और स्वयं लेने योग्य दंड ले लिया। फिर पल्लीपति को साथ लेकर कुमार वापस लौटा।

सायंकाल होते ही मार्ग में उसने पडाव किया। अर्ध रात्रि में कुमार शय्या पर स्थित था कि किसी का करुण स्वर उसे सुनाई दिया। वह तुरंत हाथ में खड्ग लेकर स्वर को अनुसरता हुआ चला। आगे चलते ही आधेड (बडी वृद्ध) उम्र की एक स्त्री को उसने रुदन करते हुए देखा, तो कुमार ने मृदु स्वर में उसे कहा, 'हे भद्रे ! रो मत। तेरे दुःख का जो कारण हो वह कह।' कुमार की मूर्ति और वाणी से आश्वासन पाकर वह स्त्री बोली, ''अंग देश में चंपानगरी में **जितारी** नाम का राजा है, उसे **कीर्तिमती** नाम की रानी है। उस रानी को कइ पुत्र होने के बाद **यशोमती** नाम की एक स्त्रियों मे शिरोमणि पुत्री हुई है। वह अपने योग्य वर किसी स्थान पर नहीं दिखने से पुरुष पर अरोचकी[1] बनी है, जिससे उसकी दृष्टि किसी भी पुरुष पर नहीं

१. अरुचिवाली।

जमती। एक बार श्रीशेण राजा का पुत्र शंखकुमार उसके श्रवणमार्ग में आने पर उसने और कामदेव ने एक साथ उसके हृदय में स्थान किया। उस समय यशोमती ने प्रतिज्ञा की कि 'इस शंखकुमार से ही मुझे ब्याहना है।' पुत्री को अनुराग योग्य स्थान पर हुआ है ऐसा जानकर उसके पिता ने भी इस बात से बडा हर्ष पाया। फिर जितारी राजा ने श्रीषेण राजा से उसके विवाह के लिये आदमी भेजे। इतने में विद्याधरपति **मणिशेखर** ने उस कन्या की माँग की। जितारी राजा ने उसे कहा कि, "मेरी कन्या शंखकुमार के सिवा दूसरे को चाहती नहीं है।" जिससे क्रोध पाकर उस अधम विद्याधर ने जबरदस्ती से उसका हरण किया है। मैं उस यशोमती कन्या की धात्री हूँ। उसका हरण हुआ तब मैं उसकी भुजा के साथ लिपटे हुई थी, लेकिन उस दुष्ट खेचर ने बल से मुझे छुडा लिया है। संसार में साररुपी उस रमणी को वह दुष्ट कौन जाने कहां ले गया होगा ? इसलिये मैं विलाप करती हूँ कि वह मेरे बिना किस प्रकार जियेगी ?"

इस प्रकार उसकी हकीकत सुनकर 'भद्रे ! धीरज धर। मैं उस दुष्ट को जीतकर चाहे जहाँ से उसे ले आऊंगा।' इस प्रकार कहकर शंखकुमार उसे खोजने के लिये अटवी में घूमने लगा। उस समय सूर्य उदयाचल पर आरुढ हुआ और शंखकुमार भी किसी विशाल शृंगवाले गिरि पर आरुढ हुआ। वहाँ से एक गुहा के अंदर उसे यशोमति नजर आयी। वह विवाह के लिये प्रार्थना कर रहे उस खेचर को इस प्रकार कह रही थी - "अरे अप्रार्थितनी[1] प्रार्थना करनेवाले ! तू किसलिये खेद करता है ? शंख समान उज्ज्वल गुणवाला शंखकुमार ही मेरा भर्त्ता (पति) है। कदापि अन्य कोई मेरा भर्त्ता बनेगा नहीं।" उस समय उस विद्याधर और कुमारी ने शंखकुमार को देखा। तो वह दुष्ट विद्याधर बोला, 'हे मूर्ख ! यह तेरा प्रिय काल से आकर्षित होकर यहाँ मेरे वश आ गया है। हे बाला ! अब तेरी आशा के साथ ही उसे मारकर मैं तूझे ब्याहूंगा और मेरे घर ले जाऊंगा।' इस प्रकार कहते हुए उस दुष्ट को शंखकुमार ने कहा, 'अरे ! परनारी का हरण करनेवाले पापी ! खडा हो। इस समय इसी खड्ग से मैं तेरा मस्तक काट लेता हूँ।' फिर वे दोनों आमने-सामने खड्ग तानकर सुंदर चालाकीपूर्वक और पृथ्वी को कंपाते हुए युद्ध करने लगे। जब वह विद्याधर भुजा बल से कुमार को जीत नहीं पाया, तब विद्या से रचे हुए तप्त लोहमय गोले वगैरह अस्त्रों से युद्ध करने लगा, लेकिन पुण्य के उत्कर्ष से वे गोले कुमार को कुछ भी नुकसान पहुंचाने में समर्थ नहीं हुए। कुमार ने अपने खड्ग से उसके कइ अस्त्रो को खंडित कर डाला। अस्त्रो के खंडन से खेद पाये हुए खेचर का धनुष्य कुमार ने छेद डाला और उसके ही बाण से उसकी छाती को छेद डाला। तत्काल छेदे हुए वृक्ष की भाँति वह विद्याधर पृथ्वी पर गिरा तो शंखकुमार ने पवन वगैरह उपचार से उसे सज्ज करके पुनः

१. मृत्यु।

युद्ध करने का आमंत्रण दिया। खेचरपति कुमार प्रति बोला, 'हे पराक्रमी ! मैं जो किसिसे जिता न गया था, उसे तूने जीत लिया है, इसलिये तू सर्वथा मान्य पुरुष है। हे वीर ! ज्यों तूने इस यशोमति को गुण से खरीद लिया है, त्यों मैं भी तेरे पराक्रम से खरीद हो गया हूँ। इसलिये मेरे अपराध को तू क्षमा कर।' कुमार बोला, 'हे महाभाग ! तेरे भुजावीर्य से और विनय से मैं रंजित हुआ हूँ। इसलिये कह, में तेरा क्या कार्य करुं ?' विद्याधर बोला, 'यदि आप प्रसन्न हुए हो तो वैताढ्यगिरि पर चलो। वहाँ आपको सिद्धायतन की यात्रा होगी और मुज पर अनुग्रह होगा।' शंखकुमार ने त्यों करना कबूल किया। यशोमती 'ऐसे उत्तम भर्त्ता को मैं वरी हूँ' ऐसा जानकर मन में बड़ा हर्ष पायी।

उस समय मणिशेखर के सेवकरुप खेचर यह वृत्तांत जानकर वहाँ आये और उन्होंने उपकारी ऐसे शंखकुमार को नमस्कार किये। फिर उन दो खेचरों को अपने सैन्य में भेजकर शंखकुमार ने अपना वृत्तांत सुनाया और उस सैन्य को तत्काल हस्तिानपुर तरफ जाने की आज्ञा दी। फिर उस यशोमती की धात्री को खेचरों द्वारा वहाँ बुलवाया और धात्री तथा यशोमती सहित शंखकुमार वैताढ्यगिरि पर आया। वहाँ सिद्धायतन में रहे शाश्वत प्रभु को उसने वंदना की और यशोमती के साथ उनकी नाना (अनेक) प्रकार से पूजा की। फिर मणिशेखर कुमार को **कनकपुर** में ले गया, और उन्हें वहाँ अपने घर रखकर देवताओं की भाँति उसकी पूजा-भक्ति की। सब वैताढ्यवासियों को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, जिससे सब आ-आकर शंख कुमार और यशोमती को बार बार देखने लगे। शत्रुंजय वगैरह मूल्य से प्रसन्न बने कुछ महर्द्धिक खेचर शंखकुमार के पैदल[1] होकर रहे और वे अपनी अपनी पुत्रियाँ शंखकुमार को देने लगे। उनको कुमार ने कहा कि 'यशोमती को ब्याहे बाद इन कन्याओं को मैं ब्याहूंगा।'

एक बार मणिशेखर वगैरह अपनी अपनी कन्याएं लेकर यशोमती सहित शंखकुमार को चंपा नगर में ले गया। 'अपनी पुत्री के साथ अनेक खेचरेन्द्रों से परिवृत्त होकर उसका वर आ रहा है,' यह खबर सुनकर जितारी राजा बड़ा खुश होकर सामने आया। वहाँ संभ्रम से शंखकुमार को आलिंगन देकर उस राजा ने सबको नगरप्रवेश करवाया और महोत्सवपूर्वक अपनी पुत्री का उसके साथ विवाह किया। फिर शंखकुमार अन्य विद्याधरों की कन्याओं से भी ब्याहा, और श्री वासुपूज्य स्वामी के चैत्य की भक्तिपूर्वक यात्रा की। फिर खेचरों को बिदा करके कइं दिन वहाँ रहकर यशोमती वगैरह पत्नियों सहित शंखकुमार हस्तिनापुर आया।

अपराजित कुमार के पूर्व जन्म के अनुज बंधु सूर और सोम जिस आरण देवलोक में उत्पन्न हुए थे वहाँ से च्यूत होकर **यशोधर** और **गुणधर** नाम के इस जन्म में भी उसके

१. पैरो से चलनेवाले सेवक।

(शंखकुमार के) अनुज बंधु हुए। राजा श्रीषेण ने शंखकुमार को राज्य देकर **गुणधर** गणधर के चरण में आकर दीक्षा ली। ज्यों श्रीषेण राजा मुनि होकर दुःसह तप को पालने लगे त्यों शंख के समान उज्ज्वल यशवाला शंखकुमार चिरकाल पृथ्वी को पालने लगा। एक बार जिसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे और देवता के सान्निध्यपन से शोभित श्रीषेण राजर्षि विहार करते हुए वहाँ पधारे। शंख राजा यह खबर सुनकर सामने आया और भक्ति से उनकी वंदना करके संसार सागर में नाविका समान उनकी देशना सुनी। देशना के अंत में शंख राजा बोला, "हे सर्वज्ञ ! आपके शासन से मैं जानता हूँ कि इस संसार में कोई किसिका संबंधी नहीं है, केवल स्वार्थ के संबंधी हैं। फिर भी इस यशोमती पर मुझे अधिक ममता क्यों हुई ? यह प्रसन्न होकर कहिए और मुज जैसे अनभिज्ञ (अज्ञानी) को शिक्षा दीजिये।"

केवली भगवंत बोले, "तेरे धनकुमार के भव में वह तेरी धनवती नाम की पत्नी थी, सौधर्म देवलोक में तेरे मित्ररुप में उत्पन्न हुई थी, चित्रगति के भव में रत्नवती नाम की तेरी प्रिया थी। माहेन्द्र देवलोक में तेरा मित्र बनी थी। अपराजित के भव में वह प्रीतिमती नाम की स्त्री बनी थी। फिर आरण देवलोक में तेरी मित्र बनी थी और इस सातवें जन्म में वह यशोमती नाम की तेरी स्त्री बनी है। इसलिये जन्म-जन्मांतर के योग से तेरा उसके साथ स्नेहसंबंध चला आ रहा है। अब यहां से अपराजित नाम के अनुत्तर विमान में जाकर वहाँ से च्यूत होकर इस भरतखंड में आप नेमिनाथ नाम के बाइसवें तीर्थंकर बनोगे, और यह यशोमती राजीमंती नाम से अविवाहितपन में अनुरागी होकर आपकी स्त्री होगी। वह आपसे दीक्षा लेकर अंत में परम पद को प्राप्त करेगी। यह यशोधर और गुणधर नाम के अनुज बंधु और मतिप्रभ नाम का सचिव आपके गणधरपद को प्राप्त करके सिद्धि पद को पायेंगे।"

इस प्रकार गुरुमुख से सुनकर शंख राजा ने **पुंडरिक** नाम के पुत्र को राज्य पर बैठाकर दीक्षा ग्रहण की और उसके दोनों बंधु मंत्री और यशोमती ने उनके पास दीक्षा ली। क्रमशः शंख मुनि ने गीतार्थ बनकर महा कठोर तपस्याएं की। अर्हंत भक्ति वगैरह स्थानको के आराधन से तीर्थंकर नाम उपार्जन किया। अंत में पादपोगमन अनशन करके शंखमुनि **अपराजित** विमान में उत्पन्न हुए और यशोमति वगैरह भी उसी विधि से अपराजित विमान[1] को प्राप्त हुए।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये
अष्टमे पर्वणि श्री अरिष्ट नेमिपूर्वभववर्णनो नाम प्रथमः सर्गः॥१॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

१. चौथा अनुत्तर विमान।

द्वितीय सर्ग

वसुदेव चरित्र - पूर्व जन्म और गृहत्याग

इस भरत क्षेत्र में **मथुरा** नामक एक श्रेष्ठ नगरी है, जो यमुना नदी से मानो नील वस्त्र धारण करती हो वैसे शोभित है। इस नगरी में हरिवंश के सुख्यात राजा वसु के पुत्र बृहद्ध्वज के बाद कई राजा हो जाने के बाद यदु नामक एक राजा हुआ। यदु को सूर्य जैसा तेजस्वी **शूर** नामक पुत्र हुआ और शूर को **शौरि** एवं **सुवीर** नामक दो वीर पुत्र हुए। संसार पर वैराग्य आने से शौरि को राज्य-सिंहासन पर बैठाकर व सुवीर को युवराज पद देकर शूरराजा ने दीक्षा ग्रहण की। शौरि अपने अनुज बंधु सुवीर को मथुरा का राज्य देकर स्वयं **कुशार्त देश** में गया और वहाँ उसने **शौर्यपुर** नामक एक नगर बसाया। शौरि राजा को **अंधकवृष्णि** वगैरह पुत्र हुए और सुवीर को **भोजवृष्णि** वगैरह अत्यंत पराक्रमी पुत्र हुए। महाभुज सुवीर मथुरा का राज्य अपने पुत्र भोजवृष्णि को देकर स्वयं सिंधु देश में **सौवीरपुर** नामक नगर बसाकर वहाँ रहा। महावीर शौरि राजा अपने पुत्र अंधकवृष्णि को राज्य सौंपकर **सुप्रतिष्ठ** मुनि से दीक्षा लेकर मोक्ष पधारे।

यहाँ मथुरा में राज्य कर रहे भोजवृष्णि को उग्र पराक्रमवाला **उग्रसेन** नामक एक पुत्र हुआ। अंधकवृष्णि को **सुभद्रा** रानी से दस पुत्र हुए। उनके **समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र** और **वसुदेव** ऐसे नाम रखे गये। ये दस **'दशार्ह'** नाम से प्रसिद्ध हुए। उनको **कुंती** एवं **माद्री** नामक दो अनुज बहिने हुई। उनके पिताने कुंती **पाण्डु** राजा को और माद्री **दमघोष** राजा को दी। एक बार अंधकवृष्णि राजा ने **सुप्रतिष्ठ** नामक अवधिज्ञानी मुनि को प्रणाम करके हाथ जोड़कर पूछा - ''स्वामिन् ! मेरा वसुदेव नामक दसवाँ पुत्र है, वह अत्यंत सुंदर, सौभाग्यशाली एवं कलावान और पराक्रमी है, इसका क्या कारण है ?''

सुप्रतिष्ठ मुनि बोले, 'मगध देश के नंदिग्राम में एक गरीब ब्राह्मण था, उसे सोमिला नामक स्त्री थी। उन्हें **नंदिषेण** नामक एक पुत्र हुआ। मंदभागी के सिरताज जैसे उस पुत्र के माता-पिता बाल्यावस्था में ही चल बसे। वह पुत्र बड़े पेटवाला, लम्बे दाँतवाला, खराब नेत्रवाला और चोकोर सिरवाला था। इसलिए व अन्य अंगों मे भी कुरुप होने से उसके स्वजनों ने भी उसको त्याग दिया था। उस समय जीवित होने पर भी मरा हुआ जानकर उसके मामा ने उसे ग्रहण किया। मामा को ब्याहयोग्य सात कन्याएं थी। उसके मामा ने उसे कहा था कि 'मैं एक कन्या तुझे दूंगा।' कन्या की लालच में वह घर का सब काम करता था। यह बात जानकर सात कन्याओं में सबसे बड़ी युवा कन्या ने कहा, 'यदि पिता मुझे इस कुरुपी को देंगे तो अवश्य मैं मृत्यु पाऊँगी।' यह सुनकर नंदिषेण को खेद हुआ। उसके मामा ने कहा, 'मैं तुझे दूसरी

पुत्री दूंगा, तुं खेद मत कर।' यह सुनकर दूसरी पुत्री ने भी वैसी ही प्रतिज्ञा की। इस प्रकार सभी पुत्रियों ने क्रमानुसार ऐसी ही प्रतिज्ञा की, और उसका प्रतिषेध (मना) किया। यह सुनकर खेद पाए हुए नंदिषेण को उसके मामा ने कहा कि 'मैं कोई दूसरे से मांगकर तुझे कन्या ब्याहूंगा, (शादी करवा दूंगा) इसलिए हे वत्स ! तू अस्वस्थ मत बन।' नंदिषेण ने सोचा कि 'जब मेरे मामा की कन्याएं ही मुझे नहीं चाहती, तो फिर मेरे जैसे कुरुपी को दूसरों की कन्या कैसे चाहेगी ?' ऐसा सोचकर वैराग्य पाकर वह वहाँ से चलकर **रत्नपुर** नगर में आया। वहाँ क्रीडारत कोई स्त्री-पुरुष को देखकर वह अपनी निंदा करने लगा। मरने की इच्छा से बैरागी होकर वह उपवन में आया। वहाँ **सुस्थित** नामक एक मुनि को देखकर उनको वंदना की। ज्ञान से उसके मनोभाव जानकर वे मुनि बोले, 'अरे ! मनुष्य ! तू मृत्यु का साहस मत करना, क्योंकि ये सब अधर्म के फल हैं। सुख चाहनेवालों को तो धर्म करना चाहिए। आत्मघात से कुछ सुख नहीं मिलता, दीक्षा लेकर किया गया धर्म ही जन्मोंजन्म के सुख का कारण बनता है।' इस प्रकार सुनकर उसने प्रतिबोध पाया इसलिए उसने तुरंत ही उस मुनि से व्रत ग्रहण किया। बाद में गीतार्थ होकर उसने साधुओं की सेवाचाकरी करने का अभिग्रह किया।

बाल और ग्लान प्रमुख मुनियों की सेवाचाकरी करनेवाले और उसमें कदापि खेद नहीं पानेवाले इस नंदिषेण मुनि की एक बार इन्द्र ने सभा में प्रशंसा की। इन्द्र के वचन पर श्रद्धा नहीं रखनेवाला कोई देव ग्लान मुनि का रुप धरकर रत्नपुर के समीप एक अरण्य में आया, और एक दूसरे साधू का वेष धरकर नंदिषेण मुनि के पास गया। नंदिषेण मुनि जैसे ही पारणा करने के लिए बैठकर ग्रास भरने जा रहे थे कि उस साधू ने आकर कहा, 'अरे भद्र ! साधुओं की सेवाचाकरी करने की प्रतिज्ञा लेकर तू इस समय क्यों खाने बैठा है ? नगर के बाहर अतिसार के रोगी एक मुनि क्षुधा और तृषा से पीड़ित हैं।' यह सुनते ही नंदिषेण मुनि आहार करना छोड़कर मुनि के लिए शुद्ध पानी खोजने नीकले। उस समय आया हुआ देव अपनी शक्ति से सर्वत्र से जल अप्राप्य करने लगा, परंतु लब्धिवाले मुनि के प्रभाव के सामने उसकी शक्ति अधिक न चल पायी। नंदिषेण मुनि ने किसी जगह से शुद्ध जल प्राप्त किया। इसके बाद नंदिषेण मुनि उस ग्लान मुनि के पास आये, इतने में उस मायावी मुनि ने कठोर वाक्यों से उन पर आक्रोश किया, 'अरे अधम ! मैं ऐसी दशा में गिरा हूँ और तू इस समय भोजन में लंपट होकर तत्काल यहां आया नहीं, इसलिए तेरी सेवाचाकरी की प्रतिज्ञा को धिक्कार है।' नंदिषेण मुनि बोले, 'हे मुनि ! मेरे इस अपराध को क्षमा करें। अब मैं आपको सज्ज करुंगा। आपके योग्य वह शुद्ध पानी मैं लाया हूँ।' फिर उसका पान कराकर उन्होंने कहा, 'जरा बैठ जाइए।' ग्लान मुनि बोले, 'अरे मुंडिये ! मैं कैसा अशक्त हूँ, यह क्या तू नहीं देखता ?' उसके ऐसे वचन

सुनकर उन्हें अपने कंधे पर चढ़ाकर नंदिषेण मुनि चले, फिर भी वे मुनि कदम कदम पर इस प्रकार उनके उपर आक्रोश करते थे, 'अरे अधम ! तेज चलकर मेरे शरीर को ज्यादा झुलाकर मुझे क्यो कष्ट देता है ? यदि साधू की सचमुच सेवाचाकरी करनी है तो धीरे धीरे चल।' इस प्रकार कहने पर वे धीरे धीरे चले तो देवता ने उन पर विष्टा की और कहा, 'तुं गतिभंग क्यों करता है ?' 'ये महर्षि पीडारहित कब हो जायेंगे ?' यों सोचते हुए नंदिषेण मुनि उनके कटु वचनों पर जरा सा भी ध्यान नहीं दे रहे थे।

नंदिषेण मुनि की ऐसी दृढ़ता देखकर उस देव ने विष्टा का हरण किया और दिव्यरुप से प्रकट होकर उनकी तीन परिक्रमा करके नमस्कार किए। फिर उसने इन्द्र द्वारा की गयी प्रशंसा की बात कही और क्षमा माँगते हुए कहा, 'हे महाभाग ! मैं आपको क्या दूं ? यह कहो।' मुनि बोले, 'मैंने महा दुर्लभ धर्म प्राप्त किया है, साररुप इस संसार में उससे अधिक दूसरा कुछ भी नहीं है जिसकी मैं आपसे माँग करुं।' उनका उत्तर सुनकर देवता स्वर्ग पधारे और मुनि अपने उपाश्रय में आए, अन्य मुनियों ने पूछा तो उन्होंने गर्वरहित होकर सबकुछ बता दिया। उन्होंने बारह हजार वर्ष तक कठिन तप किया और अंत में अनशन किया। उस अवसर पर उन्हें अपना दुर्भाग्य याद याद आया। उन्होंने ऐसा संकल्प किया कि 'इस तप के प्रभाव से मैं अगले जन्म में स्त्रीवल्लभ बनूं।' ऐसा संकल्प करके मृत्यु पाकर वे **महाशुक्र देवलोक** में देवता बने। वहां से च्यूत होकर वे आपके पुत्र वसुदेव हुए हैं। पूर्व जन्म के संकल्प से वे ललनाओं को अति वल्लभ बने हैं।'' फिर अंधकवृष्णि राजा ने समुद्रविजय को राज्यसिंहासन पर बिठाया और स्वयं सुप्रतिष्ठ मुनि से दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

यहाँ राजा भोजवृष्णि ने भी दीक्षा ली, सो मथुरा में **उग्रसेन** राजा बने। उसे धारिणी नामक पटरानी थी। एक बार उग्रसेन राजा बाहर जा रहे थे, उन्होंने एकांत में बैठे हुए कोई मासोपवासी तापस को देखा। वह तापस का ऐसा अभिग्रह था कि 'मासोपवास के पारणे पर पहले घर से ही भिक्षा मिले तो उससे मासोपवास का पारणा करना। वहां न मिले तो दूसरे घर से भिक्षा लेकर करना नहीं।' इस प्रकार महिने महिने एक घर की भिक्षा से पारणा करके वह एकांत प्रदेश में आकर रहता था, किसी के घर में नहीं रहता था। यह हकीकत सुनकर उग्रसेन राजा उसको पारणे के लिए निमंत्रित करके अपने घर गये। तापस मुनि उनके पीछे गया। परंतु घर जाने के बाद राजा यह बात भूल गये। इसलिए वह तापस भिक्षा न मिलने से पारणा किए बिना ही वापिस अपने आश्रम में आया और दूसरे दिन फिर से मासक्षमण ग्रहण किया। एक बार राजा फिर से उस स्थान पर आ पहुँचा। वहाँ वह तापस पहले जैसे ही उसके देखने में आया, तो स्वयं के पहले निमंत्रण को याद करके राजा ने कुछ मीठे वचनों से उनसे क्षमा मागी और दुबारा निमंत्रण दिया। दैवयोग से फिर से पहले की तरह राजा भूल गये और तापस पारणा

किए बिना ही आश्रम में वापिस लौटा। यह याद आते ही राज़ा ने पहले की तरह उनसे क्षमा मांगी और फिर से निमंत्रण दिया। इस बार भी राजा भूल गया। इससे तापस को क्रोध आया, तो 'इस तप के प्रभाव से मैं जन्मांतर में इसका वध करनेवाला बनूं' ऐसा संकल्प करके अनशन ग्रहण करके उसने मृत्यु पायी।

वहाँ से वह तापस उग्रसेन की स्त्री धारिणी के उदर में उत्पन्न हुआ। उसके अनुभाव से एक बार रानी को अपने पति का मांस खाने का अभिलाष हुआ। अभिलाष पूर्ति न होने के कारण दिनोदिन क्षय पाती और कहने में लज्जा पाती धारिणी ने एक बार बड़े कष्ट से अभिलाष अपने पति को कहा। सचिव ने राजा को अंधकार में रखकर उसके उदर पर खरगोश का मांस रखकर उसमें से काट काटकर रानी को देने लगे। जब उसका अभिलाष पूर्ण हुआ तब वह अपनी मूल प्रकृति में आयी, तो वह बोली, 'अब पति के बिना यह गर्भ और जीवन किस काम के ?' अंत में वह पति के बिना मरने को तैयार हुई तब सचिवों ने कहा, 'हे देवी ! मरना नहीं, हम आपके स्वामी को सात दिन में जीवित कर दिखायेंगे।' सचिवों ने इस प्रकार कहकर रानी को स्वस्थ किया और उसे सातवें दिन उग्रसेन दिखा। रानी ने बड़ा उत्सव किया। इसके बाद पौष माह की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को चन्द्र मूल नक्षत्र में आते ही धारिणी देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। प्रथम के भयंकर अभिलाष के कारण गर्भ से भयभीत हुई रानी ने पहले से तैयार करवाई हुई एक कांसे की पेटी में ताजे जन्मे हुए बालक को रख दिया। उस पेटी में राजा और अपने नाम से अंकित दो मुद्रा तथा पत्रिका रखकर, रत्न से भरकर वह पेटी अपनी दासी द्वारा यमुना नदी के जल में बहवा दी और 'पुत्र पैदा होकर मर गया' ऐसा रानी ने राजा को कह दिया।

यमुना नदी उस पेटी को बहाते बहाते शौर्यपुर के द्वार तक ले गई। कोई **सुभद्र** नामक रसवणिक[1] प्रातःकाल में शौच के लिए नदी पर आया था। उसने उस कांसे की पेटी को आते हुए देखा तो उसे जल से बाहर खींच निकाली। उस पेटी को खोलते ही उसमें पत्रिका और दो रत्नमुद्रा के साथ बालचन्द्र जैसा एक सुन्दर बालक देखकर वह अति विस्मित हुआ। वह वणिक पेटी वगैरह साथ लेकर बालक को अपने घर लाया और हर्षपूर्वक अपनी **ईन्दु** नामक पत्नी को पुत्र रुप में अर्पण किया। दम्पती ने उसका नाम **कंस** रखा और शहद, दूध एवं घृत वगैरह से उसको बड़ा किया। ज्यों ज्यों वह बड़ा होता गया त्यों त्यों कलहशील होकर वह लोगों के बालकों को मारने-पीटने लगा। इससे वणिक दम्पती के पास दिन-प्रतिदिन लोगों की शिकायते आने लगी। जब वह दस साल का हुआ तब उस दम्पती ने उसको सेवक के रुप में वसुदेव कुमार को अर्पण किया। वसुदेव को वह अति प्रिय बन पड़ा। वहां वसुदेव के साथ रहकर वह

१. घी वगैरह रसपदार्थों का व्यापारी।

सब कलाएं सीखा, साथ ही खेलने लगा और साथ ही युवावस्था को प्राप्त हुआ। इस प्रकार साथ रहते हुए वसुदेव और कंस एक राशि में आये बुध और मंगल समान शोभा पाने लगे।

इस दौरान **शुक्तिमती** नगरी के राजा **वसु**[1] का पुत्र **सुवसु** जो भागकर नागपुर गया था, उसे **बृहद्रथ** नामक पुत्र हुआ था, और वह राजगृह नगर जाकर रहा था। वहाँ उसकी संतति में **बृहदरर्थ**[2] नामक एक राजा हुआ, उसे **जरासंध** नामक पुत्र हुआ। वह जरासंध प्रचंड आज्ञाकारी और त्रिखण्ड भरत का स्वामी प्रतिवासुदेव हुआ। उसने समुद्रविजय राजा को दूत भेजकर कहलवाया कि 'वैताढ्यगिरि के पास **सिंहपुर** नामक नगर है, उसका सिंह (शेर) जैसा दुःसह **सिंहरथ** नामक राजा है, उसे बांधकर यहाँ ले आओ।' और कहा कि 'उसे बांधकर लानेवाले पुरुष को मैं मेरी **जीवयशा** नामक पुत्री दूंगा और उसकी इच्छा होगी तो एक समृद्धशाली नगर भी दूंगा।' दूत के ऐसे वचन सुनकर वसुदेवकुमार ने जरासंध का दुष्कर शासनवश करने के लिए समुद्रविजय से मांग की। कुमार की ऐसी मांग सुनकर राजा समुद्रविजय ने कहा, 'हे कुमार ! आप जैसे सुकुमार बालक को इस समय युद्ध का अवसर नहीं है, इसलिए ऐसी मांग करना उचित नहीं है।' वसुदेव ने दूसरी बार आग्रहपूर्वक मांग की तो समुद्रविजय ने मुश्किल से बड़ी सेना के साथ उसे बिदा किया। वसुदेव वहां से तत्काल चला। उसका आना सुनकर सिंहरथ भी सैन्य लेकर सन्मुख आया। उन दोनों के बीच भारी युद्ध हुआ। अब सिंहरथ ने वसुदेव की सेना को पराजित किया तब वसुदेव कंस को सारथि बनाकर स्वयं युद्ध करने उसके नज़दीक आया। सुर असुर की भाँति क्रोध से परस्पर जय की इच्छावाले उन्होंने विविध प्रकार के आयुधों से चिरकाल तक भारी युद्ध किया। महाभुज कंस ने सारथिपना छोड़कर बड़े परिघ से सिंहरथ के मजबूत रथ को तोड़ डाला। तो उसनें कंस को मारने के लिए आगबबूला होकर म्यान में से खड्ग निकाला, उस समय वसुदेव ने क्षुरप्र बाण से उसकी खड्गवाली मुष्टि को छेद डाला। छल-बल में उत्कट ऐसे कंस ने ज्यों भेड को चित्ता उठा ले जाय त्यों सिंहरथ को बांधकर वसुदेव के रथ में फेंका। उस समय सिंहरथ का पूरा सैन्य वहां से भाग गया तो वसुदेव विजय पाकर सिंहरथ को पकड़कर क्रमशः अपने नगर में आये।

राजा समुद्रविजय ने वसुदेव को एकांत में कहा कि '**कौष्टुकी** नामक एक ज्ञानी ने मुझे इस प्रकार के वचन कहे हैं कि 'जरासंध की पुत्री जीवयशा कनिष्ठ लक्षणोंवाली होने के कारण पति और पिता दोनों के कुल का क्षय करने वाली है।' इसलिए इस सिंहरथ को पकड़कर लाने के बदले में जरासंध उस पुत्री को तुम्हे पारितोषिक रुप में देगा, उस समय उसका त्याग करने का कोई उपाय पहले से ही सोचकर रखना।' वसुदेव ने कहा, 'इस सिंहरथ को रण में युद्ध

१. प्रथम सत्यवादी होने पर भी असत्य बोलने से देवों ने क्रोधित होकर मार डाला और नरक को गया वह।
२. जयद्रथ पाठ भी कोई कोई प्रत में है।

करके बांधकर लानेवाला कंस है, इसलिए वह जीवयशा कंस को ही देना योग्य है।' समुद्रविजय ने कहा कि 'वह कंस वणिकपुत्र है, इसलिए उसको जीवयशा देगा नहीं, परंतु पराक्रम से वह क्षत्रिय जैसा लगता है।' फिर समुद्रविजय ने उस रसवणिक को बुलवाकर, धर्म को बीच में लाते हुए कंस की उत्पत्ति पूछी तो उसने कंस का सर्व वृत्तांत कंस के सामने ही प्रारंभ से कह सुनाया। इसके बाद सुभद्र वणिक ने उग्रसेन राजा और धारिणी रानी की मुद्रिकाएं और पत्रिका समुद्रविजय राजा को दी। समुद्रविजय ने वह पत्रिका पढ़ी, उसमें लिखा था कि 'राजा उग्रसेन की रानी धारिणी ने भयंकर अभिलाष से भयभीत होकर अपने पति की रक्षा के लिए अपने इस प्राणप्रिय पुत्र का त्याग किया है और नाममुद्रा सहित सर्व आभूषणों से सुसज्ज इस बालपुत्र को कांसे की पेटी में रखकर यमुना नदी में बहता छोड़ा है।' पत्रिका पढ़कर राजा समुद्रविजय ने कहा कि 'यह महाभुज कंस यादव है और उग्रसेन का पुत्र है, अन्यथा उसमें ऐसा तेज संभव ही नहीं। राजा समुद्रविजय कंस को साथ लेकर अर्धचक्री जरासंध के पास गया और सिंहरथ राजा को उसे सौंपकर कंस का पराक्रम भी कह सुनाया। जरासंध ने प्रसन्न होकर कंस को अपनी पुत्री जीवयशा दी। उस समय कंस ने पिता पर रोष के कारण मथुरापुरी की माँग की, तो वह नगरी भी देदी। जरासंध के दिये हुए सैन्य को लेकर कंस मथुरा आया। वहां क्रूर कंस ने अपने पिता उग्रसेन को बांधकर कारागृह में डाल दिया और स्वयं राजा बन गया।

उग्रसेन को **अतिमुक्त** आदि अन्य पुत्र भी थे। अतिमुक्त ने पिता के दुःख से क्षोभित होकर दीक्षा ली। अपनी आत्मा को कृतार्थ माननेवाले कंस ने शौर्यनगर से सुभद्र वणिक को बुलवाकर सुवर्ण आदि के दान से उसका बड़ा सत्कार किया। मुक्त रही हुई कंस की माता धारिणी ने अपने पति को छुड़वाने के लिए कंस को बिनती की, फिर भी उसने अपने पिता उग्रसेन को छोड़ा नहीं। धारिणी कंस के मान्य पुरुषों के घर जाकर हररोज कहती थी कि 'कांसे की पेटी में ड़ालकर कंस को यमुना नदी में मैंने ही बहता करवाया था, इस बात की जानकारी तो मेरे पति उग्रसेन को भी नहीं है, इसलिए वे तो सर्वथा निरपराधी है और मैं अपराधीन हूँ तो मेरे पति को आप छुड़वाइए।' वें आकर कंस को ये सब कहते, फिर भी उसने उग्रसेन को नहीं छोड़ा, क्योंकि 'पूर्वजन्म का संकल्प व्यर्थ जाता नहीं है।'

जरासंध ने सत्कार करके बिदा किए हुए राजा समुद्रविजय अपने बंधुओं के साथ अपने नगर में आया। शौर्यपुर में स्वेच्छा से सर्वत्र घूमते हुए वसुदेवकुमार को देखकर उनके सौन्दर्य से मोहित बनी नगर की स्त्रियाँ मानो मंत्राकृष्ट हो त्यों उनके पीछे घूमने लगीं। स्त्रियों को वशीभूत करनेवाला जिसका सौन्दर्य है ऐसे समुद्रविजय के अनुज (छोटे) बंधु वसुदेवकुमार ने इधर-उधर भटककर कुछ काल व्यतीत किया। एक बार नगर के महाजन ने राजा के पास

आकर एकांत में कहा, 'आपके लघुबंधु वसुदेव के रुप से नगर की सर्व स्त्रियाँ बेमर्याद हो गई हैं। हर कोई स्त्री वसुदेव को एक बार भी देखती है वह वशीभूत हो जाती है, तो यदि कुमार को बार बार नगर में घूमते हुए देखे उसकी तो बात ही क्या कहनी ?' राजा ने महाजन को कहा, 'मैं आपकी इच्छानुसार बंदोबस्त करुंगा।' उनको बिदा देने के बाद राजा ने अपने परिवार को कहा, 'यह बात आप कोई वसुदेव को कहना नहीं।'

एक दिन वसुदेव समुद्रविजय को प्रणाम करने आये तो उन्हें अपने उत्संग में बैठाकर राजा ने कहा, 'हे कुमार ! पूरा दिन क्रीडा के लिए बाहर घूमने से आप कृश हो गये हो, इसलिए अब आप दिन को बाहर न जाकर घर में ही रहो, और हे वत्स ! घर रहकर ही आप नवीन कलाएं सीखो तथा पहले सीखे हो उसे याद करो। कला-जानकारों की गोष्ठी में तुम्हें आनंद आयेगा।' इस प्रकार के बड़े बंधु के वचन सुनकर विनीत वसुदेव ने संमति दिखाई और तब से वे घर रहकर नृत्यादिक के विनोद में दिन निर्गमन करने लगे।

एक बार गंध लेकर कुब्जा नाम की एक गंधधारिणी दासी जा रही थी। उसे कुमार ने पूछा कि 'यह गंध किसके लिए ले जा रही हो ?' कुब्जा बोली, 'हे कुमार ! यह गंधद्रव्य स्वयं शिवादेवी ने राजा समुद्रविजय के लिए भेजा है।' वसुदेव ने कहा, 'यह गंधद्रव्य मेरे भी काम आयेगा।' ऐसा कहकर विनोदपूर्वक उन्होंने वह गंधद्रव्य उससे ले लिया, तो कुब्जा कुपित होकर बोली, 'आपके ऐसे चरित्र से ही आप यहां नियंत्रित होकर रहे हो।' कुमार ने कहा कि 'वह क्या ?' भयप्राप्त कुब्जा ने डरकर नगरजनों का सर्व वृत्तांत शुरु से उन्हें कह सुनाया। ''स्त्रियों के हृदय में चिरकाल तक रहस्य[1] रहता ही नहीं।'' दासी की बात सुनकर वसुदेव ने सोचा कि 'नगर की स्त्रियों को मेरे पर रुचि कराने के लिए मैं नगर में घूमता हूँ' - ऐसा यदि राजा समुद्रविजय मानते हो तो मुझे यहां रहने की कोई जरुरत नहीं है। वसुदेव ने कुब्जा को जाने दिया और उसी रात्रि को गुटिका से भेष बदलकर नगर से बाहर निकल गये।

इसके बाद स्मशान में आकर वहां पडे हुए लकड़ो से चिता रचकर वसुदेव ने उसमे कोई अनाथ शब को रखकर जलाया। गुरुजनों से क्षमा माँगने के लिए वसुदेव ने स्वहस्ताक्षर से पत्र लिखकर एक स्तंभ पर लटकाया। पत्र में इस प्रकार लिखा कि 'लोगों ने गुरुजन के समक्ष गुण को दोषरुप में स्थापित किया, इसलिए अपनी आत्मा को जीवित होने पर भी मरी हुई मानकर वसुदेव ने इस अग्नि में प्रवेश किया है। इसलिए अब अपने तर्क वितर्क कल्पित किए मेरे अगुप्त या गुप्त दोष सर्व गुरुजन एवं नगरजन मूल से क्षमा करेंगे।' इसके बाद वसुदेव ब्राह्मण का वेष धरकर उन्मार्ग पर चल पड़े। क्रमानुसार बहुत भटकने के बाद वे सन्मार्ग पर

१. गुप्त बात

आये, वहाँ किसी रथ में सवार स्त्री ने उनको देखा। वह स्त्री अपने पिता के घर जा रही थी। उसने अपनी माता को कहा, 'इस थके हुए ब्राह्मण को रथ में बिठा।' उसने ब्राह्मण को रथ में बिठाया। क्रमशः वे उनके गाँव आ गये। वहाँ वसुदेव स्नान-भोजन करके सांयकाल होने पर किसी यक्ष के मंदिर में जाकर रहे।

यहाँ मथुरा में 'वसुदेवकुमार ने अग्नि में प्रवेश किया' यह समाचार सुनकर यादव परिवार सहित रुदन करने लगे। उन्होंने वसुदेव की उत्तरक्रिया कर दी। यह बात जानकर वसुदेव निश्चिंत हो गये। इसके बाद आगे चलते हुए वे **विजयखेट** नामक नगर में गये। वहाँ **सुग्रीव** नामक राजा था। उसे **श्यामा** और **विजयसेना** नामक दो मनोहर और कला जानकार कन्याएं थीं। वसुदेव कलाविजय के प्रण से दोनों कन्याओं को ब्याहे। उनके साथ क्रीडा करते हुए वे वहीं रहे। वहाँ उन्हें विजयसेना नामक पत्नी से **अक्रूर** नामक एक पुत्र हुआ, जो एसा लगता था कि मानो दूसरा वसुदेव ही हो। एक बार सबको वहीं छोडकर स्वयं अकेले वहाँ से आगे चलते हुए एक गाढ़ जंगल में आए। वहाँ तृषा लगने से जल के लिए जलावर्त नामक सरोवर के पास आए। उस समय एक चलित विंध्याद्रि जैसा हाथी उनके सामने दौड़ता हुआ आया। उसको बड़ा खेद पहुँचाकर कुमार शेर की भाँति उस पर चढ़ बैठे। उनको हाथी पर बैठा हुआ देखकर **अर्चिमाली** और **पवनंजय** नामक दो खेचर उसे कुंजरावर्त नामक उद्यान में ले गये। वहां **अशनिवेग** नामक विद्याधरों का एक राजा था, उसने **श्यामा** नामक अपनी कन्या वसुदेव को दी। वे उसके साथ क्रीडा करने लगे। श्यामा ने ऐसी वीणा बजाई कि जिससे संतुष्ट होकर वसुदेव ने उसे वरदान माँगने को कहा, तब उसने वरदान मांगा कि 'मुझे आपका वियोग न हो।' वसुदेव ने पूछा, 'ऐसा वरदान माँगने का क्या कारण ?' तब श्यामा बोली-

'वैताढ्यगिरि पर **किन्नरगीत** नामक नगर में **अर्चिमाली** नामक राजा था। उसे **ज्वलनवेग** और **अशनिवेग** नामक दो पुत्र हुए। अर्चिमाली ने ज्वलनवेग को राजसिंहासन पर बिठाकर व्रत ग्रहण किया। ज्वलनवेग को **अर्चिमाला** नामक स्त्री से **अंगारक** नामक एक पुत्र हुआ और अशनिवेग को **सुप्रभा** रानी के उदर से **श्यामा** नामक मैं पुत्री हुई। ज्वलनवेग अशनिवेग को राज्य पर बिठाकर स्वर्ग को गए। इसके बाद ज्वलनवेग के पुत्र अंगारक ने विद्या के बल से मेरे पिता अशनिवेग को हटाकर राज्य ले लिया। मेरे पिता अष्टापद पर गये। वहाँ एक **अंगिरस** नामक चारणमुनि को उन्होंने पूछा कि 'मुझे राज्य मिलेगा या नहीं ?' मुनि बोले, 'तेरी पुत्री श्यामा के पति के प्रभाव से तुझे राज्य मिलेगा, और जलावर्त सरोवर के पास जो हाथी को जीत लेगा वह तेरी पुत्री का पति होगा, यह जान ले।' मुनि की वाणी पर भरोसा पड़ने से मेरे पिता यहाँ एक नगर बसाकर रहे और हंमेशा वे आपकी खोज के लिए जलावर्त सरोवर के समीप दो खेचरों को भेजने लगे। वहां आप हाथी को जीतकर उस पर सवार हो गये, यह

देखकर वे खेचर आपको यहाँ ले आये और फिर मेरे पिता अशनिवेग ने आपके साथ मेरा ब्याह कर दिया। महात्मा धरणेन्द्र, नागेन्द्र और विद्याधरों ने मिलकर यह तय किया है कि 'जो पुरुष अर्हत् चैत्य के समीप रहा हो, जिसके साथ स्त्री हो अथवा जो साधू के समीप बैठा हो ऐसे पुरुष को यदि कोई मारेगा तो वह विद्यावान होने पर भी विद्यारहित हो जायेगा।' हे स्वामिन्! इस कारण से मैंने आपका वियोग न हो' ऐसा वरदान माँगा है, जिससे आप अकेले को वह पापी अंगारक मार डाले नहीं।' इस प्रकार की उसकी वाणी को स्वीकारकर अंधकवृष्णि के दसवें पुत्र वसुदेवकुमार कालाभ्यास से विनोदपूर्वक उसके साथ काल निर्गमन करने लगे।

एक बार वसुदेव श्यामा के साथ रात्रि को सो रहे थे उस समय अंगारक विद्याधर आया और उनका हरण किया। वसुदेव ने जागकर देखा कि 'मुझे कौन हरकर ले जा रहा है ?' तो वहां श्यामा के मुखवाला अंगारक, 'खड़ा रह, खड़ा रह' यूं पुकारती हुई खड्गधारिणी श्यामा उसको दिखाई दी। अंगारक ने श्यामा के शरीर के दो टुकड़े कर दिए। यह देखकर वसुदेव पीड़ित हुए। इतने में अंगारक के सामने दो श्यामा युद्ध करती दिखाई दी। फिर वसुदेव ने 'यह माया है' ऐसा निश्चय करके इन्द्र ज्यों वज्र से पर्वत पर प्रहार करे त्यों मुष्टि से अंगारक पर प्रहार किया। इस प्रहार से पीड़ित बने अंगारक ने वसुदेव को आकाश में से पटक दिया। वे चम्पानगरी के बाहर के विशाल सरोवर में आ गिरे। हंस समान तैरकर वसुदेव उस सरोवर तट पर के उपवन में आये हुए श्री वासुपूज्य प्रभु के चैत्य में आये। वहां वासुपूज्य प्रभु को वंदना करके शेष रात्रि वहीं बिताई और प्रातःकाल होने पर किसी ब्राह्मण के साथ चम्पानगरी में आ गये।

उस नगरी में जगह जगह हाथ में वीणा धरे हुए युवा पुरुषों को देखकर उन्होंने एक ब्राह्मण को इसका कारण पूछा, तो ब्राह्मण ने कहा, 'इस नगर में **चारुदत्त** नामक एक श्रेष्ठी रहता है, उसे **गंधर्वसेना** नामक कला के एक स्थान जैसी स्वरुपवान कन्या है। उसने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि 'जो गानकला में मुझे जीतेगा वहीं मेरा भर्तार (पति) होगा।' इसलिए उसे पाने के लिए ये सब गानकला सीखने हेतु प्रवृत्त हुए हैं। हर महिने **सुग्रीव** और **यशोग्रीव** नामक दो गंधर्वाचार्यों समक्ष गान-प्रयोग होता है।' वसुदेव उन दोनों में उत्तम ऐसे सुग्रीव पण्डित के पास ब्राह्मण के वेष में गये और कहा कि 'मैं गौतमगोत्री स्कंदिल नामक ब्राह्मण हूँ। चारुदत्त श्रेष्ठी की गंधर्वसेना नामक पुत्री को पाने के लिए मैं आपसे गंधर्वकला का अभ्यास करना चाहता हूँ, तो मुझ जैसे विदेशी को आप शिष्यरुप में स्वीकार कीजिए।' धूल में छिपे रत्न को न पहचाननेवाले मूढ़ की भाँति गायनाचार्य सुग्रीव ने उसे मूर्ख मानकर आदरपूर्वक अपने पास रहने का भी न कहा। फिर भी वसुदेवकुमार ग्राम्य वचन से लोगों को हँसाते हुए, अपने मूल स्वरुप को छिपाकर गानविद्या अध्ययन के बहाने सुग्रीव के पास रहे।

एक बार गानकला के होड़ के दिन सुग्रीव की स्त्री ने पुत्र जैसे स्नेहभाव से वसुदेव को सुंदर वस्त्र का जोटा दिया। प्रथम श्यामा ने एक वेष दिया था वह और इस वस्त्र का जोटा धारण करके वसुदेव लोगों में कुतूहल उत्पन्न करते हुए चले। वहां 'चल तू गानविद्या जानता है, इसलिए हम मानते हैं कि आज तू गंधर्वसेना को जीत लेगा।' ऐसा कहकर नगरजन उसका उपहास करने लगे। उस उपहास से प्रसन्न होते वसुदेव गायकों की सभा में गये, वहाँ लोगों ने उपहास में ही उसे ऊँचे आसन पर बिठाया। उस समय मानो कोई देवांगना पृथ्वी पर आयी हो वैसे गंधर्वसेना सभाखण्ड में आयी। उसने क्षणमात्र में स्वदेशी व विदेशी कईं गायकों को जीत लिया। जब वसुदेव का होड़ का समय आया तब उसने अपना रुप प्रकट किया, जिससे वह काम स्वरुप देव जैसा शोभित होने लगा। उसका रुप देखकर गंधर्वसेना क्षोभित हो गई, और 'यह कौन होगा' ऐसा तर्क-वितर्क करते हुए सब लोक चकित हो गये। फिर लोगों ने जो जो वीणाएं उसे बजाने को दी वे सब उसने दूषण बताकर त्याग दी। बाद में गंधर्वसेना ने अपनी वीणा दी तो उसे सज्ज करके वसुदेव ने पूछा, 'हे सुभ्रू ! क्या इस वीणा से मुझे गान करना है?' गंधर्वसेना बोली, 'हे गीतज्ञ ! पद्म चक्रवर्ती के ज्येष्ठ बंधु विष्णुकुमार मुनि का त्रिविक्रम संबंधित गीत इस वीणा से बजाइए।' यह सुनकर पुरुष वेष धरकर सरस्वती आयी हो ऐसे वसुदेव ने वह गीत वीणा में ऐसा उतारा कि जिससे सर्व सभासदों की संमति सहित उन्होंने गंधर्वसेना को जीत लिया। चारुदत्त श्रेष्ठी अन्य सब प्रतियोगियों को बिदा करके वसुदेव को बड़े सम्मानपूर्वक अपने घर ले आया। विवाह के समय सेठ ने कहा, 'वत्स ! यह कहो कि कौनसा गोत्र समजकर मैं आपको दान दूँ ?' वसुदेव ने मुस्कुराकर कहा, 'आपको जो योग्य लगे वह गोत्र कहो।' श्रेष्ठी ने कहा, 'यह वणिक पुत्री है ऐसा सोचकर आपको हँसने का कारण मिला है, परंतु किसी समय मैं आपको इस पुत्री का वृत्तांत आदि से कह सुनाऊँगा।' ऐसा कहकर चारुदत्त सेठ ने उस वर-कन्या का विवाह किया। फिर सुग्रीव और यशोग्रीव ने श्यामा और विजया नामक अपनी दो कन्याएं जो गुणों से अनुरक्त थी वसुदेव को दी।

एक दिन चारुदत्त ने वसुदेव को कहा कि 'इस गंधर्व कन्या का कुल वगैरह सर्व वृत्तांत सुनो। इस नगरी में **भानु** नामक एक धनाढ्य सेठ था। उसे **सुभद्रा** नामक एक पुत्री थी। वे दोनों अपुत्रपने के दुःख से दुःखी थे। एक बार उन्होंने एक चारण मुनि को पुत्र जन्म के बारे में पूछा। उन्होंने कहा कि 'पुत्र होगा।' इसके बाद कालक्रम से मैं पुत्र बना। एक दिन मैं मित्रों के साथ क्रीडा करने गया था। वहाँ समुद्र तट पर कोई आकाशाचारी पुरुष के मनोहर चरणचिह्न मेरे देखने में आये। उन कदमों के साथ स्त्री के कदम भी थे, इससे मालूम पड़ा कि कोई पुरुष प्रिया के साथ यहां से गया है। आगे चला तो एक कदलीगृह में पुष्पशय्या और ढाल-तलवार मेरी नज़र में आये। उसके समीप एक वृक्ष के साथ लोहे के खूंटे से जड़ा हुआ

एक खेचर दिखाई दिया और उस तलवार की म्यान के साथ औषधि के तीन वलय बंधे हुए देखे। फिर मैंने मेरी बुद्धि से उसमें से एक औषधि से खेचर को खूंटे से मुक्त किया, दूसरी औषधि से उसके घाव भर दिए और तीसरी औषधि से उसे सचेत किया। तब वह बोला, 'मैं वैताढ्यगिरि पर आये हुए **शिवमंदिर** नगर के राजा महेन्द्रविक्रम का **अमितगति** नामक पुत्र हूँ। एक बार **धूमशिख** एवं **गौरमुंड** नामक दो मित्रों के साथ क्रीडा करते करते मैं हिमवान पर्वत पर गया। वहाँ **हिरण्यरोम** नामक मेरे एक तपस्वी मामा की **सुकुमालिका** नामक मनोहर कुमारी मेरे देखने में आयी। उसे देखते ही मैं कामार्त्त होकर स्वस्थान को गया। इसके बाद मेरे मित्र से मेरी दशा जानकर मेरे पिता ने तत्काल मुझे बुलवाकर उसके साथ मेरा ब्याह कर दिया। मैं उसके साथ क्रीडा करता रहता था, ऐसे में एक बार 'मेरा मित्र धूमशिख मेरी स्त्री का अभिलाषी हुआ है' ऐसा उसकी चेष्टा से मुझे मालूम हुआ, फिर भी मैं उसके साथ विहार करते हुए यहां आया। यहाँ उस प्रमादी ने मुझे खूंटे से जड़ दिया और सुकुमालिका को हर गया। इस महाकष्ट में से आपने मुझे छुडाया है, तो कहिए, अब मैं आपका क्या कार्य करुं कि जिससे हे मित्र ! आप जैसे अकारण मित्र से मैं अऋणी बनूं।'

मैंने कहा, 'हे सुन्दर ! आपके दर्शन से ही मैं तो कृतार्थ हुआ हूँ।' यह सुनकर वह खेचर तत्काल उडकर चला गया। मैं भी वहां से घर गया और मित्रों के साथ सुखपूर्वक क्रीडा करने लगा। माँ-बाप के नेत्रों को उत्सव प्रदान करते हुए क्रमानुसार मैं युवावस्था को प्राप्त हुआ। मैं माता-पिता की आज्ञा से एक शुभ दिन पर **सर्वार्थ** नामक मेरे मामा की **मित्रवती** नामक पुत्री से ब्याहा। कला की आसक्ति से मैं उस स्त्री में भोगासक्त न बना, इससे मेरे पिता मुझे नासमझ मानने लगे। फिर उन्होंने चातुर्यप्राप्ति हेतु मुझे शृंगार की ललित चेष्टा मे जोड दिया, इससे मैं उपवन वगैरह में स्वेच्छा से विचरने लगा। इस तरह **कलिंगसेना** की पुत्री **वसंतसेना** नामक वेश्या के घर मैं बारह साल तक रहा। वहाँ रहकर मैंने अनजाने में ही सोलह करांड सुवर्ण द्रव्य उडा दिया। अंत में कलिंगसेना ने मुझे निर्धन बना जानकर उसके घर से निकाल दिया। वहाँ से घर लौटने पर माँ-बाप की मृत्यु हुई जानकर धैर्य से व्यापार करने हेतु मैंने मेरी स्त्री के आभूषण ग्रहण किए। फिर मेरे मामा के साथ व्यापार के लिए मैं **उशीरवर्ती** नगरी में आया। वहाँ स्त्री के आभूषण बेचकर मैंने कपास खरीदा, जिसे लेकर मैं **ताम्रलिप्ति** नगरी को जा रहा था, वहाँ मार्ग में दावानल से वह कपास जल गया, तो मेरे मामा ने मुझे निर्भागी मानकर छोड दिया। फिर अश्व पर बैठा हुआ मैं अकेला पश्चिम दिशा की और चला। वहाँ मार्ग में मेरा अश्व मर गया और मैं पादचारी बना। लम्बी राह से ग्लानि पाता और क्षुधा तृषा से पीडित होते हुए मैं वणिकजनों से व्याप्त ऐसे **प्रियंगुनगर** में आया। वहाँ मेरे पिता के मित्र सुरेन्द्रदत्त ने मुझे देखा। वह मुझे अपने घर लेकर गया। वहाँ वस्त्र और भोजनादिक से सत्कार

पाकर मैं उसके पुत्र की भाँति सुखपूर्वक रहने लगा। फिर मैंने उससे एक लाख द्रव्य व्याज पर लिया और उसके मना करने पर भी मैं उस द्रव्य से कीराना लेकर जहाज में भरकर समुद्रमार्ग से चल पड़ा। क्रमानुसार यमुना द्वीप मे आकर अन्य अंतर्द्वीप और नगर वगैरह में आवागमन करके मैंने आठ कोटि सुवर्ण उपार्जित किया। वह द्रव्य लेकर मैं जलमार्ग से स्वदेश की और मुडा। मार्ग में मेरा जहाज टूट पडा और सिर्फ लकड़ी का एक पट्ट मेरे हाथ आया। सात दिन तक समुद्र तैरकर मैं उदुंबरावती कुल नामक समुद्रतट पर पहुँचा। वहां राजपुर नामक एक नगर था। उसके समीप मैं बड़ी मुश्किल से पहुंचा। उस नगर के बाहर बहुत घनी झाडियोंवाला एक उद्यान था। वहाँ जाकर मैं रहा। वहाँ **दिनकरप्रभ** नामक एक त्रिदण्डी संन्यासी मेरे देखने में आये। उसके समक्ष मैंने मेरा गोत्र आदि कहा, इससे वह मेरे पर प्रसन्न हुआ और उसने मुझे पुत्रवत् रखा।

एक दिन उस त्रिदण्डी ने मुझे कहा कि 'तू द्रव्य का अर्थी दिखता है, इसलिए हे वत्स ! चल, हम इस पर्वत पर जाए। वहां मैं तुझे ऐसा रस दूंगा कि जिससे इच्छानुसार कोटि गुना सुवर्ण की तुझे प्राप्ति हो सकेगी।' उसके ऐसे वचन सुनकर मैं बड़ा खुश होकर उसके साथ चल पड़ा। दूसरे दिन जहां अनेक साधक रहे हुए हो ऐसे बड़े घने जंगल में हम आ पहुँचे। फिर उस गिरि के नितंब पर हम चढ़े। वहाँ कई यंत्रमय शिलाओं से व्याप्त और यमराज के मुख जैसा बड़ा गह्वर देखने में आया। वह महा गह्वर **दुर्गपाताल** नाम से प्रसिद्ध था। त्रिदण्डी ने मंत्र पढ़कर उसका द्वार खोला। हमने उसमें प्रवेश किया। उसमें बहुत घूमे तब एक रसकूप हमारी नजरों में आया। वह कूप चार हाथ लम्बा चौडा था और वह नरक के द्वार समान भयंकर दिखता था। वहां त्रिदण्डी ने मुझे कहा कि 'इस कुएं में उतरकर तू तुंबी से इसका रस भर ले।' उसने रस्सी का एक सिरा पकड रखकर दूसरे सिरे के साथ बंधी हुई माची में बैठाकर मुझे कुएं में उतारा। चार पुरुषप्रमाण जितना गहरा मैं उतरा तो उसके अंदर घूमती मेखला और मध्य में रहा हुआ रस मैंने देखा। उस समय किसीने मुझे वह रस लेने का निषेध किया। मैंने कहा कि 'मैं चारुदत्त नामक वणिक हूँ और भगवान त्रिदण्डी ने मुझे रस लेने के लिए अंदर उतारा है, तो आप मुझे क्यों रोकते हो ?' तब वह बोला, 'मैं भी धनार्थी वणिक हूँ, और बलिदान के लिए पशु के माँस की भाँति मुझे भी उस त्रिदण्डी ने ही इस रसकूप में डाल दिया है और फिर वह पापी चला गया था। मेरी पूरी काया इस रस से खोखली हो गई है, इसलिए तू इस रस में हाथ डालना मत। मैं तुझे तेरी तूबी में रस भर दूंगा।' मैंने उसे तूबी दी, तो वह उसने रस से भर दी और माची के नीचे बांध दी। मैंने रस्सी को हिलाया तो उस त्रिदण्डी ने रस्सी खींची जिससे मैं कुए के कण्ठे पर आ गया। फिर उसने मुझे बाहर न निकालते हुए वह रसतूबी माँगी। उस संन्यासी को परद्रोही व लुब्ध जानकर उस रस को मैंने वापिस कुएं

में डाल दिया, तो उसने माची सहित मुझे कुएं में धकेल दिया। भाग्ययोग से मैं उस वेदी पर गिरा। इससे उस अकारण बंधु ने कहा, 'भाई ! खेद मत कर। तू रस के अंदर नहीं गिरा है, वेदी पर गिरा है, यह ठीक हुआ है। अब जब कभी यहां गोधिका आयेगी तो उसकी पूंछ के सहारे तुझसे कुएं के बाहर निकला जा सकेगा, इसलिए वह आये तब तक तू इंतजार कर।' उसके वचन से स्वस्थ होकर बार बार नवकार मंत्र गिनते हुए मैं कुछ समय तक वहाँ रहा। कालानुसार उस पुरुष ने मृत्यु पाई।

एक बार भयंकर शब्द मेरे सुनने में आया। इससे मैं चकित हो गया, परंतु बाद मे मुझे उस पुरुष का वचन याद आया तो मालूम हुआ कि यह शब्द गोधिका का होगा, और अवश्य वह यहीं आती होगी। क्षण भर में तो गोधिका रस पीने आयी। रस पीकर जब वह वापस मुडी तब उस पराक्रमी गोधिका की पूंछ के साथ मैं दो हाथों से चिपक गया। गाय की पूंछ के साथ चिपका हुआ गोपालक जिस प्रकार नदी में से निकलता है उस प्रकार पूंछ को पकड़कर मैं कुएं से बाहर निकला। बाहर निकलने के बाद मैंने उस गोधिका की पूंछ छोड़ दी और मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। थोड़ी देर के बाद सचेत होने पर मैं इधर-उधर भटकने लगा, इतने में एक जंगली महिष वहां आया। उसको देखकर मैं एक शिला पर चढ़ गया। उस महिष ने अपने उग्र सिंगो से शिला पर प्रहार शुरु किए। इतने में यमराज के बाहु समान एक सर्प निकला, उसने महिष को पकडा, फिर वे युद्ध करने में व्यग्र बने, तो मैं शिला पर से उतरकर भागा और तेजी से चलते हुए अटवी के प्रांत भाग में आये हुए एक गाँव में आया। वहाँ मेरे मामा के मित्र रुद्रदत्त ने मुझे देखा, उसने मुझे पाला, जिससे मैं दुबारा नवीन शरीरवाला हो गया।

फिर वहाँ से थोड़ा द्रव्य लेकर उस द्रव्य से अलक्तक (अलता) जैसा तुच्छ किराना लेकर मैं मातुल के मित्र के साथ सुवर्णभूमि की और चला। मार्ग में **इषुवेगवती** नामक एक नदी आयी, उसे पार करके हम दोनों गिरिकूट गये और वहाँ से बरुआ के वन में आये। वहां से टंकण देश में आकर हमने दो भेड़ लिए। उन पर बैठकर हमने अजमार्ग[1] का उल्लंघन किया। इसके बाद रुद्रदत्त ने मुझको कहा, 'अब यहाँ से पैदल जा सके ऐसा प्रदेश नहीं है, इसलिए इन दो भेड़ों को मारकर उनके अंदरुनी भाग को बाहर निकालकर उसे उलटाकर दो धमन बनायेंगे। वह ओढ़कर हम इस प्रदेश में बैठ जायेंगे तो मांस के भ्रम से भारंड पक्षी हमें उठाकर ले जायेंगे, जिससे हम तत्काल सुवर्णभूमि पर पहुँच जायेंगे।' यह सुनकर मैं बोला, 'जिसकी सहायता से हम इतनी महा कठिन भूमि को पार कर गये ऐसे बंधु समान इस भेड़ को क्यों मारे ?' यह सुनकर रुद्रदत्त ने कहा कि 'ये दोनों भेड़ तेरे तो नहीं है तो मुझे तू उन्हें मारने

१. बकरे द्वारा पार किया जाय ऐसा मार्ग।

में क्यों रोकता है?' ऐसा कहकर उसने क्रोध से तुरंत ही अपना एक भेड़ मार डाला। तो दूसरे भेड़ ने भयपूर्ण विशाल दृष्टि से मेरे सामने देखा। उसे मारते हुए मैंने कहा कि 'तेरी रक्षा करने में मैं समर्थ नहीं हूँ, इसलिए क्या करुं ? तथापि फलदायक जैन धर्म तेरा शरणरुप बने, क्योंकि विपरीत दशा में यह धर्म पिता, माता और स्वामी समान है।' उस भेड़ ने मेरा कहना मस्तक की संज्ञा से कबूल किया और मैंने दिया हुआ नवकार मंत्र एकाग्र मन से उसने सुना। रुद्रदत्त ने उसे मार डाला तो वह देवरुप को प्राप्त हुआ। फिर हम दोनों छुरा लेकर चर्म की खाल में घुसे, वहां से दो भारँड पक्षियों ने माँस की इच्छा से हमें उठाया। मार्ग में दोनों भारंड पक्षियों का मांस की इच्छा से युद्ध हुआ तो उसके पंझे से छूटा हुआ मैं एक सरोवर में गिरा। फिर छुरे से उस धमण को चीरकर मैं सरोवर तैरकर बाहर निकला और आगे चला। इतने में एक बड़ा पर्वत मेरी नजरों में आया। मैं उस पर चढ़ा तो वहां कायोत्सर्ग में रहे हुए एक मुनि मेरी दृष्टि में आये। मैंने उनकी वंदना की। वे 'धर्मलाभ' रुप आशिष देकर बोले - 'अरे चारुदत्त ! तू इस दुर्गभूमि में कहां से आया ? देव, विद्याधर और पक्षी के अलावा यहां अन्य कोई से आया नहीं जाता। पहले तुने जिसे छुडवाया था, वह अमितगति विद्याधर मैं हूँ। उस समय वहां से उडकर मैं मेरे शत्रु के पीछे अष्टापद गिरि के समीप गया। वहां मेरी स्त्री को छोड़कर वह अष्टापद पर चला गया। फिर वहां आत्मघात करने को तैयार हुई मेरी स्त्री को लेकर मैं मेरे स्थानक पर गया। मेरे पिता ने मुझे राज्य पर बिठाकर **हिरण्यकुंभ** और **सुवर्णकुंभ** नामक दो चारण मुनि से व्रत ग्रहण किया। मेरी मनोरमा स्त्री से मुझे **सिंहयशा** और **वराहग्रीव** नामक दो पुत्र हुए, जो मेरे जैसे पराक्रमी हुए और विजयसेना नामक दूसरी स्त्री से मुझे गानविद्या में चतुर ऐसी **गंधर्वसेना** नामक एक रुपवान पुत्री हुई। दोनों पुत्रो को राज्य, युवराज पद और विद्याएं देकर पिता के उन्हीं गुरु से मैंने भी व्रत ग्रहण किया। लवणसमुद्र के मध्य में रहा हुआ यह **कुंभकंठक** नामक द्वीप है और इस द्वीप में यह **कर्केटक** नामक गिरि है। यहां रहकर मैं तपस्या करता हूँ। इसलिए हे चारुदत्त ! मैं तुझको पूछता हूँ कि तू यहां किस प्रकार आया ?'

मैंने मेरा महा विषम वृत्तांत जो बना था वह सब कह सुनाया। उस समय रुप संपत्ति में उसके समान दो विद्याधर आकाशमार्ग से वहां आये और उन्होंने मुनि को प्रणाम किए। उनकी समानता से मैंने 'ये उस मुनि के पुत्र हैं' यह जाना। वे महामुनि बोले कि 'इस चारुदत्त को प्रणाम करो।' वे 'हे पिता, हे पिता।' यूं कहकर मुझे नमन करके मेरे पास बैठे। इतने में आकाश में से एक विमान उतरा। उसमें से एक देव ने उतरकर प्रथम मुझे नमस्कार किए, और फिर मुनि को प्रदक्षिणापूर्वक वंदना की। वे दोनों खेचरों ने उसको पूछा कि 'आपने वंदना में उलटा क्रम क्यों किया ?' देव बोला - 'ये चारुदत्त मेरे धर्माचार्य हैं इसलिए मैंने उन्हे प्रथम नमस्कार किए हैं। अब मेरा पूर्व वृत्तांत मैं आपको कहता हूँ वह सुनो - काशीपुर में दो संन्यासी

रहते थे। उनको **सुभद्रा** और **सुलसा** नामक दो बहने थीं। वे वेद और वेदांग की पूर्णज्ञाता थीं। उन्होंने कई वादियों का पराजय किया था। एक बार **याज्ञवल्क्य** नाम का कोई संन्यासी उनके साथ वाद करने आया। 'जो हारे वह जीतनेवाले का सेवक बनकर रहे' - ऐसी प्रतिज्ञा करके वाद में उसने सुलसा को जीतकर अपनी दासी बनाया। जब वह तरुणी सुलसा दासी बनकर उसकी सेवा करने लगी, तब नवीन तरुणावस्थावाला वह याज्ञवल्क्य काम वश हो गया। नगर के समीप रहकर वह सदैव उसके साथ क्रीडा करने लगा। कुछ दिनों बाद याज्ञवल्क्य त्रिदण्डी से उसे एक पुत्र हुआ। लोगों के उपहास का भय पाकर याज्ञवल्क्य और सुलसा उस पुत्र को एक पीपल वृक्ष के नीचे छोड़कर चले गये। यह बात मालूम होते ही सुभद्रा वहां आयी, अचानक गिरे हुए पीपल के फल को मुख में लेकर अपने आप खा रहे उस बालक को उसने ले लिया और उसकी चेष्टा से उसका **पिप्पलाद** ऐसा यथार्थ नाम रखा। उसने उसे यत्नपूर्वक बड़ा किया और वेदविद्या पढ़ाई। तीव्र बुद्धिवाला वह अति विद्वान और वादी का अभिमान उतारनेाला बना। उसकी ख्याति सुनकर सुलसा और याज्ञवल्क्य उसके साथ शास्त्रार्थ करने आये। उन दोनो को शास्त्रार्थ में उसने जीत लिया। उसे मालूम पडा कि ये मेरे माता-पिता हैं और जन्म होते ही उन्होंने ही मेरा त्याग कर दिया था, तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने मातृमेध और पितृमेध यज्ञों की सम्यक् प्रकार से स्थापना की। पितृमेध एवं मातृमेध यज्ञ में उसने अपने माता-पिता को मार डाला। उस समय उस पिप्पलाद का **वाग्बलि** नामक शिष्य मैं था। इसलिए पशुमेध वगैरह यज्ञ करने के कारण मैं घोर नरक में गया। नरक में से निकलकर मैं पांच बार पशु बना और क्रूर ब्राह्मणों ने मुझे बार बार यज्ञ में ही मार ड़ाला। इसके बाद मैं टंकण देश में भेड़ बना, वहां रुद्रदत्त नें मुझे मारा। उस समय इस चारुदत्त ने मुझे धर्म सुनाया जिससे मैं सौधर्म देवलोक में देवता बना, इसलिए ये कृपानिधि चारुदत्त मेरे धर्माचार्य हैं। इसी कारण से मैंने आपको प्रथम नमस्कार किए हैं, मैंने किसी भी क्रम का उल्लंघन नहीं किया।'

उस देव ने इस प्रकार कहा, तो वे दोनों खेचर भी बोले कि 'हमारे पिता को जीवन देने से आपकी तरह वे हमारे भी उपकारी हैं।' उस देव ने मुझे कहा कि 'हे निर्दोष चारुदत्त ! कहिए, मैं आपका इस जगत संबंधित क्या प्रत्युपकार करुं ?' मैंने उसे कहा, 'आप योग्य समय पर आना।' तो वह देव अंतर्धान हो गया। फिर वे दोनों खेचर मुझे शिवमंदिर नगर लेकर गये। उन्होंने और उनकी माता ने जिसका गौरव बढाया है ऐसा और उनके बंधुओं तथा खेचरों द्वारा अधिकाधिक पूजा जाता मैं वहां लम्बे अरसे तक रहा। एक बार उसकी बहन गंधर्वसेना को मुझे बताकर उन्होने कहा कि 'दीक्षा लेते समय हमारे पिता ने हमें कहा है कि, 'किसी ज्ञानी ने मुझे कहा है कि कलाओं से जीतकर इस गंधर्वसेना से वसुदेवकुमार ब्याहेंगे। इसलिए मेरे भूचरबंधु चारुदत्त को तुम तुम्हारी इस बहिन को सौंप देना, जिससे भूचर वसुदेवकुमार उससे

सुखपूर्वक ब्याह कर सके।' इसलिए इस पुत्री को आपकी ही पुत्री समझकर आप ले जाइए।' उनके इस प्रकार के वचन मानकर गंधर्वसेना को लेकर मैं मेरे स्थान पर जाने के लिए तैयार हुआ, इतने में ही वह देव आ पहुंचा। फिर वह देव, वे दोनों खेचर और उसके पक्ष के अन्य खेचर जलदी से कुशलपूर्वक लीला द्वारा आकाशमार्ग से मुझे यहां ले आये, और उस देव तथा विद्याधरों ने मुझे कोटिगमे सुवर्ण, मानिक और मोती देकर अपने अपने स्थानक को गये।

प्रातःकाल में मेरे **स्वार्थ** नामक मामा, मित्रवती नामक मेरी स्त्री और अखण्ड वेणीबंधवाली[1] वसंतसेना वेश्या वगैरह को मैं मिला और सुखी बना। हे वसुदेवकुमार ! इस प्रकार इस गंधर्वसेना की उत्पत्ति मैंने आपको कही, इसलिए अब 'वह वणिकपुत्री है' यूं मानकर कभी भी उसकी अवज्ञा करना मत।'

इस प्रकार चारुदत्त से गंधर्वसेना का वृत्तांत सुनकर कुमार वसुदेव अधिक हर्ष पाकर उसके साथ खेलने लगे। एक बार वसंतऋतु में रथ में बैठकर उसके साथ वसुदेवकुमार उद्यान में गये। वहां मातंगों से घिरी हुई और मातंग का वेष धरनेवाली एक कन्या उनके देखने में आयी। देखते ही दोनों को परस्पर राग उत्पन्न हुआ। उस समय दोनों को परस्पर विकार सहित देखकर गंधर्वसेना ने लाल नेत्र करके सारथि को कहा, 'रथ के घोडों को तेज चला।' फिर तुरंत उपवन में जाकर उसके साथ क्रीडा करके वसुदेवकुमार चंपानगरी में आया। उस समय उस मातंग के यूथ में से एक वृद्ध मातंगी आयी और आशिष देकर वसुदेव को कहा-

'पहले श्री ऋषभप्रभु ने सबको राज्य बाँट दिया, उस समय दैवयोग से **नमि** एवं **विनमि** वहां नहीं थे। वे राज्य के लिए व्रतधारी ऐसे प्रभु की भी सेवा करने लगे। जिससे प्रसन्न बने धरणेन्द्र ने उनको बैताढ्य की दोनों श्रेणी का अलग अलग राज्य दिया। कुछ समय बाद उन्होंने पुत्रों को राज्य देकर प्रभु से दीक्षा ग्रहण की और मुक्त बने प्रभु को देखना चाहते हो त्यों मोक्ष पधारे। नमि का पुत्र **मातंग** था। वह दीक्षा लेकर स्वर्ग गया। उसके वंश में इस समय **प्रहसित** नामक एक खेचरपति है। उसकी **हिरण्यवती** नामक स्त्री मैं हूँ। मुझे **सिंहदंष्ट्र** नामक पुत्र है, उसे **नीलयशा** नामक पुत्री है, जिसे आपने उद्यानमार्ग में आज ही देखा है। हे कुमार ! आपको देखा तब से वह कन्या कामपीडित बनी है, इसलिए आप उससे ब्याह करो। इस समय शुभ मुहूर्त है और वह विलम्ब सह सके ऐसी नहीं है।' वसुदेव ने कहा कि, 'मैं सोचकर उत्तर दूंगा, इसलिए आप फिर से आना।' हिरण्यवती बोली, 'मैं यहां आऊँगी या आप वहां आयेंगे, यह तो कौन जानता है ?' इस प्रकार कहकर वह वृद्ध स्त्री कहीं पर चली गई।

एक बार वसुदेवकुमार ग्रीष्मऋतु में जलक्रीडा करके गंधर्वसेना के साथ सो रहे थे, उस

१. चारुदत्त के वियोग में बारह वर्ष तक जिसकी वेणी छोड़कर न गूंथी गई हो ऐसी।

समय उनका हाथ दृढ़तापूर्वक पकड़कर 'उठ उठ' यूं बार बार कहते किसी प्रेत पर वासुदेव ने बार बार मुष्टि प्रहार किया फिर भी वह उन्हें हर गया। वह वसुदेव को एक चिता के पास ले गया। वहां प्रज्वलित अग्नि और घोर रुपवाली वह हिरण्यवती खेचरी वसुदेव को दिखाई दी। हिरण्यवती ने उस प्रेत को आदर से कहा कि, 'हे चन्द्रवदन ! अच्छा हुआ तू आ गया।' वह प्रेत वसुदेवकुमार को उसे सौंपकर पल भर में अंतर्धान हो गया। हिरण्यवती ने हँसकर वसुदेव को कहा, 'हे कुमार ! आपने क्या सोचा ? हे सुंदर ! हमारे आग्रह से अब इससे ब्याह करना सोचो।' उस समय अप्सराओं से घिरी लक्ष्मीदेवी समान, पहले देखी हुई **नीलयशा** सखियों सहित वहां आई। उस समय उसकी पितामही हिरण्यवती ने उसे कहा, 'हे पौत्री ! तेरे इस पति को ग्रहण कर।' नीलयशा वसुदेव को लेकर तत्काल आकाशमार्ग से चली गयी। प्रातःकाल में हिरण्यवती ने वसुदेव को कहा कि 'मेघप्रभ नामक वन से व्याप्त यह ह्रीमान नामक पर्वत है। चारण मुनियों से अधिष्ठित इस गिरि पर ज्वलन विद्याधर का पुत्र अंगारक विद्याभ्रष्ट होने पर भी रहता है। वह फिर से खेचरेन्द्र बनने के लिए विद्याओं को साध रहा है। उसे बहुत लम्बे समय के बाद विद्या सिद्धि मिलेगी, परंतु आपके दर्शन यदि उसे हो जाय तो उसे तत्काल विद्या सिद्ध होगी। इसलिए आप उस पर उपकार करने योग्य हो।' वसुदेव ने कहा कि, 'उस अंगारक को दृष्टि से देखने की भी जरुरत नहीं है।' फिर हिरण्यवती उसे वैताढ्यगिरि पर शिवमंदिर नगर को ले गई वहां सिंहदंष्ट्र राजा ने अपने घर ले जाकर प्रार्थना की तो वसुदेवकुमार उसकी नीलयशा कन्या से ब्याहे।

उस समय बाहर कोलाहल हुआ, वह सुनकर वसुदेव ने उसका कारण पूछा, तो द्वारपाल ने कहा कि 'यहां **शकटमुख** नामक एक नगर है। वहां **नीलवान** राजा है और उसे **नीलवती** नामक प्रिया है। उन्हें **नीलांजना** नामक एक पुत्री और **नील** नामक एक पुत्र है। उस नील ने अपनी बहन नीलांजना के साथ पहले ऐसा संकेत तय किया था कि हम दोनों को जो संतति होगी उसमें लड़की के साथ पुत्र का पाणिग्रहण करायेंगे। उस नीलांजना को यह तुम्हारी प्रिया नीलयशा नामक पुत्री हुई है और नीलकुमार को नीलकंठ नामक एक पुत्र हुआ है। नील ने पूर्व संकेतानुसार अपने पुत्र नीलकंठ के लिए अपनी बहन की लडकी नीलयशा की माँग की, परंतु उसके पिता ने इसके लिए एक बृहस्पति नामक मुनि को पूछा, तो उन्होंने कहा कि 'अर्ध भारतवर्ष के पति विष्णु[1] के पिता, यादवों में उत्तम और सौभाग्य मे कामदेव जैसे वसुदेवकुमार इस नीलयशा के पति होंगे।' राजा आपको विद्याशक्ति से यहां ले आये और आप इस नीलयशा को ब्याहे। यह सुनकर वह नील युद्ध करने यहां आया, पर उसे राजा सिंहदंष्ट्र ने जीत लिया, उसका यह कोलाहल हो रहा है।'

१. श्रीकृष्ण।

यह वृत्तांत सुनकर वसुदेव बड़े खुश हुए और नीलयशा के साथ क्रीडा करने लगे। एक बार शरद्ऋतु में विद्या और औषधियों के लिए खेचर ह्रीमान पर्वत पर जाते हुए दिखाई दिए। उन्हें देखकर वसुदेव ने नीलयशा को कहा कि - 'विद्यादान में मैं तेरा शिष्य हूँ।' इस बात का स्वीकार करके नीलयशा उनको लेकर ह्रीमान गिरि पर आयी। वहां वसुदेव को क्रीडा करने की इच्छावाला जानकर नीलयशा एक कदलीगृह रचकर उसमें उनके साथ खेलने लगी। इतने में एक कलापूर्ण मयूर उसकी नजरों मे पड़ा। 'वाह ! यह मयूर पूर्ण कलावाला है' यूं विस्मयपूर्वक कहती हुई वह मदिराक्षी स्वयं ही उसे लेने दौड़ी। मयूर के पास पहुँची तो वह धूर्त मयूर उसे अपनी पीठ पर बिठाकर गरुड की भाँति वहां से उडा, वसुदेव उसके पीछे दौड़े। कालक्रम से वे किसी निवेश में आ पहुँचे, वहां गोपिकाओं ने उनका सम्मान किया। वहां रात्रि बिताकर प्रातःकाल में दक्षिण दिशा तरफ चले। वहां किसी गिरितट के गाँव में गये, वहां बड़ा वेदध्वनि सुनकर उन्होंने किसी ब्राह्मण को उसका पाठ करने का कारण पूछा। वह ब्राह्मण बोला, ''रावण के समय में एक **दिवाकर** नामक खेचर ने नारद मुनि को अपनी रुपवान कन्या दी थी, उसके वंश में इस समय **सुरदेव** नामक ब्राह्मण हुआ है। वह इस गाँव में मुख्य ब्राह्मण है। उसे **क्षत्रिया** नामक पत्नी से वेद जाननेवाली **सोमश्री** नामक एक पुत्री हुई है। उसके वर के लिए उसके पिता ने **कराल** नामक किसी ज्ञानी को पूछा। उन्होंने कहा कि 'जो वेद में उसे जीतेगा, वही उसे ब्याहेगा।' इसलिए उसे जीतने के लिए ये लोग हंमेशा वेदाभ्यास करने के लिए तत्पर हुए हैं। उन्हें यहां वेदाध्ययन करानेवाले **ब्रह्मदत्त** नामक उपाध्याय हैं। फिर वसुदेव ब्राह्मण का रुप धरकर उस वेदाचार्य के पास आये और कहा कि 'मैं गौतमगोत्री स्कंदिल नामक ब्राह्मण हूँ और मुझे आपके पास वेदाभ्यास करना है।' ब्रह्मदत्त ने आज्ञा दी, तो वसुदेव उनसे वेद पढ़े। फिर वेद में सोमश्री को जीतकर उससे ब्याहे और उसके साथ विलास करते हुए वहीं रहे।

एक बार वसुदेव उद्यान में गये। वहां **इन्द्रशर्मा** नामक एक इन्द्रजालिक को उन्होंने देखा। उसकी आश्चर्यदायी विद्या देखकर वसुदेव ने वह सीखाने की मांग की तो वह बोला कि, 'इस मानसमोहिनी विद्या को ग्रहण कीजिए। इस विद्या को साधने के लिए सायंकाल से आरंभ करके प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर वह सिद्ध होती है, परंतु उसमें उपसर्ग बहुत होते हैं, इसलिए उसे साधते समय कोई सहायक मित्र की जरुरत पड़ेगी।' उन्होंने कहा, 'मेरा विदेश में कोई मित्र नही है।' तो इन्द्रजालिक बोला, 'हे भाई ! मैं और यह तुम्हारी भावज **वनमालिका** दोनों ही आपकी सहायता करेंगे।' इस प्रकार कहने पर वसुदेव ने विधि से उस विद्या को ग्रहण किया और उसका जाप करने लगे। उस समय मायावी इन्द्रशर्मा ने शिबिका द्वारा उसका हरण किया। वसुदेव उसे उपसर्ग हुआ मानकर डिगे नहीं और विद्या का जाप करने लगे, परंतु प्रातःकाल होते ही उसे माया जानकर शिबिका से ऊतर पड़े। फिर इन्द्र शर्मा आदि दौड़ने लगे, उनका

उल्लंघन करके वसुदेवकुमार आगे चले। सायंकाल होने पर तृणशोषक नामक स्थान पर आये। वहां किसी मकान में वसुदेव सो गये। रात्रि में किसी राक्षस ने आकर उनको जगाया, तो मुष्टिप्रहार से वसुदेव उसको मारने लगे। फिर चिरकाल तक बाहुयुद्ध करके खरीदे गए भेड़ की भाँति वस्त्र से उस राक्षस को बांध लिया और धोबी ज्यों रेशमी वस्त्र धोता है त्यों उसे पृथ्वी पर पछाड़ पछाड़ कर मार डाला।[1] प्रातःकाल यह लोगों के देखने में आया, इससे लोग बहुत खुश हुए और उत्तम वर की भाँति वसुदेव को रथ में बिठाकर गाते-बजाते हुए वे अपने निवासस्थान पर ले गये। वहां सर्व लोगों ने पाँचसों कन्याएं लाकर वसुदेव को भेंट करने लगे। उनको रोककर वसुदेव ने पूछा, 'यह राक्षस कौन था यह कहो।' उनमें से एक पुरुष बोला, 'कलिंगदेश में बसे कांचनपुर नगर में **जितशत्रु** नामक एक पराक्रमी राजा हुआ। उसको **सोदास** नामक पुत्र हुआ। वह प्रकृति से ही माँसलोलुप होने से मनुष्यरुपी राक्षस बना। राजा जितशत्रु ने अपने देश में सभी प्राणियों को अभयदान दिया हुआ था, फिर भी सोदास ने हररोज एक मयूर के माँस की मांग की, जो राजा को अभीष्ट न थी फिर भी स्वीकृत करनी पड़ी। उस स्वीकृति अनुसार रसोइए सदैव वंशगिरि पर से एक मयूर लाकर पकाते और उसे देते थे। एक बार उन्होंने पाक (खाने) के लिए एक मयूर को मारा, उसे कोई मार्जार (बिल्ला) आकर ले गया। दूसरा माँस न मिलने से रसोइए ने एक मृत बालक को पकाकर उसका माँस सोदास को खाने के लिए दिया। खाते समय सोदास ने रसोईए को पूछा, 'आज माँस ऐसा स्वादिष्ट क्यों है ?' जो यथार्थ था वहीं रसोईए ने कहा। यह सुनकर सोदास ने कहा, 'अब हर रोज मयूर के बदले नरमाँस पकाकर देना।' फिर सोदास हंमेशा स्वयं ही शहर में से बालकों को हरने लगा। यह बात राजा को मालूम होते ही उसने कुमार को देश में से निकाल दिया। पिता के डर से भागकर वह दुर्ग में आकर रहा था, और हंमेशा पांच-छ मनुष्यों को मार डालता था। यह तो बहुत अच्छा हुआ कि आपने उस दुष्ट राक्षस को मार डाला।' इस प्रकार की उनकी कहानी सुनने के बाद वसुदेव हर्षपूर्वक उन पांचसों कन्याओं से ब्याहे।

वहां रात्रि बिताकर प्रातःकाल में वसुदेवकुमार **अचल** गाँव में आये। वहां से सार्थवाह की पुत्री **मित्रश्री** को ब्याहे। पहले किसी ज्ञानी ने 'वसुदेव तेरे वर होंगे' ऐसा कहा था। वहां से वसुदेव **वेदसाम** नगर गये। वहां उस **वनमाला** ने उनको देखा तो वह बोली, 'हे देवरजी ! यहाँ आइए, यहां आइए' यूं कहकर अपने घर ले गई। उसने अपने पिता को कहा, 'ये वसुदेवकुमार हैं।' तो उसके पिता ने सत्कार करके कहा कि, 'इस नगर में **कपिल** नामक राजा है। उसे **कपिला** नामक पुत्री है। हे महात्मन् ! आप गिरितट गाँव में थे तब पहले किसी ज्ञानी ने कहा है कि

१. यह राक्षस देव जाति का नहीं था। देव तो यूं मृत्यु नहीं पाता। यह तो मनुष्य होने पर भी मनुष्यं के माँस का भक्षण करने वाला मनुष्यजाति का राक्षस था, इसलिए उसने मृत्यु पायी। उसके वृत्तांत से आगे यह बात स्पष्ट होती है।

आप इस राजपुत्री के पति बनोगे। उस ज्ञानी ने आपकी पहचान के लिए संकेत दिया है कि आप स्फुलिंगवदन नामक आपके (राजा के) अश्व का दमन करोगे। इसलिए आपको लाने के लिए इन्द्रजालिक इन्द्रशर्मा नामक मेरे जमाई को राजा ने भेजा था परंतु उसने आकर कहा कि, 'वसुदेवकुमार बीच में से ही कहीं चले गये हैं।' आज बड़े भाग्य से आप यहां आ चढ़े हो, तो अब इस अश्व का दमन कीजिए।' फिर वसुदेव ने राजा के अश्व का दमन किया और राजपुत्री कपिला से ब्याहे। कपिल राजा ने और उसके साले अंशुमान ने वसुदेव को वहां रखे। वहां रहते हुए कुछ समय बाद कपिला को **कपिल** नामक एक पुत्र हुआ।

एक बार वसुदेव गजशाला में गये। वहां एक नये हाथी को देखकर उस पर बैठे। इतने में तो हाथी आकाश मे उडा, तो वसुदेव ने उस पर मुष्टिप्रहार किया। वह हाथी किसी सरोवर तट पर गिरा, तो वह मूल स्वरुप में नीलकंठ नाम का खेचर बन गया, जो पहले नीलयशा के विवाह समय पर युद्ध करने आया था। वहां से घूमते घूमते वसुदेव **सालगुह** नाम के नगर में आये। वहां उस नगर के राजा **भाग्यसेन** को उन्होंने धनुर्वेद सीखाया। एक बार भाग्यसेन राजा के साथ युद्ध करने हेतु उसका अग्रज बंधु मेघसेन वहां आया। उसे महापराक्रमी वसुदेव ने जीत लिया। इसके बाद भाग्यसेन राजा ने पद्मा (लक्ष्मी) जैसी अपनी **पद्मावती** नाम की पुत्री और मेघसेन ने **अश्वसेना** नाम की अपनी पुत्री वसुदेव को दी। पद्मावती और अश्वसेना के साथ कुछ समय तक वहीं रहकर क्रीडा करके वसुदेवकुमार **भद्दिलपुर** नाम के नगर में आये। वहां का **पुंड्र** नाम का राजा अपुत्र मरा था। इसलिए उसकी **पुंड्रा** नाम की कन्या औषधि से पुरुष का रुप धरकर राज्य करती हुई वसुदेव की नजरों में पड़ी। वसुदेव को देखते ही अनुरागवाली बनी पुंड्रा को वसुदेवकुमार ब्याहे। उसे पुंड्र नाम का पुत्र हुआ। वह वहाँ का राजा बना।

एक बार उस अंगारक खेचर ने रात्रि के समय हंस समझकर वसुदेव को उठाकर गंगा में डाल दिया। प्रातःकाल में वसुदेव ने **इलावर्द्धन** नामक नगर देखा। वहाँ एक सार्थवाह की दुकान पर उसकी आज्ञा लेकर वसुदेव बैठे। वसुदेव के प्रभाव से उस दिन उस सार्थवाह को एक लाख स्वर्णमुद्रा का लाभ हुआ। उसने वसुदेव का प्रभाव जानकर उन्हें आदर से बुलाया। इसके बाद स्वर्णरथ में बिठाकर सार्थवाह उन्हें अपने घर ले गया और अपनी **रत्नवती** नाम की कन्या का उनके साथ ब्याह करवाया। एक बार इन्द्रमहोत्सव पर अपने श्वसुर के साथ दिव्य रथ में बैठकर वसुदेव महापुर नगर गये। उस नगर के बाहर नये प्रासादों को देखकर वसुदेव ने अपने श्वसुर को पूछा कि, 'क्या यह दूसरा नगर है ?' सार्थवाह ने कहा, 'इस नगर में सोमदत्त नाम का राजा है। मुख की शोभा से सोम (चन्द्र) की कांति को भी उल्लंघन करे ऐसी उसकी **सोमश्री** नाम की कन्या है। उसके स्वयंवर के लिए राजा ने ये प्रासाद बनवाए हैं। यहां कईं राजाओं

को बुलवाया था, पर उनके अचातुर्य के कारण उनको बिदा कर दिया है।'' वसुदेव ने इन्द्रमहोत्सव संबंधित इन्द्रस्तंभ के पास जाकर उसे नमस्कार किए। उस समय पहले से आया हुआ राजा का अंतःपुर भी उस इन्द्रस्तंभ को प्रणाम करके राजमहल की ओर चला। इतने में आलानस्तंभ को उखाड़कर मुक्त बना राजा का एक हाथी वहां आया। उसने अचानक राजकुमारी को रथ से गिरा दिया। उस समय दीन, अशरण और शरणार्थी ऐसी उसे देखकर वसुदेवकुमार, मानो उसका प्रत्यक्ष उपाय हो त्यों, उसके पास आये और उस हाथी को तिरस्कृत किया, तो क्रोध से महा दुर्धर बना वह हाथी राजकुमारी को छोड़कर वसुदेव के सामने दौड़ा। महाबलवान् वसुदेव ने उस हाथी को बहुत खेदित किया। फिर उसको मोहित करके वसुदेव राजपुत्री को समीप के किसी घर में ले गये और उत्तरीय वस्त्र से हवा डालकर उसे आश्वासन दिया। उसकी धात्रियाँ उसे राजमहल में ले गईं और कुबेर सार्थवाह वसुदेव को उसके श्वसुर सहित सम्मानपूर्वक अपने घर ले गया। वहां वसुदेव स्नान भोजन करके स्वस्थ बने। इतने में किसी प्रतिहारी ने आकर जयाशिषपूर्वक इस प्रकार कहा-

'यहां के सोमदत्त राजा को सोमश्री नाम की कन्या है, ऐसा पहले मालूम पडा था कि उसे स्वयंवर में पति मिलेगा। परंतु सर्वाणयति के केवलज्ञान महोत्सव में देवों को आते हुए देखकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब से वह मृगाक्षी बाला मौन धरकर रहने लगी। एक बार मैंने एकांत में इसका कारण पूछा, तो वह बोली, 'महाशुक्र देवलोक में भोग नामक एक देव था। उसने मेरे साथ अति वात्सल्य से चिरकाल तक भोग भोगे थे। एक बार वह देव मेरे साथ नंदीश्वरादि तीर्थयात्रा और अर्हंत का जन्मोत्सव करके अपने स्थान की और लौट पड़ा। वह ब्रह्मदेवलोक तक पहुँचा, इतने में अचानक आयु पूर्ण हो जाने पर च्यूत हो गया। इसके बाद शोकार्त होकर उसे ढूंढ़ती ढूंढ़ती हुई मैं इस भरतक्षेत्र के कुरु देश में आयी। वहां दो केवलज्ञानी को देखकर मैंने पूछा कि 'देवलोक से च्यूत हुए मेरे पति कहाँ उत्पन्न हुए हैं यह बताइए।' वे बोले, 'हरिवंश में एक राजा के घर तेरा पति अवतरित हुआ है और तुं भी स्वर्ग से च्यूत होकर राजपुत्री बनेगी। जब इन्द्रमहोत्सव में हाथी से वह तुझे छुडायेगा, तब वह फिर से तेरा पति बनेगा।' उनको भक्तिपूर्वक वन्दना करके मैं स्वस्थान पर आयी और कालक्रम से वहां से च्यूत होकर इस सोमदत्त राजा के घर कन्यारुप में उत्पन्न हुई। इस सर्वाण मुनि के केवलज्ञान उत्सव में देवों को देखकर मुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ, जिससे ये सब मुझे मालूम पड़ा। इसलिए मैंने मौन धारण किया है।' (प्रतिहारि कहता है) - 'उसका ये सर्व वृत्तांत मैंने राजा को बताया तो राजा ने स्वयंवर में आये हुए सर्व राजाओं को बिदा किया। हे वीर! आज आपने उस राजकन्या को हाथी से छुडवाया है, इसलिए पूर्व की सब बातों पर भरोसा

पड़ा है, इसलिए आपको ले जाने के लिए मुझे भेजा है, तो पधारिए और उस राजकन्या से ब्याह कीजिए।' फिर वसुदेव उसके साथ राजमंदिर मे गये और सोमश्री को ब्याहकर उसके साथ यूथेच्छ क्रीडा करने लगे।

एक बार वसुदेव सोकर उठे, वहां वह मृगाक्षी राजबाला उनको न दिखाई दी, तो करुण स्वर से रुदन करते हुए वे तीन दिन तक शून्यचित्त होकर राजमहल में ही बैठे रहे। फिर शोकनिवारण के लिए उपवन में गए। वहां सोमश्री को देखकर वसुदेव ने कहा कि 'अरे मानिनी ! तू मेरे किस अपराध से इतनी देर तक चली गई थी ?' सोमश्री बोली, 'हे नाथ ! आपके लिए मैने एक विशिष्ट नियम लिया था, इसलिए मैं तीन दिन तक मौन व्रत धारण किए थी। अब इस देवता की पूजा करके आप मेरा दुबारा पाणिग्रहण कीजिए, जिससे मेरा नियम पूरा हो जाय। क्योंकि इस नियम का ऐसा विधि है।' फिर वसुदेव ने उसके कहे अनुसार किया। इसके बाद उस राजकन्याने 'यह देव की शेषा है' ऐसा कहकर वसुदेव को मदिरापान कराया, और कांदर्पिक देव समान उनके साथ अत्यंत रतिसुख भोगा। वसुदेव रात्रि को उसके साथ सो गये। जब वे निन्द्रा से जाग्रत हुए और देखा, तो उन्होंने सोमश्री के बजाय दूसरी स्त्री देखी। वसुदेव ने उसे पूछा कि 'हे सुभ्रे ! तू कौन है ?' तो वह बोली, 'दक्षिण श्रेणी में बसे **सुवर्णाभ** नामक नगर में **चित्रांग** नामक राजा है, उसे **अंगारवती** नामक रानी है, उन्हें **मानसवेग** नामक पुत्र है और **वेगवती** नाम की मैं पुत्री हूँ। चित्रांग राजा ने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ली है। हे स्वामिन् ! मेरे भाई मानसवेग ने निर्लज्ज होकर तुम्हारी स्त्री सोमश्री का हरण किया है। मेरे भाई ने रति के लिए मेरे द्वारा अनेक प्रकार के मीठे वचन बहुत कहलवाए, फिर भी आपकी महासती स्त्री ने वह बात स्वीकार नहीं की। फिर उसने मुझे सखी माना और आपको ले जाने के लिए मुझे यहां भेजा। मैं यहां आयी और आपको देखकर कामपीडित हो गई, इसलिए मैंने यह कार्य किया है। अब मेरे जैसी कुलीन कन्या के आप विवाहपूर्वक पति हुए हो।' प्रातःकाल में वेगवती को देखकर सब लोग चकित हो गये। पति की आज्ञा से उसने सोमश्री के हरण की बात लोगों को बतायी।

एक बार रात्रि को वसुदेव रतिश्रांत होकर सो रहे थे, इतने में अति वेगवान मानसवेग ने आकर उनका हरण किया। यह मालूम पड़ते ही वसुदेव उस खेचर के शरीर पर मुष्टिप्रहार करने लगे, तो पीड़ित बने मानसवेग ने वसुदेव को गंगा के जल में डाल दिया। वहां **चंडवेग** नाम का एक खेचर विद्या साध रहा था। वसुदेव उसके कंधे पर गिरे, फिर भी वे उसकी विद्यासाधना के कारण बने। उसने वसुदेव को कहा कि, 'हे महात्मन् ! आपके प्रभाव से मेरी विद्या सिद्ध हो गई है, तो कहिए मैं आपको क्या दूं ?' उसके कहने पर वसुदेव ने आकाशगामिनी

विद्या माँगी, खेचर ने तत्काल वह विद्या उनको दी। वसुदेव **कनखल** गाँव के द्वार पर रहकर एकाग्रता से वह विद्या साधने लगे।

चंडवेग वहां से चला गया। इतने में **विद्युद्वेग** राजा की पुत्री **मदनवेगा** वहां आयी। उसने वसुदेवकुमार को देखा। उन्हें देखते ही वह कामपीड़ित हो गई तो उसने तत्काल वसुदेव को वैताढ्य पर्वत पर ले जाकर कामदेव की तरह पुष्पशयन उद्यान में रखा। फिर उसने **अमृतधारा** नगर में प्रवेश किया। प्रातःकाल में उसके तीन भाइयों ने आकर वसुदेव को नमस्कार किए, उनमें पहला **दधिमुख**, दूसरा **दंडवेग** और तीसरा **चंडवेग** था, जिसने वसुदेव को आकाशगामिनी विद्या दी थी। फिर वे वसुदेव को अपने नगर में ले गये और वहां मदनवेगा के साथ विधिपूर्वक विवाह किया। वसुदेव मदनवेगा के साथ वहां सुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगे।

एक दिन मदनवेगा ने वसुदेव को संतुष्ट करके वरदान माँगा। पराक्रमी वसुदेव ने देने का कबूल किया। एक बार दधिमुख ने नमस्कार करके वसुदेव को कहा कि, "**दिवस्तिलक** नामक नगर में **त्रिशिखर** नामक राजा है, उसे **सूर्पक** नाम का एक कुमार है। राजा ने सूर्पककुमार के लिए मेरे पिता से मदनवेगा की माँग की थी, परंतु मेरे पिता विद्युद्वेग ने उसे कन्या नहीं दी, क्योंकि मेरे पिता ने किसी चारणमुनि को कन्या के वर के बारे में पूछा था, तो उन्होंने कहा था कि, 'हरिवंश में उत्पन्न हुए वसुदेवकुमार तुम्हारी पुत्री के पति बनेंगे। और वे रात्रि में गंगानदी में रहकर विद्या साधते हुए तेरे पुत्र चंडवेग के कंधे पर गिरेंगे, जिससे उसे तत्काल विद्याएं सिद्ध हो जाएगी।' इस बात को सुनकर मेरे पिता ने सूर्पक को कन्या देने का इन्कार किया, जिससे वह बलवान राजा त्रिशिखर मेरे पिता को बांधकर ले गया है, इसलिए मदनवेगा को आपने जो वरदान दिया है उस प्रकार आपके श्वसुर को छुड़ाइए और मैं आपका साला लगता हूँ उसका मान रखिए। हमारे वंश में अंकुररुप **नमि राजा** थे, उन्हें **पुलस्त्य** नामक पुत्र हुआ था। उसके वंश में **मेघनाद** नामक राजा हुआ जो अरिंजय नगर का स्वामी बना था। सुभूम चक्रवर्ती उसके जामाता लगते थे। उसने अपने श्वसुर को वैताढ्य पर दोनों श्रेणी की लक्ष्मी और ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र वगैरह आदि दिव्य अस्त्र दिए थे, उसके वंश में रावण और विभीषण हुए थे। विभीषण के वंश में मेरे पित विद्युद्वेग उत्पन्न हुए हैं। क्रमानुसार वे अस्त्र हमें विरासत में मिले है, तो ये अस्त्र आप ग्रहण कीजिए, क्योंकि ऐसे दिव्य अस्त्र महाभाग्यवान पुरुष के पास सफल हैं और हमारे जैसे दुर्भागी के पास निष्फल हैं।" इस प्रकार कहकर उसने वसुदेव को वे अस्त्र दिए। वसुदेव ने उन्हें ग्रहण किया और विधि से साध लिए। 'पुण्य से क्या असाध्य है ?'

त्रिशिखर राजा ने सुना कि मदनवेगा एक भूचर को दी है तो वह क्रोध करके स्वयंमेव युद्ध करने आया। फिर खेचरों ने सुवर्ण का मायावी रथ रचकर वसुदेव को दिया। वसुदेव उसमें

बैठकर दधिमुख आदि सैनिको से घिरकर युद्ध करने लगे। फलस्वरुप वसुदेव ने इन्द्रास्त्र से त्रिशिखर राजा का मस्तक छेद डाला, और दिवस्तिलक नगर में प्रवेश करके अपने श्वसुर को बंधन से छुड़वाया। फिर श्वसुर के नगर में आकर मदनवेगा के साथ विलास करते हुए उन्हें **अनाधृष्टि** नाम का पुत्र हुआ।

एक बार खेचरों की स्त्रियों द्वारा राग से बार बार देखे जाते वसुदेव अनेक खेचरों सहित सिद्धायतन की यात्रा करने गये। यात्रा करके वे वापस श्वसुरनगर में आए। एक बार वसुदेव ने मदनवेगा को वेगवती के नाम से पुकारा, तो क्रोध करके मदनवेगा दूसरी शय्या पर गयी, उस समय त्रिशिखर राजा की पत्नी सूर्पणखा ने मदनवेगा का रुप धारण करके उस स्थान को जलाकर वसुदेव का हरण किया। फिर मारने की इच्छा से राजगृही नगरी के समीप वसुदेव को आकाश में से उसने छोड़ दिया। दैवयोग से वसुदेव घास के ढ़ेर पर गिरे। वहां जरासंध की कीर्ति सुनकर वसुदेव राजगृही नगर में गए। वहां पासे से कोटि सुवर्ण जीतकर उन्होंने याचकों को दिया। इतने में राजपुरुषों ने आकर वसुदेव को बांधा और जरासंध के दरबार में ले चले। वसुदेव ने राजसुभटों को पूछा कि 'अपराध के बिना मुझे क्यों बांधा है ?' तब वे बोले कि 'किसी ज्ञानी ने जरासंध को कहा है कि 'कल प्रातःकाल में यहां आकर कोटि द्रव्य जीतकर याचकों को जो दे देगा, उसका पुत्र तेरा वध करनेवाला होगा।.उस प्रकार करनेवाले आप हो, आप निरपराधी हो फिर भी राजा की आज्ञा से आपको मार ड़ाला जायेगा।'' इस प्रकार कहकर उन्होंने वसुदेव को एक चमडे की धमन में ड़ाला। फिर अपवाद के भय से गुप्त प्रकार से मारना चाहते राजसुभटों ने उस धमन को ले जाकर किसी पर्वत पर से लुढ़का दिया। उनको वेगवती की धात्री माता ने उपर से ही उठा लिया। जब वे उनको लेकर चली, तो वसुदेव को लगा कि मुझे चारुदत्त की तरह कोई भारंड पक्षी आकाश में ले जा रहा है। फिर उसने पर्वत पर वसुदेव को उतारा तो वसुदेव ने बाहर दृष्टि डाली तो वहां वेगवती के दो पादचिह्न उन्होंने देखे। उसे पहचानकर वे धमन के बाहर नीकले। वहां 'हे नाथ ! हे नाथ !' यूं पुकारते हुए रुदन करती वेगवती उनके देखने में आयी। वसुदेव ने उसके पास जाकर उसे आलिंगन दिया और पूछा कि 'तुमने मुझे कैसे प्राप्त किया ?' वेगवती आंसू पोछकर बोली, 'स्वामिन् ! मैं जिस समय शय्या में से उठी उस समय मेरे अभाग्य से मैंने आपको शय्या में देखा नहीं, तो मैं अंतःपुर की स्त्रियों के साथ करुण स्वर में रुदन करने लगी। इतने में प्रज्ञप्ति विद्या ने आपके हरण की और आकाश में से गिरने की खबर दी। फिर मैने अनजानपने कारण सोचा कि 'मेरे पति के पास किसी मुनि की बतायी हुई प्रभाविक विद्या होगी जिससे वे कुछ समय में वे यहां आयेंगे।' यूं सोचकर आपके वियोग से पीडित ऐसी मैं कुछ काल निर्गमन करने

के बाद राजा की आज्ञा से आपको ढूंढने के लिए पृथ्वी पर भटकने लगी। घूमते घूमते मैं सिद्धायतन में आयी, वहां मदनवेगा के साथ आपको देखा। फिर आप सिद्धचैत्य में से अमृतधारा नगर में आये, वहां भी मैं आपके पीछे आयी। वहां मैं अंतर्धान बनकर रही थी, ईतने में आपके मुख से मेरा नाम मैंने सुना, जिससे तत्काल आपके स्नेह से मेरे चिरकाल के विरह का क्लेश छोड़ दिया। मेरा नाम सुनकर मदनवेगा को क्रोध आया और वह अंतर्गृह में गयी, इतने में तो सूर्पणखा ने औषधि के बल से उस घर में अग्नि उत्पन्न करके और मदनवेगा का रुप धरकर आपका हरण किया। उसने जब आकाश में से आपको गिरते छोडा तब आपको हॉसिल करने के लिए मैं जलदी से दौड़ी और मानसवेग का कल्पित रुप लेकर मैं नीचे ही रही। पर उसने मुझे देखा तो विद्या और औषधि के बल से मुझे तिरस्कृत कर भगा दिया। उसके डर से भागकर मैं किसी चैत्य में जा रही थी, तब प्रमाद से किसी मुनि का उल्लंघन हो जाने से मेरी विद्या भ्रष्ट हो गयी। इतने में मेरी धात्री मुझे मिली। उस समय 'मेरे पति कहां होंगे' ऐसा चिंतन मैं कर रही थी, इसलिए धात्री को सर्व वृत्तांत कहकर आपको खोजने के लिए भेजा। घूमते घूमते उसने आपको पर्वत पर से गिरते हुए देखा तो तत्काल उपर से ही आपको उठा लिया। फिर आपको उसी धमना में वह इस ह्रीमान पर्वत के पंचनद तीर्थ में ले आई, और यहां आप मुक्त बने।'

इस प्रकार का वृत्तांत सुनकर वसुदेव वहां एक तापस के आश्रम में उसके साथ रहे। एक बार नदी में नागपाश से बंधी एक कन्या उनको दिखाई दी। वेगवती ने भी उसके बारे में बताया तो दयालु वसुदेव ने नागपाश के बंधनवाली इस कन्या को बंधनमुक्त किया। फिर उस मूर्छित कन्या को जलसिंचित करके सचेत किया तो वह बैठ गयी। फिर वह वसुदेव को तीन प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोली- 'हे महात्मा ! आपके प्रभाव से आज मेरी विद्या सिद्ध हो गयी है, इसके बारे में आपको कहती हूँ वह सुनिए - वैताढ्यगिरि पर **गगनवल्लभ** नाम का एक नगर है। उस नगर में नमिराजा के वंश में पहले **विद्युदंष्ट्र** नाम का राजा हुआ, उसने प्रत्यग् विदेह में एक मुनि को कायोत्सर्ग में रहे हुए देखा, तो वह बोला कि, 'अरे ! यह कोई उत्पात है, इसलिए उसे वरुणाचल में ले जाकर मार डालो।' उसके ऐसे कथन से साथ रहे हुए खेचर उनको मारने लगे, परंतु शुक्लध्यान धरे हुए मुनि को उस समय केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तो केवली की महिमा हेतु धरणेन्द्र वहां आये। उस स्थान पर मुनि के विरोधियों को देखकर धरणेन्द्र ने क्रोध करके तत्काल उनको विद्याभ्रष्ट कर दिया, जिससे दीन होकर वे कहने लगे कि, 'हे देवेन्द्र ! ये मुनि कौन है ? यह हमे मालूम न पड़ा। केवल विद्युदंष्ट्र ने 'यह उत्पात है' यूं कहकर हमें प्रेरणा देकर हमसे ऐसा कार्य करवाया है।' धरणेन्द्र ने कहा, 'अरे पापियों ! मैं तो मुनि के केवलज्ञान उत्सव के लिए आया हूँ, तो अब तुम्हारे जैसे अज्ञानियों और पापियों का मुझे क्या

करना ? जाओ अब दुबारा प्रयास करने से तुम्हें विद्या सिद्ध होगी, परंतु याद रखना कि अरिहंत, साधू और उनके आश्रितों का द्वेष करने से तत्काल ये विद्याएं निष्फल हो जायेगी और रोहिणी वगैरह महाविद्याएं उस दुर्मति विद्युदंष्ट्र को तो सिद्ध होगी ही नहीं। इतना ही नहीं, उसकी संतति के किसी पुरुष या स्त्री को भी वह सिद्ध नहीं होगी, जब उन्हें कोई साधू मुनिराज के या महापुरुष के दर्शन होंगे तो वह सिद्ध होगी।' इस प्रकार कहकर केवली का महोत्सव करके धरणेन्द्र अपने स्थानक पर गये। पूर्वकाल उसके वंश में **केतुमती** नामक एक कन्या हुई थी, वह वे विद्याएं साध रही थी। उसे पुंडरीक वासुदेव ब्याहे थे। उनके प्रभाव से उस केतुमती को विद्याएं भी सिद्ध हो गयी थी। हे चन्द्रमुख ! उसके वंश की **बालचन्द्रा** नामक कन्या मैं हूँ। मुझे आपके प्रभाव से विद्याएं सिद्ध हो गयी हैं, इसलिए आपके वश हुई मुझसे आप पाणिग्रहण कीजिए, और कहिए कि मेरी विद्या सिद्ध कराने के बदले में मैं आपको क्या दूं ?'' उसके आग्रह पर वसुदेव ने कहा कि 'इस वेगवती को विद्याएं दो।' फिर वह वेगवती को लेकर गगनवल्लभ नगर में गयी और वसुदेव तापस के आश्रम में आये।

उस तापस के आश्रम में तत्काल तापसी व्रत लेकर दो राजा अपने पराक्रम की निंदा करते हुए आये। उनको देखकर वसुदेव ने उनके उद्वेग का कारण पूछा, तो वे बोले- ''श्रावस्ती नाम की नगरी में अति निर्मल चरित्र से पवित्र एसा **एणीपुत्र** नाम का पराक्रमी राजा है। उसे **प्रियंगुसुंदरी** नाम की एक पुत्री है, उसके स्वयंवर के लिए राजा ने कई राजाओं को बुलवाया पर उस पुत्री ने किसी भी राजा को न चुना तो आये हुए राजाओं ने क्रोध से एकत्रित होकर उसके साथ संग्राम शुरु कर दिया। परंतु उस अकेले ने ही सर्व राजाओं को जीत लिया तो वे सब राजा भाग गये। उनमें से कुछ गिरि पर छिप गए, कुछ अरण्य में जाकर छिपे और कुछ सरोवरों में जा छिपे। उनमें से हम दो तापस बनकर चल नीकले। वृथा भुजधारी हम नपुंसकों को धिक्कार है।'' उनका इस प्रकार का वृत्तांत सुनकर वसुदेव ने उन्हें जैनधर्म का बोध दिया, तो उन्होंने जैन दीक्षा ली। फिर वसुदेव श्रावस्ती नगरी में गये। वहां उद्यान में तीन द्वारवाला एक देवगृह उनके देखने में आया। उसके मुखद्वार पर बत्तीस अर्गला थी, जिससे उस मार्ग पर प्रवेश करना मुश्किल था, इसलिए समीप के द्वार पर से उन्होंने अंदर प्रवेश किया। उन्होंने वहां एक मुनि की, एक गृहस्थ की और एक तीन पैरवाले भैंसे की प्रतिमा उन्होंने देखी तो उन्होंने एक ब्राह्मण को पूछा कि 'यह क्या ?' वह बोला - 'यहां **जितशत्रु** नाम का राजा था। उसे **मृगध्वज** नामक पुत्र हुआ था। उस नगर में **कामदेव** नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उस समय वह सेठ नगर के बाहर अपनी गोष्ट (पशुशाला) में गया। वहां उसके **दण्डक** नामक गोपालक ने सेठ को कहा कि, 'सेठजी ! तुम्हारी इस महिषी के पांच भैंसे मैंने पहले मार डाले हैं, यह छट्ठा भैंसा बड़ी भद्रिक आकृतिवाला आया है, और जब से वह जन्मा है तब से भय

से कंपित होकर और नेत्रों से दीन होकर वह मेरे चरणों में नमन करता है, इसलिए दया के कारण मैंने उसे मारा नहीं है। आप भी इस भैंसे को अभय कीजिए। यह भैंसा कोई जातिस्मरणवाला है।' गोपालक ने इस प्रकार कहा तो सेठ दया लाकर भैंसे को श्रावस्ती नगरी में ले गये। सेठ ने राजा से उसके अभय के लिए मांग की तो राजा ने भी उसे अभय देकर कहा कि, 'यह भैंसा पूरी श्रावस्ती नगरी में स्वेच्छापूर्वक घूमता रहे।' एक बार राजकुमार मृगध्वज ने उस भैंसे का एक पैर काट डाला। यह जानकर राजा ने उस कुमार को नगर से बाहर निकाल दिया। कुमार ने वैराग्य पाकर दीक्षा ली। पाँव कटने के बाद अड्डारहवें दिन उस भैंसे ने मृत्यु पायी और कुमार मृगध्वज को बाइसवे दिन केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देव, असुर, राजा और अमात्य उनके वंदन करने आये। देशना के अंत में जितशत्रु राजा ने पूछा कि 'आपकी उस भैसे के साथ क्या दुश्मनी थी ?' मृगध्वज केवली बोले, 'पूर्वकाल में **अश्वग्रीव** नामक एक अर्धचक्रवर्ती हुए थे, उसे **हरिश्मश्रु** नाम का एक सचिव था। वह कौल (नास्तिक) था। वह धर्म की निंदा करता था और राजा आस्तिक होने से सदैव धर्म का प्रतिपादन करता था। इस प्रकार होने से उस राजा और सचिव के बीच दिन-प्रतिदिन विरोध बढ़ने लगा। उन दोनों को त्रिपृष्ट और अचल ने मारा, जिससे मृत्यु पाकर सातवें नरक में गया। नरक में से निकलकर दोनों ने कई भवफेरे किये। उसमें से अश्वग्रीव था वह मैं हूँ जो आपका पुत्र बना और हरिश्मश्रु मंत्री भैंसा बना। पूर्व की दुश्मनी के कारण मैंने उसका पैर काट ड़ाला। वह भैंसा मरकर **लोहिताक्ष** नाम का असुरों का अग्रणी बना है, यह देखो, वह यहां मुझे वंदन करने आया है। इस संसार का नाटक ऐसा विचित्र है।' लोहिताक्ष ने मुनि को प्रणाम करके मृगध्वज मुनि की, कामदेव सेठ की और तीन पैरवाले महिष की रत्नमय प्रतिमा बनवाकर यहां स्थापित की है। उस कामदेवश्रेष्ठी के वंश में इस समय **कामदत्त** नाम का सेठ है, उसे **बंधुमती** नाम की पुत्री है। सेठ ने उस पुत्री के वर हेतु किसी ज्ञानी को पूछा था, तो ज्ञानी ने कहा था कि जो इस देवालय का मुखद्वार खोलेगा वह तेरी पुत्री का पति बनेगा।'

इस प्रकार का सर्व वृत्तांत सुनकर वसुदेव ने वह द्वार खोला, यह बात जानकर तत्काल कामदत्त सेठ ने आकर वसुदेव को अपनी पुत्री दी। यह देखने के लिए राजा की पुत्री प्रियंगुसुंदरी राजा के साथ वहां आयी। वह वसुदेव को देखकर क्षणभर में ही कामपीड़ित हो गयी। फिर द्वारपाल ने आकर प्रियंगुसुन्दरी की दशा और एणीपुत्र राजा का चरित्र हाथ जोड़कर वसुदेव को बताया और 'कल प्रातःकाल में आप प्रियंगुसुन्दरी के घर अवश्य पधारना' यूं कहकर द्वारपाल गया।

उस दिन वसुदेव ने एक नाटक देखा। उसमें ऐसी हकीकत आयी कि ''नमि का पुत्र वासव

खेचर हुआ। उसके वंश में दूसरे वासव हुए। उसका पुत्र पुरुहूत हुआ। एक दिन वह हाथी पर बैठकर घूमने गया था। वहां उसने गौतम की स्त्री अहल्या को देखा तो आश्रम में जाकर उसके साथ क्रीडा की। उस समय गौतम ने आकर विद्यारहित बने पुरुहूत का लिंग छेद डाला।'' इस प्रकार की हकीकत देखकर वसुदेव भय खा गये, इसलिए वे राजकुमारी प्रियंगुसुन्दरी के पास न गये। रात्रि में वसुदेव बंधुमती के साथ सो गये। उस रात्रि में निद्रा का भंग होने पर एक देवी उनको दिखाई दी, तो वे 'यह कौन होगी ?' यूं चिंतन करने लगे। ईतने में 'अरे ! वत्स ! क्या सोचता है ?' यूं कहती हुई देवी उनका हाथ पकडकर उन्हें अशोकवन में ले गयीं। वहां जाकर उसने कहा कि - 'सुनो ! इस भरत क्षेत्र में श्रीचंदन नामक नगर में **अमोघरेता** नामक राजा था, उसे **चारुमती** नामक प्रिया थी। उन्हें **चारुचन्द्र** नामक एक पुत्र हुआ था। उस नगर में **अनंतसेना** नाम की एक वेश्या थी। उसे **कामपताका** नाम का एक सुलोचना पुत्री थी। एक बार राजा ने यज्ञ किया। उसमें कई तापस आए। उसमें **कौशिक** और **तृणबिंदु** दो उपाध्याय थे। उन दोनों ने आकर राजा को कईं फल अर्पण किए। राजा ने पूछा - 'ऐसे फल कहां से लाये ?' तो उन्होंने हरिवंश की उत्पत्ति के समय आये हुए कल्पवृक्ष की सब कथा प्रारंभ से कह सुनाई। उस समय राजसभा में कामपताका वेश्या नृत्य कर रही थी, उसने कुमार चारुचन्द्र और कौशिक मुनि का मन हर लिया। यज्ञ पूर्ण होने के बाद कुमार ने कामपताका को अपने स्वाधीन किया। इसके बाद कौशिक तापस ने राजा के पास आकर उस वेश्या की माँग की तो राजा ने कहा कि, 'उस वेश्या को कुमार ने ग्रहण किया है और वह श्राविका है तो एक पति का स्वीकार करने के बाद दूसरे पति को भजती नहीं है।' इस प्रकार राजा ने उसको ना कहा तो कौशिक तापस ने क्रोधित होकर शाप दिया कि - 'कुमार जब उसके साथ क्रीडा करेगा तो अवश्य मृत्यु पायेगा।' महामति राजा अमोघरेता ने इस कारण से वैराग्य पाकर अपने पुत्र चारुचन्द्र को राज्य देकर स्वयं तापस बनकर वन में निवास किया। उस समय अज्ञातगर्भा रानी भी उसके साथ वन में गयीं। कुछ समय बाद गर्भ प्रकट हुआ, तो उसने पति की शंका टालने हेतु प्रथम से गर्भ होने की बात कह सुनायी। इसके बाद उसने **ऋषिदत्ता** नाम की कन्या को जन्म दिया। वह कन्या क्रमानुसार किसी चारण मुनि से श्राविका बनी। वह युवावस्था को प्राप्त हुई, तब उसकी माता और धात्री मृत्यु को पा गये।

एक बार शिलायुध राजा मृगया करने में उस ओर आये। वह ऋषिदत्ता को देखकर कामवश हो गया। फिर उसका आतिथ्य स्वीकार के राजा वहां रहा और उस बाला को एकांत में ले जाकर नाना प्रकार से उसके साथ संभोग क्रीडा की। उस समय ऋषिदत्ता ने शिलायुध को कहा कि 'मैं ऋतुस्नाता हूँ, तो आज शायद मुझे गर्भ ठहर गया तो इस कुलिन कन्या की क्या गति होगी ?' राजा ने कहा, 'मैं इक्ष्वाकु वंश का राजा हूँ। श्रावस्ती नगरी में मेरा राज्य

है और शतायुध राजा के पुत्र शिलायुध के नाम से मैं जाना जाता हूँ। यदि तुझे पुत्र हो तो तू उसे श्रावस्ती नगरी में मेरे पास ले आना, मैं उसे राजा बना दूंगा।' इस प्रकार राजा कह रहा था कि उसका सैन्य वहां आ पहुँचा तो ऋषिदत्ता से अनुमति लेकर राजा अपने स्थान पर चला गया। ऋषिदत्ता ने यह बात अपने पिता को बतायीं। कालानुसार उसे पुत्र हुआ। प्रसव का रोग लगने से ऋषिदत्ता ने मृत्यु पायी, और ज्वलनप्रभ नागेन्द्र की अग्रमहिषी बनी। पुत्री के मृत्यु से उसके पिता अमोघरेता तापस उस पुत्र को हाथ में लेकर सामान्य मनुष्य की तरह बहुत रोने लगे। मैं जो ज्वलनप्रभ नागेन्द्र की स्त्री बनी थी, उसने अवधिज्ञान से वह सर्व हकीकत जानी और हिरनी बनकर वहाँ आयी, एवं स्तनपान कराकर उस पुत्र का पालन किया। इसलिए वह 'एणीपुत्र' ऐसे नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह कौशिक तापस मृत्यु पाकर मेरे पिता के आश्रम में दृष्टिविष सर्प बना, उस क्रूर सर्प ने मेरे पिता को डंक मारा, परंतु मैंने आकर विष उतारा और उस सर्प को बोध दिया, इससे वह सर्प मृत्यु पाकर **बल** नाम का देवता बना।

फिर मैं ऋषिदत्ता का रुप लेकर श्रावस्ती नगरी में गयी और वहां शिलायुध राजा को पुत्र सौंपने लगी, परंतु पूर्व की बात का विस्मरण हो जाने से उसने उस पुत्र को ग्रहण नहीं किया। तब पुत्र को उसके पास छोड़कर आकाश में रहकर मैंने कहा कि 'हे राजन् ! वन में रहती ऋषिदत्ता नाम की कन्या को तू ने भोगा था, उसे तेरे इस संगम से पुत्र हुआ है। ऋषिदत्ता ने प्रसवरोग से मृत्यु पाकर अब देवपना पाया है। देवपने से यहां आकर मैंने हिरनी बनकर उसका पालनपोषण किया है। इस कारण से यह एणिपुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ है।' इस प्रकार कहते ही राजा को याद आया और अपने उस पुत्र को राज्यसिंहासन पर बिठाकर शिलायुध राजा दीक्षा लेकर स्वर्ग को गये। उस एणिपुत्र ने संतति हेतु अट्ठम का तप करके मुझे संतुष्ट किया तो मैंने उसे एक पुत्री दी, जो यह प्रियंगुमंजरी है। इस पुत्री के स्वयंवर के लिए एणीपुत्र राजा ने कईं राजाओं को बुलवाया था, परंतु उसने कोई राजा को चुना नहीं तो सर्व राजाओं ने मिलकर युद्ध का आरंभ किया। मेरी सहाय से अकेले एणीपुत्र ने सब राजाओं को जीत लिया। वह प्रियंगुमंजरी आज आपको देखकर ब्याह की इच्छा करती है। हे अनघ ! आपके लिए उसने अष्टमभक्त (तीन उपवास) करके मेरी आराधना की, जिससे मेरी आज्ञा से उस द्वारपाल ने आकर आपको उसके घर आने को कहा, परंतु अज्ञान के कारण द्वारपाल के कथन की आपने अवज्ञा की, तो अब मेरी आज्ञा से उस द्वारपाल के कहे अनुसार आप वहां जाना और उस एणीपुत्र की कन्या से ब्याह करना। और आपको कोई वरदान चाहिए तो वह माँग लिजिए।' देवी के वचन सुनकर वसुदेव बोले कि 'जब मैं याद करुं तब आप आना।' देवी ने वह बात स्वीकार की। इसके बाद देवी वसुदेव को बंधुमती के घर छोड़कर अंतर्धान हो गयी। प्रातःकाल में वसुदेव उस द्वारपाल के साथ प्रियंगुमंजरी ने बताये हुए स्थल पर गये। वहां वह

पहले से आ गयी थीं। वसुदेव बड़े हर्षपूर्वक गांधर्वविवाह से उसे ब्याहे। इसके बाद अट्ठारहवे दिन द्वारपाल ने प्रियंगुमंजरी को देवी ने दिए हुए वरदान की बात राजा को बतायी। राजा उसे अपने घर ले गये।

उस समय वैताढ्यगिरि पर **गंधसमृद्ध** नाम के नगर में **गंधारपिंगल** नाम का राजा था। उसे **प्रभावती** नाम की कन्या थी। घूमती घूमती वह सुवर्णाभ नगर में आयी। वहां उसने सोमश्री को देखा और वह उसकी सखी बन गयी। सोमश्री को पति वियोग से दुःखी जानकर प्रभावती बोली - 'हे सखी ! तू क्यों चिंता करती है ? मैं तेरे भर्तार (पति) को तुरंत ला देती हूँ।' सोमश्री ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा, 'हे सखी ! ज्यों वेगवती पति को लायी थीं त्यों तू भी रुप से कामदेव जैसे मेरे स्वामी को लायेगी।' प्रभावती बोली - 'मैं वेगवती जैसी नहीं हूँ।' यूं कहकर वह श्रावस्ती नगरी में गयी और वहां से वसुदेव को ले आयी। वहां वसुदेव दूसरा रुप धरकर सोमश्री के साथ रहे। एक बार मानसवेग ने वसुदेव को पहचान लिया और उन्हें बांध दिया। उस समय कोलाहल हुआ तो वृद्ध खेचरों ने आकर उन्हें छुडाया। वसुदेव मानसवेग के साथ सोमश्री संबंधित विवाद करने लगे। इसका निर्णय करने के लिए दोनों वैजयंती नगरी में बलसिंह राजा के पास आये। वहां सूर्पक वगैरह सब एकत्रित हुए। मानसवेग ने कहा कि 'पहले यह सोमश्री मेरी कल्पी हुई थी, उसे यह वसुदेव छल से ब्याहा है और मेरे दिए बिना ही मेरी बहन वेगवती को भी ब्याहा है।' वसुदेव ने कहा - 'उसके पिता ने मेरे लिए सोची हुई सोमश्री को मैं ब्याहा हूँ। वहां से तू सोमश्री का हरण कर गया था, इसके बारे में वेगवती के बताये अनुसार ही यह बात सब लोग जानते हैं।' इस प्रकार वसुदेव ने वाद में मानसवेग को जीत लिया तो वह युद्ध करने के लिए तत्पर बना। उसके साथ नीलकण्ठ, अंगारक और सूर्पक वगैरह खेचर भी तैयार हुए। उस समय वेगवती की माता अंगारवती ने वसुदेव को दिव्य धनुष और दो भाथे दिए और प्रभावती ने प्रज्ञप्ति विद्या दी। विद्या और दिव्य अस्त्रों से पराक्रम में पुष्ट बने वसुदेव ने अकेले ही इन्द्र की भाँति खेचरों को लीलामात्र में जीत लिया। फिर उन्होंने मानसवेग को बाँधकर सोमश्री के सामने ड़ाला, पर अपनी सास अंगारवती के कहने पर उसे छोड दिया। इसके बाद सेवक बनकर रहे मानसवेग वगैरह विद्याधरों से घिरे हुए वसुदेव सोमश्री को साथ लेकर विमान में बैठकर महापुर नगर में आये और वहां रहकर सोमश्री के साथ विलास करने लगे।

एक बार मायावी सूर्पक अश्व का रुप धरकर वसुदेव को हर गया। उसको पहचान कर वसुदेव ने उसके मस्तक पर मुष्टिप्रहार किया, जिससे सूर्पक ने उन्हें आकाश से छोड दिया, तो वसुदेव गंगानदी के जल में गिरे। फिर वे गंगानदी पार करके तापस के आश्रम में गये, वहां कण्ठ में अस्थियों की माला पहनकर खड़ी हुई एक स्त्री उन्हें दिखाई दी। उन्होंने तापसों

को उस स्त्री के बारे में पूछा तो तापसों ने कहा - ''यह जितशत्रु राजा की **'नंदिषेणा'** नाम की स्त्री है, और जरासंध की पुत्री है। इस स्त्री को एक संन्यासी ने वश किया था, उस संन्यासी को राजा ने मार ड़ाला, फिर भी दृढ वशीकरण से यह स्त्री उस संन्यासी के अस्थि कण्ठ में धारण करती है।'' इसके बाद वसुदेव ने मंत्रबल से उसका वशीकरण छुडवा दिया, तो जितशत्रु राजा ने अपनी **केतुमती** नाम की बहन वसुदेव को दी। उस समय जरासंध के **डिंभ** नामक द्वारपाल ने आकर जितशत्रु राजा को कहा कि 'नंदिषेणा के प्राणदाता को भेजिए, वह परम उपकारी है।' राजा ने उस बात को योग्य मानकर आज्ञा दी तो वसुदेव उस द्वारपाल के साथ रथ में बैठकर जरासंध के नगर में आये। वहां नगररक्षकों ने उन्हें तत्काल बांध दिया। वसुदेव ने बांधे जाने का कारण पूछा। किसी ने कहा - 'कोई ज्ञानी ने जरासंध को कहा है कि 'जो तेरी पुत्री नंदिषेणा को ठीक करेगा, उसका पुत्र तुझे अवश्य मारेगा।' वह तू स्वयं है, यह हमें मालूम पड़ा है, इसलिए हम तुझे मार ड़ालने के लिए ले जा रहे है।' इस प्रकार कहकर वे वसुदेव को पशु की भाँति वधस्थल पर ले गये। वहाँ मुष्टिक वगैरह मल्ल वसुदेव को मारने के लिए तत्पर हुए।

उस समय गंधसमृद्ध नगर के राजा गंधारपिंगल ने अपनी पुत्री **प्रभावती** के वर हेतु किसी विद्या को पूछा। उस विद्या ने वसुदेव का नाम दिया, तो उसने वसुदेव को लाने के लिए **भगीरथी** नाम की धात्री को भेजा। वह धात्री विद्याबल से मुष्टिक वगैरह से वसुदेव को जबरन छुडवाकर गंधसमृद्ध नगर में ले गयी। अपने पिता द्वारा दी गयी प्रभावती से वसुदेव ब्याहे और उसके साथ क्रीड़ा करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे। इस प्रकार विद्याधरों की अन्य कन्याओं से भी ब्याह करके आखिर में वसुदेव **सुकोशला** को ब्याहे और उसके महल में रहकर निर्विघ्नता से विषय भोगने लगे।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि सुकोशलांतकन्या श्यामादिक परिणयनो नाम द्वितीयः सर्गः।।२।।

तृतीय सर्ग

वसुदेव चरित्र - कनकवती से विवाह और उसका पूर्वजन्म

इस भरतक्षेत्र में विद्याधरों के नगर जैसा **पेढालपुर** नाम का एक नगर है। जो सर्व अद्‌भुत निधानों का उत्पत्तिस्थान था। उसमें बने प्रफुल्लित गृहोद्यानों का पवन वस्त्रों के साथ मिलकर सुगंधदायी बनकर युवा स्त्री-पुरुषों को सदैव सुख देता था। वहां घरों की रत्नबद्ध भूमि में रात्रि के तारों का प्रतिबिंब पड़ने से मुग्ध बालिकाएं दंतमय कर्णाभूषण की शंका से उन्हें उठाने के लिए अपने हाथ बढ़ाती थीं। और वहां निधानवाले और ऊंची पताकावाले घरों पर उडती हुई पताकाओं की छाया यूं दिखती थी कि मानो वे निधानरक्षक सर्प हो। उस नगर में बसे हुए सर्व लोग वस्त्रों के साथ नील के रंग की भाँति जैनधर्म के साथ दृढ़ता से जुड़े हुए थे।

उस नगर में सद्‌गुणों से चन्द्र जैसा निर्मल और अद्‌भुत समृद्धि से इन्द्र का अनुज (छोटा) बंधु हो ऐसा **हरिश्चन्द्र** नाम का राजा था। इन्द्रियविजय में जाग्रत एवं न्याय तथा पराक्रम से शोभित इस राजा की भ्रूकुटीरुपी लता समक्ष सब संपत्तियाँ दासी बनकर रही हुई थीं। उसका निर्मल यश अपार लक्ष्मी की स्पर्धा हो त्यों अपार बनकर जगत में स्वच्छंदतापूर्वक वृद्धि पा रहा था। निर्मल यश के भण्डार रुपी उस राजा का नाम देव और खेचरों की स्त्रियाँ वैताढ्यगिरि की भूमि पर गाती थी। उस राजा को विष्णु को लक्ष्मी जैसी, **लक्ष्मीवती** नाम की अति रूपवती मुख्य प्राणवल्लभा थी। शील, लज्जा, प्रेम, दक्षता और विनय से वह रमणी पति के मनरुपी कुमुद दोको आनन्द देनेवाली चन्द्रिका समान थी। जब वह अपने प्रिय पति के साथ प्रीतिपूर्वक कोमल वाणी से आलाप करती तब उसके कर्णरंध्र में मानों अमृत की धारा बहाती हो वैसी लगती थी। कलाओं से पल्लवित, लज्जा आदि गुणों से पुष्पित और पतिभक्ति से फलित ऐसी वह रानी चल वेल के समान शोभित थी। कालक्रमानुसार उस लक्ष्मीवती ने एक पुत्री को जन्म दिया, जो अपनी कांति से सूतिकागृह की मांगल्य दीपिका समान दिखने लगी। सर्वलक्षण सम्पन्न उस बाला के जन्म से मानो घर लक्ष्मी आयी हो त्यों उसके माता-पिता हर्षित हुए। धनपति कुबेर उसके पूर्वजन्म का पति था, इसलिए पूर्व स्नेह से मोहित होकर उसके जन्म समय पर वहाँ आकर उसने कनकवृष्टि की। कनकवृष्टि से हर्ष पाये हुए राजा हरिश्चन्द्र ने उस पुत्री का नाम **कनकवती** रखा। स्तनपान करती हुई वह बाला धात्री माताओं की गोद में खेलते हुए कालानुसार हंस समान पाँव से चलने में समर्थ बनी। जब वह बाला पैरों से चलती तब उसकी धात्रियां तालियाँ बजाकर नये नये उल्लापन से गाती थीं। जब वह धीरे धीरे मंद मंद वाणी बोलने लगी तब धात्रियाँ मेना की तरह उसे कौतुक से बार बार आलाप कराती थी। केश गूंफन कराती, कुण्डल हिलाती और नूपुर को बजाती वह बाला मानो मूर्तिधारी दूसरी रमा

हो त्यों रत्नजड़ित कंदुक से क्रीडा करती थी और सदैव कृत्रिम बालकों[1] से खेलती वह राजकुमारी प्रफुल्लित नेत्रवाली अपनी माता को उत्कृष्ट आनन्द देती थी।

क्रमानुसार मुग्धता से मधुर ऐसी बाल्यावस्था छोड़कर वह कनकवती कला-कलाप ग्रहण करने योग्य बनी, तो हरिश्चन्द्र राजा ने उसे कला ग्रहण कराने के लिए शुभ दिन पर किसी योग्य कलाचार्य को सौंपा। कुछ ही समय में मानो लिपि का सर्जन करनेवाली हो त्यों उसने अट्ठारह प्रकार की लिपियाँ जान ली, शब्दशास्त्र अपने नाम की तरह कण्ठस्थ किया, तर्कशास्त्र में अभ्यास से गुरु को भी पत्रदान[2] करने में समर्थ हुई, छंद तथा अलंकार शास्त्र रुप समुद्र की जानकार बनी। छः भाषा का अनुसरण करने वाली वाणी बोलने में और काव्य में कुशल बनी, चित्रकार्य में सबको चकित करने लगी और पुस्तकर्म[3] में प्रगल्भ बनी, गुप्त क्रियापद एवं कारकवाले वाक्यों की जानकार बनी, प्रहेलिका-समस्या में वाद करने लगी, सब प्रकार के द्युत (खेल) में दक्ष बनकर सारथ्य करने में भी कुशल बनी, अंगसंवाहन में भी चतुर बनी, रसवती बनाने की कला में भी प्रवीण बनी, माया और इन्द्रजाल वगैरह प्रकट करने में निपुण बनी और त्रिविध वाद्य-संगीत को दर्शाने में आचार्य जैसी बनी। तात्पर्य यह कि कोई ऐसी कला बाकी न रही कि जो वह राजबाला जानती न हो। लावण्य जल की नदी रुप एवं निर्दोष अंगवाली वह बाला क्रमानुसार पूर्वोक्त सब कलाकलाप को सफल करनेवाली युवावस्था को प्राप्त हुई। उसे देखकर उसके मातापिता वर की खोज हेतु तत्पर बने। जब कोई योग्य वर न मिला तो उन्होंने स्वयंवर का आरंभ किया।

एक बार वह मृगाक्षी बाला अपने महल में सुखपूर्वक बैठी थीं, ईतने में अचानक एक राजहंस को वहाँ आया हुआ देखा। उसकी चोंच, चरण एवं लोचन अशोकवृक्ष के पल्लव समान लाल थे। पांडुवर्ण के कारण नवीन समुद्रझाग के पिंड से बना हुआ हो वैसा वह दिखता था। उसकी ग्रीवा पर सुवर्ण की घंटियोंवाली माला थी। शब्द मधुर था और उसकी रमणीक चाल से मानो नृत्य करता हो वैसा दिख रहा था। उसे देखकर राजबाला सोचने लगी कि - 'जरुर यह राजहंस किसी पुण्यवान पुरुष के विनोद का स्थान है, क्योंकि स्वामी के स्वीकार बिना पक्षी को आभूषण कैसे मिले ? यह हंस चाहे किसीका भी हो पर उसके साथ विनोद करने के लिए मेरा मन उत्कंठित हो रहा है।' फिर हंस उसके आले में लीन हुआ, तो उस हंसगामिनी बाला ने लक्ष्मी के मांगल्य चामर जैसे उस हंस को पकड़ लिया। फिर वह पद्माक्षी सुखस्पर्शवाले अपने करकमलों से क्रीडाकमल की भाँति उस हंस को खिलाने लगी। शिरीष जैसे कोमल हाथ से उसने बालक के केशपाश की तरह उसके निर्मल पंखों के केशों को मार्जित किया। फिर

१. खिलौने। २. विजयपत्र ला देने में। ३. मत्तिका पिष्टादि के पूतले वगैरह बनाने में।

कनकवती ने सखी को कहा कि 'हे सखी ! एक काष्ठ का पिंजरा ले आ, जिसमे मैं इस पक्षी का क्षेपन करुं, क्योंकि उसके बिना पक्षी एक जगह स्थायी नहीं रहते।' कनकवती के कहने से उसकी सखी काष्ठ का पिंजरा लेने गयी, तो राजहंस मानुषी वाणी से इस प्रकार बोला - 'हे राजपुत्री ! तू चतुर है, फिर भी मुझे पिंजरे में क्यो बंद करती है ? मुझे छोड़ दे। मैं तुझे एक प्रिय के समाचार देता हूँ।' राजहंस को इस प्रकार मानुषी वाणी बोलता देखकर राजकुमारी चकित हुई और प्रिय अतिथि की भाँति उसे गौरवपूर्वक इस प्रकार कहा - 'हे हंस ! तू तो उलटे ही प्रसादपात्र बना, इसलिए वह प्रिय कौन है, वह कह।' 'आधी कही हुई बात मिश्री से भी अधिक मधुर लगती है।'

हंस बोला - 'कौशला नगरी में खेचरपति **कोशल** राजा को **सुकोशला** नाम की एक दुहिता (पुत्री) है तो सुकोशला का युवा पति श्रेष्ठ सौन्दर्य का स्थान है और उसे देखकर सब स्वरुपवानों की रेखा भी भग्न हो जाती है। सुंदरी ! आपको अधिक क्या कहूँ। उस सुकोशला के पति का सौन्दर्य ही ऐसा है कि उसके नमूने का रुप यदि है तो सिर्फ दर्पण में ही, अन्य कहीं नहीं। हे मनस्विनी ! जैसे वह युवक रुपसंपति में नरशिरोमणि है, वैसे तू भी रुपसंपत्ति से सर्व नारियों में शिरोमणि है। मैं आप दोनों के रुप का द्रष्टा हूँ, इसलिए आप दोनों का समागम हो ऐसी आकांक्षा से उसका वृत्तांत मैंने तुम्हें बताया है, और हे भद्रे ! तेरा स्वयंवर सुनकर मैंने उसके समक्ष भी तेरा ऐसा वर्णन किया है, जिससे वह स्वेच्छा से तेरे स्वयंवर में आयेगा। नक्षत्रों में चन्द्र की भाँति स्वयंवर मण्डप में आये कई राजाओं के बीच में से अनल्प तेज द्वारा तू उस नररत्न को पहचान लेना। अब तू मुझे छोड़ दे। तेरा कल्याण हो। मुझे पकडने से तेरा अपवाद होगा, और मुक्त रहने से विधाता की तरह तेरे पति के लिए प्रयत्न करुंगा।'

हंस की ऐसी वाणी सुनकर कनकवती सोचने लगी कि 'क्रीड़ा मात्र से हंस के रुप को धारण करनेवाला यह कोई सामान्य पुरुष नहीं है, इसलिए उसके द्वारा मुझे अवश्य पति प्राप्त होगा।' इस प्रकार सोचकर उसने हंस को छोड़ दिया, तो उसके हाथ से वह आकाश में उडा, और वहाँ रहकर कनकवती के उत्संग में उसने एक चित्रपट डालकर कहा कि, हे भद्रे ! उस युवक को मैंने जैसा देखा है, वैसा ही इस चित्रपट में अंकित हुआ है। वह पुरुष जब यहां आये तब इसे देखकर पहचान लेना।' कनकवती प्रसन्न होकर हाथ जोड़कर बोली - 'हे हंस ! आप कौन हो ? यह बताने का अनुग्रह कीजिए।' इसके बाद हंस के वाहन पर घूमनेवाला एक खेचर प्रकट हुआ और कान के कुंडलों को चलित करते हुए एवं दिव्य अंगराग तथा नैपथ्य को धारण करते हुए वह इस प्रकार सत्य वचन बोला - 'हे वरानने[1] ! मैं **चन्द्रातप** नामका खेचर हूँ, और

१. श्रेष्ठ मुखवाली।

तुम्हारे भावि पति के चरणों की सेवा में तत्पर हूँ। हे निरघे[1] ! विद्या के प्रभाव से मैं अन्य एक बात भी बताता हूँ कि वह युवक दूसरे का दूत बनकर तुम्हारे स्वयंवर के दिन तुम्हारे पास आयेगा।' इस प्रकार कहनेवाले उस खेचर को कनकवती ने आशिष देकर बिदा किया, और सोचा कि 'बड़े भाग्य से देव संबंधित ऐसे वचन मुझे श्रवणगत हुए हैं।' फिर कनकवती चित्रस्थ पति के दर्शन से अतृप्त होकर बार बार नेत्रों की भाँति उस चित्रपट को मीलनोन्मीलन[2] करने लगी। कदली की भांति विरह ताप से पीडित बनी वह राजबाला चित्रपट को क्षण में मस्तक पर, क्षण में कण्ठ और क्षण में हृदय पर धरने लगीं।

चन्द्रातप खेचर, जो कनकवती और वसुदेव का संगम कराने के लिए कौतुकी था, वह विद्याधरों से सुशोभित ऐसे विद्याधर नगर में गया। वहां महान विद्याशक्ति से पवन की भाँति अस्खलितपूर्वक वह उसी रात्रि में वसुदेव के निवासस्थान में घुसा। वहां हंस के रोम की तलाईवाली व धुली हुई शुद्ध चद्दरवाली शय्या में स्त्री के साथ सोये हुए वसुदेवकुमार उसको दिखाई दिये। विद्याधरी की भुजलता का तकिया करके सोये हुए वसुदेवकुमार की वह चरणचंपी की सेवा करने लगा। वसुदेव रतिक्रीड़ा के श्रम से उत्पन्न हुए निंद्रासुख में व्याप्त थे फिर भी पलभर में जग गये, क्योंकि "उत्तम पुरुष सरलता से जगनेवाले होते हैं।" आधी रात्रि को अचानक आये हुए उस खेचर को देखकर वसुदेव भय या क्रोध न पाते हुए उलटा सोचने लगे कि 'यह कोई पुरुष मेरी सेवा कर रहा है, इसलिए वह मेरा विरोधी लगता नहीं है, परंतु वह मेरा भला चाहनेवाला या मेरे कार्य का चिंतक होगा। यह चरणचंपी करनेवालें पुरुष को मैं कोमलवाणी से बुलाऊंगा तो भी रतिक्रीडा से श्रांत बनकर सोयी हुई यह प्रिया जाग उठेगी, परंतु इस सेवापरायण मनुष्य की उपेक्षा करने के लिए मैं योग्य नहीं हूँ, कदापि उपेक्षा करूंगा तो भी वह यहां रहेगा तब तक मुझे निद्रा नहीं आने देगा, इसलिए यत्न से प्रिया को जगाये बिना उठकर, शय्या छोड़कर जरा दूर जाकर इस मनुष्य के साथ वार्तालाप करुं।' ऐसा सोचकर पलंग को हिलाए बिना शरीर की लघुता दर्शाकर वसुदेव ने शैया छोडी और वहां से दूसरी ओर जा बैठे। फिर चन्द्रातप विद्याधर, जिसके सर्वांग रत्नमय आभूषणों से भूषित थे, वह इस दसवें दशार्ह वसुदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके एक साधारण सेवक की भाँति खड़ा रहा। उसे देखकर वसुदेव ने पहचाना कि जिसने कनकवती के समाचार दिए थे वह यह चन्द्रातप नाम का विद्याधर है। फिर वसुदेव सत्कार के लायक ऐसे ईस खेचर को आलिंगन देकर स्वागत पृच्छा करके आने का कारण पूछा, तो प्रौढ़ता से बुद्धिमान में शिरोमणि चन्द्रातप ने चन्द्र समान शीतल वाणी से इस प्रकार कहना शुरु किया - "हे यदूत्तम ! आपको कनकावती का स्वरुप बताने के बाद मैंने वहां जाकर उसे आपका स्वरुप भी कहा है। हे नाथ ! विद्या के बल से मैंने आपको

१. पापरहित। २. संकेलना व उखाड़ना।

एक चित्रपट में अंकित कर लिया, उसके मुखकमल में सूर्य समान वह चित्रपट मैंने उसे अर्पण किया। पूर्णिमा के चन्द्र जैसे आपको चित्रपट में देखकर उसके लोचनों ने हर्षपूर्वक चन्द्रकांत मणि के समान अश्रुवारि छोड़े। फिर मानो अपने विरह के दुःख का हिस्सा आपको देना चाहती हो वैसे उसने आपकी मूर्तिवाला पट हृदय पर धारण किया। यंत्र की पूतली समान नेत्रों से आंसु बरसाती हुई वह हाथ जोड़कर प्रार्थनापूर्वक कहने लगी - 'अरे भद्र ! मेरे जैसी दीन बाला की उपेक्षा मत करना, क्योंकि तेरे जैसा दूसरा कोई मेरा हितकारी नहीं है। मेरे स्वयंवर में उस पुरुष को तू अवश्य ले आना।' हे नाथ ! आज कृष्ण दसवीं है, और आनेवाली शुक्ल पंचमी के दिन प्रथम प्रहर में उसका स्वयंवर होनेवाला है, तो हे स्वामिन् ! उसके स्वयंवर उत्सव में आपका जाना ठीक रहेगा। आपके संगम की आकांक्षारुपी जीवन्औषधि पर जी रही वह बाला आपके अनुग्रहयोग्य है।''

वसुदेव बोले - 'हे चन्द्रातप ! सायंकाल में स्वजनों की अनुमति लेकर मैं उस अनुसार करूंगा। तू प्रसन्न बन और मेरे साथ चलने के लिए तू प्रमदवन में तैयार रहना कि जिससे उसके स्वयंवर में तू तेरे प्रयत्न का फल देख सकेगा।' वसुदेव ने इस प्रकार कहा तो युवा विद्याधर तत्काल अंतर्धान हो गया। वसुदेव हर्षविभोर होकर शय्या में सो गये। प्रातःकाल में स्वजनों से अनुमति लेकर व प्रिया को बताकर वसुदेव **पेढालपुर** नगर में आये। राजा हरिश्चन्द्र ने स्वागत करके वसुदेव को लक्ष्मीरमण नाम के उद्यान में ठहराया। अशोकपल्लव से लाल, गुलाब की सुगंध से शोभित, केतकी के कुसुम से विकसित, सप्तच्छद की खुशबू से सुगंधित, कृष्ण इक्षु के समूह से व्याप्त व मोगरे की कलियों से दंतुर ऐसे इस उद्यान में दृष्टि को विनोद देते हुए वसुदेव विश्रांति लेकर रहे। फिर कनकवती के पिता ने अपने वैभव अनुसार वसुदेव की पूजा की। पूर्व निष्पादित उस उद्यान के प्रासादों में और घरों में जाते-आते उद्यान स्थित वसुदेव ने इस प्रकार की लोग बोली सुनी कि - 'पूर्व में इस उद्यान में सुर, असुर और नरेश्वरों से सेवित श्रीनमिनाथ प्रभु का समवसरण हुआ था, उस समय इस उद्यान में देवांगनाओं के साथ लक्ष्मीदेवी ने अर्हंत प्रभु के समक्ष रास किया था, इसलिए इस उद्यान का नाम लक्ष्मीरमण पड़ा है।' फिर वसुदेव ने ऊँचे प्रासादों में जाकर श्री अर्हंत प्रभु की प्रतिमा को दिव्य उपहार से पूजकर भावपूर्वक वंदना की। इतने में वसुदेव ने वहां एक विमान उतरते हुए देखा। उस विमान में चारोंओर रत्न जड़े हुए थे और मानो चल मेरुगिरि हो ऐसा दिखता था। लाखों पताकाओं से लक्षित वह विमान पल्लवित वृक्ष समान लगता था, समुद्र जैसे अनेक हाथी, मगर व अश्वों के चित्रों से वह भरपूर था, कांति से सूर्यमण्डल के तेज का पान करता था, मेघनाद सहित आकाश की तरह बंदीजन के कोलाहल से आकुल था, मांगलिक वाजिंत्रों के घोष से मेघगर्जना का भी तिरस्कार करता था, और उसने वहां रहे हुए सभी विद्याधरों की ग्रीवा ऊँची करवा दी

थी। इस विमान को देखकर वसुदेव ने अपने पास रहे हुए किसी देव को पूछा कि - 'इन्द्र जैसे किस देव का यह विमान आ रहा है यह कहिए।' देव ने कहा, 'यह विमान धनदकुबेर का है और उसमें बैठकर कुबेर स्वयं किसी बडे कारण से इस भूलोक पर आ रहे हैं। वे इस चैत्य में अर्हंतप्रतिमा की पूजा करके फिर तुरंत ही कनकवती का स्वयंवर देखने की इच्छा से वहाँ जायेंगे।' यह सुनकर वसुदेव ने सोचा कि 'अहा ! इस कनकवती को भी धन्य है कि जिसके स्वयंवर में देवता भी आते है।' फिर कुबेर ने विमान पर से उतरकर श्री अर्हंत की प्रतिमा को पूजकर वंदना की और प्रभु के पास संगीत भी किया। ये सब देखकर वसुदेव ने चिरकाल निवृत्तिपूर्वक चिंतन किया कि 'अहो ! महात्मा और परम आर्हत् ऐसे इस पुण्यवान देव को धन्य है, और अहो ! ऐसे महा प्रभाववाले श्रीमत् अर्हंत के शासन को भी धंन्य है और ऐसा अद्‌भुत वृत्तांत जिसको दृष्टिगोचर हुआ है ऐसे मुझे भी धन्य है।'

फिर कुबेर अर्हंत की पूजा समाप्त करके, चैत्य के बाहर निकलकर यथारुचि चले, ईतने में उसने वसुदेव को देखा, तो वह विचार में पड़े कि 'यह पुरुष कोई लोकोत्तर आकृति है कि ऐसी आकृति देवों में, असुरों में और खेचरों में भी दिखने नहीं मिलती।' फिर ऐसी अनुपम सुन्दर आकृतिवाले वसुदेव को कुबेर ने संभ्रम सहित विमान में बैठे बैठे ऊँगली की संज्ञा से बुलाया। 'मैं मनुष्य हूँ और ये परम आर्हत और महर्द्धिक देव हैं' ऐसा सोचते सोचते अभीरु और कौतुकी वसुदेव उसके समीप गये। स्वार्थ में तृष्णावाले धनद ने वसुदेव का मित्र की भाँति आलाप वगैरह से सत्कार किया, तो प्रकृति से ही विनीत व सत्कारित वसुदेव ने अंजलि जोड़कर उसको कहा कि 'आज्ञा दीजिए, क्या काम करुं ?' श्रवण को सुख पहुँचाए ऐसी मधुर वाणी में कुबेर ने कहा, ''महाशय ! दूसरे से न हो सके ऐसा मेरा दूतपनें का कार्य तुम साध्य करो। इस नगर में हरिश्चन्द्र राजा को कनकवती नाम की एक पुत्री है, उसके पास जाकर मेरी ओर से कहो कि 'देवराज इन्द्र के उत्तर दिशा के पति (लोकपाल) कुबेर तुम से शादी करना चाहते हैं, इसलिए तू मानुषी है, फिर भी देवी बन।' मेरे अमोघ वचन से तू पवन की भाँति अस्खलितपन से वह कनकवती से विभूषित ऐसे प्रदेश में जा सकेगा।''

इसके बाद वसुदेव ने अपने आवास में जाकर दिव्य अलंकार वगैरह त्याग कर एक दूत के योग्य मलिन वेष धारण किया। ऐसे वेष को धारण करके जाते हुए वसुदेव को देखकर कुबेर ने कहा, 'हे भद्र ! तुमने सुन्दर वेष क्यों छोड़ दिया ? सर्वत्र आडंबर ही पूजा जाता है।' वसुदेव ने कहा, 'मलिन या उज्जवल वेष का क्या काम है ? दूतपने का आधार तो वाणी है और वह मुझमें है।' यह सुनकर कुबेर बोला, 'जा तेरा कल्याण हो।' फिर वसुदेव निःशंकतापूर्वक हरिश्चन्द्र राजा के गृहांगन में आये और हाथी, घोड़े, रथ व योद्धाओं ने जिसका द्वार रोका हुआ

है ऐसे राजद्वार में प्रवेश किया। फिर किसी को भी नहीं दिखते और अस्खलित गतिवाले वसुदेव अंजनसिद्ध योगी की भाँति आगे चले। क्रमानुसार परिकर बांधकर, हाथ में छड़ी लेकर खड़े हुए नाजरों[1] से घिरी हुई राजगृह की प्रथम कक्षा[2] में वसुदेव ने प्रवेश किया। वहां इन्द्रनील मणिमय पृथ्वीतलवाला व चलित कांति से तरंगित, जल सहित वापी के भ्रम को उत्पन्न करता हुआ राजगृह उसने देखा। उसमें दिव्य आभूषण धरनेवाली व अप्सरा जैसी स्वरुपवान समान उम्र की स्त्रियों का बड़ा वृंद उनके देखने में आया। फिर वसुदेव ने सुवर्णमय स्तंभवाली, मणिमय पूतलियोंवाली और चलित ध्वजाओंवाली दूसरी कक्षा में प्रवेश किया। ज्यों ऐरावत हाथी क्षीरसागर में घुसता है त्यों आगे चलते हुए क्षीर तरंग जैसी उज्जवल तीसरी कक्षा में प्रवेश किया। स्वर्ग में न समा सकने के कारण अप्सराएं ही मानो यहां आयी न हो ऐसी दिव्य आभूषणों से भूषित कईं स्त्रियां यहां थी। फिर उन्होंने चौथी कक्षा में प्रवेश किया। वहां तरंगों से तरल व हंसप्रमुख पक्षियों से व्याप्त जलकांत मणिमय जमीन देखनें में आयी। ऐसी जमीन में व दीवारों में दर्पण के बिना भी अपनी आत्मा का निरीक्षण करती और उत्तम शृंगार धारण करती हुई कुछ अंगनाएं उनके देखने में आयी। और वहां तोते-मैना के मांगलिक उच्चार उनके सुनने में आये और गीत नृत्य में आकुल दासीवर्ग भी नजरों में पड़ा। वहाँ से वसुदेव ने पाँचवीं कक्षा में प्रवेश किया। वहां स्वर्गगृह जैसी मनोहर मरकत मणि की भूमि उनके देखने में आयी। उनमें मोती व मूंगे की मालाएं तथा लटकते चँवर मायाकृति ने रचे हो ऐसे दिखाई दिए। सुन्दर रुप तथा वेषवाली और रत्नालंकारों से भरपूर ऐसी कुछ दासियाँ भी मानो स्तंभ पर ब्याही हुई पुतलियाँ हो ऐसी दिखाई दी। वहां से छट्ठी कक्षा में प्रवेश किया। वहां दिव्य सरोवर जैसी सर्वत्र पद्मराग मणि की भूमि देखने मिली, वहां दिव्य अंगराग से पूर्ण मणि के पात्र व देवताई वस्त्र उनके देखने में आये और कीरमज के रंगवाले रेशमी वस्त्र धारण किए होने से मूर्तिमंत संध्या जैसी अनेक मृगाक्षियाँ उनकी दृष्टि में आयीं। वहाँ से वे सातवीं कक्षा में गये। वहां लोहिताक्ष मणि के स्तंभवाली करकेतन मणि की भूमि दिखाई दी। उसमें कल्पवृक्ष, पुष्पों के आभूषण और जलपूर्ण कलश तथा कमंडलों की श्रेणियां उन्होंने देखी। और अनेक कलाओं को जाननेवाली सर्व देशों की भाषा मे प्रवीण और गंडस्थल पर लटकते कुण्डलोंवाली कुछ छडी धारक सुलोचनाएं भी उनकी नजरों में आयी।

उन्हें देखकर वसुदेव सोचने लगे कि 'इतनी छडीवाली स्त्रियों से नीरंध्र परिवृत्त[3] ऐसे इस गृह में किसिको प्रवेश का अवकाश नहीं है।' इस प्रकार वसुदेव सोच रहे थे की लीलामात्र से कनककमल को धारण करती हुई दिव्य वेषवाली एक दासी पक्षद्वार[4] के मार्ग से बाहर आयी। उसे देखकर सब छड़ी धारक वामाएं संसभ्रम से पूछने लगी कि 'राजकुमारी कनकवती कहाँ

१. अंतःपुर का नौकर, हीजडा। २. कक्षा-गढ, देहलीज। ३. मार्गविहिन। ४. नजदीक का।

है ? और क्या करती है ?' तो दासी ने कहा कि - 'इस समय तो प्रमदवन के प्रासाद में दिव्य वेष धारण करके राजकुमारी कनकवती अकेली कोई देवता के सान्निध्य में बैठी हैं।' यह सुनकर राजकुमारी को वहां बैठी हुई जानकर, दासी आयी थी उसी पक्षद्वार के मार्ग पर ही वसुदेव उस ओर जाने के लिए बाहर निकले और प्रमदवन में आये। वहां सात भूमिकावाला और चारोंओर से ऊँचा किल्लेवाला वह प्रासाद देखा। फिर धीरे धीरे वसुदेव उसके पर चढ़े, तो सातवीं भूमिका पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी कनकवती उन्हें दिखाई दी। उसने कल्पलता की भाँति दिव्य अलंकार और नैपथ्य धारण किए थे, सर्व ऋतुओं के पुष्पों के आभूषणों से वह साक्षात वनलक्ष्मी जैसी दिखती थी, जन्म से विधाता की सृष्टि में वह रुपलक्ष्मी की सर्वस्व थी। अकेली, फिर भी परिवारवाली लगती थीं और चित्रपट में अंकित पुरुष के रुप को तन्मय होकर देख रही थी।

वसुदेव जब उसके समक्ष जाकर खडे रहे तब मानो चित्रपट का दूसरा रुप हो वैसे दशार्ह को देखकर इष्टागमन के ज्ञान से वह प्रातःकाल के कमल की भांति विकास पा गयी। वसुदेव को देखकर हर्ष से उच्छ्वास पाकर कनकवती क्षण में वसुदेव को और क्षण में चित्र को बार बार अश्रांत नेत्र से देखने लगी। फिर कमल की भाँति नेत्रों से वसुदेव का अर्चन करती हुई वह राजबाला तत्काल सिंहासन पर से खड़ी हो गयी और हाथ जोड़कर बोली, 'हे सुंदर ! मेरे पुण्य से आप यहां आये हो, मैं आपकी दासी हूँ।' इस प्रकार कहकर वह वसुदेव के चरणों में पडने के लिए तैयार हुई तो उसे अटकाकर वसुदेव ने कहा, 'महाशये ! मैं किसी का भृत्य हूँ और आप स्वामिनी हो, इसलिए मेरे पैर मत पड़ो। जो आपके नमन योग्य हो उसे ही आप प्रणाम करने योग्य आप हो। और जिसका कुल जाना नहीं है ऐसे मुझ जैसे भृत्य के लिए आप ऐसा अनुचित मत करो।' कनकवती बोली, 'आपका कुलादिक सर्व मैंने जान लिया है और आप ही मेरें पति हो, देवों ने कहे हुए और इस चित्रपट में रहे हुए यह आप ही हो।' वसुदेव बोले, 'भद्रे ! मैं आपका पति नहीं हूँ, परंतु देवताओं ने जिसे आपका पति कहा है उस पुरुष का मैं सेवक हूँ। वह पुरुष कौन है यह सुनो। इन्द्र की उत्तर दिशा का स्वामी (लोकपाल) और आपके मुखकमल में भ्रमररुप जगप्रसिद्ध कुबेर आपका स्वामी है, और मैं उसका सेवक व दूत हूँ। उसकी आज्ञा से आपको प्रार्थना करता हूँ कि आप उस महापुरुष की अनेक देवियों से सेवन की जाती पटरानी बनो।' फिर धनद के नामग्रहणपूर्वक उसे नमस्कार करके कनकवती बोली - 'अरे ! वह इन्द्र के समान देव कहां और कीटकप्राय मैं मानुषी कहां ! उसने मेरे पास आपको दूतपना कराया हैं वह अनुचित और क्रीडामात्र है; क्योंकि पूर्वकाल में भी मानुषी स्त्री का देवता के साथ ऐसा संबंध नहीं हुआ है।' वसुदेव बोले, 'हे भद्रे ! यदि आप देवता के आदेश को अन्यथा करोगी तो दवदंती की तरह बड़े अनर्थ को पाओगी।' कनकवती बोली - 'धनद

(कुबेर) इतने अक्षर सुनने से मेरे पूर्वजन्म के संबंध के कारण उस पर मेरा मन उत्कंठित होता है, लेकिन इस दुर्गंधी औदारिक देह की दुर्गंध को अमृतसेवी देवता सहन नहीं कर पाते, ऐसे श्री अर्हंत प्रभु के वचन हैं। इसलिए दूतपने के बहाने गुप्तरुप मे रहे आप ही मेरे पति हैं, इसलिए उस उत्तर दिशा के पति कुबेर के पास जाकर आप मेरे यह वचंन कहना कि - मैं मानुषी हूँ, वह आपके दर्शन योग्य भी नहीं है। मैं सात धातुमय शरीरवाली हूँ, और आप प्रतिमारुप में उसके पूज्य हो।''

कनकवती के ऐसे वचन सुनकर वसुदेव कोई न देखे वैसे अदृश्यरूप से जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग पर कुबेर के पास लौटे। फिर वसुदेव यह वृत्तांत कहने का आरंभ कर रहे थे कि कुबेर ने ही कहा कि 'ये सब वृत्तांत मैं जान चूका हूँ।' कुबेर ने अपने समकक्ष देवों के समक्ष वसुदेव की प्रशंसा करते हुए कहा कि 'इस महापुरुष का कोई निर्विकारी चरित्र है।' इस प्रकार प्रशंसा करके संतुष्ट बने कुबेर ने सुरेन्द्रप्रिय[1] नाम के दिव्य गंध से सुवासित ऐसे दो देवदूष्य वस्त्र, सूरप्रभ नाम के शिरोरत्न (मुगट), जलगर्भ नाम की दो कुण्डल, शशिमयूख नाम के दो केयूर (बाजुबंध), अर्धशारदा नाम की नक्षत्रमाला[2], सुदर्शन नाम के विचित्र मणि से जड़ित दो कडे, स्मरदारुण नाम का विचित्र रत्नमय कटिसूत्र, दिव्य पुष्पमालाओं और दिव्य विलेपन उसी समय वसुदेव को दिये। वे सर्व आभूषण वगैरह अंग पर धरने से वसुदेव कुबेर जैसे दिखने लगे।

इस प्रकार कुबेर द्वारा सत्कारित वसुदेव को देखकर उसके साले वगैरह जो विद्याधर साथ आये थे वे सब अत्यंत खुश हुए। हरिश्चन्द्र राजा भी कौतुक से उसी समय वहां आये और कुबेर को प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले, 'हे देव ! आज आपने इस भारत वर्ष पर बड़ा अनुग्रह किया है कि मनुष्य का स्वयंवर देखने की ईच्छा से आप यहां स्वयंमेव पधारे हो।' इस प्रकार कहकर राजा ने तत्काल स्वयंवर मण्डप तैयार कराया। उसमें विविध आसनों से सज्ज मनोहर मंच तैयार किया। फिर उत्तर दिसा के पति कुबेर स्वयंवर देखने चले। विमान की छाया से पृथ्वी के संताप को हरता था, उद्दंड छत्र की श्रेणी से चन्द्र की परम्परा को दर्शाता था, विद्युत के उद्यत किरण को नचाता हो वैसा व देवांगना के करपल्लवों से ललित बने हुए चँवरों से जुलाया जा रहा था और वालिखिल्ल[3] ज्यों सूर्य की स्तुति करे त्यों बंदीजन उसकी स्तुति कर रहे थे। इस प्रकार आडंबर युक्त कुबेर ने उस स्वयंवरमण्डप में प्रवेश किया। उसमें ज्योत्स्नालिप्त आकाश की भाँति श्वेत व दिव्य वस्त्र के उल्लेच बंधे थे। कामदेव द्वारा सज्ज किए गये धनुष्य जैसे तोरण लटक रहे थे। चारों और रत्नमय दर्पण से अंकित होने के कारण मानो अनेक सूर्य द्वारा आश्रित

१. इसे सर्व नाम गुणनिष्पन जानना। २. सत्ताइस मोती से बना हार।
३. कोई ऋषि अथवा सूर्यसेवक, सूर्य भक्त - विशेष।

हो वैसा वह दिखता था। द्वारभूमि पर रहा रत्नमय अष्टमंगलों से शोभा पा रहा था। आकाश में उडते बगुलों का भ्रम कराती श्वेतध्वजाओं से वह बिराजित था, विविध रत्नमय उसकी पृथ्वी थी। तात्पर्य है कि सुधर्मासभा का अनुज बंधु हो वैसा वह स्वयंवरमंडप दिख रहा था, और उसमें वहां आये हुए राजवीरों के दृष्टिविनोद के लिए नाटकों का आरंभ भी हुआ था।

ऐसे सुशोभित मण्डप में एक उत्तम मंच के उपर आकाश में उपर रहे सिंहासन के उपर कुबेर अपनी देवांगनाओं सहित बैठा। उसके समीप मानो उसके युवराज न हो वैसे वसुदेवकुमार प्रसन्नता से सुन्दर मुखवाले होकर बैठे। उत्कृष्ट ऋद्धिवाले दूसरे राजा भी और विद्याधर लक्ष्मी में एक-दूसरे की स्पर्धा करते हो वैसे क्रमानुसार आकर अन्य मंचों पर बैठे। फिर कुबेर ने अपने नाम से अंकित अर्जुन जाति के सुवर्ण की एक मुद्रिका वसुदेव को दी। उन्होंने उसे कनिष्ठिका[1] उंगली में धारण की। उस मुद्रिका के प्रभाव से वहां रहे सर्वजनों ने वसुदेव कुबेर की दूसरी मूर्ति हो ऐसे देखे। उस समय स्वयंवरमण्डप में अद्वैत अघोषणा प्रकट हुई कि 'अहो ! भगवान कुबेर देव दो मूर्ति करके आये हो ऐसा लगता है।'

उस समय राजपुत्री कनकवती राजहंस समान मंद गति से चलती चलती स्वयंवरमण्डप में आयी। उसने श्वेत वस्त्र धारण किये होने के कारण वह चन्द्रज्योत्स्ना सहित रात्रि के समान दिखती थी। कान में रहे मोती के दो कुण्डलों से दो चन्द्रवाले मेरुगिरि की भूमि हो वैसी दिखती थी। अलता से रक्त बने हो ऐसे होठों से पके हुए बिम्ब फलवाली बिंबिका जैसी लगती थी। हार से सुशोभित स्तन के कारण झरनोंवाली पर्वतभूमि जैसे फलवाली दिखती थी और उसके हाथ में कामदेव के झूले जैसी पुष्पमालाएं थीं। उसके आने से मांगल्यदीपिका से गर्भगृह की तरह स्वयंवरमंडप सुशोभित हुआ। फिर चन्द्र की लेखा शिशिरप्रभा से ज्यों कुमुदजाति के कमलों को देखे त्यों उसने उसको ब्याहना चाहते सर्व युवकों का मिष्टदृष्टि से निरीक्षण किया, परंतु पहले चित्रपट में और फिर दूतपने में जिस वसुदेव को देखा था उसे इस समूह में न देखा तो ज्यों सायंकाल में कमलिनी म्लान हो जाय त्यों वह खेद से ग्लानि पा गयी इससे सखियों के साथ रही हुई और हाथ में स्वयंवरमाला के बोझ धरनेवाली वह बाला पूतली की तरह अस्वस्थ और कुछ भी चेष्टा किये बिना लम्बे समय तक खड़ी रही। जब उसने किसी को भी नहीं चुना, तो सब राज 'हममें रुप, वेष या चेष्टा वगैरह में कुछ दोष होगा ?' ऐसी शंका से अपने आपको देखने लगे। ईतने में एक सखी ने कनकवती को कहा, 'हे भद्रे ! क्यों ईतना विलम्ब करती हो ? किसी भी पुरुष के कण्ठ में स्वयंवर की माला पहना दीजिए।' कनकवती बोली - 'जिस पर रुचि आए वैसा वर चुना जाता हैं, परंतु मेरे मंदभाग्य से जो मुझे पसन्द था उस पुरुष को मैं इस मण्डप में नहीं देख रही हूँ।'

१. सबसे छोटी।

फिर वह चिंता करने लगी कि 'मुझे अब क्या उपाय करना चाहिए ? मेरी क्या गति होगी ? मैं इष्ट वर को इसमें देखती नहीं हूं। इसलिए हे हृदय ! तू दो टुकडे हो जा।' इस प्रकार चिंता करती हुई उस रमणी ने वहां कुबेर को देखा, तो उसे प्रणाम करके दीनभाव से रुदन करती हुई हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी - 'हे देव ! मैं आपकी पूर्वजन्म की पत्नी हूँ, इसलिए आप ऐसा मजाक मत करिए, क्योंकि जिसे मैं चुनना चाहती हूँ उस भर्त्तार को आपने गायब कर दिया है ऐसा मुझे लगता है।' कुबेर ने हास्य करके वसुदेव को कहा - 'हे महाभाग ! मैंने आपको कुबेरकांता नाम की जो मुद्रिका दी है वह हाथ में से निकाल डालो।' कुबेर की आज्ञा से वसुदेव ने वह मुद्रिका निकाल डाली तो नाटक के पात्र की भाँति उन्हें अपना स्वरूप प्राप्त हुआ। फिर वसुदेव के स्वरूप को पहचानकर उज्जवल दृष्टिवाली वह रमणी मानो उसका हर्ष बाहर आया हो त्यों पुलकांकित हो गयी। तत्काल नुपूर की झनकार करती हुई कनकवती ने वसुदेव के पास जाकर अपनी भुजलता की तरह स्वयंवर की माला उसके कंठ में आरोपित की। उस समय कुबेर की आज्ञा से आकाश में दुंदुभि नाद हुआ। अप्सराएं उत्सुक व मांगल्य के सुन्दर गीत गाने लगी - 'अहो ! इस हरिश्चन्द्र राजा को धन्य है कि जिसकी पुत्री जगत प्रधान पुरुष को ब्याही।' ऐसी आकाशवाणी उत्पन्न हुई, और कुलांगना जैसे लाजा (धानी) की वृष्टि करे त्यों कुबेर की आज्ञा से देवों ने सद्य वसुधारा की वृष्टि की। फिर हर्ष का एकछत्र राज्य बढ़ाते वसुदेव और कनकवती का विवाहोत्सव हुआ।

फिर वसुदेव ने कुबेर को पूछा कि 'आप यहां क्यों आये इसका कारण जानने की मुझे उत्सुकता है।' इस प्रश्न के उत्तर में जिसका विवाहकंकण बंधा हुआ है वैसे वसुदेव को कुबेर ने कहा "हे कुमार ! मेरा यहां आने का कारण सुनो। इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में अष्टापद गिरि के समीप **संगर** नाम का नगर है। उस नगर में **मम्मण** नाम का राजा था, और उसे **वीरमती** नाम की रानी थी। एक बार राजा रानी सहित शिकार करने के लिए नगर के बाहर गया। राक्षस समान क्षुद्र आशयवाले उस राजा ने अपने साथ किसी संघ में चले आ रहे मल से मलिन साधू को देखा। 'यह मुझे असगुन हुआ कि जो मुझे मृगया के उत्सव में विघ्नकारी होगा।' इस प्रकार सोचकर उसने ज्यों यूथ में से हाथी को रोके त्यों संघ के साथ आते उस मुनि को रोका। फिर शिकार करके लौटकर राजा रानी के साथ राजद्वार मे गया, और मुनि को बारह घड़ी तक दुःखमय स्थिति में रखा। इसके बाद उस राजदम्पती को दया आने से उस मुनि को पूछा कि 'आप कहां से आये हो और कहाँ जा रहे हो यह कहिए।' मुनि बोले, 'मैं रोहितक नगर से अष्टापद गिरि पर रहे अर्हंत् बिंब को वंदन करने हेतु संघ के साथ जा रहा था, परंतु आपने मुझे संघ से वियोजित किया, इसलिए मैं अष्टापद तीर्थ नहीं जा सका, परंतु इस धर्मकार्य करते हुए मुझे अटकाने से आपने महाभारी अंतराय कर्म बांधा है।' इस प्रकार

के मुनि के वचन सुनकर वह दम्पती लघुकर्मी होने से मुनि के साथ बात करते हुए दुःस्वप्न की भाँति तत्काल कोप को भूल गये। फिर परोपकारी बुद्धिवाले मुनि ने उनको आर्द्रहृदयवाले जानकर जीवदयाप्रधान श्री आर्हत धर्म का उपदेश दिया, तो जन्म से लेकर धर्म के अक्षरों से जिनके कान थोडे भी नहीं छेदे गए हैं, वैसा वह दम्पती तब से कुछ धर्माभिमुख हुआ। फिर उन्होंने भक्तपने से भक्ति द्वारा उन मुनि को प्रतिलाभित किया। प्रिय अतिथि की तरह उनको योग्य सम्मानपूर्वक अच्छे स्थान पर निवास कराया और राजस भाव[1] से दूसरे लोगों का निवारण करके वह दम्पती स्वयं ही निरंतर उन मुनि को प्रतिलाभित करने लगे। कर्म रोग से पीडित ऐसे दम्पती को धर्मज्ञानरुपी औषध देकर उनकी अनुमति लेकर कुछ काल पश्चात् वे मुनि अष्टापद गिरि गये। उस दम्पती ने अधिक समय तक के मुनि के संसर्ग से श्रावक के व्रत ग्रहण किए और कृपण पुरुष ज्यों धन का जतन करे त्यों यत्न से वे व्रत का पालन करने लगे।

एक बार शासनदेवी वीरमती को धर्म में स्थिर करवाने के लिए अष्टापद गिरि पर ले गई। 'धर्मिष्ट जनों को क्या क्या लाभ न हो ? अर्थात् सर्व लाभ होते हैं।' वहां सुरासुर की पूजी हुई अर्हंत की प्रतिमा को देखकर वीरमती इस जन्म में ही मुक्त हो गयी हो वैसे आनन्द को प्राप्त हुई, और उस अष्टापद पर चोबीस अरिहंत के बिंब की वंदना करके विद्याधरी की भाँति अपने नगर लौटी। फिर उस महान तीर्थ के निरीक्षण से धर्म में स्थिर बुद्धि धारण करके उसने प्रत्येक तीर्थंकर को उद्देश कर बीस बीस आचाम्ब (आयंबील) किए और भक्तिवाली उस रमणी ने चोबीस प्रभु के रत्नजडित सुवर्णमय तिलक कराये। एक बार वह वीरमती परिवार सहित अष्टापद पर आयी। वहाँ उसने चोबीस तीर्थंकरों का स्नात्रपूर्वक अर्चन किया, और फिर उस अर्हंत की प्रतिमाओं के ललाट पर लक्ष्मीरुप लता के पुष्प हो त्यों प्रथम कराये हुए सुवर्ण के तिलक स्थापित किए एवं उस तीर्थ में पधारे हुए चारणश्रमण वगैरह को यथायोग्य दान देकर उसने पूर्व की हुई तपस्या का उत्सव किया। फिर मानो कृतार्थ हुई हो त्यों चित्त में नृत्य करती बुद्धिमती वीरमती वहाँ से अपने नगर में आयी। वह दम्पती, यद्यपि शरीर अलग थे फिर भी, एक मन से धर्म-कर्म में उद्यत होकर उन्होंने कुछ काल व्यतीत किया। कालक्रमानुसार आयु स्थिति पूर्ण होने पर समाधि द्वारा मृत्यु पाकर वह विवेकी दम्पती देवलोक में देवदम्पती (देव-देवी) रुप में उत्पन्न हुए।

मम्मण राजा का जीव देवलोक से च्युत होकर इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में बहली नामके देश में **पोतनपुर** नगर में **धम्मिल** नाम के आहिर की स्त्री **रेणुका** के उदर से **धन्य** नाम के पुत्र रुप में उत्पन्न हुआ, वह बड़ा पुण्य-पात्र था। इसके बाद वीरमती रानी का जीव देवलोक से च्यूत होकर उस धन्य की **धूसरी** नाम की स्त्री बना। धन्य सदैव अरण्य में जाकर भैंसे चराता,

१. राग भाव

क्योंकि महिषी चराना आहिरों लोगों का प्रथम कुलव्रत है। एक बार प्रवासियों की बेरीरुप वर्षाऋतु आयी। दुःख से देखा जाय वैसे दुर्दिन से दिन में भी वह अमावस्या की रात्रि दिखाती थी। उत्कट वृष्टि से जिसने आकाश को यंत्रधारागृह[1] जैसा बना दिया था, जिसमें उद्यत बने मेंढकों के शब्दों से दर्दुर जाति के वाद्य का आभास होता था, जो हरे घास से पृथ्वी को केशपाशवाली हो वैसी बनाती थी। वृष्टि से जमी शेवाल से पूरी पृथ्वी चिकनी बन गयी थी, जिस पर संचार करते हुए पांथजन के चरण जानु तक कीचड़ से भर जाते थे, और बीजली के बार बार के आवर्तन से अंतरीक्ष में उल्कापात का दृश्य खड़ा होता था। इस प्रकार की वर्षाऋतु में मेघ बरसता था उस समय कीचड़ के सम्पर्क से हर्षनाद करती भैंसों को चराने के लिए धन्य अरण्य में गया। बरसात के जल का निवारण करे ऐसा छत्र सिर पर धरकर भैंसों के यूथ का अनुसरण करते हुए धन्य अटवी में घूमने लगा। इस प्रकार परिभ्रमण करते हुए, एक पाँव पर खड़े रहकर काउस्सग ध्यान में लीन बने एक मुनि धन्य के देखने में आये। वे मुनि उपवास से कृश बन गये थे। वनहस्ती की भाँति वृष्टि को सहन करते थे और पवन द्वारा हिलाए हुए वृक्ष की भाँति उनका सर्व अंग शीत की पीड़ा से कांप रहा था। इस प्रकार परिषह को सहन करते मुनि को देखकर धन्य को अनुकंपा आयी, जिससे तत्काल उसने अपनी छत्री उनके मस्तक पर धर रखी। जब धन्य ने अनन्य भक्ति से उनके पर छत्री धरी तब बस्ती में रहते हो त्यों मुनि का वृष्टिकष्ट दूर हो गया। दुर्मद मनुष्य ज्यों मदिरापान से निवृत्त नहीं होती त्यों मेघ बरसने में थोड़ा सा भी निवृत्त नहीं हुआ, फिर भी वह श्रद्धालु धन्य छाता धर रखने में उकताया नहीं। वे महामुनि वृष्टि में किए ध्यान में से जब निवृत्त हुए तब वह मेघ भी क्रमयोग से वृष्टि में से निवृत्त हुआ।

इसके बाद धन्य ने मुनि को प्रणाम करके चरणसंवाहनापूर्वक अंजलि जोड़कर पूछा - 'हे महर्षि ! इस समय वर्षा का विषम समय चल रहा है और पृथ्वी कीचड़ से पीड़ाकारी बन गई है। ऐसे समय प्रवास से अनजाने के समान आप यहाँ कैसे आ पहुँचे ?' मुनि बोले 'भद्र ! मैं पांडु देश से यहां आया हूँ और गुरु के चरणों से पवित्र ऐसी लंका नगरी को जाना है। मुझे वहां जाते हुए यहां पर रुकावटकारी वर्षाऋतु प्राप्त हो गयी और मूशलधार मेघ अखण्ड धार से बरसना शुरु हुआ। मेघ बरसता हो तब महर्षियों को गमन करना अयुक्त है इसलिए वृष्टि के अंत तक का अभिग्रह लेकर कायोत्सर्ग करके मैं यहां रहा था। हे महात्मन् ! आज सातवें दिन वृष्टि ने विराम पाया, इसलिए मेरा अभिग्रह पूर्ण होते ही अब मैं किसी भी निवास स्थान में जाऊँगा।' धन्य हर्षपूर्वक बोला, 'हे महर्षि ! यह मेरा महिष है, उस पर शिबिका की भाँति चढ़ जाओ, क्योंकि यह भूमि कीचड के कारण चलने में दुःखदायी बन चुकी है।' मुनि बोले,

१. यंत्रधारागृह = यंत्र से जिसमें अविच्छिन्न जलधारा होती रहे ऐसा मकान या स्थान।

'हे भद्र ! महर्षि कोई भी जीव पर आरुढ़ नहीं होते, दूसरों को पीड़ा पहुँचे ऐसा कर्म वे कभी भी करते नहीं हैं। मुनि तो पादचारी ही होते हैं।' ऐसा कहकर वे मुनि धन्य के साथ नगर की ओर चले। नगर में पहुँचने के बाद धन्य ने मुनि को नमन करके हाथ जोड़कर कहा, 'महात्मन ! जब तक मैं सब भैसों को दुह न लूं तब तक आप यहाँ इंतजार कीजिए।' यूं कहकर अपने घर जाकर भैसों को दुह कर एक दूध का घड़ा भर लाया। इसके बाद अपनी आत्मा को अति धन्य मानते हुए धन्य ने उस दूध से बड़े हर्ष के साथ मुनि को पुण्य का कारणभूत पारणा कराया। महर्षि ने नगर में रहकर वर्षाऋतु बितायी। फिर इर्याशुद्धि से उचित ऐसे मार्ग पर चलते वे मुनि अपने योग्य स्थान पर गये।

धन्य पाषाणरेखा जैसा स्थिर समकीत धारण करके अपनी स्त्री धूसरी के साथ चिरकाल श्रावकव्रत पालने लगा। कुछ समय के बाद धन्य ऐसे धूसरी और धन्य ने चारित्र ग्रहण किया और सात वर्ष तक उसका प्रतिपालन करके वे समाधि से मृत्यु को प्राप्त हुए। मुनि को दूध का दान करने से उपार्जित किए पुण्य से वे किसी लेश्याविशेष से हिमवंत क्षेत्र में युग्म रूप में उत्पन्न हुए। वहां से आर्त्त और रौद्र ध्यान बिना मृत्यु पाकर वे **क्षीरडिंडीर** व **क्षीरडिंडीरा** नाम के दाम्पत्यपन से शोभित देवी-देवता बने। वहाँ से च्यूत होकर क्षीरडिंडीर देवता इस भरतक्षेत्र में कौशल नाम के देश में **कौशला** नगरी के इक्ष्वाकु कुल में जन्म पाकर **निषध** राजा की **सुंदरा** रानी की कोख से **नल** नाम का पुत्र हुआ। उस राजा को उससे छोटा **कुबर** नाम का एक अन्य पुत्र भी हुआ।

यहां विदर्भ देश में **कुंडिन** नाम का नगर है। उसमें भयंकर पराक्रमवाला **भीमरथ** नाम का राजा है, उसको अपनी अतिश्रेष्ठ सौन्दर्य संपत्ति से स्वर्ग की स्त्रियों का भी तिरस्कार करनेवाली **पुष्पदंती** नाम की एक निष्कपटी रानी है। धर्म एवं अर्थ के विरोध बिना काम पुरुषार्थ को साधते हुए वह राजा उसके साथ निर्विघ्नता से सुख भोगता था। एक बार शुभ समय पर क्षीरडिंडीरा देवलोक में से च्यूत होकर पुष्पदंती रानी के उदर में पुत्रीरुप में उत्पन्न हुई। उस समय मनोहर शय्या में सोयी हुई रानी को रात्रि के आखरी प्रहर में शुभ स्वप्न देखकर राजा को बताया कि, 'हे स्वामिन् ! आज रात्रि में सुखपूर्वक सोते हुए स्वप्न में वनाग्नि द्वारा प्रेरित एक श्वेत हस्ती आपके यशसमूह जैसे उज्ज्वल आपके घर में आता हुआ मैने देखा है।'

इस प्रकार सुनकर सर्व शास्त्ररुपी सागर के पारगामी ऐसे राजा ने उसको कहा कि, 'हे देवी ! इस स्वप्न से यूं लगता है कि कोई पुण्यात्मा गर्भ आज तुम्हारे उदर में आकर उत्पन्न हुआ है।' इस प्रकार राजा रानी वार्तालाप कर रहे थे, ईतने में मानो देवलोक में से च्युत होकर ऐरावत हस्ती आया हो ऐसा श्वेत हस्ती वहां आया। राजा के पुण्य से प्रेरित हुआ हो वैसे उस

हस्ती ने तत्काल राजा को रानी सहित अपने स्कंध पर चढ़ाया, और नगरजनों द्वारा पुष्पमाला आदि से पूजा हुआ वह हाथी पूरे नगर में घूमकर वापिस महल के समीप आया और वहां उस राजदम्पती को उतारा। इसके बाद वह गजेन्द्र अपने हाथ ही बंधनावस्था में आकर खड़ा रहा। उस समय देवताओं ने रत्न व पुष्पों की वृष्टि की। राजा ने सुगंधित यक्षकर्दम से उस हाथी के पूरे शरीर पर विलेपन करके उत्तम पुष्पों से अर्चन करके उसकी आरती उतारी।

गर्भकाल पूर्ण होते ही व्यतिपात प्रमुख अपयोग से अदूषित ऐसे दिन ज्यों मेघमाला विद्युत को जन्म दे त्यों रानी ने एक कन्यारत्न को जन्म दिया। महापुरुष के वक्षःस्थल में श्रीवत्स के चिह्न की भांति उस कन्या के ललाट में सूर्य जैसा तेजस्वी तिलक जन्म के साथ ही सहज प्रकट हुआ था। वह कन्या अपने स्वभाव से ही तेजस्वी थी, परंतु उस तिलक से सुवर्ण की मुद्रिका समान ऊपर जड़े हुए रत्न से चमके त्यों विशेष चमक रही थी। उस पुत्री के जन्म के प्रभाव से अतुल्य पराक्रमी भीमरथ राजा के उग्र शासन को अनेक राजा शिरोधारण करने लगे। जब वह कन्या उदर में थी तब रानी ने दावानल से भय पाकर आए हुए श्वेतदंती (हस्ती) को देखा था, इसलिए कुंडिनपति ने पूर्ण मास पर उस कन्या का दवदंती[1] नाम रखा, जो सर्वत्र हर्षसंपत्ति का निधानतुल्य बन पड़ा। जिसके मुख से सुगंधी निःश्वास पर भ्रमरों की श्रेणी घूम रही है ऐसी वह बाला दिनोदिन बढ़ती रिंखन गति से चलने लगी। जिसका मुखकमल सुन्दर है ऐसी वह बाला एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर भँवरी जाती है त्यों अपनी अपर माताओं के एक हाथ से दूसरे हाथ पर संचार करने लगी। अंगूठे और मध्य ऊँगली से चुटकी के नाद से ताल देती और मुख से बाजे बजाती धात्रियां भी उसके कदम कदम पर घूमते हुए उसे खिलाती थी। झनकार करते हुए नूपुरों से मंडित वह बाला क्रमानुसार कदम भर भर कर चलती थी और मूर्तिमान लक्ष्मी जैसी वह राजपुत्री गृहांगन को शोभा देती हुई खेलती थी, व अपने प्रभाव से राजा को सर्व निधियाँ प्रत्यक्षरुप में प्राप्त हुई थी।

जब उस कन्या को आठवां वर्ष शुरु हुआ तब राजा ने कला ग्रहण कराने के लिए उसे एक उत्तम कलाचार्य को सौंपा। उस उत्तम बुद्धिमान बाला को उपाध्याय तो साक्षीमात्र ही हुए, बाकी दर्पण में प्रतिबिंब की भाँति उसको सर्व कलाएं स्वतः ही प्राप्त हुई। वह बुद्धिमती राजकन्या कर्मप्रकृति आदिक में ऐसी पंडिता बनी कि उसके आगे कोई स्याद्वाद का आक्षेप करनेवाला न हुआ। फिर सरस्वती समान कलाकलापरुपी सागर का पार पानेवाली उस कन्या को उसके गुरु राजा के पास लेकर आये। गुरु की आज्ञा से सद्गुणरुपी उद्यान में एक नहर जैसी उस कन्या ने अपना सर्व कलाकौशल्य अपने पिता को अच्छी तरह दिखाया। और उसने अपने पिता के समक्ष अपने श्रुतार्थ का प्रावीण्य ऐसा दिखाया कि जिससे वह राजा सम्यक्दर्शन

१. इसका ही दमयंती ऐसा दूसरा नाम था।

का प्रथम उदाहरणरुप बना। राजा ने एक लाख एक हजार सुवर्णमुद्रिकाओं से अपनी पुत्री के कलाचार्य की पूजा करके उनको बिदा किया। दवदंती के पुण्य के अतिशय से निवृत्ति नाम की शासनदेवी ने साक्षात् आकर एक सुवर्ण की अर्हत् प्रतिमा उसको अर्पण की। इसके बाद वे शासनदेवी बोली - 'हे वत्स ! यह भावि तीर्थंकर श्री शांतिनाथ की प्रतिमा है। तू इसकी अहर्निश पूजा करना।' इस प्रकार कहकर देवी अंतर्धान हुई। फिर दवदंती प्रफुल्लित नेत्रों से प्रतिमा को वंदन करके अपने गृह में ले गयी।

अब सुंदर दांतवाली दवदंती समान उम्र की सखियों के साथ क्रीडा करते हुए लावण्यजल की प्याऊ समान युवावस्था को प्राप्त हुई। राजा व रानी दवदंती को पूर्ण युवावस्था में देखकर उसका विवाहोत्सव देखने के लिए उत्सुक बने, परंतु अनेक सद्‌गुणों के से योग्य ऐसे वर की चिंता से हृदय में शल्यातुर होने से वे अति दुखी दिखने लगे। क्रमानुसार दवदंती अट्ठारह वर्ष की हुई, परंतु उसके योग्य कोई श्रेष्ठ वर खोज नहीं सके। फिर उसने सोचा कि अति प्रौढ़ बनी विचक्षण कन्या का स्वयंवर करना ही योग्य है, इसलिए उसने राजाओं को आमंत्रण देने के लिए दूतों को आज्ञा दी। उसके आमंत्रण से अनेक राजा और युवा राजपुत्र बड़ी समृद्धि से परस्पर स्पर्धा करते हुए वहाँ त्वरित आ पहुँचे।

आये हुए राजाओं के एकत्रित हुए गजेन्द्रों से कुंडिनपुर की प्रांतभूमि विंध्याद्रि की तलहटी की भूमि जैसी दिखने लगी। कोशलपति **निषध** राजा भी नल व कुबर नामक दोनों कुमारों को लेकर वहाँ आया। कुंडिनपति महाराज ने सर्व राजाओं का अभिगमनपूर्वक[1] स्वागत किया। ''घर पधारे अतिथियों के लिए ऐसा करना योग्य है।'' फिर समृद्धि से पालक विमान का अनुज हो वैसा स्वयंवरमण्डप भीमरथ राजा ने रचाया। उस मण्डप में विमान जैसे सुन्दर मंच स्थापित किये, और उस प्रत्येक मंच के पर मनोहर सुवर्णमय सिंहासन रखे गये। समृद्धि में स्पर्धा करते हुए राजा स्वयंवर के दिन अलंकार और वस्त्र धारण करके मानो इन्द्र समान देव हो त्यों उस स्वयंवर मण्डप में आया। सब राजा शरीर की शोभा बढ़ाते हुए मंचों पर बैठे और नाना प्रकार की चेष्टाओं से अपना चातुर्य स्पष्ट दिखाने लगे। कोई युवा राजा उत्तरीय वस्त्र का योगपट्ट बनाकर अपने कर द्वारा चलित पत्रों से मनोहर ऐसे हरे कमलों पर फिराने लगे। कोई कामदेव के कीर्तिराशि की निर्मल वर्णिका की तरह भ्रमर की तरह मल्लिका के सुगंधित पुष्पों को सूंघने लगे, कोई युवा राजकुमार मानो आकाश में दूसरा मृगांकमण्डल रचना चाहता हो त्यों अपने कर से पुष्प की गेंद को उछालने लगे। कोई युवा राजा क्षण क्षण में कर की ऊँगली से घनी कस्तूरी से पंकिल ऐसी अपनी दाढ़ी मूँछ को स्पर्श करने लगे, कोई युवा मुद्रिकाओं के मणियों से प्रकाशमान ऐसे दृढ मुष्टिवाले कर से दांत की मूठ मुष्टि में पकड़कर छोटी तलवारों को

१. सामने लेने जाना (स्वागतपूर्वक)।

नचाने लगे, उदार बुद्धिवाले कोई चतुर नृपकुमार केतकी के पत्र को तोड़ तोड़कर कमला के कमल जैसे सुन्दर कमल कों गूंथने लगे, और कोई आँवले जैसे स्थूल मुक्ताफल के कण्ठ में पहने हुए हार को बार बार कर से स्पर्श करने लगे।

फिर देवालय को देवी शोभित करे त्यों उस मण्डप को शोभित करती राजकुमारी दवदंती पिता की आज्ञा से वहां आयी। मुक्तमणि के अलंकारों से उसके सर्व अवयव अलंकृत थे, जिससे वह प्रफुल्लित मल्लिका के समान दिखती थी, बहती नहर के जलतरंग जैसी उसके कुटिल केश की वेणी शोभायमान थी, सूर्य के युवराज जैसा सुन्दर तिलक ललाट पर धारण किया हुआ था, उसके केश काजल के जैसे श्याम थे, स्तन मंडल गाढ थे, कदली की गर्भत्वचा जैसे मृदु वस्त्र उसने धारण किये थे। सर्व अंगों पर स्वच्छ श्रीचन्दन का लेपन किया था और उसके लोचन विशाल थे। ऐसी दवदंती को देखते ही सब राजाओं के नेत्र एकसाथ उस पर पड़े। फिर भीमराजा की आज्ञा से अंतःपुर की चतुर प्रतिहारन प्रत्येक राजा का नाम ले लेकर दवदंती को परिचय देने लगी। 'हे देवी ! यह जितशत्रु राजा का पुत्र ऋतुपर्ण राजा शिशुमार नगर से आया है, इस पर नजर डालिए। यह इक्ष्वाकु वंश में तिलकरुप, गुणरत्न का भण्डार चन्द्रराजा का पुत्र चन्द्रराज है, उसे वरना क्यों नहीं चाहती ? यह चम्पानगरी के राजा धरणेन्द्र का पुत्र भोगवंश में उत्पन्न हुआ सुबाहु है, इसको वरो कि जिससे आप गंगानदी के जलकणवाले पवन द्वारा सेवित हो सकोगी। यह रोहीतक नगर का स्वामी पवित्र चन्द्रशेखर है, वह बत्तीस लाख गाँव का अधिपति है, यह आपको जचता है ? यह जयकेसरी राजा का पुत्र शशिलक्ष्मा है, जो रुप में कामदेव समान है, वह आपके मन को क्या आकर्षित करता नहीं है ? हे महेच्छा ! यह रविकुलमंडन जह्नु का पुत्र यज्ञदेव है, जो भृगुकच्छ नगर का अधिपति है, उसके उपर इच्छा होती है ? हे पतिवरा ! यह भरतकुल में मुगट समान मानवर्धन राजा है, इस विश्वप्रसिद्ध राजा को पति रुप मे चुनिए। यह कुसुमायुध का पुत्र मुकुटेश्वर है, चन्द्र को रोहिणी के समान तू उसकी पत्नी बनने योग्य है। यह ऋषभ स्वामी के कुल मे उत्पन्न, कौशल देश का राजा निषध है, जो शत्रुओं को निषेध करनेवाला व प्रसिद्ध है। यह उसका बलवान कुमार नल है, वह अथवा उसका अनुज बंधु यह कुबर है वह आपका अभिमत बने।'

उस समय कृष्ण को लक्ष्मी की भाँति दवदंती ने तत्काल नल के कण्ठ में स्वयंवर की माला आरोपित की। उस समय 'अहो ! दवदंती योग्य वर को वरी, योग्य वर को वरी' ऐसी खेचरों की वाणी आकाश में प्रकट हुई। इतने में मानो दूसरा धूमकेतु हो ऐसा कृष्णराजकुमार खड़ग खींचकर तत्काल खड़ा हुआ, और उसने नल पर इस प्रकार आक्षेप किया - "अरे मूढ ! इस दवदंती ने तेरे गले में स्वयंवर माला वृथा डाली है, क्योंकि मेरे होते हुए दूसरा कोई भी

उसको ब्याहने में समर्थ नहीं है, इसलिए तू उस भीमराजा की कन्या को छोड़ दे अथवा तो हथियार लेकर सामने आ, इस कृष्णराजा को जीते बिना तू किस प्रकार कृतार्थ होगा ?'' उसके ऐसे वचन सुनकर नल हसते हसते बोला - ''अरे अधम क्षत्रिय ! तुझे दवदंती ने चुना नहीं इसलिए तू बेकार मे क्यों दुखी होता है ? मैं इस दवदंती को वरा हूँ, इसलिए वह तेरे लिए परायी स्त्री है, फिर भी तू उसकी अयोग्य इच्छा करता है तो अब तू जीवित नहीं रह पायेगा।'' इस प्रकार कहकर अग्नि समान असह्य तेजवान व क्रोध से होठो को कंपित करता नल खड्ग उठाकर उसे नचाने लगा। इसके बाद नल व कृष्णराज दोनों का सैन्य मर्मभेदी आयुध ले लेकर तुरंत तैयार हो गया। उस समय दवदंती सोचने लगी, ''अरे ! मुझे धिक्कार है कि मेरे लिये ही यह प्रलयकाल प्राप्त हुआ। अरे ! क्या मैं क्षीण पुण्यवाली हूँ। हे माता शासनदेवी ! यदि मैं सचमुच अरिहंत की भक्त हूँ तो ये दोनों सेनाओं का कुशल हो और नलराजा की विजय हो।'' ऐसा कहकर उसने पानी की झारी ली व उसके जल से तीन अंजलि उस अनर्थ की शांति के लिए दोनों सैन्य पर छिड़की। उसके कुछ छींटे कृष्णराज के सिर पर पडे तो वह तुरंत ही बुझे हुए अंगारे समान निस्तेज हो गया। शासन देवी के प्रभाव से वृक्ष ऊपर से ज्यों पका हुआ पत्ता गिर पड़े त्यों कृष्णराज के हाथ में से खड्ग गिर गया। उस समय निर्विष बने कृष्ण सर्प की भाँति प्रभाहीन बने कृष्णराज ने सोचा कि 'यह नल राजा कोई सामान्य पुरुष नहीं है। इसके साथ मैने जो भाषण किया है वह सोचे-समझे बिना किया है, इसलिए यह नलराजा को प्रणाम करना योग्य है।' इस प्रकार विचार करके कृष्णराज ने आये हुए दूत की भाँति नल के समीप जाकर उसे प्रणाम किए। फिर ललाट पर अंजलि जोड़कर विनित होकर बोला, 'हे स्वामिन् ! मैंने यह अविचारी काम किया है, इसलिए मेरा-मूरख का यह अपराध क्षमा करें।' प्रणत बने कृष्णराज का अच्छी तरह से स्वागत करके नल ने उसे बिदा किया। भीमरथ राजा अपने जमाई के ऐसे गुण देखकर अपनी पुत्री को भाग्यशाली मानने लगा।

फिर आये हुए सब राजाओं को सत्कारपूर्वक बिदा करके उसने नल व दवदंती का विवाहोत्सव किया। नलराजा के विवाहोत्सव में भीमराजा ने हस्तमोचन समय पर अपने वैभव अनुसार हाथी घोड़े वगैरह बहुत सी समृद्धि दी। फिर कंकण बंधे हुए उस नवीन वर-वधू ने गोत्र की वृद्ध स्त्रियों के मंगल गीतों के साथ गृहचैत्य में आकर देववंदन किया व राजा भीमरथ तथा निषध ने बड़े उत्सव से उनका कंकणमोचन कराया। फिर भक्तिवान् भीम ने पुत्रसहित निषध राजा को सत्कार करके बिदा किया और स्वयं दूर तक बिदा करने गया। 'लोगों में ऐसी मर्यादा है।' पति के पीछे जाती हुई दवदंती को माता ने शिख देते हुए कहा, 'हे पुत्री ! आपत्ति आये तो भी देह की छाया की तरह पति का त्याग मत करना।' फिर मातापिता की अनुमति से दवदंती रथ में बैठी तो नल ने उसे अपनी गोद में बैठाया।

फिर कौशल देश के राजा निषध ने कौशलानगरी की ओर प्रयाण किया। उस समय उसके गजेन्द्रों के गाढ़ मद से पूरी पृथ्वी कस्तूरी की तरह सिंचित होने लगी। घोडों के पैरों से छिलती हुई पृथ्वी कांसे के ताल समान शब्द करने लगी, रथों के पहियों की रेखाओं से सब मार्ग अंकित हो गए। परस्पर गाढ़ पायदल के गमन से पूरी पृथ्वी छा गयी, ऊँटों ने मार्ग के वृक्षों को पत्ररहित कर दिया। सैन्य ने करे हुए जलपान से जलाशय में कीचड़ ही शेष बचा और सैन्य के चलने से उडे हुए रजकणों से मानो आकाश में दूसरी पृथ्वी बन गयी। इस प्रकार चलते हुए निषध राजा को मार्ग में ही रवि अस्त पा गया, तो जल से **राफ्फ** की भाँति अंधकार से समस्त ब्रह्मांड छा गया। फिर भी अपनी नगरी के दर्शन में उत्कंठित ऐसा निषधराजा आगे चलते हुए रुका नहीं, क्योंकि 'अपने नगर पहुँचने की उत्कंठा किसे प्रबल नहीं होती ?' जब अंधकार का एकछत्र राज्य हुआ तब स्थल, जल, गर्त्त, (खड्डे) या वृक्ष वगैरह सब अदृश्य हो गया। अंधकार से दृष्टि में अवरोध होते ही चतुरिन्द्रिय प्राणी जैसे बने अपने सैन्य को देखकर नलकुमार ने गोद में सोयी हुई दवदंती को कहा, 'देवी ! पलभर के लिए जागो। यशस्विनी ! अंधकार से पीड़ित ऐसे इस सैन्य पर आपका तिलकरुपी सूर्य प्रकाशित करो।' फिर दवदंती ने उठकर तिलक का मार्जन किया, तो अंधकाररुपी सर्प पर गरुड समान वह तिलक बड़ा प्रदीप्त होकर चमकने लगा। फिर पूरी सेना निर्विघ्न चलने लगी। 'प्रकाश के बिना लोग जीवित होने पर भी मृतवत् हैं।'

आगे बढ़ते हुए पद्मखण्ड की भाँति भ्रमरों द्वारा आसपास से आस्वादन कराते हुए एक प्रतिमाधारी मुनि नलराजा के देखने में आये। उनको देखकर नलकुमार ने पिता को कहा - "स्वामिन् ! ये महर्षि को देखिए, और उनकी वंदना करके प्रासंगिक फल प्राप्त कीजिए। इस कायोत्सर्ग में रहे हुए मुनि के शरीर के साथ किसी मदधारी गजेन्द्र ने गंडस्थल की खुजली खुजलाने की इच्छा से वृक्ष की भाँति घर्षण किया है। उसके गंडस्थल ज्यादा घिसाने के कारण मुनि के शरीर में उसके मद की सुगंध फैली है, इसलिए ये भ्रमर उनको डंक मार रहे हैं, फिर भी मुनि उस परिषह को सहन करते हैं, स्थिर पैरवाले पर्वत समान इन महात्मा को वह उन्मत हाथी भी ध्यान से चलित नहीं कर पाया, ऐसे मुनि मार्ग में किसी पुण्ययोग से ही हमारी नजरों में आये हैं।" यह सुनकर निषध राजा को श्रद्धा उत्पन्न हुई, जिससे पुत्र और परिवार सहित प्राप्त हुए उत्तम तीर्थ की तरह वे मुनि का सेवन करने लगे। इसके बाद निषध राजा, स्त्री सहित नल, कुबर और अन्य सब उनको प्रणाम, नमन, स्तवन आदि करके व मद का उपद्रव दूर करके आगे बढ़े। क्रमशः वे कौशलानगरी के परिसर में आये तो नल ने दवदंती को कहा, 'देवी ! देखिए, जिनचैत्यों से मंडित यह हमारी राजधानी आयी।' तत्काल दवदंती मेघ के दर्शन के लिए आतुर मयूरी समान, उन चैत्यों के दर्शन हेतु अति उत्कंठित बनी। उसने कहा, 'मुझे धन्य है

कि जिसने नलराजा को पतिरुप में प्राप्त किया है, अब उनकी राजधानी में रहकर इन जिनचैत्यों की मैं प्रतिदिन वंदना करुंगी।'

जिसमें तोरण वगैरह से सर्वत्र मंगलाचार आरंभ हुआ हैं ऐसी अपनी नगरी में निषधराजा ने शुभ दिन पर प्रवेश किया। फिर वहां रहकर नल व दवदंती स्वैच्छा से विहार करने लगे। वे कोई बार हंस-हंसी की भाँति जलक्रीड़ा करते थे, कोई बार परस्पर प्रचलित ऐसी एक-दूजे की भुजाओं से हृदय को दबाकर झूले के सुख का अनुभव करते थे, कोई बार गुंफन किए हुए अति सुगंधित पुष्पों से एक-दूजे के केशपाश को विचित्र तरीके से सजाते थे, कोई बार बंधमोक्ष में चतुर व गंभीर हृदयवाले वे अनाकुलपन से अक्षद्युत खेलते थे और कोई बार आतोद्य व तंतीवाद्य क्रमानुसार बजाते हुए नलकुमार एकांत में दवदंती को नृत्य कराता था। इस प्रकार नल और दवदंती ने अहर्निश अवियुक्त रहकर नयी नयी क्रीड़ाओं से कुछ काल व्यतीत किया।

एक बार निषधराजा ने नल को राज्य और कुबर को युवराज पद पर स्थापित करके व्रत ग्रहण किया। फिर नलराजा प्रजा को प्रजावत् (पुत्र-पुत्री समान) पालने लगा और सर्वदा प्रजा के सुख में सुखी और प्रजा के दुःख में दुःखी रहने लगा। बुद्धि और पराक्रम से सम्पन्न और शत्रुरहित ऐसे नलराजा पर भुजपराक्रम से विजय पाने के लिए कोई भी अन्य भूपति समर्थ न हो सका। एक बार नलराजा ने अपने क्रमागत सामंत वगैरह को बुलाकर पूछा कि, 'यह कहिए कि मैं पित्रोपार्जित भूमि पर राज्य करता हूँ या उससे ज्यादा भूमि पर राज्य करता हूँ ?' वे बोले, ''आपके पिता निषध राजा ने तो तीसरे अंश से कम ऐसे भरतार्ध को भोगा था, और आप तो पूरे भरतार्ध को भोगते हो, इसलिए यह योग्य ही है कि पिता से पुत्र अधिक तेज हो। परंतु आपको इतना ही कहना है कि यहां से दोसौं योजन पर **तक्षशिला** नाम की नगरी है, उस पर **कदंब** नाम का राजा है, वह आपकी आज्ञा मानता नहीं है। अर्ध भरत की विजय से उत्पन्न हुए आपके यशरुपी चन्द्र में वह एक दुर्विनीत राजा मात्र कलंकभूत है। आपने अंशमात्र व्याधि के समान प्रमाद से उसकी उपेक्षा की जिससे वह राजा इस समय शक्ति में बढ़ जाने के कारण कष्टसाध्य बन चुका है। परंतु हे महाबाहो ! संशय रहित होकर ऐसा हमारा मानना है कि आपने उसके पर शेष से कठोर ऐसा मन किया है, तो वह पर्वत से गिरे हुए घड़े की तरह अवश्य विशीर्ण ही हो गया है। इसलिए पहले एक दूत भेजकर उसे कहलवाओ तो प्रणिपात या दण्ड, उसकी जो इच्छा होगी वह मालूम पडेगा।' सामंतो के इस प्रकार के वचन से नलराजा ने दृढ़ता में महागिरि जैसे एक दूत को समझाकर बड़े सैन्य के साथ वहां भेजा। गरुड जैसा दुर्धर वह दूत तुरंत वहां पहुंचा और अपने स्वामी को लज्जा न आये उस प्रकार उसने कदंब राजा को कहा कि 'हे राजेन्द्र ! शत्रुरुपी वन में दावानल जैसे मेरे स्वामी नलराजा की सेवा

करो और आगे बढ़ो, आपके तेज का वध मत करो। आपकी कुलदेवी से अधिष्ठित बने हुए के समान मैं आपको हितवचन कहता हूँ कि नलराजा की सेवा करो, सोचो, जरा सी भी बेचैन बनना मत।'

दूत के ऐसे वचन सुनकर चन्द्रकला को राहु की तरह दंताग्र से होठ को डसता हुआ कदंब स्वयं को भूलकर, स्वयं के सामने देखे बिना इस प्रकार बोला, "अरे दूत ! क्या नलराजा मूर्ख है, उन्मत्त है या फिर फंटुस हो गया है कि शत्रुरुपी मोथ में वराह जैसे मुझे बिलकुल जानता नहीं है ? अरे दूत ! क्या तेरे राज्य में कोई कुलमंत्री भी नहीं है कि जिन्होंने इस प्रकार मेरा तिरस्कार करते हुए नलराजा को रोका नहीं ? हे दूत ! तू तत्काल जा, यदि तेरा स्वामी राज्य से उकता गया हो तो भले ही वह युद्ध करने के लिए तैयार हो, मैं भी उसके रण का अतिथि बनने के लिए तैयार हूँ।" दूत तुरंत ही वहां से निकलकर नलराजा के पास आया और उसके अहंकारी वचन बलवान नलराजा को कह सुनाए। फिर अहंकार के बड़े पहाड़रुपी तक्षशिला के राजा कदंब पर नलराजा ने बड़े आडंबर से चढ़ाई की। पराक्रमी हाथियों से मानो दूसरे किल्लेवाली हो त्यों तक्षशिला नगरी को अपनी सेना द्वारा घेर ली। यह देखकर कदंब राजा भी तैयार होकर बड़े सैन्य के साथ बाहर निकला। "केसरी सिंह गुहाद्वार पर किसिका गमनागमन सहन नहीं कर पाता।"

फिर क्रोध से अरुण नेत्र करते हुए प्रचंड तेजवाले योद्धा परस्पर बाणों के युद्ध से आकाश में मंडप रचते हुए युद्ध करने लगे। यह देखकर नल ने कदंब राजा को कहा, 'अरे ! यह हाथी वगैरह को मार डालने का क्या कारण है ? हम दोनों ही शत्रु हैं तो हम ही द्वंद्व युद्ध करें।' फिर नल व कदंब मानो दो जंगम पर्वत हो त्यों भुजायुद्ध वगैरह द्वंद्व युद्ध से युद्ध करने लगे। गर्वांध कदंब ने नल के पास जो जो युद्ध की माँग की वे सब युद्धों में विजयी नल ने उसे हरा दिया। उस समय कदंब ने विचार किया कि 'इस महा पराक्रमी नलराजा के साथ मैंने क्षात्रव्रत बराबर तोल लिया है, अब उसने मुझे मृत्युकोटि प्राप्त करा दी है, इसलिए पतंगे की भाँति (उसके पराक्रमरुपी अग्नि में) गिरकर किसलिए मर जाना ? इसलिए मैं यहां से पलायन करके व्रतग्रहण करुं।' "यदि परिणाम निर्मल आता हो तो पलायन करना भी श्रेष्ठ है।" मन में ऐसा विचार करके कदंब ने वहां से पलायन करके विरक्त बनकर तत्काल व्रत ग्रहण किया, और प्रतिमारुप (कायोत्सर्ग ध्यान में) होकर रहा। कदंब को व्रतधारी देखकर नल ने कहा कि 'यहां तो मैं आपको जीत गया हूँ, परंतु अब दूसरी पृथ्वी में (मुनिपन में) आसक्त होकर आप क्षमा को छोड़ना मत, क्योंकि आप विजयचाहने वाले हो।' महाव्रतधारी और धीर ऐसे कदंब मुनि ने नलराजा को कोई भी उत्तर दिया नहीं, क्योंकि निःस्पृह को राजा का भी क्या काम

है ? इसलिए नल ने कदंब मुनि की प्रशंसा की, उसके सत्य से प्रसन्न होकर शिश झुकाया, और पुत्र **जयशक्ति** को उसके राज्य पर बिठाया। फिर सब राजाओं ने मिलकर वासुदेव की तरह सर्व राजाओं को जीतनेवाले नलराजा को भरतार्ध पतिपन का अभिषेक किया। वहां से कौशलदेश के अधिपति कौशल नगरी में आये, वहां भक्तिकुशल सब राजाओं ने आकर उनको भेट दी। खेचरों की स्त्रियों ने भी जिसका बल गाया है ऐसे नलराजा दवदंती के साथ क्रीडा करते हुए चिरकाल तक पृथ्वी पर शासन करने लगे।

उसका अनुज बंधु कुबर कि जो कुल में अंगारे जैसा और राज्यलुब्ध था, सत्पात्र के छिद्र को डाकिन देखे त्यों वह नलराजा के छिद्र को खोजने लगा। नलराजा सदा न्यायवान था फिर भी द्युत खेलने पर उसे विशेष आसक्ति थी। "चन्द्रमा में भी कलंक है, किसी भी स्थल पर रत्न निष्कलंक होता ही नहीं।" मैं इस नल से सर्व पृथ्वी द्यूत खेलकर जीत लूं, ऐसे बूरे आशय से वह कुबर सदैव पासे से नल को खिलाता था। वे दोनों पासे से लम्बे अरसे तक खेले, उसमे डमरुक मणि की तरह एक दूसरे की विजय होती रही।

एक बार नलराजा कि जो द्युतक्रीडा में बंधमोक्ष करने में चतुर था फिर भी दैवदोष से कुबर को जीतने में समर्थ न बन सका। नल ने अपना पासा जो अनुकूल गिरने का सोचा था वह भी विपरीत गिरने लगा, और कुबर बार बार उसकी कुकरियाँ मारने लगा। नलराजा धीरे धीरे गाँव, कर्बट और किसानी कसबे वगैरह द्युत में हार गया, और ग्रीष्म काल में सरोवर में से जल समान लक्ष्मीहीन होने लगा। इतनी हानि होने पर भी नल ने द्युतक्रीडा छोडी नहीं तो सब लोग खेद पाने लगे और कुबर अपनी इच्छा पूरी होने से बडा हर्ष पाने लगा। सब लोग नल के अनुरागी थे, इसलिए वे हाहाकार करने लगे। उस हाहाकार को सुनकर दवदंती भी वहां आयी। उसने नल को कहा, 'हे नाथ ! मैं आपको प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझ पर प्रसन्न बनो और द्युतक्रीडा छोड दीजिए। ये पासे बैरी की तरह आपका द्रोह करनेवाले हैं। बुद्धिमानों को वैश्यागमन की तरह द्यूत क्रीडामात्र होता है परंतु अपनी आत्मा को अंधकार देनेवाली उस द्यूतक्रीडा का वे यूं अति सेवन नहीं करते। अनुज बंधु कुबर को यह राज्य स्वयंमेव दे देना अच्छा है, परंतु 'मैंने तो उससे जबरदस्ती से राज्यलक्ष्मी लेली है' ऐसा अपवाद वह लगाए वैसा करिए मत। हे देव ! यह पृथ्वी जो सैंकडों युद्ध करके हॉसिल की है, वह एक द्यूतक्रीडा में फूटे हुए प्रवाह की तरह सरलता से चली जा रही है, वह मुझे बड़ा दुःख देती है।" दवदंती की यह वाणी दसवीं मदावस्था को प्राप्त हुए हस्ती की तरह नलराजा ने सुनी नहीं और उसे दृष्टि से देखी भी नहीं। जब पति ने उसकी अवज्ञा की तब वह रोते रोते कुलप्रधानों के पास आयी और कहा कि, 'इस नल राजा को आप द्युत खेलते रोकिए।' सन्निपातवाले मनुष्य को औषध जैसे उन

सचिवों के वचनों ने भी नलराजा पर असर नहीं किया। भूमि को हार जानेवाला वह नलराजा अनल-अग्नि समान हो गया। वह दवदंति सहित पूरा अंतःपुर भी हार गया। इस प्रकार सर्वस्व हार जाने के बाद मानो दीक्षा लेना चाहता हो त्यों उसने उसके अंग पर से सर्व आभूषण वगैरह भी हारकर छोड़ दिए।

इसके बाद कुबर ने कहा, 'हे नल ! तूं सर्वस्व हार गया है, इसलिए अब यहां रहना मत। मेरी भूमि छोड़ दे, क्योंकि तुझे तो पिता ने राज्य दिया था और मुझे तो द्यूत के पासे ने राज्य दिया है।' उसके ऐसे वचन सुनकर 'पराक्रमी पुरुषों से लक्ष्मी दूर नहीं है इसलिए तू जरा सा भी गर्व धरना मत।' यूं कहता हुआ नल मात्र पहने वस्त्रों में ही वहां से चल निकला। उस समय दवदंती उसके पीछे जाने लगी। उसे देखकर कुबर भयंकर शब्द बोला - "अरे स्त्री ! द्यूतक्रीडा में मैंने तुझे जीता है, इसलिए तू कहां जाती है ? तू तो मेरे अंतःपुर को अलंकृत कर।" उस समय सचिव वगैरह ने दुराशयी कुबर को कहा कि 'वह महासती दवदंती अन्य पुरुष की छाया का भी स्पर्श नहीं करती, इसलिए उस महासती को तू जाते हुए रोक मत। बालक भी जानता है कि ज्येष्ठ बंधु की स्त्री माता समान है और ज्येष्ठ बंधु पिता समान है। फिर भी यदि तू जबरदस्ती से वैसा करेगा तो वह महासती भीमसुता तुझको जलाकर भस्म कर देगी। 'सतियों को कुछ भी मुश्किल नहीं है।' इसलिए उस सती को कोपायमान करके अनर्थ को आमंत्रण मत दे, लेकिन पति के पीछे जाती उस सती को उत्साहित कर। और तुझे जो गांव, नगर आदि सर्व मिला है उससे संतुष्ट बन, तथा इस नलराजा को पाथेय के साथ सारथि सहित एक रथ दे।'

सचिवों के वचनों से कुबर ने दवदंती को नल के साथ जाने दिया और पाथेय सहित सारथियुक्त एक रथ देने लगा। उस समय नल ने कहा, 'भरतार्ध के विजय से मैंने जो लक्ष्मी उपार्जित की थी उसे मैं आज क्रीडामात्र में छोड़ रहा हूँ, तो फिर मुझे एक रथ की स्पृहा क्यों ? मुझे रथ नहीं चाहिए।' उस समय सचिवों ने कहा, 'हे राजेन्द्र ! हम आपके चिरकाल के सेवक हैं, इसलिए हम आपके साथ आना चाहते हैं, परंतु यह कुबर हमें रोकता है। यह आपका अनुज बंधु है और आपने उसे राज्य दिया है, इसलिए अब हमें वह त्याग करना योग्य भी नहीं है, क्योंकि हमारा ऐसा क्रम है कि 'इस वंश मे जो राजा बनता है उसकी सेवा हमे करनी।' इसलिए हे महाभुज ! हम आपके साथ नहीं आ सकते। इस समय तो यह दवदंती ही आपकी भार्या, सचिव, मित्र और सेवक जो मानो वह है। सतीव्रत को धारण करनेवाली व शिरीष के पुष्प जैसी कोमल इस दवदंती को मार्ग में पैदल चलती हुई किस प्रकार ले जाओगे ? सूर्य के ताप से जिस रेत में से अग्नि समान चिनगारी निकलती हो उस मार्ग में कमल जैसे कोमल चरणों से यह सती किस तरह चल पायेगी ? इसलिए हे नाथ ! इस रथ को ग्रहण करके हमारे पर

अनुग्रह कीजिए। आप देवी के साथ इस रथ में बैठिए, आपका मार्ग कुशल हो और आपका कल्याण हो।''

इस प्रकार प्रधान पुरुषों ने बार बार प्रार्थना की तो नलराजा दवदंती के साथ रथ में बैठकर नगर के बाहर निकला। मानो स्नान करने के लिए तैयार हुई हो त्यों एक वस्त्र पहनकर जाती हुई दवदंती को देखकर नगर स्त्रियां अश्रुजल से कंचुकियों को आर्द्र करते हुए रोने लगी। नल राजा नगर के बीच में से चला जा रहा था, उस समय दिग्गज के आलानस्तंभ जैसा पांचसौ हाथ ऊँचा एक स्तंभ उसके देखने में आया। उस समय राज्यभ्रष्ट होने के दुःख को मानो जानता ही न हो त्यों कौतुक से उसने कदली स्तंभ को हाथी उठाये त्यों लीलामात्र में ही उस स्तंभ को उठा लिया और वापिस वहीं लगा भी दिया, जिससे उसने उठाकर बिठानेरुपी [1]राजाओं के व्रत को सत्य कर दिखाया। यह देखकर नगरजन कहने लगे कि ''अहो ! नलराजा का यह कैसा बल है ? ऐसे बलवान पुरुष को भी ऐसा दुःख प्राप्त होता है यह देखकर निर्णय किया जाता है कि दैवईच्छा ही बलवान है। पूर्वकाल में बचपन में भी नलराजा समीप के पर्वत के उद्यान में कुबर सहित क्रीडा करते थे, उस समय ज्ञानरत्न के महानिधि कोई महर्षि आये थे, उन्होंने कहा था कि, 'यह नल पूर्व जन्म में मुनि को दिए हुए क्षीरदान के प्रभाव से भरतार्ध का पति होगा। इस नगरी में रहे पांचसौं हाथ ऊँचे स्तंभ को जो चलायमान करेगा, अवश्य वही भरतार्ध का पति बनेगा, इस नलराजा के जीवित रहते इस कौशलानगरी का कोई दूसरा अधिपति बनेगा नहीं।' उस मुनि के इस प्रकार के कहे हुए भविष्य में भरतार्ध का स्वामी बनना व स्तंभ का उखाडना - ये दो बात तो बराबर हैं, परंतु कुबर कौशला का राजा बनने की तीसरी बात बराबर नहीं है, परंतु जिसे हमने नजरों से देखा है वह मुनि की वाणी वृथा नहीं जायेगी, क्योंकि कौन जानता है कि कुबर सुखपूर्वक राज्य कर पायेगा या नहीं ? शायद नलराजा ही दुबारा यहां के राजा हो जाय, इसलिए उस पुण्यश्लोक नलराजा का पुण्य सर्वथा वृद्धि पाये।'' इस प्रकार लोगों के वचन सुनते व दवदंती के अश्रु से रथ को स्नान कराते हुए नलराजा कौशलानगरी को छोड़कर चल निकला।

आगे बढ़ते हुए नल ने दवदंती को कहा कि, 'हे देवी ! हम कहाँ जायेंगे ? क्योंकि स्थान के उद्देश्य बिना कोई भी सचेतन प्राणी प्रवृत्ति नहीं करता है।' दवदंती बोली, 'दर्भ के अग्रभाग समान बुद्धिमान हे नाथ ! हम कुंडिनपुर चलें, वहां मेरे पिता के अतिथि बनकर उन पर अनुग्रह कीजिए।' उसके वचन से नल ने आज्ञा की तो भक्ति के आश्रयरुपी सारथि ने कुंडिनपुर की दिशा में घोड़े चलाए। आगे बढ़ते हुए एक भयंकर अटवी आयी, जिसमें बाघों की गुर्राहट से

१. यदि कोई आज्ञा न माने तो प्रथम उस राज्य पर से उतार देना और फिर आज्ञा माने तो तुरंत राज्यलोभ न करते हुए उसका राज्य उसे सौंप देना ऐसा क्षत्रिय राजाओं का चला आता धर्म है।

गिरी की गुफाएं घोर दिखती थी। सर्पो से वे भयंकर थी। सैंकड़ों शिकारी प्राणियों से व्याप्त थी, चौर्यकर्म करनेवालों भीलों से भरपूर थी, शेरों द्वारा मारे हुए वनहस्तियों के दांतों से जिसकी भूमि दंतुर बनी थी व यमराज के क्रीडास्थल समान वह अटवी दिखती थी। इस अटवी में नलराजा आये तो आगे जाने पर कान तक खींचे हुए धनुष्य को धारण करनेवाले व यमराज के दूत जैसे प्रचण्ड भील उन्हें दिखाई दिये। उसमें कोई मद्यपान गोष्टी में तत्पर हो त्यों नाच रहा था, कोई एकदंत हाथी जैसे दिखते सिंग को बजा रहा था, रंगभूमि में शरुआत में पात्र करते हैं त्यों कोई कलकल शब्द करते थे, मेघ जलवृष्टि करता है त्यों कोई बाणवृष्टि करता था, और कोई मल्ल समान बाहुयुद्ध करने के लिए करास्फोट कर रहा था। उन सबने एकत्रित होकर हाथी को श्वान घेर ले त्यों नलराजा को घेर लिया। उनको देखकर नल शीघ्र रथ में से उतरकर, म्यान में से तलवार निकालकर उसे नर्तकी की भाँति अपनी मुष्टिरुपी रंगभूमि में नचाने लगा। यह देखकर दवदंती रथ में से उतरी और उसने हाथ पकड़कर नल को कहा, 'खरगोश पर शेर की तरह ईन लोगों पर आपको आक्षेप करना युक्त नहीं है। ये पशु जैसे लोगों पर प्रयोग करने से आपकी तलवार जो भरतार्ध की विजयलक्ष्मी का निवास है उसे बड़ी शर्म आयेगी।'

इस प्रकार कहकर दवदंती ने मण्डल में रही मांत्रिकी स्त्री के समान अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए बार बार हुंकार करने लगी। वह हुंकार भील लोगों के कर्णों में प्रवेश करते ही उसके प्रभाव से तुरंत ही लोहे की तीक्ष्ण सुई जैसे (मर्मभेदी) बन पड़े, इससे सब भील बावरे बनकर दसों दिशाओं में भाग गये। उनके पीछे यह राजदम्पती ऐसा दौडा कि जिससे वह रथ से बहुत दूर हो गया। इतने में दूसरे भील आकर उस रथ को हर गये। 'जब दैव टेढा हो तब पुरुषार्थ क्या कर सकता है ?' फिर उस भयंकर अटवी में नलराजा दवदंती का हाथ पकड़कर पाणिग्रहण के उत्सव का स्मरण कराता हुआ चारों ओर घूमने लगा। काँटे चुभने के कारण वैदर्भी के चरणों में से निकलते रुधिर के बिंदुओं से वह अरण्य भूमि इन्द्रगोपमय[1] हो वैसी बन गयी। पहले नलराजा का जो वस्त्र वैदर्भी के मस्तक पर पट्टरानीपन के लिए पट्टबंध बनता था, उस वस्त्र को फाड़-फाड़कर अब नलराजा उसके चरणका पट्टबंध करता था अर्थात् उसके पाँव में पट्टी बांधता था। इस प्रकार चलते चलते थक जाने से वृक्ष नीचे बैठी हुई भीमसुता को नलराजा अपने वस्त्र के सिरे से पंखा बनाकर हवा डालने लगा, और पलाश के पत्तों का दौना बनाकर उसमें जल लाकर तृषित बनी उस रमणी को पिंजरे में पड़ी हुई सारिका की तरह जलपान कराया। उस समय वैदर्भी ने नलराजा को पूछा कि, 'हे नाथ ! यह अटवी और कितनी है ? क्योंकि इस दुःख से मेरा हृदय-द्विधा के कारण कम्पित होता है।' नल ने कहा, 'प्रिये ! यह

१. इन्द्रराजा की गाय कहलाती है, लाल रंग वाले एक तरह के त्रिइन्द्रिय जीव।

अटवी सो योजन की है, इसमे हम पाँच योजन आये हैं, इसलिए धीरज रख।' इस प्रकार वे बातें करते हुए अरण्य में चले जा रहे थे, इतने में ज्यों संपत्ति की अनित्यता दर्शाता हो त्यों सूर्य अस्त पा गया।

उस समय बुद्धिमान नल ने अशोकवृक्ष के पल्लव एकत्रित कर, उसके डंठल निकालकर दवदंती के लिए उसकी शय्या बनायी। फिर उसने कहा, 'प्रिये ! शयन करके इस शय्या को अलंकृत करो और निद्रा को अवकाश दो, क्योंकि निद्रा दुःख का विस्मरण करानेवाली एक सखी है।' वैदर्भी बोली, 'हे नाथ ! यहां से पश्चिम दिशा की और नज़दीक में गायों का भंभारव सुनाई देता है, इसलिए वहां कोई गाँव हो यूं लगता है, तो चलिए, जरा आगे चलकर उस गाँव में हम जाए, और वहां सूखपूर्वक सोकर रात्रि व्यतीत करें।' नल ने कहा, 'अरे भीरु ! वह गाँव नहीं है, बल्कि तापसों के आश्रम हैं और वे अशुभोदय के संयोग से सदैव मिथ्यादृष्टि है। हे कृशोदरी ! ईन तापसों की संगति के फल से मनोरथ दूध की भाँति उत्तम सम्यक्त्व विनाश पाता है, इसलिए तू यहीं पर सुख से सो जा। वहां जाने का मन मत कर। अंतःपुर के रक्षक नाजिर की तरह मैं स्वयं तेरा पहरेदार बनकर रहूंगा।' इसके बाद नल ने उस पल्लवशय्या पर अपनी प्रिया को चद्दरवाले गद्दे का स्मरण कराते हुए अपना आधा वस्त्र बिछाया। फिर अर्हंत देव को वंदना की और पंच नमस्कार का स्मरण करके गंगा के तट पर हंस की भाँति वैदर्भी ने उस पल्लवशय्या पर शयन किया।

जब वैदर्भी के नेत्र निद्रा से मुद्रित हुए तब नलराजा को दुःखसागर के बड़े भँवर की तरह चिंता उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा कि, "जो पुरुष श्वसुर की शरण लेता है, वह अधम नर कहलाता है, तो इस दवदंती के पिता के घर यह नल क्यों जाता है ? इसलिए अब हृदय को वज्र जैसा करके, प्राण से भी अधिक ऐसी प्रिया का यहां त्याग करके, स्वैच्छा से रंक की भाँति अकेला अन्यत्र चला जाउँ। इस वैदर्भी को सतीत्व के प्रभाव से कोई भी उपद्रव नहीं होगा, क्योंकि सती स्त्रियों का सतीत्व ही उसके सर्व अंगो की रक्षा करनेवाला शाश्वत महामंत्र है।" ऐसा विचार करके छुरा निकालकर नल ने अपना आधा वस्त्र काट डाला और अपने रुधिर से दवदंती के वस्त्र पर इस प्रकार से अक्षर लिखे - 'हे विवेकी वामा ! हे स्वच्छ आशयवाली ! बड के वृक्ष से अलंकृत ऐसी दिशा में जो मार्ग है वह वैदर्भ देश में जाता है और उसकी बाँयी और का मार्ग कौशल देश में जाता है तो दोनों में से कोई एक मार्ग पर चलकर तूं पिता या श्वसुर के घर जाना। मैं तो इन जगहों में से कहीं पर भी रहने का उत्साह नहीं रखता।' ऐसे अक्षर लिखकर निःशब्द रुदन करता हुआ व चोर की तरह धीरे धीरे डग भरता हुआ नल वहां से आगे चला। जब तक वह अदृश्य हुआ तब तक अपनी सोयी हुई प्यारी को ग्रीवाभंग से देखते

देखते वह चलने लगा। उस समय उसने सोचा ऐसे वन में इस अनाथ बाला को अकेली सोती हुई छोड़कर मैं चला जा रहा हूँ, पर यदि कोई क्षुधातुर शेर या बाघ आकर उसका भक्षण कर जायेगा तो उसकी क्या गति होगी ? इसलिए तो अब मैं उसे दृष्टि के विषय में रखकर रात्रि पूर्ण होने तक उसकी रक्षा करुं, फिर प्रातःकाल में वह मेरे बताये हुए दो मार्ग में से एक मार्ग पर चली जायेगी।' ऐसा विचार करके नल अर्थभ्रष्ट हुए पुरुष की तरह उसी कदम पर वापस मुडा। वहां आकर अपनी स्त्री को पृथ्वी पर लेटते हुए देखकर दुबारा सोचने लगा, - 'अहा ! यह दवदंती एक वस्त्र पहनकर मार्ग में सो रही है। जो नलराजा का अंतःपुर सूर्य को भी देखता नहीं था, उसकी क्या ऐसी दशा ? अरे ! मेरे कर्म के दोष से यह कुलीन कांता ऐसी दशा को पायी है, पर अब दुर्भागी मैं क्या करुं ? मैं समीप हूँ फिर भी यह युलोचना उन्मत्त अथवा अनाथ की तरह भूमि पर सोयी है, तो भी यह नल जीवित है ! यदि मैं इस बाला को अकेली छोडूंगा और बाद में जब यह मुग्धा जाग्रत होगी तब अवश्य वह मेरी स्पर्धा से ही जीवितमुक्त बन जायेगी, इसलिए इस भक्त रमणी को ठगकर अन्यत्र जाने का उत्साह नहीं होता। अब तो मेरी मृत्यु या जीवन उसके साथ ही हो। अथवा इस नरक जैसे अरण्य में नारकी की भाँति मैं अकेला ही अनेक दुःख का पात्र बनूं और उसके वस्त्र में जो आज्ञा लिखी है, उसे देखकर वह मृगाक्षी अपने आप स्वजनगृह में जाकर भले ही कुशलिनी बने।' ऐसा विचार करके नल वहां रात्रि निर्गमन करके पत्नी के जाग्रत होने के समय पर त्वरा से चलते हुए अंतर्हित (अदृश्य) हो गया।

अब यहाँ रात्रि के अवशेष समय पर विकसित कमल की सुगंधवाला मृदु मृदु प्रातःकाल का पवन चल रहा था। उस समय दवदंती को एक स्वप्न आया। मानो फले हुए, प्रफुल्लित और गाढ पत्तेवाले आमृवृक्ष पर चढ़कर भँवरे के शब्दों को सुनती हुई वह फल खाने लगी, इतने में किसी वन के हाथी ने अचानक आकर उस वृक्ष का उन्मूलत किया, जिससे पक्षी के अण्डे की भाँति वह वृक्ष से नीचे गिर गयी। ऐसे स्वप्न से दवदंती एकदम जाग उठी, उसने अपने पास नलराजा को न देखा तो यूथ से भ्रष्ट हुई हिरनी की तरह वह दसों दिशाओं में देखने लगी। उसने सोचा कि 'अहो ! मुझ पर अनिवार्य दुःख अचानक आ पडा, क्योंकि मेरे प्रीतम ने भी मुझे इस अरण्य में अशरण त्याग दिया, अथवा तो रात्रि बीत जाने पर मेरे प्राणेश मुख प्रक्षालन व मेरे लिए जल लाने के लिए किसी जलाशय पर गये होंगे, अथवा उनके रुप पर मुग्ध बनी हुई कोई खेचरी उन्हें आग्रह करके क्रीडा करने ले गयी होगी, फिर उसने कोई कला में उन्हें जीत लिया होगा और उसमे रुकने की होड की होने से वहां रुक गये होंगे। ये वे ही पर्वत, वे ही वृक्ष, वही अरण्य और वही भूमि दिखाई दे रही है, मात्र एक कमलनयन नलराजा को मैं देखती नहीं हूँ।' इस प्रकार विविध चिंता करती दवदंती ने सभी दिशाओं की

तरफ देखा पर जब अपने प्राणनाथ को देखा नहीं तब वह अपने स्वप्न का विचार करने लगी कि अवश्य स्वप्न में जो आम्रवृक्ष मैंने देखा वह नलराजा, पुष्पफल वह राज्य, फल का स्वाद वह राज्यसुख और भँवरे वह मेरा परिवार है। वन के जिस गजेन्द्र ने आकर आम्रवृक्ष को उखाडा उस दैव ने आकर मेरे पति को राज्य से भ्रष्ट करके पथिक बना दिया यूं समझना, और मैं वृक्ष पर से गिर गई तो इस नलराजा से बिछड गई यूं समजना चाहिए। इस स्वप्न का विचार करते हुए जरुर अब मेरे प्राणेश नल का मुझे दर्शन होना दुर्लभ है।' इस प्रकार स्वप्न का अर्थ सोचकर उस बुद्धिमती बाला ने चिंतन किया कि 'मेरा तो राज्य व पति दोनों गये।'

इसके बाद उस तारलोचना ललना ने मुक्त कंठ में लम्बे स्वर से रुदन करने लगी। 'दुर्दशा में गिरी हुई स्त्रीयों में धैर्य गुण कहां से आये?' 'अरे नाथ ! आपने मुझे क्यों छोड़ दिया ? क्या मैं आपको बोझेरुप लगती थी ? सर्प को अपनी केचुंली का कदापि बोझ लगता नहीं है। यदि आप विनोद करने के लिए कोई वेल (लता) के वन में छुप गये हैं तो अब प्रकट हो जाइए, क्योंकि लम्बे समय तक का विनोद भी सुख के लिए नहीं होता। हे वनदेवताओं ! मैं आपको प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे पर प्रसन्न बनो व मेरे प्राणेश को या उसने पवित्र किए हुए मार्ग को बताइए। हे पृथ्वी ! तू पके हुइ ककडी के फल की तरह दो टुकडे हो जा, जिससे मैं तेरे दिए हुए विवर में प्रवेश करके सुखी बनूं।' इस प्रकार विलापपूर्वक रुदन करती हुई वैदर्भी जल से नहर की भाँति अश्रुजल से अरण्य के वृक्षों का सिंचन करने लगी। जल में या स्थल में, छाया में या धूप में मानो ज्वरार्त हो त्यों उस दवदंती को नलराजा के बिना थोड़ा सा भी सुख न हुआ।

फिर वह भीमसुता अटवी में भटकने लगी। ईतने में वस्त्र के सिरे पर लिखे हुए अक्षर उसके देखने में आये, तो तत्काल हर्ष से नेत्र फैलाकर वह पढने लगी। पढ़कर उसने सोचा कि 'अवश्य ही मैं प्राणेश के हृदयरुपी पूर्ण सरोवर में हंसी समान हूँ, नहीं तो मुझे ऐसे आदेशरुप प्रसाद का स्थान किसलिए बनाये ? तो पति के इस आदेश को मैं गुरु के वचन से भी अधिक मानती हूँ। इस आदेश अनुसार चलने से मेरा यह लोक अति निर्मल बनेगा, तो चल, मैं सुखवासना के कारणरुप पिता के घर जाऊँ, परंतु पति के बिना स्त्रियों को पितृगृह भी पराभव का स्थान है। यद्यपि मैंने पहले पति के साथ वहां जाना चाहा था, लेकिन वह योग आया ही नहीं, परंतु अब पति की आज्ञा से वश होकर पितृगृह जाना ही योग्य है।' ऐसा विचार करके वैदर्भी ने उस बड़ के मार्ग पर चलना शुरु किया। मानो नलराजा साथ हो त्यों उसके अक्षरों को देखते देखते हुई वह मार्ग पर चल पडी।

मार्ग में बाघ मुख फाड़कर दवदंती को खाने के लिए उद्यम करते, परंतु अग्नि की भाँति

उसके समीप नहीं जा सकते थे, वह त्वरा से चलती तब सर्प बील के मुख से बड़े सर्प निकलते परंतु मूर्तिमंत जांगुली विद्या हो त्यों उसके पास जा नहीं सकते थे। दूसरे हाथी की शंका से अपनी छाया को भी दांत से भेद रहे थे ऐसे उन्मत्त हाथी भी शेरनी की भाँति उससे दूर-सुदूर खड़े रहते थे। इस प्रकार मार्ग पर चलती हुई वैदर्भी को दूसरे कोई भी उपद्रव न हुए। ''जो स्त्री पतिव्रता होती है उसका सर्वत्र कुशल होता है।' उस राजरमणी के केश भील की स्त्री की तरह अत्यंत विसंष्ठुल बन गये थे। मानो हाल ही में स्नान किया हो त्यों उसका पूरा अंग प्रस्वेद जल से व्याप्त हुआ था। मार्ग में करीर व बैर वगैरह कंटकी वृक्षों के साथ घर्षण होने से उसके शरीर में से गोंदवाले सल्लकी वृक्ष की तरह चारों ओर से रुधिर निकल रहा था। और शरीर पर मार्ग की रज चिपकने से मानो दूसरी त्वचा धरती हो त्यों वह दिखती थी, तो भी दावानल से त्रस्त बनी हाथिन की भाँति वह त्वरा से चलती थी। इस प्रकार चलते हुए मार्ग में अनेक बैलगाडियों से संकीर्ण ऐसा एक बड़ा समृद्धिवान् सार्थ किसी राजा की छावनी की तरह पडाव डाले हुए उसकी नज़रों में पडा। उसे देखकर वैदर्भी ने सोचा कि 'यह कोई सार्थ दिखता है, यदि यह मुझे अरण्यरुपी सागर को पार उतारने के लिए जहाजरुप बने तो सचमुच मेरा पुण्योदय माना जाय।' यूं सोचकर वह थोड़ी स्वस्थ बनी, इतने में तो देवसेना को असुरो की तरह चोर लोगों ने आकर उस संघ को चारोंओर से घेर लिया। मानो सर्व ओर चोरमय दीवार बन गई हो त्यों चारोंओर से आती हुई चोरों की सेना को देखकर सर्व सार्थ जन भय पा गये, क्योंकि 'धनवान को भयप्राप्ति सुलभ है।' उस समय 'अरे ! सार्थ निवासी लोगों ! डरना मत, डरना मत।' इस प्रकार उनकी कुलदेवी की भाँति दवदंती उच्च स्वर में बोली। फिर उसने चोरों को कहा, 'अरे दुराशयों ! यहां से चले जाओ, मैं इस संघ की रक्षक हूँ, इसलिए यदि तुम कुछ भी उपद्रव करोगे तो अनर्थ पाओगे।' इस प्रकार कहती दवदंती को मानो वह बातूनी हो या भूतपीडित हो यूं मानकर चोरों ने उसे थोड़ा सा भी गिनती में न लिया। इसलिए कुंडिनपति की दुहिता ने सर्व सार्थजनों के हित के लिए चोरों के अहंकार को तोड़नेवाला भयंकर हुंकार किया। वन को भी बधिर करे ऐसे उसके हुंकार से धनुष्य के नाद से कौए की तरह सर्व चोर लोग तत्काल भाग गए। यह देखकर सार्थजन कहने लगे कि 'हमारे पुण्य से आकर्षित होकर यह कोई देवी आयी है, उसने चोरों के भय से हमारी रक्षा की है।' फिर संघपति ने उसके पास आकर माता की तरह भक्ति से उसे प्रणाम किए और पूछा कि 'आप कौन हो ? और इस अरण्य में क्यों घूमती हो ?' दवदंती ने अश्रुयुक्त नेत्रों से बांधव की तरह उस सार्थवाह को नलराजा के द्युत से लेकर अपना पूरा वृत्तांत सुनाया। यह सुनकर सार्थवाह बोला - हे भद्रे ! आप महाबाहु नलराजा की पत्नी हो, इसलिए मेरी पूज्य हो और आपके दर्शन से मैं पुण्यवान बना हूँ। आपने इस चोर लोगों से हमारी रक्षा की है, इस उपकार से हम सब आपको बिके

हुए हैं, इसलिए आप हमारे आवास को पवित्र कीजिए कि जिससे हमसे जो कुछ आपकी भक्ति हो सके वह करें। यूं कहकर सार्थपति उसे अपने पटगृह[1] में ले गए और वहां देवी की आराधना करे त्यों उनकी सेवाभक्ति करने लगा।

उस समय वर्षाऋतु रुप नाटक की नांदी समान गर्जना को प्रसार करता हुआ मेघ अखण्ड धारा से वृष्टि करने लगा। स्थान स्थान पर अविच्छिन्न बहते प्रवाहों से नहरवाले उद्यान की तरह सब भूमि दिखने लगी। छल से पूर्ण ऐसे छोटे-बड़े खड्डों में होते दर्दुर शब्दों से मानो उपांत भूमि दर्दुर[2] वाद्य से संगीतमय हो त्यों दिखने लगी, पूरे अरण्य में वराहों की स्त्रियों के अभिलाष की पूर्ति करनेवाला ऐसा कीचड़ हो गया कि जो यात्रियों के चरणो में मोचकप्रक्रिया[3] को दर्शाने लगा। तीन रात्रि तक ऐसी अविच्छिन उग्र वृष्टि हुई। उतने समय तक दवदंती पिता के घर की भाँति वहा सुख से रही। जब मेघ बरस चुका तब महासती वैदर्भी सार्थ छोड़कर दुबारा अकेली चल पड़ी। नल राजा का वियोग हुआ उस दिन से वैदर्भी चतुर्थ (उपवास) वगैरह तप में लीन होकर धीरे धीरे मार्ग निर्गमन करती थी।

आगे चलते हुए मानो यमराज का पुत्र हो ऐसा भयंकर से भी भयंकर एक राक्षस उसके देखने में आया। उसके केश पीले थे, जिससे वह दावानल से प्रदीप्त पर्वत समान दिखता था, अग्निज्वाला जैसी जिह्वा से सर्पसमान दारुण और विकराल उसका मुख था, कैंची जैसे उसके भयंकर हाथ थे, ताल जैसे लम्बे व कृश उसके चरण थे, मानो काजल से ही घड़ा हुआ हो वैसा वह अमावस्या के अंधकार जैसा श्यामवर्णी था और उसने विकराल सिंह का चर्म ओढ़ा था। वह राक्षस वैदर्भी को देखकर बोला, 'क्षुधा से कृश उदरवाले मुझे कई दिन के बाद अच्छा भक्ष्य प्राप्त हुआ है, इसलिए अब तुझे मैं तुरंत खा जाउँगा।' यह सुनकर नलपत्नी भयभीत हुई पर धैर्य रखकर बोली, 'अरे राक्षस ! पहले मेरा वचन सुन ले, फिर तुझे जो योग्य लगे वह कर। जो जन्मता है उसे मृत्यु तो जरुर प्राप्त होगी ही, परंतु जब तक वह कृतार्थ न हुआ हो तब तक उसे मृत्यु का भय है, परंतु मैं तो जन्म से लेकर परम अर्हंत भक्त होने से कृतार्थ ही हूँ, इसलिए वह भय मुझे नहीं है, परंतु तू परस्त्री का स्पर्श मत करना व मेरा स्पर्श करके तो तू सुखी भी नहीं होगा। हे मूढात्मा ! मेरे आक्रोश से तू बेमोत मारा जायेगा, इसलिए पल भर सोच ले।' दवदंती का ऐसा धैर्य देखकर राक्षस खुश हुआ। इसलिए उसने कहा, 'हे भद्रे ! मैं तेरे पर संतुष्ट हुआ हूँ, तो कह, तेरा क्या उपकार करुं ?' वैदर्भी बोली, 'हे देवयोनि निशाचर[4] ! यदि तू संतुष्ट हुआ है तो मैं तुझे पूछती हूँ कि मेरे पति का समागम कब होगा ?'

१. तंबू २. एक प्रकार का वाजिंत्र ३. मोची की क्रिया - पादरक्षक पहनाना अर्थात् कीचड़ से मानो पैरों में जूते पहने हो ऐसे दिखने लगे। ४. निशाचर - राक्षस। ये दो प्रकार के होते है, देवजाति और मनुष्यजाति। रावणादिक को मनुष्यजाति के राक्षस समझना चाहिए।

अवधिज्ञान से जानकर उस राक्षस ने कहा, 'हे यशस्विनी ! जब प्रवास के दिन से बारह साल सम्पूर्ण हो जायेंगे तब, पिता के घर रहते हुए तुझे तेरा पति नलराजा स्वैच्छा से आकर मिलेगा, इसलिए अब धीरज रख। हे कल्याणी ! यदि तू कहे तो तुझे अर्ध निमेष में तेरे पिता के घर पहुँचा दूं। इस मार्ग पर चलने का प्रयास क्यों करती है ?' दवदंती बोली, "हे भद्र ! तुमने नल के आगमन की बात की है इसलिए मैं कृतार्थ बनी हूँ। मैं पराये पुरुष के साथ नहीं जाती, इसलिए जा, तेरा कल्याण हो।" फिर वह राक्षस अपना ज्योतिमय स्वरुप बताकर विद्युत के राशि की तरह पल भर में आकाश में उड गया।

अब अपने पति का वियोग बारह साल तक जानकर दवदंती ने सतीत्वरुप वृक्ष के पल्लव जैसा इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया, "जब तक नलराजा नहीं मिलेंगे तब तक लाल वस्त्र, तांबूल, आभूषण, विलेपन व विकृति[1] भी मैं ग्रहण नहीं करुंगी।" ऐसा अभिग्रह लेकर उस रमणी ने वर्षाऋतु निर्गमन करने हेतु निर्भय होकर एक गिरिगुहा में निवास किया। वहां उसने श्री शांतिनाथ का मृत्तिकामय बिम्ब बनाकर अपने निर्मल हृदय की भाँति गुहा के एक कौने में स्थापित किया। फिर स्वयं वन में जाकर अपने आप झडे हुए पुष्प लाकर वह सोलहवें तीर्थंकर की त्रिकाल पूजा करने लगी, और आर्हती[2] अबला चतुर्थादि तप के अंत पर बीजरहित ऐसे प्रासुक फल से पारणा करते हुए वहां रही।

जब उस सार्थवाह ने अपने सार्थ में नल की प्रिया को देखा नहीं तब 'उसका कुशल हो' यूं चिंतवन करते हुए उसके पादचिह्न के पीछे पीछे चला। वह इस गुहा में आया तो वहां उसने समाधि द्वारा अरिहंत के बिम्ब का पूजन करती हुई दवदंती को देखा। वैदर्भी को कुशल देखकर सार्थवाह को हर्ष हुआ। फिर विस्मय से नैत्र फैलाकर उसको नमन करके वह भूमि पर बैठा। दवदंती अर्हंत पूजा समाप्त करके स्वागत प्रश्न पूछकर अमृत जैसी मधुर वाणी से सार्थवाह के साथ बात करने लगी। इस वार्तालाप को सुनकर वहां नज़दीक रहने वाले कुछ तापस मृग की भाँति ऊँचे कान करके तत्काल वहां आये। उस समय दुर्धर जलधारा से पर्वत पर छैनी से ताडन करता हो त्यों मेघ बरसने लगा। भाले जैसी मेघधारा से घायल होते वे तापस 'अब हम कहां जायेंगे ? और इस जल से कैसे बचेंगे ?' यूं बोलने लगे। तिर्यंच प्राणियों की भाँति 'कहाँ भाग जाय' ऐसी चिंता से आतुर बने हुए उन तापसों को देखकर भैमी[3] ने 'तुम डरना मत' यूं ऊँचे स्वर में कहा। फिर एक मर्यादा कुण्ड करके वह धुरंधर सती इस प्रकार मनोहर वाणी बोली - 'यदि मैं सचमुच सती हूँ, सरल मनवाली हूँ और आर्हती श्राविका हूँ तो यह बरसात इस कुण्ड के बाहर अन्यत्र बरसे।' तत्काल उसके सतीत्व के प्रभाव से ज्यों कुंड पर छत्र धरा

१. दूध-दहीं, घी, तैल, गुड और पकवान्न ये छः विगय। ये विकृति (विकार करने वाली) समझनी चाहिए।
२. अरिहंत को माननेवाली सेविका। ३. भीमराजा की पुत्री ने अथात् दमयंती ने।

हो त्यों उतनी जमीन पर जल गिरना बंद हुआ। उस समय जल से धुले हुए इस पर्वत का प्रदेश नदी में स्नान करने से निर्मल व श्याम शरीरवाले हाथी समान शोभा पाने लगा। चारोंओर बरसात बरसने से गिरि की गुहाएं मेघ की शोभा से पूर्ण हो गई हो त्यों जल से भर गयी।

इस प्रकार उसका प्रभाव देखकर सब सोचने लगे कि - 'जरुर यह कोई देवी है, क्योंकि मानुषी का ऐसा रूप या शक्ति हो नहीं सकती।' फिर स्वच्छ बुद्धिवाले वसंत सार्थवाह ने उसे पूछा, 'भद्रे ! कहिए, आप यह किस देव की पूजा करती हो ?' दवदंती बोली, 'सार्थवाह ! ये अरिहंत परमेश्वर हैं, ये तीन लोक के नाथ और सांसारिक प्राणियों की प्रार्थना में कल्पवृक्षरुप है। मैं इनका ही आराधन करती हूँ, उनके प्रभाव से ही यहां निर्भय रहती हूँ, और व्याघ्र वगैरह शिकारी प्राणी भी मुझे कुछ कर नहीं सकते।' फिर वैदर्भी ने वसंत सार्थवाह को अर्हंत का स्वरुप व अहिंसा वगैरह आर्हत् धर्म कह सुनाया। वसंत ने तत्काल वही धर्म स्वीकारा और दवदंती को हर्षपूर्वक कहा, 'आप सचमुच धर्म की कामधेनु हो, और हमारे सद्नसीब से हमारी नज़रों में पडी हो।' उस समय उसकी वाणी से अन्य तापसों ने भी त्याज्य व स्वीकार्य के जानकार होकर ज्यों चित्त में पिरोया हो त्यों धर्म को भावपूर्वक स्वीकारा और उस धर्म से सुवासित होकर अपने तापस धर्म की निंदा करने लगे, क्योंकि "पयपान करना मिले तो वह मांडी क्यों चाहे ?" फिर वसंत सार्थवाह ने वहां पर एक शहर बसाया, और वहां स्वयं व अन्य कुछ शाहुकारों ने आकर निवास किया। वहां पाँचसौं तापसों ने प्रतिबोध पाया, इसलिए वह नगर **तापसपुर** ऐसे नाम से प्रसिद्ध बना। अपने सच्चे स्वार्थ को जाननेवाले सार्थवाह ने अपने अर्थ (द्रव्य) को कृतार्थ करने के लिए उस नगर में श्री शांतिनाथ का चैत्य बनवाया। वहां रहकर वह सार्थवाह, तापसों और सर्व नगरजनों सहित अर्हंद्धर्म में परायण होकर अपना समय बिताने लगे।

एक बार दवदंती ने आधी रात को पर्वत के शिखर पर से सूर्य की किरणों जैसा प्रकाश देखा, और उसके आगे पतंगों की तरह उछलते और गिरते देव, असुर व विद्याधरों को देखा। उनके जय जय शब्द के कोलाहल से जाग चूके सर्व वणिकों और तापसों ने आश्चर्य से ऊँचे देखा। फिर वैदर्भी उन वणिकजनों व तापसों को साथ लेकर भूमि और अंतरिक्ष के बीच में मानदण्ड समान ऊँचे उस गिरि पर चढ़ी। वहाँ पहुँची तो **श्री सिंहकेसरी मुनि** को केवलज्ञान उत्पन्न होने से देवताओं द्वारा शुरु की गई उनके केवलज्ञान की महिमा उसको दिखाई दी। फिर उन सबने केवली मुनि को द्वादशावर्त वंदना की, वृक्ष के नीचे ज्यों पथिक बैठे त्यों उनके चरणकमल के पास बैठे। उस समय उन सिंहकेसरी मुनि के गुरु **यशोभद्रसूरि** वहां आये, वे उनको केवली हुए जानकर वंदना करके उनके आगे बैठे। फिर करुणारस के सागर श्री सिंहकेसरी मुनि ने अधर्म के मर्म का बोध देनेवाली धर्मदेशना इस प्रकार दी - 'इस संसार में भ्रमण करते हुए प्राणियों को मनुष्यजन्म पाना अति दुर्लभ है, उस मनुष्यजन्म को पाकर

स्वयं बोये हुए वृक्ष की तरह अवश्य उसे सफल करना चाहिए। हे सद्बुद्धि मनुष्यों ! इस मनुष्यजन्म का मुक्तिदायक ऐसा जीवदयाप्रधान आर्हत्धर्मरुप फल है, उसे आप ग्रहण करें।' इस प्रकार श्रोताओं के श्रवण में अमृत जैसा पवित्र आर्हत् धर्म कहने के बाद तापसों के कुलपति का संशय दूर करने के लिए वे महर्षि बोले, "इस दवदंती ने आपको जो धर्म कहा है, वह बराबर है। यह पवित्र स्त्री आर्हत् धर्म के मार्ग की यात्री है, अन्यथा वह नहीं कहती। यह स्त्री जन्म से ही महासती और आर्हंती है और आपने इसे प्रतीत भी किया है, क्योंकि उसने रेखाकुंड में मेघ को गिरते हुए रोक रखा था। इसके सतीपन और आर्हतीपन से संतुष्ट बने देवता सदा उसके सान्निध्य में रहते हैं, इसलिए अरण्य में भी उसका कुशल होता है। पहले इसके हुंकार मात्र से इस सार्थवाह का संघ चोर लोगों से बच गया था। इससे बढ़कर दूसरा क्या प्रभाव होगा ?"

केवली भगवंत इस प्रकार कह रहे थे कि उतने में कोई महर्द्धिक देव वहां आया। उस केवली को वंदना करके मृदु वाणी से दवदंती प्रति बोला - 'हे भद्रे ! इस तपोवन में कुलपति का मैं **कर्पर** नाम का एक शिष्य था, जो तप के तेज से बड़ा दुःसाध्य था। मैं हंमेशा पंचाग्नि को साधता था फिर भी उस तपोवन के तापस मुझे नहीं पूजते थे और वचन से भी अभिनंदन देते नहीं थे, इसलिए क्रोधरूपी राक्षस से आविष्ट बना मैं उस तपोवन को छोड़कर जल्दी से अन्यत्र जाने लगा। चलते चलते गाढ़ अंधकारवाली रात्रि हुई, उस समय भी तेज चलते हुआ मैं अचानक कोई हाथी ज्यों गहरी गर्ता में गिर जाय त्यों गिरिकंदरा में गिर गया। उस गिरि के पाषाण के साथ टकराते ही जीर्ण छीप के दौने की भाँति मेरे सब दांत सहस्र प्रकार से विशीर्ण हो गये, अर्थात् उसके टुकटे टुकडे हो गये। दाँत गिरने से पीडातुर होकर मैं वहां सात रात्रि तक पडा रहा, फिर दुःस्वप्न की तरह तापसों ने तो मेरे साथ बात तक नहीं की। जब मैं उनके स्थान में से निकला तब घर में से सर्प निकल जाने की भाँति उन तापसों को उलटा विशिष्ट सुख मिला था। इसलिए उन तापसों पर जलते अग्नि जैसा दुःखानुबंधी क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर जाज्वल्यमान क्रोध से दुर्मनवाला मैं मृत्यु पाकर इसी तापसवन में बड़ा विषधर (सर्प) बना। एक बार उनको काटने के लिए मैं फन फैलाकर दोडा, तो आपने मेरी गति को रोकनेवाला नवकारमंत्र पढ़ा। जब मेरे कान में नवकार मंत्र के अक्षर पड़े तो ज्यों संडेसे से पकडा गया हो त्यों मैं आपकी और थोड़ा सा भी नहीं चल पाया। फिर शक्तिहीन होकर मैंने एक गिरिगुहा में प्रवेश किया, और वहां रहकर दर्दुर वगैरह जीवों का भक्षण करके जीने लगा। हे परम आर्हती ! एक बार बरसात बरस रहा था तब आप तापसों को धर्म कह रही थीं, उसमें मैंने सुना कि 'जो प्राणी जीवहिंसा करता है वह निरंतर संसार में भटकता है व मरुभूमि के पथिक की तरह निरंतर दुःख पाया करता है।' यह सुनकर मुझे विचार आया कि 'मैं पापी सर्प तो

हंमेशा जीवहिंसा में ही तत्पर हूँ, तो मेरी क्या गति होगी ?' इस प्रकार सोचते हुए तर्क-वितर्क करते हुए मुझे याद आया कि 'ऐसे तापसों को मैंने कही देखा है।' उस समय ही मुझे निर्मल जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, इससे मानों कल की ही बात हो त्यों पूर्वजन्म का मेरा पूरा कृत्य मुझे याद आया, तो उछलते तरंगवाली नहर के जल की भाँति मुझे अक्षय वैराग्य उत्पन्न हुआ। मैंने तत्काल स्वयंमेव अनशन व्रत ग्रहण किया। वहां मृत्यु पाकर मैं सौधर्म देवलोक में देवता बना। तप के क्लेश को सहन करनेवाले प्राणियों से मोक्ष भी दूर नहीं है। हे देवी ! मैं कुसुमसमृद्ध नाम के विमान में **कुसुमप्रभ** नाम का देव बना हूँ, और आपके प्रसाद से स्वर्ग के सुख भोगता हूँ। यदि आपके धर्मवचन मेरे कान में न पडे होते तो पापरुपी पंक में गिरे वराह की तरह मेरी क्या गति होती ? हे भद्रे ! अवधिज्ञान से आपको मेरी परम उपकारी जानकर मैं यहां आपके दर्शन करने आया हूँ। आज से मैं आपका धर्मपुत्र हूँ।''

इस प्रकार वैदर्भी को कहकर फिर उस देव ने गाँव से आये हुए बंधु की तरह सर्व तापसों को मधुर और स्नेहमय वाणी से कहा, 'हे तापसों ! पूर्व जन्म में आपके उपर मैंने जो कोपाचरण किया है उसे क्षमा करना और स्वीकारा हुआ श्रावकव्रत आप अच्छी तरह पालना।' यूं कहकर उस देव ने सर्प की काया को गिरिगुहा में से बाहर लाकर नंदीवृक्ष पर लटका दी और कहा, 'हे लोगों ! जो किसी पर क्रोध करेगा वह उसके फल से, मैं कर्पर तापस ज्यों सर्प बना था त्यों, ऐसा सर्प बनेगा।'

उन तापसों का कुलपति जो पहले से ही सम्यक्त्वधारी था, वह भाग्योदय से इस बार परम वैराग्य को प्राप्त हुआ। फिर तापसों के अधीश्वर ने केवली भगवंत को नमन करके वैराग्यवृक्ष के उत्तम फलरुप चारित्रधर्म की याचना की। केवली बोले, 'आपको यशोभद्रसूरि व्रत देंगे। समतारुप धनवाले वे मुनि मेरे भी गुरु हैं।' फिर अंतर में विस्मित बने कुलपति ने केवली को पूछा, 'हे भगवन ! कहिए आपने दीक्षा क्यों ली थी ?' केवली बोले, ''कौशला नगरी में नलराजा का अनुज बंधु कुबर उत्तम वैभव संयुक्त राज्य करता है, उसका मैं पुत्र हूँ। संगा नगरी के राजा केसरी ने बंधुमती नाम की अपनी पुत्री मुझे दी थी। पिता की आज्ञा से वहां जाकर मैं उससे ब्याहा। फिर उस नवोढा को लेकर मेरे नगर की ओर आ रहा था। मार्ग में मानो मूर्तिमंत कल्याण हो ऐसे अनेक शिष्यवाले इन गुरु को समवसरित हुए मैंने देखा, इसलिए वहां जाकर मैंने परमभक्ति से उनको वंदना की और कर्ण में अमृत की प्याऊ समान उनकी धर्मदेशना मैंने सुनी। देशना के अंत में मैंने पूछा कि 'मेरा आयुष्य कितना है ?' तो उन्होंने उपयोग देकर कहा कि 'सिर्फ पांच दिन का आयुष्य है।' इस प्रकार मृत्यु समीप जानकर मैं भय से कम्पित हुआ, क्योंकि सर्व प्राणियों को बडे से बडा भय मृत्यु का है। सूरि बोले, 'वत्स ! भय पाना नहीं। तू मुनिपना ग्रहण कर, एक दिन की दीक्षा भी स्वर्ग और मोक्ष देती है।' फिर

दीक्षा लेकर मैं उनकी आज्ञा से यहाँ आया हूँ, यहां शुक्ल ध्यान में रहने से मेरे धातीकर्मों का क्षय होते ही मुझे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।'' इस प्रकार कहकर वे सिंहकेसरी मुनि योगनिरोध करके भवोपग्राही कर्मों का नाश करके परमपद को प्राप्त हुए। फिर शुभाशयवाले देवों ने उनके शरीर को पुण्यक्षेत्र में ले जाकर उनका अग्निसंस्कार किया।

यथार्थ नामवाले **विमलमति** कुलपति ने उस समय श्री यशोभद्रसूरि के चरण समीप दीक्षा ग्रहण की उस समय वैदर्भी ने भी सूरि को कहा कि 'हे भगवन ! मुझे भी मुक्ति की मातारुपी दीक्षा दीजिए।' यशोभद्रसूरि बोले, 'हे दवदंती ! आपको नलराजा के साथ अभी और भोग भोगने हैं, इसलिए आप व्रत लेने योग्य नहीं हो।' फिर प्रातःकाल हुआ तो सूरि पर्वत पर से उतरे और अपने चरण से **तापसपुर** को पवित्र किया। करुणानिधि और अर्हत्धर्म के उपदेशक सूरि ने वहां चैत्य को नमस्कार करके नगर के लोगों में सम्यक्त्व आरोपित किया। धर्मध्यान परायण वैदर्भी मलिन वस्त्र धारण करके उस गुहागृह में भिक्षुकी की तरह सात वर्ष तक रही।

एक बार किसी पथिक ने आकर कहा कि 'हे दवदंती ! फलाने प्रदेश में मैंने आपके पति को देखा है।' उसके वचनामृत का पान करते हुए दवदंती के अंग में रोमांच प्रकट हो गया। ''प्रेम का लक्षण ऐसा ही होता है'' 'ऐसे वचन से मुझे यह कौन तृप्त कर रहा है' - वह जानने के लिए शब्दवेधी बाण की तरह वह पथिक के शब्दानुसार दौड़ पड़ी, परंतु दवदंती को गुहा में से खिंचनेवाले जमानती की तरह वह पथिक उसे बाहर लाकर किसी जगह अंतर्धान हो गया। उसने चारों और देखा परंतु कहीं भी मनुष्य दिखाई नहीं दिया, और अपनी गुफा का त्याग हो गया (मिली नहीं) तो वह उभयभ्रष्ट हुई। ''अहो ! दैव दुर्बल का ही घातक है।'' फिर वह महा अरण्य में आ गई। क्षण में चलती है, क्षण में खड़ी रहती है, बैठती है, लोटती है, विलाप करती है और अश्रांत रुदन करती है। इस प्रकार बार बार करते हुए व 'अब मैं क्या करुं ? कहाँ जाऊँ ?' यूं सोचते हुए विचारवान दवदंती आदरपूर्वक उस गुहा में जाने के लिए वापस लौटी। वहां मार्ग में एक राक्षसी ने उसे भेड को शेरनी देखे त्यों देखा। तत्काल अपनी मुखरुपी गुहा को फैलाकर 'खाऊँ खाऊँ' यूं कहने लगी। उस समय वैदर्भी बोली, 'अरे राक्षसी ! यदि मेरे मन में भी मेरे पति नल के सिवा अन्य कोई पुरुष न हो तो उस सतीत्व के प्रभाव से तू हताश बन जा। अष्टादस दोष रहित सर्वज्ञ भगवान ही यदि मेरे ईष्टदेव हो तो तू हताश हो जा। अट्ठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य में तत्पर, विरत और दयालु साधु यदि मेरेगुरु हो तो तू हताश हो जा। और अरे राक्षसी ! जन्म से लेकर मेरे हृदय में वज्रलेप की तरह यदि आर्हत् धर्म ही रहा हो तो तू हताश हो जा।'' इस प्रकार के उसके वचन सुनते ही उस राक्षसी ने दवदंती का भक्षण करनेकी ईच्छा छोड़ दी। 'पतिव्रताएं भी महर्षियों समान अमोघवचना होती है।' फिर 'यह कोई सामान्य स्त्री नहीं है, पर पूर्ण प्रभावशाली स्त्री है' ऐसा सोचकर उसे प्रणाम करके ज्यों

स्वप्न में आयी हो त्यों वह राक्षसी तत्काल अंतर्धान हो गयी।

वहां से दवदंती आगे चली। वहां रेत के ही तरंगवाली, पर्वत से निकली हुई एक निर्जन नदी उसे दिखाई दी। शून्य उपवन की नहर जैसी निर्जल नदी के पास आकर तृषा से जिसका तालू सूख गया था ऐसी दवदंती ने इस प्रकार कहा कि 'यदि मेरा मन सम्यग् दर्शन से अधिवासित हो तो इस नदी में गंगा के समान उत्कल्लोल जल हो जाय।' इस प्रकार कहकर उसने पैर की एडी से भूतल पर प्रहार किया तो तत्काल इन्द्रजाल की तरह वह नदी सजला हो गयी। फिर मानो क्षीरसागर की शिरा में से उत्पन्न हुआ हो वैसा स्वादिष्ट और क्षीर जैसा उज्ज्वल उसका स्वच्छ जल दवदंती ने हाथिनी की तरह पिया। वहां से आगे चलते हुए दवदंती श्रांत होकर एक बड़ के वृक्ष नीचे बटवासी यक्षिणी की भाँति बैठी। उस समय कुछ पथिक कोई सार्थ में से वहां आये, उन्होंने दवदंती को वहां बैठी हुई देखकर पूछा, 'हे भद्रे ! आप कौन हैं ? हमें देवी जैसी लगती हो।' वैदर्भी बोली, 'मैं मानुषी स्त्री हूँ, किसी सार्थ में से भ्रष्ट होकर इस अरण्य में रहती हूँ। मुझे तापसपुर जाना है, इसलिए मुझे उसका मार्ग बताइए।' वे बोले, 'जिस दिशा में सूर्य अस्त पाये, उस दिशा का आश्रय करो। हम अन्यत्र जाने के उत्सुक हैं इसलिए आपको मार्ग बताने के लिए समर्थ नहीं हैं। हम जल ढूँढने निकले हैं, उस जल को लेकर हम यहां समीप में हमारा सार्थ ठहरा है वहां जायेंगे, इसलिए यदि आप वहाँ आयेगी तो आपको हम किसी बस्तीवाले नगर में ले जायेंगे।' फिर वह उनके सार्थ में गयी। वहां **धनदेव** नाम के दयालु सार्थवाह ने उसे पूछा, 'हे भद्रे ! तू कौन है ? और यहां कहां से आयी है ?' वैदर्भी ने कहा कि 'हे महाभाग ! मैं वणिकपुत्री हूँ। पति के साथ पिता के घर जा रही थी। मार्ग में मेरे पति मुझे सोती हुई छोड़कर चले गये हैं। आपके सेवक पुरुष सहोदर बंधु की तरह मुझे तुम्हारे पास ले आये हैं, तो मुझे अब किसी शहर में पहुँचाइए।' सार्थवाह बोला, 'हे वत्से ! मैं अचलपुर नगर जा रहा हूँ तो तू प्रसन्नतापूर्वक हमारे साथ चल, तुझे पुष्प की भाँति मैं वहां ले जाऊँगा।' इस प्रकार कहकर वह स्नेही सार्थवाह अपनी पुत्री की तरह उसे उत्तम वाहन में बैठाकर वहां से सत्वर चलने को प्रवृत्त हुआ।

आगे बढ़ते हुए उस सार्थवाह शिरोमणि ने जलप्रपात वाले एक गिरिकुंज में सार्थ को निवास कराया। वहां वैदर्भी स्वस्थ होकर सुख से सो रही थी, रात्रि में सार्थ के किसी मनुष्य को नवकार मंत्र बोलते हुए उसने सुना। इससे उसने सार्थवाह को कहा कि, 'यह कोई नवकार मंत्र बोलनेवाला मेरा स्वधर्मी बंधु है, उसे आपकी आज्ञा से मैं देखना चाहती हूँ।' पिता की भाँति उसकी यह इच्छा पूर्ति के लिए सार्थवाह उसे नवकार मंत्र बोलनेवाले श्रावक के आश्रम में ले गया। वह बंधु जैसा श्रावक तंबू मे रहकर चैत्यवंदन करता था, वहां जाकर उसने शरीरधारी शम हो वैसा वैदर्भी ने उसे देखा। उसनेचैत्यवंदन किया तब तक भीमकुमारी नेत्र

में अश्रु लाकर उस महाश्रावक की अनुमोदना करते हुए वहां बैठी रही। वह श्रावक वहां जिस की वंदना कर रहा था उस वस्त्र पर अंकित व मेघ समान श्यामरंगी आर्हत् बिम्ब को देखकर उसने दर्शन किये। चैत्य वंदन हो जाने के बाद नलपत्नी ने स्वागत-मंगलादि करके उसको पूछा कि 'हे भ्रात ! यह किस अर्हत् का बिम्ब है ?' वह श्रावक बोला, 'हे धर्मशील बहन ! भविष्य में होनेवाले उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ परमात्मा का यह बिम्ब है। इस भावि तिर्थंकर का बिम्ब मैं किस कारण से पूजता हूँ तो हे कल्याणी ! मेरे कल्याण का कारण सुनो। समुद्ररुपी कटिमेखलावाली पृथ्वी में मुकुटरत्न समान कांची (द्वारिका) नाम की नगरी है। वहां रहनेवाला मैं वणिक हूँ। एक बार धर्मगुप्त नाम के ज्ञानी मुनि वहां पधारे। वे रतिवल्लभ नाम के उद्यान में पधारे। मैंने वहां जाकर उनको वंदना करके पूछा कि, 'हे स्वामिन् ! मेरा मोक्ष किस प्रभु के तीर्थ में होगा ?' उन्होंने कहा कि 'मल्लिनाथ अर्हंत के तीर्थ में तू देवलोक में से च्यूत होकर प्रसन्नचन्द्र नाम का मिथिलापुर का राजा बनेगा। वहां उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ के दर्शन से केवलज्ञान पाकर तू निर्वाणपद पायेगा।' हे धर्मज्ञ बहन ! तब से मुझे श्री मल्लिनाथ पर अत्यंत भक्ति हुई है, इसलिए इस वस्त्र पर उनका बिंब अंकित करके मैं हंमशा उसे पूजता हूँ।' इस प्रकार अपना वृतांत सुनाकर बाद में उस श्रावक ने कहा कि 'हे पवित्र दर्शनवाली बहन ! अब आप कौन हो ? यह भी आपके इस धर्मबंधु को बताओगी ?' उसके ऐसे प्रश्न से नेत्र में अश्रु लाकर धनदेव सार्थवाह को दवदंति द्वारा कहा हुआ पतिवियोग वगैरह का पूरा वृत्तांत उस उत्तम श्रावक को कह सुनाया। वह सुनकर श्रावक के नेत्रों में भी अश्रु आ गये, और हाथ पर ठोड़ी रखकर वह सोचने लगा। थोड़ी देर में ही दवदंती का दुःख उसके हृदय में समाता न हो त्यों दुःख से व्याप्त होकर वह बोला, 'हे बहन ! आप शोक मत करना। ऐसे दुःख का कारणभूत तुम्हारा कर्म ही उदित हुआ है, परंतु ये सार्थवाह आपके पितारुप हैं और मैं भ्राता हूँ, इसलिए यहां सुख से रहो।'

प्रातःकाल में सार्थवाह अचलपुर आया, वहां वैदर्भी को छोड़कर वह दूसरी ओर गया। यहां तृषातुर बनी वैदर्भी ने उस नगरद्वार के समीप बनी हुई वापिका में जल पीने के लिए प्रवेश किया। उस समय वहां जल भरती हुई नगरस्त्रियों को वह मूर्तिमंत जलदेवता समान दिखने लगी। इतने में जल के जिस तट पर वह खडी थी वहां चन्दनगोह ने आकर उसका बाँया चरण पकड़ा, क्योंकि "दुःखी पर सौहार्द की तरह दुःख ही आकर गिरते हैं।" दवदंती ने तीन बार नवकार मंत्र का पाठ किया तो उसके प्रभाव से इन्द्रजालिक जैसे गले में रखी हुई वस्तु को छोड़ देता है वैसे चन्दनगोह ने उसका चरण छोड़ दिया। फिर उस वापिका में हाथ, पैर व मुख धोकर, उसके सुन्दर जल का पान करके वैदर्भी हंसी की भाँति मंद मंद गति से चलते हुए वापिका से बाहर निकली। फिर शीलरत्न के टोकरेरुप दवदंती खेदयुक्त चित्त से वापिका के

कण्ठे पर बैठी और नजरों से नगर को पवित्र करने लगी।

उस नगरी में गरुड जैसा पराक्रमी **ऋतुपर्ण** नाम का राजा था। उसे चन्द्र जैसे उज्ज्वल यशवाली **चन्द्रयशा** नाम की रानी थी। उस चन्द्रयशा की दासियां सिर पर जलकुंभ लेकर परस्पर विनोद करते हुए उस वापिका में जल भरने आयी। उन दासियों ने दुर्दशा पायी हुई परंतु देवी समान दवदंती को देखा। ''पद्मिनी कभी कीचड में मग्न हो जाय तो भी वह पद्मिनी ही है।'' वैदर्भी के रुप को देखकर चकित बनी हुई वे उसकी प्रशंसा करते हुए वापिका में धीरे धीरे उतरी और फिर धीमे धीमे बाहर निकली। उन्होंने राजमहल में जाकर, उस रमणी के रुप की बात, धन के भण्डार की तरह अपनी स्वामिनी चन्द्रयशा रानी को कही। रानी ने दासियों को कहा कि 'उसे यहां तत्काल ले आओ, वह मेरी पुत्री चन्द्रवती की बहन जैसी होगी।' तत्काल दासियां उस वापिका पर आयी, वहां नगराभिमुख बनी लक्ष्मी जैसी दवदंती वहीं पर बैठी हुई उन्हें नज़र आयी। उन्होंने कहा, ''भद्रे ! इस नगर के राजा ऋतुपर्ण की रानी चन्द्रयशा आपको आदर से बुलाती है। और उन्होंने कहा है कि तू मेरी चन्द्रवती नाम की पुत्री तुल्य है' इसलिए वहां चलिए और दुःख को जलांजलि दीजिए। यदि यहां यूं शून्य होकर बैठी रहोगी तो किसी दुरात्मा से छल पाकर या व्यंतरादिक से आविष्ट होकर अनर्थ पाओगी।'' इस प्रकार चन्द्रयशा के कहलवाए हुए वचनों से जिसका मन आर्द्र हुआ है ऐसी दवदंती पुत्रीपन के स्नेह से बिक गई हो त्यों वहां जाने के लिए तैयार हुई। 'आपको हमारी स्वामिनी ने पुत्री रुप में माना, इसलिए आप भी हमारी स्वामिनी ही हो।' यूं कहकर विनय दर्शाते हुए वे दासियां उसे राजमहल में ले गयी।

यह चन्द्रयशा दवदंती की माता पुष्पदंती की सहोदरा (बहन) थी, इसलिए वह उसकी मौसी लगती थीं, परंतु वह वैदर्भी को मालूम न था, इसलिए वह उसे कैसे पहचाने ? लेकिन 'दवदंती नाम की मेरी भानजी है' यह चन्द्रयशा जरुर जानती थी, परंतु उसे बाल्यावस्था में देखा हुआ होने से इस समय वह भी उसे पहचान न सकी फिर भी रानी ने दूर से ही उसे पुत्री प्रेम से देखा, क्योंकि 'ईष्ट-अनिष्ट का निर्णय करने के लिए अंतःकरण मुख्य प्रमाण है।' फिर चन्द्रयशा ने मानो भ्रम से उसके अंग की कृशता को दूर करना चाहती हो त्यों उसे आदरपूर्वक आलिंगन किया। वैदर्भी नेत्र में से अश्रु बहाते हुए रानी के चरण में झुकी, उस समय उसके अश्रुजल से रानी के चरण धुलते ही मानो उसकी प्रीति का बदला चुकाने के लिए चरण प्रक्षालन करती हो त्यों दिखने लगी। फिर चन्द्रयशा ने पूछा कि, 'आप कौन हो ?' तो उसने ज्यों सार्थवाह को कहा था त्यों पूरा वृत्तांत उसे कह सुनाया। यह सुनकर चन्द्रयशा बोली, 'हे कल्याणी ! राजकुमारी चन्द्रवती जैसी तू भी मेरे घर सुख से रह।' एक बार चन्द्रयशा ने अपनी पुत्री चन्द्रवती को कहा, 'वत्से ! यह तेरी बहन, मेरी भानजी दवदंती के जैसी है, पर उसका आगमन यहां संभव नहीं है, क्योंकि हमारे भी स्वामी नलराजा हैं, उसकी वह पत्नी है। और

उसकी नगरी यहां से एक सो चव्वालीस योजन दूर है तो उसका यहां आगमन कैसे संभव है ? और उसकी ऐसी दुर्दशा भी कहां से आ सकती है ?'

चन्द्रयशा रानी नगर के बाहर जाकर प्रतिदिन दीन व अनाथ लोगों को यथारुचि दान देती थी। एक बार वैदर्भी ने देवी को कहा, 'आपकी आज्ञा हो तो आपकी ओर से मैं दान दूँ तो शायद कभी मेरे पति याचक वेष में आ पहुँचे तो पहचान लूं।' तब से चन्द्रयशा ने यह कार्य उसे सौंपा। वह पति की आशा में क्लेश सहन करके यथास्थित रुप से दान देने लगी। वैदर्भी प्रत्येक याचकों को हररोज पूछती थी कि 'आपने ऐसा रुपवान कोई पुरुष को देखा है ?'

एक बार भीमसुता (दवदंती) दानशाला में खड़ी थी, उतने में जिसके आगे डिंडिम बजता है ऐसे एक चोर को रक्षक वधस्थान की ओर ले जाते दिखाई दिये। उसे देखकर वैदर्भी ने रक्षकों को पूछा कि - 'इस चोर ने क्या अपराध किया है कि जिससे उसे ऐसी वध की सजा हुई है ?' रक्षकों ने कहा, 'इस पुरुष ने राजकुमारी चन्द्रवती की रत्न-टोकरी चोरी है, इस गुनाह में उसे वध की सजा हुई है।' वैदर्भी की दयालु मूर्ति देखकर चोल बोला, 'देवी ! आपकी दृष्टि मेरे पर पड़ी है, तो अब मैं मृत्यु की शरण में कैसे जा सकता हूँ ? आप ही मेरी शरणदाता बने।' फिर दवदंती रक्षकों के पास आयी और चोर को कहा, 'तू भय मत पाना, तेरा जीवित रहने से अवश्य कुशल होगा।' इस प्रकार कहकर दवदंती बोली, 'यदि मैं सती हूँ तो इस चोर के बंधन छूट जाय।' यूं सतीपन की श्रवणा करके उसने झारी में से जल लेकर तीन बार छिड़का, तो तुरंत उस चोर के बंधन टूट गये। उस समय वहां कोलाहल मच गया। इसलिए 'यह क्या ?' यूं सोचते हुए ऋतुपर्ण राजा परिवार सहित वहां आया, चकित होकर नैत्र फैलाते हुए, दांत की कांति से अधर को उज्ज्वल करता हुआ वह नेत्ररुपी कुमुद में कौमुदीरुपी दवदंती को देखकर उसके प्रति इस प्रकार बोला, ''हे यशस्विनी ! सर्वत्र मत्स्यन्याय[1] का निषेध करने के लिए राजधर्म स्थापित किया है, जिसके द्वारा दुष्टों का निग्रह और शिष्टजनों का पालन होता है। राजा को पृथ्वी का कर लेकर उसकी चोर वगैरह के उपद्रवों से रक्षा करनी चाहिए, नहीं तो चोर वगैरह दुष्ट लोगों ने किया हुआ पाप उसे लगता है। इसलिए हे वत्से ! यदि इस रत्नचोर का मैं निग्रह न करुं तो फिर लोग निर्भय बनकर अन्य का धन हरने के लिए तत्पर बनेंगे।'' वैदर्भी बोली, 'हे तात ! मेरी नजरों के समक्ष यदि कोई देहधारी का विनाश हो तो फिर मेरा श्राविका का कृपालुपन किस काम का ? यह चोर मेरी शरण में आया है, इसलिए हे तात ! उसका अपराध क्षमा करें। उसकी पीड़ा दुष्ट रोग की भाँति मुझ में भी फैल चूकी है।'' ऐसे उस महासती और धर्मपुत्री के अति आग्रह से ऋतुपर्ण राजा ने उस चोर को छोड़ दिया। छूटे हुए चोर ने पृथ्वी की रज से ललाट पर तिलक करके दवदंती को कहा कि 'आप मेरी माता हो।' फिर प्राणदान का उपकार

१. बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को निगल जाय त्यों शक्तिमान निर्बल को परेशान करे वह मत्स्यन्याय।

रातदिन न भूलते हुए वह चोर प्रतिदिन वैदर्भी के पास आकर उसे प्रणाम करता था।

एक बार वैदर्भी ने उस चोर को पूछा, 'तू कौन है ? और कहां से आया है ? यह निःशंक होकर कह।' चोर बोला, 'तापसपुर नाम को नगर में बड़ी संपत्तिवाला वसंत नाम का सार्थवाह है। उसका मैं **पिंगल** नाम का दास हूँ। व्यसनों में आसक्त हो जाने से हारकर मैने वसंत सेठ के घर में सेंध लगायी, और अच्छा अच्छा खजाना लेकर रात्रि में वहां से भागा। हाथ में उस द्रव्य को लेकर प्राणरक्षा के लिए मैं भाग रहा था कि मार्ग में मुझे लूंटेरे मिले, उन्होंने मुझे लूंट लिया। 'दुष्टजन को कितनी कुशलता होगी ?' फिर यहां आकर इस ऋतुपर्ण राजा की सेवा में रहा। 'मनस्वी मनुष्य अन्य किसी की सेवा नहीं करता पर यदि करता है तो किसी राजा की सेवा करता है।' एक बार मैं राजमहल में घूम रहा था कि नीचबुद्धिवाले मुझे चन्द्रवती देवी का रत्न-टोकरा रखा हुआ दिखाई दिया। परस्त्री को देखकर दुर्बुद्धि व्यभिचारी की भाँति उस टोकरे को हरने के लिए मेरा मन तत्काल ललचा गया। फिर चील ज्यों हार उठा ले त्यों मैंने वह रत्नटोकरा हर लिया। फिर पैर के फने तक उत्तरीय वस्त्र करके मैं वहां से बाहर निकला, इतने में महाचतुर ऋतुपर्ण राजा ने मुझ में कुछ चोर की चेष्टाएं देखकर मुझे तत्काल पहचान लिया, क्योंकि 'चतुर जनों को कुछ भी अलक्ष्य नहीं है।' फिर राजा की आज्ञा से तुरंत ही रक्षकपुरुषों ने मुझे बांध दिया और वध करने के लिए ले चले। उस समय दूर से ही आपकी शरण स्वीकार करके वध्य भेड़ की तरह उच्च स्वर से पुकारते हुए आपने मुझे छुडाया। हे माता ! जब आप तापसपुर में से चली गयी तब विंध्याचल से लाये हुए हाथी की भाँति वसंत सेठ ने भोजन भी छोड दिया। फिर यशोभद्रसूरि और अन्य लोगों ने बहुत समझाया तब सात दिन उपवास करके उन्होंने आठवें दिन भोजन किया। एक बार लक्ष्मी में कुबेर समान वसंत सेठ महा मूल्यवान उपहार लेकर कुबर राजा को मिलने गये। उनके उपहार से संतुष्ट बने कुबर राजा ने छत्र-चँवर के चिह्नो सहित तापसपुर का राज्य वसंत सेठ को दिया, और उनको अपने सामंत का पद देकर **वसंतश्रीशेखर** ऐसा नाम स्थापित किया। कुबर राजा द्वारा बिदा किए हुए वसंत सेठ भंभावाद्य के नाद सहित तापसपुर आये और नगर के राज्य को पालने लगे।'

इस प्रकार उस चोर की हकीकत सुनकर वैदर्भी बोली, 'हे वत्स ! तूने पहले दुष्कर्म किया है इसलिए अब दीक्षा ले और संसार समुद्र तैर जा।' पिंगल ने कहा, 'माता की आज्ञा प्रमाण है।' उस समय वहां घूमते घूमते कोई दो मुनि आ पहुँचे। वैदर्भी ने निर्दोष भिक्षा से उन्हें प्रतिलाभित किया। फिर पूछा कि 'हे भगवन् ! यह पुरुष यदि योग्य है तो प्रसन्न होकर उसे दीक्षा दीजिए।' उन्होंने कहा कि 'योग्य है।' तो पिंगल ने व्रत लेने की याचना की। फिर उसे देवगृह में ले जाकर उसी समय दीक्षा दी।

एक बार विदर्भ राजा ने समाचार सुने कि 'नल राजा उसके अनुज बंधु कुबर के साथ द्युत में राजलक्ष्मी हार गये हैं और कुबर ने उन्हें प्रवासी कर दिया है। वे दवदंती को लेकर महाअटवी में गये हैं, इसके बाद वे कहाँ गये ? जीवित है या मर गये हैं ? यह कोई भी नहीं जानता।' राजा ने यह बात रानी को कही, यह सुनकर रानी पुष्पदंती ने बहुत रुदन किया। 'स्त्रियों को आतुरपने में नेत्राश्रु दूर नहीं होते।' फिर राजा ने **हरिमित्र** नाम का एक आज्ञाचतुर राजबटुक को नलराजा की खोज में भेजा। नल और दवदंती को सर्वत्र खोजता हुआ वह राजबटुक अचलपुर में आया। वहां उसने राजसभा में प्रवेश किया। राजा के समक्ष आने पर उसे चन्द्रयशा ने पूछा कि 'पुष्पदंती व उसका परिवार कुशल है ?' हरिमित्र बोला, 'हे ईश्वरी ! देवी पुष्पदंती और उसका परिवार तो कुशल है, परंतु नल व दवदंती की कुशलता के लिए चिंता है।' देवी ने पूछा, 'अरे ! यह क्या बात कह रहे हो ?' फिर बटुक ने नल व दवदंती की द्युत से हुई पूरी दुःश्राव्य स्थिति कह सुनायी। उसे सुनकर चन्द्रयशा रोने लगी। उसे देखकर पूरा राजलोक भी हर्षवार्ता का अनध्यायी हो त्यों रुदन करने लगा। जिस के उदर में क्षुधा (भुख) लगी थी ऐसा वह बटुक सर्व को दुःखातुर देखकर दानशाला में गया क्योंकि 'दानशाला भोजन में चिंतामणिरुप है।' वहां वह बटुक भोजन करने बैठा, उस समय दानशाला की अधिकारीणी के रुप में बैठी हुई अपने स्वामी की पुत्री दवदंती को उसने देखा। तत्काल उसने रोमांचित होकर दवदंती के चरणों में वंदना की, वह क्षुधा (भुख) की व्यथा भूल गया और हर्ष से प्रफूल्लित नेत्रों से बोला, "हे देवी ! ग्रीष्म ऋतु में लता जैसी आपकी ऐसी अवस्था कैसे हो गयी ? आज सद्भाग्य से आप जीवित दिखाइ दी, जिससे इस समय सर्व शुभ हुआ।" इस प्रकार दवदंती को कहकर उस बटुक ने सत्त्वर देवी चन्द्रयशा के पास जाकर बधाई दी कि 'आपकी दानशाला में ही दवदंती है।' यह सुनकर चन्द्रयशा तुरंत दानशाला में आयी और कमलिनी हंस को मिले वैसे दवदंती को आलिंगन किया। फिर बोली कि "हे वत्से ! मुझे धिक्कार है क्योंकि अद्वितीय सामुद्रिक लक्षणों से स्पष्ट लगते हुए भी मैं तुझे पहचान न पायी ! हे अनघे ! तूने भी आत्मगोपन करके मुझे क्यों छला ? कभी दैवयोग से ऐसी दुर्दशा हो जाय तो भी अपने मातृकुल[1] में क्या लज्जा रखनी ? हे वत्से ! तूने नलराजा को छोड़े या उसने तुझे छोड दिया ? अवश्य उसने ही तुझे छोड़ दिया होगा, क्योंकि तू तो महासती है, इसलिए तू उसे छोडती ही नहीं। दुर्दशा मे गिरे पति को भी यदि तू छोड दे तो अवश्य सूर्य पश्चिम दिशा में ही उदय हो जाय। अरे नल ! तूने इस सती को क्यों छोड़ दिया ? उसको मेरे पास क्यों न छोड़ गये ? ऐसी सती प्रिया को छोड़ देना क्या तेरे कुल के योग्य है ? हे वत्से ! अब मैं तेरा दुःख ग्रहण करती हूँ, इसलिए तू दुःख को छोड़ दे, और मैंने तुझे पहचाना नहीं, मेरे इस अपराध को क्षमा कर। और हे बाले !

१. माता संबधित कक्षा मे - मातुल, मौसी, मामा वगैरह के यहां।

अंधकाररुप सर्प में गरुडरुप और कृष्णपक्ष की रात्रि में भी प्रकाशित ऐसा जो तिलक तेरे जन्म से ही ललाट में सहज ही उत्पन्न हुआ है, वह कहाँ गया ?'' इस प्रकार कहकर उसने अपने मुखकमल में से थूंक का रस लेकर वैदर्भी के ललाट का मार्जन किया, और बार बार उसके सिर को सूंघने लगी। उस समय तत्काल अग्नि में तपा कर निकाले हुए सुवर्णपिंड की तरह और मेघ से मुक्त बने सूर्य की भाँति उसका ललाटतिलक चमकने लगा। फिर चन्द्रयशा ने दवदंती को देवता की प्रतिमा की तरह गंधोदक द्वारा अपने हाथों से नहलाया, और मानो ज्योत्स्ना से रसमय हो ऐसे दो उज्ज्वल और सूक्ष्म वस्त्र उसे दिए, जो उसने धारण किए। फिर हर्षरुपी जल की तलैया जैसी चन्द्रयशा प्रीति से वैदर्भी को लेकर राजा के पास आयी।

उस समय सूर्य अस्त हुआ। काजल से भाजन भरा जाय त्यों सुई से बेधा जा सके वैसे गाढ़ अंधकार से आकाश छा गया। पर वह गाढ़ अंधकार प्रहरियों ने रोक रखा हो त्यों वैदर्भी के तिलकतेज से राजसभा में घुस नहीं सका। राजा ने देवी को पूछा, 'यह सूर्य अस्त पाया है, और यहां दीपक या अग्नि नहीं है, फिर भी दिन जैसा यह प्रकाश कहां से आ रहा है ?' तो रानी ने ज्योतिरुप जल के बड़े द्रह जैसा व जन्म से ही सहज सिद्ध हुआ वैदर्भी का भालतिलक राजा को दिखाया। फिर राजा ने कौतुक से तिलक को अपने हाथ से ढ़ंक दिया तो अंधकार से सभागृह गिरिगुहा जैसा हो गया। फिर हाथ उठाकर अत्यंत हर्ष पाये हुए राजा ने पितारुप बनकर दवदंती को राज्यभ्रंश वगैरह की कथा पूछी। दवदंती ने मुख नीचा करके रोते रोते नल कुबर के द्युत से शुरु करके पूरी कथा कह सुनायी। राजा अपने उत्तरीय वस्त्र से वैदर्भी के नेत्र पोंछकर बोला, 'हे पुत्री ! रुदन मत कर, क्योंकि विधि से कोई बलवान नहीं है।'

उस समय कोई देव आकाश से उतरकर राजसभा में आया और अंजली जोड़कर वैदर्भी को कहने लगा, ''हे भद्रे ! मैं पिंगलक चोर हूँ। आपकी आज्ञा से दीक्षा लेकर विहार करते करते एक बार मैं तापसपुर गया। वहां मैं स्मशान के अंदर कायोत्सर्ग करके रहा। ईतने में चितानल में से दावानल फैलने लगा। उससे मैं जलने लगा, तो भी धर्मध्यान से च्युत न हुआ, स्वयमेव आराधना करके और नवकार मंत्र के स्मरण में तत्पर रहा। फिर पृथ्वी पर गिर गया, वहां मेरा शरीर उस अग्नि में समिधरुप हो गया। वहां मृत्यु पाकर मैं पिंगल नामक देव बना हूँ। देवगति उपजते ही अवधिज्ञान से मुझे मालूम हुआ कि दवदंती ने मुझे वध से बचाया था और दीक्षा लेने का उपदेश दिया था, उसके प्रभाव से मैं देवता बना हूँ। हे भद्रे ! यदि उस समय मुझ महापापी की आपने उपेक्षा की होती तो मैं धर्म को प्राप्त किए बिना ही मृत्यु पाकर नर्क में पडता, परंतु हे महासती ! आपके प्रसाद से मैं स्वर्गलक्ष्मी को पाया हूँ, इसलिए आपको देखने आया हूँ। आपकी विजय हो।'' इस प्रकार कहकर सात कोटि सुवर्ण की वृष्टि करके वह

देव बीजली के समूह की तरह आकाश में अंतर्धान हो गया। इस प्रकार साक्षात् आर्हत् धर्म की आराधना का फल देखकर विद्वान राजा ऋतुपर्ण ने आर्हत् धर्म अपनाया।

फिर मौका मिला हुआ देखकर हरिमित्र राजबटु ने कहा कि "हे राजन् अब आज्ञा दीजिए कि देवी दवदंती चिरकाल के बाद अपने पिता के घर जाय।" उस समय चन्द्रयशा ने भी वैसा करने की हाँ कही, इसलिए राजा ने बड़ी सेना के साथ वैदर्भी को विदर्भ देश की और रवाना किया। दवदंती को आते हुए सुनकर भीम राजा बलिष्ठ प्रेम से दुर्धर वेगवान वाजी[1] खिंचे चले जाय त्यों उसके सामने गया। सामने आते पिता को देखते ही वैदर्भी वाहन छोड़कर पैदल चलकर मुस्कुराते मुखकमल से सामने दौडी और पिता के चरणकमल मे गिरी। लम्बे समय के बाद उत्कंठा से मिले पिता व पुत्री के नेत्रजल से वहां की पृथ्वी बहुत ही कीचड़वाली हो गई। साथ अपनी माता पुष्पदंती भी आई है यह खबर सुनकर, गंगानदी को ज्यो यमुना मिले त्यों, दवदंती उसे दृढ आलिंगन से मिली व उसके गले लगाकर नलप्रिया ने खुले गले से रुदन किया। "प्राणियों को इष्ट जन मिलने से दुःख ताजा होता है।" फिर वे जल से मुखकमल धोकर दुःख के उद्गार से परस्पर बातें करने लगे। पुष्पदंती ने वैदर्भी को उत्संग में बिठाकर कहा कि "हे आयुष्यमती ! सद्भाग्य से हमें तेरे दर्शन हुए हैं, इससे हमें लगता है कि अभी भी हमारा भाग्य जाग्रत है। अब हमारे घर रहकर सुखपूर्वक काल व्यतीत कर। लम्बे समय के बाद भी तुझे पति के दर्शन होंगे, क्योंकि जीवित प्राणी कभी भी भद्रा पाता है।" फिर राजा ने संतुष्ट होकर हरिमित्र को पांचसौं गाँव दिए, और कहा कि 'यदि नल राजा को ढूंढ लायेगा तो तुझे आधा राज्य दूंगा।' इसके बाद राजा ने नगर में जाकर दवदंती के आगमन का उत्सव किया और सात दिन तक देव-अर्चा और गुरुपूजा विशेष प्रकार से कराई। आठवें दिन वैदर्भपति ने दवदंति को कहा कि 'अब जैसे नलराजा का समागम शीघ्र हो सके ऐसा करने का मैं प्रयत्न करुंगा।'

अब जिस समय नलराजा दवदंती को छोड़कर अरण्य में भटक रहे थे, उस समय एक ओर वन के तृण में से निकलता हुआ धुंआ उसे दिखाई दिया। अंजन जैसे श्याम धुंए का बादल आकाश में ऐसा छा गया कि मानो पंखवाला कोई गिरि आकाश में जा रहा हो ऐसा भ्रम होने लगा। एक निमेषमात्र में तो वहां भूमि में से विद्युतवाले मेघ समान ज्वालामाला से भयानक अग्नि भभक उठी। थोड़ी देर में जलते बांस की तडतडाहट व वनवासी पशुओं का आक्रंद स्वर सुनाई दिया। ऐसा दावानल प्रदीप्त होते ही उसमें से "अरे ! क्षत्रियोत्तम ईक्ष्वाकु वंशीय नल राजा ! मेरी रक्षा करो। आप निष्कारण उपकारी और पुरुषव्रतधारी हो, फिर भी हे उर्वीश ! मैं आपका कुछ उपकार करुंगा, इसलिए मेरी रक्षा करो।" ऐसे शब्द सुनाई देने पर उन शब्दों के अनुसार नलराजा गहन लतागृह समीप आये। वहां उसके मध्य में रहकर 'रक्षा कर, रक्षा

१. घोडा, आकर्षण।

कर' बोलता हुआ एक बड़ा सर्प उसे दिखाई दिया। नल ने पूछा कि 'हे सर्प ! मुझे, मेरे नाम को और मेरे वंश को तू किस प्रकार जानता है ? और तुझे ऐसी मानुषी वाणी कैसे प्राप्त हुई है यह कह।' सर्प बोला, 'मैं पूर्व जन्म में मनुष्य था, उस जन्म के अभ्यास से इस जन्म में भी मुझे मानुषी भाषा प्राप्त हुई है। और हे यशोनिधि ! मुझे उज्जवल अवधिज्ञान है, इसलिए मैं तुम्हें, तुम्हारे नाम और तुम्हारे वंश को जानता हूँ।' इस प्रकार सुनकर नलराजा को दया आयी, तो उन्होंने कांपते हुए सर्प को खींचने के लिए वनलता पर अपना वस्त्र डाला। उस वस्त्र का सिरा पृथ्वी को छुआ तो तार से उर्मिका (अंगूठी) की भाँति सर्प ने अपने शरीर को उस वस्त्र से लपेट दिया। फिर सर्प से आक्रांत बने उस उत्तरीय वस्त्र को कुएं में से रस्सी की भाँति कृपालु राजा ने उत्कर्ष के साथ खींच लिया। फिर वहां से आगे चलकर ऊषर भूमि पर जहां आग न लगे वहां उस सर्प को रखने की ईच्छा करते ही नल को उस सर्प ने हाथ पर डंक मारा, तो पसीने के बिंदु की तरह उस नाग को भूमि पर आच्छोटनपूर्वक छोड़ते हुए नल ने कहा, 'हे भद्र ! तूने कृतज्ञ बनकर यह अच्छा प्रत्युपकार किया ! मैं तेरा उपकारी हूँ, उसे फिर ऐसा ही बदला मिलना चाहिए ! परंतु यह तुम्हारी जाति का ही गुण है कि जो तुम्हें दूध पिलाए उसे ही तुम काटते हो !' इस तरह नलराजा कह रहे थे कि उनके शरीर में विष फैलने लगा और जिससे उसका पूरा शरीर तने हुए धनुष जैसा कूबड़ा बन गया। उस समय नलराजा के केश प्रेत समान पीले हो गये। ऊँट की तरह होठ लम्बे हो गये व रंक की तरह हाथ-पैर दूबले और उदर स्थूल बन गया। सर्प के विष से ग्रस्त बना नल क्षण में ही नट की तरह सब अंगों से बीभत्स और विकृत आकृतिवाला हो गया, इसलिए उसने सोचा कि 'ऐसे रुप से मेरा जीना वृथा है, तो परलोक में उपकारी ऐसी दीक्षा को ग्रहण करुं।'

नल इस प्रकार चिंतन कर रहा था कि उस सर्प ने सर्प का रुप छोड़कर दिव्य अलंकार और वस्त्र को धारण करनेवाला तेजस्वी देवरुप प्रकट किया। फिर वह बोला, 'हे वत्स ! तू खेद मत पाना, मैं तेरा पिता निषध हूँ। मैंने तुझे राज्य देकर दीक्षा ली थी, उस दीक्षा के फल से मैं ब्रह्म देवलोक का देवता बना हूँ। वहां अवधिज्ञान से मैंने तुझे ऐसी दशा को प्राप्त हुआ है यह देखा। फिर माया सर्प रुप बनकर दुर्दशा में गिरे तेरे अंग पर बड़े फोडे पर फंफोला हो त्यों मैंने विरुपता की है, पर मैंने की हुई यह विरुपता कडुए औषधों के पान की भाँति तेरे उपकार के लिए ही है ऐसा मानना, क्योंकि तूने पहले जिस राजाओं को जीतकर दास बनाया हैं, वे सब तेरे शत्रु बने हुए हैं, वे ऐसी कुरुपता के कारण तुझे पहचानेंगे नहीं, इसलिए तुझे कुछ भी उपद्रव करेंगे नहीं। और अभी दीक्षा लेने का मनोरथ भी करना नहीं, क्योंकि तुझे उतनी ही भूमि चिरकाल तक भोगनी है। जब तेरा दीक्षा का समय आयेगा तब उत्तम मुहूर्त कहनेवाले ज्योतिषी की तरह मैं आकर तुझे बताऊँगा, इसलिए अब स्वस्थ बन। हे पुत्र ! यह नारियल

व रत्न का टोकरा ग्रहण कर, और यत्न से क्षात्रव्रत की भाँति इसकी रक्षा करना। जब तुझे तेरे स्वरुप की ईच्छा हो तब यह नारियल फोड़ना, उसमें तू अदूष्य देवदूष्य वस्त्र देखेगा और इस रत्न के टोकरे को खोलेगा तो उसमें मनोहर हार वगैरह आभूषण देखेगा, फिर जब ये वस्त्र और आभूषण तू धारण करेगा तब तू तेरा पहले जैसा देवाकृति समान रुप प्राप्त करेगा।' नल ने पूछा, 'पिताजी ! आपकी बहु दवदंती को मैंने जहां छोड दिया है, वहीं वह रह रही है या अन्य स्थान पर गयी है यह कहिए।' फिर उस देव ने जिस स्थान पर से छोडी थी उस स्थान से लेकर दवदंती विदर्भ देश में अपने पिता के यहां गई वहां तक का पूरा वृत्तांत उसके सतीत्वपन की प्रसिद्धिपूर्वक कह सुनाया। फिर उसने नल को कहा, 'हे वत्स ! तू अरण्य में क्यों भटकता है ? तेरी जहां जाने की इच्छा हो वहां मैं तुझे पहुँचा दूं।' नल ने कहा, 'हे देव ! मुझे **सुसुमार नगर** पहुँचा दीजिए।' तो वह देव वैसा करके अपने स्थानक पर गया।

नलराजा उस नगर के पास आये नंदनवन में रहा। वहां एक सिद्धायतन जैसा चैत्य उसे दिखाई दिया। उस चैत्य में कुब्ज बने नल ने प्रवेश किया। उसके अंदर नमिनाथ की प्रतिमा देखी, तो उसने पुलकित अंग से उसे वंदना की। फिर नल सुसुमार नगर के द्वार समीप आया। उस समय उस नगर में एक उन्मत हाथी बंधन तोड़कर भटक रहा था। पवन भी यदि उसके उपरी हिस्से को स्पर्श करता तो वह आसन (स्कंद प्रदेश) को कंपाता था, ऊपर उठती सूंढ से वह पक्षियों को भी खिंचता था, महावत दृष्टिविष सर्प की तरह उसकी नजरों में पड़ते ही न थे, और महावत की तरह वह उद्यान के वृक्षों को भी तोड़ता था। उस समय वहां का राजा **दधिपर्ण** इस गजेन्द्र को वश करने के लिए असमर्थ था, वह किल्ले पर चढ़कर उच्च स्वर से बोला, ''जो कोई मेरे इस गजेन्द्र को वश कर देगा उसे मैं अवशय मनवांछित दूंगा, तो कोई गजारोहण कला में माहिर है ?'' उस समय कूबडे नल ने कहा, 'वह हाथी कहां है यह मुझे बताओ। आपकी नजरों के समक्ष ही मैं उसे वश कर लूंगा।' कुब्ज इस प्रकार कह रहा था कि उतने में तो गजेन्द्र ऊँची गर्जना करता हुआ उसके पास आया तो चरण से मानो पृथ्वी को स्पर्श भी न करता हो त्यों वह कूबडा हाथी के सामने दौड़ा। उस समय 'अरे कुबड़े ! मरने मत जा, मरने मत जा, दूर हट जा' यूं लोग बार बार उसे कहने लगे, फिर भी वह तो केसरी सिंह की तरह निःशंकतापूर्वक उसके सामने गया। फिर हाथी के पास आकर उसको छलने हेतु वह गेंद की भाँति फैलने, खिसने, गिरने व लोटने लगा, व बार बार उसका पुच्छ पकड़कर उस पराक्रमी नल ने, ज्यों मदारी सर्प को खेद पहुँचाए त्यों उसे बहुत ही खेद पहुँचा दिया। फिर उस गजेन्द्र को श्रमित हुआ जानकर श्रम को जीतनेवाले आरोहकों में अग्रिम हो त्यों नलराजा उस पर गरुड की भाँति उड़कर चढ़ बैठे, आगे के आसन पर बैठकर उसके स्कंध पर दो पैर रखकर कुंभस्थल पर मुष्टि से ताड़न करके उसके बंधन की ग्रंथि को दृढ़ कर दी। फिर कपोल पर

ताडन करने से मुख फाड़कर चित्कार शब्द करते हुए उस हाथी को कूबडे नल ने अंकुश से नचाते नचाते आगे चलाया। उस समय लोगों ने उसकी जयघोषणा की व राजा ने स्वयं उसके गले में सुवर्ण की चेईन डाली। बलवान नल ने उस हाथी को मोम जैसा नर्म बना दिया और उसे उसके बंधनस्थान में ले जाकर उसकी कक्षानाड़ी द्वारा वह नीचे उतर गया। फिर निर्मल यशवाला नल राजा के पास जाकर उसे प्रणिपात करके उसके समीप मित्र की भाँति बैठा।

उस समय दधिपर्ण ने पूछा, 'हे गजशिक्षाचतुर ! तू इसके अलावा दूसरी भी कोई कला जानता है ? तुझे अनेक कलाएं संभवित हैं।' नल ने कहा, ''हे राजन् ! दूसरा तो क्या कहूं, परंतु सूर्यपाक रसवती भी मैं बना सकता हूँ, वह देखने की आपकी ईच्छा है ?'' सूर्यपाक रसोई के कौतुकी राजा ने तुरंत ही राजमहल में जाकर उस कूबडे को तंदुल, साग और सामग्री वगैरह ला दिए, तो नल ने सूर्य की धूप में उसके पात्र रखकर, सौरी विद्या का स्मरण करके तत्काल दिव्य रसोई तैयार कर दी। फिर मानो कोई कल्पवृक्ष ने दी हो वैसी उस मनोहर रसोई को राजा ने परिवार सहित खाया। श्रम टालनेवाली और परम आनंद देनेवाली उस रसवती का स्वाद लेकर दधिपर्ण राजा ने पूछा कि 'ऐसी रसवती तो सिर्फ नलराजा ही बनाना जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता, क्योंकि चिरकाल तक नलराजा की सेवा करते हुए मुझे इस रसवती का परिचय है। तो क्या तुम नल हो ? परंतु नल की ऐसी कुरुप आकृति नहीं है, और उसे व इस नगर के बीच दोसौं योजन का अंतर है, तो वह यहां कैसे आ सके ? और वह भरतार्ध का राजा अकेला भी क्यों होगा ? फिर मैंने देवताओं व विद्याधरों का पराभव कर दे ऐसा उसका रुप भी देखा हुआ है इसलिए तू तो वह नहीं है।' यूं कहने के बाद संतुष्ट बने दधिपर्ण ने उस कूबडे को वस्त्र, अलंकार वगैरह और एक लाख टंक[1] तथा पांच सौं गाँव दिए। कुब्ज नल ने पांचसौं गाँव के सिवा सब स्वीकारा, तो राजा ने कंहा कि 'अरे कुब्ज ! तुझे और कुछ चाहिए ?' कुब्ज ने कहा, 'आपके राज्य की सीमा में से शिकार और मदिरापान का निवारण कराये ऐसी मेरी इच्छा है, उसे आप पूरी कीजिए।' राजा ने उसके वचन मान्य करके उसके शासन में सर्वत्र शिकार और मदिरापान की वार्ता भी बंद कर दी।

एक बार राजा दधिपर्ण ने उस कूबड़े को एकांत में बुलाकर पूछा कि 'तू कौन है ? कहां से आया है ? और कहां का निवासी है ? यह कह।' वह बोला, ''कौशल नगरी में नलराजा का मैं हुंडिक नाम का रसोइया हूँ और नलराजा से मैं सब कलाएं सीखा हूँ। उसके भाई कुबर ने द्युतकला द्वारा नलराजा की पूरी पृथ्वी जीत ली, तो वे दवदंती को लेकर अरण्य में गये। वहां वे मर गये होंगे ऐसा मानकर मैं आपके पास आया। मायावी व पात्र को न पहचाननेवाले उसके भाई कुबर का मैं आश्रित न बना।'' इस प्रकार नलराजा के मरण की बात सुनकर

१. एक प्रकार का द्रव्य

दधिपर्ण राजा हृदय में कुठराघात हुआ हो त्यों परिवार सहित आक्रंद करने लगे। फिर नेत्राश्रु के मेघरुप दधिपर्ण ने नलराजा का प्रेतकार्य किया, कूबडे ने मुस्कुराहटपूर्वक वह देखा।

एक बार दधिपर्ण राजा ने दवदंती के पिता से मित्रता होने के नाते किसी कारणवश एक दूत भेजा। भीमराजा ने दूत का सत्कार किया। वह सुखपूर्वक उनके पास रहा। एक बार बात के प्रसंग में उस वक्ता दूत ने कहा कि 'नलराजा का एक रसोइया मेरे स्वामी के पास आया है, वह नलराजा से सूर्यपाक रसोई सीखा है।' वह सुनकर दवदंती ने ऊँचे कर्ण करके पिता से कहा, ''पिताजी ! किसी दूत को भेजकर जांच कराओ कि वह रसोइया कैसा है ? क्योंकि नलराजा के सिवा दूसरा कोई सूर्यपाक रसोई नहीं जानता, इसलिए शायद वे गुप्त वेषधारी नलराजा ही होंगे।'' फिर भीमराजा ने स्वामी के कार्य में कुशल ऐसे कुशल नाम के एक उत्तम ब्राह्मण को बुलाकर सत्कारपूर्वक आज्ञा दी कि 'आप सुसुमारपुर जाकर राजा के नये रसोइये को देखो, और वह कौन-कौनसी कला जानता है और उसका रुप कैसा है, इसका भी निश्चय करो।' 'आपकी आज्ञा प्रमाण है' यूं कहकर वह ब्राह्मण शुभ सगुन से प्रेरित होकर शीघ्र ही सुसुमारपुर आया। पूछते पूछते वह कूबडे के पास गया और वहां बैठा। उसके सर्व अंग विकृतिवाले देखकर उसे बड़ा खेद हुआ। उसने सोचा कि 'यह कहाँ ! और नलराजा कहाँ ! कहाँ मेरु ! और कहाँ सरसव ! दवदंती को वृथा नल की भ्रांति उत्पन्न हुई है।' ऐसा निश्चय करके मन में अच्छी तरह सोचकर फिर वह नलराजा की निंदा के दो श्लोक बोला, उसमें उसने यूं कहा कि ''सर्व निर्दय, निर्लज्ज, निःसत्त्व व दुष्ट लोगों में नलराजा एक ही मुख्य है, जिसने अपनी सती स्त्री का त्याग किया। अपनी विश्वसनीय व मुग्धा स्त्री को अकेली सोती छोड़कर चले जाने में उस अल्पमति नलराजा के दो चरणों को उत्साह कैसे आया होगा ?''

इस प्रकार बार बार वह ब्राह्मण बोलने लगा, तो उसे सुनकर अपनी दयिता (पत्नि) को याद करके नलराजा नेत्रकमल में अनर्गल जल लाकर रोने लगा। ब्राह्मण ने पूछा कि 'तू क्यों रोता है ?' वह बोला, 'आपका करुणारस से भरा गीत सुनकर रोता हूँ।' फिर कूबड़े ने उन श्लोकों का अर्थ पूछा तो उस ब्राह्मण ने द्युत से लेकर कुंडिनपुर पहुँचने तक की दवदंती की पूरी कथा कह सुनायी। फिर कहा, ''अरे कुब्ज ! तू सूर्यपाक रसोई का जानकार है, ऐसा इस सुसुमार नगर के राजा के दूत ने आकर हमारे भीम राजा को कहा यह सुनकर भीमराजा की पुत्री दवदंती ने अपने पिता को प्रार्थनापूर्वक कहा कि 'सूर्यपाक रसोई करनेवाले नल ही होने चाहिए, दूसरा कोई ऐसा नहीं है।' इसलिए भीमराजा ने तुझे देखने के लिए मुझे भेजा है, परंतु तुझे देखकर मुझे विचार आता है कि दुराकृतिवाला तू कुबड कहां ! देवता समान रुपवान् नल राजा कहां ! कहां खजुआ ! व कहां सूर्य ! परंतु यहां आते हुए मुझे सगुन भी अच्छे हुए थे, इसलिए यदि तू नल राजा नहीं है तो वे सब व्यर्थ बनते हैं।'' इस प्रकार उस

ब्राह्मण की बात सुनकर दवदंती का हृदय में ध्यान करता वह कुब्ज अधिकाधिक रुदन करने लगा और बहुत आग्रह करके उस ब्राह्मण को अपने घर ले गया। फिर उसने इस प्रकार कहा कि 'महासती दवदंती की व महाशय नलाराजा की कथा कहनेवाले, तुम्हारा किस प्रकार स्वागत करुं ?' यूं कहकर स्नान, भोजन वगैरह से उसका सत्कार किया, और दधिपर्ण ने दिए हुए आभूषण वगैरह उसे दिए। फिर वह कुशल ब्राह्मण कुशलतापूर्वक कुंडिनपुर वापिस लौटा और दवदंती व उसके पिता को स्वयं देखे हुए कुबडे की पूरी वार्ता कह सुनायी। उसमें मुख्य तो उसने मदोन्मत्त बने हाथी को खेद पहुंचाकर उस पर आरोहण किया था तथा सूर्यपाक रसोई बनाई थी, और उसे राजा ने सुवर्णमाला, एक लाख टंक व वस्त्रालंकार वगैरह दिए थे यह सुनाया तथा स्वयं ने जो दो श्लोक कहे थे और कूबडे ने उसको सत्कारपूर्वक जो कुछ दिया था वह भी बताया। यह सब सुनकर वैदर्भी ने कहा, 'पिताजी ! नल राजा का ऐसा विरुप रुप आहारदोष या कर्मदोष से हुआ होगा, परंतु गजशिक्षा में निपुणता, ऐसा अद्‌भुत दान व सूर्यपाक रसवती आदि नलराजा सिवा अन्य के पास है ही नहीं, इसलिए हे तात ! किसी भी उपाय से उस कुब्ज को यहां बुलाइए, जिससे मैं उसकी इंगितादि चेष्टाओं से परीक्षा कर लूंगी।'

भीमराजा बोले, 'हे पुत्री ! तेरा नकली स्वयंव्रर रचाकर दधिपर्ण राजा को बुलाने के लिए आदमी भेजूं। तेरा स्वयंवर सुनकर वह तुरंत यहां आयेगा, क्योंकि वह तेरे में लुब्ध था और तू नल को वर चुकी थी। दधिपर्ण के साथ वह कुब्ज भी आयेगा, क्योंकि यदि वह नलराजा होगा तो तुझे दूसरा वर देना सुनकर सहन नहीं कर पायेगा। और नल अश्व के हृदय का जानकार है, इसलिए यदि वह कूबडा नल होगा तो रथ हांकते हुए उसके द्वारा प्रेरित अश्व मानो पवन ही अश्वमूर्ति रुप हुआ हो त्यों पवनवेगी बनते हैं। फिर उसको आने का दिन भी ऐसा नजदीक का बताऊँगा कि जिससे नल यहां शीघ्र आ जाय, क्योंकि दूसरा कोई साधारण मनुष्य स्त्री का पराभव सह नहीं पाता, तो नलराजा कैसे सह पायेंगे ?'

इस प्रकार का निर्णय करके भीमराजा ने दूत भेजकर सुसुमारपुर के दधिपर्ण को पंचमी के दिन दवदंती के स्वयंवर में आने का आमंत्रण भेजा तो कुंडिनपुर आने के लिए तत्पर बना दधिपर्ण राजा मन ही मन चिंता करने लगा, 'मैं वैदर्भी को कई दिनों से प्राप्त करना चाहता हूँ, उसे मिलने का समय आ गया। परंतु वह तो बड़ी दूर है। स्वयंवर तो कल ही है, और कल तक वहां किस प्रकार पहुँचा जाय ? अब क्या करना ?' इस प्रकार चिंता से थोड़े जल में मछली छटपटाये त्यों छटपटाने लगा।

यह समाचार सुनकर कुब्ज सोच में पडा कि 'सती दवदंती दूसरा पुरुष चाहे ही नहीं और कभी चाहे तो मेरे होने पर उसे दूसरा कौन ग्रहण करेगा ? इसलिए इस दधिपर्ण राजा को मैं

वहां छः प्रहर में ले जाऊँ, जिससे उसके साथ मेरा भी वहां प्रासंगिक जाना हो सके।' फिर उसने दधिपर्ण राजा को कहा, ''आप बहुत खेद या फिक्र न करे, खेद या चिंता का जो कारण हो वह कहिए, क्योंकि रोग की बात बताये बिना रोगी की चिकित्सा नहीं हो सकती।'' दधिपर्ण ने कुब्ज को कहा, 'नलराजा मर चुके हैं, इसलिए वैदर्भी कल दुबारा स्वयंवर रचा रही है। चैत्र महिने की शुक्ल पंचमी को उसका स्वयंवर है और अब सिर्फ छः प्रहर बाकी है, तो इतने समय मे तो मैं वहां किस प्रकार जा पाऊँगा ? जिसका दूत वहां से कईं दिनों का मार्ग काटकर आया, उसी मार्ग पर अब मैं डेढ़ दिन में वहां कैसे पहुँच पाऊँगा ? इसलिए मैं दवदंती में फोगट ही लुब्ध बना हूँ।' कुबड ने कहा, 'हे राजन् ! थोड़ा सा भी खेद मत करें, मुझे आप अश्व सहित रथ दीजिए जिससे आपको कम समय में विदर्भनगरी में पहुँचा दू।' राजा ने कहा, 'स्वेच्छा से रथाश्व को ले आ।' फिर नल ने उत्तम रथ और सर्व लक्षणयुक्त दो अच्छी नस्ल के अश्व लिए। उसकी सर्व कार्य में कुशलता देखकर दधिपर्ण सोच में पड़ा कि 'यह कोई सामान्य पुरुष नहीं है, वह देव या कोई खेचर हो ऐसा लगता है।' फिर रथ को घोड़े जोड़कर कुब्ज ने राजा को कहा, 'अब रथ में बैठिए, मैं आपको प्रातःकाल में विदर्भनगरी पहुँचा दूंगा।'

फिर राजा, तांबूलवाहक, छत्रधारक, दो चँवरधारी और कुब्ज यूं छः जने सज्ज किए हुए रथ में बैठे। कुब्ज ने उस नारियल और रत्न के टोकरे को वस्त्र से कटि पर बांधकर पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करके घोडे हाँके। अश्व के हृदय को जाननेवाले नल ने हांका हुआ वह रथ देवविमान की तरह स्वामी के मन जैसी गति से चला। उतने में तेज गति से चलते रथ की हवा से दधिपर्ण राजा का उत्तरीय वस्त्र उड गया, मानो नलराजा ने अवतरण किया हो वैसा वह दिखने लगा। दधिपर्ण ने कहा, 'रे कुब्ज ! क्षण भर के लिए रथ रोक, जिससे हवा द्वारा उडा हुआ मेरा वस्त्र मैं ले लूं।' दधिपर्ण ने कहा उतने में तो रथ पच्चीस योजन दूर चला गया तो कूबडा हँसकर बोला, 'हे राजन ! आपका वस्त्र कहाँ हैं ? उसके गिरने के बाद हम पच्चीस जोजन दूर आ गये हैं।' इतने में दधिपर्ण ने दूर से अक्ष[1] नाम के एक वृक्ष को बहुत से फल से भरपूर देखा। वह देखकर उसने कुब्ज सारथि को कहा, 'इस वृक्ष पर जितने फल हैं, उतने गिने बिना भी मैं कह सकता हूँ, यह कौतुक मैं लौटते हुए तुझे बताऊँगा।' कुब्ज ने कहा, 'हे राजन् ! आप कालक्षेप का भय क्यों रखते हो ? मेरे जैसा अश्व हृदय जानकार सारथि होने से आपको भय नहीं रखना चाहिए। फिर मैं एक मुष्टि के प्रहार से इस वृक्ष के सर्वफल मेघ के जलबिन्दु की तरह पृथ्वी पर आपके सामने ही गिरा दूंगा।' राजा ने कहा, 'यदि ऐसा ही है तो हे कुब्ज ! ये फल गिरा दे, ये संख्या में बराबर अट्ठारह हजार होंगे, यह कौतुक तू देख।' फिर कुब्ज ने वे गिरा दिए और राजा ने वे फल गिने, तो बराबर अट्ठारह हजार हुए,

१. बेडा का वृक्ष।

एक भी ज्यादा या कम न हुआ। फिर कुब्ज ने दधिपर्ण की याचना से अश्वहृदय विद्या उसे दी और उससे संख्याविधि यथाविधि सहित स्वयं ग्रहण की। फिर प्रातःकाल हुआ और जिसका सारथि कुब्ज है वैसा वह रथ विदर्भानगरी के समीप आ पहुँचा। यह देखकर राजा दधिमुख का मुख कमल की तरह खिल गया।

यहां उसी समय रात्रि के शेष भाग में वैदर्भी (दमयंति) ने एक स्वप्न देखा। हर्षित होकर वह अपने पिता के समक्ष इस प्रकार कह सुनाया - "आज रात्रि के शेष भाग में मैं सो रही थी की निर्वृत्ति देवी द्वारा कौशलानगरी का उद्यान आकाशमार्ग से यहां लाया हुआ मैंने देखा। ईतने में पुष्प फल से सुशोभित आम्रवृक्ष मैने देखा, तो उसकी आज्ञा से मैं उसके पर चढ़ गयी। फिर उस देवी ने मेरे हाथ में एक प्रफुल्लित कमल दिया। जब मैं वृक्ष पर चढी तब कोई एक पक्षी जो पहले से ही उसके ऊपर चढा हुआ था, वह तत्काल पृथ्वी पर गिर गया।" इस प्रकार का स्वप्नवृत्तांत सुनकर भीम राजा बोले - "हे पुत्री ! यह स्वप्न अति शुभ फलदायी है। तूने जो निर्वृत्ति देवी को देखा, उसे तेरा उदय पाया हुआ पुण्य राशि समझना। उसका लाये हुए आकाश में जो कौशला का उद्यान तूने देखा इसे यूं समझना कि तेरा पुण्यराशि तुझे कौशलानगरी का ऐश्वर्य देगा। आमवृक्ष पर चढ़ने से तुझे तेरे पति के साथ जल्द समागम होगा। और पहले से चढ़ा हुआ जो पक्षी वृक्ष पर से गिरा वह बताता है कि कुबर राजा राज्य से भ्रष्ट होगा। इस प्रकार निःसंशय होकर तू समझना। और प्रातःकाल में तुझे स्वप्न दर्शन हुआ है, इसलिए आज ही तुझे नलराजा मिलेंगे क्योंकि प्रभातकाल का स्वप्न शीघ्र फल देता है।"

इस प्रकार पिता पुत्री बात कर रहे थे कि दधिपर्ण राजा नगरद्वार के समीप आने के समाचार मंगल नाम के एक पुरुष ने भीमराजा को दिए। तुरंत ही भीमराजा दधिपर्ण के पास आया, और मित्र की भाँति आलिंगन देकर मिला। फिर निवास वगैरह से उसका सत्कार करके कहा कि "हे राजन् ! आपका रसोइया सूर्यपाक रसोई कर सकता है वह हमें दिखाइए। वह देखने की हमें बड़ी इच्छा है, इसलिए अब अन्य वार्ता करनी जरुरी नहीं है।" फिर दधिपर्ण ने वह रसोई बनाने की कूबडे को आज्ञा दी, तो उसने उसे कल्पवृक्ष की भाँति क्षणभर में कर दिखायी। फिर दधिपर्ण के आग्रह से व उसकी परीक्षा करने के लिए उस रसोई को भीमराजा ने परिवार सहित ग्रहण की। उस रसोई के चावल से भरा हुआ एक थाल दवदंती ने मंगवाया और भोजन किया। स्वाद से ही उसने जान लिया कि 'यह कूबडा नलराजा ही है।'

फिर दवदंती ने अपने पिता को कहा कि 'पहले किसी ज्ञानी आचार्य ने मुझे कहा था कि इस भरतक्षेत्र में सूर्यपाक रसोई नल सिवा दूसरा कोई नहीं जानता, इसलिए यह कूबडा या

लूला चाहे कैसा भी हो पर, वह है नलराजा ही, इसमें थोड़ा सा भी संशय नहीं है। ऐसा होने में सिर्फ कुछ कारण है और जैसे यह सूर्यपाक रसोई से नल की परीक्षा है, वैसे दूसरी भी एक परीक्षा है कि यदि नलराजा की ऊँगली का मुझे स्पर्श हो तो मेरे शरीर पर तत्काल रोमांच छा जाय। इसलिए वह कूबडा ऊँगली से तिलक रचता हो त्यों मुझे स्पर्श करे। इस निशान से नलराजा भी सही ढंग से पहचाने जायेंगे।' फिर भीमराजा ने उसे पूछा, 'तू नलराजा है ?' वह बोला, 'आप सब भ्रांत हुए हो, क्योंकि देवता जैसा स्वरुपवान नलराजा कहां और देखने में भी अयोग्य ऐसा मैं कहां ?' फिर राजा के अति आग्रह से उस कूबड़े ने हरे अक्षरों को मार्जन करने लिए ज्यों पत्तों को छूए त्यों अति लाघव से अंगुलि द्वारा दवदंती के वक्षःस्थल का स्पर्श किया। ऊँगली का सहज मात्र स्पर्श होते ही अद्वैत आनन्द मिलने से वैदर्भी का शरीर केंकडे की भाँति रोमांचति हो गया, तो वैदर्भी ने कहा, 'हे प्राणेश ! उस समय तो मुझे सोते छोड़ चले गये होंगे, पर अब कहां जाओगे ? बड़े चिरकाल के बाद आप मुझे नजर आये हो।' इस प्रकार बार बार कहने के बाद वह कुबज को अंतर्गृह में ले गयी। वहां कुब्ज ने वह नारियल और टोकरे में से वस्त्रालंकार निकाले। उसे धारण करने से उसने अपना असली स्वरुप पाया। वैदर्भी ने वृक्ष को लता की तरह अपने यथार्थ स्वरूपवाले पति का सर्वांग आलिंगन किया। फिर कमलनयन नलराजा द्वार के पास आया, तो भीमराजा ने आलिंगन करके अपने सिंहासन पर उसे बिठाया, और "आप ही मेरे स्वामी हो, यह सब आपका है, इसलिए मुझे आज्ञा दीजिए, मैं क्या करुं ?" इस प्रकार बोलते हुए भीमराजा उसके समक्ष छडीदार की भाँति हाथ जोड़कर खड़ा रहा। दधिपर्ण ने भी नलराजा को नमन करके कहा, 'सर्वदा आप मेरे नाथ हो, मैंने अज्ञान से आपके प्रति जो कुछ भी अन्यायप्रवृत्ति की हो तो उसे क्षमा कीजिए।'

एक बार धनदेव सार्थवाह बड़ी समृद्धि के साथ हाथों में उपहार लेकर भीमरथ राजा को मिलने आया। फिर पूर्व किए हुए उपकार से खड़ी हुई अनिवार्य उत्कंठा के कारण दवदंती ने अपने पिता को कहा, जिससे उसने राजा ऋतुपर्ण, चन्द्रयशा, उसकी पुत्री चन्द्रवती और तापसपुर के राजा वसंतश्रीशेखर को आमंत्रित किया। वे सब वहां आये। भीमराजा ने अति सत्कार किए हुए वे नये नये आतिथ्यों से प्रसन्न चित्तवाले होकर एक माह तक वहां रहे।

एक बार वे सब भीमराजा की सभा में एकत्रित होकर बैठे थे, उस समय अपनी प्रातःकालीन प्रभा से आकाश को प्रकाशित करता हुआ कोई देव वहां आया। उसने अंजलि जोड़कर वैदर्भी को कहा, 'मै वह विमलपति नाम का तापसपति हूँ, जिसे आपने पूर्व में प्रतिबोध दिया था वह याद कीजिए। वहां मृत्यु पाकर मैं सौधर्म देवलोक में श्रीकेसर नाम के विमान में श्रीकेसर नाम के देव बना हूँ। मुझ जैसे मिथ्यादृष्टि को आपने अर्हद्धर्म में स्थापित किया।

उस धर्म के प्रभाव से आपके प्रसाद द्वारा अब मैं देवता बना हूँ।' इस प्रकार कहकर, सात कोटी सुवर्ण की वृष्टि करके, कृतज्ञता प्रकाशित करके वह देव कहीं पर अंतर्धान हो गया। फिर वसंतश्रीशेखर, दधिपर्ण, ऋतुपर्ण, भीम और अन्य महाबलवान राजाओं ने मिलकर नलराजा का राज्याभिषेक किया और उनकी आज्ञां से उन राजाओं ने पृथ्वी को भी सँकरी कर डाले ऐसे अपने अपने सैन्य वहां इकट्ठे किये। फिर शुभ दिन पर अतुल पराक्रमी नलराजा ने अपनी राज्यलक्ष्मी वापस लेने की इच्छा से उन राजाओं के साथ अयोध्या की ओर प्रयाण किया। कुछ ही दिनों में सैन्य की रज से सूर्य को ढकता हुआ नलराजा अयोध्या पहुँचा और रतिवल्लभ नाम के उद्यान में उसने पडाव किया। नल को ऐसे उत्तम वैभव सहित आया हुआ जानकर भय से कण्ठप्राण हो गया हो त्यों कुबर अत्यंत आकुलव्याकुल हो गया। नल ने दूत भेजकर कहलवाया कि, "हम दुबारा द्यूत खेलें, और उसमें ऐसा भी करें कि जिससे मेरी सर्व लक्ष्मी तेरी हो जाय या तेरी सर्व लक्ष्मी मेरी हो जाय।" यह सुनकर कुबर रण के भय से मुक्त बनने से खुश हुआ और विजय की इच्छा से उसने दुबारा द्यूत आरंभ किया। उसमें अनुज बंधु से विशेष भाग्यवान ऐसे नल ने कुबर की पूरी पृथ्वी जीत ली, क्योंकि सद्भाग्य का योग होता है तब विजय तो मनुष्य के करकमल में हँसरुप बनती है। नल ने कुबर का सर्व राज्य जीत लिया फिर भी और वह कुबर अति क्रूर था तो भी 'यह मेरा अनुज बंधु है,' ऐसा जानकर नल ने उसके उपर अवकृपा नहीं की। उलटे क्रोधरहित नल ने अपना राज्य स्वयं द्वारा अलंकृत करके कुबर को पूर्व की भाँति युवराज पद दिया। नल ने अपना राज्य पाने के बाद दवदंती के साथ कौशलानगरी के सर्व चैत्यों की उत्कंठापूर्वक वन्दना की। भरतार्ध के निवासी राजा भक्ति से राज्याभिषेक के मांगलिक उपहार लेकर वहां आये। फिर सब राजा जिसके अखण्ड शासन का पालन करते है ऐसे नल ने कईं हजार वर्ष तक कौशला का राज्य किया।

एक बार निषध राजा जो स्वर्ग में देवता हुए हैं, उन्होंने आकर विषयसागर में निमग्न बने मगरमच्छ जैसे नलराजा को इस प्रकार प्रतिबोध दिया, 'हे वत्स ! इस संसाररुपी अरण्य में तेरे विवेकरुपी धन को विषयरुपी चोर लूंटे जा रहे हैं, फिर भी तू पुरुष होकर क्यों उसका रक्षण नहीं करता ? मैंने पहले तुझे दीक्षा का समय बताने का कबूल किया था, तो अब वह समय आया है, इसलिए आयुष्यरुप वृक्ष के फलरुप दीक्षा को ग्रहण कर।' इस प्रकार कहकर वह निषधदेव अंतर्धान हुआ।

उस समय **जिनसेन** नाम के एक अवधिज्ञानी सूरी वहां पधारे। दवदंती और नल ने उनके पास जाकर उनकी आदरपूर्वक वंदना की। फिर उन्होंने अपना पूर्वजन्म पूछा। तो वह बताकर मुनि बोले, 'पूर्व में तुमने मुनि को क्षीरदान किया था इसलिए तुम्हें यह राज्य प्राप्त हुआ है,

और उस समय आपको बारह घडी मुनि पर क्रोध रहा था, जिससे इस जन्म में आपको बारह साल का वियोग रहा है।' इस प्रकार सुनकर **पुष्कर** नाम के अपने पुत्र को राज्य पर बैठाकर नल व दवदंती ने मुनि से व्रत ग्रहण किया और उसे चिरकाल तक पाला। एक बार नल को विषयवासना उत्पन्न हुई, तो उसने दवदंती पर भोग के लिए मन किया। यह बात जानकर आचार्य ने उसका त्याग किया, तो उसके पिता निषधदेव ने आकर उसे प्रतिबोध दिया। फिर व्रत पालने में अशक्त ऐसे नल ने अनशन ग्रहण किया। यह बात सुनकर नल पर अनुरागवाली दवदंती ने भी अनशन आरंभ किया।'

इस प्रकार की कथा कहकर कुबेर वसुदेव को कहते हैं, "हे वसुदेव ! वह नल मृत्यु पाकर मैं याने कुबेर बना हूं और दवदंती मृत्यु पाकर मेरी प्रिया बनी थी वह वहां से च्यूत होकर यह कनकवती बनी है। उसके उपर पूर्व जन्म के पत्नीपन के स्नेह से अतिशय मोहित होकर मैं यहां आया हूँ, क्योंकि स्नेह सैंकड़ो जन्म तक रहता है। हे दशार्ह वसुदेव ! इस जन्म में यह कनकवती सर्व कर्म का उन्मूलन करके निर्वाण पायेगी। पहले मैं इन्द्र के साथ महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर को वंदना करने गया था, वहां विमलस्वामी अर्हंत ने मुझे यह वृत्तांत कहा था।"

इस प्रकार वसुदेव को कनकवती के पूर्वजन्म की कथा कहकर कुबेर अंतर्धान हो गया। इसके बाद सौभाग्यवानों में सिरताज और अद्वितीय रुपवान वसुदेव चिरकाल तक अतिशय अनुराग के योग से कनकवती को ब्याहकर अनेक खेचरियों के साथ क्रीडा करने लगे।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि कनकवतीपरिणयन तत्पूर्वभववर्णनो नाम तृतीयः सर्गः॥३॥

चतुर्थ सर्ग

वसुदेव चरित्र - शौरीपुर में पुनरागमन

एक बार **वसुदेव** सो रहे थे, वहां सूर्पक नाम के विद्याधर ने आकर उनका हरण किया। तत्काल जागकर उसने सूर्पक पर मुष्टिप्रहार किया, जिससे सूर्पक ने उसे छोड़ दिया, तो वसुदेव गोदावरी नदी में गिरते ही उसे तैरकर वे कोल्लापुर में आये और वहां के राजा **पद्मरथ** की पुत्री पद्मश्री को ब्याहे। वहां से नीलकण्ठ विद्याधर ने उनका हरण किया, और मार्ग में ही उन्हें छोड दिया। वे चम्पापुरी के समीप सरोवर में गिरे, वहां से तैरकर नगर में आकर मंत्री की पुत्री को ब्याहे। वहां से सूर्पक विद्याधर ने फिर से उनका हरण किया और मार्ग में गिरते छोड़ा तो वे गंगानदी के जल में गिरे। वे नदी तैरकर यात्रियों के साथ चलते हुए एक पल्ली में आये। वहां पल्लीपति की **जरा** नाम की कन्या से ब्याहे। उससे **जराकुमार** नाम का पुत्र हुआ। वहां से निकलकर **अवंतिसुंदरी, सूरसेना, नरद्वेषी, जीवयशा** एवं अन्य राजकन्याओं को ब्याहे।

एक बार वसुदेव अन्यत्र जा रहे थे कि किसी देवता ने आकर उन्हें कहा, 'हे वसुदेव ! **रुधिर** राजा की कन्या **रोहिणी** को मैं तुझे उसके स्वयंवर में देता हूँ, तो वहां जाकर तू ढोल बजाना।' फिर वसुदेव **अरिष्टपुर** में रोहिणी के स्वयंवर मण्डप में गये। वहां जरासंध वगैरह राजा आकर बैठे थे, उस समय मानो साक्षात् चन्द्र की स्त्री रोहिणी पृथ्वी पर आयी हो ऐसी रोहिणीकुमारी मण्डप में आयी। उस समय सब राजा स्वयं रुचिकर बन सके ऐसी इच्छा से रोहिणी की ओर नाना प्रकार की विविध चेष्ठा करने लगे, परंतु उनमें से कोई भी अपने अनुरुप न लगने से उसे कोई भी राजा जंचा नहीं। उस समय वसुदेव दूसरा वेष धरकर वाजिंत्र बजानेवालों के बीच मैं बैठकर पटह बजाने लगे। उस वाद्य में से ऐसे स्फुट अक्षर निकल रहे थे कि "हे कुरंगाक्षी ! यहां आ, मृगी की भाँति क्या देख रही हो ? मैं तेरा योग्य भर्त्ता (पति) हूँ और तेरे संगम में उत्सुक हूँ।" ये अक्षर सुनकर रोहिणी ने उसके सामने देखा। देखते ही रोमांचति होकर उसने उसके कण्ठ में स्वयंवर की माला आरोपित कर दी। उस समय वहां आये हुए राजाओं में 'इसे मारो' ऐसा कोलाहल मच गया, क्योंकि 'रोहिणी एक वाजिंत्र बजानेवाले को वरी' जिससे उनका बड़ा उपहास हुआ था। **कौशला** के राजा दंतवक्र ने अति वक्र वाणी से विदूषक की भाँति रुधिर राजा को उपहास में कहा कि 'यदि आपको यह कन्या एक ढोलकिए को ही देनी थी तो इन सब कुलीन राजाओं को कुलीन जानकर किस लिए बुलाया ? यह कन्या गुण की जानकार न हो और इस कारण से यदि ऐसे वाजिंत्र बजानेवाले को वरे तो वह बात उपेक्षा करने योग्य नहीं है, क्योंकि बाल्यवय में कन्या का शास्ता[1] पिता है।' रुधिर राजा बोला,

---

१. शिक्षा करनेवाला।

'हे राजन् ! इसके बारे में आपको कुछ भी सोचने की जरुरत नहीं है, क्योंकि स्वयंवर में कन्या जिसे वरे वह पुरुष प्रमाण है।' उस समय न्यायविद्ध **विदुर** ने कहा, 'यद्यपि तुम्हारा यह वचन युक्त है, फिर भी इस पुरुष को कुल वगैरह पूछना चाहिए।' उस समय वसुदेव बोले कि 'मेरे कुल के बारे में कुछ भी पूछने का यह अवसर नहीं है। यह कन्या मुझे वरी इसलिए जैसा भी हूं वैसा ही मैं उसके योग्य ही हूँ। मुझे वरी हुई कन्या को जो सहन नहीं कर सकेगा और उसे हरने आयेगा, उसे भुजबल बताकर मैं मेरा कुल दर्शाऊंगा।'

वसुदेव के ऐसे उद्धत वचन सुनकर क्रोध पाये हुए जरासंध ने समुद्रविजय आदि राजाओं को इस प्रकार आज्ञा दी कि 'प्रथम तो यह रुधिर राजा ही राजाओं में विरोध उत्पन्न करनेवाला है और दूसरा यह ढोली ढोल बजाने से उन्मत्त हो गया है। वह इस राजकन्या को प्राप्त करके, उतने में ही तृप्ति नहीं पाया है, इसलिए पवन ने नीचे झुकाए हुए वृक्ष का फल प्राप्त करके वामन पुरुष गर्व करे त्यों वह गर्व करता है, तो इस रुधिर राजा को और इस वादक को - दोनों को मार ड़ालो।' जरासंध की ऐसी आज्ञा होते ही समुद्रविजय वगैरह राजा युद्ध करने के लिए तैयार हुए। उस समय **दधिमुख** नाम का खेचरपति स्वयं सारथि बनकर रथ लाया और उसमें रण करने के लिए उद्यत बने वसुदेव को बैठाया। रण में दुर्धर ऐसे वसुदेव ने वेगवती की माता अंगारवती ने जो धनुष्यादि शस्त्र दिए थे वे ग्रहण किए। जरासंध के राजाओं ने रुधिर राजा का सैन्य तोड़ ड़ाला, तो वसुदेव ने दधिमुख को प्रेरणा देकर रथ के घोड़े आगे बढ़ाये। वसुदेव ने पहले उठे हुए **शत्रुंजय** राजा को जीत लिया। फिर **दंतवक्र** को भग्न किया और **शल्य** राजा को हँफा दिया। उस समय जरासंध ने समुद्रविजय को कहा, 'यह कोई सामान्य वाजिंत्र बजानेवाला नहीं लगता, यह अन्य राजाओं से जीत पाना असाध्य लगता है, इसलिए आप ही तत्पर होकर उसे मार ड़ालो, उसे मारोगे तो यह राजकन्या रोहिणी आपकी ही है, इसलिए उसने राजाओं को भंग करके जो दुःख उत्पन्न किया है वह दुःख दूर कीजिए।' समुद्रविजय बोले, 'हे राजन् ! मुझे परस्त्री नहीं चाहिए, परंतु आपकी आज्ञा से उस बलवान नर के साथ मैं युद्ध करुंगा।' इस प्रकार कहकर राजा समुद्रविजय ने भाई के साथ युद्ध आरंभ किया। उन दोनों का चिरकाल तक विश्व को आश्चर्यचकित करनेवाला शस्त्राशस्त्री युद्ध चला। समुद्रविजय सोच में पडे कि 'यह कोई मुझसे भी समर्थ पुरुष है।' उस समय वसुदेव ने एक अक्षर सहित बाण डाला। समुद्रविजय ने वह बाण लेकर लिखे हुए अक्षरों को इस प्रकार पढ़ा कि ''छद्म[1] से निकला हुआ आपका बंधु वसुदेव आपको नमस्कार करता है।'' इस प्रकार के अक्षर पढ़ते ही समुद्रविजय प्रसन्न हुआ और सायंकाल में बछड़े को मिलने उत्सुक बनी गाय की तरह

१. किसी प्रकार के बहाने से, कपटपूर्वक।

'वत्स-वत्स' यूं कहते हुए रथ में से उतरकर उसके सामने दौड़ा। वसुदेव भी रथ में से उतरकर उनके चरणों में पड़े। समुद्रविजय उसे खड़ा करके दोनों भुजाओं से आलिंगन करके मिले। ज्येष्ठ बंधु ने उसे पूछा कि 'वत्स ! आज तुझे घर से निकले हुए सो वर्ष बीत गये। बोल तू कहां गया था ?' तब वसुदेव ने शुरु से लेकर पूरा वृत्तांत उसे कह सुनाया। ऐसे पराक्रमी बंधु से समुद्रविदय को जितना हर्ष हुआ, उतना ही ऐसा जमाई मिलने से रुधिरराजा को भी हर्ष हुआ। जरासंध ने उसे अपने सामंतों का बंधु जाना तो उसका भी क्रोध शांत हो गया, क्योंकि ''अपने जन को गुणाधिक जानकर सबको हर्ष होता ही है।''

फिर उस अवसर पर एकत्रित राजाओं ने और स्वजनों ने शुभ दिन पर उत्सव के साथ वसुदेव और रोहिणी का विवाहोत्सव किया। रुधिर राजा ने पूजे हुए जरासंध वगैरह अपने अपने स्थानक पर गये और यादव कंस सहित एक वर्ष तक वहीं रहे।

एक बार एकांत में वसुदेव ने रोहिणी को पूछा, 'अन्य बड़े बड़े राजाओं को छोड़कर मुझ जैसे एक वाजिंत्र बजानेवाले को तू क्यो वरी ?' रोहिणी बोली, ''मैं सदैव प्रज्ञप्ति विद्या को पूजती हूँ। एक बार उसने आकर मुझे कहा था कि 'दसवां दशार्ह तेरा पति बनेगा, उसे तेरे स्वयंवर में तू ढोल बजानेवाले के रुप में तू पहचान लेना।' इस विश्वसनीयता से मैं आपको वरी हूँ।''

एक बार समुद्रविजय वगैरह सभा मे बैठे थे, उतने में कोई अधेड स्त्री आशिष देते देते आकाश में से उतरी। उसने आकर वसुदेव को कहा कि '**धनवती** नाम की मैं **बालचन्द्रा** की माता हूँ और मेरी पुत्री के लिए आपको लेने आयी हूँ। मेरी पुत्री बालचन्द्रा सर्व कार्यों में तेज है, परंतु आपके वियोग में रातदिन पीडित रहती है।' यह सुनकर वसुदेव ने समुद्रविजय के सामने देखा, तो वे बोले, 'वत्स ! जा, परंतु पूर्व जैसे चिरकाल तक रहना मत।' फिर राजा की आज्ञा पाकर अपने पूर्व अपराध की क्षमा मांगकर वसुदेव उस अधेड स्त्री के साथ गगनवल्लभ नगर गये। राजा समुद्रविजय कंस के साथ अपने नगर आये और निरंतर वसुदेव के आगमन में उत्सुक रहने लगे। यहां वसुदेव **कांचनदंष्ट्र** नाम के खेचरपति (कन्या के पिता) की कल्पित बालचन्द्रा को बड़े उत्सव से ब्याहे। फिर पहले ब्याही हुई सर्व उत्तम स्त्रियों को अपने अपने स्थानक से लेकर बहुत से खेचरों से युक्त होकर श्रेष्ठ विमान में बैठकर वसुदेव **शौर्यपुर** आये। उस समय चिरकाल से उत्कंठित ऐसे समुद्रविजय ने ऊर्मिरुप भुजा को फैलाकर चन्द्र को आलिंगन करते समुद्र के समान उसे दृढ आलिंगन किया।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्र विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि वसुदेवहिंडिवर्ण नामनो चतुर्थः सर्गः॥४॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

पंचम सर्ग

राम (बलराम) कृष्ण तथा अरिष्टनेमि का जन्म, कंस का वध व द्वारिकानगरी का स्थापन

हस्तिनापुर में कोई श्रेष्ठी रहता था, उसे **ललित** नाम का एक पुत्र था, वह उसकी माता का बहुत लाड़ला था। एक बार उस सेठानी को बड़ा दुःखदायी गर्भ रहा। उसे विविध द्रव्य-उपचारों से वह गिराने लगी तो भी वह गर्भ गिरा नहीं। समय पूर्ण होने पर सेठानी को पुत्र आया। उसे कहीं छोड़ देने के लिए उसने दासी को दिया। यह सेठ की नज़र में आते ही उन्होंने दासी को पूछा कि 'यह क्या करती है ?' दासी बोली, 'यह पुत्र सेठानी को अनिष्ठ है, इसलिए उसका त्याग करा रही है।' यह जानकर सेठ ने दासी से वह पुत्र ले लिया और गुप्त प्रकार से दूसरी जगह पालने के लिए दिया। पिता ने उसका **गंगदत्त** ऐसा नाम रखा। माता से छिपकर ललित भी उसे खिलाता था। एक बार वसंतोत्सव आया। तब ललित ने पिता को कहा कि, 'आज गंगदत्त को साथ भोजन कराओ तो बड़ा अच्छा रहेगा।' श्रेष्ठी बोले, 'पुत्र ! तेरी माँ देख लेगी तो ठीक नहीं होगा।' ललित ने कहा, 'हे तात ! मेरी माता देख नही पाये ऐसा मैं यत्न करुंगा।' फिर सेठ ने वैसा करने की आज्ञा दी, तो ललित ने गंगदत्त को परदे में रखकर भोजन के लिए बैठाया और सेठ तथा ललित उसके आड़े बैठे। खाते खाते वे गुप्त रूप से गंगदत्त को भोजन देने लगे। उतने में अचानक उत्कट हुए पवन ने उस परदे को उडाया तो गंगदत्त सेठानी की नज़र आया। उसने तत्काल केश से उसे खींचा और अच्छी तरह पीटकर उसको घर की मोरी (परनाले) में डाल दिया। यह देखकर महामति सेठ और ललित ने उद्वेग पाकर सेठानी से छिपाकर गंगदत्त को वहां से ले जाकर नहलाया और कुछ बोध भी दिया। उस समय कुछ साधु भिक्षा के लिए घूमते घूमते वहाँ आए। पिता-पुत्र ने उन्हें सेठानी का उस पुत्र पर द्वेष होने का कारण पूछा, तो एक साधू बोला, 'एक गाँव में दो भाइ रहते थे। एक बार काष्ठ लेने के लिए वे गाँव बाहर गये और काष्ठ की गाड़ी भरकर वापस लौटे। उस समय बड़ा भाई आगे चल रहा था। उसने मार्ग में लीक पर एक सर्पिणी को जाते हुए देखा। छोटा भाई जो गाड़ी चला रहा था उसे बड़े भाई ने कहा, 'अरे भाई ! इस लीक पर सर्पिणी पड़ी है तो उसे बचाकर गाडी चलाना।' यह सुनकर उस सर्पिणी को विश्वास आया। उतने में वह कनिष्ठ (छोटा) भाई गाडी के साथ वहाँ आया। उसने इस सर्पिणी को देखकर कहा कि 'इस सर्पिणी को बड़े भाई ने बचाया है, परंतु मैं उसके उपर होकर ही गाडी चलाऊंगा, क्योंकि उसके अस्थि भंग सुनने से मुजे बड़ा हर्ष होगा।' फिर उस क्रूर ऐसे लघु भाई ने वैसा किया। यह सुनकर वह सर्पिणी 'यह मेरा बैरी है' यूं चिंतन करते हुए मृत्यु पायी। हे श्रेष्ठी ! वह सर्पिणी मरकर तेरी स्त्री बनी है और

उन दोनों में जो ज्येष्ठ बंधु था वह यह ललित बना है। पूर्व जन्म के कर्म से वह माता को बड़ा लाड़ला है और जो कनिष्ठ बंधु था वह यह गंगदत्त हुआ है, वह पूर्व कर्म से उसकी माता को बड़ा अनिष्ट लगता है, क्योंकि पूर्वकर्म वृथा जाता नहीं है।'

मुनि के इस प्रकार के वचन सुनकर सेठ और ललित ने संसार से विरक्त होकर तत्काल दीक्षा ग्रहण की और व्रत पालकर कालानुसार वे दोनों **महाशुक्र** देवलोक में देवता बने। फिर गंगदत्त ने भी चारित्र ग्रहण किया। अंत समय पर माता का अनिष्टपना याद करके विश्ववल्लभ बनने का संकल्प करके मृत्यु पाकर वह भी **महाशुक्र** देवलोक में गया।

ललित का जीव महाशुक्र देवलोक से च्यूत होकर वसुदेव की स्त्री रोहिणी के उदर में उत्पन्न हुआ। उस समय अवशेष रात्रि में उसने बलभद्र के जन्म को सूचित करते हाथी, समुद्र, सिंह और चन्द्र के चार स्वप्न मुख में प्रवेश करते हुए देखे। पूर्ण समय पर रोहिणी ने रोहिणीपति (चन्द्र) जैसे पुत्र को जन्म दिया। मगधादिक देश के राजाओं (समुद्रविजय वगैरह) ने उसका उत्सव किया। वसुदेव ने उसका राम ऐसा उत्तम नाम रखा। (वे **बलभद्र** के नाम से प्रसिद्ध हुए।) सर्व के मन को प्रसन्न करते हुए राम क्रमशः बड़ा हुआ। उसने गुरुजन सें सर्व कलाएं ग्रहण की। उसकी निर्मल बुद्धि से दर्पण की तरह उसमें सर्व आगम (शास्त्र) संक्रात हो गये।

एक समय वसुदेव और कंसादिक के परिवार के साथ समुद्रविजय राजा बैठे थे कि स्वच्छंदी नारद मुनि वहां आये। समुद्रविजय, कंस और अन्य सब ने खड़े होकर उदय पाते हुए सूर्य की तरह उनकी पूजा की। उनकी पूजा से प्रसन्न बने नारद क्षणभर बैठकर वहां से दूसरी जगह जाने के लिए आकाश में उड गये क्योंकि 'ये मुनि सदा स्वैच्छाचारी हैं।' उनके जाने के बाद कंस ने पूछा कि 'यह कौन था ?' तो समुद्रविजय बोले -

'पहले इस नगर के बाहर **यज्ञयशा** नाम का एक तापस रहता था। उसे **यज्ञदत्ता** नाम की स्त्री थी तथा **सुमित्र** नाम का एक पुत्र था। उस सुमित्र को **सोमयशा** नाम की पत्नी थी। एक बार कोई जृंभक देवता आयुष्य का क्षय होते च्यूत होकर सोमयशा की कुक्षि में पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। वह यह **नारद** है। वे तापस एक दिन उपवास करके दूसरे दिन वन में जाकर उंछवृत्ति द्वारा आजीविका करते हैं। इसलिए वे एक बार इस नारद को अशोकवृक्ष के नीचे छोड़कर उंछवृत्ति के लिए गये थे। उस समय यह असाधारण कांतिवाला बालक जृंभक देवताओं को नज़र आया। अवधिज्ञान से नारद को अपने पूर्वजन्म का मित्र मानकर उन्होंने उसके पर रही अशोकवृक्ष की छाया को स्तंभित किया। फिर वे देवता अपने कार्य हेतु जाकर अर्थ सिद्ध करके वापस लौटे। उस समय स्नेह वश नारद को यहां से उठाकर वैताढ्यगिरि पर ले गये। देवताओं ने छाया स्तंभित की तब से यह अशोकवृक्ष पृथ्वी पर **छायावृक्ष** के नाम से प्रसिद्ध

हुआ। जृंभक देवताओं ने वैताढ्य गिरि की गुफा में रखकर उसका प्रतिपालन किया। आठ वर्ष का होने पर देवों ने प्रज्ञप्ति वगैरह सब विद्याएं सिखायी। उस विद्या के प्रभाव से वह आकाशगामी हुए हैं। ये नारदमुनि इस अवसर्पिणी में नौवें हुए हैं और वे चरमशरीरी[1] हैं। इस प्रकार त्रिकालज्ञानी **सुप्रतिष्ठ** नाम के मुनि ने इस नारदमुनि की उत्पत्ति पहले मुझे कही थी। वह प्रकृति से कलहप्रिय है, अवज्ञा करने से उसे कोप चढता है, वे एक ठिकाने पर रहता नही हैं और सर्वत्र पूजे जाता हैं।'

एक बार कंस ने स्नेह से वसुदेव को मथुरा आने के लिए आमंत्रित किया, तो दशार्हपति समुद्रविजय से आज्ञा लेकर मथुरा गये। एक समय जीवयशा सहित बैठे हुए कंस ने वसुदेव को कहा कि '**मृत्तिकावती** नाम की एक बड़ी नगरी है। वहां **देवक** नाम का राजा है। वे मेरे चाचा लगते हैं। उन्हें देवकन्या जैसी **देवकी** नाम की पुत्री है। उसे तुम वहाँ आकर ब्याहो। मैं तुम्हारा सेवक हूँ, इसलिए मेरी इस प्रार्थना का आप खण्डन मत करना।' इस प्रकार दाक्षिण्यनिधि दसवें दशार्ह वसुदेव को कहा तो उन्होंने कबूल किया और कंस के साथ वहां जाने के लिए चलें।

मृत्तिकावती को जाते हुए मार्ग में नारद मिले, तो वसुदेव और कंस ने विधि से उनकी पूजा की, नारद ने प्रसन्न होकर पूछा, 'आप कहां जाते हो ?' वसुदेव बोले, 'ये मेरे सुहृद (मित्र) कंस के साथ उनके चाचा देवकराजा की कन्या देवकी को ब्याहने जाता हूँ।' नारद बोले, ''यह कार्य कंस ने अच्छा आरंभ किया, क्योंकि विधाता निर्माण करता है, परंतु योग्य के साथ योग्य जोड़ने में वह अपंडित है (वह तो मनुष्य ही जोड़ता है)। ज्यों पुरुषों में तुम रुप से अप्रतिरूप हो, त्यों स्त्रियों में वह देवकी भी अप्रतिरूप है। आप बहुत सी खेचरकन्याओं को ब्याहे हो, परंतु उस देवकी को देखोगे तो फिर वे सब असार लगेगी। हे वसुदेव ! इस योग्य संयोग में आपको कहीं से भी विघ्न नहीं होगा। मैं भी जाकर देवकी को आपके गुण कहता हूँ।'' इस प्रकार कहकर नारद सत्वर उडकर देवकी के घर गये। देवकी ने उनकी पूजा की तो नारद ने आशीर्वाद दिया कि 'तेरे पति वसुदेव बने।' देवकी ने पूछा, 'वे वसुदेव कौन हैं ?' नारद बोले, 'वे युवा ऐसे दसवें दशार्ह हैं और विद्याधरों की कन्याओं को अति प्रिय हैं। ज्यादा क्या कहूँ ? देवता भी जिनके रूप समान नहीं है ऐसे वे वसुदेव हैं।' इस प्रकार कहकर नारदमुनि वहां से अंतर्धान हो गये। नारद की ऐसी वाणी से वसुदेव ने देवकी के हृदय में प्रवेश किया।

वसुदेव व कंस क्रमशः मृत्तिकावती नगरी आ पहुँचे। विवेकी देवक राजा ने वसुदेव और कंस की पूजा की। फिर अमूल्य आसन पर बैठाकर आगमन का कारण पूछा। कंस ने कहा, 'चाचा ! आपकी दुहिता (पुत्री) देवकी इस वसुदेव को दिलाने के लिए आया हूँ। मेरा यहाँ आने

१. आखिरी शरीरवाला। उसी भव में मोक्ष पधारनेवाले होने से अब दूसरा शरीर नहीं धारण करनेवाले।

के प्रयोजन का कारण यह ही है।' देवक ने कहा, 'कन्या के लिए वर स्वयं ही आये ऐसी रीति नहीं है, इसलिए इस प्रकार आनेवाले वर को मैं देवकी नहीं दूंगा।' देवक राजा के ऐसे वचन सुनकर कंस और वसुदेव दोनों नाराज़ होकर अपनी छावनी में आये, और देवकराजा अपने अंतःपुर में गये। वहां देवकी ने हर्ष से पिता को प्रणाम किए तो 'हे पुत्री ! योग्य वर को प्राप्त कर' यूं देवक ने आशीर्वाद दिया। फिर देवक ने देवी (रानी) को कहा कि 'आज वसुदेव को देवकी देने के लिए कंस ने उत्सुक होकर मुझ से मांग की, पर पुत्री के विरह को सहन नहीं करनेवाले मैंने वह बात कबूल नहीं की।' यह सुनकर देवी ने खेद पाया व देवकी उच्च स्वर से रुदन करने लगी। उनका वसुदेव के प्रति प्रीतिभाव देखकर देवक ने कहा, 'तुम खेद मत करो, अभी तो मैं पूछने ही आया हूँ।' तो देवी ने कहा, 'ये वसुदेव देवकी के योग्य वर हैं और पुत्री के पुण्य से ही यहाँ ब्याहने आये हैं।' इस प्रकार का विचार जानकर देवक ने तत्काल सचिव को भेजकर कंस और वसुदेव को वापस बुलवाया और प्रथम जिसका अपमान किया था उसका दुबारा बड़ा सत्कार किया। फिर शुभ दिन पर तार स्वर से गाये जाते धवल-मंगल सहित वसुदेव व देवकी का विवाहोत्सव हुआ। देवक ने पाणिग्रहण समय पर वसुदेव को सुवर्ण वगैरह अधिकाधिक दहेज और दस गोकुल के पति नंद को कोटि गाय के साथ दिया। फिर वसुदेव और कंस, नंद सहित मथुरा में आये। वहां कंस ने अपने सुहृद (मित्र) के विवाह की खुशाली में बड़ा महोत्सव आरंभ किया।

उस अरसे में जिसने पूर्व चारित्र ग्रहण किया है ऐसे कंस के अनुज बंधु **अतिमुक्त मुनि** तपस्या से कृश होने पर भी कंस के घर पारणे के लिए आये। उस समय मदिरा वश बनी कंस की स्त्री जीवयशा 'अरे देवर ! आज उत्सव के दिन आये तो बहुत अच्छा किया, आईए, पधारिए और मेरे साथ नृत्य-गान कीजिए।' इस प्रकार कहकर वह मुनि के कण्ठ से लग गई और गृहस्थ की भाँति उनकी बड़ी कदर्थना (जुल्म) की। उस समय ज्ञानी मुनि ने कहा कि, 'जिसके निमित्त यह उत्सव हो रहा है, उसका सातवाँ गर्भ तेरे पति का और पिता का वध करनेवाला होगा।' वज्र जैसी इस वाणी को सुनकर जिसकी भय से मदावस्था भाग चुकी थी उस जीवयशा ने महामुनि को छोडकर तत्काल अपने पति के पास जाकर यह खबर सुनाई। कंस ने सोचा कि कदापि वज्र निष्फल हो जाय परंतु मुनि का भाषित (कहना) निष्फल नहीं होता, फिर भी जब तक यह खबर किसिको मालूम नहीं पड़े तब तक मैं वसुदेव से देवकी के भावि सात गर्भ माँग लूँ। यदि मेरा मित्र वसुदेव माँग करने पर मुझें देवकी के गर्भ न दे तो दूसरी तरह से प्रयत्न करुं कि जिससे मेरी आत्मा का कुशल हो सके।' इस प्रकार सोचकर स्वयं मदरहित था, तो भी मदावस्था का दिखावा करता हुआ व दूर से अंजलि जोड़ते हुए कंस वसुदेव के पास

आया। वसुदेव ने खड़े होकर उसकी योग्यता अनुसार उसे सम्मान दिया व संभ्रम से कर द्वारा स्पर्श करके कहा, 'कंस ! आप मेरे प्राणप्रिय मित्र हो। इस समय कुछ कहने आये हो यूं लगता है, तो भी जो इच्छा हो वह कहिए। जो कहोगे वह मैं करूंगा।' कंस ने अंजलि जोड़कर कहा, 'हे मित्र ! पहले भी जरासंध से जीवयशा को दिलवाकर आपने मुझे कृतार्थ किया है, तो अब मेरी ऐसी इच्छा है कि देवकी के सात गर्भ जन्मते ही मुझे अर्पण करें।' सरल मनवाले वसुदेव ने वैसा करना कबूल किया। मूल बात को नहीं जाननेवाली देवकी ने भी उसे कहा, 'हे बंधु ! तेरी इच्छा अनुसार हो। वसुदेव के और तेरे पुत्रों में कुछ भी अंतर नहीं है। हम दोनों का योग विधि की भाँति तुझसे ही हुआ है, फिर भी हे कंस ! मानो अधिकार ही न हो उस प्रकार क्यों कहता है ?' वसुदेव बोले, 'सुंदरी ! अब अधिक बोलने का कुछ काम नहीं, तेरे सात गर्भ जन्म पाते ही कंस के अधीन हो जाय।' कंस बोला कि 'यह आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है।' उन्मत्तपने के नशे के बहाने इस प्रकार कहने के बाद वसुदेव के साथ मदिरापान करके वह अपने घर गया। इसके बाद वसुदेव ने मुनि का सर्व वृत्तांत सुना तो मालूम पड़ा कि 'कंस ने मुझे छला।' फिर अपनी सत्यवचनता से उसको दिए हुए वचन संबंधित बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

उस समय **भद्दिलपुर** में **नाग** नाम का एक सेठ रहता था, उसे **सुलसा** नाम की स्त्री थी। वे दोनों परम श्रावक थे। अतिमुक्त नाम के चारण मुनि ने उस सुलसा के संबंध में उसकी बाल्यवय में कहा था कि 'यह बाला निंदु (मृतपुत्रा-वंध्या) होगी।' यह सुनकर सुलसा ने इन्द्र के सेनानी नैगमेषी देव की आराधना की। वह देव संतुष्ट बना तो उसने पुत्र की याचना की। देवता ने अवधिज्ञान से जानकर कहा, 'हे धार्मिक स्त्री ! कंस ने मारने के लिए देवकी के गर्भ माँगे हैं, वे मैं तुझे तेरे मृतगर्भ के प्रसव समय पर अर्पण करूंगा।' ऐसा कहकर उस देव ने अपनी शक्ति से देवकी और सुलसा को साथ ही रजस्वला किया और वे साथ में ही सगर्भा हुई। दोनों ने साथ ही गर्भ को जन्म दिया, तो सुलसा के मृतगर्भ के स्थान पर उस देवता ने देवकी के जीवित गर्भ को रखा और उसके मृतगर्भ को देवकी के पास रखा। इस प्रकार देवता ने परिवर्तन कर दिया। कंस ने उस सुलसा के मृतगर्भ को पत्थर की शिला पर दृढता से पछाड़ा (और स्वयं उसे मार डाला है यूं मानने लगा)। इस प्रकार देवकी के सच्चे छः गर्भ सुलसा के घर पुत्र की भाँति उसका स्तनपान करके सुखपूर्वक वृद्धि पाने लगे। उसने उनके **अनीकयश, अनंतसेन, अजितसेन, निहतारि, देवयशा** और **शत्रुसेन** ऐसे नाम रखे।

एक बार ऋतुस्नाता देवकी ने रात्रि के अंत में सिंह, सूर्य, अग्नि, गज, ध्वज, विमान और पद्मसरोवर ये सात स्वप्न देखे। उस समय गंगदत्त का जीव महाशुक्र देवलोक से च्यूत होकर उसकी कुक्षि में अवतरित हुआ। इस प्रकार खान की भूमि ज्यों रत्न धारण करती है

त्यों देवकी ने गर्भ धारण किया। क्रमशः श्रावण माह की कृष्ण अष्टमी की आधी रात्रि मे देवकी ने कृष्ण[1] वर्णवाले पुत्र को जन्म दिया, जो देव के सान्निध्य से जन्मते ही शत्रुओं के दृष्टिपात का नाश करनेवाला हुआ। जब उसका जन्म हुआ तब उसके पक्ष के देवताओं ने कंस के चौकीदार पुरुषों को अपनी शक्ति से ज्यों विषपान किया हो त्यों निद्रावश कर दिया। उस समय देवकी ने अपने पति को बुलाकर कहा, "हे नाथ ! मित्ररूपी शत्रु ऐसे पापी कंस ने आपको वाणी से बांध लिया और उस पापी ने मेरे छः पुत्रों को जन्मते ही मार डाला, इसलिए इस पुत्र की माया द्वारा रक्षा कीजिए। बालक की रक्षा करने के लिए माया करने में कोई पाप नहीं लगता। मेरे इस बालक को आप नंद के गोकुल में ले जाय, वहां ननिहाल की भाँति रहकर यह पुत्र बड़ा हो जायेगा।" उसके ऐसे वचन सुनकर 'तूने बहुत अच्छा विचार किया' यूं बोलकर स्नेहार्द्र वसुदेव उस बालक को लेकर जहां पहरेदार सो गये थे ऐसे घर में से बाहर निकले। उस समय देवताओं ने उस बालक पर छत्र धरा, पुष्प की वृष्टि की और आठ उग्र दीपकों से मार्ग में उजाला करने लगे। फिर श्वेत वृषभरूप होकर उन देवों ने दूसरा कोई न जाने उस प्रकार नगरी के द्वार खोल दिए। जब वसुदेव गोपुर (दरवाजे) समीप आये, तो पिंजरे में बंद उग्रसेन राजा ने 'यह क्यां ?' यूं विस्मय से वसुदेव को पूछा, तो 'यह कंस का शत्रु है' ऐसा कहकर वसुदेव ने हर्षपूर्वक वह बालक उग्रसेन को दिखाया, और कहा, 'हे राजन ! इस बालक से तुम्हारे शत्रु का निग्रह होगा और इस बालक से ही तुम्हारा उदय होगा, पर यह बात किसिको कहना मत।' उग्रसेन ने कहा, 'ऐसा ही हो।'

फिर वसुदेव नंद के घर पहुँचे। उस समय नंद की स्त्री **यशोदा** ने भी एक पुत्री को जन्म दिया था, इससे वसुदेव ने उन्हें पुत्र देकर उनकी पुत्री ली, और देवकी के पास ले जाकर उसके समीप पुत्र की जगह रख दी। वसुदेव इस प्रकार परिवर्तन करके बाहर गये तो कंस के आदमी जाग उठे और 'क्या जन्मा ?' यूं पूछते हुए अन्दर आये। वहाँ उन्हें पुत्री आयी हुई नज़र आयी। वे उस पुत्री को कंस के पास ले गये। उसे देखकर कंस सोचने लगा कि 'जो सातवा गर्भ मेरी मृत्यु का कारण बननेवाला था वह तो स्त्रीमात्र हुआ, इसलिए मैं सोचता हूँ कि मुनि का वचन मिथ्या हुआ। अब इस बालिका को व्यर्थ ही क्यों मारना ? ऐसा सोचकर उस बालिका की एक तरफ की नासिका छेदकर उसे देवकी को वापस सौंपा।

यहां कृष्ण अंग के कारण **कृष्ण** ऐसे नाम से पुकारा जाता देवकी को पुत्र देवताओं द्वारा रक्षा पाते हुए नंद के घर वृद्धि पाने लगा। एक मास व्यतीत हो जाने के बाद देवकी ने वसुदेव को कहा, 'हे नाथ ! उस पुत्र को देखने के लिए मैं उत्कंठित हुई हूँ, इसलिए मैं आज गोकुल

१. श्याम।

में जाऊँगी।' वसुदेव ने कहा, 'प्रिये ! यदि तुम अचानक वहां जाओगी तो कंस को मालूम पड़ जायेगा, जिससे कोई भी कारण बताकर जाना उचित है, इसलिए बहुत स्त्रियों को साथ लेकर गाय के मार्ग से गौ-पूजा करते करते तुम गोकुल में जाओ।' देवकी उस प्रकार नंद के गोकुल में आयी। वहां हृदय पर श्रीवत्स के लांछनवाला, नीलकमल जैसी कांतिवाला, प्रफुल्लित कमल समान नेत्रवाला, कर-चरण में चक्रादिक के चिह्नवाला और मानो निर्मल किया हुआ नीलमणि हो वैसा हृदयानंदन पुत्र यशोदा के उत्संग में रहा हुआ उसने देखा। फिर देवकी गौपूजा के बहाने हंमेशां वहां जाने लगी। तब से लोगों में गौपूजा का व्रत चल पड़ा।

एक बार सूर्पक की दो पुत्री **शकुनि** व **पूतना** विद्याधरियां, जो पिता का बैर लेने वसुदेव पर दूसरा अपकार करने में असमर्थ थीं, वे डाकिन जैसी पापीन खेचरियां यशोदा व नंद बिना अकेले रहे कृष्ण को मारने के लिए गोकुल में आयी। शकुनि ने शकट पर बैठकर नीचे रहे हुए कृष्ण को दबाया और उसके पास कटु शब्द किया, पूतना ने विष से लिप्त किया हुआ अपना स्तन कृष्ण के मुख में दिया। उस समय कृष्ण के सान्निध्य में रहे देवताओं ने उस शकट से ही उन दोनों पर प्रहार करके मार डाला। नंद घर गये तो अकेले रहे कृष्ण को, बिखरे हुए शकट को और मृत्यु पायी हुइ उन दोनों खेचरियों को देखा। 'मैं लूँट गया' यू बोलते हुए नंद ने कृष्ण को उत्संग में लिया और आक्षेप से ग्वालों को कहा, 'यह गाड़ा किस प्रकार बिखर गया ? और यह राक्षसी जैसी रुधिर से व्याप्त मृत्यु पायी हुई दो स्त्रियाँ कौन हैं ? अरे ! यह मेरा वत्स कृष्ण एकाकी उसके भाग्य से ही जीवित रहा है।' गोप बोले, 'हे स्वामिन ! छोटे होने पर भी आपके इस बलवान बालक ने गाडा बिखेर डाला है और उसने अकेले ही ईन दोनों खेचरियों को मार डाला है।' यह सुनकर नंद ने कृष्ण के सब अंग देखे। उसके सर्व अंग अक्षत देखकर नंद ने यशोदा को कहा, 'हे भद्रे ! इस पुत्र को अकेला छोड़कर दूसरा कार्य करने के लिए तू क्यों जाती है ? आज तूने थोडी देर के लिए भी उसे सूना छोडा उतने में तो ऐसा संकट आ पड़ा, इसलिए अब घी के घड़े ढुल जाते हो तो भी इस कृष्ण को छोड़कर कहीं जाना मत। तुझे सिर्फ इसका जतन करना है, दूसरा कुछ भी काम करने की जरूरत नहीं है।' इस प्रकार अपने पति के वचन सुनकर 'हा ! मैं मर गयी !' यूं बोलती और हाथ से छाती कूटती हुई यशोदा कृष्ण के पास आयी और उसे उठा लिया। फिर 'भाई ! तुझे कुछ लगा तो नहीं है न ?' यूं पूछते हुए उसने कृष्ण के सब अंग जाँचे, सर्व अंगो पर हाथ फिराया, उसके मस्तक पर चुंबन किया और छाती से लगाया। तब से यशोदा आदरपूर्वक उसे निरंतर अपने पास ही रखने लगी। फिर भी उत्साही कृष्ण इधर-उधर भाग जाने लगे।

एक बार एक रस्सी कृष्ण के पेट पर बांधकर कृष्ण के भाग जाने के भय से यशोदा ने

रस्सी का दूसरा सिरा उद्खल[1] के साथ बांधा और डरते डरते यशोदा पडौसी के घर गई। उस समय सूर्पक विद्याधर का पुत्र अपनेपितामह संबंधित बैर याद करने वहां आया और पास पास रहे अर्जुन[2] प्रकार के दो वृक्षरुप वह बना। फिर कृष्ण को उद्खल सहित मार डालने के लिए वह दो वृक्ष के बीच में उसे लाने का प्रयत्न करने लगा, तो कृष्ण के रक्षक देवों ने उस अर्जुन वृक्ष को तोड़ डालने के लिए भारी प्रहार किया। इतने में 'कृष्ण ने हाथी के बच्चे की तरह दोनों अर्जुन वृक्षों को गिरा दिया है' ऐसी बात सुनकर नंद यशोदा सहित वहां आये। उन्होंने धूल से लिपटे हुए कृष्ण के मस्तक पर चुंबन किया। उस समय उदर को दाम (रस्सी) से बंधे हुए कृष्ण को देखकर सब गोप "**दामोदर**" कहकर बुलाने लगे। गोप व गोपांगनाओं को वे बहुत प्यारे (प्राणवल्लभ) लगते होने से वे उन्हें रात-दिन छाती पर, गोद में और मस्तक पर रखने लगे। कृष्ण दहीं मंथन करने की मथनी (मटकी) में से चपलतापूर्वक मक्खन ले-लेकर खा जाते थे परंतु स्नेहार्द्र व करतूत देखने की इच्छा से ग्वाले उन्हें रोकते नहीं थे। किसिको मारे, स्वैच्छा से घूमे-फिरे और कुछ भी उठा ले जाय तो भी यशोदा का पुत्र ग्वालों को आनंद उत्पन्न करता था। उसे कहीं कष्ट न आ पडे इसलिए कृष्ण जब दौडते तब गोप उन्हें पकड़ रखने के लिए उनके पीछे दौड़ते थे, परंतु उसे वे रोक नहीं पाते थे। मात्र उसके स्नेहरुपी गुण (रस्से) से आकर्षित होकर उसके पीछे चल देते थे।

समुद्रविजयादि दशार्हो ने भी सुना कि 'कृष्ण बालक है फिर भी शकुनि और पूतना को मार डाला, बैलगाडी तोड़ डाली और अर्जुन जाति के दो वृक्षों का उन्मूलन कर डाला।' यह बात सुनकर वसुदेव चिंता करने लगे कि - "मैंने मेरे पुत्र को छिपाया है, फिर भी वह अपने पराक्रम से प्रसिद्ध होगा और कंस भी जानेगा तो वह उसका अमंगल करने का प्रयत्न करेगा। यद्यपि वैसा करने में अब समर्थ नहीं होगा, परंतु उस बालक की सहायता करने के लिए मैं एक पुत्र को भेजूं तो ठीक रहेगा, लेकिन अक्रूर वगैरह में से किसिको भेजूंगा तो क्रूर बुद्धिवाला कंस उसे पहचानता होने से उलटे ही ज्यादा शक पडेगा, इसलिए बलराम को भेजना ठीक रहेगा, क्योंकि कंस अभी उसे पहचानता नहीं है।' इस प्रकार निश्चय करके कृष्ण की कुशलता के लिए रोहिणी सहित राम को शौर्यपुर से ले आने के लिए वसुदेव ने एक आदमी को समझाकर भेजा। उनके आने के बाद राम को अपने पास बुलाकर, पूरी हकीकत यथार्थरूप से समझाकर, सिखाकर उसे नंद तथा यशोदा को पुत्ररूप में अर्पित किया।

बलराम के गोकुल जाने के बाद दस धनुष्य ऊँचे शरीरधारी व सुंदर आकृतिवाले उन दोनों का खेल ग्वाले अन्य सभी कार्यो को छोड़कर निर्निमेष नेत्रों से देखने लगे। बलराम से कृष्ण

१. काष्ठ की ओखली। २. सादड।

धनुर्वेद और अन्य सभी कलाएं सीखे और ग्वालों से सेवा पाते हुए सुखपूर्वक रहने लगे। कोई बार वे दोनों मित्र बनते थे और कोई बार शिष्य व आचार्य बनते थे। इस तरह पलभर के लिए भी अवियोगीपन से रहते हुए वे विविध प्रकार की चेष्टा करने लगे। मार्ग में जाते हुए मदोन्मत बैलों को पूंछ से पकड़कर केशव खड़े रखते थे, उस समय राम भाई के बल को जानते होने से उदासीन की तरह देखा करते थे। इस तरह ज्यों ज्यों कृष्ण बडे होते गये त्यों त्यों गोपांगनाओं के चित्त में उन्हें देखने पर कामदेव का विकार उत्पन्न करने लगे। कृष्ण को बीच में बैठाकर वे उनके चारोंओर घूमकर रास गाने लगी और कमल के चारोंओर भँवरियां घूमा करती हो त्यों निर्भर चित्त से उनके चारोंओर घूमने लगी। उसके सामने देखती हुई गोपांगनाए ज्यों अपने नेत्र बंद नहीं करती थी त्यों 'कृष्ण कृष्ण' बोलते हुए अपने ओष्ठपुट को भी बंद नहीं करती थी। कृष्ण की ओर मनवाली गोपांगनाएं दूध दोहते समय दूध की धारा को पृथ्वी पर गिरते हुए भी न जान पाती थीं। कृष्ण जब पराङ्मुख होकर जाते हो तब उसे अपने सामने दिखलाने के लिए हेतु बेवजह मानो कष्ट पाया हो त्यों पुकारती थी, क्योंकि वे त्रस्तग्रस्त का रक्षण करनेंवाले थे। कई बार सिंदुवारादि पुष्पों की मालाएं गूंथ गूंथ कर गोपियां स्वयं ही स्वयंवर माला की तरह वे मालाएं कृष्ण के हृदय पर पहनाती थीं। और जानबूजकर गोपियां गीत-नृत्यादिक में स्खलित होती थी कि जिससे शिक्षा के बहाने कृष्ण आलाप कर दिखाए। विकार नहीं छिपा सकती गोपियां हर तरीके से कृष्ण को बुलाती थीं और उनका स्पर्श करती थीं। मयूरपंख के आभरणवाले कृष्ण गोपियों के गान से अविच्छिनपने से भराते कर्णवाले होकर भी गोपाल गुजरी से बोलते थे। जब कोई भी गोपी याचना करती तब कृष्ण अगाध जल में रहे कमलों को भी हंस की तरह लीलामात्र में तैरकर ला देते थे। बलराम को गोपियां उलाहना देती थीं कि तुम्हारे लघुबंधु दिखाई देने पर हमारे चित्त हरते हैं और नहीं दिखाई देने पर हमारा जीवन हरते हैं। गिरिश्रृंग पर बैठकर वेणु को मधुर स्वर से बजाते और नृत्य करते कृष्ण बलराम को बारबार हँसाते थे। जब गोपियां गाती थीं और कृष्ण नाचते थे तब बलराम रंगाचार्य की तरह उद्भटपन से हस्ततात देते थे। इस प्रकार वहां क्रीडा करते हुए राम-कृष्ण को सुषमाकाल की भाँति अत्यंत सुख में ग्यारह वर्ष बीत गये।

यहां सूर्यपुर में समुद्रविजय की प्रिया शिवादेवी ने एक बार शेष रात्रि बाकी थी तब हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मीदेवी, पुष्पमाल, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुंभ, पद्मसरोवर, समुद्र, विमान, रत्नपुंज और अग्नि आदि चौदह महास्वप्न देखे। उस समय कार्तिक कृष्ण द्वादशी को चित्रा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग आने पर अपराजित विमान में से च्यूत होकर शंखराजा का जीव शिवादेवी की कुक्षि में पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ। उस समय नारकी-जीवों ने भी क्षणभर के लिए सुख पाया और तीनों जगत में उद्योत हुआ। "अरिहंत के कल्याणक समय पर अवश्य इस प्रकार होता

है।'' फिर शिवादेवी ने जागकर समुद्रविजय राजा को उस स्वप्न की पूरी बात कह सुनायी। समुद्रविजय ने स्वप्नार्थ पूछने के लिए कोष्टुकि को बुलाया, तो वह तुरंत आया। इतने में एक चारणश्रमण स्वयंमेव वहां पधारे। राजा ने खडे होकर उनकी वंदना की और एक उत्तम आसन पर उन्हें बिठाया। फिर राजा ने कौष्टुकि व मुनि से सपने का फल पूछा। उन्होंने कहा, 'तीन जगत के पति तीर्थंकर तुम्हारे पुत्र होंगे।' इस प्रकार कहकर वे मुनि चल दिए। राजा व रानी ने उनकी वाणी से मानो अमृत से नहाये हो त्यों अत्यंत हर्ष पाया। उस दिन से देवी की तरह सुख देनेवाले और प्रत्येक अंग में लावण्य व सौभाग्य के उत्कर्ष को देनेवाले गूढ गर्भ को शिवादेवी ने धारण किया।

क्रमशः गर्भ स्थिति पूर्ण होने पर श्रावण मास की शुक्ल-पंचमी की रात्रि में चित्रा नक्षत्र में चन्द्र का योग आने पर कृष्ण वर्णवाले और शंख के लांछनवाले पुत्र को शिवादेवी ने जन्म दिया। उस समय छप्पन दिक्कुमारियों ने अपने अपने स्थानक से आकर शिवादेवी और जिनेन्द्र का प्रसूति कर्म किया। फिर शक्रेन्द्र ने वहाँ आकर पांच रूप धारण किये। उनमें से एक रुप द्वारा प्रभु को हाथ में ग्रहण किया, दो रूप से चंवर डालने लगे, एक रुप से मस्तक पर उज्ज्वल छत्र धारण किया और एक रुप द्वारा हाथ में वज्र लेकर नौटंकिये की तरह प्रभु समक्ष नाचते नाचते चले। इस प्रकार मेरु पर्वत के शिखर पर अतिपांडुकबला नाम की शिला के पास आये। उस शिला उपर के अति उच्च सिंहासन पर भगवंत को गोद में लेकर शक्रेन्द्र बैठे। उस समय अच्युतादि त्रैसठ इन्द्र भी तत्काल वहां आये और उन्होंने श्री जिनेन्द्र को भक्तिपूर्वक स्नान कराया। फिर इशान इन्द्र की गोद में प्रभु को अर्पण करके शक्रेन्द्र ने विधिपूर्वक प्रभु का स्नात्र किया और कुसुमादिक से पूजा की। फिर स्वामी की आरती उतारकर नमस्कार करके, हाथ जोड़कर भक्तिनिर्भर वाणी से इन्द्र ने इस प्रकार स्तुति का आरंभ किया-

''हे मोक्षगामी और शिवादेवी की कुक्षीरुपी शुक्ति में मुक्तामणि समान प्रभो ! आप कल्याण के एक स्थानरुप और कल्याण करनेवाले हो। जिनके समीप ही मोक्ष रहा है ऐसे, समस्त चीजें जिनसे प्रगट हुई है ऐसे और विविध प्रकार की ऋद्धि के निधानरुप ऐसे हे बाइसवें तीर्थंकर ! आपको नमस्कार हैं। आप चरम देहधारी जगद्गुरु हो, आपके जन्म से हरिवंश और इस भरतक्षेत्र की भूमि भी पवित्र हो गई है। हे त्रिजगद्गुरु ! आप ही कृपा का एक आधार हो, ब्रह्मस्वरुप के एक स्थान हो और ऐश्वर्य के अद्वितीय आश्रय हो। हे जगतपति ! आपके दर्शन करके ही अति महिमा द्वारा प्राणियों के मोह का विध्वंस होने से आपका देशनाकर्म सिद्ध होता है। हरिवंश में अपूर्व मुक्ताफल समान हे प्रभो ! आप कारण बिना त्राता, हेतु बिना वत्सल और निमित्त बिना भर्ता हो। इस समय अपराजित विमान से भी भरतक्षेत्र उत्तम है, क्योंकि उसमे

लोगों के सुख के लिए बोधदान देनेवाले ऐसे आप अवतरित हुए हो। हे भगवंत ! आपके चरण निरंतर मेरे मानस में हँसपने को भजो और मेरी वाणी आपके गुण की स्तवना करते हुए चरितार्थ (सफल) बनो।''

इस प्रकार स्तुति करके जगन्नाथ प्रभु को लेकर इन्द्र शिवादेवी के पास गये और उनके पासे से जिस तरह ले गये थे उस तरह वहां छोड दिया। फिर भगवंत का पालन करने के लिए पांच अप्सराओं को वहां धात्री के रुप में रहने की आज्ञा देकर इन्द्र नंदीश्वर द्वीप गए और वहां यात्रा करके अपने स्थानक पर गये।

प्रातःकाल में सूर्य की तरह उदित हुए महाकांतिमान पुत्र को देखकर समुद्रविजय राजा ने हर्षित होकर महाजन्मोत्सव किया। भगवंत गर्भ में थे तब माता ने अरिष्टमयी चक्रधारा सपने में देखी थी, इसलिए पिता ने उनका ''**अरिष्टनेमि**'' नाम स्थापित किया। अरिष्टनेमि का जन्म सुनकर हर्ष के प्रकर्ष से वसुदेवादिक ने मथुरा में भी महोत्सव किया।

एक बार देवकी के पास आये हुए कंस ने उसके घर मे ध्राणपुट[1] छेदी हुई उस कन्या को देखा। इससे भय पाए हुए कंस ने अपने घर आकर उत्तम निमित्तिये को बुलाकर पूछा कि 'देवकी के सातवें गर्भ से मेरी मृत्यु होगी ऐसा एक मुनि ने कहा था, वह वृथा है क्या ?' नैमित्तिक ने कहा कि ''ऋषि का कहा मिथ्या होता ही नहीं है, इसलिए आपका अंत लानेवाला देवकी का सातवाँ गर्भ किसी भी स्थान पर जीवित है यूं मानो। उसकी परीक्षा के लिए **अरिष्ट** नाम का तुम्हारा बलवान बैल, **केशी** नाम का महान अश्व व दुर्दात ऐसे **खर** और **मेष** वृंदावन में खुल्ले छोड दीजिए। पर्वत जैसे दृढ़ इन चारों को खेल ही खेल मे जो मार डालेगा, वही देवकी का सातवाँ गर्भ आपका वध करेगा ऐसा मानना। और क्रमागत ज्ञानियों ने कहा है कि भुजाबल में वासुदेव अन्य जनों के दुःख से आर्द्र हो जाते हैं। वह वसुदेव महाक्रूर **कालीनाग** का दमन करेगा, **चाणूर** मल्ल का वध करेगा, आपके **पद्मोत्तर** व **चंपक** नाम के दो हाथियों और आपको भी मार डालेगा।''

नैमित्तिक के ऐसे वचन सुनकर अपने शत्रु की पहचान के लिए अरिष्टादिक चारों बलवान पशुओं को कंस ने वृन्दावन में खुल्ले छोड दिया व चाणूर तथा मुष्टिक नाम के दोनों मल्लों को श्रम करने के लिए आज्ञा दी। मूर्तिमंत अरिष्ट जैसा अरिष्ट बैल शरद ऋतु में वृन्दावन में आवागमन करते गोप लोगों को परेशान करने लगा। वह बैल नदी के तट पर ज्यों कीचड उछाले त्यों शृंग के अग्र भाग से गायों को उडाने लगा, और तुंडाग्र (शिंग) से घी के अनेक पात्रो को गिराने लगा। उसके ऐसे उपद्रव से 'हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे राम ! हे राम ! हमारी रक्षा करें,

१. नासिका।

रक्षा करें' ऐसे अति दीन कलकल शब्द ग्वाले करने लगे। उनका ऐसा कलशोर सुनकर संभ्रम से 'यह क्या' यूं बोलते हुए कृष्ण राम सहित वहां दौड़ गये, तो महाबलवान उस वृषभ को उन्होंने देखा। उस समय 'हमें गायों का कुछ काम नहीं है और घी की भी जरूरत नहीं है' यूं अनेक वृद्धों के निषेध करने पर भी कृष्ण ने उस वृषभ को बुलाया। उनके आह्वान से सिंग झुकाकर, रोष से मुँह फुलाकर पूंछ ऊँची करके वह बैल गोविन्द के सामने दौडा, तो उसके सिंग पकड़कर शीघ्र ही उसका गला मरोड़कर उसे बेश्वास करके कृष्ण ने मार डाला। अरिष्ट के मृत्यु पाने से मानो उनकी मृत्यु ही मरण पायी हो त्यों सब ग्वाले खुश हो गये और कृष्ण को देखने की तृष्णावाले ग्वाले उन्हें पूजने लगे।

कृष्ण वृन्दावन मे क्रीड़ा कर रहे थे तब एक बार कंस का केशी नाम का बलवान अश्व यमराज की तरह दुष्ट आशा धारण करके मुख फाड़ता हुआ वहां आया। दांतों से बछडों को ग्रहण करते, खुर से गर्भिणी गायों को मारते और भयंकर हेषारव करते हुए उस अश्व को देखकर कृष्ण ने उसकी तर्जना की। फिर मारने की इच्छा से प्रसारे हुए व दंतरुपी करांत से दारुण बने उसके मुख में वज्र जैसा अपना हाथ कृष्ण ने मोड़कर डाल दिया। ग्रीवा तक वह हाथ ले जाकर उससे केशी का मुख ऐसा फाड़ डाला कि जिससे वह अरिष्ट के समूह की भाँति तत्काल प्राणरहित हो गया। एक बार कंस का पराक्रमी खर और बकरा वहां आये, उन्हें भी महाभुज कृष्ण ने लीलामात्र में मार डाला।

'इन सबको मार डाले' ऐसा सुनकर कंस ने शत्रु की बराबर परीक्षा करने के लिए शार्ङ्ग धनुष की पूजाउत्सव के बहाने सभा में स्थापना की। उसकी उपासना करने के लिए अपनी कुँवारी बहन सत्यभामा को उसके पास बिठाया और बड़ा उत्सव आरंभ किया, कंस ने ऐसी घोषणा कराई कि 'जो यह शार्ङ्ग धनुष को चढ़ायेगा उसे यह देवांगना जैसी सत्यभामा दी जायगी।' वह आघोषणा सुनकर दूर दूर से कइं राजा वहां आये, पर कोई भी उस धनुष को चढ़ाने में समर्थ नहीं हुआ। यह समाचार वसुदेव की स्त्री मदनवेगा के पुत्र अनाधृष्टि ने सुनी, तो वह वीरमानी कुमार वेगवाले रथ में बैठकर गोकुल में आया। वहां राम कृष्ण को देखकर उनके आवास में एक रात्रि आनंदवार्त्ता करने ठहरा। प्रातःकाल में अनुज बंधु राम को वहां छोड़कर मथुरा का मार्ग दिखलानेवाले कृष्ण को साथ लेकर वह चला। बड़े वृक्षों से संकीर्ण बने मार्ग में जाते हुए उसका रथ एक बड़ में अटक कर फँस गया। उस रथ को निकालने के लिए अनाधृष्टि समर्थ न बन सका। उस समय पैदल चल रहे कृष्ण ने लीलामात्र में उस बड़ को उखाड़कर दूर फैंक दिया और रथ का मार्ग आसान कर दिया। अनाधृष्टि कृष्ण का पराक्रम देखकर बड़ा खुश हुआ और रथ से नीचे उतरकर उसने कृष्ण को आलिंगन दिया

और रथ में बिठाया।

क्रमानुसार यमुना नदी उतरकर मथुरानगरी में प्रवेश करके जहां अनेक राजा बैठे हैं ऐसी शार्ङ्ग धनुष्यवाली सभा में वे आये। धनुष्य की अधिष्ठात्री देवता हो त्यों कमललोचना सत्यभामा उनके देखने में आयी। सत्यभामा ने कृष्ण के सामने तृष्णाभरी दृष्टि से देखा और तत्काल वह कामदेव के बाण से पीडित होकर मनोमन कृष्ण को वर चूकी। पहले अनाधृष्टि धनुष के पास जाकर उसे उठाने लगा, परंतु कीचड़वाली भूमि में जिसका पैर धँस गया हो त्यों वह ऊँट की भाँति पृथ्वी पर गिर गया। उसका हार टूट गया। मुगट टूट गया तथा कुंडल गिर गये। यह देखकर सत्यभामा स्वल्प और अन्य लोग विकसित नेत्रों से खूब हँसे। इन सबके हास्य को सहन नहीं करते हुए कृष्ण ने पुष्पमाला की भाँति लीलामात्र में ही उस धनुष्य को उठा लिया और उसकी प्रत्यंचा चढ़ायी। कुंडलाकार किये हुए उस तेजस्वी धनुष से इन्द्रधनुष की तरह ज्यों नया बरसता मेघ शोभा देता है त्यों कृष्ण शोभा पाने लगे। फिर अनाधृष्टि घर गया और द्वार के पास कृष्ण को रथ में छोडकर स्वयं अकेला घर के अंदर गया और पिता वसुदेव को कहा कि 'हे तात ! मैंने अकेले ही शार्ङ्ग धनुष चढ़ा दिया है, जिसे अन्य राजा छू तक नहीं सके थे।' यह सुनते ही वसुदेव ने आक्षेप से कहा कि 'तब तू तत्काल चला जा, क्योंकि तुझे धनुष चढानेवाला जानकर कंस तत्काल मार डालेगा।' इस प्रकार सुनकर अनाधृष्टि भयभीत होकर शीघ्र ही घर के बाहर निकला और कृष्ण के साथ तुरंत ही नंद के गोकुल में आया। वहां राम कृष्ण की आज्ञा लेकर अकेला ही शौर्यपुर गया।

यहां लोगों में बात चली कि नंद के पुत्र ने धनुष चढ़ाया। उस धनुष के चढ़ाने से कंस अत्यंत दुःखी बना, इसलिए उसने धनुष महोत्सव को हटाकर बाहुयुद्ध के लिए सर्व मल्लों को आज्ञा दी। उस प्रसंग में आमंत्रित सब राजा मल्लयुद्ध देखने की इच्छा से मंच पर आकर बैठे और बडे मंच पर बैठे कंस की ओर नज़र रखने लगे। कंस का दुष्ट भाव पहचानकर वसुदेव ने अपने सर्व ज्येष्ठ बंधुओं और अक्रूर वगैरह पुत्रों को वहां बुलाया। तेज में सूर्य समान उन सबका सत्कार करके कंस ने उन्हें ऊँचे मंचों पर बिठाया।

मल्लयुद्ध के उत्सव की बात सुनकर कृष्ण ने राम को कहा, 'आर्यबंधु ! चलिए, हम मथुरा जाकर मल्लयुद्ध का कौतुक देखें।' बात स्वीकार करके राम ने यशोदा को कहा, 'माता ! हमें मथुरापुरी जाना है, तो हमारे स्नान वगैरह की तैयारी कर दें।' इसमें यशोदा को कुछ मंद देखकर बलदेव ने कृष्ण से होनेवाले उसके भ्रातृवध की प्रस्तावना के लिए ही हो त्यों आक्षेपपूर्वक कहा, 'अरे यशोदा ! क्या तुम पूर्व का दासीभाव भूल गयी कि जिससे हमारी आज्ञा को तत्काल करने में विलम्ब करती है ?' राम के ऐसे वचन से कृष्ण के मन में बड़ा खेद हुआ, जिससे

वे निस्तेज हो गये। फिर उन्हें बलराम यमुना नदी में स्नान कराने ले गये। वहां राम ने कृष्ण को पूछा, 'हे वत्स ! चौमासे के मेघवायु का स्पर्श पाये दर्पण की भाँति तू निस्तेज क्यों लगता हैं?' कृष्ण ने बलदेव को गद्‌गद् स्वर में कहा, 'भद्र ! आपने मेरी माता यशोदा को आक्षेप से दासी कहकर क्यों पुकारा ?' राम ने मधुर व मनोहर वाणी से कृष्ण को कहा, 'वत्स ! यह यशोदा तेरी माता नहीं है और नंद पिता नहीं है, परंतु देवकराजा की पुत्री देवकी तेरी माता है और विश्व में अद्वितीय वीर और महासौभाग्यशाली वसुदेव तेरे पिता हैं। स्तनपय से पृथ्वी का सिंचन करते हुए देवकी नेत्र में अश्रु लाकर हर महिने तुझे देखने के लिए यहां आती हैं। दाक्षिण्यता के सागर समान हमारे पिता वसुदेव कंस के आग्रह से मथुरा में रहे हैं। मैं तुम्हारा सौतेला बड़ा भाई हूँ। तुम्हारे पर विघ्न की शंकावाले पिता की आज्ञा से मैं तुम्हारी रक्षा करने के लिए यहां आया हूँ।' कृष्ण ने पूछा, 'तो पिता ने मुझे यहां क्यों रखा है ?' राम ने कंस का भ्रातृवध संबंधी सब वृत्तांत कह सुनाया। वह सुनकर वायु से अग्नि की भाँति कृष्ण को दारुण क्रोध चढ़ा तो तत्काल उन्होंने कंस को मारने की प्रतिज्ञा की। फिर नदी में स्नान हेतु प्रवेश किया।

कंस के प्रिय मित्र समान ऐसा **कालिय** नाम का सर्प यमुना के जल में मग्न होकर कृष्ण को डसने के लिए सामने दौडा आया। उसके फणामणि के प्रकाश से 'यह क्या होगा ?' यूं संभ्रम पाकर राम कुछ कह रहे थे कि कृष्ण ने कमल नाडी की भाँति उसे पकड़ लिया। फिर उसे वृषभ की भाँति नासिका में कमल नाडी डालकर अपने वश कर लिया और उस पर चढ़कर कृष्ण ने बहुत देर तक जल में घुमाया। फिर उसे निर्जिव जैसा बनाकर अत्यंत खेद पहुचाकर कृष्ण बाहर निकले। उस समय स्नानविधि करनेवाले ब्राह्मण कौतुकता से वहां आकर कृष्ण को घेर कर खड़े रहे। गोपों के साथ राम व कृष्ण मथुरा को चले और कुछ देर में वे नगरी के दरवाजे समीप आये।

उस समय कंस की आज्ञा से महावत ने **पद्मोत्तर** और **चंपक** नाम के दो हाथी तैयार रखे थे, उन्हें प्रेरणा दी। वे दोनों राम-कृष्ण की ओर दौड़े। कृष्ण ने उसके दाँत खींचकर मुष्टिप्रहार से सिंह की भाँति पद्मोत्तर को मार डाला और राम ने चंपक को मार डाला। उस समय नगरजन चकित होकर परस्पर दर्शाने लगे कि 'ये दोनों अरिष्ट वृषभ वगैरह को मारनेवाले नंद के पुत्र हैं।' फिर नील व पीत्त वस्त्रों व वनमालाओं को धारण करनेवाले और ग्वालों से घिरे हुए वे दोनों भाइ मल्लो के अखाड़े में आये, वहां एक महामंच पर बैठे हुए लोगों को उठाकर उस पर दोनों भाइ परिवार सहित निःशंक होकर बैठे। फिर राम ने कृष्ण को कंस (शत्रु) दिखाया और उसके पीछे क्रमशः बैठे हुए समुद्रविजयादि दशार्ह चाचा और अपने पिता की पहचान

करायी। उस समय 'ये देव जैसे दो पुरुष कौन होंगे ?' यूं मंच पर रहे राजा और नगरजन परस्पर विचार करते हुए उन्हें देखने लगे।

कंस की आज्ञा से पहले तो उस अखाडे में अनेक मल्ल युद्ध करने लगे। फिर कंस प्रेरित **चाणूर** मल्ल पर्वत की आकृति धरकर खड़ा हुआ। मेघ की भाँति उग्र गर्जना करते हुए और कर-आस्फोट से सर्व राजाओं पंर आक्षेप करते हुए वह उच्च स्वर से बोला, 'जो कोई वीर पुत्र हैं अथवा यदि कोई वीरमानी दुर्धर पुरुष है तो वह बाहुयुद्ध की मेरी श्रद्धा पूरी करे।'

इस प्रकार अति गर्जना करते हुए चाणूर के गर्व को नहीं सहन करते हुए महाभुज कृष्ण ने मंच पर से नीचे उतरकर उसके समक्ष करास्फोट किया। सिंह की पूंछ के आस्फोट की भाँति कृष्ण के करास्फोट की उग्र ध्वनि से भूमि व अंतरीक्ष फट पड़े। "यह चाणूर उम्र व अनुभव में बड़ा, श्रम करने में कठोर, बाहुयुद्ध से आजीविका पानेपाला व दैत्य जैसा सदैव क्रूर है, और यह कृष्ण दुग्धमुख, मुग्ध, कमलोदर से भी कोमल और बनंवासी होने से मल्लयुद्ध का अभ्यास किये बिना का है, इसलिए इन दोनों का युद्ध योग्य नहीं है, यह अघटित हो रहा है। ऐसे विश्वनिंदित कार्य को धिक्कार है।" इस प्रकार उच्च स्वर से बोलते हुए लोगों का कोलाहल चारोंओर होने लगा। इससे कंस ने क्रोधपूर्वक कहा, "इन दोनों गोपबालकों को यहां कौन लाया हैं ? गाय का दूध पीने से उन्मत बने वे स्वैच्छा से युद्ध करे तो उन्हें कौन रोके ? फिर भी जिन्हे इन दोनों की पीड़ा होती हो वे अलग होकर मुझे बताओ।" कंस के ऐसे वचन सुनकर सब लोग चूप हो गये। फिर नेत्रकमल का विकास करते हुए कृष्ण बोले, "चाणूर मल्ल कुंजर राजपिंड से पुष्ट हुआ है। सदैव मल्लयुद्ध का अभ्यास करनेवाला है और शरीर में महा समर्थ है, फिर भी गाय के दूध का पान करके जीनेवाला मै ग्वाल बाल, जिस प्रकार सिंह का शिशु हाथी को मार डाले त्यों उसे मार डालता हूँ, यह सब आप लोग देखिए।"

कृष्ण के ऐसे पराक्रम के वचन सुनकर कंस भयभीत हो गया, तो तत्काल एक साथ युद्ध करने के लिए उसने दूसरे **मुष्टिक** नाम के मल्ल को आज्ञा दी। मुष्टिक को उठा हुआ देखकर बलराम तुरंत ही मंच पर से नीचे उतरे और रणकर्म में चतुर ऐसे मुष्टिक को युद्ध करने के लिए पुकारा। कृष्ण और चाणूर तथा राम और मुष्टिक ने नागपाश जैसी भुजाओं से युद्ध करना शुरु किया। उनके चरणन्यास से पृथ्वी कंपायमान हो गयी और करास्फोट के शब्दों से ब्रह्मांड मंडप फूट गया। राम और कृष्ण ने मुष्टिक और चाणूर को तृण के पूले की तरह ऊँचे उछाला, यह देखकर लोग खुश हुए। फिर मुष्टिक और चाणूर ने रामकृष्ण को सहज ऊँचे उछाले, यह देखकर सब लोग म्लानमुखी बन गए। उस समय कृष्ण ने हाथी ज्यों दंतमूशल से पर्वत पर ताड़न करे त्यों दृढ मुष्टि से चाणूर की छाती पर ताडन किया, तो जय चाहते चाणूर ने कृष्ण

के उरस्थल में वज्र समान मुष्टि से प्रहार किया। उस प्रहार से मद्यपान किया हो त्यो कृष्ण की आंख में अंधेरा छा गया और अति पीडित होकर आँखे मींचकर वे पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय छल जाननेवाले कंस ने दृष्टि से चाणूर को प्रेरणा दी तो पापी चाणूर बेहोश होकर गिरे कृष्ण को मारने के लिए दौडा। मारने की आकांक्षावाला जानकर बलदेव ने तत्काल वज्र जैसे हाथ के प्रकोष्ट से उस पर प्रहार किया। इस प्रहार से चाणूर सात धनुष पीछे खिसक गया। इतने में कृष्ण भी आश्वासन पाकर खडे हुए और जिससे युद्ध करने के लिए चाणूर को दुबारा ललकारा। फिर महापराक्रमी कृष्ण ने चाणूर को दो जानू के बीच में दबाकर भुजा द्वारा उसका मस्तक झुकाकर मुष्टि का ऐसा प्रहार किया कि जिससे चाणूर रुधिर की धारा का वमन करने लगा और उसके लोचन अत्यंत विह्वल हो गये, जिससे कृष्ण ने उसे छोड़ दिया। उसी क्षण कृष्ण से भय पाया हो त्यों उसके प्राण ने उसे छोड दिया, अर्थात् उसने मृत्यु पायी। उस समय भय और कोप से कांपते हुए कंस बोला, 'अरे ! ये दोनों अधम गोपबालों को मार डालो, देर मत करो, और इन दोनों का पोषण करनेवाले नंद को भी मार डालो और उस दुर्मति नंद का सर्वस्व लूंटकर यहाँ ले आओ, और जो नंद का पक्ष लेकर बीच में आये उसे भी उसके जैसा ही दोषित मानकर मेरी आज्ञा से मार डालो।'

उस समय क्रोध से लाल नेत्र करके कृष्ण ने कहा 'अरे पापी ! चाणूर को मारा तो अब भी तू तेरी आत्मा को मरा हुआ नहीं मानता ? तो पहले मुझ से वध होती तेरी आत्मा की रक्षा कर, फिर क्रोध करके नंद वगैरह के लिए आज्ञा करना।' इस प्रकार कहकर कृष्ण उछलकर मंच पर चढ़ गये और केश पकड़कर कंस को पृथ्वी पर गिरा दिया। उसका मुगट पृथ्वी पर गिर गया, वस्त्र खिसक गये और नेत्र भय से संभ्रम पा गये। कसाई के घर बंधे हुए पशु की तरह कंस को कृष्ण ने कहा, 'अरे अधम ! तूने तेरी रक्षा के लिए वृथा गर्भहत्याएं की, अब तू ही रहनेवाला नहीं है, इसलिए स्वकर्म के फल भुगत।' उस समय उन्मत्त हाथी को सिंह पकडे त्यों कंस को हरि द्वारा पकडा हुआ देखकर सब लोग चकित हो गये और अंतर में डरने लगे। उस समय राम ने बंधन से श्वासरहित करके यज्ञ मे लाये हुए पशु की भाँति मुष्टिक को मार ड़ाला। इतने में कंस की रक्षा के लिए कंस के सुभट (योद्धा) विविध प्रकार के आयुध हाथ में लेकर कृष्ण को मारने दौडे तो राम ने एक मंच का स्तंभ उखाडकर हाथ में लिया और ज्यों छत्ते पर से मधुमक्खियों को उडाए त्यों उन्हें भगा दिया। फिर कृष्ण ने मस्तक पर चरण रखकर कंस को मार डाला और समुद्र झाग को जिस तरह बाहर निकाल डालता है उस तरह उसको केश से खींचकर रंगमण्डप के बाहर फैंक दिया। कंस ने प्रथम से जरासंध के कुछ सैनिकों को बुला रखा था, वे राम-कृष्ण को मारने के लिए तैयार होने लगे। उनको तैयार होते

देखकर राजा समुद्रविजय तैयार होकर युद्ध करने आये, कारण कि उनका आना इस कारण ही हुआ था। जब उद्वैल समुद्र की भाँति समुद्रविजय उठकर आये तो जरासंध के सैनिक दसों दिशाओं में भाग गये।

इसके बाद अनाधृष्णि समुद्रविजय की आज्ञा से राम-कृष्ण को अपने रथ में बिठाकर वसुदेव के घर ले गया। सर्व यादव और समुद्रविजय वगैरह भी वसुदेव के घर गये और वहां एकत्रित होकर सभा भरकर बैठे। वसुदेव अर्धासन पर राम को और उत्संग में कृष्ण को बैठाकर नेत्र में अश्रु लाकर उनके मस्तक पर बार बार चुंबन करने लगे। उस समय वसुदेव के बड़े सहोदर बंधुओं ने उन्हें पूछा कि 'यह क्या ?' तो वसुदेव ने अतिमुक्त मुनि के वृत्तांत से लेकर पूरा वृत्तांत कह सुनाया। फिर राजा समुद्रविजय ने कृष्ण को अपने उत्संग में बिठाया और उनका पालन करने से प्रसन्न होकर राम की बार बार प्रशंसा की। उस समय देवकी एक नासिका-छिद्र[1] वाली पुत्री को साथ लेकर वहां आयी और एक उत्संग में से दूसरे उत्संग में जाते हुए कृष्ण ने उसे दृढ आलिंगंन किया।

फिर सब यादव हषार्श्रु बरसाते हुए बोले, 'हे महाभुज वसुदेव ! आप अकेले ही इस जगत को जीतने में समर्थ हो, फिर भी तुम्हारे बालकों को जन्मते ही उस क्रूर कंस ने मार डाले, तो आपने यह सहन क्यों किया ?' वसुदेव बोले, 'जन्म से ही मैंने सत्यव्रत पाला है, इसलिए उस व्रत की रक्षा के लिए प्रथम वचन दिया होने से ऐसा दुष्ट कर्म भी सहन किया। परंतु देवकी के आग्रह से इस कृष्ण को नंद के गोकुल में रखकर उसके बदले में नंद की इस पुत्री को यहां ले आया, इसे देवकी का सातवाँ गर्भ मात्र कन्या जानकर उस पापी कंस ने अवज्ञा से नासिका का एक छिद्र छेदकर इस बालिका को छोड दिया था।'

इस प्रकार बातचीत होने के बाद भाई और भ्रातृपुत्रों की संमति से समुद्रविजय ने कारागृह में से उग्रसेन राजा को बुलवा लिया, और उनके साथ यमुना तट पर जाकर सबने कंस का प्रेतकार्य किया। कंस की माता और दूसरी पत्नियों ने यमुना नदी में उसे जलांजलि दी, पर उसकी रानी जीवयशा ने मान धरकर जलांजलि नहीं दी। वह क्रोध करके बोली कि 'यह राम कृष्ण ग्वालों और सर्व संतान सहित दशार्हो को मरवाने के बाद ही मेरे पति का प्रेतकार्य करुंगी, नहीं तो में अग्निप्रवेश करुंगी।' ऐसी प्रतिज्ञा लेकर वह जीवयशा मथुरा से निकलकर तत्काल अपने पिता जरासंध के आश्रित किए राजगृही नगर में आयी। यहां राम-कृष्ण की अनुज्ञा से समुद्रविजय ने उग्रसेन को मथुरापुरी का राजा बनाया। उग्रसेन ने अपनी पुत्री सत्यभामा कृष्ण को दी और कौष्टुकि ने कहे शुभ दिन पर उसका यथाविधि विवाह हुआ।

१. नाक के एक तरफ के छेदे हुए सिर्फ एक छेदवाली।

दूसरी और जीवयशा केश खुल्ले छोड़कर रुदन करती हुई मानो मूर्तिमंत अलक्ष्मी हो त्यों जरासंध की सभा में आयी। जरासंध ने रुदन का कारण पूछा तो उसने बहुत कोशिश के बाद अतिमुक्त का वृत्तांत व कंस के वध तक की पूरी कथा कह सुनायी। वह सुनकर जरासंध बोला, 'कंस ने प्रथम ही देवकी को मारा नहीं यह अच्छा नहीं किया, क्योंकि उसे मारा होता तो फिर क्षेत्र बिना कृषि कैसे होती ? हे वत्से ! अब तू रुदन मत कर, मैं मूल से कंस के सर्व घातकों को सपरिवार मार के उनकी स्त्रियों को रुलाऊँगा।' इस प्रकार कहकर जीवयशा को शांत करके जरासंध ने **सोमक** नामक राजा को सब बात समझाकर समुद्रविजय के पास भेजा। वह तत्काल मथुरापुरी में आया और उसने राजा समुद्रविजय को कहा, 'आपके स्वामी जरासंध आपको ऐसी आज्ञा करते है - हमारी पुत्री जीवयशा और उसके स्नेह के कारण उसका पति कंस - दोनों ही हमें प्राण से भी प्यारे हैं, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। तुम हमारे सेवक हो तो सुखपूर्वक रहो, परंतु उस कंस का द्रोह करनेवाले राम-कृष्ण को हमें सौंप दे। और वह देवकी का सातवाँ गर्भ है इसलिए आपने उसे हमें अर्पण किया हुआ ही है, फिर भी आपने उसे छिपाने का अपराध किया इसलिए अब हमें फिर से उसे सौंप दो।'

सोमक के ऐसे वचन सुनकर समुद्रविजय ने उसको कहा, "सरल मनवाले वसुदेव ने मुझ से पशेक्षरुप में छः गर्भ कंस को अर्पण किए, वह ही ठीक नहीं हुआ है और राम-कृष्ण ने अपने भ्रातृवध की दुश्मनी से कंस को मारा तो उसमें उनका क्या अपराध है ? हमारा यह एक दोष है कि यह वसुदेव बाल्यवय से ही स्वैच्छाचारी हैं, इसलिए उसकी बुद्धि से चलने में मेरे छः पुत्र मारे गये। अब ये दो राम-कृष्ण तो मुझे प्राण से भी प्यारे हैं, और उनको मारने की इच्छा से तेरे स्वामी माँग करते हैं तो उनका ऐसा बिलकुल अविचारीपना है।" फिर सोमक राजा ने कोप से कहा, "अपने स्वामी की आज्ञा में सेवकों को युक्तायुक्त का विचार करना योग्य नहीं है। हे राजन् ! जहां तुम्हारे छः गर्भ गये हैं वहाँ ये दोनों दुर्मति राम-कृष्ण भी जाय। उसको रखने के विचार से तक्षक नाग के मस्तिष्क पर खुजली किसलिए करते हो ? बलवान के साथ विरोध करना यह कुशलता के लिए नहीं होता। आप जरासंध के समक्ष हाथी के सामने भेड समान मात्र क्या हो ?" उस समय कृष्ण ने क्रोध से कहा, "अरे सोमक ! हमारे पिता ने सरलतापूर्वक तेरे स्वामी के साथ आज तक स्नेहसंबंध पाला, तो इससे क्या तेरा स्वामी बड़ा समर्थ हो गया ? यह जरासंध हमारा स्वामी नहीं है, पर उसके ऐसे वचनों से वह दूसरा कंस ही है। इसलिए यहां से जा और तेरी इच्छानुसार तेरे स्वामी को कह।" कृष्ण के ऐसे वचन सुनकर सोमक ने समुद्रविजय को कहा, 'हे दशार्हमुख्य ! तेरा यह पुत्र कुलांगार है, फिर भी तू उसकी अपेक्षा क्यों करता है ?' उसके ऐसे वचन से कोप से प्रज्वलित बने अनाधृष्णि ने

कहा, 'अरे ! बार बार हमारे पिता से पुत्रों की याचना करते हुए तू क्यों शरमाता नहीं है ? अपने जामाता कंस के सिर्फ वध से तेरा स्वामी इतना दुःखी बना है तो क्या हमारे छः भाइयों के वध से हम दुःखी नहीं हुए ? अब ये पराक्रमी राम-कृष्ण और अन्य अक्रूर वगैरह हम तेरे ऐसे भाषण को सहन नहीं करेंगे।' इस प्रकार अनाधृष्णि ने तिरस्कृत किया हुआ व समुद्रविजय द्वारा उपेक्षा किया हुआ वह सोमक राजा रोष-विह्वल होकर अपने स्थान की ओर चला गया।

दूसरी दिन दशार्हपति ने अपने सब बंधुओं को इकट्ठा करके हितेच्छु ऐसे क्रौष्टुकि निमित्तिए को इस प्रकार पूछा, 'हे महाशय ! हमारे त्रिखण्ड भरतक्षेत्र के पति जरासंध के साथ विग्रह खड़ा हुआ है, तो अब इसका परिणाम क्या आयेगा यह बताइए।' क्रौष्टुकि बोला, 'हे राजेन्द्र ! ये पराक्रमी राम-कृष्ण कुछ समय में ही उसे मारकर त्रिखण्ड के अधिपति बनेंगे, परंतु इस समय आप पश्चिम दिशा की ओर समुद्र तट पर जाइए। वहां जाते ही आपके शत्रुओं के क्षय का आरंभ होगा। मार्ग में चलते हुए यह सत्यभामा जिस जगह दो पुत्रों को जन्म दे उस जगह एक नगरी बसाकर तुम निःशंकता पूर्वक वहां रहना।' क्रौष्टुकि के ऐसे वचन से राजा समुद्रविजय ने उद्घोषणा कराकर अपने सभी स्वजनों को प्रयाण के समाचार दिए, और ग्यारह कुलकोटि यादवों को लेकर उसने मथुरानगरी छोड़ी। क्रमशः वे शौर्यपुरी आये, वहां से भी सात कुलकोटि यादवों को लेकर ज्ञातिसहित आगे चले। उग्रसेन राजा भी समुद्रविजय का अनुसरण करते हुए साथ चले। क्रमानुसार वे सब विंध्यगिरि के मध्य में से होकर सुखपूर्वक आगे बढ़ने लगे।

अब उस सोमक राजा ने अर्धचक्री जरासंध के पास आकर सब वृत्तांत सुनाया, जो उसकी क्रोधरुपी अग्नि में ईंधन जैसा बन पड़ा। उस समय क्रोध पाये जरासंध को उसके **काल** नाम के पुत्र ने कहा, 'ये तपस्वी यादव आपके समक्ष क्या हैं ? मुझे आप आज्ञा दीजिए, मैं दिशाओं के अंतभाग में से, अग्नि में से अथवा समुद्र के मध्य में से वे जहाँ होगे वहाँ से उन यादवों को खिंच के मार डालकर यहां आऊँगा। इसके सिवा वापस नहीं लौटूंगा।' जरासंध ने पांच सौ राजाओं के साथ बड़ी सेना देकर काल को यादवों पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। काल अपने भाई **यवन** व **सहदेव** सहित, असगुनों के रोकने पर भी आगे चला। यादवों के कदम दबाता हुआ काल कुछ ही समय में विंध्याचल के नजदीक की भूमि कि जहां से यादव नज़दीक ही थे वहां आ पहुँचा। काल को नज़दीक आया देखकर राम-कृष्ण के रक्षक देवों ने एक द्वारवाला, ऊँचा और विशाल एक पर्वत रचा, और 'यहां रहा हुआ यादवों का सैन्य यहां अग्नि में भस्म हो गया' यूं कहती और बड़ी चिता के पास बैठकर रुदन करती हुई एक स्त्री रची। उसे देखकर काल कालसमान उसके पास आया, तो उस स्त्री ने कहा, 'तेरे से त्रस्त होकर सब यादव इस

अग्नि में घुस गये। दशार्ह और राम-कृष्ण भी अग्नि में घुस गये। इसलिए बंधुओं का वियोग होने पर मैं भी इस अग्नि में घुसती हूँ।' इस प्रकार कहकर उसने अग्नि में प्रवेश किया। देवों के इस कार्य से मोह में पडा काल अग्नि में घुसने के लिए तैयार हुआ, और उसने अपने भाई सहदेव, यवन एवं अन्य राजाओं को कहा कि, 'मैंने पिता और बहन के सामने प्रतिज्ञा की है कि अग्नि वगैरह में से भी खींच लाकर मैं यादवों को मार डालूंगा। वे यादव मेरे भय से यहां अग्नि में घुस गये, तो सत्य प्रतिज्ञावाला मैं भी उन्हें मारने के लिए प्रज्वलित इस अग्नि में प्रवेश करता हूँ।' इस प्रकार कहकर काल ढाल-तलवार सहित पतंगे की तरह अग्नि में कूद पड़ा। और क्षण मात्र में देवमोहित बने अपने लोगों की नजरों के सामने ही मृत्यु पा गया। उस समय भगवान सूर्य अस्तगिरि पर गये, यवन और सहदेव वगैरह वहीं ठहर गये। जब प्रभातकाल हुआ तब उन्होंने पर्वत या चिता कुछ भी वहाँ नहीं देखा और हेरिक लोगों ने आकर खबर दी कि 'यादव दूर चले गये।' कुछ वृद्धजनों के विचार से यह देवों का किया हुआ मोह था ऐसा निर्णय किया। फिर यवन वगैरह सब लौटकर राजगृही आये और सर्व वृत्तांत जरासंध को सुनाया। यह सुनकर जरासंध मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, और क्षणमात्र में संज्ञा पाकर, 'हे काल ! हे काल ! हे कंस ! हे कंस !' यूं पुकारकर रोने लगा।

यहां काल की मृत्यु की खबर सुनकर मार्ग में चलते यादवों को जिस पर पूरा भरोसा बैठा है ऐसे उस क्रौष्टुकि को बड़े हर्षपूर्वक पूजने लगे। मार्ग में एक वन में पडाव करके रहे थे वहाँ अचानक अतिमुक्त चारणमुनि आ पहुँचे। दशार्हपति समुद्रविजय ने उनकी पूजा की, उन महामुनि को प्रणाम करके पूछा, 'हे भगवन् ! इस विपत्ति में आखिर में हमारा क्या होगा ?' मुनि बोले, 'डरना मत। आपका पुत्र कुमार अरिष्टनेमि त्रैलोक्य में अद्वैत पराक्रमी बाइसवां तीर्थंकर होगा और बलदेव तथा वासुदेव ऐसे राम-कृष्ण द्वारिका नगरी बसाकर रहेंगे और जरासंध का वध करके अर्ध भारत के स्वामी होंगे।' इस प्रकार सुनकर हर्ष पाये समुद्रविजय ने पूजा करके मुनि को बिदा किया और स्वयं सुखकारी प्रयाण करते हुए क्रमशः सौराष्ट्र देश में आये। वहां रैवतक (गिरनार) गिरि की वायव्य दिशा की ओर अट्ठारह कुलकोटी यादवों के साथ छावनी डाली। वहां कृष्ण की स्त्री सत्यभामा ने दो पुत्रों को जन्म दिया, उनके **भानू** व **भामर** ऐसे दो नाम रखे। उन दोनों पुत्रों की जातिवंत सुवर्ण समान कांति थी। फिर क्रौष्टुकि ने कहे शुभ दिन पर कृष्ण ने स्नान करके बलिदान के साथ समुद्र की पूजा की और अष्टम् तप (तीन उपवास) प्रारंभ किया। तीसरी रात्रि को लवणसागर का अधिष्ठाता **सुस्थित** देव आकाश में रहकर अंजलि जोड़कर प्रकट हुआ, उसने कृष्ण को पांचजन्य नाम के शंख व राम को सुघोष नाम का शंख दिया, इसके अलावा दिव्य रत्नमाला और वस्त्र दिए। फिर उसने कृष्ण

को कहा, 'आप ने मुझे क्यों याद किया हैं ? मैं सुस्थित नाम का देव हूँ। कहिए, आपका क्या कार्य करुं ?' कृष्ण ने कहा, 'हे देव ! पूर्व हुए वासुदेव की द्वारिका नाम की जो नगरी यहां थी, उसे आपने जल से ढांप दिया है, इसलिए अब मेरे निवास के लिए उसी नगरीवाला स्थान दिखाइए।' फिर वह स्थान दिखाकर उस देव ने इन्द्र के पास जाकर पूरी हकीकत निवेदित की।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने उस स्थान पर बारह योजन लम्बी और नौ योजन विस्तारवाली रत्नमय नगरी बना दी। अट्ठारह हाथ ऊँचा, नौ हाथ भूमि में रहा व बारह हाथ चौडा चारोंओर खाई से घिरा किल्ला बनाया। उसमें गोल, चौकोर, लम्बचौकोर, गिरिकूटाकार व स्वस्तिक आकार के सर्वतोभद्र, मंदर, अवतंस और वर्धमान ऐसे नाम वाले एक मंजिल, दो मजले और तीन मजले वगैरह मंजिलोंवाले लाखों महल बनाये। उनके चौक में व त्रिक में विचित्र रत्नमाणिक्य से हजारों जिनचैत्यों का निर्माण किया। अग्नि दिशा में सुवर्ण के किल्लेवाला स्वस्तिक आकार का महल समुद्रविजय राजा के लिए बनाया। उसके पास अक्षोभ्य और स्तिमित के नंदावर्त और गिरिकूटाकार के दो प्रासाद किल्ले सहित बनाए। नैर्ऋत्य दिशा में सागर के लिए आठ हांशवाला उच्चा प्रासाद रचा और पाँचवे-छट्ठे दशार्ह के लिए वर्धमान नाम के दो प्रासाद रचे। वायव्य दिशा में धरण के लिए पुष्कर पत्र नाम का प्रासाद रचा और उसके समीप आलोकदर्शन नाम का प्रासाद पूरण के लिए रचा। उसके नज़दीक चन्द्र के लिए विमुक्त नाम का प्रासाद रचा और इशान दिशा में कुबेरच्छद नाम का प्रासाद वासुदेव के लिए रचा। राजमार्ग के समीप उग्रसेन राजा के लिए स्त्रीविहारक्षम नाम का अति ऊँचा प्रासाद रचा। ये सब प्रासाद कल्पद्रुप से घिरे, गजशाला व अश्वशालाओं सहित, किल्लेवाले, बड़े द्वारवाले और ध्वज-पताका की श्रेणी से सुशोभित थे। उन सबके बीच में चौकोर, विशाल द्वारवाला पृथिवीजय नाम का प्रासाद बलदेव के लिए रचा, और उसके समीप अट्ठारह मंजिल का व विविध गृह के परिवार सहित सर्वतोभद्र नाम का प्रासाद कृष्ण के लिए रचाया गया। राम-कृष्ण के प्रासाद के आगे इन्द्र की सुधर्मा सभा जैसी सर्वप्रभा नाम की एक विविध माणिक्यमयी सभा रची। नगरी के मध्य में एक सौ आठ महा श्रेष्ठ जिनबिंबो से विभूषित, मेरुगिरि के शिखर जैसा ऊँचा, मणि, रत्न और हिरण्यमय विविध मंजिले व झरोखोंवाला एवं विचित्र प्रकार की सुवर्ण की वेदिकावाला अर्हंत का एक मंदिर विश्वकर्मा ने बनाया। सरोवर, दीर्घिकाए, वापिकाएं, चैत्यों, उद्यानों और मार्गो तथा अन्य सब जिसका अति रमणीय है ऐसा कुबेर ने एक रात्रि-दिन में तैयार किया। इस प्रकार वासुदेव की द्वारिका नगरी देवताओं द्वारा निर्माण की गई होने से इन्द्रपुरी जैसी मनोहर बनी। उसके समीप में पूर्व में रैवतगिरि, दक्षिण में माल्यवान शैल, पश्चिम में सौमनस पर्वत और उत्तर में गंधमादन गिरि था।

पूर्वोक्त प्रकार से द्वारिका की रचना करके प्रातःकाल में कुबेर ने आकर कृष्ण को दो पीतांबर, नक्षत्रमाला, हार, मुगट, कौस्तुभ नाम का महामणि, शार्ङ्ग धनुष, अक्षय बाणवाले भाथे, नंदक नामक खड्ग, कौमोदकी गदा और गरुडध्वज रथ वगैरह चीजें दी। राम को वनमाला, मूशल, दो नील वस्त्र, तालध्वज रथ, अक्षय भाथे, धनुष और हल दिए, और दसों दशार्हो को रत्न के आभरण दिए, क्योंकि वे राम-कृष्ण के पूजनीय थे। फिर सब यादवों ने कृष्ण को शत्रु-संहारक जानकर हर्ष से पश्चिम समुद्र तट पर उनका अभिषेक किया। इसके बाद राम सिद्धार्थ नाम के सारथिवाले और कृष्ण दारुक नाम के सारथिवाले रथ में बैठकर द्वारिका में प्रवेश करने के लिए तैयार हुए और ग्रह नक्षत्रों से शोभायमान सूर्य-चन्द्र की भाँति अनेक रथों में बैठे यादवों से शोभायमान होकर जय जय के नाद सहित द्वारिका में प्रवेश किया। कृष्ण की आज्ञा से कुबेर ने बताये हुए महलों में दशार्हो, राम-कृष्ण, अन्य यादव और उनका परिवार आकर रहा। कुबेर ने साडे तीन दिन तक सुवर्ण, रत्न, धन, विचित्र वस्त्र और धान्यों की वृष्टि करके उस अभिनव नगरी को भर दिया।

इत्याचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि रामकृष्णारिष्टनेमिजन्मकंसवधद्वारिकाप्रवेश नामः पंचमः सर्गः॥५॥

छठा सर्ग

रुक्मिणी वगैरह स्त्रियों का विवाह, पांडव द्रौपदी का स्वयंवर और प्रद्युम्न का चरित्र

अब द्वारका में कृष्ण वासुदेव राम सहित दशार्हों का अनुसरण करते हुए व यादवों के परिवारों से युक्त होकर सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए रहने लगे, और दशार्हों व राम कृष्ण को हर्ष देते हुए अरिष्टनेमी भगवान भी क्रमशः बढ़ने लगे। अरिष्टनेमी से सभी बंधु बड़े थे लेकिन अरिष्टनेमी के साथ वे सब छोटे बनकर क्रीडागिरि पर तथा क्रीडोद्यान वगैरह भूमि पर क्रीडा करने लगे। प्रभु दश धनुष ऊँची कायावाले होकर युवावस्था को प्राप्त हुए, परंतु जन्म से ही काम को जीतनेवाले होने से बिलकुल अविकारी मनवाले थे। मातापिता और राम-कृष्णादि भ्राता सदा कन्या ब्याहने के लिए उनकी प्रार्थना करते, परंतु प्रभु वह मानते न थे। राम-कृष्ण पराक्रम से कइं राजाओं को वश करते थे और शक्र तथा इशानेन्द्र की तरह दोनों बंधु प्रजा का पालन करते थे।

एक बार **नारदजी** घूमते घूमते कृष्ण के मंदिर मे आये। राम-कृष्ण ने विधि से उनकी पूजा की। फिर वे अंतःपुर में गये। वहां सत्यभामा दर्पण देख रही थी। उसमें व्यग्र बनी सत्यभामा ने आसन वगैरह देकर नारद की पूजा नहीं की, तो नारद क्रोध पाकर वहां से चले गये और मन में विचार करने लगे कि 'कृष्ण के अंतःपुर की सभी स्त्रियां सदैव मेरी पूजा करती हैं, परंतु यह सत्यभामा पति प्रेम के कारण रूप-यौवन से गर्वित बन गई है, इसलिए वह दूर से मुझे देखकर खडी भी न हुई और मेरे सामने देखा तक नहीं, इसलिए इस सत्यभामा को उससे भी अधिक रूपमती सपत्नी (शौक्य) के संकट में डाल दूं।' ऐसा सोचते हुए नारद कुंडिनपुर नगर में आये।

कुंडीनपुर में **भीष्मक** नाम का राजा था, उसे **यशोमती** नाम की रानी थी। उन्हें रुक्मि नाम का पुत्र था तथा **रुक्मिणी** नामकी बड़ी स्वरुपवान पुत्री थी। नारद वहां गये तो रुक्मिणी ने उनको नमस्कार किये। नारद ने कहा कि 'अर्ध भरतक्षेत्र के पति कृष्ण तेरे पति बने।' रुक्मिणी ने पूछा, 'ये कृष्ण कौन हैं ?' फिर नारद ने कृष्ण के रुप, सौभाग्य व शौर्य वगैरह अद्वैत गुण कह सुनाए। यह सुनकर रुक्मिणी कृष्ण पर अनुरागी बनी और कामपीडित बनकर कृष्ण की ही कामना करने लगी। फिर रुक्मिणी का रूप चित्रपट में आलेखित कर नारद द्वारका में आये और नजरों को अमृतांजन जैसा वह रुप कृष्ण को दिखाया। उसे देखकर कृष्ण ने पूछा कि, 'भगवन् ! यह कौनसी देवी का रूप आपने पट में आलेखित किया है ?' नारद हँसकर बोले, 'हरि ! यह देवी नहीं है, परंतु मानुषी स्त्री है, और कुंडिनपति रुक्मि राजा की

रुक्मिणी नाम की बहन है।' उसका रूप देखकर चकित बने कृष्ण ने तत्काल रुक्मि के पास एक दूत भेजकर मीठे वचनों से उसकी माँग की। वह माँग सुनकर रुक्मि ने हँसकर कहा, 'अहो ! कृष्ण हीन कुलवाला ग्वाला होकर मेरी बहन की माँग करता है, वह कैसा मूढ़ है ? और उसका यह कैसा निष्फल मनोरथ ? मेरी इस बहन को तो मैं मैथुनिक **शिशुपाल** राजा को दूंगा कि जिससे चन्द्र व रोहिणी की तरह उनका योग्य योग होगा।' इस प्रकार का उत्तर सुनकर उस दूत ने रुक्मि की कठोर अक्षरवाली वाणी द्वारका में आकर कृष्ण को कह सुनाई।

यहां कुंडिनपुर में यह खबर सुनकर रुक्मिणी की बुआ जो उसकी धात्री थी, उसने एकांत में ले जाकर रुक्मिणी को प्रेमपवित्र वाणी से कहा, "हे राजकुमारी ! जब आप बालिका थीं तब एक बार मेरे उत्संग में बैठी थीं, उस समय तुम्हें देखकर **अतिमुक्तक** नाम के मुनि ने कहा था कि यह पुत्री कृष्ण की पटरानी बनेगी।' उस समय मैंने उनको पूछा था कि 'उन कृष्ण को किस तरह पहचानने ?' उन्होंने कहा था कि 'जो पश्चिम सागर के किनारे द्वारका बसाकर रहे वे कृष्ण हैं ऐसा जान लेना।' ऐसा हुआ फिर भी आज उस कृष्ण ने दूत द्वारा तुम्हारी माँग की तो तुम्हारे भाई रुक्मि ने उनकी माँग नहीं स्वीकारी और दमघोष राजा के पुत्र शिशुपाल को तुम्हें देने का निर्धार किया है।" रुक्मिणी बोली, "हे माता ! क्या मुनियों के वचन निष्फल होते हैं ? प्रातःकाल के मेघ का शब्द (गर्जारव) क्या कभी निष्फल हुआ है ?" इस प्रकार के वचनों से रुक्मिणी का अभिलाष कृष्ण को ब्याहने का जानकर उस बूआ ने एक गुह्य दूत भेजकर कृष्ण को इस प्रकार कहलवाया कि - 'माघ माह की शुक्ल अष्टमी को नागपूजा के बहाने मैं रुक्मिणी को लेकर नगर बाहर बाड़ी में आऊँगी। हे मानद ! यदि आपको रुक्मिणी का प्रयोजन हो तो उस समय वहां आ पहुँचना, नहीं तो फिर वह शिशुपाल को ब्याह जायेगी।'

यहां रुक्मि ने अपनी बहन रुक्मिणी को ब्याहने के लिए शिशुपाल को बुलाया, तो वह बड़ी सेना लेकर कुंडिनपुर आया। रुक्मिणी को ब्याहने के लिए तैयार होकर आये शिशुपाल को जानकर कलहप्रिय नारद ने यह समाचार कृष्ण को दिए, तो कृष्ण भी अपने स्वजन से अलक्षियतापूर्वक[1] राम के साथ अलग अलग रथ में बैठकर कुंडिनपुर आये। उस समय अपनी बूआ व सखियों से घिरी रुक्मिणी नागपूजा का बहाना बनाकर उद्यानभूमि में आयीं। वहां कृष्ण रथ में से ऊतरे और प्रथम अपनी पहचान कराकरके रुक्मिणी की बूआ को नमस्कार करके रुक्मिणी प्रति बोले, 'मालती के पुष्प की सुगंध से भ्रमर आये त्यों तेरे गुण से आकर्षित होकर मैं कृष्ण तेरे पास दूर से आया हूँ, इसलिए मेरे इस रथ में बैठ जा।' फिर उनके भाव को जाननेवाली बूआ ने आज्ञा दी तो रुक्मिणी तुरंत ही कृष्ण के रथ में हृदय समान आरुढ़ हुई।

१. बताये बिना, अर्थात् गुप्त प्रकार से।

जब कृष्ण थोड़े दूर गये तब अपना दोष छिपाने के लिए उस बूआ और दासियों ने मिलकर बड़ा शोर मचाया कि 'अरे रुक्मि ! अरे रुक्मि ! यह तुम्हारी बहन रुक्मिणी को चोर की भाँति राम सहित कृष्ण जबरदस्ती से हर जा रहे हैं।'

दूर जाने के बाद राम कृष्ण ने पांचजन्य और सुघोष नामका शंख फूंके, जिससे समुद्र की तरह पूरा कुंडिनपुर क्षोभ पा गया। फिर महा पराक्रमी और महा बलवान् रुक्मि और शिशुपाल बड़ी सेना लेकर राम-कृष्ण के पीछे चले। उनको पीछे आता देखकर उत्संग में बैठी रुक्मिणी भयभीत होकर कृष्ण प्रति बोली, 'हे नाथ ! यह मेरा भाई रुक्मि और शिशुपाल बड़े पराक्रमी है, और उसके पक्ष के अन्य कइं वीर तैयार होकर उसके साथ आ रहे हैं, यहां आप दोनों भाइ तो अकेले हो, इससे मुझे भय लगता है कि हमारी क्या गति होगी?' हरि ने उसके ऐसे भयपूर्ण वचन सुनकर मुस्कुराकर कहा, 'प्रिये ! डर मत, क्योंकि तू क्षत्रियाणी है। बिचारे यह रुक्मि वगैरह मेरे सन्मुख क्या हैं ? हे सुभ्रु ! तू मेरा अद्भुत बल देख।' इस प्रकार कहकर उसे प्रतीति दिलाने के लिए कृष्ण ने अर्धचन्द्र बाण से कमलनाल की पंक्ति की भाँति तालवृक्ष की श्रेणी को एक ही प्रहार में छेद डाली, और अंगूठे को ऊँगली के बीच रखकर अपनी मुद्रिका का हीरा मसूर के दाने की भाँति चूर्ण कर डाला। पति के ऐसे बल से रुक्मिणि ने हर्ष पाया और प्रभात काल के सूर्य से पद्मिनी की भाँति उसका मुख प्रफुल्लित हो गया। फिर कृष्ण ने राम को कहा, 'इस वधू को लेकर आप चले जाइए, मैं अकेला हमारे पीछे आ रहे रुक्मि वगैरह को मार डालूंगा।' राम ने कहा, 'आप जाइए, मैं अकेला इन सबको मार डालूंगा।' दोनों के ऐसे वचन सुनकर रुक्मिणी भय पाकर बोली, 'हे नाथ ! मेरे सहोदर रुक्मि को तो बचाना।' राम ने कृष्ण की संमति से रुक्मिणी का वचन स्वीकारा व स्वयं अकेले ही युद्ध करने के लिए खडे रहे। कृष्ण द्वारिका की ओर चल दीए।

क्रमशः शत्रुओं का सैन्य नज़दीक आया। राम मूशल लेकर समुद्र में मंथाचल की भाँति रण में उस सैन्य का मंथन करने लगे। वज्र द्वारा पर्वतों की तरह राम के हल से हाथी भूमि पर गिरे और मूशल से घड़े की ठीकरी की तरह रथ चूर्ण हो गए। आखिर में शिशुपाल सहित रुक्मि की सेना पलायन कर गई, लेकिन वीरमानी रुक्मि अकेला खड़ा रहा। उसने राम को कहा, 'अरे ! गोपालक ! मैंने तुझे देखा है। मेरे सामने खड़ा रह, खडा रह, मैं तेरे गौ-पय के पान से चढ़े मद को उतार डालूंगा।' उसके ऐसे अभिमान के वचन कहने पर भी उसे बचाने का कृष्ण समक्ष स्वयं कबूल किया होने से राम ने मूशल छोड दिया, और बाणों से उसका रथ नष्ट कर डाला। कवच छेद डाला व घोड़ो को मार डाला। फिर जब रुक्मि वधकोटि में आया तब राम ने क्षुरप्र बाण से उसके मुख पर के केश का लुंचन करके मुस्कुराते हुए कहा, 'अरे

मूर्ख ! मेरी भ्रातृवधू का तू भाई लगता है, इसलिए तू मेरे लिए अवध्य है। इसलिए चला जा। मेरी कृपा से तू मुंडा होने पर भी तेरी पत्नियों के साथ विलास कर।' राम के ऐसे वचनों से लज्जा पाकर रुक्मि कुंडीनपुर नहीं गया, वहीं **भोजकट** नाम का नगर बसाकर रहा।

कृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारिका के समीप आये। द्वारका में प्रवेश करते हुए कृष्ण ने रुक्मिणी को कहा, 'हे देवी ! देखो यह मेरी रत्नमयी द्वारका नगरी देवताओं ने रची है। हे सुभ्रु ! इस नगरी के देववृक्ष युक्त उद्यानों में देवी की भाँति अविच्छिन सुख से तुम मेरे साथ क्रीडा करोगी।' रुक्मिणी बोली, 'हे स्वामिन् ! आपकी अन्य पत्नियाँ उनके पिताओं ने बड़े परिवार व समृद्धि के साथ आपको दी हैं, और मुझे तो आप अकेली कैदी की तरह लाये हो, तो मैं मेरी शोक्यों समक्ष हाँसिपात्र न बनूं ऐसा कीजिए।' उसके ऐसे वचन सुनकर 'तुझे मैं सबसे अधिक करूंगा।' ऐसा कहकर कृष्ण ने रुक्मिणी को सत्यभामा के महल के समीप एक महल में उतारा। वहां उसे गांधर्व विवाह विधि से ब्याहकर कृष्ण उसके साथ स्वच्छंदपूर्वक क्रीडा करने लगे।

कृष्ण ने रुक्मिणी के घर में अन्य किसिका प्रवेश अटकाया था, इससे एक बार सत्यभामा ने कृष्ण को आग्रहपूर्वक कहा कि 'तुम्हारी प्रिया तो बताइए।' कृष्ण ने लीला-उद्यान में श्रीदेवी के गृह में से स्वजनों से छिपाकर उसकी प्रतिमा उठवा ली और निपुण चित्रकारों से श्रीदेवी की प्रतिमा चित्रित कराई। फिर कृष्ण ने वहां श्रीदेवी के स्थान पर रुक्मिणी को स्थापित किया और सिखाया कि 'यहाँ मेरी सब देवियां आये तब तू निश्चल रहना।' फिर कृष्ण स्वस्थान पर गये, तो सत्यभामा ने पूछा कि 'नाथ ! आपने आपकी वल्लभा को किस जगह रखा है ?' कृष्ण ने कहा, 'श्रीदेवी के गृह में रखा है।' फिर सत्यभामा अन्य सपत्नियों को साथ लेकर श्रीदेवी के मंदिर में आयी। वहां रुक्मिणी को श्रीदेवी के स्थान पर देखा लेकिन भेद समझे बिना यह श्रीदेवी ही है ऐसा जानकर सत्यभामा बोली, 'अहो ! इस श्रीदेवी का रूप कैसा हैं ? अहो ! इसे बनानेवाले कारिगरों का कैसा कौशल्य हैं ?' इस प्रकार कहकर उसने उसे प्रणाम किए और कहा, 'हे श्रीदेवी ! आप प्रसन्न होकर ऐसा कीजिए कि जिससे मैं हरि की नयी पत्नी रुक्मिणी को मेरी रुपलक्ष्मी से जीत लूँ। यह कार्य सिद्ध होने पर मैं आपकी महापूजा करूंगी।' ऐसा कहकर वह कृष्ण के पास आई और पूछा कि 'आपकी पत्नी कहाँ है ? श्रीदेवी के गृह में तो नहीं है।' फिर कृष्ण, सत्यभामा और अन्य पत्नियाँ सहित श्रीदेवी के मंदिर में आये, तो रुक्मिणी अंदर से बाहर आयी और कृष्ण को पूछा कि 'मैं किसे प्रणाम करूं ?' कृष्ण ने सत्यभामा को दिखाया, तो सत्यभामा बोल उठी, 'यह देवी मुझे कैसे प्रणाम करेगी ? क्योंकि मैंने ही अज्ञान से अभी अभी उसे प्रणाम किए हैं।' हरि ने हसते हुए कहा, 'आपने अपनी बहन

को नमस्कार किए उसमें दोष क्या हैं ?' यह सुनकर सत्यभामा रुठकर घर गयी और रुक्मिणी भी अपने महल में आयी। कृष्ण ने रुक्मिणी को बड़ी समृद्धि दी और उसके प्रेमामृत में मग्न होकर क्रीडा करने लगे।

एक बार नारद घूमते घूमते वहां आ पहुँचे। कृष्ण ने उनकी पूजा की और पूछा कि 'हे नारद ! आप कौतुक के लिए ही घूमते हो, तो कुछ भी आश्चर्य किसी स्थान पर देखा हैं ?' नारद बोले, "अभी अभी एक आश्चर्य देखा है वह सुनिए - वैताढ्यगिरि पर **जांबवान** नाम का एक खेचरेन्द्र हैं, उसकी **शिवचन्द्रा** नाम की प्रिया हैं। उन्हें **विश्वक्सेन** नाम का एक पुत्र और **जांबवती** नाम की एक कन्या हैं, लेकिन तीनों जगत में उसके जैसी कोई स्वरुपवान कन्या नहीं है। वह बाला नित्य क्रीडा के लिए हँसी की भाँति गंगा नदी में जाती है। उस आश्चर्यभूत कन्या को देखकर ही आपको कहने के लिए आया हूँ।" यह सुनकर कृष्ण तुरंत ही बलवाहन सहित गंगाकिनारे गये। वहां सखियों से लिपटी और क्रीडा करती हुई जांबवती उनको दिखाई दी। 'जैसी नारद ने कही वैसी ही यह है' यूं बोलते हुए हरि ने उसका हरण किया, तो तत्काल बड़ा कोलाहल मच गया। उसे सुनकर उसका पिता जांबवान क्रोध करते हुए खड्ग लेकर वहां आया। उसे अनाधृष्णि ने जीत लिया और कृष्ण के पास लाकर छोड़ा। जांबवान ने अपनी पुत्री जांबवती कृष्ण को दी और स्वयं अपमान होने से वैराग्य पाकर दीक्षा ग्रहण की। जांबवान के पुत्र विश्वक्सेन के साथ जांबवती को लेकर कृष्ण द्वारका में आये, वहां कृष्ण ने रुक्मिणी के महल के पास जांबवती को भी महल दिया, और उसके योग्य अन्य सब कुछ भी दिया। उसे रुक्मिणी के साथ सखीपना हुआ।

एक बार सिंहलपति **श्लक्ष्णरोमा** के पास जाकर लौटे हुए दूतों ने कृष्ण के पास आकर विज्ञप्ति की, 'हे स्वामिन ! श्लक्ष्णरोमा राजा आपका हुकम नहीं मानता हैं। उसे **लक्ष्मणा** नाम की एक कन्या है, वह लक्षणों से आपके ही लायक है। वह **द्रुमसेन** सेनापति की रक्षा तले समुद्र में स्नान करने आयी है। वहां सात दिन तक रहकर वह स्नान करेगी।' इस प्रकार की बात सुनकर कृष्ण राम के साथ वहां गये और उस सेनापति को मारकर लक्ष्मणा को ले आये। फिर लक्ष्मणा को ब्याहकर जांबवती के महल के पास ही एक रत्नमय मंदिर रहने के लिए दिया और अन्य परिवार दिया।

आयुस्खरी नाम की नगरी में सौराष्ट्र देश का राजा **राष्ट्रवर्धन** राज्य करता था। उसे **विजया** नाम की रानी थी। उन्हें **नमुचि** नाम का एक महाबलवान युवराज पुत्र था, और **सुसीमा** नाम की रुपसंपत्ति की सीमाचिह्न समान पुत्री थी। नमुचि ने अस्त्रविद्या सिद्ध की

थी, जिससे वह कृष्ण की आज्ञा नहीं मानता था। एक बार वह सुसीमा के साथ प्रभास तीर्थ में स्नान करने गया। वहां छावनी डालकर पडे हुए नमुचि को जानकर कृष्ण राम के साथ वहाँ गये, और उसे सेना सहित मारकर सुसीमा को लेकर आये। फिर उसे विधिपूर्वक ब्याहकर लक्ष्मणा के मंदिर के पास मंदिर देकर उसे रखा और उसे बहुत सामग्री दी। राजा राष्ट्रवर्धन ने सुसीमा के लिए दासियां वगैरह परिवार व कृष्ण के लिए हाथी वगैरह विवाह का दहेज भेजा। इसके बाद **मरुदेश** के **वीतभय** राजा की **गौरी** नाम की कन्या से कृष्ण ब्याहे और उसे सुसीमा के मंदिर के पास एक मंदिर में रखा। एक बार **हिरण्यनाभ** राजा की पुत्री **पद्मावती** के स्वयंवर में कृष्ण राम को लेकर अरिष्टपुर गये। वहां रोहिणी[1] के सहोदर हिरण्यनाभ ने अपने भानजे जानकर दोनों की हर्ष से विधिपूर्वक पूजा की। इस हिरण्यनाभ राजा को **रैवत** नाम का एक ज्येष्ठ बंधु था, वह नमि भगवान के तीर्थ में अपने पिता के साथ दीक्षा लेकर चल निकला था। उसे **रेवती, रामा, सीता** और **बंधुवती** नाम की पुत्रियाँ थीं, पहले वे रोहिणी के पुत्र राम को दी थी। फिर सब राजाओं की नजरों के समक्ष ही कृष्ण ने पद्मावती का हरण किया और स्वयंवर में आये हुए राजाओं में जो युद्ध करने आये उन्हें जीत लिया। फिर राम कृष्ण अपनी अपनी स्त्रियों को लेकर द्वारका में आये। वहां कृष्ण ने गौरी के मंदिर के समीप एक नये गृह में पद्मावती को रखा।

गांधार देश में पुष्कलावती नगरी में **नग्नजित** राजा का पुत्र **चारुदत्त** नामक राजा था, उसे **गांधारी** नाम की सुन्दर बहन थी। वह लावण्यसंपत्ति में खेचरियों को भी हराती थीं। चारुदत्त के पिता नग्नजित की मृत्यु होने के बाद उसके हिस्सेदारों ने चारुदत्त को जीत लिया, तो उसने दूत भेजकर शरण लेने योग्य कृष्ण की शरण ली। कृष्ण ने गांधार देश में आकर उसके हिस्सेदारों को मार ड़ाला और चारुदत्त को राज्य पर स्थापित किया, तो चारुदत्त ने अपनी बहन गांधारी का कृष्ण के साथ ब्याह किया। कृष्ण उसे द्वारका में लाये और पद्मावती के मंदिर के पास उसे एक प्रासाद दिया। इस प्रकार कृष्ण की आठ पटरानियां हुई और क्रमानुसार वे अलग अलग महलों मे रहने लगी।

एक बार रुक्मिणी के मंदिर में अतिमुक्त मुनि आये। उन्हें देखकर सत्यभामा भी शीघ्रता से वहां आयी, रुक्मिणी ने मुनि को पूछा कि 'मुझे पुत्र होगा या नहीं ?' मुनि ने कहा, 'तुझे कृष्ण जैसा ही पुत्र होगा।' इस प्रकार कहकर मुनि गये। फिर मुनि का यह वचन मेरे लिए ही है ऐसा सत्यभामा मानने लगीं और उसने रुक्मिणी को कहा कि 'मुझे कृष्ण जैसा ही पुत्र होगा।' रुक्मिणी बोली, 'मुनि का वचन कुछ छल करने से नहीं फलता, इसलिए वैसा पुत्र

१. बलभद्र की माता।

तो मुझे ही होगा।' इस प्रकार परस्पर होड़ करती हुइ वे दोनों कृष्ण के पास आयी। उस समय सत्यभामा का भाई **दुर्योधन** वहां आ पहुँचा। उसको सत्यभामा ने कहा, मेरा पुत्र तेरा जामाता होगा।' रुक्मिणी ने भी उसे इस प्रकार कहा तो उसने कहा कि 'तुम्हारे में से जिसे पुत्र होगा उसे मैं मेरी पुत्री दूंगा।' सत्यभामा बोली कि "जिसका पुत्र पहले ब्याहे उसके ब्याह में दूसरी को अपने केश देने होंगे। इसके लिए राम, कृष्ण और यह दुर्योधन गवाह व प्रतिभू है।" इस प्रकार कबूल करके वे दोनों अपने अपने स्थानक पर गयी।

एक बार रुक्मिणी ने स्वप्न में देखा कि "मानो स्वयं एक श्वेत वृषभ पर रहे विमान में बैठी हुई है।" यह देखकर वह तुरंत जाग्रत हुई। उस समय एक महर्द्धिक देव महाशुक्र देवलोक से च्यूत होकर रुक्मिणी के उदर में अवतरित हुआ। प्रातःकाल में उठकर रुक्मिणी ने उस स्वप्न की बात कृष्ण को कही। तो कृष्ण ने कहा, "तुम्हें विश्व में अद्वितीय वीर ऐसा पुत्र होगा।" इस स्वप्न की बात सत्यभामा की एक दासी ने सुनी, तो उसने श्रवण में दुःखदायी यह बात सत्यभामा को कही। तत्काल उसने भी एक स्वप्न की कल्पना करके कृष्ण के पास जाकर कहा कि "आज मैंने सपने में ऐरावत हाथी जैसा हाथी देखा है।" कृष्ण ने उसकी इंगित चेष्टा पर से 'यह बात जूठी है' ऐसा मान लिया। परंतु उसे गुस्सा दिलाना नहीं है यूं सोचकर कहा, 'तुझे भी शुभ पुत्र होगा।' दैवयोग से सत्यभामा को भी गर्भ ठहरा, जिससे उसके उदर ने वृद्धि पायी। रुक्मिणी के उदर में उत्तम गर्भ था, जिससे उसका उदर जैसा था वैसा ही रहा। गुप्त रुप से गर्भ वृद्धि पाने लगा, इससे एक दिन सत्यभामा ने कृष्ण को कहा, 'यह तुम्हारी पत्नी रुक्मिणी ने आपको जूठा गर्भ कहा है, क्योंकि हम दोनों के उदर तो देखिए।' उस समय एक दासी ने आकर बधाई दी कि 'रुक्मिणी देवी ने सुवर्ण समान कांतिवान महात्मा पुत्र को जन्म दिया है।' यह सुनकर सत्यभामा रुठकर क्रोध विह्वल हो गयी। वहां से घर आते ही उसने भी **भानुक** नाम का पुत्र को जन्म दिया।

कृष्ण पुत्र जन्म की बधाई से हर्ष पाकर रुक्मिणी के मंदिर में गये और बाहर सिंहासन पर बैठकर पुत्र को मंगवाकर देखा, पुत्र की कांति से सब दिशाओं को उद्योतवाली बनी देखकर उसका **प्रद्युम्न** ऐसा नाम रखा और कृष्ण उसे हुलाने के लिए पल भर वहां बैठे। उस समय पूर्व जन्म की दुश्मनी से **धूमकेतु** नाम का एक देव **रुक्मिणी** का वेष धरकर कृष्ण के पास आया और कृष्ण से बालक को लेकर वैताढ्यगिरि पर चला गया। वहां भूतरमण उद्यान में जाकर टंकशिला पर बैठकर सोचने लगा कि 'इस बालक को यहां पछाड़कर मार डालूं। लेकिन नहीं... इससे तो वह बहुत दुःखी होगा, इसलिए इस शिला पर छोड़कर चला जाऊँ कि जिससे यहां निराधार और क्षुधातुर ऐसा वह आक्रंद करते करते मर जाएगा।' ऐसा सोचकर उसे वहां

छोड़कर वह चला गया। वह बालक चरमदेही[1] था और निरुपक्रम जीवितवाला[2] था। इसलिए वह शिला पर गिरे पत्तोंवाले प्रदेश में निराबाधापन से पड़ा रहा। प्रातःकाल में **कालसंवर** नाम का कोई खेचर विमान में बैठकर अग्निज्वाल नगर से अपने नगर जा रहा था, उसका विमान वहां स्खलित हो गया। खेचरपति ने विमान स्खलित होने का कारण सोचते हुए नीचे देखा तो वहां उसने तेजस्वी बालक को देखा। तो 'मेरे विमान को स्खलित करने वाला यह कोई महात्मा बालक है' ऐसा जानकर उसे उठा लिया और उसने अपनी **कनकमाला** नाम की रानी को पुत्र रुप में अर्पण किया। फिर उसने अपने **मेघकूट** नगर में जाकर ऐसी बात फैलायी कि 'मेरी पत्नी गूढगर्भा थी। उसने अभी अभी एक पुत्र को जन्म दिया है।' फिर उस कालसंवर खेचर ने पुत्र का जन्मोत्सव किया, और उसके तेज से दिशाओं में प्रद्योत होता देखकर शुभ दिन पर उसका **प्रद्युम्न** ऐसा ही नाम रखा।

वहां रुक्मिणी ने कृष्ण के पास आकर पूछा कि 'तुम्हारा पुत्र कहां हैं ?' कृष्ण ने कहा, 'तुम अभी अभी तो पुत्र ले गयी हो।' रुक्मिणी बोली, 'अरे नाथ ! क्या मुझे ठगना चाहते हो ? मैं नहीं ले गयी हूं।' तब कृष्ण ने जाना कि जरुर मुझे कोई छल गया। फिर तुरंत ही पुत्र को ढूंढवाया परंतु कहीं से भी पुत्र की खबर नहीं मिली तो रुक्मिणी मूर्च्छा खाकर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद संज्ञा पाकर वह परिजन के साथ तार स्वर से रुदन करने लगी। एक सत्यभामा सिवा सब यादव, उनकी पत्नियाँ और पूरा परिवार दुःखी हो गया। 'कृष्ण जैसे समर्थ पुरुष को भी पुत्र का वृत्तांत क्यों न मिले ?' ऐसा बोलते हुए रुक्मिणी दुःखी कृष्ण को ज्यादा दुःखी कराने लगी। इस प्रकार सब यादवों सहित कृष्ण उद्वेग में रहते थे। एक दिन नारद सभा में आये। उन्होंने 'यह क्या हैं ?' यूं पूछा तो कृष्ण बोले कि 'हे नारद ! रुक्मिणी का ताज़ा जन्मा हुआ बालक मेरे हाथों से कोई हर गया है, इसके बारे में आप कुछ जानते हैं ?' नारद बोले, 'यहां अतिमुक्त मुनि महाज्ञानी थे, वे हाल ही में मोक्ष गये हैं। इसलिए अब भारतवर्ष में इस समय कोई ज्ञानी नहीं है, फिर भी हे हरि ! इस समय पूर्व विदेह क्षेत्र में सीमंधर नाम के तीर्थंकर हैं, वे सर्व संशय का नाश करनेवाले हैं, तो मैं वहां जाकर उन्हें पूछुंगा।' फिर कृष्ण और अन्य यादवों ने नारद की अनेक प्रकार से पूजा की और आग्रहपूर्वक खबर ले आने की प्रार्थना की। इसलिए नारद जहां सीमंधर प्रभु थे वहां त्वरा से गये। वहां प्रभु समवसरण में बिराजमान थे, उन्हें प्रणाम करके नारद ने पूछा, 'हे भगवान ! कृष्ण और रुक्मिणी का पुत्र इस समय कहां हैं ?' प्रभु बोले, 'उस पुत्र का पूर्वजन्म का दुश्मन धूमकेतु नाम का एक देव है, उसने छल करके कृष्ण से पुत्र का हरण किया है। उसने वैताढ्य पर ले जाकर उस बालक

१. चरमदेही - आखिरी शरीरवाला, उसी जन्म में मोक्ष जानेवाला। २. किसी भी प्रकार का उपक्रम-उपघात न लगे ऐसा जीवित-आयुष्य।

को शिला पर रखा था पर वह मृत्यु नहीं पाया, क्योंकि वह चरमदेही है। इसलिए किसी के द्वारा मारा जाय यह संभव नहीं है। प्रातःकाल में कालसंवर नाम का कोई खेचर वहां से जा रहा था, उसने उस बालक को ले जाकर अपनी पत्नी को पुत्र रुप में सौंपा है, और इस समय वह उसके घर वृद्धि पा रहा है।' नारद ने दुबारा पूछा, 'हे भगवन ! उस धूमकेतु को उसके साथ पूर्वजन्म का क्या बैर था ?' नारद का ऐसा पूछने पर प्रभु उसके पूर्वजन्म का वृत्तांत कहने लगे -

''इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगध देश में **शालिग्राम** नाम का एक महर्द्धिक गाँव है। उसमें **मनोरम** नाम का एक उद्यान है। उस उद्यान का अधिपति **सुमन** नाम का एक यक्ष था। उस गाँव में **सोमदेव** नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उस सोमदेव की **अग्निला** नाम की पत्नी से **अग्निभूति** और **वायूभूति** नाम के दो पुत्र हुए। वे वेदार्थ में चतुर थे। युवावस्था पाये हुए वे विद्या से सुख्यात होकर विविध भोगों को भोगते हुए मदोन्मत्त होकर रहते थे। एक उस दिन मनोरम उद्यान में **नंदिवर्धन** नाम के आचार्य पधारे। लोगों ने वहां जाकर उनकी वंदना की। उस समय ये गर्विष्ट बने अग्निभूति और वायुभूति ने वहां आकर आचार्य को कहा कि 'अरे श्वेतांबरी ! यदि तू कुछ शास्त्रार्थ जानता हो तो बोल।' उनके ऐसे वचन-मात्र से नंदिवर्धन आचार्य के **सत्य** नाम के शिष्य ने उनको पूछा कि 'आप कहां से आये हैं।' वे बोले कि 'हम शालिग्राम से आये हैं।' सत्यमुनि फिर से बोले, 'आप कौनसे भव में से इस मनुष्यभव में आये हो ?' ऐसा मेरा पूछना है, यदि आप जानते हो तो कहिए।' यह सुनकर वे दोनों इस विषय में अज्ञानी होने से लज्जा से अधोमुख होकर खड़े रहे, इतने में मुनि उन दोनों का पूर्व जन्म कहने लगे, 'अरे ब्राह्मणों ! आप पूर्वभव में इस गाँव की वनस्थली में मांसभक्षक लोमड़ी बने थे। एक किसान ने अपने क्षेत्र में रात्रि को चर्मरज्जू वगैरह रखी थीं वह वृष्टि से आर्द्र होते ही तुम पूरी भक्षण कर गये। उस आहार से मृत्यु पाकर अपने पूवकृत कर्म से इस भव में तुम सोमदेव ब्राह्मण के दो पुत्र बने हो। प्रातःकाल में उस किसान ने पूरी चर्मरज्जू को भक्षण करी हुई देखी। फिर वह अपने घर गया। क्रमानुसार मृत्यु पाकर वह अपनी पुत्रवधू के उदर से पुत्ररूप में जन्मा। वहां उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, इससे उसने जाना कि 'यह मेरी पुत्रवधू तो मेरी माता बनी हैं और मेरा पुत्र तो मेरा पिता बना है, तो अब मैं उन्हें किस प्रकार से पुकारुं ?' ऐसे विचार से वह कपटपूर्वक जन्म से ही गूंगा बनकर रहा है। यदि इस वृत्तांत के बारे में आपको विश्वास न बैठता हो तो गूंगे किसान के पास जाकर उसको पूछो तो वह मौन छोड़कर आपको पूरा वृत्तांत बतायेगा।''

लोग तत्काल उस गूंगे किसान को वहां ले आये। मुनि ने उसको कहा, 'तेरे पूर्व भव का वृत्तांत पहले से कह दिखा। इस संसार में कर्मवश पुत्र तो पिता भी बनता है और पिता पुत्र

भी बनता है ऐसी अनादि स्थिति है, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, इसलिए पूर्वजन्म के संबंध से होती लज्जा और गूंगापन छोड़ दे।' फिर अपने पूर्व सम्बन्ध को बराबर कहने से हर्ष पाये उस किसान ने मुनि को नमस्कार करके सबके सुनते ही अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत ज्यों मुनि ने कहा था त्यों कह सुनाया, वह सुनकर कइं लोगों ने दीक्षा ली, उस किसान ने प्रतिबोध पाया और वे अग्निभूति और वायुभूति लोगों से उपहास पाते हुए अलग होकर अपने घर चले गये। फिर वे उन्मत्त ब्राह्मण वैर धारण करके रात्रि में खड्ग लेकर उस मुनि को मारने आये। वहां उस सुमन यक्ष ने उनको स्तंभित कर दिया। प्रातःकाल में लोगों ने उन्हें ऐसी स्थिति में देखा। उनके माँ-बाप उन्हें स्तंभित किए हुए देखकर आक्रंद करने लगे। उस समय सुमन यक्ष प्रत्यक्ष होकर कहने लगा कि ये पापी दुर्बुद्धि रात्रि में मुनि को मार ड़ालना चाहते थे, इसलिए मैंने उन्हें स्तंभित किया है। अब यदि वे दीक्षा ग्रहण करना कबूल करेंगे तो मैं उनको छोडूंगा, अन्यथा नहीं छोडूंगा।' उन्होंने कहा, 'हमें साधू का धर्म पालना मुश्किल हैं, इसलिए हम श्रावक के योग्य ऐसे धर्म का आचरण करेंगे।' इस प्रकार उनके कहने से देवता ने उन्हें छोड़ दिया। तबसे वे जैनधर्म यथाविधि पालने लगे, परंतु उनके मातापिता ने थोड़ा सा भी जैनधर्म नहीं स्वीकार किया।

अग्निभूति और वायुभूति मृत्यु पाकर सौधर्मकल्प में छः पल्योपम के आयुष्यवाले देव बने, वहां से च्यूत होकर हस्तिनापुर नगर में **अर्हदास** वणिक के घर **पूर्णभद्र** और **माणिभद्र** नाम का पुत्र बने। पूर्वभव के कर्म से वे श्रावक धर्म पालने लगे। एक बार **माहेन्द्र** नाम के एक मुनि वहां पधारे, उनसे धर्म सुनकर अर्हदास ने दीक्षा ली। पूर्णभद्र और माणिभद्र उन माहेन्द्र मुनि को वन्दना करने जा रहे थे, तब मार्ग में एक कुत्तिया और चांडाल को देखकर उन पर उन्हें स्नेह उत्पन्न हुआ। इसलिए महर्षि के पास आकर नमस्कार करके पूछा कि 'यह चांडाल और कुत्तिया कौन है, जिन्हे देखकर हमें स्नेह उत्पन्न होता है ?' मुनि बोले, 'आप पूर्व भव में अग्निभूति और वायुभूति नाम के ब्राह्मण थे, उस समय सोमदेव नाम के तुम्हारे पिता और अग्निला नाम की तुम्हारी माता थी, वह सोमदेव मृत्यु पाकर इस भरतक्षेत्र में आये शंखपुर में जितशत्रु नाम का राजा बना, जो सदा परस्त्री में आसक्त था। अग्निला मृत्यु पाकर उसी नगर में सोमभूति नाम के ब्राह्मण की रुक्मिणी नामक स्त्री बनी। एक बार रुक्मिणी अपने घर के आंगन में खड़ी थी कि उस मार्ग पर निकले हुए जितशत्रु राजा की नज़रों में आयी, तत्काल वह राजा कामवश हो गया। इससे सोमभूति पर कुछ गुनाह रखकर राजा ने उस स्त्री को अपने अंतःपुर में दाखिल किया। उसके विरह से पीडित सोमभूति अग्नि में मग्न हो त्यों दुःखी रहने लगा। राजा जितशत्रु उस स्त्री के साथ एक हजार वर्ष तक क्रीडा करके मृत्यु पाकर

पहले नरक में तीन पल्योपम के आयुष्यवाला नारकी बना। वहां से निकल कर हिरन बना, उस भव में शिकारी द्वारा मारे जाने पर मृत्यु पाकर वह मायाकपटी ऐसा श्रेष्ठीपुत्र बना, वहां से मृत्यु पाकर माया के योग से हाथी बना। उस भव में दैवयोग से उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, इससे अट्ठारह दिन का अनशन रखकर मृत्यु पाया और तीन पल्योपम आयुष्यवाला वैमानिक देवता बना। वहां से च्यूत होकर वह यह चाण्डाल बना है और वह रुक्मिणी अनेक जन्म में परिभ्रमण करके यह कुत्तिया बनी है, इससे (पूर्वजन्म के तुम्हारे माँ-बाप होने से) उनके पर तुम्हें स्नेह उत्पन्न होता है।'

इस प्रकार अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत सुनकर उस पूर्णभद्र और माणिभद्र को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। फिर उन्होंने उस चांडाल और कुत्तिया को प्रतिबोध दिया, जिससे वह चांडाल एक मास का अनशन करके मृत्यु पाकर नंदीश्वर द्वीप में देवता बना, और कुत्तिया प्रतिबोध पाकर अनशन करके मृत्यु पाकर शंखपुर में **सुदर्शना** नाम की राजपुत्री बनीं। फिर एक बार माहेन्द्र मुनि वहां आये, तब अर्हद्दास के पुत्रों ने चांडाल व कुत्तिया की गति के बारे मे पूछा, तो उन्होंने उन दोनों की सद्गति का वृत्तांत कह सुनाया। उन्होंने शंखपुर जाकर राजपुत्री सुदर्शना को प्रतिबोध दिया, जिससे दीक्षा लेकर मृत्यु पाने पर देवलोक में गयी। पूर्णभद्र व माणिभद्र गृहस्थधर्म पालकर मृत्यु पाने पर सौधर्मलोक में इन्द्र के सामानिक[1] देवता बने। वहां से च्यूत होकर हस्तिनापुर में विश्वक्सेन राजा के **मधु** और **कैटभ** नाम के दो पुत्र बने। वह नंदीश्वर देव वहां से च्यूत होकर चिरकाल भवभ्रमण करके वटपुर नगर मे **कनकप्रभ** नाम का राजा बना। सुदर्शना भी देवलोक से च्यूत होकर भवभ्रमण करके उस कनकप्रभ राजा की **चन्द्राभा** नाम की पटरानी बनी। राजा विश्वक्सेन मधु को राज्यपद और कैटभ को युवराजपद पर स्थापित करके स्वयं व्रत लेकर मृत्यु पाने पर ब्रह्मदेवलोक में देवता बने। मधु और कैटभ ने पूरी पृथ्वी वश कर ली। उनके देश पर **भीम** नाम का एक पल्लीपति उपद्रव करने लगा, उसे मारने के लिए मधु चला। वहां मार्ग में **वटपुर** के राजा कनकप्रभ ने भोजनादिक से उसका सत्कार किया। फिर स्वामिभक्ति से सेवकरुप का आचरण करते हुए राज़ा चन्द्राभा रानी के साथ भोजन के अंत में उनके पास आया और कुछ उपहार दिए। चन्द्राभा रानी मधु को प्रणाम करके अंतःपुर में चली, उस समय कामपीडित मधु ने उसे जबरन पकड़ना चाहा, उस समय सचिव ने उसे अटकाया, तो मधुराजा आगे चला। फिर भीम पल्लीपति को जीतकर वापस लौटते हुए वह वटपुर में आया। राजा कनकप्रभ ने दुबारा उसका सत्कार किया। जब वह उपहार देने के लिए आया तब मधुराजा बोला कि 'हमें अन्य कुछ उपहार नहीं चाहिए, सिर्फ यह चन्द्राभा रानी मुझे

1. इन्द्र समान ऋद्धिवाला।

अर्पण करें।' उसकी ऐसी माँग से कनकप्रभ ने अपनी रानी उसको नहीं दी तो वह जबरन उसे खींचकर अपने नगर में ले गया। रानी के वियोग में विधुर बना कनकप्रभ राजा मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिरा। कुछ देर के बाद सचेत होकर उच्च स्वर मे विलाप करने लगा और उन्मत समान इधर-उधर भटकने लगा।

यहां मधुराजा एक बार सचिवों के साथ न्याय-कार्य में बैठा था, उसमें समय बहुत बीत जाने से फैसला सुनाये बिना वह चन्द्राभा के मंदिर में गया। चन्द्राभा ने पूछा, 'आज देर से क्यों आये ?' उसने कहा, 'आज एक व्यभिचार संबंधित केस का न्याय देना था। उसमें मैं रुका हुआ था।' चन्द्राभा हँसकर बोली कि, 'वह व्यभिचारी पूजन योग्य है।' मधुराजा ने कहा, 'व्यभिचारी किस प्रकार पूजन योग्य है ? उसे तो सजा ही देनी चाहिए।' चन्द्राभा बोली, 'यदि आप ऐसे ही न्यायवान हैं तो आप ही पहले से व्यभिचारी हो यह क्या नहीं जानते ?' वह सुनकर मधुराजा प्रतिबोध पाकर लज्जित हुआ। उस समय कनकप्रभ राजा चन्द्राभा रानी के वियोग में पागल बनकर गाँव गाँव भटकता और बालकों से घिरा हुआ उसी नगर के राजमार्ग पर गाता व नाचता हुआ निकला। उसे देखकर चन्द्राभा सोचने लगी कि - 'अहो ! मेरा पति मेरे वियोग में ऐसी दशा को प्राप्त हुआ, तो मुज जैसी परवश स्त्री को धिक्कार है।' इस प्रकार सोचकर उसने मधु को अपना पति दिखाया, तो उसे देखकर अपने दुष्ट कार्य के लिए मधु को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इससे तत्काल मधु ने **धुंधु** नाम के अपने पुत्र को राज्य सौंपकर कैटभ के साथ **विमलवाहन मुनि** से दीक्षा ली। वे हजारों वर्ष तक उग्र तप करके **द्वादशांग** को धारण करनेवाले और सदा साधुओं की वैयावृत्य (सेवा) करनेवाले बने। अंत में अनशन करके सब पापों की आलोचना करके वे दोनों मृत्यु पाकर **महाशुक्र देवलोक** में सामानिक देवता बने। राजा कनकप्रभ ने भी क्षुधातृषा से पीड़ित होकर तीन हजार वर्ष व्यर्थ गँवाकर मृत्यु पायी और ज्योतिष देवों में **धूमकेतु** नाम का देव बने। अवधिज्ञान से पूर्व का बैर जानकर वह धूमकेतु देव मधु के जीव को ढूंढ़ने लगा, पर मधु तो सातवें देवलोक में महर्द्धिक देव बने होने से उसके देखने में न आये। फिर वह वहां से च्यूत होकर मनुष्य भव पाकर तापस बना। उस भव में बालतप करके मृत्यु पाकर वह वैमानिक देव बना। फिर भी उस भव में मधु को देखने में समर्थ न बना। फिर वहां से च्यूत होकर संसार में परिभ्रमण करके कर्मयोग से ज्योतिषी में घूमकर धूमकेतु नाम का देव बना। उस समय मधु का जीव महाशुक्र देवलोक में से च्यूत होकर कृष्ण वासुदेव की पटरानी रुक्मिणी के उदर में पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ। वह धूमकेतु पूर्व के बैर से बालक का जन्म होते ही हर गया, और उसे मारने की इच्छा से वह दुष्ट एक टंकशिला पर उसे छोड़कर चला गया, पर अपने प्रभाव से वह बालक सर्व अंग से अक्षत रहा,

और उसे कालसंवर विद्याधर अपने घर ले गया। सोलह वर्ष बाद रुक्मिणी के साथ उसका समागम होगा।''

इस प्रकार प्रद्युम्न के पूर्व भव का वृत्तांत सुनकर 'रुक्मिणी को पुत्र का वियोग किस कर्म से हुआ ?' यूं नारद ने पूछा, तो श्री सीमंधर प्रभु ने इस प्रकार उसके पूर्व भव का वृत्तांत कहा -

''इस जंबुद्वीप में भरतक्षेत्र में मगध देश के **लक्ष्मीग्राम** नाम का एक गाँव में **सोमदेव** नाम का ब्राह्मण रहता था। उसे **लक्ष्मीवती** नाम की स्त्री थी। एक बार वह लक्ष्मीवती उपवन में गयीं। वहां मोर का अण्डा पड़ा था। उसने उसे कुमकुमवाले हाथ से स्पर्श किया। उसके स्पर्श से उस अण्डे का वर्ण और गंध परिवर्तित हो गया, उससे उसकी माता मयूरी ने वह अपना नहीं है यूं जानकर सोलह घड़ी तक उसे छोड़ दिया (सेया नहीं)। इसके बाद अचानक बरसात बरसने से उसके जल से धुलकर वह अण्डा अपने मूल स्वभाव में आ गया। इससे उसे पहचानकर उसकी माता ने उसे सेया, तो योग्य समय पर उसमें से मोर बना। दुबारा लक्ष्मीवती वहां आयी, उस समय मयूर के मनोहर बच्चे को देखकर, उसकी माता के रुदन करने पर भी उसे पकड लिया और अपने घर लाकर पिंजरे में बंद कर दिया। प्रतिदिन खान-पान से प्रसन्न करके उसे ऐसा नृत्य सिखाया कि जिससे वह सुंदर नृत्य करने लगा। उसकी माता मयूरी विरस स्वर से पुकारती हुई अपने प्यारे बच्चे के स्नेह से नियंत्रित होकर भी वह उस प्रदेश को छोड़ नहीं पायी। फिर लोगों ने आकर लक्ष्मीवती को कहा, 'तुम्हारा कूतुहल पूर्ण होता नहीं है, परंतु इसकी माता मयूरी बेचारी मरी जा रही है, इसलिए उसके बच्चे को छोड़ दो।' लोगों की वाणी से उस ब्राह्मणी को दया आयी, जिससे सोलह मास के उस मोर के युवा बच्चे को उसने जहां से पकडा था वहां छोड़ आयी। इस कृत्य से ब्राह्मणी ने प्रमाद करके सोलह साल का पुत्र विरह का बड़ा वेदनीय कर्म बांधा।

एक समय वह लक्ष्मीवती अपने विभूषित रूप को दर्पण में देख रही थी, इतने में **समाधिगुप्त** नाम के एक मुनि भिक्षा के लिए उसके घर में आए, तो उसके पति सोमदेव ने कहा कि 'भद्रे ! इस मुनि को भिक्षा दे।' इतने में किसी पुरुष के पुकारने पर सोमदेव बाहर चल गया, तो तत्काल उस स्त्री ने थूथूकार करके कठोर शब्द कहकर उस मुनि को घर से बाहर निकाला और सत्वर द्वार बंद कर दिया। मुनि जुगुप्सा के इस तीव्र पापकर्म से सातवें दिन उस स्त्री को गलत्कुष्ठ हुआ, जिसकी पीड़ा से विरक्त होकर वह अग्नि में जल मरी। वहां से मृत्यु पाकर उसी गाँव में किसी धोबी के घर वह गधी बनी। फिर से मृत्यु पाकर उसी गाँव में विष्टाभक्षी डुक्करनी बनी। वहां से मृत्यु पाकर कुत्तिया बनी। उसी भव में दावानल से दग्ध

होकर कोई शुभ भाव आने से मनुष्य का आयुष्य बांधकर मृत्यु पायी। फिर नर्मदा नदी के किनारे बसे भृगुकच्छ (भरोच) नगर में वह **काणा** नाम के मछियारे की पुत्री बनी। वह अति दुर्गंधी व दुर्भगा बनी। उसके माता-पिता उसकी दुर्गंध को सहन न कर सकने के कारण उसे नर्मदा के तीर पर छोड़ आये। वहां युवावस्था आने पर वह हंमेशां नाव द्वारा लोगों को नर्मदा नदी पार कराने लगी। दैवयोग से शीतऋतु में समाधिगुप्त मुनि वहां आ पहुँचे और पर्वत की भाँति निष्कंपतापूर्वक कायोत्सर्ग में स्थित हुए। उन्हें देखकर 'ये महात्मा पूरी रात्री ठंड को कैसे सहन कर पायेंगे ?' ऐसा सोचक दयार्द्र चित्तवाली उसने तृण द्वारा मुनि को आच्छादित किया। रात्रि व्यतीत हो जाने के बाद प्रातःकाल में उसने मुनि को नमस्कार किए, तो 'यह भद्रिक है' ऐसा मानकर मुनि ने उसे धर्मदेशना दी। उस समय 'इन मुनि को मैंने किसी जगह देखा है' यूं चिरकाल चिंतन करके उसने मुनि को उसके बारे में पूछा तो मुनि ने उसका पूर्वभव कह सुनाया। फिर महर्षि ने उसको कहा कि 'भद्रे ! पूर्व जन्म में तूने साधू की जुगुप्सा की थी, इसलिए इस भव में तू ऐसी दुर्गंधा बनी है, क्योंकि सर्व घटनाएं कर्म के अनुसरण से ही होती है।' इस प्रकार के श्रवण से उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। इससे वह पूर्वजन्म की हुई जुगुप्सा के लिए बार बार अपनी निंदा करते हुए वह मुनि से क्षमा माँगने लगी। तब से वह परम श्राविका बनी, तो मुनि ने उसे **धर्मश्री** नाम की आर्या को सौंप दिया। फिर वह आर्या के साथ ही विहार करने लगी। एक बार किसी गाँव में जाने पर उसको वहां **नायल** नाम के किसी श्रावक को आर्या ने सौपा। उस नायल के आश्रय में रहकर और एकांतर उपवास करते हुए वह जिनपूजा में तत्परतापूर्वक बारह साल तक वहां रही। आखिर में अनशन करके मृत्यु पाकर वह अच्युत इन्द्र की इन्द्राणी बनी। वहां पचपन पल्योपम का आयुष्य भोगकर वहां से च्यूत होकर वह रुक्मिणी बनी है। पूर्व भव में उसने मयूरी के बच्चे का वियोग कराया था, इसलिए वह रुक्मिणी इस भव में सोलह वर्ष तक पुत्रविरह का दुःख अनुभव करेगी।''

इस प्रकार का रुक्मिणी का पूर्वजन्म सुनकर नारद सीमंधर प्रभु को नमस्कार करके वैताढ्यगिरि पर मेघकूट नगर में आये। वहां संवर विद्याधर के पास आकर कहा कि 'तुम्हें पुत्र हुआ यह बहुत अच्छा हुआ।' उनके वचन से प्रसन्न होकर संवर ने नारद की पूजा की और प्रद्युम्न को दिखाया। नारद उस पुत्र को रुक्मिणी के जैसा ही देखकर भगवंत के कथन में विश्वास रखकर संवर की अनुमति लेकर द्वारिका में आए। वहां कृष्ण वगैरह को उस पुत्र का सर्व वृत्तांत कहा और रुक्मिणी को भी उसके लक्ष्मीवती वगैरह पूर्वजन्म की बात बतायी। फिर रुक्मिणी ने भक्तिपूर्वक अंजलि जोड़कर वहां रहकर ही सीमंधर प्रभु को नमस्कार किया, और 'सोलह वर्ष के बाद पुत्र का समागम होगा।' ऐसे अरिहंत भगवंत के वचन से वह स्वस्थ बनीं।

पहले श्री ऋषभदेव स्वामी को कुरु नाम का एक पुत्र था, जिसके नाम से कुरुक्षेत्र कहलाता है। उस कुरु को हस्ती नाम का पुत्र हुआ, जिसके नाम से हस्तिनापुर नगर बसा है। उस हस्ती राजा की संतान में **अनंतवीर्य** नाम का राजा हुआ। उसका पुत्र कृतवीर्य नाम का राजा हुआ। उसका पुत्र **सुभूम** नाम का चक्रवर्ती राजा हुआ। इसके बाद असंख्य राजा हो जाने के बाद **शांतनु** नाम का एक राजा हुआ। उसे **गंगा** और **सत्यवती** नाम की दो पत्नियां थी। गंगा को भीष्म पराक्रमवाला **भीष्म** नाम का पुत्र हुआ, और सत्यवती को **चित्रांगद** और **चित्रवीर्य** नाम के पुत्र हुए। चित्रवीर्य को अंबिका, अंबालिका और अंबा नाम की तीन स्त्रियां थी। उनसे **धृतराष्ट्र, पांडु** और **विदुर** नाम के क्रमानुसार तीन पुत्र हुए। उसमें पांडु धृतराष्ट्र को राज्य सौंपकर मृगया करने में तत्पर रहने लगे। धृतराष्ट्र सुबल राजा के पुत्र और गांधार देश के राजा **शकुनि** की **गांधारी** वगैरह आठ बहनों से ब्याहे। उनसे उसे दुर्योधन वगैरह सौं पुत्र हुए। पांडुराजा को **कुंती** नाम की स्त्री से **युधिष्ठिर, भीम** और **अर्जुन** नाम के तीन पुत्र हुए और दूसरी स्त्री **माद्री** जो शल्य राजा की बहन लगती थी उससे **नकुल** और **सहदेव** नाम के दो बलवान पुत्र हुए। विद्या व भुजाबल में उग्र ऐसे ये पांचों पांडुकुमार पंचाननशेर की तरह खेचरों में भी अजेय बने। अपने ज्येष्ठ बंधु प्रति विनयवाले व दुर्नीति को नहीं सहन करनेवाले वे पांचों पाण्डव अपने लोकोत्तर गुणों से लोगों को आश्चर्य प्रदान करने लगे।

एक बार कांपिल्यपुर से **द्रुपद राजा** के दूत ने आकर नमस्कार करके पांडुराजा को इस प्रकार कहा, 'हमारे स्वामी द्रुपद राजा को **चुलनी** रानी के उदर से जन्मी व धृष्टद्युम्न की छोटी बहन **द्रौपदी** नाम की कन्या है। उसके स्वयंवर में दस दशार्ह, राम-कृष्ण, दमदंत, शिशुपाल, रुक्मि, कर्ण, सुयोधन और अन्य राजाओं को तथा उनके पराक्रमी कुमारों को द्रुपद राजा ने दूत भेजकर बुलवाया है। वे इस समय वहां पहुंच रहे हैं तो आप भी इन देवकुमार जैसे पांच कुमारों के साथ वहां पधारकर स्वयंवरमण्डप को अलंकृत कीजिए।'' यह सुनकर पांच जयवंत बाणों से कामदेव की भाँति पांच पुत्रों से युक्त ऐसे पांडुराजा कांपिल्यपुर गये और अन्य भी अनेक राजा वहां आये। द्रुपद राजा द्वारा पूजित प्रत्येक राजा अंतरीक्ष में रहे ग्रहों की तरह स्वयंवर मण्डप में उपस्थित हुए। इस मौके पर स्नान करके, शुद्ध (उज्ज्वल) वस्त्र पहनकर, माल्यांलकार धारण करके और अर्हंतप्रभु को पूजकर रुप में देवकन्या जैसी द्रौपदी सखियों साथ लिपटी हुई सामानिक देवताओं जैसे कृष्णादि राजाओं से अलंकृत स्वयंवरमंडप में आयी। उसकी सखियां उसे प्रत्येक राजा का नाम ले लेकर दिखाने लगीं। उनको क्रमानुसार देखते हुए द्रौपदी जहां पांच पाण्डव बैठे थे वहां आयी, और उसने अनुरागी बनकर पांचों पाण्डवों के कण्ठ में स्वयंवर माला आरोपित की। उस समय 'यह क्या ?' यूं पूरा राजमंडल आश्चर्य पा

गया। इतने में कोई चारणमुनि आकाशमार्ग से वहां आये, तो कृष्णादिक राजाओं ने उन मुनि को नमस्कार करके विनयपूर्वक पूछा, 'क्या इस द्रौपदी के पांच पति होंगे ?' मुनि बोले "यह द्रौपदी पूर्व भव के कर्म से पांच पतिवाली बनेगी, परंतु इसमें आश्चर्य क्या है ? क्योंकि कर्म की गति महा विषम है। उसका वृत्तांत सुनो। चम्पानगरी में **सोमदेव, सोमभूति** व **सोमदत्त** नाम के तीन ब्राह्मण रहते थे। वे सहोदर बंधु थे। धन-धान्य से परिपूर्ण ऐसे उनको क्रमशः **नागश्री, भूतश्री** व **यक्षश्री** नाम की पत्नियाँ थीं। वे तीनों भाई परस्पर स्नेह रखते थे, इससे उन्होंने एक बार तय किया कि 'हम तीनों भाइ एक एक भाई के घर बारी अनुसार साथ साथ भोजन करा करें।' इस प्रकार करते हुए एक दिन सोमदेव के घर भोजन की बारी आयी, तो भोजन के समय पूर्व नागश्री विविध प्रकार के भोजन की तैयारी करने लगी। उसमे उस रमणी ने अनजाने मे कडवी तूबी का साग बनाया। साग कैसा बना है यह जानने के लिए उसने उसे चख देखा, तो बहुत कडवा होने के कारण उसे अभोज्य जानकर थूंक दिया। फिर सोचने लगी कि 'मैंने कई स्वादिष्ट विविध पदार्थो से यह साग सुधारा, फिर भी वह कड़वा ही रहा।' यूं सोचकर उसने वह साग छिपा दिया। और उसके सिवाय के अन्य भव्य भोजन से उसने अपने घर कुटुम्ब सहित पधारे अपने पति व देवर को भोजन कराया। उस समय सुभूमिभाग नाम के उस नगर के उद्यान में ज्ञानवान व परिवार सहित श्रीधर्मघोष आचार्य पधारे। उनका **धर्मरुचि** नाम का एक शिष्य मासक्षमण के पारणे के लिए सोमदेवादिक वगैरह के भोजन करने के बाद नागश्री के घर भिक्षा लेने आए। नागश्री ने विचार किया कि 'इस साग से ही इन मुनि का तोषित हो।' ऐसा सोचकर उसने उस कडवी तूबी का साग मुनि को वहोराया। मुनि ने जाना कि आज मुझे यह कोई अपूर्व पदार्थ मिला है। इससे उन्होंने गुरु के पास जाकर उनके हाथ में वह पात्र दिया। गुरु उसकी गंध लेकर बोले, 'हे वत्स ! यदि यह पदार्थ तू खायेगा तो मृत्यु पायेगा, इसलिए इसे गाड़ दे, और अब दुबारा ऐसा पिण्ड अच्छी तरह परख कर लेना।' गुरु के ऐसे वचन से मुनि उपाश्रय के बाहर शुद्ध स्थंडिल के समीप उसे गाड़ने के लिए आये, इतने में पात्र में से साग का एक बिंदु भूमि पर गिरा। उसके रस से आकर्षित होकर अनेक चींटियां आयी और उसमें मग्न बनीं। वे सब तत्काल मृत्यु पा गयी। यह देखकर मुनि को विचार आया कि 'इसके एक बिंदुमात्र से अनेक जंतु मरते हैं तो उसे गाड़ने से कइं जंतुओं की मृत्यु हो जायेगी, तो मैं एक ही मृत्यु पाऊं वही ठीक होगा, लेकिन कइं जंतु मर जाय यह योग्य नहीं है।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने उस तूबी का साग समाहित भाव से खा लिया। फिर समाधिपूर्वक सम्यक् प्रकार से आराधना करके मृत्यु पाकर वे धर्मरुचि मुनि सर्वार्थसिद्ध विमान में अहमिन्द्र देव बने। यहां धर्मघोष आचार्य ने 'धर्मरुचि मुनि को इतना विलंब क्यों हुआ ?' यह जानने के लिए दूसरे मुनियों को

खोजने के लिए भेजा। उन्होंने बाहर जाकर देखा तो उन्हें मृत्यु पाये हुए देखा, तो उनका रजोहरण वगैरह लेकर गुरु के पास आकर बड़े खेदपूर्वक वह बात गुरु को बतायी। गुरु ने अतिशय ज्ञान के उपयोग से जानकर अपने सब शिष्यों को नागश्री का पूरा दुश्चरित्र बताया। वह सुनने से सब मुनियों और साध्वियों को कोप उत्पन्न हुआ, जिससे उन्होंने वह बात सोमदेव वगैरह अनेक लोगों को बतायी। वह सुनकर सोमदेव वगैरह विप्रों ने नागश्री को घर से निकाल दिया। लोगों ने भी उसका बड़ा तिरस्कार किया, जिससे वह सर्वत्र दुःखी होकर भटकने लगी, और कास, श्वास, ज्वर व कुष्ट आदि सोलह भयंकर रोगों से पीडा पाती हुई वह उसी जन्म में नारकीपन को प्राप्त हुई। इस प्रकार क्षुधा, तृषा से आतुर, फटे-तूटे वस्त्र पहनती व निराधार भटकते हुए वह स्त्री क्रमशः मृत्यु पाकर छट्ठे नरक में गयी। वहां से निकलकर चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुई और मृत्यु पाकर सातवें नरक में गयी। फिर म्लेच्छ जाति में उत्पन्न हुई और मरकर नरक में गयी। इस प्रकार वह पापिन सब नरक में दो-दो बार जा आयी। फिर पृथ्वीकाय आदि में अनेक बार उत्पन्न हुई और अकामनिर्जरा से कई कर्मों को खपाया।

इसके बाद चम्पानगरी में सागरदत्त सेठ की स्त्री सुभद्रा के उदर से **सुकुमारिका** नाम की पुत्री हुई। उसी नगर में जिनदत्त नाम के एक धनवान सार्थवाह रहता था, उसे **भद्रा** नाम की गृहिणी व **सागर** नाम का पुत्र था। एक बार जिनदत्त सागरदत्त के घर गया, वहां सुकुमारिका को युवावस्था में देखा। वह महल पर चढ़कर कंदुकक्रीडा कर रही थीं। उसे देखकर जिनदत्त ने सोचा कि 'यह कन्या मेरे पुत्र के लिए योग्य है।' यूं चिंतन करता हुआ वह अपने घर आया। फिर अपने बंधुवर्ग सहित सागरदत्त के घर जाकर अपने पुत्र के लिए सुकुमारिका की मांग की। सागरदत्त बोला, 'यह पुत्री मुझे प्राणों से भी प्रिय है, उसके बिना मैं पल भर भी नहीं रह सकता, इसलिए यदि तुम्हारा पुत्र सागर मेरे यहां घरजमाई बनकर रहे तो में मेरी पुत्री बहुत द्रव्य के साथ उसे अर्पण करुं।' 'मैं सोचकर बताऊंगा' यूं कहकर जिनदत्त अपने घर गया, उसने यह बात सागर को कही। वह सुनकर सागर मौन रहा, तो 'जिसका निषेध न करे वह संमत है' ऐसे न्याय से उसके पिता ने सागर को घरजमाई बनकर रहने देने का कबूल किया। क्रमशः सागर का उस कुमारी के साथ ब्याह कराया। रात्रि में वह उसके साथ वासगृह में जाकर शय्या में सोया। उस समय पूर्व-कर्म के योग से उस सुकुमारिका के स्पर्श से सागर का अंग अंगारे की तरह जलने लगा, वह बडी मुश्किल से पलभर सहन करके सोया रहा। परंतु जब सुकुमारिका सो गयी तब उसे छोड़कर वह अपने घर भाग गया। निंद्रा पूरी होने पर, अपने पति को पास न देखने से सुकुमारिका बहुत रुदन करने लगी। प्रातःकाल मे सुभद्रा ने वधू-वर को दंतधावन कराने के लिए एक दासी को भेजा। वहां जाने पर दासी

ने सुकुमारिका को पतिरहित और रुदन करते हुए देखा, तो उसने सुभद्रा के पास आकर यह बात बतायी। सुभद्रा ने सेठ को बात बतायी। सेठ ने जिनदत्त के पास जाकर उसे उपालंभ दिया। जिनदत्त ने अपने पुत्र को एकांत में बुलाकर कहा कि 'हे वत्स ! तुमने सागरदत्त सेठ की पुत्री का त्याग किया यह ठीक नहीं है। इसलिए इस समय उस सुकुमारिका के पास वापस जा। क्योंकि मैंने सज्जनों के समक्ष तुझे वहां रखने का कबूल किया है।' सागर बोला, 'हे पिताजी ! अग्नि में प्रवेश करना मैं योग्य मानता हूं, परंतु उस सुकुमारिका के पास कदापि नहीं जाना चाहता।' यह पूरी बात दीवार के पीछे गुप्तरुप से खड़े होकर सागरदत्त सुन रहे थे। वे निराश होकर अपने घर आये और सुकुमारिका को कहा, 'हे पुत्री ! सागर तो तेरे पर विरक्त हुआ है, इसलिए मैं तेरे लिए दूसरा पति ढूंढ दूंगा। तू खेद मत कर।'

एक बार सागरदत्त सेठ अपने महल के झरोखे में बैठकर मार्ग की ओर देख रहे थे, उतने में हाथ में खप्पर धारण करनेवाला, जीर्ण वस्त्र के खण्ड को पहनने वाला व मक्षिका से लिपटा कोई भिक्षुक मार्ग से चला जाता हुआ उन्हें नजर आया, तो सागरदत्त ने उसे बुलाया। खप्पर आदि छुड़वाकर स्नान कराके भोजन कराया और उसका शरीर चंदन से चर्चित कराया। फिर उसे कहा, 'अरे भद्र ! यह मेरी पुत्री सुकुमारिका मैं तुम्हें देता हूँ, तो भोजन वगैरह में निश्चिंत होकर उसके साथ यहां सुख से रह।' इस प्रकार कहने से वह सुकुमारिका के साथ वासगृह में गया, परंतु उसके साथ शयन करते ही उसके अंग के स्पर्श से मानो अग्नि का स्पर्श हुआ हो त्यों वह जलने लगा, इससे तत्काल उठकर, अपना जो वेश था वह पहनकर वह वहां से पलायन कर गया। सुकुमारिका ने प्रथम समान ही खेद पाया। उसकी ऐसी अवस्था देखकर उसके पिता ने उसको कहा, 'वत्से ! खेद मत कर। तेरे पूर्व पापकर्मों का उदय हुआ है, दूसरा कोई कारण नहीं है, इसलिए संतोष धारण करके मेरे घर रहकर नित्य दान-पुण्य कर।' ऐसे वचन से सुकुमारिका शांत हुई। और धर्मतत्पर होकर वहां रहते हुए निरंतर दान देने लगी।

एक बार **गोपालिका** नाम की साध्वी उसके घर आ पहुँची। सुकुमारिका ने उनको शुद्ध अन्नपान से प्रतिलाभित किया। फिर उनसे धर्म सुनकर प्रतिबोध पाकर सुकुमारिका ने चारित्र ग्रहण किया। चतुर्थ, छट्ठ व अट्ठम वगैरह तप करती हुई वह सुकुमारिका साध्वी गोपालिका आर्या के साथ निरंतर विहार करने लगी। एक बार सुकुमारिका साध्वी ने अपनी गुरुआइन को कहा, 'पूज्य आर्या ! आपकी आज्ञा हो तो मैं सुभूमिभाग नाम के उद्यान में रविमण्डल के सामने देखते हुए आतापना लूं ?' आर्या बोलीं, 'अपने निवासस्थान से बाहर रहकर साध्वी को आतापना लेना योग्य नहीं, ऐसा आगम में कहा हुआ है।' गुरुआइन ने इस प्रकार कहा फिर भी वह सुना न हो त्यों सुकुमारिका सुभूमिभाग उद्यान में गयीं और सूर्य के सामने दृष्टि

स्थापित करके आतापना लेने लगी।

एक बार देवदत्ता नाम की एक वैश्या वहां उद्यान में आयी हुए उसकी नजरों में आयी। उसके एक कामी यार ने उसे उत्संग में बैठाया था। एक ने उसके सिर पर छत्री धरी थी। एक उसे वस्त्र के सिरे से हवा ड़ाल रहा था, एक उसके केश बांध रहा था और एक ने उसके चरण धर रखे थे। इस प्रकार का दृश्य देखकर सुकुमारिका साध्वी, जिसकी भोग की इच्छा पूर्ण नहीं हुई थी, उसने ऐसा संकल्प किया कि 'तपस्या के प्रभाव से मैं इस वैश्या की तरह पाँच पतिवाली बनूं।' इसके बाद वह बार बार अपना शरीर साफ रखने लगी। आर्याएं उसे वैसा करते हुए रोकती तब वह मन ही मन सोचती की 'मैं जब पहले गृहस्थ थी तब ये आर्याएं मेरा मान रखती थी, लेकिन अब उनके साथ भिक्षुणी बनी तो वे मुझे ज्यों-त्यों तिरस्कार देती है, तो मुझे अब उनके साथ रहने की क्या जरुरत है ?' ऐसी धारणा करके वह अलग उपाश्रय मे रहकर, अकेली स्वतंत्रतापूर्वक विचरते हुए चिरकाल व्रत पालने लगी। आठ मास की संलेखना करके, पूर्व पाप की आलोचना किए बिना वह मृत्यु पाकर नौ पल्योपम के आयुष्यवाली सौधर्मकल्प में देवी बनी। वहां से च्यूत होकर वह यह द्रौपदी बनी है और पूर्व-भव में किए हुए संकल्प से उसे पांच पति हुए हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या हैं ?''

इस प्रकार मुनि ने कहा, उस समय आकाश में ''साधू, साधू'' ऐसी वाणी हुई। तो उसे पांच पति योग्य हैं ऐसा कृष्ण वगैरह कहने लगे। फिर स्वयंवर में आये राजाओं ने और स्वजनों ने किए हुए बड़े उत्सव के साथ पाण्डव द्रौपदी से ब्याहे। पांडु राजा दस दशार्ह, कृष्ण और अन्य राजाओं को मानो विवाह के लिए बुलवाया हो त्यों सम्मानपूर्वक अपने नगर ले गये। वहां उन्हें चिरकाल तक रखकर अच्छी तरह से भक्ति की। फिर जब दशार्ह और राम-कृष्ण ने आज्ञा माँगी तब उन्हें और अन्य राजाओं को बिदा किया।

पांडुराजा युधिष्ठिर को राज्य देकर मृत्यु पाये, और माद्री ने भी अपने दो पुत्र कुंती को सौंपकर पांडुराजा के पीछे मृत्यु पायी। जब पांडुराजा अस्त पाये तब मत्सरवाले धृतराष्ट्र के पुत्र पाण्डवों को नगण्य मानने लगे और वे दुष्ट आशय से राज्य लेने के लिए लुब्ध बने। दुर्योधन ने विनय वगैरह से सर्व वृद्धों को संतुष्ट किया और पाण्डवों को द्युत में जीत लिया। युधिष्ठिर ने लोभ से द्युत में राज्य का और आखिरकार द्रौपदी को भी दाँव पर लगाया, वह सब दुर्योधन ने जीतकर अपने स्वाधीन किया। लेकिन क्रोध से लाल बनी आँखोंवाले भीम से भय पाकर दुर्योधन ने द्रौपदी को उन्हें वापस दे दिया। फिर धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अपमान करके पाण्डवों को अपने देश से निकाल दिया, तो उन्होंने वनवास स्वीकारा। लम्बे समय तक वन-वन भटकते

हुए पांचों पाण्डवों को आखिर में दशार्ह की अनुज बहन कुंती द्वारका में ले गयी। दिव्य अस्त्रों से युद्ध करनेवाले और विद्या तथा भुजबल में उग्र ऐसे वे पहले समुद्रविजय राजा के घर आये। राजा समुद्रविजय और अक्षोभ्य वगैरह उनके भाइयों ने अपनी बहन और भानजों का स्नेहपूर्वक अच्छी तरह सत्कार किया। दशार्ह बोले, 'हे बहन! तुम्हारे हिस्सेदार कौरवों के पास से भाग्ययोग से संतानसहित तू जीवित आयी, यह अच्छा ही हुआ।' कुंती ने भी कहा, 'जब मैंने सुना कि आप सब पुत्रादिक परिवार सहित जीवित हो तो ही मैं भी संतान सहित जीवित रही हूँ। और राम-कृष्ण का लोकोत्तर चरित्र सुनकर हर्ष पाते हुए उन्हें देखने के लिए उत्सुक होकर मैं यहां आयी हूँ।' फिर भाइयों ने कहा तो कुंती पुत्रों सहित सभा में आयी। उसे देखकर राम-कृष्ण खड़े हुए और भक्ति से उनको नमस्कार किए। फिर राम-कृष्ण और पाण्डव क्रमानुसार परस्पर को नमस्कार और आलिंगन करके यथायोग्य स्थान पर बैठे। कृष्ण बोले - 'आप यहां आपके ही घर आये - यह बहुत अच्छा किया, क्योंकि तुम्हारी और यादवों की लक्ष्मी परस्पर साधारण है।' युधिष्ठिर बोले, 'हे कृष्ण ! जो आपको मानते हैं, उन्हें लक्ष्मी सदैव दासीरुप है, तो जिन्हें आप मानो, उनकी तो बात ही क्या करनी ? हमारे मातृकुल (ननिहाल) को जबसे आप अलंकृत करते हो तबसे हम यदुकुल और आपको सर्व से विशेष पराक्रमी मानते हैं।' इस प्रकार विविध आलाप होने के बाद कुंती तथा उसके पुत्रों का सत्कार करके कृष्ण ने उनका अलग अलग महलों में निवास कराया। दशार्हो ने **लक्ष्मीवती, वेगवती, सुभद्रा, विजया** और **रति** नाम की अपनी पांच कन्याएं क्रमानुसार पांच पाण्डवों को दी। यादवों व राम-कृष्ण द्वारा पूजे गये वे वहां सुख से रहने लगे।

यहां संवर विद्याधर के घर प्रद्युम्न बड़ा हुआ। उसने सब कलाएं प्राप्त की। उसे युवावस्था में आया देखकर एक बार संवर विद्याधर की स्त्री कनकमाला कामातुर बनी। वह सोचने लगी कि "इसके जैसा सुन्दर पुरुष किसी खेचर में नहीं है। देव भी ऐसा होगा यूं मैं नहीं मानती तो मनुष्य की क्या बात ? ज्यों स्वयं बड़े किए वृक्ष के फल का स्वयं आस्वादन करे त्यों मेरे बड़े किए हुए इस प्रद्युम्न के यौवन का भोगरूपी फल मुझे स्वयंमेव ही भोगना है, नहीं तो मेरा जन्म वृथा है।" ऐसा विचार करके एक बार उसने मधुर वाणी से प्रद्युम्न को कहा कि "यहां उत्तर श्रेणी में नलपुर नाम का नगर है। उसमें गौरी वंश का निषध नाम का राजा है, उस राजसिंह की मैं पुत्री हूँ और उसे नैषधि नाम का एक पुत्र है। मेरे पिता ने मुझे गौरी विद्या दी है और संवर विद्याधर प्रज्ञप्ति विद्या देकर मुझसे ब्याहा है, मुझ में अनुरुक्त बना संवर अन्य किसी युवती को नहीं चाहता। मैंने पूर्वोक्त दोनों विद्याएं सिद्ध की हैं और उसके बल से संवर को यह जगत तृण समान है। ऐसी मैं तुझ पर अनुरागी बनी हूँ, इसलिए मुझे भज। अज्ञान

से भी मेरे प्रेम का भंग मत करना।'' प्रद्युम्न बोला, 'अरे ! पाप शांत हो। यह आप क्या बोल रही हो ? आप माता हो और मैं पुत्र हूँ, इसलिए हम दोनों के नरकपात की यह बात छोड दो।' कनकमाला बोली, 'तू मेरा पुत्र नहीं है, तुझे किसिने मार्ग में छोड़ दिया था, अग्निज्वालपुर से आते हुए संवर विद्याधर तुझे यहां लाया है। उसने तुझे पालने के लिए मुझे दिया था, इसलिए तू अन्य किसिका पुत्र है, इसलिए निःशंकतापूर्वक तेरी इच्छानुसार मेरे साथ भोग भुगत।' उसके ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्न ने सोचा कि, 'मैं इस स्त्री के पाश में फंसा हूँ। इसलिए मुझे क्या करना ?' फिर वह सोचकर बोला, 'रे भद्रे ! यदि मैं ऐसा कार्य करुं तो फिर संवर और उसके पुत्रों के पास किस प्रकार जीवित रह सकूंगा ?' कनकमाला बोली, 'हे सुभग ! उसका भय रखना मत, मेरे पास गौरी और प्रज्ञप्ति दो विद्याएं हैं उन्हें तू ग्रहण कर और जगत में अजेय बन।' फिर 'कदापि मुझे यह अकृत्य करना नहीं है,' ऐसा अंतःकरण में निश्चय करके प्रद्युम्न बोला कि 'पहले मुझे वे दोनों विद्याएं दीजिए, फिर मैं आपका वचन मानूंगा।' कामातुर बनी कनकमाला ने गौरी और प्रज्ञप्ति नामकी दो विद्या तत्काल उसे दी, तो प्रद्युम्न ने पुण्योदय के प्रभाव से उन्हें तत्काल साध लीं। फिर उसने दुबारा क्रीडा करने की प्रार्थना की तो प्रद्युम्न बोला, 'हे अनघे ! आप मुझे पालने से ही प्रथम माता बनी थी, परंतु अब विद्यादान करने से तो गुरु बनी हो, इसलिए अब इस पापकर्म के बारे में मुझे कुछ भी कहना मत।' इस प्रकार उसे कहकर घर छोड़कर प्रद्युम्न नगर के बाहर चला गया, और कालांबुका नामक वापिका के किनारे जाकर दुःखी मन से सोचते हुए बैठा।

यहां कनकमाला ने अपने शरीर पर नाखूनों से खरोंचकर चिल्लाना शुरु किया, तो 'यह क्या ?' यूं पूछते हुए उसके पुत्र वहां दौड़ आये। वह बोली, 'तुम्हारे पिता ने उस प्रद्युम्न को पुत्र रूप मानकर रखा है, वह दुष्ट युवक ने मार्जार ज्यों पिंड देनेवाले पर झपटता हैं त्यों मुझ पर झपटा है।' यह हकीकत सुनकर वे सब तत्काल क्रोध करके कालांबुका के किनारे गए, और 'अरे पापी, अरे पापी !' यूं बोलते हुए प्रद्युम्न पर प्रहार करने लगे। इस कारण तत्काल विद्या के प्रभाव से प्रबल बने प्रद्युम्न ने लीलामात्र में सिंह ज्यों हिरन को मारे त्यों संवर के पुत्रों को मार डाला। पुत्र का वध सुनकर संवर भी क्रोध करके प्रद्युम्न को मारने आया, परंतु विद्या से उत्पन्न हुई माया से प्रद्युम्न ने संवर को जीत लिया। फिर प्रद्युम्न ने पश्चात्तापपूर्वक आरंभ से कनकमाला का पूरा वृत्तांत संवर को कहा। वह सुनकर पश्चात्ताप करते हुए उलटे संवर ने प्रद्युम्न की पूजा की। उतने में नारदमुनि वहां प्रद्युम्न के पास आये। प्रज्ञप्ति विद्या से पहचाने गए नारद की प्रद्युम्न ने पूजा की और उन्हें कनकमाला की हकीकत बताई, तो नारद सीमंधर प्रभु का कहा हुआ प्रद्युम्न व रुक्मिणी का सर्व वृत्तांत आरंभ से सुनाकर इस प्रकार बोले, ''हे

प्रद्युम्न ! जिसका पुत्र पहला ब्याहे उसे दूसरी को अपने केश देने' ऐसा प्रण (शर्त) तुम्हारी सौतेली माता सत्यभामा के साथ तुम्हारी माता रुक्मिणी ने किया है। उस सत्यभामा का पुत्र भानुक तुरंत ही ब्याहने वाला है, इसलिए यदि वह पहले ब्याहेगा तो तुम्हारी माता को होड में हारकर अपने केश देने पडेंगे, तब केशदान की हानि से और तुम्हारे वियोग की पीड़ा से तुम्हारे जैसा पुत्र होने पर भी रुक्मिणी मृत्यु पायेगी।'' इस प्रकार की बात सुनकर प्रद्युम्न नारद के साथ प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा निर्माण किए हुए विमान में बैठकर तत्काल द्वारकापुरी के समीप आये।

उस समय नारद ने कहा, 'हे वत्स ! तेरे पिता की यह द्वारकापुरी आयी, जिसे कुबेर ने रत्नों से निर्माण करके धन से भर दिया है।' प्रद्युम्न बोला, 'मुनिवर्य आप क्षणभर के लिए इसी विमान में यहीं पर रहें, मैं नगर में जाकर कुछ चमत्कार करुं।' नारद ने वह स्वीकृत किया। फिर प्रद्युम्न आगे चला। वहां सत्यभामा के पुत्र के विवाह की बारात आती हुई उसने देखी, तो प्रद्युम्न ने उसमें से कन्या को हर लिया और जहां नारद थे वहां छोडा। नारद ने कहा, 'वत्से ! डरना मत, यह भी कृष्ण का पुत्र ही है।' फिर प्रद्युम्न एक वानर को लेकर वन में गया और वनपालकों को कहा कि 'मेरा यह वानर क्षुधातुर है, तो उसके लिए फलादिक दीजिए।' वनपालक बोले, 'यह उद्यान भानुककुमार के विवाह हेतु रखा हुआ है, इसलिए तुझे कुछ भी बोलना या माँगना नहीं है।' फिर प्रद्युम्न बहुत द्रव्य से उनको लुभाकर उस उद्यान में घुसा, और अपने मायावी वानर से पूरा उद्यान फलादिक रहित करा डाला। फिर एक जातवंत अश्व लेकर वणिक बनकर तृण बेचनेवाले की दुकान में गया और अपने अश्व के लिए दुकानदारों के पास घास माँगा, उन्होंने भी विवाह-कार्य का कारण बताकर ना कहा, तो उन्हें भी द्रव्य से लुभाकर विद्याबल से सर्व तृण रहित कर दिया। इसी प्रकार से स्वादिष्ट जलवाले जो जो स्थान थे वे सब जलरहित कर दिए। फिर प्रद्युम्न अश्वक्रीडा करने के स्थानक पर जाकर अश्व खिलाने लगा। वह अश्व भानुक ने देखा। तो उसके पास जाकर पूछा कि 'यह अश्व किसका है ?' प्रद्युम्न ने कहा, 'यह मेरा अश्व है।' भानुक ने आदर से कहा, 'यह अश्व मुझे दोगे ? जो माँगोगे वह मूल्य मैं दूंगा।' प्रद्युम्न ने कहा कि 'परीक्षा कर लो, नहीं तो मैं राजा के अपराध में आ जाऊँगा।' भानुक ने वह बात कबूल की और परीक्षा करने के लिए उस अश्व पर स्वयं बेठा। फिर अश्व की चाल देखने के लिए उसे चलाते ही अश्व ने भानुक को पृथ्वी पर गिरा डाला। फिर नगरजनों ने जिस पर हास्य किया है ऐसा प्रद्युम्न बकरे पर बैठकर कृष्ण की सभा में आया और सर्व सभासदों को हँसाने लगा। फिर थोड़ी ही देर में ब्राह्मण बनकर मधुर स्वर में वेद-पाठ करता हुआ वह द्वारका के चौराहों और गली-गली में घूमने लगा। मार्ग में सत्यभामा की

एक कुब्जा दासी मिली, तो उसे बरु की लता की तरह विद्या से सरल अंगवाली कर दी। वह दासी प्रद्युम्न के पैरों में गिरकर बोली कि 'आप कहां जाते हों ?' तो प्रद्युम्न बोला, 'जहाँ इच्छानुसार भोजन मिलता है, वहां जाता हूँ।' दासी बोली, 'चलो सत्यभामा देवी के घर, पुत्र के विवाह के लिए तैयार किए गये मोदक वगैरह आपको यथारुचि दूंगी।'

प्रद्युम्न कुब्जा के साथ सत्यभामा के घर आया। तोरणद्वार (मूलद्वार) समीप उसे खड़े रखकर कुब्जा सत्यभामा के पास गयी, तो सत्यभामा ने पूछा कि, 'तू कौन है ?' दासी बोली, 'मैं कुब्जा हूँ।' सत्यभामा ने कहा कि, 'तुझे ऐसी सरल किसने बनाया ?' तो दासी ने उस ब्राह्मण का वृत्तांत कहा। सत्यभामा ने पूछा कि, 'वह ब्राह्मण कहाँ है ?' दासी बोली, 'मैं उसे तोरणद्वार के समीप खड़ा करके आपके पास आयी हूँ।' इससे 'उस महात्मा को यहां ले आ' ऐसी सत्यभामा ने आज्ञा दी। तो दासी तेजी से दोड़कर गयी और उस कपटी ब्राह्मण को ले आयी। वह आशिष देकर सत्यभामा के पास बैठा, तो सत्यभामा ने कहा, 'हे ब्रह्मन् ! मुझे रुक्मिणी से ज्यादा रूपवाली कर दो।' कपटी विप्र ने कहा, 'आप तो बड़ी स्वरुपवान दिखती हो, आपके जैसा कोई दूसरी स्त्री का रुप मैंने कहीं भी नहीं देखा है।' सत्यभामा बोली, 'हे भद्र ! आप कहते हो वह सत्य है, फिर भी मुझे रुप में विशेष अनुपम कर दो।' ब्राह्मण ने कहा, 'यदि रुप में अधिक होना हो तो पहले विरुप हो जाओ, कारण यदि मूल में विरुपता हो तो विशेष रुप मिलता है।' सत्यभामा ने पूछा, 'तो पहले मैं क्या करुं ?' ब्राह्मण बोला, 'पहले मस्तक मुंडवा दो और पिर कालिख से पूरे शरीर उपर विलेपन करके टांके लिए हुए जीर्ण वस्त्र पहनकर मेरे समक्ष आइए, तो मैं आप में लावण्य व सौभाग्य की शोभा का आरोपण करुंगा।' विशेष रुप की आकांक्षावाली सत्यभामा ने तुरंत ही वैसा किया। इसके बाद कपटी ब्राह्मण बोला, 'मैं बड़ा ही क्षुधातुर हूँ, तो अस्वस्थता में मैं क्या कर सकूंगा ?' सत्यभामा ने उसे भोजन देने के लिए रसोइयों को आज्ञा दी, तो ब्राह्मण ने सत्यभामा के कान में इस प्रकार उपदेश दिया, "हे अनघे ! जब तक मैं भोजन कर लूं तब तक कुलदेवी समक्ष बैठकर आप 'रुडु बुडु, रुडु बुडु' ऐसा मंत्र जपो।" सत्यभामा शीघ्र ही कुलदेवी के सम्मुख बैठकर वह जाप करने लगी। यहाँ प्रद्युम्न ने विद्याशक्ति से पूरी रसोई समाप्त कर दी। फिर हाथ में जलकलश लेकर रसोई करनेवाली स्त्रियाँ सत्यभामा से डरते हुए ब्राह्मण प्रति बोली, 'अब उठो तो ठीक रहेगा।' तो 'अब तक मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ, इसलिए जहां तृप्ति होगी वहां जाऊँगा।' यूं बोलता हुआ कपटी विप्र वहां से चला गया।

फिर वह बालसाधू का रुप धरकर रुक्मिणी के घर गया। रुक्मिणी ने नेत्र को आनन्दरुप चन्द्र जैसे उसको दूर से देखा, उसके लिए आसन लेने के लिए रुक्मिणी घर में गयी, तो वहां

पहले से रखे हुए कृष्ण के सिंहासन पर वह बैठ गया। जब रुक्मिणी आसन लेकर बाहर निकली, तब कृष्ण के सिंहासन पर उसे बैठा हुआ देखकर विस्मय से नेत्र फैलाते हुए बोली, 'कृष्ण या कृष्ण के पुत्र बिना इस सिंहासन पर बैठे हुए किसी भी पुरुष को देवता सहन नहीं कर सकते हैं।' उस कपटी साधू ने कहा, 'मेरे तप के प्रभाव से किसी भी देवता का पराक्रम मुझ पर नहीं चलता है।' फिर रुक्मिणी ने पूछा, 'आप किसलिए यहां पधारे हों ?' तो वह बोला, 'मैंने सोलह साल तक निराहार तप किया है और मैंने जन्म से ही माता के स्तन का पान नहीं किया है। अब मैं यहा उसके पारणे के लिए यहां आया हूँ, इसलिए जो योग्य लगे वह मुझे दीजिए।' रुक्मिणी बोली, 'हे मुनि ! मैंने चतुर्थ तप से लेकर वर्ष तक का तप सुना है, परंतु किसी जगह सोलह वर्ष का तप नहीं सुना है।' यह सुनकर बालमुनि बोले, 'आपको उसका क्या काम है ? यदि कुछ है और मुझे देने की इच्छा है तो दीजिए, नहीं तो मैं सत्यभामा के मंदिर में जाऊँगा।' रुक्मिणी बोली, 'मैंने उद्वेग के कारण आज कुछ पकाया नहीं है।' बालमुनि ने पूछा, 'आपको उद्वेग होने का कारण क्या हैं ?' रुक्मिणी ने कहा, ''मुझे पुत्र का वियोग हुआ है, उसके संगम की आशा में आज तक मैंने कुलदेवी का आराधन किया है। आखिरकार आज मैंने कुलदेवी को मस्तक का बलिदान देने की इच्छा से मेरी ग्रीवा पर प्रहार किया, तो देवी ने कहा, 'पुत्री ! साहस मत कर। तेरे आंगन में रहा आम्रवृक्ष जब अचानक खील उठेगा तब तेरा पुत्र आयेगा।' आज यह आम्रवृक्ष तो विकसित हुआ, परंतु मेरा पुत्र अभी आया नहीं है। इसलिए हे मुनिराज ! आप होरे देखिए, मेरे पुत्र का समागम कब होगा ?' बालमुनि बोला, 'जो खाली हाथ से पूछता है उसे होरे का फल नहीं मिलता।' रुक्मिणी बोली, 'तो कहिए मैं आपको क्या दूं ?' मुनि बोले, 'तप से मेरा उदर दुर्बल हो गया है, इसलिए मुझे क्षीरभोजन दीजिए।' फिर रुक्मिणी खीर बनाने के द्रव्य की खोज करने के लिए तत्पर हुई, उस समय साधू ने दुबारा कहा, 'मैं बहुत भूखा हूँ, इसलिए जो कुछ द्रव्य हो वह लेकर उसकी खीर बना दीजिए।' फिर रुक्मिणी पहले तैयार करवाए हुए मोदक की खीर बनाने लगी, परंतु उस मुनि के विद्याप्रभाव से अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई। जब रुक्मिणी को अति खेद पायी हुई देखी तब उस मुनि ने कहा, 'यदि खीर पका सको ऐसा न हो तो इस मोदक से ही मेरी क्षुधा शांत करो।' रुक्मिणी बोली, 'हे भगवन ! यह मोदक कृष्ण के सिवा अन्य किसिको पच सके ऐसे नहीं हैं। इसलिए वह तुम्हें देकर मैं ऋषिहत्या नहीं करुंगी।' मुनि बोला, 'तपस्या के प्रभाव से मुझे कुछ भी दुर्जर (न पच सके ऐसा) नहीं है।' फिर रुक्मिणी शंकित चित्त से उसे एक-एक मोदक देने लगी। ज्यों ज्यों वह देने लगी त्यों त्यों मुनि जल्दी जल्दी खाते गये, तो वह चकित होकर बोली, 'महर्षि ! आप तो बड़े बलवान लगते हो।'

यहां सत्यभामा 'रुडु बुडु' मंत्र जप रहीं थी। वहां बागबान पुरुषों ने आकर कहा, 'स्वामिनी ! किसी पुरुष ने आकर हमारा उद्यान फलरहित कर दिया है।' किसिने आकर बताया कि 'घास की दुकानों मे से घास खतम करवा दिया है।' किसिने आकर जाहिर किया कि 'उत्तम जलाशय मात्र निर्जल कर दिए हैं' और किसिने आकर कहा कि 'भानुक कुमार को अश्व पर से किसिने गिरा दिया है।' यह सुनकर सत्यभामा ने दासी को कहा कि 'अरे ! वह ब्राह्मण कहां है ?' तो दासियों ने जो घटना घटी थी वह यथार्थ कह सुनायी। फिर खेद पाकर भी अमर्ष धरनेवाली सत्यभामा ने केश लाने के लिए हाथ में पात्र देकर दासियों को रुक्मिणी के पास भेजा। उन्होंने आकर रुक्मिणी को कहा, 'हे मानिनी ! आपके केश शीघ्र हमें दीजिए, हमारी स्वामिनी सत्यभामा ऐसी आज्ञा देती है।' यह सुनकर उस कपटी साधू ने उन दासियों के ही तथा सत्यभामा के पहले मुंडे हुए केशों से पात्र भर देकर सत्यभामा के पास भेजा। सत्यभामा ने उन दासियों को केशरहित देखकर पूछा कि 'यह क्या ?' तो दासियां बोली कि 'क्या आप नहीं जानती कि जैसी स्वामिनी होती है वैसा ही परिवार होता है ?' फिर भ्रमित बनी हुई सत्यभामा ने कुछ नापित लोगों को रुक्मिणी के घर भेजा तो साधू ने उनके सिर पर की त्वचा भी छेदीत हो जाय त्यों विद्या द्वारा मुंडन कर निकाल दिया। उन नापितों को मुंडा हुआ देखकर सत्यभामा ने क्रोध से कृष्ण के पास आकर कहा, 'स्वामिन् ! आप रुक्मिणी के केश दिलाने के प्रतिभू बने हो, इसलिए उसके अनुसार मुझे आप उसके केश दिलवाइए, और उस कार्य के लिए आप स्वयं जाकर रुक्मिणी के मस्तक को मुंडित कराइए।' हरि हँसते हँसते बोले, 'तुम भी मुंडति तो हुई हो।' सत्यभामा बोली, 'इस समय मजाक करना छोड़ो और उसके केश मुझे आज ही दिलवाओ।' फिर कृष्ण ने उस कार्य के लिए बलभद्र को सत्यभामा के साथ रुक्मिणी के घर भेजा। वहां प्रद्युम्न ने विद्या से कृष्ण का रुप धरा तो उनको वहां देखकर राम लज्जा पाकर वापस मुड़े। पूर्व स्थान पर आये तो वहां भी कृष्ण को देखकर वे बोले कि 'आप क्यों मेरा उपहास करते हो ? आपने मुझे केश लाने लिए वहाँ भेजा और आप स्वयं ही वहां आये, और फिर यहां भी चले आये, जिससे आपने सत्यभामा और मुझे - हम दोनों को एक साथ शरमा दिया।' कृष्ण ने सौगंध खाकर कहा कि 'मैं वहां नहीं आया था।' ऐसा कहने पर भी 'यह सब आपकी ही माया है' यूं बोलती हुई सत्यभामा रुठकर अपने महल में चली गयी। फिर उसे मनाने के लिए हरि उसके घर गये।

यहां नारद ने रुक्मिणी के पास आकर कहा कि 'यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न है।' तो तत्काल माता के चिरकाल के वियोगरुपी दुख के अंधकार को टालने में सूर्य समान प्रद्युम्न अपना देव जैसा रुप प्रकट करके माता के चरणों में गिरा। रुक्मिणी के स्तन में से दूध की धारा चली,

तत्काल उसने पुत्र को आलिंगन दिया और नेत्रों में अश्रु लाकर वह बार बार पुत्र के मस्तक पर चुंबन करने लगी। फिर प्रद्युम्न ने कहा, 'माता ! मैं मेरे पिता को कुछ आश्चर्य दिखाऊं तब तक आप मेरी पहचान मत कराना।' हर्ष में व्यग्र बनी रुक्मिणी ने कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। फिर प्रद्युम्न रुक्मिणी को एक मायारथ में बिठाकर चला, और शंख फूंककर लोगों को बताया कि 'मैं इस रुक्मिणी का हरण करता हूं। यदि कृष्ण बलवान हो तो उसकी रक्षा करें।' यह सुनकर 'यह कौन दुर्बुद्धि मरना चाहता है' यूं बोलते हुए कृष्ण हाथ में धनुष्य लेकर सैन्य सहित उसके पीछे दौडे। प्रद्युम्न ने विद्या के सामर्थ्य से धनुष तोड़कर ज्यों हाथी को दांत रहित कर दे त्यों तत्काल कृष्ण को आयुधविहीन कर दिया। उस समय हरि ने खेद पाया था कि उतने मे उनकी दाहिनी भुजा फड़क उठी, तो उन्होंने यह बात राम को बतायी। उस समय नारद ने आकर कहा, 'कृष्ण ! यह रुक्मिणी सहित आपका ही पुत्र प्रद्युम्न है, इसलिए उसे ग्रहण करो और युद्ध की बात छोड़ दो।' तत्काल प्रद्युम्न कृष्ण को शीश झुकाकर राम के चरणों में गिरा। उन्होंने गाढ़ आलिंगन देकर बार बार उसके मस्तक पर चुंबन किया। मानो युवावस्था सहित ही जन्मा हो ऐसा और देवी की लीला को धारण करते हुए प्रद्युम्न को अपनी गोद में बिठाकर कृष्ण ने लोगों के मन में कौतुक उत्पन्न करते हुए रुक्मिणी के साथ इन्द्र की तरह उस समय द्वार पर रचे हुए नवीन तोरणों से भ्रूकुटी का विभ्रम कराती हुई द्वारिका में प्रवेश किया।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि रुक्मिण्यादिपरिणयनपांडवद्रौपदिस्वयंवरप्रद्युम्नचरित्रवर्णनो नामः षष्ठः सर्गः।।६।।

सातवाँ सर्ग

शांब तथा प्रद्युम्न का विवाह और जरासंध का वध

पूर्वोक्त रुप में द्वारिका में प्रद्युम्न के आने का महोत्सव चल रहा था, उस समय दुर्योधन राजा ने आकर कृष्ण-वासुदेव को विज्ञप्ति की, 'स्वामिन् ! मेरी पुत्री और आपकी पुत्रवधू को इस समय कोई हर गया है। इसलिए उसकी खोज कराओ तो आपके पुत्र भानुक के साथ उसका ब्याह कराये।' कृष्ण बोले, 'मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। यदि सर्वज्ञ होता तो किसिने हरण किए हुए रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न को ही मैं क्यों न जान पाया ?' उस समय प्रद्युम्न ने कहा, 'मैं प्रज्ञप्तिविद्या से यह बात जानकर उसे यहां ले आऊंगा।' ऐसा कहकर स्वयंवरा होकर आयी हुई उस कन्या को वहां ले आया। कृष्ण वह कन्या प्रद्युम्न को देने लगे, परंतु वह 'यह तो मेरे छोटे भाई की स्त्री होनेवाली होने से वधू समान है' यूं कहकर प्रद्युम्न ने उसे ग्रहण नहीं किया, और भानुक के साथ उसका ब्याह कराया। इसके बाद प्रद्युम्न की इच्छा न होने पर भी कृष्ण ने बड़े उत्सव से खेचरों और राजाओं की अनेक कन्याओं का प्रद्युम्न से ब्याह करवाया। फिर रुक्मिणी और कृष्ण ने प्रद्युम्न को ले आने में उपकारी नारद की पूजा करके उन्हें बिदा किए।

एक बार प्रद्युम्न की बड़ी समृद्धि देखकर और उसकी श्लाघा सुनकर सत्यभामा कोपगृह[1] में जाकर पुराने मांचे[2] पर सो गयी। वहां कृष्ण आये तो उसे देखकर संभ्रम से बोल पड़े, 'हे सुन्दरी ! किसने तुम्हारा अपमान किया है कि जिससे तुम यूं खेद करती हो ?' सत्यभामा बोली, 'मेरा किसीने अपमान नहीं किया, लेकिन यदि मुझे प्रद्युम्न जैसा पुत्र नहीं होगा तो मैं अवश्य मृत्यु पाऊंगी।' उसका आग्रह जानकर कृष्ण ने नैगमेषी देव को लक्षित करके अष्टमभक्त युक्त पौषधव्रत ग्रहण किया। नैगमेषी प्रकट होकर बोले कि ''मैं क्या कार्य करुं ?'' कृष्ण ने कहा, 'सत्यभामा को प्रद्युम्न जैसा पुत्र दीजिए।' नैगमेषी बोला, 'जिस स्त्री से आपको वैसे पुत्र की इच्छा हो उस स्त्री को यह हार पहनाकर सेवन करना, जिससे उसे इच्छित पुत्र होगा।' इस प्रकार कहकर हार देकर नैगमेषी देव अंतर्धान हो गये। कृष्ण वासुदेव ने हर्ष पाकर सत्यभामा को शय्यास्थान पर आने को कहलवाया। प्रज्ञप्तिविद्या ने यह बात प्रद्युम्न को बतायी, तो उसने अपनी माता को कहा कि 'मेरे जैसे पुत्र की इच्छा से वह हार आप जाकर ले लो।' रुक्मिणी बोली, 'वत्स ! तेरे जैसे एक पुत्र से मैं कृतार्थ हूँ, क्योंकि स्त्रीरत्न को बार बार प्रसव नहीं होता।' प्रद्युम्न ने कहा, 'तब आपको सब सपत्नियों में कौनसी सपत्नी प्रिय है वह बताओ, जिससे मैं उसे ऐसा हो जाय ऐसा करुं ?' रुक्मिणी बोलीं, 'वत्स ! जब मैं तेरे वियोग में दुःखी थी, उस समय मेरी सपत्नी जांबवती मेरे समान दुःखी होकर मेरे दुःख में हिस्सा बटानेवाली बनी

१. रुठनेवाले को सोने की जगह। २. पुरानी खाट।

थीं इसलिए उसे तेरे जैसा पुत्र हो।' ऐसा कहकर रुक्मिणी ने जांबवती को बुलवाया, तो प्रद्युम्न ने विद्या से उसका रुप सत्यभामा जैसा कर दिया। फिर रुक्मिणी ने उसे समझाकर हरि के मंदिर में भेजा। सायंकाल पर कृष्ण ने आकर उसे हार देकर भोगा। उसी समय महाशुक्र देवलोक में से च्यूत होकर कैटभ का जीव सिंह के स्वप्न से सूचित होकर जांबवती के उदर में उत्पन्न हुआ। जांबवती हर्ष पाकर अपने स्थानक पर गई, इतने में असली सत्यभामा अपनी बारी लेने के लिए कृष्ण के मंदिर में आयी। उसे देखकर कृष्ण ने सोचा कि 'अहो ! स्त्रियों को भोग में कैसी अतृप्ति रहती है ! यह सत्यभामा अभी अभी यहां से गयी थी और फिर सत्वर यहां वापस आयी है। अथवा क्या किसी दूसरी स्त्री ने सत्यभामा का रुप लेकर मुझे छला होगा ? इसलिए जो बना हो वह ठीक, लेकिन इस स्त्री को रुठाना नहीं है' ऐसा सोचकर कृष्ण ने उसके साथ क्रीडा की। यह खबर प्रद्युम्न को मिलते ही उसने कृष्ण के क्रीडा के समय ही विश्व को क्षोभ करे ऐसी कृष्ण की भेरी बजायी। जिससे 'यह भेरी किसने बजायी ?' यूं क्षोभ पाकर कृष्ण ने पूछा, तो सेवकजनों ने कहा कि रुक्मिणी के कुमार प्रद्युम्न ने बजायी है। तो कृष्ण हास्य करके बोले, 'जरूर उसने ही अभी अभी सत्यभामा को छला है, क्योंकि शौक्य का पुत्र दस शौक्य जैसा होता है। इस भेरी के नांद से शायद भययुक्त मेरे सेवन से सत्यभामा को भीरु पुत्र होगा, परंतु भवितव्यता अन्यथा होती ही नहीं है।'

दूसरे दिन प्रातःकाल में कृष्ण रुक्मिणी के घर गये, वहां जांबवती को उस दिव्य हार से भूषित देखकर कृष्ण अनिमेष नेत्रों से उसके सामने देखने लगे। तो जांबवती बोली, 'स्वामिन ! क्या देखते हो ? मैं वही तुम्हारी पत्नी हूँ।' हरि बोले, 'देवी ! यह दिव्य हार कहां से ?' जांबवती बोली, 'आपके प्रसाद से, आपने ही दिया है, क्या आप आपके कार्य को भूल गये ?' उस समय जांबवती ने उसे आये हुए सिंह के सपने की बात कृष्ण को बतायी तो कृष्ण बोले, 'देवी ! तुम्हें प्रद्युम्न जैसा पुत्र होगा।' इस प्रकार कहकर कृष्ण स्वस्थान पर गये।

समय आने पर शेरनी की तरह जांबवती ने **शांब** नामक अतुल्य पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया। शांब के साथ ही सारथि को **दारुक** व सुबुद्धि सचिव को **जयसेन** नाम के पुत्र हुए। सत्यभामा को एक भानुक नाम का पुत्र था और दूसरा गर्भाधान अनुसार **भीरु** नाम का पुत्र हुआ। दूसरी अन्य कृष्ण की स्त्रियों को हाथी के बच्चों जैसे कइं पराक्रमी पुत्र हुए। शांब सचिव और सारथि पुत्रों के साथ क्रमशः बड़ा हुआ और बुद्धिमान होने से उसने लीलामात्र में सब कलाएं ग्रहण कर ली।

एक बार रुक्मिणी ने अपने भाई रुक्मि की **वैदर्भी** नामक पुत्री का अपने पुत्र प्रद्युम्न के साथ विवाह करने का कहने के लिए एक आदमी को भोजकट नगर भेजा। वहां जाकर उसने

रुक्मि राजा को प्रणाम करके कहा कि 'आपकी बहन रुक्मिणी देवी आपको कहलवाती है कि तुम्हारी पुत्री वैदर्भी मेरे पुत्र प्रद्युम्न के लिए दो। पूर्व मेरा व कृष्ण का उचित योग तो दैवयोग से बना था, पर अब इस प्रद्युम्न और वैदर्भी का संयोग तो आपसे ही बने।' उस आदमी के ऐसे वचन सुनकर पूर्व का बैर याद करके रुक्मि बोला कि 'मैं मेरी पुत्री चांडाल को दूं वह अच्छा, लेकिन कृष्णवासुदेव के कुल में दूं यह योग्य नहीं है।' दूत ने आकर रुक्मिणी को रुक्मि के कहे वचन यथार्थ कह सुनाये, जिसे भ्राता से अपमान पायी हुई रुक्मिणी रात्रि में कमल जैसी ग्लानि पा गयी। प्रद्युम्न ने उसे ऐसी देखकर पूछा कि 'माता ! आप क्यों खेद पाती हो ?' तो रुक्मिणी ने मन के दुःखरुप अपने भाई का वृत्तांत कह सुनाया। प्रद्युम्न बोला, 'हे माता ! आप खेद मत करना, यह मेरा मातुल साम वचन योग्य है ही नहीं, इसीलिए मेरे पिता ने पहले उसके ही योग्य काम किया था। अब मैं भी उसकी योग्यतानुसार करके उसकी पुत्री को ब्याहूंगा।' इस प्रकार कहकर शांब को साथ लेकर आकाशमार्ग से प्रद्युम्न भोजकट नगर गया। फिर दो में से एक ने किन्नर का और दूसरे ने चाण्डाल का रुप धरा और दोनों ने गान करते करते पूरे शहर में घूमकर मृग की तरह सब नजरजनों के मन हर लिए। यह खबर सुनकर रुक्मि राजा ने मधुर स्वरवाले गांधर्व और चाण्डाल को अपने पास बुलाया और अपने उत्संग में अपनी पुत्री को बिठाकर उन दोनों से गान करवाया। उनका गीत सुनकर हर्ष पाये परिवार सहित रुक्मि ने उनको बहुत द्रव्य दिया और पूछा कि 'आप कहां से आये हो ?' वे बोले, 'हम स्वर्ग से द्वारिका में आये हैं, क्योंकि कृष्ण वासुदेव के लिए वह नगरी स्वर्गवासी देवों ने रची है।' उस समय वैदर्भी हर्ष पाकर बोली, 'वहां कृष्ण को रुक्मिणी का प्रद्युम्न नाम का पुत्र है, उसे आप जानते हो ?' शांब बोला, 'रुप में कामदेव जैसा और पृथ्वी के अलंकारभूत तिलक समान उस महापराक्रमी प्रद्युम्नकुमार को कौन नहीं जानता ?' यह सुनकर वैदर्भी रागगर्भित उत्कंठावाली बन गयीं। उस समय राजा का एक उन्मत हाथी खूंटा उखाडकर, मुक्त होकर नगर में दौड़ने लगा। बेसमय हल्ला मचाते हुए और पूरे नगर में उपद्रव करते हुए उस हाथी को कोई भी महावत वश नहीं कर पाया। उस समय रुक्मि राजा ने पटह बजवाकर ऐसी आघोषणा कराई कि 'जो कोई इस हाथी को वश करेगा उसे मैं इच्छित वस्तु दूंगा।' किसिने भी उस पटह को नहीं स्वीकारा तो इन दोनों वीरों ने पटह स्वीकारा व गीत से ही उस उन्मत्त हाथी को स्तंभित कर दिया। फिर उन दोनों ने हाथी पर आरुढ़ होकर उसे बंधनस्थान में लाकर बांध दिया। नगरजनों को आश्चर्य दिलाते हुए उन दोनों को राजा ने हर्षपूर्वक बुलवाया। फिर कहा कि 'आपको जो चाहिए वह मांग लो।' तो उन्होंने कहा कि 'हमारे पास कोई खाना पकानेवाली नहीं है, इसलिए इस वैदर्भी को दीजिए।' यह बात सुनकर रुक्मि राजा ने क्रोधायमान होकर उन्हें नगर बाहर कर दिया।

नगर के बाहर जाने के बाद प्रद्युम्न ने शांब को कहा, 'भाई ! रुक्मिणी दुःखी होती होगी, इसलिए वैदर्भी को ब्याहने में विलम्ब करना ठीक नहीं है।' इस प्रकार बाते करते हुए उज्ज्वल रात्रि हो गई। जब सब लोग सो गये तब प्रद्युम्न अपनी विद्या से जहां वैदर्भी सोयी हुयी थीं उस जगह गया। उसने वहां रुक्मिणी का नकली लेख बनाकर वैदर्भी को दिया। वह पढ़कर वैदर्भी बोली, 'कहो, आपको क्या दूं ?' प्रद्युम्न ने कहा, 'सुलोचने ! मुझे तुम्हारा देह ही दे दो। हे सुन्दरी ! जिसके लिए रुक्मिणी देवी ने तुम्हारी माँग की थी वह प्रद्युम्न मैं स्वयं ही हूँ।' 'अहो ! दैवयोग से विधि की घटना योग्य घटी।' यूं बोलते हुए वैदर्भी ने वह वचन स्वीकारा। फिर तुरंत ही विद्या-बल से उत्पन्न की गई अग्नि की साक्षी में मंगल-कंकणवाली व श्वेत रेशमी वस्त्र को धारण करनेवाली उस बाला से प्रद्युम्न ब्याहा। और कृष्ण के कुमार ने उसी रात्रि में उसके साथ विविध प्रकार की क्रीडा की। अवशेष रात्रि रही तो वह बोला, 'प्रिये ! मैं मेरे भाई शांब के पास जाता हूँ, यदि तुझे इस बारे में तेरे माता-पिता या परिवार पूछे तो तू कुछ भी उत्तर देना मत। यदि वे तुझे उपद्रव करेंगे तो मैंने तेरे शरीर की रक्षा हेतु व्यवस्था की है।' इस प्रकार कहकर प्रद्युम्न चला गया।

वैदर्भी अति जागरण से और अति श्रम से श्रांत होकर सो गयी, वह प्रातःकाल में भी नहीं जागी। समय होने पर उसकी धावमाता वहां आयी, तो वैदर्भी के कर में मंगल-कंकण आदि विवाह के चिह्न देखकर उसे शक हुआ, उसने तत्काल वैदर्भी को जगाकर पूछा, परंतु वैदर्भी ने कुछ भी उत्तर न दिया। स्वयं अपराध में न आ जाय इसलिए भयविह्वल होकर यह बात रुक्मि राजा के पास जाकर उसने कह सुनायी। राजा-रानी ने आकर वैदर्भी को पूछा, परंतु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया, लेकिन विवाह और संभोग के चिह्न उसके शरीर पर स्पष्ट रुप में दिखाई दिए। रुक्मि ने सोचा कि 'अवश्य इस कन्या को दिए बिना ही किसी अधम पुरुष ने स्वैच्छा से उसके साथ क्रीडा की है। इसलिए अब इस अधम कन्या को तो उन दोनों चाण्डालों को ही देना योग्य है।' ऐसा विचार करके राजा ने क्रोध से छड़ीदार द्वारा उन दोनों चाण्डालों को बुलवाया और कहा कि 'इस कन्या को ग्रहण करो और तुम ऐसे स्थान पर चले जाओ, कि जिससे मैं तुम्हें दुबारा देखूं नहीं।' इस प्रकार कहकर क्रोध से रुक्मि ने उन्हें वैदर्भी देदी। उन्होंने वैदर्भी को कहा कि 'हे राजपुत्री ! आप हमारे घर रहकर जल भरने का या चर्म और रज्जू वगैरह बेचने का काम करोगी ?' परमार्थ जाननेवाली वैदर्भी बोली, 'जैसा दैव करायेगा वैसा मैं अवश्य करुंगी, क्योंकि दैव का शासन दुर्लध्य हैं।' फिर वे अति धैर्यता से वैदर्भी को लेकर वहां से अन्यत्र चले गये।

रुक्मि राजा सभा में आकर अपने कार्य से हुए पश्चात्ताप से रुदन करने लगा। 'अरे !

वत्स वैदर्भी ! कहां गयी ? तेरा योग्य संयोग नहीं हुआ। हे नंदने ! मैंने तुझे गाय की भाँति चाण्डाल के द्वार दी है। कोप ही सचमुच चाण्डाल है, जिससे मेरे हितेच्छु वर्ग ने भी मेरे द्वारा यह पुत्री चाण्डाल को दिलवायी। प्रद्युम्न के लिए रुक्मिणी बहन ने मेरी पुत्री की मांग की, फिर भी मेंने क्रोधांध बनकर उसे नहीं दी, इसलिए मंदबुद्धिवाले मुझे धिक्कार है।' इस प्रकार राजा रुदन कर रहा था उतने में उसने वाजिंत्रो का गंभीर नाद सुना। तो 'यह नाद कहां से आ रहा है ?' यूं उसने सेवकों को पूछा। राजपुरुषों ने शीघ्र ही जांच करके आकर कहा कि 'राजेन्द्र ! प्रद्युम्न और शांब वैदर्भी के साथ हमारे नगर के बाहर एक विमान जैसे प्रासाद मे देवता समान बैठे हैं, चारण उनकी स्तुति कर रहे हैं, और वे उत्तम वाजिंत्रों से मनोहर संगीत करा रहे हैं। उसका ही नाद यहां सुनाई दे रहा है।' फिर रुक्मि राजा ने हर्ष पाकर उन्हें अपने घर बुलवाया और अपने भानजे प्रद्युम्न की जमाइपन के स्नेह से विशिष्ट पूजा की। फिर रुक्मि राजा से आज्ञा लेकर वैदर्भी और शांब को लेकर प्रद्युम्न द्वारिका मे आया, जहां वह रुक्मिणी के नेत्रों को उत्सवरुप बना। नवयुवा प्रद्युम्न नवयुवा अभिनव वैदर्भी के साथ सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए सुख से रहने लगे, और हेमांगद राजा की वैश्या से हुई **सुहरिण्या** नामक पुत्री जो रुप में अप्सरा समान थी, उसे ब्याहकर शांब भी क्रीडा करते हुए सुख से रहने लगा।

शांब हंमेशा क्रीडा करते करते भीरुक को मारता था और द्युत में भी बहुत धन हरवाकर दिलवा देता था। एक दिन ऐसा होने पर भीरुक रोते हुए सत्यभामा के पास आया, तो सत्यभामा ने शांब का वह आचरण कृष्ण को बताया। कृष्ण ने जांबवती को वह बात कही, तो जांबवती बोली, 'हे स्वामिन् ! मैंने अब तक शांब का कोई बूरा आचरण एक बार भी नहीं सुना है और आप यह क्या कह रहे हो ?' कृष्ण ने कहा कि 'शेरनी तो अपने पुत्र को सौम्य और भद्रिक ही मानती है, परंतु उसके बालक की क्रीडा तो हाथी ही जानते है, इसलिए तुझे देखना हो तो चल, मैं तुझे तेरे पुत्र की चेष्टा दिखलाऊं।' फिर कृष्ण ने आहीर का रुप धरा और जांबवती ने आहीर की स्त्री का रुप धरा। दोनों तक्र (छास) बेचने हेतु द्वारिका में घुसे, तो उनको स्वैच्छाचारी शांबकुमार ने देखा। शांब ने अहिराइन को कहा, 'अरे बाई ! यहां आ, मुझे तुम्हारा गोरस लेना है।' यह सुनकर आहिराइन शांब के पीछे गयी। आहीर भी पीछे पीछे गया। आगे चलते हुए शांब एक देवालय में घुसा और उसने उस आहिराइन को अन्दर आने के लिए कहा। आहिराइन बोली, 'मैं अन्दर नहीं आऊंगी, मुझे यहीं पर मूल्य देदो।' 'यहां अवश्य घुसना पड़ेगा।' यूं कहकर लता को हाथी की भाँति शांब उसे हाथ पकड़कर खींचने लगा, तो 'अरे ! मेरी स्त्री को क्यों पकड़ता है ?' यूं बोलते हुए वह आहीर मारने दौड़ा, और फिर तत्काल कृष्ण व जांबवती प्रकट हुए। अपने माता-पिता को देखकर शांब मुख छुपाकर भाग गया। हरि ने

इस प्रकार शांब की कुचेष्टा जांबवती को दिखाई। दूसरे दिन कृष्ण ने जबरन शांब को बुलवाया तब वह एक काष्ट का खूंटा घड़ते हुए वहां आया। कृष्ण ने खूंटा घड़ने का कारण पूछा, तब वह बोला, 'जो कल की मेरी बात करेगा उसके मुख में यह खूंटा डालना है, इसलिए मैं यह खूंटा घड़ रहा हूँ।' यह सुनकर 'यह शांब निर्लज्ज और कामवश होकर ज्यों त्यों स्वैच्छापूर्वक आचरण करता है' ऐसा मानकर कृष्ण ने उसे नगर बाहर निकाल दिया।

जब शांब नगर के बाहर जाने लगा तो उस समय प्रद्युम्न ने अंतर में स्नेह धरकर पूर्वजन्म के बंधुरुपी शांब को प्रज्ञप्तिविद्या दी। फिर प्रद्युम्न हंमेशा भीरुक को सताने लगा। त एक बार सत्यभामा ने कहा कि 'अरे दुर्मति ! तू भी शांब की तरह नगरी से बाहर क्यों नहीं निकल जाता ?' प्रद्युम्न ने कहा, 'मैं बाहर निकलकर कहां जाऊँ ?' तब सत्यभामा ने कहा कि 'स्मशान में जा।' वह बोला, 'वापस कब आऊँ ?' सत्यभामा क्रोध करके बोली, 'जब मैं शांब का हाथ पकड़कर गाँव में ले आऊं तब तू भी आ जाना।' 'जैसी माता की आज्ञा' यूं कहकर प्रद्युम्न तुरंत ही स्मशान में गया। शांब भी घूमते घूमते वहां आया। फिर दोनों भाइ स्मशानभूमि में रहे और नगरी के जो भी मुर्दे आते, उनका दहन अर्थियों से बड़ा कर लेने के बाद ही दहन करने देते थे।

यहां सत्यभामा ने भीरुक के लिए बहुत प्रयत्न के बाद निन्यानवें कन्याएं प्राप्त की। फिर सौं पूरी करने के लिए एक कन्या की इच्छा करने लगी। यह खबर प्रज्ञप्तिविद्या से जानकर प्रद्युम्न ने विद्याबल से एक बड़ी सेना रची और स्वयं जितशत्रु नाम का राजा बना। शांब देवकन्या जैसा रुप धरकर उसकी कन्या बना। एक बार सखियों के साथ लिपटकर क्रीडा करती हुई उस कन्या को भीरुक की धात्री माता ने देखा, तो वह बात धात्री ने सत्यभामा को कही। सत्यभामा ने दूत भेजकर जितशत्रु राजा से उसकी माँग की। जितशत्रु राजा ने दूत को कहा, 'यदि सत्यभामा हाथ पकड़कर मेरी कन्या को द्वारिका नगरी में ले जाय और विवाह के समय भीरुक के हाथ के ऊपर मेरी कन्या का हाथ रखे तो मैं मेरी कन्या उसे दूं।' दूत ने आकर वह सर्व बात सत्यभामा को कही। तो वैसा करने का स्वीकार करके वह तुरंत ही जितशत्रु राजा की छावनी में आयी। उस समय शांब ने प्रज्ञप्ति विद्या को कहा कि 'यह सत्यभामा और उसका परिजन मुझे कन्यारुप में देखे और अन्य नगरजन शांबरुप में देखे यूं कर।' तो प्रज्ञप्ति ने वैसा किया। फिर सत्यभामा ने शांब को दक्षिण हाथ से पकड़कर द्वारिका में प्रवेश किया। उसे देखकर नगर की स्त्रियां कहने लगीं- 'अहो ! देखो, कैसा आश्चर्य ! सत्यभामा भीरुक के विवाहोत्सव में शांब को हाथ पकड़कर ले आयी है।'

शांब सत्यभामा के महल में गया, वहां उसने कपटबुद्धि से पाणिग्रहण के समय भीरुक

के दक्षिण कर पर अपना वाम कर रखा और एक कम सौं कन्याओं के बाँये हाथ पर अपना दाहिना हाथ रखा। इस प्रकार शांब ने विधिपूर्वक अग्नि की प्रदक्षिणा की। कन्याएं अति रुपवान् शांब को देखकर बोली कि 'अरे कुमार ! सचमुच के पुण्योदय से विधि ने प्राप्त कराये हुए कामदेव जैसे आप पतिरुप में प्राप्त हुए हो।' उनके साथ विवाह हो जाने के बाद शांब वासगृह में गया। भीरुक भी शांब के साथ वहां आ रहा था, तो शांब ने भ्रूकुटी चढ़ाकर डराया, जिससे वह भाग गया। उसने आकर सत्यभामा को यह बात कही, पर सत्यभामा ने मानी नहीं, फिर स्वयं वहां आकर देखा, तो शांबकुमार को वहां बैठे हुए देखा। शांब ने सौतेली माँ को प्रणाम किए। सत्यभामा कोप करके बोली, 'अरे निर्लज्ज ! तुझे यहां कौन लाया है ?' शांब बोला, 'माता ! आप ही मुझे हाथ पकड़कर लायी हो और इन निन्यानवें कन्याओं के साथ मेरा विवाह भी आपने ही कराया है। इसके बारे में द्वारिका के सब लोग मध्यस्थ (साक्षी) हैं।' इस प्रकार कहा, तो सत्यभामा वहां आ रहे नगरजनों को पूछने लगीं। उन्होंने कहा, 'देवी ! कोप मत कीजिए। हमारी नजरों समक्ष ही शांब का हाथ पकड़कर आप द्वारिका में उसे लायी हो और उसका ही इन कन्याओं के साथ आपने विवाह कराया है।' इस प्रकार की लोगों की गवाही सुनकर सत्यभामा ''अरे तू कपटी, कपटियों का पुत्र, कपटी का कनिष्ठ भाई और कपटी माता का पुत्र है, इसलिए तू मुझे कन्यारुप में छल गया है।'' इस प्रकार कहकर वह रोष से चली गयी। फिर कृष्ण ने सब लोगों के समक्ष ईन कन्याओं का शांब के साथ ब्याह कराया और जांबवती ने बड़ा उत्सव किया।

फिर शांब वसुदेव को नमस्कार करने गया। वहां उसने कहा, 'तात ! आप चिरकाल तक पृथ्वी पर घूमकर कइं स्त्रियों से ब्याहे थे और मैं तो पृथ्वी पर घूमे बिना एक साथ सौं कन्याओ से ब्याहा हूँ, इसलिए मुझ में और आप में यह प्रत्यक्ष अंतर है।' वसुदेव बोले, 'अरे वत्स ! तू कुंए के मेंढ़क जैसा है। पिता ने नगर बाहर निकाला, तो भी तू वापस आया, इसलिए मान-वर्जित ऐसे तुझको धिक्कार है ! और मैं तो भाई ने किंचित् अपमान किया तो वीरवृत्ति से नगर में से निकलकर सब जगह अस्खलितपन से घूमकर अनेक कन्याओं को ब्याहा, और बाद में अवसर पर मिले उन्हीं बंधुओं ने आदरपूर्वक प्रार्थना की तो मैं वापस घर आया हूँ, तेरी तरह अपने आप नहीं आया हूँ।' उनका ऐसा उत्तर सुनकर, अपने पूज्य वसुदेव का स्वयं ने प्रथम वाक्यों से तिरस्कार किया है यूं जानकर शांब अंजलि जोड़कर प्रणाम करके पितामह प्रति बोला, 'हे पितामह ! मैंने अज्ञानता और बालचेष्टा से कहा है तो वह क्षमा करें, क्योंकि आप तो गुणो द्वारा लोकोत्तर हैं।'

एक बार कुछ धनाढ्य वणिक बड़े किराने लेकर यवनद्वीप से जलमार्ग द्वारा वहां आये।

उन्होंने अन्य किराने द्वारिका में बेचे, परंतु रत्नकंबल नहीं बेचे। विशेष लाभ की इच्छा से वे राजगृहीपुर गये। वहां के व्यापारी अगुए होकर उन्हे मगधेश्वर की पुत्री जीवयशा के घर ले गये। वे रत्नकंबल उन्होंने जीवयशा को दिखाएं कि जो उष्णकाल में शीत, शीतकाल में उष्ण और बड़े कोमल रोमवाले थें। जीवयशा ने उन रत्नकंबलों का मूल्य आधा कहा तो वे प्रबलता (जोर) से बोले, 'अरे ! यूं अर्धमूल्य में ही देने होते तो हम द्वारिका छोड़कर यहां किसलिए आये हैं ?' जीवयशा ने पूछा, 'वह द्वारिकानगरी कैसी है और वहां का राजा कौन हैं ?' व्यापारी बोले, 'समुद्र द्वारा दिए गये स्थान पर द्वारिकानगरी देवताओ ने रची है, वहां देवकी और वसुदेव के पुत्र कृष्ण राजा हैं।' यह सुनकर जीवयशा रुदन करते हुए बोली, 'अरे ! क्या आज तक मेरे स्वामी का संहार करनेवाला वह कृष्ण जीवीत है और पृथ्वी पर राज्य करता है ?' उसे देखकर जरासंध ने रुदन करने का कारण पूछा, तो उसने हाथ जोड़कर कृष्ण का सर्व वृत्तांत सुनाया और कहा कि 'पिताजी ! मुझे आज ही आज्ञा दीजिए, मैं अग्नि में प्रवेश करके मेरी प्रतिज्ञा पूरी करुंगी। अब मैं नहीं जीऊँगी।' जरासंध बोला, 'हे पुत्री ! तुं रुदन मत कर। मैं उस कंस के शत्रु कृष्ण की माताओं, बहनों और सखियों को रुलाउंगा।'

'अब यह पृथ्वी यादव विहीन हो जाय' यूं कहकर सचिवों के रोकने पर भी जरासंध ने प्रयाण करने के लिए सेना को आज्ञा दी। महापराक्रमी सहदेव वगैरह पुत्रों और पराक्रमियों में मुख्य चेदी देश के राजा शिशुपाल वगैरह उसके पीछे तैयार हुए। महापराक्रमी राजा हिरण्यनाभ, संग्रामधुरंधर और कौरव्य ऐसा दुर्योधन व अन्य कइं राजा तथा हजारों सामंत, प्रवाह ज्यों सागर में मिले त्यों जरासंध को आकर मिले। जिस समय जरासंध चला, उस समय उसके मस्तक पर से मुकुट गिर गया, उरःस्थल से हार टूट गया, वस्त्र के सिरे मे पैर अटक गया, उसके आगे छींक हुई, वाम नेत्र फड़का, उसके हाथी ने समकाल पर विष्टा-मूत्र किए, पवन प्रतिकूल चला और आकाश में गीध पक्षी उडने लगे। इस प्रकार आप्तजन की तरह अशुभ निमित्तों और असगुनों ने उसे अशुभ परिणाम दिखाया तो भी वह थोड़ा सा भी रुका नहीं। सैन्य से उडी हुई धूल की तरह सैन्य के कोलाहल से दिशाओं को भरता और दिग्गज की तरह उद्भ्रांतपन से पृथ्वी को कंपाता हुआ क्रूर प्रतिज्ञावाला जरासंध गज पर आरुढ़ होकर बड़े सैन्य के साथ पश्चिम दिशा की ओर चला।

जरासंध को आता जानकर कलिकौतुकी नारद और अन्य गुप्तचरों ने सत्वर आकर कृष्ण को यह खबर दी। वह सुनकर अग्नि जैसे तेजस्वी कृष्ण भी भंभानादपूर्वक प्रयाण करने के लिए तैयार हुए। उस समय ज्यों सुघोषा घण्टे के नाद से सौधर्म देवलोक के देवता एकत्रित हो जाय त्यों भेरी के नाद से सब यादव और राजा एकत्रित हुए। इतने में समुद्र जैसे दुर्धर समुद्रविजय

सर्व प्रकार की तैयारी करके आये, उनके साथ उनके महानेमि, सत्यनेमि, दृढनेमि, सुनेमि, अरिष्टनेमि भगवान, जयसेन, महाजय, तेजसेन, जय, मेध, चित्रक, गौतम, श्वफल्क, शिवनंद और विश्वक्सेन नाम के महारथी पुत्र भी आए। शत्रुओं के अक्षोभ्य ऐसे समुद्रविजय के अनुज बंधु अक्षोभ्य व युद्धप्रवीण ऐसे उद्धव, धव, शुंभित, महोदधि, अंभोनिधि, जलनिधि, वामनदेव और दृढ़व्रत नाम के आठ पुत्र आये। अक्षोभ्य से छोटे स्तिमित और उसके ऊर्मिमान, वसुमान, वीर, पाताल और स्थिर नाम के पांच पुत्र आये। सागर और उसके निष्कंप, कंपन, लक्ष्मीवान, केशरी, श्रीमान और युगांत नाम के छः पुत्र आये। हिमवान और उसके विद्युत्प्रभ, गंधमादन और माल्यवान नामक तीन पुत्र आये। अचल और उसके महेन्द्र, मलय, सहय, गिरि, शैल, नग और बल नाम के सात पराक्रमी पुत्र आये। धरण और उसके कर्कोटक, धनंजय, विश्वरुप, श्वेतमुख और वासुकि नाम के पांच पुत्र आये। पूरण और उसके दुःपुर, दुर्मुख, दुर्दश और दुर्धर नाम के चार पुत्र आये। अभिचन्द्र और उसके चन्द्र, शशांक, चन्द्राभ, शशी, सोम और अमृतप्रभ नाम के छः पुत्र आये, दसों दर्शाह में सबसे छोटे वसुदेव, जो पराक्रम में देवों के भी देव समान थे वे भी आये और उनके कइं पराक्रमी पुत्र भी साथ आये। उनके नाम इस प्रकार - विजयसेना के अक्रूर व क्रूर नाम के दो पुत्र, श्यामा के ज्वलन व अशनिवेग नाम के दो पुत्र, गंधर्वसेना के मानो मूर्तिमंत अग्नि हो ऐसे वायुवेग, अमितगति व महेन्द्रगति नाम के तीन पुत्र, सचिवपुत्री पद्मावती के महातेजवान सिद्धार्थ, दारुक व सुदारु नाम के तीन पराक्रमी पुत्र, नीलयशा के सिंह और मतंगज नाम के दो पुत्र, सोमश्री के नारद और मरुदेव नाम के दो पुत्र, मितश्री का सुमित्र नामक पुत्र, कपिला का कपिल नाम के पुत्र, पद्मावती के पद्म और कुमुद नाम के दो पुत्र, अश्वसेना का अश्वसेन नाम पुत्र, पुंड्रा का पुंड्र नामक पुत्र, रत्नवती का रत्नगर्भ और वज्रबाहु नाम के दो बाहुबली पुत्र, सोम की पुत्री सोमश्री के चन्द्रकांत और शशिप्रभ नाम के दो पुत्र, वेगवती के वेगवान और वायुवेग नाम के दो पुत्र, मदनवेगा के अनाधृष्टि, दृढ़मुष्टि और हिममुष्टि नाम के तीन जगप्रसिद्ध पराक्रमवाले पुत्र, बंधुमती के बंधुषेण और सिंहसेन नाम के दो पुत्र, प्रियंगुसुंदरी का शिलायुध नामक धुरंधर पुत्र, पद्मावती के गंधार और पिंगल नाम के दो पुत्र, जरादेवी के जराकुमार और वाल्मीक नाम के दो पुत्र, अवंतिदेवी के सुमुख और दुर्मुख नाम के दो पुत्र, रोहिणी के राम (बलभद्र), सारण और विदुरथ नामक तीन पुत्र, बालचन्द्रा के वज्रदंष्ट और अमितप्रभ नाम के दो पुत्र, इसके अलावा राम (बलभद्र) के कइं पुत्र कि जिनमें उल्मूक, निषध, प्रकृतिधुति, चारुदत्त, ध्रुव, शत्रुदमन, पीठ, श्रीध्वज, नंदन, श्रीमान, दशरथ, देवानंद, आनंद, विपृथु, शांतनुं, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु व दृढधन्वा मुख्य थे। वे सब वसुदेव के साथ युद्ध में आये। और कृष्ण के भी कइं पुत्र आये, जिनमें भानू, भामर, महाभानू, अनुभानुक, बृहद्ध्वज, अग्निशिख, धृष्णु, संजय, अकंपन, महासेन, धीर,

गंभीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शंख, प्रद्युम्न और शांब वगैरह महापराक्रमी पुत्र मुख्य थे। इसके अलावा हजारों अन्य कृष्ण के पुत्र युद्ध करने की इच्छा से वहां आये। उग्रसेन और उसके धर, गुणधर, शक्तिक, दुर्धर, चन्द्र और सागर नाम के पुत्र युद्ध में आये। चचेरे चाचा ज्येष्ठ राजा के पुत्र सांत्वन और महासेन, विषमित्र, हृदिक और सत्यमित्र नाम के उनके पुत्र तथा महासेन का पुत्र सुषेण नाम का राजा विषमित्र के हृदिक, सिनि तथा सत्यक नाम का पुत्र, हृदिक के कृतवर्मा और दृढधर्मा नाम का पुत्र और सत्यक का युयुधान नाम का पुत्र व उसका गंध नाम का पुत्र वगैरह - ये सब आये। इसके अलावा दूसरे दशार्ह के और राम कृष्ण के कइं पुत्र व कृष्ण की बूआ और बहनों के भी कइं पराक्रमी पुत्र वहां आये।

फिर क्रौष्टुकी ने बताये हुए शुभ दिन पर दारुक सारथिवाले व गरुड के चिह्नवाले रथ पर आरुढ़ होकर और सब यादवों से घिरे हुए व शुभ सगुनों ने जिनको विजय संकेत दिया है ऐसे कृष्ण ने इशान दिशा की और प्रयाण किया। अपने नगर से पैंतालीस योजन दूर जाकर युद्धचतुर कृष्ण ने **सेनपल्ली** ग्राम के समीप पडाव डाला।

जरासंध के सैन्य से चार योजन कृष्ण का सैन्य दूर था तब कुछ उत्तम विद्याधर वहां आये, और समुद्रविजय राजा को प्रणाम करके बोले, 'हे राजन् ! हम आपके भाई वसुदेव के गुणों को वश हुए हैं। जो आपके कुल में पूरे जगत की रक्षा करने व क्षय करने में समर्थ ऐसे अरिष्टनेमि भगवान हुए हैं व जिसमें अद्वितीय पराक्रमवाले राम कृष्ण हुए हैं, और प्रद्युम्न, शांब वगैरह कोटिगम पौत्र रहे है, उन्हें युद्ध में अन्य की सहायता की जरुरत रहती नहीं है, फिर भी अवसर मानकर हम भक्ति से यहां आये हैं। इसलिए हमें आज्ञा दिजिए व हमें आपके सामंतवर्ग में गिने।' समुद्रविजय ने कहा, 'बहुत अच्छा' तो वे बोले, 'यह जरासंध अकेले कृष्ण के आगे तृण समान है। परंतु वैताढ्यगिरि पर के कुछ खेचर जरासंध के पक्ष के हैं, इसलिए वे यहां आए नहीं तब तक हमें उनके सन्मुख उन्हें वहीं रोकने जाने की आज्ञा दीजिए और आपके अनुज बंधु वसुदेव को हमारे सेनापति के रुप में स्थापित करके शांब, प्रद्युम्न सहित हमारे साथ भेजिए, जिससे वे सब विद्याधर जीते गये हैं यू समझ लेना।' इस प्रकार सुनकर कृष्ण की संमति से समुद्रविजय ने पौत्र प्रद्युम्न और शांब सहित वसुदेव को उन खेचरों के साथ भेजा। उस समय अरिष्टनेमि ने अपने जन्मस्नात्र समय पर देवताओं ने उनकी भुजा पर बांधी हुई अस्त्रवारणि औषधि वसुदेव को दी।

यहां मगधपति जरासंध के पास **हंसक** नामक एक सचिव अन्य सचिवों को साथ लेकर आया, और उसने सोचकर जरासंध को कहा, 'हे राजन् ! पहले कंस ने मंत्र बिना (सोचे-समझे

बिना) कार्य किया था। इसलिए उसे उसका अशुभ फल मिला था, क्योंकि मंत्रशक्ति बिना उत्साहशक्ति और प्रभुशक्ति के परिणाम अच्छे नहीं आते। शत्रु अपने से छोटा हो तो भी वह अपने से अधिक है ऐसी दृष्टि रखना ही नीति है, तो यह स्पष्ट है कि महाबलवान कृष्ण तो आपसे अधिक ही है। और रोहिणी के स्वयंवर में इस कृष्ण के पिता दसवें दशार्ह वसुदेव को सब राजाओं के मुख में अंधकार रुप आपने स्वयं देखा था। उस समय उस वसुदेव के बल सम्मुख कोई भी राजा समर्थ नहीं हो सका था, और जिसके ज्येष्ठ बंधु समुद्रविजय ने आपके सैनिकों की रक्षा की थी। और द्युतक्रीडा में कोटि द्रव्य जीतने से और आपकी पुत्री को बचाने से उस वसुदेव को पहचानकर आपने सेवकों को मारनन के लिए सौंपा था, लेकिन अपने प्रभाव से वह वसुदेव मृत्यु नहीं पाये थे। ऐसे बलवान वसुदेव से ये राम कृष्ण हुए हैं और वे इतनी वृद्धि पाये हैं। तथा जिनके लिए कुबेर ने सुन्दर द्वारिकापुरी रची है, वे दोनों अतिरथी वीर जिनकी शरण में दुःख के समय महारथी ऐसे युधिष्ठिर वगैरह पाण्डव भी आये हैं। उनके पुत्र प्रद्युम्न और शांब दूसरे राम कृष्ण समान हैं, और भीम व अर्जुन भी भुजाबल में यमराज को भी भयंकर हैं। अधिक क्या कहना ? उनमें जो एक नेमिकुमार है, वह अपने भुजदण्ड से पूरी पृथ्वी को छत्ररुप करने में समर्थ है। और आपके सैन्य में शिशुपाल व रुक्मि मुख्य हैं, उन्होंने तो रुक्मिणी हरण के युद्ध में कृष्ण का बल देखा ही है। कौरवपति दुर्योधन और गंधारपति शकुनि तो श्वान की तरह छत्ररुप बलवाले हैं, उनकी तो वीरों में गणना ही नहीं है। हे स्वामिन् ! अंगदेश का राजा कर्ण तो समुद्र में सत्तू की मुष्ठि जैसा उनका कोटि संख्या प्रमाण महारथीवाले सैन्य में है ऐसा मैं मानता हूँ। शत्रु के सैन्य में नेमि, कृष्ण और राम ये तीन अतिरथी हैं और आपके सैन्य में तो आप अकेले ही हो, इसलिए दोनों सैन्य में बड़ा अन्तर है। अच्यूत वगैरह इन्द्र जिनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, उन नेमिनाथ के साथ युद्ध करने के लिए कौन उत्साह कर पायेगा ? फिर कृष्ण के पक्ष के देवताओं ने छल करके तुम्हारे पुत्र काल को मार ड़ाला, इससे ही आप जान लीजिए कि इस समय दैव आपसे पराङ्मुख हैं। बलवान यादव भी न्याय के योग्य अवसर को प्रमाण करके पथुरापुरी से भागकर द्वारका नगरी में चले गये थे, परंतु आपने तो ज्यों बिल में से काले नाक को यष्टि से ताड़न करके जगाये ऐसा किया है, इसिलिए ही यह कृष्ण आपके सामने आये हैं, वे स्वयंमेव नहीं आये हैं। इतना सब हो जाने पर भी हे राजन् ! उनके साथ युद्ध करना ठीक नहीं है। यदि आप युद्ध नहीं करोगे तो वे अपने आप वापस लौट जायेंगे।'

सचिव हंसक के ऐसे वचन सुनकर जरासंध क्रोध पाकर बोला कि "हे दुराशय ! लगता है कि मायावी यादवों ने अवश्य तुझे फोड़ डाला है। इसलिए ही हे दुर्मति ! तू उसका ऐसा वृथा

बल दिखाकर मुझे डरा रहा है, पर क्या केसरी शेर लोमडी की फुत्कार से कदापि डरेगा ? इन गोपालों कें सैन्य को तो मैं पल भर में भस्म कर डालूंगा। इसलिए रण में से निवृत्त करने के तेरे इस मनोरथ को धिक्कार है।'' इस प्रकार के उसके वचन सुनकर **डिंभक** नामक उसका एक सचिव उसके भाव अनुसार बोला कि ''हे राजेन्द्र ! अब यह रण करने का समय आया है तो उसका आपको त्याग नहीं करना है। हे प्रभो ! संग्राम में सम्मुख रहकर यशस्वी मृत्यु हो वह अच्छा, परंतु रण में से पराङ्मुख होकर जीना तो ठीक नही है। इसलिए हमारे सैन्य में चक्ररत्न जैसा अभेद्य चक्रव्यूह रचकर हम शत्रुसैन्य को मार डालेंगे।'' इस प्रकार के उसके वचन सुनकर जरासंध ने हर्ष पाकर उसे शाबाशी दी और चक्रव्यूह रचने के लिए अपने पराक्रमी सेनापतियों को आज्ञा दी, तो अर्धचक्री जरासंध की आज्ञा से हंसक, हिंभक वगैरह सचिवों और अन्य सेनापतियों ने चक्रव्यूह की रचना की।

उस हजार आरेवाले चक्रव्यूह संबंधित चक्र में प्रत्येक आरे पर एक बड़ा राजा रहा, उस हरेक राजा के साथ सौं हाथी, दो हजार रथ, पांच हजार अश्व और सोलह हजार पराक्रमी पायदल आदि सैन्य रखा गया। उसकी परिधि में सवा छः हजार राजा रहे, और मध्य में पांच हजार राजा और अपने पुत्रों सहित जरासंध रहा, उसके पृष्ठभाग में गंधार व सैंधव की सेना रही, दक्षिण में धृतराष्ट्र के सौं पुत्र रहे, बायी और मध्य देश के राजा रहे और आगे अन्य अनगिनत राजा रहे, तथा आगे के भाग में शकटव्यूह रचकर उसकी संधि संधि पर पचास राजाओं को स्थापित किया, इसके अंदर एक गुल्म में से दूसरे गुल्म में जा सके ऐसी गुल्मरचना से अनेक राजा सैन्य सहित रहे और उस चक्रव्यूह के बाहर विचित्र प्रकार के व्यूह रचकर अनेक राजा खड़े रहे। इसके बाद राजा जरासंध ने सत्य प्रतिज्ञावाले, महापराक्रमी, विविध संग्राम में सुख्यात बने हुए और रणकुशल ऐसे कौशल देश के राजा **हिरण्यनाभ** का उस चक्रव्यूह के सेनापति पद पर अभिषेक किया। उस समय सूर्य अस्त पाया।

उस रात्रि में यादवों ने भी चक्रव्यूह के सामने टिक सके ऐसा और शत्रु राजाओं से दुर्भेद्य गरुडव्यूह रचा। उस व्यूह के मुख पर अर्धकोटि महावीर कुमार खड़े रहे और उसके मस्तिष्क पर राम और कृष्ण खडे रहे। अक्रूर, कुमुद, पद्म, सारण, विजयी, जय, जराकुमार, सुमुख, दृढ़मुष्टि, विदूरथ, अनाधृष्टि और दुर्मुख इत्यादि वसुदेव के पुत्र एक लाख रथ लेकर कृष्ण के पीछे रहे, उनके पीछे उग्रसेन एक लाख रथ लेकर रहे, उनके पृष्ठ भाग पर उनके चार पुत्र रक्षक बनकर खड़े रहे, और उन पुत्रों सहित उग्रसेन की रक्षा के लिए उनके पीछे धर, सारण, चन्द्र, दुर्धर और सत्यक नामक राजा खड़े रहे, राजा समुद्रविजय महापराक्रमी भाइयों और उनके पुत्रों के साथ दक्षिण पक्ष का आश्रय करके रहे, उनके पीछे महानेमि, सत्यनेमि, दृढनेमि,

सुनेमि, अरिष्टनेमि, विजयसेन, मेघ, महीजय, तेजसेन, जयसेन, जय और महाद्युति नामक समुद्रविजय के कुमार रहे, और पचीस लाख रथ सहित दूसरे भी अनेक राजा समुद्रविजय के पास उनके पुत्रों की भाँति खड़े रहे। राम के पुत्र और युधिष्ठिर वगैरह अमित पराक्रमी पाण्डव वामपक्ष का आश्रय करके रहे, और उल्मूक, निषध, शत्रुदमन, प्रकृतिद्युति, सत्यकि, श्रीध्वज, देवानंद, आनंद, शांतनु, शतधन्वा, दशरथ, ध्रुव, पृथु, विपृथु, महाधनु, दृढधन्वा, अतिवीर्य और देवनंद - ये सब पचीस लाख रथों से धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध करने के लिए उद्यत होकर पाण्डवों के पीछे खड़े रहे, उनके पीछे चन्द्रयश, सिंहल, बर्बर, कांबोज, केरल और द्रविड राजा रहे, उनके भी पीछे साठ हजार रथ लेकर धैर्य और बल के गिरिरुप महासेन का पिता अकेला खड़ा रहा। उसके रक्षण के लिए भानु, भामर, भीरु, असित, संजय, भानु, धृष्णु, कंपित, गौतम, शत्रुंजय, महासेन, गंभीर, बृहदध्वज, वसुवर्म, उदय, कृतवर्मा, प्रसेनजित, दृढवर्मा, विक्रांत और चन्द्रवर्मा ये सब चारों ओर खड़े रहे। इस प्रकार गरुडध्वज (कृष्ण) ने योग्य गरुडव्यूह की रचना की।

इस अवसर पर शक्रेन्द्र श्री नेमिनाथ ने भ्रातृस्नेह से युद्ध की इच्छावाले जानकर विजयी शस्त्र सहित अपना रथ मातलि सारथि के साथ भेजा। मानो सूर्य का उदय हुआ हो ऐसा प्रकाशित अनेक रत्नों से निर्मित रथ लेकर मातलि वहां आया, तो अरिष्टनेमि ने उसे अलंकृत किया। फिर समुद्रविजय ने कृष्ण के अनुजबंधु **अनाधृष्टि** का सेनापदि पद पर पट्टबद्ध करने हेतु अभिषेक किया। उस समय कृष्ण के सैन्य में सर्वत्र जयनाद हुआ, जिससे जरासंध के सैन्य में सर्वत्र बड़ा क्षोभ हो गया।

फिर मानों परस्पर सिरे बांधे हो त्यों अलग पडे बिना दोनों व्यूह के आगे रहे हुए सैनिको ने महाउत्कट युद्ध का आरंभ किया, उससे प्रलयकाल के मेघ से उद्भ्रांत हुए पूर्व व पश्चिम सागर में तरंगों की भाँति दोनों व्यूह में विचित्र प्रकार के अस्त्र आ-आकर गिरने लगे। दोनों व्यूह प्रहलिका की तरह लम्बे समय तक तो परस्पर दुर्भेध बन पड़े। फिर जरासंध के अग्रसैनिकों ने स्वामीभक्ति से दृढ़ बने गरुडव्यूह के अग्रसैनिकों को भग्न कर दिया। उस समय मानो गरुडव्यूह की आत्मा हो त्यों कृष्ण ने हाथरुपी पताका ऊँची करके अपने सैनिकों को स्थिर किया। उस अवसर पर दक्षिण और वाम भाग में रहे गरुड के पंख समान महानेमि और अर्जुन तथा उस व्यूह की चोंच जैसे अग्रभाग पर रहे अनाधृष्टि - ये तीनों ने कोप पाया। महानेमि ने सिंहनाद नाम का शंख, अनाधृष्टि ने बलाहक नाम का शंख और अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख फूंका। उनका नाद सुनकर यादवों ने कोटि वाजिंत्रों का नाद किया, जिससे उन तीनों शंखों का नाद दूसरे अनेक शंखों के नाद से शंखराज की तरह अनुसरित हुआ। तीन शंख और अनेक वाजिंत्रों के नाद से समुद्र में रहे मगरों की तरह शत्रुसैन्य में रहे सुभट महा क्षोभ पाये। फिर

नेमि, अनाधृष्टि और अर्जुन - ये तीन महापराक्रमी सेनापति अनगिनत बाण बरसाते हुए कल्पांतकाल के सागर की तरह आगे चले। चक्रव्यूह के आगे मुख्य संधि की ओर शकटव्यूह रचकर खड़े शत्रुपक्ष के राजा उनका भुजबल सहन न कर पाने से बड़ा उपद्रव पाकर भाग गये। इसके बाद तीनों वीरों ने मिलकर, वन के हाथी ज्यों गिरिनदी के तट को तोड़े त्यों चक्रव्यूह को तीन जगह से तोड़ डाला। फिर नदी के प्रवाह की तरह अपने आप मार्ग करके वे चक्रव्यूह में घुसे। उनके पीछे अन्य सैनिकों ने भी प्रवेश किया। तत्काल दुर्योधन, रौधिर और रुक्मि ये तीनों वीर अपने सैनिकों को स्वस्थ करते हुए युद्ध की इच्छा से उद्यत हुए। महारथियों से घिरे दुर्योधन ने अर्जुन को, रौधिरि ने अनाधृष्टि को और रुक्मि ने महानेमि को रोका। उन छः वीरों का और उनके पक्ष के अन्य हजारों महारथियों का परस्पर द्वंद्व युद्ध प्रारंभ हुआ। अन्य की वीरता को नहीं सहन करनेवाले महानेमि ने उस वीरमानी बातूनी और दुर्मद रुक्मि को अस्त्र और रथ विहीन कर दिया। जब रुक्मि वध्यकोटि पर आया तब उसकी रक्षा के लिए शत्रुंतप वगैरह सात राजा बीच में आ गये। एक साथ बाणवृष्टि करते हुए उन सात राजाओं के धनुष्य को शिवादेवी के कुमार ने मृणाल (कमल) के समान छेद डाले। लम्बे समय तक युद्ध करने के बाद शत्रुंतप राजा ने महानेमि पर एक शक्ति डाली। उस जाज्वल्यमान शक्ति को देखकर सब यादव क्षोभ पा गये। उस शक्ति के मुख में से विविध आयुध धरनेवाले और क्रूर कर्म करनेवालें हजारों किंकर उत्पन्न होकर महानेमि के सामने आये। उस समय मातलि ने अरिष्टनेमि को कहा कि 'हे स्वामिन् ! धरणेन्द्र से रावण ने जो शक्ति पायी थी वह शक्ति इस राजा ने तप करके बलीन्द्र से प्राप्त की है, वह शक्ति मात्र वज्र से ही भेदी जा सके ऐसी है।' ऐसा कहकर नेमिकुमार की आज्ञा से उस सारथि ने महानेमि के बाण में वज्र को संक्रमित किया, तो महानेमि ने वह वज्रवाला बाण छोड़कर उस शक्ति को पृथ्वी पर गिरा डाला। फिर उस राजा को रथ व अस्त्ररहित कर दिया। और बाकी के छः राजाओं के धनुष्य को दुबारा छेद डाला। इतने में रुक्मि दूसरे रथ में आरुढ़ होकर वापस नज़दीक आया, तो मानमंतों में मुख्य शत्रुंतप वगैरह सात और रुक्मि सहित आठ राजा इकट्ठे होकर महानेमि के साथ युद्ध करने लगे। रुक्मि जो जो धनुष्य लेता उसे महानेमि छेद डालने लगे, इस प्रकार उसके बीस धनुष्य छेद डाले। फिर रुक्मि ने महानेमि पर कौबेरी नामक गदा छोडी, जिसे महानेमि ने अगन्यास्त्र से भस्म कर दिया। फिर युद्ध में अन्य की अपेक्षा को नहीं सह सकनेवाले रुक्मि ने महानेमि पर लाखों बाण बरसानेवाला वैरोचन नामक बाण छोडा। महानेमि ने माहेन्द्र बाण से उसका निवारण किया। और एक दूसरे बाण से रुक्मि के ललाट में ताड़न किया। उस प्रहार से विधुर बने रुक्मि को वेणुदारी ले गया, तो वे सात राजा भी महानेमि से परेशान होकर तत्काल भाग गये। समुद्रविजय ने द्रुमराजा को, स्तिमित ने भद्रक को और अक्षोभ्य पराक्रमवाले अक्षोभ्य

ने वसुसेन को जीत लिया। सागर ने पुरिमित्र नाम के शत्रुराजा को युद्ध में मार ड़ाला। हिमवान जैसे स्थिर हिमवान ने धृष्टद्युम्न को भग्न किया। बल में धरणेन्द्र जैसे धरण ने अन्वष्टक राजा को और अभिचन्द्र ने उद्धत शतधन्वा राजा को मार डाला। पूरण ने द्रुपद को, सुनेमि ने कुंतिभोज को, सत्यनेमि ने महापद्म को और दृढनेमि ने श्रीदेव को हरा दिया। इस प्रकार यादव वीरों ने भग्न किए हुए शत्रु राजा सेनापति पद पर स्थापित हिरण्यनाभ की शरण में गये। यहां वीर ऐसे भीम और अर्जुन एवं महापराक्रमी राम (बलभद्र) के पुत्रों ने ज्यों मेघ बगुलों को भगाये त्यों धृतराष्ट्र के पुत्रों को भगा दिया। अर्जुन के बाणों से दिशाओं में अंधकार हो गया और उसके गांडीव धनुष्य के घोर निर्घोष से पूरा विश्व विधुर हो गया। धनुष्य को आकर्षित करके तेजी से अधिक शर संधान करते हुए उस वीर का एक दूसरे बाण की योजना के बीच का अंतर आकाश में खड़े देवता भी देख या जान नहीं पाते थे।

फिर दुर्योधन, काशी, त्रिगर्त, सबल, कपोत, रोमराज, चित्रसेन, जयद्रथ, सौवीर, जयसेन, शूरसेन और सोमक - ये सब इकट्ठे होकर क्षत्रिय व्रत छोड़कर अर्जुन के साथ युद्ध करने आये। शकुनि के साथ सहदेव, दुःशासन के साथ भीम, उलूक के साथ नकुल, शल्य के साथ युधिष्ठिर, दुर्मर्षण वगैरह छः राजाओं के साथ सत्यकी सहित द्रौपदी के पांच पुत्र और अन्य राजाओं के साथ राम के पुत्र परस्पर युद्ध करने लगे। एकसाथ बाणों को बरसाते दुर्योधन वगैरह राजाओं के बाणों को अकेला अर्जुन कमलनाल की तरह लीलामात्र में छेद डालने लगें। फिर अर्जुन ने दुर्योधन के सारथि और घोडों को मार डाला। रथ तोड़ डाला और उसका कवच पृथ्वी पर गिरा दिया। जब शरीरमात्र बाकी रहा तब दुर्योधन बड़ा उदास हो गया। फिर एक पैदल जैसी स्थिति में पक्षी की भाँति तेजी से दौड़कर शकुनि के रथ पर चढ़ गया। यहां अर्जुन ने ज्यों मेघ ओलों की बारिश से हाथियों को परेशान करे त्यों बाणों की बारशि से काशी प्रमुख दस राजाओं को परेशान कर दिया। शल्य ने एक बाण से युधिष्ठिर के रथ की ध्वजा छेद ड़ाली, युधिष्ठिर ने उसका बाण सहित धनुष छेद ड़ाला। फिर शल्य ने दूसरा धनुष लेकर वर्षाऋतु ज्यों मेघ से सूर्य को छिपा दे त्यों बाणों से युधिष्ठिर को ढाँप दिया। फिर युधिष्ठिर ने बेसमय जगत को प्रक्षोभ करनेवाली विद्युत जैसी एक दुःसह शक्ति शल्य पर ड़ाली। शत्रु ने उसे छेदने के लिए कइं बाण मारे फिर भी वह शक्ति अस्खलितपने से आकर गोह पर ज्यों वज्र गिरे त्यों शल्य पर गिरी, जिससे शल्य का तत्काल वध हुआ। फिर कइं राजा भाग गये।

भीम ने भी क्रोध करके दुर्योधन के भाई दुःशासन को द्युत में किए हुए कपट से पायी विजय का स्मरण कराकर लीलामात्र में मार डाला। गांधार ने मायावी युद्धों से और अस्त्रों के युद्धों से अति युद्ध कराए गये सहदेव ने क्रोध पाकर गांधार पर जीवित का अंत करे ऐसा

बाण छोडा, वह बाण शकुनि पर नहीं गिरा, लेकिन दुर्योधन ने क्षत्रियों का आचरण छोड़कर ऊपर से ही तीक्ष्ण बाणों से उसे छेद ड़ाला। यह देखकर सहदेव ने कहा, 'अरे ! दुर्योधन ! द्युतक्रीडा की तरह तू रण में भी छल करता है। अथवा 'अशक्त पुरुष का बल छल ही होता है।' परंतु अब तुम दोनों कपटी एक साथ आये हो तो अच्छा हुआ, मैं तुम दोनों को एक साथ ही मार डालूंगा, तुम दोनों का वियोग न हो।' इस प्रकार कहकर सहदेव ने शरद्ऋतु में तोतों के वन की भाँति तीक्ष्ण बाणों से दुर्योधन को ढाँप दिया। दुर्योधन ने भी बाणों से सहदेव को परेशान किया, और रणभूमिरुपी महावृक्ष के मूलभूत उसके धनुष्य को तोड़ डाला। फिर उसने सहदेव को मारने के लिए यम जैसा एक मंत्राधिष्ठित अमोघ बाण छोड़ा। यह देखकर अर्जुन ने गरुडास्त्र छोडकर दुर्योधन की जीतने की आशा सहित उसका बीच में से ही निवारण कर डाला। फिर शकुनि ने धनुष्य-टंकार करके मेघ की भाँति बाणवृष्टि से सहदेव को ढाँप दिया। सहदेव ने भी शकुनि के रथ, घोडे और सारथि को मारकर उसका सिर भी वृक्ष के फल की तरह छेद डाला।

किरणों से सूर्य की तरह नकुल ने अस्त्रों से उलूक राजा को रथविहीन करके बहुत परेशान किया। फिर उस दुर्मषण के रथ में गया। द्रौपदी के सत्यकी युक्त पांच पुत्रों ने दुर्मषण वगैरह छः वीरों को विद्रवित किया तो वे दुर्योधन की शरण में गये। दुर्योधन, काशी वगैरह राजाओं के साथ मिलकर अर्जुन के सामने युद्ध करने आया। देवताओं से इन्द्र की तरह राम के पुत्रों से घिरे हुए अर्जुन ने विचित्र बाणों से शत्रु सेना का बहुत विनाश किया। फिर शत्रुओं को अंध बनाकर मानो दुर्योधन के दूसरे प्राण हो ऐसे जयद्रथ को अर्जुन ने एक बाण से मार डाला। उसे देखकर होठ काटता हुआ कर्ण अर्जुन को मार ड़ालने के लिए कान तक कालपृष्ठ धनुष्य खींचकर वीरपृच्छा करते हुए दौड आया। देवताओं ने कुतूहलता से देखे हुए कर्ण और अर्जुन ने पासों की भाँति बाणों से बड़ी देर तक क्रीडा की। फिर अर्जुन द्वारा अनेक बार रथ तोड़ने और अस्त्र क्षीण होने पर सिर्फ खड्ग को धारण करे हुए वीरकुंजर कर्ण को मौका देखकर अर्जुन ने मार डाला। भीम ने तत्काल सिंहनाद किया। अर्जुन ने शंख फूंका और जीत पानेवाले सर्व पाण्डव-सैनिकों ने विजयी गर्जना की। इसे देखकर मानी दुर्योधन क्रोधांध होकर गजेन्द्र सेना लेकर भीमसेन को मारने दौडा। भीम ने रथ के साथ रथ, अश्व के साथ अश्व व हाथी के साथ हाथी को भीड़ाकर दुर्योधन के सैन्य को निःशेष कर दिया। इस प्रकार उनके साथ युद्ध करते हुए, मोदक का भोजन करते हुए ब्राह्मणों की तरह, भीमसेन की युद्धश्रद्धा पूर्ण न हुई, इतने में तो अपने वीरों को आश्वासन देता हुआ वीर दुर्योधन, हाथी सम्मुख ज्यों हाथी आए त्यों भीमसेन के सामने आया। मेघ समान गर्जना करते हुए और केसरी की भाँति क्रोध करते हुए

वे दोनों वीर विविध आयुधों से बड़ी देर तक युद्ध करते रहे। आखिरकार भीम ने द्युतक्रीडा का बैर याद करते हुए बड़ी गदा उठाकर, उसके प्रहार से घोडे, रथ और सारथि सहित दुर्योधन को चकनाचूर कर दिया।

इस प्रकार दुर्योधन मारा गया तो उसके अनाथ सैनिक हिरण्यनाभ सेनापति की शरण में गये। वहां वाम व दक्षिण की ओर रहे सब यादव और पाण्डव कृष्ण के सेनापति अनाधृष्टि को लिपट पड़े। फिर जहाज के अग्रभाग में ज्यों उसका निर्यामक आये त्यों हिरण्यनाभ क्रोध से यादवों को परेशान करते हुए सेना के आगे आया। उसे देखकर अभिचन्द्र बोला, "अरे विट ! तू इतना सारा बकता है ? क्षत्रिय वाणी में शूर नहीं होते, पर पराक्रम में शूर होते हैं।" यह सुनकर हिरण्यनाभ अभिचन्द्र पर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा, उन्हें मेघधारा के पवन की भाँति अर्जुन ने बीच में से छेद डाले, तो उसने अर्जुन पर अनिवार्य बाणश्रेणी छोडनी शरु की। इतने में भीम ने बीच में आकर गदा-प्रहार से उसे रथ पर गिरा दिया, जिससे हिरण्यनाभ शरमा गया। इसके बाद दुबारा रथ पर चढ़कर क्रोध से होठ काटते हुए वह पूरे यादव सैन्य पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगा, परंतु उस बड़े सैन्य का कोई भी घुडसवार, हस्तीसवार, रथी या पैदल उससे नहीं मारा गया। फिर समुद्रविजय का पुत्र जयसेन क्रोध करके धनुष्य खींचकर हिरण्यनाभ के साथ युद्ध करने के लिए उसके सामने आया, तो 'अरे भानजे ! तू यमराज के मुख में क्यों आया ?' यूं कहकर हिरण्यनाभ ने उसके सारथि को मार ड़ाला। यह देखकर क्रोध पाये हुए जयसेन ने उसके बख्तर, धनुष्य और ध्वजा छेद डाले, उसके सारथि को भी यमराज के घर पहुँचा दिया। तत्काल हिरण्यनाभ ने क्रोध करके मर्मवेधी दस तीक्ष्ण बाणों से जयसेन को मार डाला। यह देखकर उसका भाई महीजय रथ में से उतरकर ढाल-तलवार लेकर हिरण्यनाभ पर दौड आया, उसे आता हुआ देखकर हिरण्यनाभ ने दूर से ही क्षुरप्र बाण से उसका मस्तक काट लिया। अपने दो भाइयों का वध हो जाने से क्रोध पाकर अनाधृष्टि उसके साथ युद्ध करने आया।

जरासंध के पक्ष के जो जो राजा थे वे सब भीम, अर्जुन और यादवों के साथ अलग अलग द्वंद्वयुद्ध से युद्ध करने लगे। ज्योतिषों के पति समान प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भगदत्त हाथी पर बैठकर महानेमि के साथ युद्ध करने दौड़ा और बोला कि - "अरे महानेमि ! मैं तेरे भाई का साला रुक्मि या अश्मक नहीं हूं, पर मैं तो नारकी के बैरी कृत्तांत जैसा हूँ, इसलिए तू यहां से खिसक जा।" इस प्रकार कहकर उसने अपने हाथी को तेजी से हाँका और महानेमि के रथ को मण्डलाकार घुमाया। फिर महानेमि ने हाथी के पैरों के तलुवों मे बाण मारे, जिससे वह हाथी पैरों से स्खलित होकर भगदत्त सहित पृथ्वी पर गिर पड़ा, तो 'अरे ! तू रुक्मि नहीं है,' यूं कहकर मुस्कुराते हुए प्रकृति से दयालु ऐसे महानेमि ने धनुष्यकोटि से उसे सिर्फ स्पर्श

करके छोड़ दिया।

यहां एक ओर भूरिश्रवा और सत्यकी जरासंध व वासुदेव की जयलक्ष्मी की इच्छा करके युद्ध करते थे। वे दोनों दांतों से लड़ते ऐरावत की भाँति दिव्य तथा लोहमय अस्त्रों से युद्ध करते हुए तीन लोक को भयंकर बन पड़े। बडी देर तक युद्ध करते हुए क्षीण जलवाले मेघ समान वे दोनों क्षीणास्त्र हो गये तो फिर वे मुष्टामुष्टि वगैरह से बाहुयुद्ध करने लगे। दृढ तरह गिरने से और उछलने से भूमि को कंपाने लगे और भुजास्फोट के शब्दों से दिशाओं को फोड डालने लगे। आखिर में सत्यकी ने भूरिश्रवा को घोड़े की तरह बांधकर उसका गला मरोड़कर जानु से दबाकर मार डाला।

यहां अनाधृष्टि ने हिरण्यनाभ के धनुष्य को छेद डाला तो उसने अनाधृष्टि पर बड़ी भूंगी से प्रहार किया। अनाधृष्टि ने उछलती अग्नि की चिनगारियों से दिशाओं को प्रकाशमान करती उस भूंगी को आते ही बाण से छेद डाली। हिरण्यनाभ अनाधृष्टि का नाश करने के लिए रथ में से उतरकर हाथ में ढाल-तलवार लेकर पैदल चलते हुए उसके सामने दौड़ा। उस समय कृष्ण के अग्रज राम के रथ में से उतरकर ढाल-तलवार लेकर उसके सामने आये, और विचित्र प्रकार की गति से चलकर उसने बड़ी देर तक घुमा-घुमाकर थका दिया। फिर चालाकीवाले अनाधृष्टि ने छल मिलाकर ब्रह्मसूत्र के काष्ठ की तरह खड़क से हिरण्यनाभ के शरीर को छेद डाला। हिरण्यनाभ मारा गया तो उसके योद्धा जरासंध की शरण में गए। उस समय सूर्य भी पश्चिम सागर मे मग्न बना। यादव और पाण्डवों ने पूजा हुआ अनाधृष्टि कृष्ण के पास आया। फिर कृष्ण की आज्ञा से सब वीर अपनी अपनी छावनी में गये। यहां कुछ सोचकर जरासंध ने तुरंत ही सेनापति पद पर महाबलवान शिशुपाल का अभिषेक किया।

प्रातःकाल में यादव कृष्ण की आज्ञा से गरुडव्यूह रचकर पूर्ववत् समरभूमि में आये, यह खबर जानकर शिशुपाल ने भी चक्रव्यूह रचा। राजा जरासंध रणभूमि में आया। जरासंध के पूछने पर हंसक सचिव शत्रुओं के सैनिकों ने अंगूलि से संकते करके नाम ले लेकर पहचान कराने लगा - "यह काले अश्ववाला रथ, और ध्वजा में गजेन्द्र के चिह्न से शोभित अनाधृष्टि है, यह नीलवर्णी अश्व के रथवाला पांडुपुत्र युधिष्ठिर है, यह श्वेत अश्व के रथवाला अर्जुन है, नीलकमल जैसे वर्णवाले अश्व के रथवाला यह वृकोदर (भीमसेन) है, यह सुवर्णवर्णी अश्ववाला और शेर जैसी ध्वजावाला समुद्रविजय है। यह शुक्लवर्णी अश्व के रथवाला और वृषभ के चिह्नयुक्त ध्वजावाला अरिष्टनेमि है, इस काबरे वर्ण के अश्व के रथवाला और कदली के चिह्नवाला अक्रूर है, यह तित्तिरवर्णी घोड़ेवाला सत्यकी है, यह कुमुद जैसे वर्णवाले अश्वोंवाला महानेमिकुमार है, यह तोते की चौंच जैसे अश्ववाला उग्रसेन है, यह सुवर्णवर्णी अश्ववाला और

मृगध्वज के चिह्नवाला जराकुमार है, यह कांबोज देश के अश्ववाला श्लक्ष्णरोम का पुत्र सिंहल है, कपिल तथा रक्त अश्ववाला और ध्वजा में शिशुमार के चिह्नवाला यह मेरु है, यह पद्म जैसे घोडेवाला पद्मरथ राजा है, यह पंडूक जैसे वर्ण के अश्ववाला पुष्करध्वज सारण है। यह पंचपुंड्र घोडेवाला और कुंभ की ध्वजावाला विदुरथ है। सैन्य के मध्य में रहे श्वेत अश्ववाला और गरुड के चिह्नयुक्त ध्वजावाला यह कृष्ण है, वह ज्यों बगुलों से आकाश में वर्षाकाल का मेघ शोभा पाता है त्यों शोभायमान है। उसके दक्षिण ओर अरिष्टवर्णी घोडेवाला और ताल की ध्वजावाला रोहिणी का पुत्र राम है, जो चलित कैलास जैसा शोभित है। इनके सिवा अन्य कइं यादव विविध अश्व, रथ और ध्वजावाले व महारथी हैं, जिनका वर्णन करना असंभव है।''

इस प्रकार हंसक सचिव के वचन सुनकर जरासंध ने क्रोध से धनुष्य का आस्फालन किया और तेजी से अपना रथ राम कृष्ण के सामने बढ़ाया। उस समय जरासंध का युवराज पुत्र यवन क्रोध करके वसुदेव के पुत्र अक्रूर वगैरह को मारने के लिए उन पर दौड आया। शेरों के साथ अष्टापद की भाँति उस महाबाहु यवन का उनके साथ संहारकारी भीषण युद्ध हुआ। राम के अनुज भाई सारण ने अद्वैत बल से वर्षा के मेध की तरह विचित्र बाण बरसाकर उसे घोंट दिया। मानो मलयगिरि हो वैसे मलय नाम के हाथी से उस यवन ने घोडे सहित सारण का रथ तोड़ डाला। फिर जब वह हाथी झुककर सारण पर दंतप्रहार करने आया तब सारण ने हवा द्वारा हिलाए हुए वृक्ष के फल की तरह यवन के मस्तक को खड्ग से छेद ड़ाला। और वह हाथी उठकर सामने आने लगा तो उसके भी दांत और सूंढ छेद डाले। यह देखकर वर्षाऋतु में मयूरवृंद की तरह कृष्ण का सैन्य नाचने लगा। अपने पुत्र का वध देखकर जरासंध ने क्रोध पाया, तो हरिणों को केसरी हणे त्यों वह यादवों को मारने के लिए धनुष्य लेकर प्रवृत्त हुआ। आनंद, शत्रुदमन, नंदन, श्रीध्वज, ध्रुव, देवानंद, चारुदत्त, पीठ, हरिषेण और नरदेव - ये बलराम के दस पुत्र रण के मुखभाग में रहे थे, उन्हें यज्ञ में बकरे की भाँति जरासंध ने मार डाला। उन कुमारों का वध देखकर कृष्ण की सेना पलायन कर गई, तो गायों के समूह के पीछे बाघ की भाँति जरासंध उस सेना के पीछे आया। उस समय उसके सेनापति शिशुपाल ने कृष्ण को हँसते हँसते कहा कि 'अरे कृष्ण ! यह कुछ गोकुल नहीं है, यह तो क्षत्रियों का रण है।' कृष्ण ने कहा, 'राजन् ! इस समय तू चला जा, बाद में आना। इस समय मैं रुक्मि के पुत्र के साथ युद्ध कर रहा हूँ। इसलिए तेरी माँ और मेरी मौसी चिरकाल रुदन करे नहीं।' मर्मवेधी बाण समान कृष्ण के वचनों से घायल बने शिशुपाल ने धनुष्य टंकार करके तीक्ष्ण बाण छोड़े, जिससे कृष्ण ने बाणों से शिशुपाल के धनुष्य, कवच और रथ छेद डाले तो उछलती अग्नि की भाँति वह खड्ग तानकर कृष्ण के सामने दौडा। ज्यों त्यों बकते हुए उस दुर्मति शिशुपाल के खड्ग,

मुगुट और मस्तक हरि ने क्रमानुसार छेद डाले।

शिशुपाल के वध से जरासंध ने बहुत क्रोध पाया और यमराज जैसा भयंकर बनकर वह अनेक पुत्रों और राजाओं को साथ लेकर रणभूमि में दौड़ आया, और बोला कि 'अरे यादवों ! वृथा किसलिए मरते हों ? सिर्फ उस ग्वाले राम कृष्ण को सौंप दो, अब तक तुम्हें कोई हानि नहीं हुई है।' ऐसे बचन सुनकर यादव दण्ड से पीटे गये सर्प समान बहुत क्रोधित हुए और विविध आयुध बरसाते हुए उसके सामने दौड पड़े। जरासंध एक होने पर भी अनेक हो ऐसा बनकर घोर बाणों से मृगों को व्याघ्र की तरह यादवों को मारने लगा। जब जरासंध युद्ध करने लगा तब कोई भी पायदल, रथी, घुडसवार या गजारोहक उसके सामने नहीं टिक पाया। पवन द्वारा उडायी हुई की रुई की तरह यादवों का पूरा सैन्य जरासंध के बाणों से त्रस्त होकर दसों दिशाओं में भाग गया। पल भर में जरासंध ने यादवों के सैन्यरुपी महासरोवर को कासर समान कर दिया और यादव उसके आसपास दूर रहकर भी दादुरपन को प्राप्त हुए। जरासंध के अट्ठाइस पुत्र दृष्टिविष सर्प की तरह शस्त्ररुपी विषवाले राम को परेशान करने लगे, और उसके अन्य उनहत्तर पुत्र कृष्ण को मारने की इच्छा से दानवों की भाँति उन्हें घेरकर उनके साथ युद्ध करने लगे। उनके साथ राम कृष्ण का ऐसा घोर युद्ध हुआ कि जिसमें परस्पर अस्त्रों के टकराने से आकाश में बेसुमार चिनगारियों की वृष्टि होने लगी। क्रमशः राम ने जरासंध के अट्ठाइस पुत्रों को हल से खींचकर मुशल से चावल की भाँति पीस डाले, अर्थात् मृत्यु प्राप्त करा दी। इससे 'यह गोप उपेक्षा करने पर आज तक मेरे पुत्रों का वध कर रहा है' यूं कहकर जरासंध ने वज्र समान गदा का राम पर प्रहार किया, गदा के उस प्रहार से राम ने रुधिर वमन किया। इससे यादवों के पूरे सैन्य में बडा हाहाकार मच गया। जब जरासंध राम पर दुबारा प्रहार करने आया तब श्वेत वाहनवाला कनिष्ट कुंतीपुत्र अर्जुन बीच में आया। राम की विधुरता देखकर कृष्ण को क्रोध चढ़ा। उसने तत्काल होठ कंपाते हुए अपने सामने आये जरासंध के उनसत्तर पुत्रों को मार डाला। फिर 'यह राम तो मेरी गदा के प्रहार से ही मर जायेगा और इस अर्जुन को मारने से क्या होगा ? इसलिए कृष्ण को ही मारुं' ऐसा सोचकर जरासंध कृष्ण पर दौड आया। उस समय 'अब कृष्ण मारे गये' ऐसा ध्वनि सर्वत्र फैल गया।

यह सुनकर मातलि सारथि ने अरिष्टनेमि को कहा, "हे स्वामिन् ! अष्टापद के आगे हाथी के बच्चे की तरह त्रिभुवनपति ऐसे आपके समक्ष यह जरासंध क्या है ? फिर भी यदि आप इस जरासंध की उपेक्षा करेंगे तो वह इस पृथ्वी को यादवविहीन कर देगा। इसलिए हे जगन्नाथ ! आपकी थोड़ी सी लीला तो दिखाइए। यद्यपि आप जन्म से ही सावद्यकर्म से विमुख हो, फिर भी शत्रुओं द्वारा किए गये आक्रमण पर आपका कुल इस समय उपेक्षा करने योग्य

नहीं है।' इस प्रकार मातलि सारथि के कहने पर श्रीनेमिनाथ ने कोप किए बिना ही हाथ में **पौरंदर** नाम का शंख लेकर मेघगर्जना का भी उल्लंघन करे ऐसा नाद किया। भूमि तथा अंतरिक्ष को भर देनेवाले उसके महाध्वनि से शत्रु क्षोभ पा गये और यादवों का सैन्य स्वस्थ होकर युद्ध करने के लिए समर्थ बना। फिर नेमिनाथ की आज्ञा से मातलि सारथि ने अपना रथ रणभूमि में घुमाना शुरु किया। उस समय प्रभु नवीन मेघ समान इन्द्रधनुष का आकर्षण करके शत्रुओं को परेशान करते हुए बाणवृष्टि करने लगे। उस बाणवृष्टि से किसिकी ध्वजा फटी, किसिके धनुष कटे, किसिके रथ टूटे और किसिके मुगट टूट पड़े। उस समय प्रति प्रहार करने की बात तो दूर रही, पर कल्पांतकाल के सूर्य समान दिखते प्रभु के सामने भी शत्रु के सुभटों में से कोई भी समर्थ न बना। अकेले प्रभु ने ही एक लाख मुगटधारी राजाओं को भग्न कर दिया, क्योंकि उछलते महासमुद्र के सामने पर्वत मात्र क्या हैं ? इस प्रकार पराक्रम बताने पर भी 'प्रतिवासुदेव वासुदेव को ही वध्य है' ऐसी मर्यादा होने से त्रैलोक्यमल्ल प्रभु ने जरासंध को नहीं मारा। श्रीनेमिनाथ प्रभु रथ को धुमाते हुए शत्रुओं के सैनिकों को रोककर खड़े रहे तो उतने समय में यादव वीर उत्साह पाकर दुबारा युद्ध करने लगे। इस बार शेर ज्यों मृगों पर टुट पड़े त्यों पाण्डव पूर्व के बैर से अवशेष रहे कौरवों को मारने लगे। इतने में तो बलदेव ने भी स्वंस्थ होकर लांगल ऊँचा करके उसके द्वारा अनेक शत्रुओं को मार डाला।

यहां जरासंध ने कृष्ण को कहा, 'अरे कपटी ! तू इतनी देर तक शृगाल की तरह माया से ही जिया है। इस माया से कंस को मारा और माया से ही कालकुमार को भी मारा है। तू अस्त्रविद्या सीखा ही नहीं है इसलिए संग्राम करता ही नहीं है, अरे कपटी ! आज मैं तेरे प्राण के साथ ही उस माया का अंत कर दूंगा और मेरी पुत्री जीवयशा की प्रतिज्ञा पूरी करुंगा।' कृष्ण हँसकर बोले, 'अरे राजा ! तू यूं गर्व के वचन क्यों कहता है ? यद्यपि मैं तो वैसा अशिक्षित हूँ, लेकिन तू तो तेरी जो अस्त्रशिक्षा है वह दिखा दे। मैं थोड़ी सी भी मेरी आत्मप्रशंसा करता ही नहीं हूँ, फिर भी इतना तो कहता हूँ कि तेरी पुत्री की अग्निप्रवेश की जो प्रतिज्ञा है, उसे मैं पूरी करुंगा।' ऐसे कृष्ण के वचन सुनकर जरासंध क्रोधपूर्वक बाण छोडने लगा। तो अंधकार को सूर्य के समान कृष्ण उसे छेदने लगे। दोनों महारथी अष्टापद की तरह क्रोध करके धनुष्य की ध्वनि से दिशाओं को उद्घोषित करते हुए युद्ध करने लगे। उनके रणमर्दन से जलागार समुद्रों ने भी क्षोभ पाया। आकाश में रहे खेचर भी त्रस्त हुए और पर्वत भी कांपने लगे। उनके पर्वत जैसे दृढ रथ के गमनागमन को सहन नहीं कर पाती पृथ्वी ने क्षणभर के लिए अपना सर्व-सहनशीलता छोड़ दी। विष्णु जरासंध के दिव्य बाणों को दिव्य बाणों से और लोहास्त्रों को लोहास्त्र से लीलामात्र में छेदने लगे।

जब सर्व अस्त्र निष्फल हुए तब जरासंध ने नाराज होकर क्रोधपूर्वक अन्य अस्त्रों से अ-निवार्य ऐसे चक्र का स्मरण किया। तत्काल चक्र उसके पास उपस्थित हुआ तो जय की तृष्णावाले कोपांध मगधपति ने उसे आकाश में घुमाकर कृष्ण पर छोड़ा। जब चक्र विष्णु की तरफ चला तब आकाश में रहे खेचरों ने भी क्षोभ पाया और कृष्ण का पूरा सैन्य दीनतायुक्त क्षोभ पा गया। उसे स्खलित करने के लिए कृष्ण, राम, पांच पाण्डव और अन्य अनेक महारथियों ने अपने अपने अस्त्र छोड़े परंतु वृक्षों से सामने चली आ रही नदी की बाढ़ को ज्यों नहीं रोकी जा सकती त्यों अस्खलित बना वह चक्र आकर कृष्ण के वक्षःस्थल पर तुंब के भाग में लगा। फिर वह चक्र कृष्ण के पास ही खड़ा रहा तो उसे कृष्ण ने अपने उद्यत प्रताप की भाँति हाथ में लिया। उस समय 'ये नौंवे वासुदेव उत्पन्न हुए' यूं आघोषणा करते हुए देवताओं ने आकाश में से कृष्ण पर सुगंधित जल पुष्प की वृष्टि की। कृष्ण ने दया लाकर जरासंध को कहा, 'अरे मूर्ख ! क्या यह भी मेरी माया है ? लेकिन अब भी तू जीवित घर जा, मेरी आज्ञा मान, अब तू तेरे दुर्विचार छोड़कर तेरी सुख-संपत्ति को भोग और जीर्ण (वृद्ध) होने पर भी जीवित रह।' जरासंध ने कहा, 'अरे कृष्ण ! यह चक्र मैंने कइ बार लालित किया है इसलिए वह मेरे समक्ष एक फिरकी समान है, तो वह तुझे छोड़ना हो तो खुशी से छोड।' फिर कृष्ण ने जरासंध पर वह चक्र छोडा। "महात्माओं को अन्य के शस्त्र भी अपने शस्त्र बन जाते हैं।" उस चक्र ने आकर जरासंध का मस्तक पृथ्वी पर गिरा दिया। जरासंध मृत्यु पाकर चौथे नरक मे गया, और देवों ने उच्च स्वर से जयनाद करके कृष्ण के ऊपर कल्पवृक्षों के पुष्पों की वृष्टि की।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि शांबप्रद्युम्नविवाहजरासंधवधकीर्तनो नाम सप्तमः सर्गः॥७॥

आठवाँ सर्ग

सागरचन्द्र का उपाख्यान, उषाहरण और बाणासुर का वध

जरासंध के मृत्यु के बाद श्रीनेमिनाथ ने कृष्ण के जिन शत्रुराजाओं का निरोध करके रखा था उन्हे मुक्त किया। वे नेमिनाथ के पास आकर नमस्कार करके अंजलि जोड़कर बोले, 'हे प्रभु ! आपने जरासंध और हमें तब से ही जीत लिया है कि जब से आप तीनों लोक के प्रभु यादवकुल में अवतरित हुए हैं। अकेले वासुदेव प्रतिवासुदेव का वध करे उसमे कोई संशय नहीं है, तो हे नाथ ! आप जिसके बंधु या सहायक हो तो उसकी तो बात ही क्या कहनी ? जरासंध और हमने तो पहले से ही जान लिया था कि हमने ऐसा अकर्तव्य कार्य शुरु किया है कि जिसके फलस्वरुप हमें हानि ही होनेवाली है, परंतु ऐसी भवितव्यता होने से ऐसा हुआ है। आज हम आपकी शरण में आये हैं, तो हम सबका कल्याण हो। हम तो आपके समक्ष कह रहे हैं, फिर भी आपकी शरण में आये हुए का कल्याण स्वतः हो जाता है।' इस प्रकार कहकर खड़े हुए उन राजाओं को साथ लेकर श्री नेमिनाथ कृष्ण के पास आये। कृष्ण ने रथ में से उतरकर नेमिकुमार को दृढ आलिंगन दिया। फिर नेमिनाथ के वचन से और समुद्रविजय की आज्ञा से कृष्ण ने उन राजाओं और जरासंध के पुत्र सहदेव का सत्कार किया और मगध देश का चौथा भाग देकर सहदेव को उसके पिता के राज्य पर मानो अपना कीर्तिस्तंभ हो त्यों आरुढ़ किया। समुद्रविजय के पुत्र महानेमि को शौर्यपुर में और हिरण्यनाभ के पुत्र रुक्मनाभ को कौशलदेश में स्थापित किया और राज्य ग्रहण नहीं करना चाहते उग्रसेन के धर नामके पुत्र को मथुरा का राज्य दिया। उस समय सूर्य पश्चिम समुद्र में निमग्न हुआ और श्री नेमिनाथ द्वारा बिदा किया हुआ मातलि सारथि देवलोक में गया। कृष्ण और उसकी आज्ञा से अन्य सब राजा अपनी अपनी छावनी में गये। अब समुद्रविजय राजा वसुदेव के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

दूसरे दिन समुद्रविजय और कृष्ण वासुदेव के पास तीन स्थविर खेचरी आकर इस प्रकार कहने लगी कि ''प्रद्युम्न और शांब सहित वसुदेव खेचरों के साथ थोड़ी देर में ही यहां आ रहे हैं लेकिन उनका जो चमत्कारी चरित्र वहां घटा है वह सुनिए - वसुदेव दो पौत्रों के साथ खेचरों सहित जैसे यहां से निकले कि तुरंत वैताढ्यगिरि पर गये। वहां शत्रु खेचरों के साथ उनका भारी युद्ध हुआ। नीलकंठ और अंगारक वगैरह खेचर जो पूर्व के बैरी थे वे इकट्ठे मिल-मिलकर वसुदेव के साथ युद्ध करने लगे। काल नज़दीक के देवों ने आकर कहा कि 'कृष्ण के युद्ध का अंत आया, जरासंध मारा गया और कृष्ण-वासुदेव की जय हुई।' यह सुनकर सब खेचरों ने रण छोड़कर **राजा मंदारवेग** को यह बात बतायीं, तो उसने आज्ञा दी कि 'हे खेचरों ! आप सब उत्तम उपहार ले-लेकर आइए, हम वसुदेव द्वारा कृष्ण की शरण में जाएं।' इस प्रकार कहकर

वह खेचरपति **त्रिपथर्षभ** राजा वसुदेव के पास गया और उन्हें अपनी बहन दी और प्रद्युम्न को अपनी पुत्री दी। राजा देवर्षभ और वायुपथ ने बड़े हर्ष से अपनी दो पुत्रियां शांबकुमार को दी। अब वे विद्याधर के राजा वसुदेव के साथ यहां आ रहे हैं, और यह खबर देने के लिए ही हमें पहले से भेजी हैं।''

इस प्रकार से वे कह रही थीं कि उतने में वसुदेव प्रद्युम्न और शांब सहित सर्व खेचर राजाओं के साथ वहां आये और सर्व के नेत्रों को उत्सव रुप बनें। खेचरों ने वसुधारा जैसे सुवर्ण, रत्न, विविध प्रकार के वाहन, अश्व और हाथी वगैरह देकर कृष्ण की पूजा की। कृष्ण ने जयसेन वगैरह की प्रेतक्रिया की और सहदेव ने जरासंध वगैरह की प्रेतक्रिया की। फिर जीवयशा ने अपने पति और पिता के कुल का संहार हुआ देखकर अग्नि में प्रवेश करके अपना जीवन त्याग दिया। उस समय यादव आनन्द से कूदने लगे। इससे कृष्ण ने उस सिनपल्ली गांव के स्थान पर **आनन्दपुर** नामक गाँव बसाया।

फिर कृष्ण कइं खेचरों और भूचरों को साथ लेकर छः माह में भरतार्ध साधकर मगध देश में आये, वहां एक योजन ऊँची और एक योजन के विस्तारवाली, भरतार्धवासी देवियों और देवताओं से अधिष्ठित कोटिशिला नामक एक शिला थीं, जिसे कृष्ण ने अपने बाँये हाथ से पृथ्वी से चार अंगुल ऊँचे की। उस शिला को प्रथम वासुदेव ने भुजा के अग्रभाग तक ऊँचे उठाई थी, दूसरे ने मस्तक तक, तीसरे ने कंठ तक, चौथे ने उरःस्थल तक, पांचवें ने हृदय तक, छट्ठे ने कटी तक, सातवें ने जाँघ तक, आठवें ने जानु तक और नौंवें कृष्ण वासुदेव ने पृथ्वी से चार अंगुल ऊँचे धारण की, क्योंकि अवसर्पिणी के नियमानुसार वासुदेवों का बल भी घटता (कम होता) जाता है।

फिर कृष्ण द्वारका में आये। वहां सोलह हजार राजाओं और देवताओं ने उनका अर्धचक्रियपन का अभिषेक किया। इसके बाद कृष्ण ने पाण्डवों को कुरुदेश की ओर एवं अन्य भूचरों तथा खेचरों को अपने अपने स्थान की ओर बिदा किए। समुद्रविजय वगैरह दस बलवान दशार्ह, बलदेवादिक पाँच महावीर, उग्रसेन, प्रमुख सोलह हजार राजा, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार, शांब आदि साठ हजार दुर्दांत कुमार, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर, महासेन प्रभृति महा बलवान छप्पन हजार तलवर्ग और इसके अलावा ईभ्य, श्रेष्ठी, सार्थपति वगैरह हजारों पुरुष मस्तक पर अंजलि जोड़कर कृष्ण की सेवा करने लगे। एक बार सोलह हजार राजाओं ने आकर भक्ति से अनेक रत्न और दो दो कन्याएं कृष्ण वासुदेव को अर्पण की। उनमें से सोलह हजार कन्याओं से कृष्ण ब्याहे। आठ हजार कन्याओं को बलराम ब्याहे और आठ हजार कन्याओं से उनके कुमार ब्याहे। फिर कृष्ण, राम व अन्य कुमार क्रीडोद्यान तथा क्रीडापर्वत

वगैरह में रम्य रमणियों से घिरकर स्वच्छंदता से विहार करने लगे।

एक बार उनको क्रीडा करते हुए देखकर श्री नेमिनाथ प्रभु को राजा समुद्रविजय और शिवादेवी प्रेमसभर वाणी से कहने लगे कि, 'हे पुत्र ! आपको देखकर हमें सदा नेत्रोत्सव होता है, इसके योग्य कोई वधू का पाणिग्रहण करके वृद्धि प्राप्त कराओ।' मातापिता के ऐसे वचन सुनकर जन्म से ही संसार पर विरक्त और तीन ज्ञान के धारक श्री नेमिप्रभु बोले, "पिताजी ! मैं कहीं भी योग्य स्त्री देखता नहीं हूं, क्योंकि ये स्त्रियां तो निरंतर दुःख में डालनेवाली ही होती है, इसलिए मुझे ऐसी स्त्री की जरुर नहीं है। जब मुझे अनुपम स्त्री मिलेगी तब पाणिग्रहण करुंगा।" इस प्रकार श्री नेमिश्वरकुमार ने गंभीर वाणी से अपने सरल प्रकृतिवाले मातापिता को विवाह के उपक्रम संबंधित आग्रह से टाला। उग्रसेन राजा की रानी **धारिणी** को योग्य समय पर **राजीमती** नामक एक पुत्री हुई, वह अद्वैत रुप लावण्य सहित क्रमशः वृद्धि पाने लगी।

यहां द्वारका में **धनसेन** नामक एक गृहस्थ रहता था। उसने उग्रसेन के पुत्र **नभःसेन** को अपनी **कमलामेला** नामक पुत्री दी। एक बार नारद घूमते घूमते नभःसेन के घर आये। उस समय नभःसेन का चित्त विवाहकार्य में व्यग्र था, इसलिए उन्होंने नारद की पूजा नहीं की, जिससे क्रोध पाकर नारद उसका अनर्थ करने के लिए राम के पुत्र निषध का पुत्र **सागरचन्द्र**, जो शांब वगैरह को अतिप्रिय था, उसके पास आये। नारद को आते हुए देखकर उसने खड़े होकर सत्कार करके पूछा कि 'देवर्षे ! आप सर्वत्र घूमा करते हो, तो कुछ भी आश्चर्य किसी जगह देखा हो तो कहिए, क्योंकि आप आश्चर्य देखने में ही प्रीतिवाले हो।' नारद बोले, 'इस जगत में आश्चर्यरुप कमलामेला नाम की धनसेन की कन्या मेरे देखने में आयी है, परंतु उसने वह कन्या हाल ही में नभःसेन को देदी है।' इस प्रकार कहकर नारद उडकर अन्यत्र चले गये, परंतु यह सुनकर सागरचन्द्र उसमें रक्त हो गया, इससे पित्त में उन्मत्त बना ज्यों सर्वत्र सुवर्ण देखता है त्यों वह सागरचन्द्र उसका ही ध्यान धरकर उसे ही देखने लगा। फिर नारद कमलामेला के घर गये। उस राजकुमारी ने भी आश्चर्य पूछा, तो कूट बुद्धिवाले नारद ने कहा, 'इस जगत में दो आश्चर्य देखे हैं, एक तो रुप संपत्ति में श्रेष्ठ कुमार सागरचन्द्र और दूसरा कुरुपी में श्रेष्ठ कुमार नभःसेन।' इस प्रकार सुनकर कमलामेला नभःसेन को छोड़कर सागरचन्द्र में आसक्त बनी। फिर नारद ने सागरचन्द्र के पास जाकर उसका राग बताया।

सागरचन्द्र कमलामेला के विरहरुपी सागर में डूबा है ऐसा जानकर उसकी माता और अन्य कुमार भी विधुर हो गये। इतने में सांब वहा आया। सागरचन्द्र को इस तरह बैठा हुआ देखकर उसके पीछे जाकर, उसकी दोनों आंखों को दो हाथ से ढांप दी। सागर बोला कि 'क्या

यहां कमलामेला आयी है ?' तब शांब बोला, 'अरे मैं कमलामेलक[1] आया हूं।' सागरचन्द्र ने कहा, 'तब ठीक है, आप ही मुझे कमलामेला का मिलाप करा दोगे, जिससे अब मुझे दूसरा कोई उपाय सोचने की जरुरत ही नहीं है।' इस प्रकार का उसका वचन शांब ने नहीं स्वीकारा, तो सर्व कुमारों का साथ उसे भी बहुत मदिरा पिलाकर छल करके सागरचन्द्र ने कबूल करवा लिया। जब मदावस्था बिलकुल चली गयी तब शांब ने सोचा कि मैंने यह दुष्कर कार्य स्वीकारा है, परंतु अब उसका निर्वाह करना चाहिए। फिर प्रज्ञप्तिविद्या का स्मरण करके दूसरे कुमारों को साथ लेकर नभःसेन के विवाह के दिन शांब उद्यान में आया। और वहां से कमलामेला के घर तक सुरंग बनवाकर आसक्त बनी कमलामेला को उसके घर में से उद्यान में उठा लाकर सागरचन्द्र के साथ विधिपूर्वक ब्याह दी। जब उस कन्या को घर में नहीं देखी तो इधर उधर उसकी खोज करते हुए धनसेन के आदमी उद्यान में आये। वहां जिन्होंने खेचर के रुप धरे हैं ऐसे यादवों के बीच रही कमलामेला को उन्होंने देखा, तो उन्होंने यह बात कृष्ण को बतायीं। कृष्ण क्रोध करके कन्या को हरनेवालों के पास आये और उनको मारने की इच्छा से उनके साथ युद्ध करने लगे, क्योंकि वे किसी के अन्याय को नहीं सहन कर सकते थे। फिर शांब अपना मूल स्वरुप प्रगट करके कमलामेला सहित सागरचन्द्र को लेकर कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। कृष्ण नाराज होकर बोले - 'अरे ! तूने यह क्या किया ? हमारे आश्रित नभःसेन को तूने क्यों छला ?' शांबकुमार ने पूरी बात कह सुनायी, तो कृष्ण 'अब क्या उपाय ?' यूं कहकर नभःसेन को समझाया, और कमलामेला सागरचन्द्र को दी। नभःसेन सागरचन्द्र का कोई भी उपकार करने में असमर्थ था, इससे वह तब से हंमेशां सागरचन्द्र का छिद्र ढूंढने लगा।

यहां प्रद्युम्न को **वैदर्भी** नामक स्त्री से **अनिरुद्ध** नाम का पुत्र हुआ। क्रमशः वह युवा हुआ, उस समय **शुभनिवास** नामक नगर में **बाण** नाम का एक उग्र **खेचरपति** था, उसे **उषा** नाम की कन्या थीं। उस रुपमती बाला ने योग्य वर पाने के लिए दृढ़तापूर्वक **गौरी** नाम की विद्या का आराधन किया। वह संतुष्ट होकर बोली, 'वत्से ! कृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध जो इन्द्र जैसा स्वरुपवान और बलवंत है, वह तेरा भर्ता बनेगा।' गौरी विद्या के प्रिय **शंकर** नाम के देव को बाण ने साधा, तो उसने प्रसन्न होकर बाण को रणभूमि में अजेय बनने का वरदान दिया। वह बात जानकर गौरी ने शंकर को कहा कि 'आपने बाण को अजेय बनने का वरदान दिया, यह ठीक नहीं किया, क्योंकि मैंने उसकी पुत्री उषा को प्रथम एक वरदान दिया है।' यह सुनकर शंकर ने बाण को कहा कि ''तू रण में अजेय होगा, लेकिन स्त्री के कार्य के सिवा अजेय होगा।'' बाण इससे भी राजी हुआ।

१. कमला का मिलाप करानेवाला।

उषा बड़ी स्वरुपवान थी, जिससे कौन कौन से खेचरों और भूचरों ने उसके लिए बाण से मांग नहीं की ? सबने की, परंतु बाण को किसी की मांग ठीक नहीं लगी। अनुरागी उषा ने **चित्रलेखा** नाम की विद्याधरी को भेजकर अनिरुद्ध को मन की भाँति अपने घर बुलाया। उसे गांधर्वविवाह से ब्याहकर ले जाते समय आकाश में रहकर बोला कि मैं अनिरुद्ध, उषा का हरण कर जाता हूँ। यह सुनकर बाण गुस्से हुआ, तो शिकारी ज्यों कुत्तों से सूअर को घेरे त्यों अपने बाणावली सैन्य से अनिरुद्ध को घेर लिया। उस समय उषा ने अनिरुद्ध को पाठसिद्ध विद्याएं दी, जिससे पराक्रम में वृद्धि पाए अनिरुद्ध ने बाण के साथ चिरकाल युद्ध किया। आखिर में बाण ने नागपाश से प्रद्युम्न के पुत्र को हाथी के बच्चे की भाँति बांध लिया। प्रज्ञप्ति विद्या ने तत्काल यह वृत्तांत कृष्ण को बताया, तो कृष्ण राम, शांब और प्रद्युम्न को लेकर वहां आये। गरुडध्वज (कृष्ण) के दर्शन मात्र से अनिरुद्ध के नागपाश टूट गये। शंकर के वरदान से व अपने बल से गर्व पाए मदोन्मत बाण ने कृष्ण को कहा, 'अरे ! क्या तू मेरे बल को जानता नहीं है ? तूने सदैव परायी कन्याओं का हरण किया है, इसलिए तेरे पुत्र और पौत्रों को भी यह क्रमशः प्राप्त हुआ है, लेकिन अब मैं उसका फल तुम्हें दिखाता हूँ।' कृष्ण ने कहा, 'अरे दुराशय ! तेरी यह वचनोक्ति किस काम की ? क्योंकि कन्या तो अवश्य ही दूसरों को देनी ही पड़ती है, तो उसे ब्याहने में दोष कैसा ?' कृष्ण के ऐसे वचन सुनकर अनेक खेचरों से युक्त बाण विद्याधर भ्रूकुटी चढ़ाकर कृष्ण पर बाण छोड़ने लगा। बाण छेदने में चतुर ऐसे कृष्ण उसके बाणों को बीच में से ही नष्ट कर देने लगे। इस प्रकार दोनों वीरों का बाण-युद्ध बहुत देर तक चला। आखिर में कृष्ण ने उसे अस्त्ररहित करके, ज्यों गरुड सर्प के टुकडे-टुकडे कर दे त्यों उसके शरीर के टुकडे-टुकडे करके उसे यमद्वार पहुँचा दिया। फिर कृष्ण उषा सहित अनिरुद्ध को लेकर शांब, प्रद्युम्न और राम के साथ हर्ष पाते हुए पुनः द्वारका में आये।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि सागरचन्द्रोपाख्यान–उषाहरण–बाणवधवर्णनो नाम अष्टमः सर्गः॥८॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

नौवाँ सर्ग

भगवान श्री अरिष्टनेमि की कौमारक्रीड़ा, दीक्षा और केवलज्ञान की उत्पत्ति

एक बार श्री नेमिकुमार ने अन्य कुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए घूमते घूमते कृष्ण वासुदेव की आयुधशाला में निःशंकता से प्रवेश किया। वहां सूर्य के बिंब जैसा प्रकाशवान् सुदर्शन चक्र, सर्पराजा के शरीर जैसा भयंकर शार्ङ्ग धनुष्य, कौमुदकी गदा और खड्ग व वासुदेव के यश का कोश हो ऐसा युद्धरुपी नाटक के नांदीवाद्य जैसा पांचजन्य शंख वगैरह उन्हें नजर आया। अरिष्टनेमि ने कुतूहलता से शंख लेने की इच्छा की, यह देखकर उस अस्त्रगृह की रक्षा करनेवाले **चारुकृष्ण** ने प्रणाम करके कहा, 'हे कुमार ! यद्यपि आप कृष्ण वासुदेव के भ्राता हैं, और बलवान भी हैं, फिर भी इस शंख को लेने के लिए आप समर्थ नहीं हैं, तो फूंकने के लिए तो कैसे समर्थ बनेंगे ? इस शंख को लेने और फूंकने के लिए तो कृष्ण सिवा अन्य कोई समर्थ नहीं है, इसलिए आप उसे लेने का वृथा प्रयास करना मत।' यह सुनकर प्रभु ने मुस्कुराकर लीलामात्र में वह शंख उठाया और अधर पर मानो दांत की ज्योत्सना दिखती हो त्यों शोभा पाते हुए उस शंख को फूंका। तत्काल द्वारकापुरी के किल्ले के साथ टकराते समुद्र के ध्वनि जैसे उस नाद ने आकाश व भूमि को भर दिया। प्राकार, पर्वत के शिखर और महल कंपित हुए, कृष्ण, राम और दस दशार्ह क्षोभ पा गये, गजेन्द्र आलानस्तंभ का उन्मूलन करके शृंखला तोड़कर त्रस्त हो गये, घोड़े लगामों का उल्लंघन करके भाग गये, वज्र के निर्घोष जैसे उस ध्वनि को सुनकर नगरजन मूर्च्छा पा गये और अस्त्रागार के रक्षक मृत बने हो त्यों गिर गए। इस प्रकार की सर्व स्थिति देखकर कृष्ण सोचने लगे कि 'यह शंख किसने फूंगा ? क्या कोई चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ या इन्द्र पृथ्वी पर आये ? मैं जब मेरा शंख बजाता हूँ तब सामान्य राजाओं को भी क्षोभ होता है, परंतु इस शंखनाद से मुझे और राम को भी क्षोभ हुआ है।' इस प्रकार कृष्ण सोच रहे थे कि अस्त्ररक्षकों ने आकर बताया कि 'आपके भाई अरिष्टनेमि ने आकर पांचजन्य शंख को एक लीलामात्र में फूंका है।' यह सुनकर कृष्ण विस्मय पा गये, परंतु मन में इस बात पर श्रद्धा न बैठने से कुछ सोच में पड़े। इतने में तो नेमिकुमार भी वहां आये। कृष्ण ने संभ्रम से खड़े होकर नेमिनाथ को अमूल्य आसन दिया और फिर गौरव से कहा, 'हे भ्राता ! क्या अभी यह पांचजन्य शंख आपने फूंका कि जिसके ध्वनि से पूरी पृथ्वी अब तक क्षोभ पा रही है ?' नेमिनाथ ने हाँ कहा तो कृष्ण उनके भुजबल की परीक्षा करने के इरादे से आशयपूर्वक बोले, 'हे भाई ! मेरे सिवा पांचजन्य शंख फूंकने के लिए अन्य कोई समर्थ नहीं है, आपने शंख फूंका यह देखकर मैं बड़ा प्रसन्न बना हूँ। परंतु हे मानद ! अब मुझे प्रसन्न करने के लिए तुम्हारा भुजबल दिखाओ, और मेरे साथ बाहुयुद्ध से युद्ध करो।'

नेमिकुमार ने यह स्वीकारा, तो दोनो वीरबंधु अनेक कुमारों सहित अस्त्रागार में गये।

प्रकृति से दयालु ऐसे नेमिकुमार ने सोचा कि 'यदि मैं छाती से, भुजा से या चरण से कृष्ण को दबाऊंगा तो उसका क्या हाल होगा ? इससे उसको तकलीफ न हो उस प्रकार वह मेरी भुजा का बल जाने वैसा करना ही योग्य होगा' इस प्रकार विचार करके नेमिकुमार ने कृष्ण को कहा कि 'हे बंधु ! बार बार पृथ्वी पर लौटना वगैरह से युद्ध करना तो साधारण मनुष्य का काम है, इसलिए परस्पर भुजा झुकाने द्वारा ही हमारा युद्ध होना चाहिए।' कृष्ण ने वचन स्वीकार के अपनी भुजा बढ़ाई। वृक्ष की शाखा समान उस विशाल भुजा को कमलदण्ड की तरह लीलामात्र में नेमिकुमार ने झुका दी। फिर नेमिनाथ ने अपनी बाँयीं भुजा बढ़ाई तो कृष्ण वृक्ष को बंदर चिपके त्यों पूरा बल लगाकर उससे चिपक पड़े, परंतु नेमिकुमार के उस भुजस्तंभ को ज्यों वन का हाथी पृथ्वी के दांत जैसे महागिरि को नहीं झुका सके त्यों थोडी सी भी नहीं झुका सके। फिर नेमिनाथ का भुजस्तंभ छोड़कर कृष्ण उन्हें आलिंगन देकर इस प्रकार बोले, 'हे प्रिय ! बंधु ! ज्यों राम मेरे बल से जगत को तृण समान मानते हैं त्यों मैं आपके बल से समस्त विश्व को तृण के समान मानता हूँ।' इस प्रकार कहकर कृष्ण ने नेमिनाथ को बिदा किए। फिर कृष्ण ने राम को कहा, 'हे भाई ! आपने बंधु नेमिनाथ का लोकोत्तर बल देखा ? वृक्ष पर पक्षी की तरह मैं अर्धचक्री उसकी भुजा के साथ लटका रहा ! इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि इन नेमिनाथ के बल समान चक्रवर्ती व इन्द्र का बल भी नहीं है। उनका ऐसा बल है, फिर भी ये हमारे अनुज बंधु समग्र भारतवर्ष को क्यों नहीं साधते ? यूं सुस्त होकर क्यों बैठे रहते हैं ?' राम ने कहा, 'भाई ! ज्यों वह बल में चक्रवर्ती से भी अधिक दिखते हैं, त्यों शांत मूर्ति से राज्य में भी निःस्पृह दिखते हैं।' राम ने इस प्रकार कहा, फिर भी अपने अनुज बंधु के बल पर शक करते कृष्ण को देवताओं ने कहा, "हे कृष्ण ! पूर्वकाल में श्री नमिप्रभु ने कहा था कि मेरे बाद नेमिनाथ तीर्थंकर बनेंगे, वे कुमार ही रहेंगे।' इसलिए उन्हें राज्यलक्ष्मी की इच्छा नहीं है। वे समय की राह देख रहे हैं। योग्य समय मिलते ही जन्मब्रह्मचारी रहकर वे दीक्षा ग्रहण करेंगे, तो आप थोड़ी सी भी अन्य चिंता मत करें।" देवों के इस प्रकार के वचन सुनकर कृष्ण ने प्रसन्न होकर राम को बिदा किया। फिर स्वयं अंतःपुर में जाकर वहां नेमिनाथ को बुलवाया। दोनों बंधुओं ने रत्न-सिंहासन पर बैठकर वारांगनाओं द्वारा डाले हुए जलकलशों से स्नान किया। देवदूष्य वस्त्र से अंग पोछकर दिव्य चंदन का विलेपन किया। फिर वहां बैठकर दोनों वीरों ने साथ ही भोजन किया। फिर कृष्ण ने अंतःपुर के रक्षकों को आज्ञा दी की 'ये नेमिनाथ मेरे बंधु हैं और मुझ से अधिक हैं, तो उनको अंतःपुर में जाते हुए कभी भी रोकना मत। सर्व भ्रातृ-पत्नियों (भावजों) के बीच ये नेमिकुमार भले ही क्रीडा करे, उसमें कुछ भी दोष नहीं है।' फिर सत्यभामा वगैरह अपनी पत्नियों को आज्ञा दी कि 'ये नेमिकुमार मेरे प्राण

समान हैं, ये आपके देवर लगते हैं, उनका मान रखना और उनके साथ निःशंकता से क्रीड़ा करना।' इस प्रकार कृष्ण ने कहा तो अंतःपुर की स्त्रियों ने उसी समय नेमिकुमार की पूजा की। फिर नेमिकुमार भोग से पराङ्मुख और निर्विकारपूर्वक उनके साथ विहार करने लगे, और अपने सदृश ही अरिष्टनेमि कुमार के साथ कृष्ण अंतःपुर सहित हर्ष से क्रीडागिरी वगैरह पर क्रीडा करने लगे।

एक बार वसंतऋतु में कृष्ण, नेमिनाथ, नगरजन और सब यादवों के साथ अंतःपुर सहित रैवताचल के उद्यान में क्रीड़ा करने गये। ज्यों नंदनवन में सुर असुर के कुमार क्रीडा करे त्यों वहां यादवकुमार और नगरजन विविध क्रीडा करने लगे। कोई बकुल वृक्ष के नीचे बैठकर बोरसली के पुष्पों की खूशबो से सुगंधी व कामदेव की जीवनऔषधि रुप मदिरा का मदिरापान करनेकी भूमि में बैठकर पान करने लगे, कोई वीणा बजाने लगे, कोई उच्च स्वर से बसंत राग गाने लगे, कोई मदिरा से मत्त होकर अपनी स्त्रियों के साथ किन्नर की तरह नाचने लगे। चमेली, अशोक और बोरसली वगैर वृक्षों पर से कोई पुष्पहर विद्याधरों की तरह अपनी स्त्रियों के साथ पुष्प चुनने लगे, कोई चतुर माली की तरह पुष्पों के आभूषण गूंथ गूंथकर रमणियों के अंग पर पहनाने लगे, कोइ नवपल्लव की शय्या में और लतागृह में कांदर्पिक देव की भाँति युवतियों के साथ क्रीडा करने लगे, कोई गाढ रति से श्रांत होकर पानी की नहर के किनारे लोटते भोगी, भोगी[1] की भाँति मलयाचल के पवन का पान करने लगे। कोइ कंकिल्लि के वृक्ष की शाखा के साथ झूला बांधकर रति और कामदेव की भाँति अपनी अंगना के साथ झूलने लगे, और कइं कामदेव के शासन में रहते पुरुष कंकिल्लि के वृक्षों पर अपनी प्रिया के चरणघात करवाकर, बोरसल्ली वृक्षों को मदिरा का गंडूष डलवाकर, तिलक के वृक्षों को सराग दृष्टि से दिखवाकर, कुरुबक के वृक्षों को गाढ़ आलिंगन दिलवाकर और इसके अलावा अन्य दूसरे प्रकार के दोहद से अन्य वृक्षों को विशेष प्रकार से पुष्पित करने लगे।

उस समय कृष्ण वासुदेव भी नेमिकुमार को साथ रखकर सत्यभामा वगैरह स्त्रियाँ सहित वन के हाथी की भाँति इधर-उधर घूमने लगे। वहाँ नेमिकुमार को देखकर कृष्ण को विचार आया कि 'यदि नेमिनाथ का मन भोग में लग जाय तो ही मेरी लक्ष्मी कृतार्थ हो जाय और तो ही मेरा सौभ्रातपना भी माना जाय, इससे आलंबन, उद्दीपन और विभाव-अनुभाव बारबार करके नेमिकुमार को मेरे अनुकूल करने चाहिए, जिससे मेरा यह मनोरथ पूर्ण हो जाय।' इस प्रकार सोचकर कृष्ण ने अपने हाथ से एक पुष्पमाला गूंथकर दूसरे मुक्ताहार की भाँति नेमिकुमार के गले में डाली। फिर कृष्ण का भाव जानकर सत्यभामा वगैरह चतुर रमणियां

१. सर्प।

भी विचित्र पुष्पाभरण से श्री नेमि को सजाने लगी। कोई उनके पृष्ठ पर अपने पुष्ट और उन्नत स्तन का स्पर्श करके उनका केशपाश सुंदर पुष्पमालाओं से गूंथने लगी, कोई हरिवल्लभा भुजलता बनाकर करमूल दिखाते हुए नेमिकुमार के सर पर मुगुट गूंथने लगी, कोई हाथ से पकडकर उनके कर्ण में कामदेव के जयध्वज जैसा कर्णाभूषण रचने लगी और क़ोई उनके साथ क्रीडा में विशेष कालक्षेप करने की इच्छा से उनकी भुजा पर बार बार नये नये केयूर[1] बांधने लगी। इस प्रकार उन्होंने ऋतु का अनुसरण करते हुए श्री नेमिकुमार के अनेक प्रकार के उपचार किए। नेमिकुमार ने भी निर्विकार चित्त से उनका भी वैसा ही प्रति उपचार किया।

इस तरह विचित्र क्रीडाओं से एक अहोरात्र वहीं व्यतीत करके कृष्ण परिवार सहित वापस द्वारका लौटे। राजा समुद्रविजय, दूसरे दशार्ह और कृष्ण आदि सर्व नेमिनाथ को पाणिग्रहण कराने के लिए सदैव उत्कंठित रहने लगे। इस प्रकार क्रीडा करते हुए नेमि और कृष्ण की वसंतऋतु बीत गई, और कामदेव की तरह सूर्य को प्रौढ़ करती हुई ग्रीष्मऋतु आयी। उस समय कृष्ण के प्रताप की तरह बालसूर्य भी असह्य बन पड़ा। और प्राणियों के कर्म की तरह रात्रि को भी धर्म (ग्रीष्म) शांत नहीं होता था। इस ऋतु में युवा पुरुष श्वेत कदली की त्वचा जैसे कोमल और कस्तूरी से धूपित हुए वस्त्र पहनने लगे, स्त्रियां कामदेव के शासन की तरह हाथी के कर्ण जैसे चलाचल पंखे को थोड़ी देर के लिए भी न छोड़ने लगी। युवक विचित्र पुष्परस द्वारा द्विगुण सुगंधित किया हुआ चन्दन जल बार बार अपने पर छिड़कने लगे। नारियां हृदय पर सर्व ओर कमलनाल रखकर मुक्ताहार से भी अधिक सौभाग्य (शोभा) पाने लगी। बार बार बाहु से गाढ आलिंगन देते हुए युवक प्रिया की तरह जलार्द्र वस्तु को छाती पर ही रखने लगे। ऐसी धर्म से भीष्म ग्रीष्मऋतु में कष्ण अंतःपुर सहित नेमिनाथ को लेकर रैवतगिरि के उद्यान में सरोवर पर क्रीडा करने आये।

फिर मानससरोवर में हंस की तरह उस सरोवर में कृष्ण अंतःपुर और नेमिनाथ सहित जलक्रीडा करने घुसे। उसमें कण्ठ तक मग्न बनी कृष्ण की स्त्रियों के मुख नवीन खिले कमलिनी खण्ड की भ्राँति उत्पन्न करने लगे। कृष्ण ने किसी रमणी पर जल की अंजलि डाली तो उस चतुरा ने गंडूष जल से ही कृष्ण के उपर प्रति आक्षेप किया। कइं जलभीरु वामाएं कृष्ण को चिपक पडती थीं, जिससे कृष्ण पुतलियोंवाले स्तंभ जैसी शोभा धारण करते थे। जल-तरंगों की तरह बार बार उछलती मृगाक्षियां कृष्ण के उरःस्थल पर तेजी से टकराती थीं। जल के आघात से उन रमणियों की दृष्टि ताम्रवर्णी हो जाती थी। मानो अपने भूषणरुपी अंजन के नाश

१. बाजुबंध, बेरखी।

से उनको ज्यादा रोष न हुआ हो ऐसी वे दिखती थी। कृष्ण किसी स्त्री को उसकी प्रतिपक्षी सपत्नी के नाम से पुकारते थे, जिससे वह हाथी की सूंढ की तरह कमल द्वारा कृष्ण पर प्रहार करती थी। किसी बाला को कृष्ण बहुत देर तक देखते थे, तो इससे उसकी प्रतिपक्षी दूसरी स्त्री इर्ष्या धरकर कृष्ण के नेत्र पर कमलरज मिश्रित जल से ताडन करती थी। कुछ मृगनेत्रा युवतिर्या गोपरुप की रासलीला याद करके कृष्ण के आसपास घूमती थीं। उस समय नेमिकुमार निर्विकार होने पर भी भाई के आग्रह से अनेक प्रकार से हांसी कर रही भ्रातृपत्नियों के साथ क्रीडा कर रहे थे। 'देवरजी ! अब कहां जाते हो ?' यूं कहकर कृष्ण की स्त्रियां एक साथ हाथ से ताडित किए हुए जल से नेमि का आच्छादन करने लगीं। उस समय जल के छींटे उडाती हुई कृष्ण की स्त्रियों के कर से श्री नेमि प्रभु पल्लवित वृक्ष की भाँति शोभा पाने लगे। फिर वे स्त्रियां जलक्रीडा के बहाने स्त्रीस्पर्श दर्शाने के लिए नेमिकुमार के कण्ठ से लिपट पड़ी, छाती से छाती टकराइ और भुजाओं द्वारा लिपट गई। किसी रमणीय छत्र की तरह नेमिकुमार पर सहस्रपत्र कमल रखकर मानो अंतःपुर की छत्रधारिणी हो त्यों दिखने लगी। किसी स्त्री ने हाथी के कण्ठ में उनके बन्धन की शृंखला डाले त्यों नेमिकुमार के कण्ठदल में कमलनाल का आरोपण किया। किसी बाला ने कुछ बहाना निकालकर कामदेव के अस्त्रों से अनाहत[1] नेमिनाथ के हृदय पर शतपत्र कमल से ताडन किया। नेमिकुमार ने भी उन सब भ्रातृपत्नियों के साथ कृतप्रतिकृतपन[2] से चिरकाल निर्विकार चित्त से क्रीडा की। अपने अनुज को क्रीडा करते हुए देखकर कृष्ण को इतना अधिक हर्ष हुआ कि वे सरोवर के जल के नंदीवर में हाथी की तरह चिरकाल तक खड़े रहे। फिर कृष्ण जलक्रीडा समाप्त करके सरोवर में से बाहर निकले तो सत्यभामा तथा रुक्मिणी वगैरह स्त्रियां भी तट पर आकर खडी रही।

नेमिकुमार सरोवर में से हँस की तरह बार निकले, और जहां रुक्मिणी वगैरह खड़ी थी उस तट पर जाकर खड़े रहे। तत्काल रुक्मिणी वगैरह ने खड़े होकर उनको रत्नासन दिया और अपने उत्तरीय वस्त्र से उनके अंग को जलरहित किया। उस समय सत्यभामा मजाक सहित विनयपूर्वक बोली, "देवरजी ! आप हंमेशा हमारा कहना सहन करते हो, इसलिए मैं निर्भय होकर कहती हूं कि हे सुन्दर ! आप सोलह हजार स्त्रियों के भर्ता श्रीकृष्ण के भाई होकर एक कन्या को भी क्यों नहीं ब्याहते ? इन तीन लोकों में आपका शरीर अप्रतिम रुपलावण्य से पवित्र है और नवीन यौवन है, फिर भी आपकी ऐसी स्थिति क्यों हैं ? आपके माता-पिता, आपके भाइ और सर्व भावजें विवाह करने के लिए आपको प्रार्थना करते हैं, जिससे हम सबकी इच्छा पूर्ण कीजिए। लांठ की तरह पत्नी बिना एक अंगवाले रहकर आप कितना काल निर्गमन

१. घायल न हुआ हो २. करे वैसा सामने करना।

करोगे ? इसका आप स्वयं ही विचार करें। हे कुमार ! क्या आप अज्ञ हैं ? या नीरस हो ? या नपुंसक हो ? यह हमें कहिए, क्योंकि स्त्रीभोग के बिना अरण्य के पुष्प की तरह आप निष्फल यौवन गँवा रहे हो। ज्यों श्री ऋषभनाथ ने प्रथम तीर्थ प्रवर्तित किया, त्यों उन्होंने सांसारिक अवस्था में विवाहमंगल वगैरह भी प्रथम दर्शाये हैं। योग्य समय पर रुचि अनुसार खुशी से ब्रह्मचर्य पालना, पर गृहस्थपने में अशुचि स्थान में मंत्रोद्गार की तरह ब्रह्मचर्य पालना उचित नहीं है।'' फिर जांबवती बोली, 'अरे कुमार ! आपके ही वंश में मुनिसुव्रत प्रभु हुए हैं, वे विवाह करके पुत्र उत्पन्न होने के बाद तीर्थंकर बने थे। ऐसा सुनाई देता है कि इसके सिवा जिन शासन में दूसरे कइं महात्मा विवाह करने के बाद मुक्त बने हैं और बनेंगे। यह आप भी जानते हो, फिर भी आप कोई नवीन मुमुक्षु हुए हो कि जो मुक्तजनों का मार्ग छोड़कर जन्म से ही स्त्रीपराङ्मुख रहते हो।' सत्यभामा प्रणयकोप करके बोली कि 'हे सखी ! तू उसे क्यों सामवचन[1] कहती है ? ये सामवचन से साध्य नही है। पिता ने, ज्येष्ठ भ्राता ने और अन्य दूसरों ने भी विवाह के लिए प्रार्थना की है, फिर भी इन्होंने उनका भी मान नहीं रखा हैं, तो हम सब एकत्रित होकर उन्हें यहीं रोक रखें। यदि वे हमारा वचन मानेंगे तो उन्हें छोडेंगे, नहीं तो छोडने ही नहीं।' फिर लक्ष्मणा वगैरह अन्य स्त्रियां बोली, 'बहन ! ऐसा नहीं हो सकता, वे हमारे देवर हैं, जिससे वे हमारे आराध्य योग्य हैं, तो कोप करके उनको तुम्हें कुछ कहना नहीं, उन्हें तो किसी भी तरह से प्रसन्न करना ही उचित उपाय है।' उन्होंने यूं कहा तो रुक्मिणी वगैरह कृष्ण की सर्व स्त्रियां विवाह के लिए आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते हुए नेमिकुमार के चरणों में गिरी।

इस तरह स्त्रियां प्रार्थना कर रही थीं, वह देखकर कृष्ण भी समीप आकर विवाह के लिए नेमिकुमार को प्रार्थना करने लगे। उस समय अन्य यादव भी वहां आकर बोले कि 'हे कुमार ! इस भाई का वचन मानो और शिवादेवी, समुद्रविजय और अन्य स्वजनों को भी आनंद दे।' जब इस प्रकार सब मिलकर आग्रह से दबाव डालने लगे तो नेमिनाथ सोचने लगे कि 'अहो ! इन सबकी कैसी अज्ञानता है ? इस समय मेरी दाक्षिण्यता को भी धिक्कार है ! केवल ये लोग स्वयं ही संसारसमुद्र में गिरते नहीं हैं बलकि वे स्नेहशिला बांधकर अन्यों को भी संसारसमुद्र में गिराते हैं, इसलिए इस समय तो इन सबका वचन मात्र वाणी से ही मान लेना चाहिए। फिर जब समय आये तब तो अवश्य आत्महित ही करना होगा। पूर्वकाल में श्री ऋषभदेव प्रभु ने जो विवाह किया था वो मात्र अपने ऐसे भोग्यकर्म के कारण ही, क्योंकि कर्म की गति विचित्र है।' इस प्रकार विचार करके श्री नेमि ने उन सबका वचन स्वीकारा, यह सुनकर समुद्रविजय वगैरह सबने बड़ा हर्ष पाया।

१. मीठे वचन।

फिर कृष्ण ग्रीष्मऋतु वहीं व्यतीत करके परिवार सहित नेमि के योग्य कन्या देखने उत्सुक होकर द्वारका में आये। वहां सत्यभामा ने कहा कि 'हे नाथ ! मेरी **राजीमती** नाम की एक छोटी बहन है, वह अरिष्टनेमि के एकदम योग्य है।' यह सुनकर कृष्ण बोले, 'हे सत्यभामा ! तुम सचमुच मेरी हितकारी हो, क्योंकि नेमिनाथ के योग्य स्त्री के चिंतारुपी सागर में से तुमने मेरा उद्धार किया है।' कृष्ण स्वयं ही तत्काल उग्रसेन के घर गये। मार्ग में यादवों और नगरजनों ने संभ्रम से उन्हें जाते हुए देखा। उग्रसेन ने अर्घ्यपाद्य वगैरह से कृष्ण का सत्कार करके सिंहासन पर बिठाकर आगमन का कारण पूछा। कृष्ण बोले, 'हे राजन ! आपको राजीमती नाम की कन्या है, वह मेरे अनुज भाई नेमि जो मुझसे गुण में अधिक है, उसके योग्य है।' कृष्ण के ऐसे वचन सुनकर उग्रसेन बोले, 'हे प्रभु ! आज हमारे भाग्य खुल गये हैं, जो आप हमारे घर पधारें और हमें कृतार्थ भी किया है। हे स्वामिन् ! यह ग्रह, यह लक्ष्मी, ये हम, यह पुत्री और अन्य सब आपके आधीन हैं, तो स्वाधीन वस्तुं में प्रार्थना क्या ?' उग्रसेन के ऐसे वचन सुनकर कृष्ण खुश हुए और शीघ्र समुद्रविजय के पास आकर खबर दी। समुद्रविजय ने कहा, 'हे वत्स ! तुम्हारी पितृभक्ति और भ्रातृवात्सल्य देखकर मुझे बड़ा हर्ष होता है। एवं तुमने मेरे नेमिकुमार को भोगाभिमुख किया, इससे हमने बड़ा आनन्द पाया है, क्योंकि अरिष्टनेमि विवाह करने का कबूल करे तो ठीक, यह मनोरथ इतने अरसे तक हमारे मन में ही लीन हो जाता था।'

फिर राजा समुद्रविजय ने क्रौष्टुकि को बुलवाकर नेमिनाथ और राजीमती के विवाह के लिए शुभ दिन पूछा, तो क्रोष्टुकि ने कहा कि 'हे राजन् ! वर्षाकाल में साधारण शुभ कार्य का भी आरंभ करना कहा नहीं है तो विवाह की तो बात ही क्या करनी ?' समुद्रविजय ने कहा, 'इस समय थोड़ा सा कालक्षेप करना योग्य नहीं है, क्योंकि कृष्ण ने महामुश्किल से नेमिनाथ को विवाह के लिए राजी किया है, इसलिए विघ्न न आये ऐसा नज़दीक का ही कोई विवाह का दिन बताइए और आपकी अनुज्ञा से गांधर्व विवाह की तरह यह विवाह हो जाय।' क्रोष्टुकि ने सोचकर कहा, 'हे यदुपति ! यदि ऐसा ही है तो फिर श्रावण माह की शुक्ल षष्ठी के रोज यह कार्य करें।' राजा ने कोष्टुकि को सत्कार करके बिदा किया। इसके बाद यह वार्ता उग्रसेन को कहलवाई, और वे दोनों इस कार्य में तैयार हुए। कृष्ण भी द्वारका में प्रत्येक दुकान, प्रत्येक दरवाजे और प्रत्येक गृह पर रत्नमय मांचे और तोरण वगैरह रचवाये। विवाह का दिन नज़दीक आया तो दशार्ह और रामकृष्ण वगैरह एकत्रित हुए। शिवादेवी, रोहिणी और देवकी वगैरह माताएं, रेवती प्रमुख राम की पत्नियाँ और सत्यभामा वगैरह कृष्ण की पत्नियां, धात्रियां और अन्य गोत्रवृद्ध और सौभाग्यवती रमणियाँ एकत्रित होकर ऊंचे स्वर में गीत गाने लगी। सबने मिलकर नेमिकुमार को पूर्वाभिमुख में उत्तम आसन पर बिठाया, और राम कृष्ण ने प्रीति से

स्वयं उनको नहलाया। फिर नेमिकुमार के हाथ में मंगलसूत्र बांधकर, हाथ में बाण देकर कृष्ण उग्रसेन के घर गये। वहां पूर्ण चन्द्र जैसे मुखवाली राजीमती को भी कृष्ण ने उसी तरह स्नानादि करवाकर तैयार कराने के बाद अपने घर आये।

रात्रि बीताकर प्रातःकाल में नेमिनाथ को विवाह के लिए उग्रसेन के घर ले जाने के लिए तैयार किए। श्वेत छत्र सिर पर धरा, दोनों तरफ श्वेत चँवर चलने (घुमने) लगे, दो श्वेत वस्त्र पहनाए गये, मुक्ताफल के आभरणों से सजाये तथा मनोहर गोशीर्ष चन्दन से अंगराग किया। इस प्रकार तैयार होने के बाद नेमिनाथ श्वेत अश्ववाले रथ पर आरुढ हुए। उस समय अश्वों के हेषारव से दिशा बधिर करते हुए करोड़ो की संख्या में कुमार बाराती होकर उनके आगे चले, दोनों तरफ हजारों राजा हाथी पर चढ़कर चलने लगे, और उनके पीछे दस दशार्ह और राम कृष्ण चलने लगे। इसके बाद महामूल्यवान शिबिकाओं में बैठकर अंतःपुर की स्त्रियां और दूसरी भी स्त्रियां मंगल गीत गाते गाते चलीं। इस प्रकार बड़ी समृद्धि से श्री नेमिकुमार राजमार्ग पर चल पड़े। आगे मंगलपाठक उच्च स्वर में मंगलपाठ करते करते चल रहे थे और मार्ग में अट्टालिकाओं पर चढ़ी हुई पुर स्त्रियां की प्रेमार्द्र नजरें मंगलालाजा[1] की तरह नेमिनाथ पर पड़ती थी। इस प्रकार पुरजनों ने देखे हुए और हर्ष से परस्पर वर्णित नेमिकुमार क्रमशः उग्रसेन के घर समीप आये। नेमिनाथ के आगमन का कोलाहल सुनकर मेघध्वनि से मयूरी की तरह कमललोचना राजीमती गाढ़ उत्कंठावाली बनी। उसका भाव देखकर उसकी सखियां बोली, 'हे सुन्दरी ! आप धन्य हो कि जिसका पाणिग्रहण नेमिनाथ करेंगे। हे कमललोचना ! यद्यपि नेमिनाथ यहीं आनेवाले हैं, फिर भी हम उत्सुकता के कारण झरोखे में रहकर उन्हें देखना चाहती है।' अपने मनोगत अर्थ को कहने से हर्ष पायी हुई राजीमती भी संभ्रम से सखियों सहित झरोखे पर आयी।

राजीमती ने चन्द्र सहित मेघ समान मालती पुष्प से गूंफन किया हुआ केशपाश धारण किया था, जो दो विशाल लोचन से कर्ण में धारण किये हुए आभूषणभूत कमल को हराता था, मुक्ताफलवाले कुंडलयुक्त कर्ण से छीप की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था, हींगलोक सहित अधर से पके बिंबफल को लजा रहा था, उसकी कण्ठाभूषणयुक्त ग्रीवा सुवर्ण की मेखलावाले शंख समान शोभा दे रही थी, हार से अंकित स्तन बिस ग्रहण करनेवाले चक्रवाक समान शोभा पा रहे थे, करकमल से कमलखण्डयुक्त नदी समान दिखती थी, मानो कामदेव की धनुर्लता हो ऐसा उसका मध्य भाग (कटिप्रदेश) मुष्टिग्राह्य था, सुवर्णफलक समान नितंब से वह मनोरम दिखती थी, कदली जैसे उसके उरु थे, हिरनी जैसी उसकी जंघा थी, रत्न जैसी नखश्रेणी थी, श्वेत वस्त्र पहने थे और अंग पर गोरो चन्दन का विलेपन किया था।

१. मांगलिक निमित्त उडाई हुई लाजा याने धानी।

इस प्रकार तैयार होकर ज्यों देवी विमान में बैठी हो त्यों वह झरोखे में आकर बैठी। वहां रहकर उसने मानो प्रत्यक्ष कंदर्प हो त्यों हृदय में कंदर्प को प्रदीप्त करनेवाले नेमिनाथ को दूर से देखा। उनको दृष्टि से निरखकर उसने मन में सोचा कि 'अहो ! मन से भी ऐसे अगोचर पति मिलना दुर्लभ है। तीन लोक में आभूषणरुप ऐसे पति मुझे प्राप्त हुए तो फिर मेरे जन्म का फल क्या पूर्ण नहीं हुआ है ? यद्यपि वे ब्याह की इच्छा से यहां आये हैं, फिर भी मुझे प्रतीति नहीं आती है, क्योंकि ऐसे पुरुष बडा पुण्य हो तो ही प्राप्त होते हैं।' इस प्रकार वह सोच रही थी कि उसका दक्षिण लोचन और दक्षिण बाहु फड़क उठा, जिससे उसके मन में और अंग में संताप उत्पन्न हुआ। फिर धारागृह की पूतली की तरह नेत्र में से अश्रु को बरसाती हुई राजीमती ने अपनी सखियों को गद्‌गद् स्वर से यह बात बतायी। वह सुनकर सखियां बोली, 'सखी ! पाप शांत हो, अमंगल नष्ट हो और सब कुलदेवियां तुम्हारा कल्याण करें। बहन ! शांत बन, यह तेरा दूल्हा पाणिग्रहण के लिए उत्सुक बनकर यहां आया है, तो अब विवाहमहोत्सव हो रहा है तो तुझे अनिष्ट की चिंता क्यो होती है ?'

यहां आते हुए नेमिनाथ ने प्राणियों का करुण स्वर सुना, जिससे उसका कारण जानते हुए भी उन्होंने सारथि को पूछा, 'यह क्या सुनाई दे रहा है ?' सारथि ने कहा, 'नाथ ! क्या आप नहीं जानते ? आपके विवाह में भोजन के लिए विभिन्न प्राणियों को लाया गया है। हे स्वामिन् ! मेंढे वगैरह भूमिचर, तितर वगैरह खेचर व गाँवों के तथा अटवियों के प्राणी यहां भोजन के निमित्त से पंचत्व मृत्यु को पायेंगे। उनको रक्षकों ने बाड़े में रखा हैं, ये प्राणी भय से पुकार रहे हैं, क्योंकि सब जीवों को प्राणविनाश का भय बड़े से बड़ा है।' फिर दयावीर नेमिप्रभु ने सारथि को कहा कि 'जहां ये प्राणी हैं, वहाँ मेरा रथ ले जा।' सारथि ने तत्काल वैसा किया, तो प्रभु ने प्राणनाश के भय से चकित हुए विविध प्राणियों को वहां देखा। किसिको ग्रीवा में रस्सी डालकर बांधा था तो किसिको पैरों से बांधा था, किसिको पिंजरे में रखा था और किसिको पाश में डाला हुआ था। ऊँचे मुखवाले, दीन नेत्रोंवाले और जिनके शरीर कम्पायमान हैं ऐसे इन प्राणियों ने दर्शन से भी तृप्त करे ऐसे नेमिनाथ प्रभु को देखा तो वे अपनी अपनी भाषा में 'पाहि, पाहि' (रक्षण करें, रक्षण करें) यूं बोले। वह सुनकर प्रभु ने सारथि को तत्काल आज्ञा देकर उनको छुड़वा दिया। वे सब प्राणी अपने अपने स्थान पर चले गये। प्रभु ने अपने रथ को वापस अपने घर की ओर मुड़वाया।

नेमिकुमार को वापस लौटते हुए देखकर शिवादेवी और समुद्रविजय तत्काल वहां आकर नेत्र में अश्रु लाकर बोले, 'वत्स ! इस उत्सव में से अचानक क्यों वापस लौटे ?' नेमिकुमार बोले, 'हे माता-पिता ! जैसे ये प्राणी बंधन से बंधे हुए थे, वैसे हम भी कर्मरुप बंधन से बंधे

हुए हैं, और जैसे मैंने उनको बंधनमुक्त किया, वैसे मैं भी कर्मबंधन से मुक्त होने के लिए अद्वैत सुख के कारणरुपी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।' नेमिकुमार के ऐसे वचन सुनकर उनके मातापिता मूर्छित हुए और सब यादव नेत्र से अविच्छिन्न अश्रुपात करके रोने लगे। उस समय कृष्ण ने वहां आकर शिवादेवी और समुद्रविजय को आश्वासन देकर सबका रुदन निवारण करके अरिष्टनेमि को कहा, "हे मान्यवंत भाई ! आप मुझे और राम को सदा मान्य हैं, आपका रुप अनुपम है और नवीन यौवन है एवं यह कमललोचना राजीमती आपके ही योग्य है, फिर भी आपको वैराग्य होने का कारण क्या है यह बताए और आपने जो प्राणियों को बंधे हुए देखे थे, उनको भीं बंधन में से छुडवाया, तो अब आपके माता-पिता और बांधवों के मनोरथ को पूरा कीजिए। हे बंधु ! आपके माता-पिता, जो महाशोक में निमग्न हुए हैं उनकी उपेक्षा करना योग्य नहीं है, उनके उपर भी सब की तरह साधारण कृपा करें। ज्यों आपने इन दीन प्राणियों को प्रसन्न किया त्यों अब आपका विवाहोत्सव बताकर इन राम वगैरह भाइयों को भी प्रसन्न करें।"

नेमिनाथ बोले, "हे बांधव ! मेरे मातापिता और आप-बंधुओं को शोक होने का कुछ भी कारण मुझे दिखाई नहीं देता है, और मुझे वैराग्य होने का कारण तो यह है कि यह चतुर्गतिरुप संसार है, जिसमें उत्पन्न प्राणी निरंतर दुःख का ही अनुभव करते हैं। प्रत्येक जन्म में मातापिता और भ्राता तो होते रहते हैं, परंतु उसमें कोई कर्म के भागीदार नहीं बनते, सबको अपने अपने कर्म भोगने ही पड़ते हैं। हे हरि ! यदि दूसरे के दुःख दूसरे से दूर हो सकते हो तो विवेकी मनुष्य मातापिता के लिए प्राण भी देदे, लेकिन प्राणी पुत्रादिक होने पर भी जरा, मृत्यु वगैरह के दुःख स्वयं ही भोगते हैं, उसमें कोई किसिका रक्षक नहीं बनता। यदि पुत्र पिता की दृष्टि में ही मात्र आनन्द के लिए हैं तो उन्हें मेरे अलावा अन्य महानेमि प्रमुख पुत्र हैं जो आनन्द के हेतु हैं ही। मैं तो वृद्ध पांथ की तरह संसाररुपी मार्ग में गमनागमन करके खिन्न हो गया हूँ, इसलिए अब तो उसके हेतुरुप कर्म का उच्छेद करने का ही प्रयत्न करूंगा। उस कर्म का उच्छेद दीक्षा बिना साध्य नहीं है, इसलिए मैं उसे ग्रहण करूंगा, इसलिए आप मुझे वृथा आग्रह करना मत।"

पुत्र के ऐसे वचन सुनकर समुद्रविजय बोले, 'वत्स ! तू गर्भेश्वर है और शरीर में सुकुमार है, तो दीक्षा का कष्ट किस प्रकार सहन कर सकेगा ? ग्रीष्मऋतु का घोर ताप सहन करना तो दूर रहा, पर दूसरी ऋतुओं का ताप भी छाते बिना सहन करना असंभव है। क्षुधा-तृषा वगैरह के दुःख अन्य से भी सहन नहीं होता तो दिव्य भोग के योग्य शरीरवाले तुझसे वह किस प्रकार सहन होंगे ?' यह सुनकर नेमिप्रभु बोले, "पिता ! जो प्राणी उत्तरोत्तर नारकी के दुःख को जानता है, उसके आगे यह दुःख तो क्या है ? तपस्या के सहजमात्र दुःख से अनंत सुखात्मक

मोक्ष मिलता है और विषय के किंचित् सुख से अनंत दुःखदायक नर्क मिलता है, तो आप ही अपने आप विचार करके कहिए कि उन दो में मनुष्य को क्या करना योग्य है ? उसका विचार करने से तो सर्व मनुष्य जान सके ऐसा है। परंतु इसका विचार करनेवाले तो कोई विरला ही है।'' नेमिकुमार के इस प्रकार के वचनों से उनके मातापिता, कृष्ण और दूसरे राम वगैरह स्वजनों ने नेमिनाथ का दीक्षा का निश्चय जान लिया, जिससे वे सब उच्च स्वर से रुदन करने लगे और श्री नेमिनाथरुप हस्तिश्रेष्ठ स्वजन-स्नेहरुपी बेडी को तोड़कर सारथि से रथ हंकवाकर अपने घर आये।

उस समय योग्य अवसर जानकर लोकांतिक देवता वहां आये और प्रभु को शीश झुकाकर वे बोले कि 'हे नाथ ! तीर्थ प्रवर्ताइए।' भगवान नेमि ने इन्द्र की आज्ञा से जृंभक देवताओं द्वारा भरे हुए द्रव्य से वार्षिक दान देने का आरंभ किया। 'नेमिनाथ वापस लौट गये और वे व्रत लेना चाहते हैं' ऐसी खबर सुनकर राजीमती, वृक्ष खिंचाने से बेल ज्यों भूमि पर गिर जाय त्यों मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिरी। तत्काल भय पाकर उसकी सखियां सुगंधित शीतल जल से सिंचन करने लगी और कदलीदल के पंखे से पवन डालने लगीं, जिससे वह थोडी ही देर में संज्ञा पाकर जाग्रत हो उठी। जिसके कपोलभाग पर केश उड़ रहे थे और अश्रुधारा से जिसकी कंचुकी भीग गयी थी - ऐसी वह बाला विलाप करने लगी - ''अरे देव ! नेमि मेरे पति बने ऐसा मेरा मनोरथ तो था ही नहीं, फिर भी हे नेमि ! किस दैव ने प्रार्थना की जिससे आपको मेरे पति किए ? शायद हुए तो भी अचानक वज्रपात की तरह आपने ऐसा विपरीत क्यों किया ? इसके उपर से तो आप ही एक मायावी और आप एक ही सचमुच के विश्वासघाती हो ऐसा लगता है, अथवा मेरे भाग्य की प्रतीति से मैंने तो पहले से ही जान लिया था कि तीनों जगत में उत्कृष्ट नेमिकुमार वर कहां ! और मैं कहां ! अरे नेमि ! यदि मुझे प्रथम से ही आपके लायक न मानी थी तो विवाह स्वीकार करके मुझे ऐसा मनोरथ किसलिए उत्पन्न कराया ? और हे स्वामिन ! यदि ऐसा मनोरथ उत्पन्न किया तो फिर भग्न क्यों किया ? कारण कि महान पुरुष जो स्वीकार करते हैं उसे यावज्जीवित स्थिरतापूर्वक पालते हैं। हे प्रभु ! आप जैसे महाशय यदि स्वीकृत किए गये वचन में से चलित होंगे तो समुद्र भी अवश्य मर्यादा छोड़ देगा। अथवा उसमें तुम्हारा भी कोई दोष नहीं है। मेरे कर्म का ही दोष है, अब वचन से भी मैं आपकी गृहिणी तो कहलवाई हूँ, फिर भी यह सुन्दर मातृगृह, यह देवमण्डप और यह रत्नवेदिका, जो हमारे विवाह के लिए रचे गये थे वे सब व्यर्थ हुए हैं। इस समय 'जो धवलमंगल में गाया जाय वह सब सत्य नहीं होता' यह कहावत सही सिद्ध हुई है, क्योंकि आप धवलगीत में मेरे भर्त्तारुप (पति) में गाये गये, पर सच्चे नहीं हुए। क्या मैंने पूर्व जन्म में दंपतियों का वियोग कराया होगा कि जिससे इस भव में पति के करस्पर्श का सुख भी मुझे नहीं प्राप्त हुआ है।'' इस प्रकार विलाप करती

हुई राजीमती ने दो करकमल से छाती कूटकर हार तोड़ डाला और कंकण भी फोड़ डाले। उस समय उसकी सखियां बोली, "हे बहन ! किसलिए इतना सारा खेद करती हो ? तुम्हारा उसके साथ क्या संबंध है ? और तुम्हारा उसके साथ अब क्या कार्य है ? स्नेहविहीन, निःस्पृह, व्यवहारविमुख, वन के प्राणी की तरह घर में रहने पर भी गृहवास में भीरु, दाक्षिण्यताविहीन, निष्ठुर और स्वैच्छाचारी ऐसा वह बैरीरुप नेमि शायद चला भी गया तो भले ही गया, हमने तो उसे पहले से ही अच्छी तरह से पहचान लिया, यह ठीक हुआ, यदि वह तुम्हे ब्याहकर शायद यूं ममतारहित बना होता तो कुए में उतारकर रस्सी काट डालने जैसा होता। अब प्रद्युम्न, शांब वगैरह दूसरे कइं सद्‌गुणी यदुकुमार हैं, उनमें से तुम्हें ठीक लगे वह तुम्हारा पति बने। हे सुभ्रु ! आप नेमिनाथ को मात्र संकल्प से ही दी गई थीं, इसलिए जब तक उन्होंने आपका पाणिग्रह किया नहीं है तब तक आप कन्यारुप ही हो।"

सखियों के ऐसे वचन सुनकर राजीमती क्रोध करके बोली, "अरे सखियों ! मेरे कुल को कलंक लगे ऐसा और कुलटाकुल के योग्य वचन तुम क्यों बोल रही हो ? तीन जगत में नेमिकुमार ही एक उत्कृष्ट हैं, उनके समान अन्य वर कौन हैं ? और शायद उसके जैसा अन्य कोई है तो भी किस काम के ? क्योंकि कन्यादान तो एक बार ही होता है। मैं मन से और वचन से उन नेमिकुमार को वर चूकी हूँ और उसने गुरुजन के आग्रह से मुझे स्त्री रूप में स्वीकारा भी था, फिर भी त्रैलोक्यश्रेष्ठ नेमिकुमार मुझे ब्याहे नहीं, तो प्रकृति ही अनर्थ के हेतुरुप ऐसे इन भोग से मुझे क्या काम ? मुझे उसकी कोई जरूरत नहीं है। यद्यपि उसने विवाह में तो कर से मेरा स्पर्श नहीं किया तथापि व्रतदान में तो वह मेरा स्पर्श करेंगे। अर्थात् मेरे मस्तक पर वासक्षेप द्वारा हस्तप्रक्षेप अवश्य करेंगे।" इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उग्रसेन की पुत्री राजीमती सखीजनों का निवारण करके श्री नेमिकुमार का ध्यान करने में ही तत्पर होकर काल निर्गमन करने लगी।

यहां श्रीनेमिनाथ हररोज वार्षिक दान देने लगे और समुद्रविजय वगैरह वेदना पा रहे बालक की भाँति अहर्निश रुदन करने लगे। भगवान नेमि ने राजीमती की पूर्वोक्त प्रतिज्ञा लोगों के मुख से और त्रिविध ज्ञान के प्रभाव से जान ली, फिर भी वे प्रभु ममतारहित रहे। प्रभु ने इस प्रकार निरिच्छपन से एक साल तक दान दिया। फिर शक्रादिक देवनायकों ने आकर प्रभु का दीक्षा संबंधित अभिषेक किया, और **उत्तरकुरु** नाम की रत्नमय शिबिका में शिवाकुमार (नेमिनाथ) आरुढ हुए। फिर सुरासुर मनुष्यों ने उस शिबिका को वहन किया। उस समय प्रभु के दोनों ओर शक्र और इशानेन्द्र चँवर लेकर चले, सनत्कुमारेन्द्र ने सिर पर छत्र धर रखा, माहेन्द्र इन्द्र उत्तम खड्‌ग लेकर चले, ब्रह्मेन्द्र ने दर्पण लिया, लांतक इन्द्र ने पूर्ण कुंभ लिया,

महाशक्रेन्द्र ने स्वस्तिक लिया, सहस्रार इन्द्र ने धनुष लिया, प्राणताधीश ने श्रीवत्स धारण किया, अच्युतेन्द्र ने नंदावर्त्त उठाया और अन्य चमरेन्द्र वगैरह इन्द्र थे वे अनेक प्रकार के शस्त्रधारी होकर आगे चले। इसी तरह पिता वगैरह दशार्ह, शिवादेवी वगैरह माताएं और रामकृष्णादिक बंधुओं से घिरे हुए महामनस्वी भगवंत राजमार्ग पर चले। जब प्रभु उग्रसेन के गृह समीप आये तब उनको देखकर राजीमती बार बार सद्य नवीन शोक उत्पन्न होने से मूर्च्छा पाने लगी। प्रभु तो अविच्छिन गमन करते हुए **उज्जयंत** (रैवताचल) गिरि के आभूषणरुपी और नंदनवन समान **सहस्राम्रवन** नाम के उपवन में पधारे।

उस समय नये खिले हुए केतकी के पुष्पों से मानो स्मित हास्य करता हो और गिरे हुए जामूनों से मानो उसकी पृथ्वी नीलमणि से बंधी हो ऐसा वह वन दिखता था। अनेक स्थान पर कदंब पुष्पों से शय्या में उन्मत्त भ्रमर सो रहे थे, मयूर कला करके केकाध्वनि से ताण्डव (नृत्य) करते थे, कामदेव के अस्त्र के अंगारे हो ऐसे इन्द्रवरणा के पुष्प खिल रहे थे और मालती तथा जूही के पुष्पों की सुगंध लेने के लिए अनेक पांथजन स्वस्थ होकर बैठे थे। ऐसे अति सुन्दर उद्यान में आकर प्रभु शिबिका में से नीचे उतरे। फिर शरीर पर से सर्व आभूषण उतारे तो इन्द्र ने लेकर कृष्ण को दिए। जन्म के तीनसौं वर्ष बाद श्री नेमिनाथ प्रभु ने श्रावण मास की शुक्ल षष्ठी के पूर्वाह्नकाल[1] में चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आने पर छट्ठ तप करके पंचमुष्टि लोच किया। शक्रेन्द्र ने केश ले लिए और प्रभु के स्कन्ध पर देवदूष्य वस्त्र रखा। फिर शक्रेन्द्र ने केश को क्षीरसागर में छोडे और वापस आकर सब कोलाहल शांत किया, फिर प्रभु ने सामायिक उच्चारा। उसी समय जगद्गुरु को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ और क्षण भर नारकी को भी सुख उत्पन्न हुआ। नेमिनाथ के पीछे एक हजार राजाओं ने दीक्षा ली। फिर इन्द्र और कृष्ण प्रमुख प्रभु को शीश झुकाकर अपने अपने स्थानक पर गये।

दूसरे दिन प्रभु ने पास में रहनेवाले **वरदत्त** नाम के ब्राह्मण के घर परमान्न से पारणा किया, उस समय उसके घर में देवताओं ने सुगंधित जल और पुष्प की वृष्टि, आकाश में दुंदुभि का गंभीर ध्वनि, चेलोत्क्षेप[2] और वसुधारा[3] वगैरह पांच दिव्य प्रकट किए। फिर घाती कर्म का क्षय करने के लिए तत्पर नेमिनाथ कर्मबंध से निवृत्त होकर वहां से अन्यत्र विहार करने के लिए चल पड़े।

श्री नेमिनाथ ने दीक्षा ग्रहण करने के बाद उनका अनुज बंधु रथनेमि राजीमती को देखकर कामातुरपन से इन्द्रियों के वश हो गया जिससे वह हंमेशा अपूर्व वस्तुएं भेजकर राजीमती की सेवा करने लगा। उसके भाव को न जाननेवाली उस मुग्धा ने उसका निषेध नहीं किया।

१. दोपहर पहले। २. वस्त्रों की वृष्टि। ३. द्रव्य की वृष्टि।

राजीमती तो यूं मानती थी कि यह रथनेमि बड़े बंधु के स्नेह के कारण मेरी उपासना करता है, और रथनेमि यूं मान रहा था कि यह राजीमती मेरे पर राग के कारण मेरी सेवा स्वीकार करती है। तुच्छ बुद्धिवाला वह, नित्य राजीमती के घर जाता था और भ्रातृजाया[1] के बहाने उसका हास्य करता था। एक बार राजीमती एकांत में थी, तब रथनेमि ने कहा कि "अरे मुग्धा ! मैं तुझे ब्याहने के लिए तैयार हूँ, फिर भी तू किसलिए यौवन को वृथा गँवा रही है ? हे मृगाक्षी ! मेरा बंधु तो भोग से अनभिज्ञ[2] था, इसलिए उसने तेरा त्याग किया है। ऐसा करने से वह तो भोगसुख से ठगा गया, परंतु अब तुम्हारी क्या गति ? हे कमल समान उत्तम वर्णवाली ! तूने उसकी प्रार्थना की फिर भी वह तेरा पति नहीं बना और मैं तो तुझे प्रार्थना करता हूँ, इसलिए देख, हम दोनों में कितना बड़ा अंतर है ?" रथनेमि के ऐसे वचन सुनकर उसके पूर्व के सब उपचारों का हेतु स्वभाव से ही सरल आशयवाली राजीमती के जानने में आया। फिर उस धर्मज्ञ बाला ने धर्म का स्वरुप कहकर उसे बड़ा बोध दिया, फिर भी दुर्गति ऐसा वह दुष्ट अध्यवसाय से विराम नहीं पाया।

एक बार उसे समजाने के लिए सद्बुद्धिमान राजीमती ने आकण्ठ तक दूध का पान किया और जब रथनेमि आया तब वमन करानेवाला मदनफल खा लिया। फिर रथनेमि को कहा कि 'एक सुवर्ण थाल लाइये।' तत्काल वह सुवर्ण का थाल ले आया तो, उसने पान किया हुआ सब दूध उसमें वमन कर डाला। फिर रथनेमि को कहा कि 'आप इस दूध का पान करें।' रथनेमि बोला, 'क्या मैं श्वान की तरह वमन किये हुए का पान करनेवाला हूँ ? तुम यह क्या बोल रही हो ?' राजीमती बोली, 'यह पीने योग्य नहीं है यह क्या आप जानते हो ?' रथनेमि बोला, 'केवल मैं ही नहीं, परंतु बालक भी यह जानते हैं।' राजीमती ने कहा, 'अरे ! यदि तू जानता है तो नेमिनाथ ने मेरा वमन कर दिया है, फिर भी तू मेरा उपभोग क्यों करना चाहता है ? और उनका भ्राता होकर तू ऐसी इच्छा क्यों करता है ? इसलिए अब के बाद नारकी के आयुष्य को बांधनेवाला ऐसा वचन मत बोलना।' राजीमती के ऐसे वचन सुनकर रथनेमि मौन हो गया। फिर लज्जा पाता हुआ और मनोरथ क्षीण होने से स्वयं को कोसते कोसते हुए बेमन से अपने घर आया।

राजीमती एक नेमिनाथ में ही अनुराग धरकर संवेग पाते हुए वर्ष वर्ष जैसे दिनों का निर्गमन करने लगी। व्रत लेने के बाद नेमिनाथ चोप्पन दिन के बाद विहार करते करते वापस रैवतगिरि सहस्राम्रवन नाम के उद्यान में आए। वहां बेतस वृक्ष के नीचे अट्ठम तप करके ध्यान धरते हुए नेमिनाथ के घातीकर्म टूट गए, जिससे आश्विन माह की अमावस्या के दिन प्रातःकाल

१. भावज। २. अनजाना।

में चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आते ही श्री अरिष्टनेमि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तत्काल आसन चलित होने से सब इन्द्र वहां आये, और उन्होंने तीन प्राकार (गढ़) से शोभित समवसरण रचा। उसमें पूर्व द्वारा से प्रवेश करके एकसौं बीस धनुष्य ऊँचे चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा देकर 'तीर्थाय नमः' यूं कहकर वे बाइसवें तीर्थंकर पूर्वाभिमुख होकर पूर्व सिंहासन पर आरुढ हुए, तो पश्चिमादिक तीन दिशाओं में व्यंतर देवताओं ने तीन दिशा के रत्नसिंहासन पर श्री नेमिनाथ के तीन प्रतिबिंब रचे। फिर चारों प्रकार के देव-देवियां चन्द्र के ऊपर चकोर की भाँति प्रभु के मुख पर दृष्टि स्थापित करके योग्य स्थान पर बैठे। इस प्रकार भगवंत के समवसरण के समाचार गिरिपालकों ने जाकर तत्काल अपने स्वामी कृष्ण वासुदेव को कहे, तो उनको साडे बारह कोटि द्रव्य इनाम देकर तुरंत ही नेमिनाथ की वंदना के लिए जाने की इच्छा से कृष्ण गजारुढ होकर चले। दस दशार्ह, अनेक माताएं, अनेक भाइ, कोटी संख्यकुमार, सब अंतःपुरियां और सोलह हजार मुकुटधारी राजाओं सहित श्रीकृष्ण बड़ी समृद्धि से समवसरण में आये। दूर से ही गजेन्द्र पर से उतरकर, राज्यचिह्न उतारकर उत्तरद्वार से उन्होंने समवसरण में प्रवेश किया, फिर श्रीनेमिनाथ को प्रदक्षिणा करके, शीश झुकाने के बाद कृष्ण इन्द्र के पीछे बैठे और अन्य भी अपने अपने योग्य स्थान पर बैठे। इसके बाद इन्द्र और उपेन्द्र (कृष्ण) ने पुनः खड़े होकर नेमिप्रभु को शीश झुकाकर भक्ति से पवित्र ऐसी वाणी से स्तुति करना प्रारंभ किया -

"हे जगन्नाथ ! सर्व विश्व के उपकारी, जन्म से ब्रह्मचारी, दयावीर और रक्षक ऐसे आपको हमारे नमस्कार हैं। हे स्वामिन् ! चोप्पन दिन के शुक्ल ध्यान से आपने घातीकर्म का घात किया, यह हमारे भाग्य योग्य से बहुत ही अच्छा हुआ है। हे नाथ ! आपने केवल यदुकुल को ही शोभित किया है ऐसा नहीं है, बलकि केवलज्ञान के आलोक से सूर्यरूप ऐसे आपने त्रैलोक्य को भी शोभित किया है। हे प्रभु यह संसार सागर कि जो अपार और अस्ताग[1] है वह आपके प्रसाद से घुटने मात्र ऊंडा (गहरा) और गाय के कदम जितने ही विस्तारवाला हो जाता है। हे नाथ ! ललनाओं के ललित चरित्र से सबका हृदय भेदा जाता है, परंतु इस जगत में आप एक ही उससे अभेद्य और वज्र जैसे हृदयवाले रहे हो, दूसरा कोई ऐसा नहीं है। हे प्रभु ! आपको व्रत लेने में निषेध करनेवाली बंधुओं की जो वाणी हुई थी, वह इस समय आपकी समृद्धि देखकर पश्चात्ताप के लिए हो रही है। उस समय दुराग्रही बंधुवर्ग के हमारे भाग्यबल से ही आप स्खलित नहीं हुए हो, यह बहुत अच्छा ही हुआ। अब जगत के पुण्य से जिसका अस्खलित केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे आप हमारी रक्षा कीजिए। हे देव ! जहां तहां रहे और जैसा तैसा करते हुए हमारे हृदय में आप ही रहना, अन्य की हमें आवश्यकता नहीं है।" इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र और कृष्ण ने विराम पाया। फिर प्रभु ने सर्व भाषा का अनुकरण करती हुई वाणी से

धर्मदेशना देने का आरंभ किया।

"सब प्राणियों की लक्ष्मी विद्युत के विलास जैसी चपल है। संयोग आखिर में वियोग ही प्राप्त करानेवाला तथा स्वप्न में प्राप्त हुए द्रव्य जैसा है। यौवन मेघछाया समान नाशवंत है और प्राणियों का शरीर जल के बुलबुले जैसा है, जिससे इस असार संसार में दूसरा कोई भी सार नहीं है। मात्र ज्ञान, दर्शन और चारित्र को पालना ही सार है। उसमे तत्त्व पर जो श्रद्धा, वह सम्यक् दर्शन कहा जाता है यथार्थ तत्त्व का बोध वह ज्ञान कहा जाता है और सावद्य योग की विरति वह मुक्ति का कारण चारित्र कही जाती है। चारित्र मुनियों को सर्वात्मपन से और गृहस्थों को देश से होता है। श्रावक यावज्जीवित देश चारित्र में तत्पर, सर्व साधुओं का उपासक और संसार के स्वरुप को जाननेवाला होता है। श्रावक को (१) मदिरा, (२) मांस, (३) मक्खन, (४) मधु, (५-९) पांच प्रकार के उदंबरादि वृक्ष के फल, (१०) अनंतकाय (कंदमूल), (११) अज्ञात (अनजाने) फल, (१२) रात्रिभोजन, (१३) कच्चे[२] गोरस (दूध, दहीं, छास) के साथ मिला द्विदल[३] (१४) पुष्पितभात[४], दो दिन बीता चुका दहीं और सड़ा हुआ अन्न - इन सब अभक्ष्यों का त्याग करना चाहिए।

ज्यों पुरुष चतुर हो फिर भी दुर्भाग्य के उदय से स्त्री उससे दूर रहती है - चाहती नहीं है, त्यों मदिरापान करने से बुद्धि नष्ट होती है। मदिरा के पान से जिनके चित्त परवश हुए हैं ऐसे पापी पुरुष माता को प्रिया मानते हैं और प्रिया को माता मानते हैं। चित्त चलित होने के कारण अपने या पराये अथवा स्वयं के और पराये पदार्थों को जानते नहीं है। स्वयं रंक होने पर भी स्वामी बन बैठते हैं और अपने स्वामी को किंकर समान गिनते हैं। शब की तरह चौराहे पर लोटते मद्यपानी के मुख में श्वान विवर की शंका से मूत्र करता है। मद्यपान के रस में मग्न बना मनुष्य नग्न होकर चौराहे में सो जाता है और लीलामात्र से अपना गुप्त अभिप्राय भी प्रकाशित् कर देता है। ज्यों विचित्र चित्र की रचना काजल को पोंछने से नष्ट हो जाती है, त्यों मदिरा पान से कांति, कीर्ति, मति और लक्ष्मी चले जाते हैं। मदिरापानी भूत चढ़ा हो त्यों नाचता है। शोक साथ हो त्यों पुकारता है और दाहज्वर हुआ हो त्यों पृथ्वी पर लोटता है। मदिरा हलाहल विष की भाँति अंग को शिथिल करती है, इन्द्रियों को ग्लानि देती है और महामूर्च्छा प्राप्त कराती है। अग्नि की एक चिनगारी से तृण का बड़ा ढेर जल जाता है, त्यों मद्यपान से विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, दया और क्षमा - ये सब विलीन हो जाते हैं। मदिरा के रस में कइ जंतुओं

१. थाह न पाये उतना गहरा २. कच्चा-गरम किए बिना के ३. द्विदल - जिसकी दो फाड हो ऐसे मूंग, उडद आदि पदार्थ व उसकी दाल-आटा वगैरह ४. बासी अन्न चावल, रोटी वगैरह ५. चलित रस - काल बीत चुकी मीठाई वगैरह

+ इसमें गिनाये हुए १४ उपरांत १. हिम (बरफ), २. ओले, ३. सब प्रकार का विष ४. कच्ची मिट्टी, नमक वगैरह ५. तुच्छ फल, ६. संधानक - बोल आचार वगैरह ७. बहुबीज और ८. बैंगन वगैरह कुल बाइस अभक्ष्य समझने चाहिए।

का उद्‌भव होता है, इसलिए हिंसा के पाप से भीरु ऐसे पुरुष को कदापि मदिरापान नहीं करना चाहिए। मदिरापानी दिया हो तो न दिया है कहता है, लिया हो तो न लिया होने का कहता है और किया हो उसे नहीं किया होने का कहता है तथा राज्य वगैरह को मिथ्या अपवाद देकर स्वेच्छा से बकता है, मूढ बुद्धिवाला मधुपानी वध बंधनादिक का भय छोड़कर घर, बाहर या मार्ग पर - जहां मिले वहां पर परद्रव्य को छीन लेता है। मद्यपान करने से उत्पन्न उन्माद में परवश बना वह पुरुष बालिका, युवती, वृद्धा, ब्राह्मणी या चांडाल - सर्व जाति की परस्त्री को भी उन्मत्त होकर भोगता है। मद्यपानी पुरुष रोते, गाते लोटते, दौडते, कोप करते, तुष्ट होते, हँसते, स्तब्ध हो जाते, झुकते, घूमते और खड़े रहने की अनेक क्रियाएं करते हुए नट की तरह भटका करता है। जंतुओं के समूह का सदैव ग्रास करने पर भी ज्यों यमराज तुष्ट नहीं होते त्यों मद्यपानी बार बार मद्यपान करने पर भी संतुष्ट नहीं होता। सब दोषों का कारण ही मद्य है और सर्व प्रकार की आपत्ति का कारण भी मद्य है - इसलिए अपथ्य को ज्यों रोगी छोडता है त्यों मनुष्य को उसका त्याग करना चाहिए।

जो प्राणियों के प्राण का अपहार करके माँस चाहता है, वह धर्मरुपी वृक्ष की दया नाम की जड़ का उन्मूलन करता है। जो मनुष्य हंमेशा माँस का भोजन करते हुए दया पालना चाहता है वह प्रज्वलित अग्नि में बेल (लता) का आरोपण करना चाहता है। माँस भक्षण करने में लुब्ध मनुष्य की बुद्धि दुर्बुद्धिवाली डाकिन की तरह प्रत्येक प्राणी को मारने में प्रवर्तित रहती है। दिव्य भोजन मिलने पर भी जो माँस का भोजन करते हैं वे अमृतरस को छोड़कर हलाहल विष खाते हैं। जो नर्करुपी अग्नि में इंधन जैसे अपने माँस को दूसरे के माँस से पालना चाहते हैं, उनके जैसा निर्दय कोई नहीं है। शुक्र और शोणित से उत्पन्न और विष्टारस से बढ़े हुए खून द्वारा जमा हुआ माँस जो नर्क का फलरुप है उसे कौन बुद्धिमान भक्षण करेगा ?

अंतर्मुहूत के बाद जिसमें अनेक अति सूक्ष्म जंतु उत्पन्न होते हैं ऐसा मक्खन विवेकी पुरुष को कदापि नहीं खाना चाहिए। एक जीव की हिंसा में कितना बड़ा पाप है, तो फिर अनेक जंतुवाला मक्खन कौन खाये ? जो अनेक जंतुसमूह की हिंसा से उत्पन्न हुआ है और जो लार की तरह जुगुप्सा करने योग्य है ऐसा शहद कौन चखे ? एक एक पुष्प में से रस लेकर मक्षिकाओं का वमन किया हुआ शहद धार्मिक पुरुष कदापि नहीं चखते।

ऊंबर, बड, पीपली, काकूदंबर और पीपल के फल कइं जंतुओं से आकुल-व्याकुल होते हैं, इसलिए इन पांच वृक्षों के फल कदापि खाने नहीं। दूसरा भक्ष्य न मिला हो और क्षुधा से शरीर क्षाम (दुर्बल) हो गया हो तो भी पुण्यात्मा प्राणी ऊंबर आदि वृक्षों के फल नहीं खाता है। सब प्रकार के आर्द्र कंद, सब प्रकार की कूंपल, सब प्रकार के थोर, लवण वृक्ष की त्वचा,

कुमारी (कुंवार), गिरिकर्णिका, शतावरी, विरुढ, गडुची, कोमल इमली, पल्यंक, अमृत बेल, सूकर जाति के वाल और इसके अलावा दूसरे सूत्र में कहे गये अनंतकाय पदार्थ कि जो मिथ्यादृष्टियों से अज्ञात हैं वे प्रयत्नों से दयालु पुरुषों को वर्जित करने चाहिए। शास्त्र में निषेध किए हुए फल अथवा विषफल के भक्षण में इस जीव की प्रवृत्ति न हो इस हेतु से चतुर पुरुष को स्वयं अथवा अन्यों द्वारा जाने हुए फल ही खाने चाहिए, अनजाने फल का त्याग करना चाहिए।

रात्रि के समय निरंकुशपने से घूमते प्रेत, पिशाच वगैरह क्षुद्र देवों द्वारा अन्न उच्छिट किया जाता है, इसलिए रात्रि के समय कदापि भोजन नहीं करना चाहिए। और रात्रि के समय घोर अंधकार के कारण मनुष्यों की दृष्टि भी फँस जाने के कारण भोजन में गिरते जंतु उनसे देखे नहीं जा सकते, इसलिए रात्रि के ऐसे समय पर कौन भोजन करेगा ? शायद भोजन में चींटी आ गई हो तो वह बुद्धि का नाश करती है, जू खाने में आ गई हो तो वह जलोदर का व्याधि करती है, मक्खी आ गई हो तो वह वमन कराती है और गृहगोधी आ गई हो तो वह कुष्ठ रोग करती है, कांटा अथवा काष्ठ का टुकड़ा भोजन में आ गया हो तो वह गले की व्यथा करता है। भोजन में बिच्छू गिर गया हो तो वह तलुआ छेदता है, तथा भोजन में आया हुआ बाल गले में लग गया हो तो वह स्वरभंग के लिए होता है - वगैरह इन सब अनेक दोषों को सब मनुष्यों ने रात्री भोजन में देखा है। रात्रि को सूक्ष्म जंतु दिखाई नहीं देते इसलिए प्रासुक पदार्थ भी रात्रि में नहीं खाने चाहिए, क्योंकि उस समय भोजन में अवश्य अनेक जंतुओं की उत्पत्ति संभव है। जिसमें जीवों का समूह उत्पन्न होता है ऐसे भोजन को रात्रि में खानेवाले मूढ पुरुष राक्षसों भी अधिक दुष्ट क्यों नहीं कहे जाय ? जो मनुष्य दिन और रात्रि को भी खाया ही करते हैं वे शृंग और पुच्छ बिना के साक्षात् पशु ही हैं। रात्रि भोजन के दोष को जाननेवाले जो मनुष्य दिन के प्रारंभ और अंत की दो दो घडी का त्याग करके भोजन करता हैं, वह पुण्य का भोन है। रात्रि भोजन का नियम किए बिना भले ही कोई मनुष्य सिर्फ दिन को ही भोजन करनेवाला हो तो भी वह इसका शुद्ध फल नहीं पाता, क्योंकि किसीको रुपये देते समय तय किए बिना उसका ब्याज नहीं मिलता। जो जड मनुष्य दिन का त्याग करके रात्रि को ही भोजन करते हैं, वे रत्न का त्याग करके काँच का ही स्वीकार करते हैं। रात्रि भोजन करने से मनुष्य दूसरे जन्म में उल्लू, कौए, बिल्ली, गीध, शंबर, मृग, सूअर, सर्प, बिच्छू, गोह अथवा गृहगोह के रूप में उत्पन्न होते हैं। जो धन्य पुरुष सर्वदा रात्रिभोजन की निवृत्ति करता है, वह अपने आयु का आधा हिस्सा अवश्य उपवासी बनता है। रात्रि भोजन का त्याग करने में (जितने) गुण रहे हैं, वे सद्गति को ही उत्पन्न करनेवाले ऐसे सब गुणों को गिनने के लिए कौन समर्थ हो सके

ऐसा हैं ? कच्चे गोरस में (दूध, दहीं और छास) द्विदलादिक मिलने से उसमें उत्पन्न होते सूक्ष्म जंतु केवलियों ने देखे हैं, इसलिए उनका भी त्याग करना चाहिए। और दयाधर्म में तत्पर ऐसे मनुष्य को जंतु से मिश्रित ऐसे फल, पुष्प और पत्र वगैरह का त्याग करना चाहिए तथा जीवमिश्रित आचार या जिसमें दीर्धकाल रहने से कइं त्रस जंतु उत्पन्न होते हैं, उनका भी त्याग करना चाहिए। इस प्रकार सर्व धर्म में दयाधर्म ही मुख्य है ऐसा जानकर भक्ष्य पदार्थों के बारे में विवेकी बुद्धिमान् श्रावक भी संसार से क्रमशः मुक्त होता है।''

प्रभु की ऐसी देशना सुनकर **वरदत्त राजा** संसार से वैराग्य पाकर व्रत लेने के लिए उत्सुक बने। फिर कृष्ण ने भगवंत को नमस्कार करके पूछा, 'हे भगवन् ! आपके पर सर्वजन अनुरागी हैं, पर राजीमती का सब से ज्यादा विशेष अनुराग है। ऐसा होने का कारण क्या है यह बतायें।' तो प्रभु ने धन और धनवती के भव से लेकर आठ भव का उसके साथ का अपना संबंध कह सुनाया। फिर वरदत्त राजा ने खड़े होकर नमस्कार करके अंजलि जोड़कर प्रभु को विज्ञप्ति की, 'हे नाथ ! स्वाति नक्षत्र में मेघ से पुष्कर (सीप) में मुक्ताफल उत्पन्न होते हैं त्यों आपसे प्राप्त किया हुआ श्रावक धर्म भी प्राणी को महा फलदायी होता है, लेकिन आप गुरु प्राप्त हुए हो तो उतने से मैं संतोष नहीं पा रहा हूँ, क्योंकि कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ हो तो उसके पत्तों की इच्छा कौन करेगा ? इसलिए मैं तो आपका प्रथम शिष्य बनना चाहता हूँ, तो हे दयानिधि ! मुझ पर दया करके मुझे संसारतारिणी दीक्षा दीजिए।' इस प्रकार कहते हुए उस राजा को प्रभु ने तत्काल दीक्षा दी, और उसके पीछे दो हजार क्षत्रियों ने दीक्षा ली।

पूर्व काल में धन के भव में जो धनदेव और धनदत्त नाम के दो बंधु थे वे और अपराजित के भव में विमलबोध नाम का सचिव था वे तीनों स्वामी के साथ भवभ्रमण करते हुए इस भव में राजा बने थे और समवसरण में आये हुए थे। उनको राजीमती के प्रसंग से अपना पूर्व भव सुनाई देने में आते ही तत्काल जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे अपूर्व वैराग्य संपत्ति को प्राप्त करके उन्होंने श्री अरिष्टनेमि से उसी समय व्रत ग्रहण किया। फिर उनके सहित वरदत्त वगैरह ग्यारह गणधरों को जगद्गुरु नेमिनाथ ने विधिपूर्वक स्थापित किया। और उन्हें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य अनुसार त्रिपदी कही। उस त्रिपदी के अनुसार उन्होंने शीघ्र ही द्वादशांगी की रचना की। कइं कन्याओं सहित आयी **यक्षिणी** नाम की राजपुत्री ने उस समय दीक्षा ली, तो उसे प्रभु ने प्रवर्तिनी पद पर स्थापित की। दस दशार्ह, उग्रसेन, वासुदेव, बलराम और प्रद्युम्न वगैरह कुमारों ने श्रावकपना ग्रहण किया, और शिवा, रोहिणी, देवकी तथा रुक्मिणी वगैरह तथा अन्य स्त्रियों ने भी प्रभु से श्रावकपना ग्रहण किया, जिससे वे श्राविकाएं बनी। इस प्रकार उसी समवसरण में पृथ्वी को पवित्र करनेवाला चतुर्विध धर्म की तरह चतुर्विध संघ स्थापित

हुआ। प्रथम पौरुषी पूर्ण होते ही प्रभु ने देशना समाप्त की, तो दूसरी पौरुषी में वरदत्त गणधर ने देशना दी। फिर इन्द्र वगैरह देवों और कृष्ण प्रमुख राजा प्रभु को शीश झुकाकर अपने अपने स्थानक पर गये।

श्री नेमिनाथ के तीर्थ में तीन मुखवाले, श्यामवर्णी, मनुष्य के वाहनवाला तीन दक्षिण भुजा में बिजोरुं, परशु और चक्र को धरनेवाला व तीन वाम भुजा में नकुल, त्रिशूल और शक्ति का धारक **गोमेध** नाम का यक्ष शासनदेवता बना और सुवर्ण समान कांतिवाली, सिंह के वाहन पर बैठनेवाली, दो दक्षिण भुजा में आम की लड़ी (डाल) व पाश को धरनेवाली और दो वाम भुजा में पुत्र और अंकुश को धरनेवाली **कुष्मांडी** अथवा **अंबिका** नाम की प्रभु की शासनदेवी बनीं। वे दोनों शासनदेवता निरंतर जिनके सान्निध्य में रहते थे ऐसे प्रभु वर्षा व शरद्ऋतु का उल्लंघन करके भद्र गजेन्द्र की तरह गति करते हुए लोगों के कल्याण के लिए वहां से अन्यत्र विहार करने के लिए प्रवर्तित हुए।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि अरिष्टनेमिकौमार क्रीडा–दीक्षा–केवलोत्पत्तिवर्णनो नाम नवमः सर्गः।।९।।

दसवाँ सर्ग

द्रौपदी का प्रत्याहरण और गजसुकुमार वगैरह का चरित्र

पाण्डव कृष्ण की कृपा से अपने हस्तीनापुर नगर में रहते थे व द्रौपदी के साथ बारी अनुसार हर्षपूर्वक क्रीडा करते थे। एक बार नारद घूमते घूमते द्रौपदी के घर आये, तब 'ये अविरत हैं' ऐसा जानकर द्रौपदी ने उसका सत्कार नहीं किया। इससे 'यह द्रौपदी कैसे दुःखी हो ?' ऐसा सोचते हुए नारद क्रोध करके उसके घर में से निकले, पर इस भरतक्षेत्र में तो कृष्ण के भय से कोई उसका अप्रिय करे ऐसा नज़र नहीं आया। इससे वे घातकी खण्ड के भरतक्षेत्र में गये। वहां चम्पानगरी में रहनेवाले **कपिल** नाम के वासुदेव का सेवक **पद्म** नाम का राजा **अमरकंका** नगरी का स्वामी था जो व्यभिचारी था। नारद उसके पास आये तो राजा ने उठकर नारद को सम्मान दिया और अपने अंतःपुर में ले गया। वहाँ अपनी सर्व स्त्रियां बताकर कहा, 'हे नारद ! आपने ऐसी स्त्रियां किसी स्थानक में देखी हैं ?' उस समय नारद ने 'इससे मेरा इरादा सिद्ध होगा' ऐसा सोचकर कहा, 'हे राजन् ! कुंए के मेंढ़क की भाँति ऐसी स्त्रियों से तू क्या हर्ष पाता है ? जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तीनापुर नगर में पाण्डवों के घर द्रौपदी नाम की स्त्री है, वह ऐसी स्वरुपवान है कि उसके समक्ष ये तेरी सर्व स्त्रियां दासी जैसी हैं।' इस प्रकार कहकर नारद वहां से अन्यत्र चले गये।

नारद के जाने के बाद पद्मनाभ राजा ने द्रौपदी को पाने की इच्छा से अपने पूर्व संगतिवाले पातालवासी देव की आराधना की; तो उस देव ने प्रत्यक्ष होकर कहा, 'हे पद्मनाभ ! कहो, तुम्हारा क्या कार्य करुं ?' तब पद्म ने कहा, 'द्रौपदी को लाकर मुझे अर्पण करें।' देव ने कहा, 'वह द्रौपदी पाण्डवों के सिवा अन्य को नहीं चाहतीं, तो भी तेरे आग्रह से मैं उसे लाता हूँ।' यूं कहकर देव तत्काल हस्तीनापुर आया और अवस्वापिनी निद्रा से सबको निद्रावश करके निद्रावश बनी द्रौपदी को वहां से रात्रि में हर लाया। फिर उसे पद्म को अर्पण करके देव स्वस्थानक पर गया। जब द्रौपदी जाग्रत हुई तब वहां अपने को अन्यत्र अकेली देखकर सती सोचने लगी कि 'क्या यह स्वप्न है या इन्द्रजाल है ?' उस समय पद्मनाभ ने उसे कहा, 'हे मृगाक्षी ! तू भयभीत मत बन,, मैं तुझे यहां हरण करवाकर लाया हूँ, इसलिए यहां रह और मेरे साथ भोग भुगत। यह घातकीखण्ड नाम का द्वीप है, उसमें यह अमरकंका नगरी है, मैं उसका पद्मनाभ नाम का राजा हूँ जो तेरा पति बनना चाहता है।' यह सुनकर प्रत्युत्पन्न मतिवाली द्रौपदी बोलीं, 'हे भद्र ! एक माह के अन्दर यदि कोई मेरा संबंधी यहां आकर मुझे न ले जाय तो फिर मैं तुम्हारा वचन मान्य करुंगी।' पद्मनाभ ने सोचा, 'यहां जंबूद्वीप में मनुष्य की गति बिलकुल असंभव है। इसलिए यह वचन कबूल करने में कोई बाधा नहीं है।' ऐसा

मानकर कपटी पद्मनाभ ने यह वचन स्वीकार लिया। फिर मैं पति बिना एक माह तक भोजन नहीं करुंगी, यूं पतिव्रतरूप महाधनी द्रौपदी ने अभिग्रह धारण किया।

यहां पाण्डवों ने प्रातःकाल द्रौपदी को देखा नहीं तो उन्होंने जल, स्थल और वन वगैरह में उसकी बड़ी खोज करने लगे। जब कोई भी स्थानक से द्रौपदी के कुछ भी समाचार न मिले तब उनकी माता ने जाकर कृष्ण को बताया, क्योंकि वे ही उनकी शरणरुप और अकेलेपन में बंधुरुप थे। कृष्ण कार्य में मूढ़ होकर विचार करने लगे, इतने में स्वयं किए हुए अनर्थ को देखने के लिए नारद मुनि वहां आये। कृष्ण ने नारद को पूछा कि, 'आपने किसी स्थान पर द्रौपदी को देखा है ?' नारद ने कहा, 'मैं घातकीखण्ड के अमरकंका नगर में गया था, वहां के राजा पद्मनाभ के घर मैंने द्रौपदी को देखा है।' इस प्रकार कहकर वे अन्यत्र चले गये। कृष्ण ने पाण्डवों को कहा, 'पद्मनाभ ने द्रौपदी का हरण किया है, इसलिए मैं वहां जाकर द्रौपदी को ले आऊंगा, इसलिए आप खेद मत करना।' फिर कृष्ण पाण्डवों को लेकर बड़े सैन्य के साथ मागध नाम के पूर्व सागर तट पर गये। वहां पाण्डवों ने कहा, 'स्वामिन् ! यह समुद्र संसार की भाँति अत्यंत भयंकर, अपार और उद्धत है। यहां किसी जगह बड़े बड़े पर्वत एक पत्थर की तरह उसमें मग्न हुए हैं, किसी जगह बड़े पर्वत समान जलजंतु रहते हैं, किसी जगह समुद्र का भी शोषण करने की प्रतिज्ञा लेकर वडवानल रहा है, किसी जगह कैवर्त की तरह वेलंधर देवता रहे हैं। किसी जगह अपने तरंग से वह मेघ का भी कमंडल की तरह उद्‌वर्त्तन करता है। यह समुद्र मन से भी अलंघ्य है, तो उसे देह से तो किस प्रकार पार कर सकेंगे ?'

पाण्डवों के ऐसे वचन सुनकर 'आपको क्या चिंता है ?' यूं कहकर शुद्ध हृदयवाले कृष्ण ने उसके तट पर बैठकर उसके अधिष्ठायक **सुस्थित** नाम के देवता की आराधना की। तत्काल वह देव प्रकट होकर बोला, 'मैं क्या कार्य करुं ?' कृष्ण ने कहा, 'हे लवण-उदधि के अधिष्ठायक देव ! पद्मनाभ राजा ने द्रौपदी का हरण किया है, तो जिस प्रकार से घातकीखण्ड से उस द्रौपदी को यहां ले आया जाय ऐसा करें।' देव ने कहा, 'हे कृष्ण ! उस पद्मनाभ को उसके पूर्व संगतिवाले देव ने द्रौपदी को ले जाकर सौंपा है, मैं उसी तरह वहां से लाकर आपको सौंपू, अथवा यह वार्ता आपको यदि नहीं जमती हो तो बल, वाहन सहित उस पद्मनाभ को समुद्र में फेंक कर द्रौपदी को लाकर आपको अर्पण करुं।' कृष्ण ने कहा, 'ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है, सिर्फ ये पाण्डव और मुझे - यूं हम छः पुरुषों से रथ में बैठकर जाया जाय ऐसा अनाहर्त मार्ग जल के अंदर दीजिए कि जिससे हम वहां जाकर उस वराक (बीचारे) को जीतकर, द्रौपदी को ले आएं। यह मार्ग हमें यश देनेवाला है'। फिर उस सुस्थित देव ने वैसा किया, तो पाण्डव सहित कृष्ण स्थल की भाँति समुद्र को लांघकर अमरकंका नगर पहुँचे।

वहां उस नगर के बाहर के उद्यान में रहकर कृष्ण ने दारुक सारथि को समझाकर पद्मराजा के पास दूत के रुप में भेजा। दारुक शीघ्र ही वहां गया और पद्म के चरणपीठ को अपने चरणों से दबाकर, भयंकर भ्रूकुटी चढ़ाताकर और भाले के अग्र भाग से कृष्ण का लेख पद्म को देते हुए इस प्रकार कहा, 'अरे पद्म राजा ! जिनको कृष्ण वासुदेव की सहाय है ऐसे पाण्डवों की स्त्री द्रौपदी को जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र से तू हर लाया है। कृष्ण पाण्डवों सहित समुद्र ने दिए हुए मार्ग से यहां पधारे हैं, इसलिए अब यदि जीना चाहता हो तो तत्काल द्रौपदी कृष्ण को सौंप दें।' पद्मराजा बोला, 'वे कृष्ण तो जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में राजा है, बाकी यहां तो वे छः जन मेरे समक्ष क्या मात्र हैं ? इसलिए जा, और उसे युद्ध के लिए सज्ज कर।' दारुक ने आकर ये वचन कृष्ण को कहे, इतने में तो पद्मनाभ राजा भी युद्ध करने की इच्छा से तैयार होकर, सेना सहित नगर बाहर निकला। समुद्र के तरंग की भाँति उसके सैनिक उछल उछल कर टूट पडने लगे। उस समय कृष्ण ने नेत्र विकस्वर करके पांडवों को कहा कि 'आप इस पद्मरथ राजा के साथ युद्ध करोंगे, या मैं युद्ध करुं, उसे रथ में बैठकर देखोगे ?' पाण्डवों ने कहा, 'प्रभु ! आज या तो पद्मनाभ राजा, या तो हम राजा ऐसी प्रतिज्ञा लेकर पद्मनाभ के साथ हम युद्ध करेंगे।'

कृष्ण ने वह बात मान ली तो वे पद्मनाभ के साथ युद्ध करने गये। पद्म ने क्षणमात्र में उन्हें हराया, तो उन्होंने कृष्ण के पास आकर कहा कि 'स्वामिन् ! यह पद्मनाभ तो बड़ा बलवान है और बलवान सैन्य से आवृत्त भी है, इसलिए वह तो आपसे ही जीता जाय ऐसा हैं, हमसे जीता जाय ऐसा नहीं है, तो आपको जैसा योग्य लगे वैसा कीजिए।' कृष्ण बोले, ''हे पाण्डवों ! जब से तुमने पद्मनाभ राजा या हम राजा ऐसी प्रतिज्ञा ली थीं, तब से ही तुम हार गये थे[1]।'' फिर मैं राजा हूँ, पद्मनाभ नहीं, यूं कहकर कृष्ण युद्ध करने चले और महाध्वनिवाला पांचजन्य शंख फूंका। सिंह की गर्जना से मृग के झुण्ड की गति की तरह उस शंखनाद से पद्मराजा के सैन्य का तीसरा भाग टूट गया। फिर कृष्ण ने शार्ङ्ग धनुष्य की टंकार की, तो उसकी ध्वनि से दुर्बल रस्सी की तरह पद्मनाभ के सैन्य का दूसरा तृतीय भाग टूट गया। जब अपने सैन्य का तृतीयांश अवशेष बचा तब पद्मराजा रणभूमि से भागकर तत्काल अमरकंका नगर में घुस गया और लोह-अर्गला से नगर के दरवाजे बंद कर दिए। कृष्ण क्रोध से प्रज्वलित होकर रथ से उतरे और तत्काल समुद्घात से देवता धरे ऐसा नरसिंहरूप धारण किया। यमराज की तरह क्रोधायमान होकर दाढों से भयंकर ऐसा मुख फाडा और उग्र गर्जना करके नगरी के द्वार पर दौड गये और चरणाघात किया, जिससे शत्रु के हृदय के साथ पूरी पृथ्वी कंपायमान हो गयी। उनके चरणाघात से किल्ले का अग्र भाग टूट पड़ा। देवालय गिर गये

१. इस प्रतिज्ञा में वाक्य-स्खलना है। वह 'सगुन से शब्द आगे' वाली कहावत सिद्ध करती है।

और गढ़ की दीवारें गिर पड़ी। उस नरसिंह के भय से उस नगर में रहनेवालों लोगों में से कुछ गढ्ढों में छिप गए, कुछ जल में घुस गये तो कुछ मुर्च्छा पा गये। उस समय पद्मराजा द्रौपदी की शरण में आकर कहने लगा, 'हे देवी ! मेरा अपराध क्षमा कीजिए और यमराज जैसे इस कृष्ण से मेरी रक्षा कीजिए।' द्रौपदी बोली, 'हे राजन ! मुझे आगे करके, स्त्री का वेश धरकर यदि तू कृष्ण की शरण में जायेगा तो जियेगा, अन्यथा जीवित नहीं रह पायेगा।' फिर वैसा करके वह कृष्ण की शरण में आया और शीश झुकाया। शरण करने योग्य कृष्ण ने कहा, 'अब तू भय मत रख।' इस प्रकार कहकर, पाण्डवों को द्रौपदी सौंपकर, रथारुढ होकर कृष्ण आये थे उसी मार्ग से वापस चल पडे। उस समय उस घातकीखण्ड की चम्पानगरी के पूर्णभद्र नाम के उद्यान में भगवान श्री **मुनिसुव्रतप्रभु** पधारे थे। उनकी सभा में **कपिल** वासुदेव बैठे थे। उन्होंने प्रभु को पूछा, 'स्वामिन् ! मेरे जैसा यह किसका शंखनाद सुनाई दे रहा है ?' प्रभु ने कहा, 'यह कृष्णवासुदेव के शंख का ध्वनि है।' कपिल ने पूछा, 'क्या एक ही स्थान पर दो वासुदेव हो सकते हैं ?' तब प्रभु ने द्रौपदी, कृष्ण और पद्मनाभ का सर्व वृत्तांत कह सुनाया। कपिल ने कहा, 'हे नाथ ! जंबूद्वीप के अर्ध भरतक्षेत्र के पति कृष्ण वासुदेव का अभ्यागत अतिथि के समान मैं उनका आतिथ्य करुं।' प्रभु बोले, 'ज्यों एक स्थान पर दो तीर्थंकर और दो चक्रवर्ती नहीं मिलते त्यों दो वासुदेव भी कारणयोग से एक क्षेत्र में आये, फिर भी नहीं मिलेंगे।' अर्हंत के ऐसे वचन सुने तो भी कपिल वासुदेव कृष्ण को देखने के लिए उत्सुक होकर उसके रथ की लीक देखते हुए समुद्र तट पर आये। वहां समुद्र के बीच में से होकर जाते हुए कृष्ण तथा पाण्डवों के चांदी व सोने के पात्र समान श्वेत व पीले रथ का ध्वज उनको नज़र आया, तो 'मैं कपिल वासुदेव आपको देखने के लिए उत्कंठित होकर समुद्र-किनारे आया हूँ, तो वापिस लौटिए।' ऐसे स्पष्ट अक्षर समजाता हुआ शंखनाद उसने किया। उसके उत्तर में 'हम दूर पहुंच गये हैं, इसलिए अब आपको कुछ बोलना नहीं हैं।' ऐसा स्पष्ट समजाता हुआ ध्वनिवाला शंख कृष्ण ने फूंका। उस शंख की ध्वनि सुनकर कपिल वासुदेव वहां से वापस लौटे, और अमरकंका पुरी में आकर पद्मराजा को पूछा, 'यह क्या ?'। पद्म ने अपने अपराध की बात कहकर बताया कि, 'हे प्रभु ! आपके जैसे स्वामी होने पर भी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के वासुदेव कृष्ण ने मेरी पराजय की।' कपिल वासुदेव ने कहा, 'अरे ! असाधारण विग्रहयुक्त दुरात्मा ! तेरा यह कृत्य सहन करने योग्य नहीं है।' ऐसा कहकर उसे राज्य से भ्रष्ट किया और उसके राज्य पर उसके पुत्र को बिठाया।

यहां कृष्ण समुद्र पार करके पाण्डवों से बोले, 'हे पाण्डव ! जब तक मैं सुस्थित देव से अनुमति लूं तब तक तुम गंगा पार कर जाओ।' फिर वे नाव में बैठकर साढ़े बासठ योजन

विस्तारवाले गंगा के भयंकर प्रवाह को उतरकर परस्पर कहने लगे, 'यहां हम नाव खड़ी रखकर कृष्ण का बल देखे कि कृष्ण नाव बिना इस गंगा के प्रवाह को किस प्रकार पार करते हैं ?' इस प्रकार संकेत करके वे नदीतट पर छिपे रहे। कृष्ण कार्य साधकर कृतकृत्य होकर गंगातट पर आये। नाव देखी नहीं तो एक भुजा पर अश्वसहित रथ को रखकर दूसरे हाथ से जल पर तैरने लगे। तैरते तैरते जब वे गंगा के मध्य में आये तब श्रांत होकर सोचने लगे कि 'अहा ! पाण्डव बड़े शक्तिशाली हैं कि जो नाव बिना ही गंगा तैर गये।' कृष्ण को इस प्रकार चिंतित जानकर गंगादेवी ने तत्काल मार्ग कर दिया, तो विश्राम लेकर हरि सुख से गंगा पार कर गए। तट पर आकर पाण्डवों को पूछा, 'आप जहाज बिना गंगा कैसे उतरे ?' पाण्डवों ने कहा, 'हम तो नाव से गंगा उतरे।' कृष्ण ने कहा, 'तो मेरे लिए नाव को वापिस क्यों नहीं भेजी ?' पाण्डव बोले, 'आपके बल की परीक्षा करने के लिए हमने नाव नहीं भेजी।' यह सुनकर कृष्ण ने कोप करके कहा, 'तुमने समुद्र तैरने या अमरकंका नगरी जीतने में मेरा बल नहीं जाना था, कि अब मेरा बल जानना बाकी था ?' इस प्रकार कहकर पाण्डवों के पांचों रथों को लोह दण्ड से चूर्ण कर डाले और उस जगह पर **रथमर्दन** नामक नगर बसाया। फिर कृष्ण ने पाण्डवों का देशनिकाला किया और स्वयं अपनी छावनी में आकर सबके साथ द्वारका में आये।

पाण्डवों ने अपने नगर में आकर वह वृत्तांत कुंतीमाता को कहा, तो कुंती द्वारका मे आयीं और कृष्ण को कहा, 'हे कृष्ण ! आपके देशनिकाला किए हुए मेरे पुत्र अब कहां रहेंगे ? क्योंकि इस भरतार्द्ध में तो ऐसी पृथ्वी नहीं है जो आपकी नहीं होगी।' कृष्ण बोले, 'दक्षिण समुद्रतट पर **पाण्डुमथुरा** नाम की नगरी बसाकर उसमें आपके पुत्र निवास करे।' कुंती ने आकर कृष्ण की यह आज्ञा पुत्रों को कही, तो वे समुद्रध्वनि से पवित्र ऐसे पांडुदेश में गये। कृष्ण ने हस्तीनापुर के राज्य पर अपनी बहन **सुभद्रा** के पौत्र व अभिमन्यु के पुत्र **परीक्षित** का राज्याभिषेक किया।

भगवान नेमिनाथ पृथ्वीतल को पवित्र करते हुए क्रमशः सर्व नगरों मे श्रेष्ठ ऐसे **भद्दिलपुर** में पधारे। यहां **सुलसा व नाग** के पुत्र रहते थे, जो देवकी के उदर से उत्पन्न हुए थे और जिन्हें नैगमेषी देवता हरकर लाये थे। वे प्रत्येक बत्तीस बत्तीस कन्याओं से ब्याहे थे। उन्होंने श्री नेमिनाथ से बोध पाकर व्रत ग्रहण किया। वे छः चरमशरीरी थे। वे द्वादशांगी को धारण करके बड़ा तप करते हुए प्रभु के साथ विहार करने लगे।

श्री नेमिनाथ विहार करते करते एक बार द्वारका समीप पधारे। वहां सहस्राम्रवन नाम के उपवन में समवसरे। उस समय देवकी के छः पुत्रों ने छट्ठ तप के पारणार्थ दो दो की जोड़ी में तीन भाग में अलग अलग वहोरने हेतु द्वारका में प्रवेश किया। उसमें प्रथम **अनीकयशा** और **अनंतसेन** देवकी के घर गये। उनको कृष्ण समान देखकर देवकी ने बड़ा हर्ष पाया। देवकी

ने उनकों सिंहकेसरी मोदक से प्रतिलाभित किया। वे वहां से अन्यत्र गये। इतने में तो उनके सहोदर **अजितसेन** और **निहतशत्रु** नाम के दो महामुनि वहां आये। उनको भी देवकी ने प्रतिलाभित किया। इतने में **देवयशा** व **शत्रुसेन** नामक तीसरे दो मुनि भी वहां पधारे। उनको नमस्कार करके अंजलि जोड़कर देवकी ने पूछा, 'हे मुनिराज ! क्या आप दिशा के मोह से बार बार यहां आ रहे हो ? या मेरी मति में मोह हो गया है ? आप वे के वे नहीं हैं ? अथवा संपत्ति से स्वर्गपुरी जैसी इस नगरी में क्या महर्षियों के योग्य भक्तपान नहीं मिलता ?' देवकी के ऐसे प्रश्न से वे मुनि बोले, 'हमें कुछ भी दिग्मोह नहीं हुआ है, पर हम छः सहोदर भाइ हैं, भद्दिलपुर के निवासी हैं और सुलसा व नागदेव के पुत्र हैं। श्री नेमिनाथ से धर्म सुनकर हम छः बंधुओं ने दीक्षा ली है। आज तीन जोड़ी बनाकर वहोरने निकले हैं। हम तीनों युगल क्रमशः आपके घर आये हैं ऐसा लगता है।'

यह सुनकर देवकी सोचने लगीं कि 'ये छः मुनि कृष्ण समान क्यों दिखते हैं ? उनमें एक तिलमात्र का भी फर्क नहीं है। पूर्वकाल में अतिमुक्त साधु ने मुझे कहा था कि तुम्हे आठ पुत्र[1] होंगे और वे जीवित रहेंगे, तो क्या ये छः मेरे पुत्र तो नहीं होंगे ?' दूसरे दिन देवकी देवरचित समवसरण मे श्री नेमिनाथ को पूछने गयीं। देवकी के हृदय का भाव जानकर पूछने से पहले ही प्रभु ने कहा, 'हे देवकी ! तुमने कल देखे वे छः तुम्हारे पुत्र हैं। उन्हें नैगमेषी देवता ने जीवित ही तुम्हारे पास से लेकर सुलसा को दिए थे।' फिर वहाँ उन छः साधुओं को देखकर देवकी के स्तन में से पय बहने लगा। उसने छः मुनियों को प्रेम से वन्दना करके कहा, 'हे पुत्रों ! आपके दर्शन हुए, यह बहुत अच्छा हुआ। मेरे उदर से जन्म लेनेवालों मे से एक को उत्कृष्ट राज्य मिला और आप छः को दीक्षा प्राप्त हुई यह तो बहुत अच्छी बात हुई, लेकिन मुझे खेद इतना ही है कि आप में से किसीको भी मैंने खिलाया या पाला नहीं है।' भगवान नेमिनाथ बोले, 'देवकी ! वृथा खेद क्यों करती हो ? पूर्वजन्म के कृत्य का फल इस जन्म में प्राप्त हुआ है, क्योंकि आपने पूर्व भव में आपकी सपत्नी के सात रत्न चुराये थे। फिर जब वह रोने लगीं तो आपने उसमें से मात्र एक रत्न वापस दिया था।' इस प्रकार सुनकर देवकी अपने पूर्वभव के दुष्कृत्य की निंदा करते हुए घर गयीं और पुत्रजन्म की इच्छा से खेदयुक्त चित्त से रहने लगी। कृष्ण ने आकर पूछा, 'हे माता ! आप खेद क्यों कर रही हो ?' देवकी बोली, 'हे वत्स ! मेरा पूरा जीवन निष्फल गया है, क्योंकि तुम बचपन में नन्द के घर बड़े हुए, और तुम्हारे छः अग्रज सहोदर नागसार्थवाह के घर पले, मैंने तो सात में से एक पुत्र को भी बाल्यवय में लालित नहीं किया हैं, इसलिए हे वत्स ! बालक का लालनपालन करने की इच्छावाली मैं पुत्र

१. छः सुलसा के यहां पले थे, सातवें कृष्ण और आठवे गजसुकुमार जो अब होंगे।

चाहती हूँ। उन पशुओं को भी धन्य है कि जो अपने अपत्यों (बछड़ो) को लालित करते हैं।'

माता के ऐसे वचन सुनकर 'मैं तुम्हारा मनोरथ पूरा करुंगा।' यूं कहकर कृष्ण ने सौधर्म इन्द्र के सेनापति नैगमषी देव की आराधना की। देव प्रत्यक्ष होकर बोला, 'हे भद्र ! आपकी माता को आठवाँ पुत्र होगा, परंतु जब वह बुद्धिमान युवावस्था पायेगा तब दीक्षा लेगा।' उसके इस प्रकार के कथन के बाद अल्प समय में ही एक महर्द्धिक देव स्वर्ग से च्यूत होकर देवकी के उदर में उत्पन्न हुआ, और समय होने पर पुत्ररुप में अवतरित हुआ। उसका **गजसुकुमार** नाम रखा गया। मानो दूसरा कृष्ण हो त्यों उस देव समान पुत्र का देवकी लालन-पालन करने लगीं। माता को अति प्यारा और भ्राता के प्राण समान कुमार दोनों के नेत्ररुपी कुमुद का चन्द्ररूप बना। क्रमशः वह युवावस्था पाया, तो पिता की आज्ञा से **द्रुमराजा** की पुत्री **प्रभावती** से ब्याहा। फिर इच्छा न होने पर भी **सोमशर्मा** ब्राह्मण की क्षत्रियाणी स्त्री से उत्पन्न हुई **सोमा** नामकी कन्या से भी माँ और भ्राता की आज्ञा से ब्याहा। इतने में श्री नेमिनाथ प्रभु वहाँ पधारें। उनके पास स्त्रियां सहित जाकर गजसुकुमार ने सावधानीपूर्वक धर्म सुना, जिससे अपूर्व वैराग्य उत्पन्न होते ही दोनों पत्नियों सहित मातापिता की आज्ञा पाकर उसने प्रभु से दीक्षा ली। जब गजसुकुमार ने दीक्षा ली तब उसके वियोग को सहन नहीं कर सकते उसके मातापिता ने और कृष्ण प्रमुख भाइयों ने उच्च स्वर में रुदन किया।

जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन गजसुकुमार मुनि प्रभु की आज्ञा लेकर सायंकाल में स्मशान जाकर कायोत्सर्ग ध्यान में रहे। कुछ कारण से बाहर गये हुए सोमशर्मा ब्राह्मण ने उनको देखा। उन्हें देखकर उस सोमशर्मा ने सोचा कि 'यह गजसुकुमार सचमुच पाखंडी है, उसका ऐसा विचार होने पर भी मात्र विटम्बना करने के लिए वह दुराशयी मेरी पुत्री से ब्याहा था।' यूं सोचकर वह महाविरोधी बुद्धिवाले सोमशर्मा ने अति क्रोधायमान होकर जलती हुई चिता के अंगारों से भरी हुई एक घड़े की ठीब उनके सर पर रखीं। उससे अत्याधिक जलने पर भी उन्होंने समाधिपूर्वक वह सब सहन किया, जिससे गजसुकुमार मुनि के कर्मरुपी सर्व इंधन जलकर भस्म हो गये और तत्काल केवलज्ञान प्राप्त करके आयुष्य पूर्ण होने से मुनि मोक्ष गये।

प्रातःकाल कृष्ण अपने परिवार सहित रथ में बैठकर पूर्ण उत्कंठित मन से गजसुकुमार मुनि की वन्दना के लिए चले। द्वारका के बाहर निकले तब उन्होंने एक वृद्ध ब्राह्मण को सिर पर इंटे लेकर किसी देवालय की ओर जाते हुए देखा। कृष्ण उसके पर दया लाकर उसमें से एक इंट स्वयं देवालय में ले गये, तो कोटि प्रमाण में लोग भी एक एक इंट ले गये, जिससे उसका तो काम बन गया। इस प्रकार उस ब्राह्मण को कृतार्थ करके कृष्ण नेमिनाथ के पास

आये। वहां स्थापित किए भण्डार जैसे अपने भाई गजसुकुमार को उन्होंने देखा नहीं, तो कृष्ण ने भगवंत को पूछा, 'प्रभु ! मेरे भाई गजसुकुमार कहां हैं ?' भगवंत ने कहा, 'सोमशर्मा ब्राह्मण के हाथों उनका मोक्ष हुआ।' यह बात विस्तार से सुनते ही कृष्ण को मूर्छा आयी। थोड़ी देर बाद संज्ञा पाकर कृष्ण ने प्रभु को पूछा, 'भगवंत ! मेरे भाई का वध करनेवाले उस ब्राह्मण को मैं किस प्रकार पहचानूंगा ?' प्रभु बोले, 'कृष्ण ! उस सोमशर्मा पर आप कोप न करना, क्योंकि वह आपके भ्राता को सद्य मोक्ष पाने में सहायक हुआ है। लम्बे काल में साध्य हो ऐसी सिद्धि हो तो भी, सहाय मिलने से क्षण में सिद्ध होती है। ज्यों उस वृद्ध ब्राह्मण को आपने सहाय दी तो उसकी सर्व इंटे स्वल्प समय में वांछित स्थानक पर पहुँच गयीं। यदि सोमशर्मा तुम्हारे भाई को ऐसा उपसर्ग नहीं करता तो कालक्षेप बिना उसे सिद्धि किस प्रकार होती ? अब तुम्हें उसे पहचानना ही है तो आपको यहां से वापस लौटते हुए नगरी में घुसते देखकर जो मस्तिष्क फट कर मर जाय उसे ही तुम्हारे भाई का वध करनेवाला जान लेना।' फिर कृष्ण ने रुदन करते हुए अपने भाई का उत्तरसंस्कार किया। वहां से खेदयुक्त चित्त से वापस लौटकर द्वारका नगरी में घुसते ही उन्होंने उस सोमशर्मा ब्राह्मण को मस्तिष्क फटकर मरते हुए देखा, तो तत्काल उसके पाँवों में रस्सी बांधकर अपने आदमियों द्वारा उसे पूरी नगरी में घूमवाकर चील वगैरह पक्षियों को नया बलिदान देने के लिए बाहर फिंकवा दिया।

गजसुकुमार के शोक से प्रभु के पास कइं यादवों और वसुदेव के सिवा नौं दशार्हो ने दीक्षा ली। प्रभु की माता शिवादेवी, नेमिनाथ के सात सहोदर बंधुओं और कृष्ण के अनेक कुमारों ने भी दीक्षा ली। राजीमती ने भी संवेग धरकर प्रभु से दीक्षा ली। उसके साथ नंद की कन्या **एकनाशा** और यादवों की अनेक स्त्रियों ने दीक्षा ली। उस समय कृष्ण ने कन्या का विवाह न करने का अभिग्रह धारण किया, तो उनकी सर्व पुत्रियों ने भी प्रभु के समीप दीक्षा ली। कनकवती, रोहिणी और देवकी के सिवा वसुदेव की सर्व स्त्रियों ने व्रत ग्रहण किया। कनकवती को घर में रहते हुए संसार की स्थिति के चिंतन से सद्य धातीकर्म नष्ट हो जाने से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। नेमिनाथ के कहने पर देवताओं ने उनकी महिमा की। इसके बाद स्वयं मुनिवेश धारण करके प्रभु के पास गयीं। वहाँ नेमिनाथ के दर्शन करके, वन में जाकर एक मास का अनशन करके कनकवती मोक्ष गयीं।

राम का पौत्र और निषिध का पुत्र **सागरचन्द्र** विरक्त बुद्धिवाला होने से प्रथम वह अणुव्रतधारी बना था, उसने इस समय प्रतिमाधरपना स्वीकारा (श्रावक की ११ पडिमा वहने लगा) एक बार उसके कायोत्सर्ग किया था, वहां सदैव उसके छिद्रों को देखनेवाले नभसेन ने उसे देखा, तो उसके पास आकर नभसेन बोला, 'अरे पाखंडी ! इस समय तू यह क्या करता

है ? कमला-मेला के हरण में तूने जो किया था, उसका फल अब चख।' यूं कहकर उस दुराशयी नभसेन ने उसके मस्तिष्क पर चिता के अंगारों से भरा घडे का कण्ठा रखा। उपसर्ग को सम्यक् भाव से सहन करके उससे दग्ध होकर सागरचन्द्र पंचपरमेष्ठी नमस्कार का स्मरण करते हुए मृत्यु पाकर देवलोक में गया।

उस समय इन्द्र ने सभा में कहा, 'कृष्ण वासुदेव सदैव किसी के भी दोष को छोड़कर सिर्फ गुण का ही कीर्तन करते हैं और कभी भी नीच युद्ध करते नहीं हैं।' इन्द्र के ऐसे वचन पर श्रद्धा न आने से कोई देवता उसकी परीक्षा करने के लिए तत्काल द्वारका में आया। उस समय कृष्ण रथ में बैठकर स्वैच्छा से क्रीडा करने जा रहे थे। वहां मार्ग में उस देवता ने मरा हुआ कृष्णवर्णी श्वान रचा। उसके शरीर में से ऐसी दुर्गंध फैल रही थीं कि जिससे लोग दूर से ही दुगंछा व बाधा पाते थे। उसके समीप जाकर ध्यान से देखकर कृष्ण ने कहा, 'अहो ! इस कृष्णवर्णी श्वान के मुख में पाण्डुवर्णी (श्वेत) दाँत कैसी अत्याधिक शोभा देते हैं ?' इस प्रकार एक परीक्षा देखकर उस देव ने चोर का रुप धरकर कृष्ण के अश्वरत्न को हर लिया। उसके पीछे कृष्ण के अनेक सैनिक दौडे, उनको भी उसने जीत लिया, तो कृष्ण स्वयं दौड़कर उसके पास जाकर बोले, 'अरे चोर ! मेरे अश्वरत्न को क्यों हरता है ? उसे छोड़ दे, क्योंकि अब तू कहां जायेगा ?' देव ने कहा, 'मुझे युद्ध में जीतकर अश्व ले लो।' कृष्ण ने कहा, 'तू भी रथ में बैठ, क्योंकि मैं रथी हूँ।' देव ने कहा, 'मुझे रथ या हाथी वगैरह की कुछ जरुरत नहीं है, मेरे साथ युद्ध करना हो तो बाहुयुद्ध से युद्ध करें।' कृष्ण ने कहा, 'जा, अश्व ले जा, मैं हारा, क्योंकि कदापि सर्वस्व नाश हो जाय तो भी नीच[1] अधम युद्ध मैं नहीं करना चाहता।' यह सुनकर वह देव संतुष्ट बना। फिर उसने इन्द्र ने की हुई प्रशंसा वगैरह का वृत्तांत उनको सुनाकर कहा, 'हे महाभाग ! वरदान माँगिए।' कृष्ण ने कहा, 'इस समय मेरी द्वारकापुरी रोग के उपसर्ग से व्याप्त है, तो उसकी शांति के लिए कुछ दीजिए।' तो देवता ने कृष्ण को एक भेरी (नगारा) देकर कहा, 'यह भेरी प्रति छः मास पर आपके नगर में बजानी हैं, इसका शब्द सुनने से पूर्व उत्पन्न हुए सर्व व्याधि और उपसर्गों का क्षय हो जायेगा और छः मास तक नये व्याधि वगैरह उपसर्ग नहीं होंगे।' इस प्रकार कहकर वह देव स्वस्थान पर गया।

कृष्ण ने द्वारका में जाकर वह भेरी बजाई, जिससे नगर में उत्पन्न हुए सब रोगों की शांति हो गयी। उस भेरी की ख्याति सुनकर कोई धनाढ्य मनुष्य दाहज्वर से पीडित होकर देशांतर से द्वारका में आया। उसने आकर भेरीपालक को कहा, 'हे भद्र ! मेरे उपकार के लिए एक लाख द्रव्य लेकर इस भेरी का पल जितना टुकडा मुझे दो। मुझ पर इतनी दया कर।'

१. ऐसे एक चोर जैसे मनुष्य के साथ कृष्ण जैसे वासुदेव का बाहुयुद्ध करना ही अधम युद्ध ही है।

भेरीपाल द्रव्य में लुब्ध हुआ, तो उसका एक छोटा खण्ड काटकर उसे दिया, और चन्दन के खण्ड से उस भेरी को जोड़ दिया। इस प्रकार उस द्रव्य लुब्ध आदमी ने अन्यों को भी उसके टुकडे काट काट कर दिए और वह भेरी मूल से ही (पूरी) चन्दन के टुकडों की कंथा जैसी हो गयी। फिर एक बार वैसा ही रोग का उपद्रव होने पर कृष्ण ने उसे बजवायी तो उसका एक मशक के जैसा नाद हुआ, जो सभा मे भी पूरा नहीं सुनायी दिया। उससे 'यह क्या ?' यूं कृष्ण ने विश्वासु आदमियों को पूछा, तो उन्होंने जांच-परख करके कहा, 'उसके रक्षक ने पूरी भेरी जोड़ जोड़ कर कंथा जैसी कर डाली है।' यह बात सुनकर कृष्ण ने उसके रक्षक को मरवा डाला और फिर अट्ठम तप करके उसके जैसी दूसरी भेरी उस देव से हॉसिल की, क्योंकि, ''महान पुरुषों को क्या मुश्किल है ?''

फिर रोग की शांति के लिए कृष्ण ने भेरी बजवायी। धन्वंतरी तथा वैतरणी नाम के दो बैद्यों को भी लोगों के व्याधि की चिकित्सा करने की आज्ञा दी। उसमें वैतरणी वैद्य भव्य जीव था। वह जिसकी जो चिकित्सा करने योग्य हो वह बताता और औषध भी उसको योग्य ही देता तथा धन्वंतरी पापपूर्ण चिकित्सा करता था। इससे जब साधू कहतें कि ''यह औषध हमारे विहित[1] नहीं है।'' तब उनको वह प्रत्युत्तर देता कि 'मैं साधु के योग्य आयुर्वेद पढा नहीं हूँ इसलिए मेरा वचन मानना मत और उस प्रकार करना मत।' द्वारका में दोनों वैद्य इस प्रकार वैदक करते थे।

एक बार कृष्ण ने नेमिप्रभु को पूछा, ''इन दो वैद्यों की क्या गति होगी ?'' तब प्रभु बोले, ''धन्वंतरी वैद्य सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नाम के नरकावास में जायेगा, और जो वैतरणी वैद्य है वह विंध्याचल में एक युवा युथपति वानर बनेगा। उस वन में कोई सार्थ के साथ साधु आयेंगे। उनमें से एक मुनि के चरण में कांटा लगेगा, जिससे वे चलने में अशक्त बनेंगे। उनके साथ दूसरे मुनि भी वहां रुके रहेंगे। तब वे मुनि उनको कहेंगे कि 'आप मुझे यहां छोड़कर मत जाओ, नहीं तो सार्थभ्रष्ट हो जाने से सब मृत्यु पाओगे।' फिर उनके चरण में से कंटक निकाल ने में असमर्थ और जिनके हृदय दीन हुए हैं ऐसे वे मुनि उस मुनि को एक छांयेदार वृक्ष के नीचे स्थंडिल (जमीन) पर छोड़कर खेदयुक्त चित्त से सार्थ के साथ जायेंगे। वह यूथपति वानर अनेक वानरों के साथ वहां आयेगा। तो उस मुनि को देखकर आगे चल रहे वानर किलकिलाहट करेंगे। उस नाद से रोष पाकर यूथपति वानर आगे आयेगा। वहां उस मुनि को देखकर वह सोच में पड़ेगा कि ''ऐसे मुनि को मैंने पहले भी कहीं देखा हुआ है।'' इस प्रकार चिंतन करते हुए उसे जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होगा, इससे वह अपने पूर्वजन्म के वैद्यपने को

१. करने योग्य - खानेलायक।

याद करेगा। फिर प्राप्त हुए वैद्यकज्ञान से पर्वत पर से वह वानर **विशल्या** और **रोहिणी** नाम की दो औषधियां लायेगा। उसमें से विशल्या औषधि को दाँत से पीसकर मुनि के चरण पर रखेगा, जिससे उनका चरण शल्यरहित होगा, फिर रोहिणी औषधि रखने से घाव तत्काल भर जायेगा। फिर 'मैं पूर्वभव में द्वारका में वैतरणी नाम का वैद्य था' ऐसे अक्षर लिखकर मुनि को बतायेगा। मुनि उसका चरित्र याद करके उसे धर्म कहेंगे, जिससे वह कपि तीन दिन का अनशन करके सहस्रार नाम के आठवें देवलोक में जायेगा। वहां उत्पन्न होते ही अवधिज्ञान से वह अपने कायोत्सर्गी वानर शरीर को देखेगा, और उसके पास बैठकर नवकार-मंत्र सुनाते हुए मुनि को देखेगा; तो मुनि पर अति भक्तिवाला वह देवता वहां आकर उस मुनि को शीश झुकाकर कहेगा, 'हे स्वामिन् ! आपके प्रसाद से मुझे ऐसी देवसंबंधित महाऋद्धि प्राप्त हुई है।' फिर वह उस मुनि को सार्थ के साथ गये हुए अन्य मुनियों के साथ मिलवा देगा। इससे वह मुनि उस कपि की कथा अन्य साधुओं को कहेंगे।' भगवंत ने कहा हुआ इस प्रकार का कथन सुनकर धर्म पर श्रद्धा रखनेवाले श्रीहरि प्रभु को शीश झुकाकर स्वस्थान पर गये। प्रभु ने भी वहां से अन्यत्र विहार किया।

एक बार वर्षाऋतु के आरंभ में मेघ की तरह जगत को तृप्त करनेवाले श्री नेमिनाथ प्रभु द्वारका समीप आकर ठहरे। कृष्ण ने भगवंत के पास आकर सेवा करते हुए प्रभु को पूछा, 'हे नाथ ! आप और अन्य साधु वर्षाऋतु में विहार क्यों नहीं करते ?' प्रभु बोले, 'वर्षाऋतु में पूरी पृथ्वी विविध जंतुओं से व्याप्त होती है, जिससे जीव को अभय देनेवाले साधु उस समय में विहार नहीं करते हैं।' कृष्ण ने कहा, 'तब मैं भी परिवार सहित बार बार गमनागमन करुंगा तो कइं जीवों का क्षय होगा, 'इसलिए मैं भी वर्षाकाल में राजमंदिर के बाहर निकलूंगा नहीं।' ऐसा अभिग्रह लेकर कृष्ण ने वहां से जाकर अपने राजमंदिर में प्रवेश किया और द्वारपालों को आज्ञा दी कि 'वर्षाऋतु के चार माह तक किसी को भी राजमहल में प्रवेश मत करने देना।'

द्वारका नगरी में **वीरो** नाम का एक सालवी विष्णु का बड़ा भक्त था। वह कृष्ण के दर्शन और उनकी पूजा करके ही भोजन करता था, नहीं तो भोजन करता न था। कृष्ण के पूर्वोक्त हुक्म से द्वारपाल ने वर्षाकाल में उसे कृष्ण मंदिर में प्रवेश न करने दिया, जिससे वह द्वार पर ही बैठे रहकर कृष्ण को उद्देश्य करके प्रतिदिन पूजा करता, परंतु कृष्ण के दर्शन न होने से वह भोजन नहीं करता था। इस प्रकार जब वर्षाकाल बीत गया और कृष्ण राजमहल से बाहर निकले, उस समय सब राजा व वीरो सालवी द्वार के पास आकर खड़े थे। उसमें वीरो सालवी को अत्यंत कृश हुए देखकर वासुदेव ने पूछा कि 'तू क्यों कृश हो गया है ?' तो द्वारपालों ने उसके कृश होने का जो यथार्थ कारण था वह कह सुनाया। फिर कृष्ण ने कृपा करके उसे

श्री नेमिनाथ भगवान

गिरनार तीर्थ

-: सौजन्य दाता :-

ऋषभदेव जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ

मिराम्बिका रोड, नारणपुरा, अहमदाबाद

श्री शांतिनाथ भगवान

गारियाधार तीर्थ

१६५ वर्ष पुराना देरासर है । संप्रति राजाकालीन प्रतिमाजी है ।

-: सौजन्य दाता :-

गारियाधार जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ

जि. भावनगर

हंमेशां अपने महल में अस्खलित रुप में आने देने का हुक्म दिया।

इसके बाद कृष्ण परिवार सहित श्री नेमिनाथ की वंदना के लिए गये। वहां भगवंत ने कहा हुआ यतिधर्म सुनकर कृष्ण बोले, 'हे नाथ ! मैं यतिधर्म पालने में समर्थ नहीं हूं, लेकिन दूसरों को दीक्षा दिलाने और उसकी अनुमोदना करने का मेरा नियम हो। जो कोई दीक्षा लेगा उसे मैं रोकूंगा नहीं, पर पुत्र की भाँति उसका निष्क्रमणोत्सव करुंगा।' ऐसा अभिग्रह लेकर विष्णु स्वस्थान पर गये। वहां अपनी विवाह योग्य कन्याएं प्रणाम करने आयी। उनको कृष्ण ने कहा, 'हे पुत्रियों ! तुम स्वामिनी बनोगी या दासी बनोगी ?' वे बोलीं, 'हम स्वामिनी बनेगीं।' तो कृष्ण ने कहा, 'हे पापरहित पुत्रियों ! यदि स्वामिनी बनना हो तो नेमिनाथ के पास जाकर दीक्षा लो।' इस प्रकार कहकर विवाहयोग्य उन कन्याओं को कृष्ण ने दीक्षा दिलवाई और जो जो कन्याएं विवाह योग्य हो जाती तो उन्हें दीक्षा दिलाने लगे।

एक बार एक रानी ने अपनी **केतुमंजरी** नाम की कन्या को सिखाया कि 'वत्से ! यदि तुझे तेरे पिता पूछे तो तू बेशक कहना, 'मुझे दासी बनना है, रानी नहीं बनना है।' क्रमशः वह जब विवाह योग्य हुई तब उसकी माता ने उसके पिता (कृष्ण) के पास उसे भेजा। कृष्ण ने पूछा, 'दासी बनना है या रानी ?' तो ज्यों माता ने सिखाया था त्यों उसने कहा। वह सुनकर कृष्ण सोचने लगे कि 'यदि दूसरी पुत्रियां भी ऐसा कहेगी तो वे मेरी पुत्रियां होने पर भी भवाटवी में भटकते हुए सर्वथा अपमान पाया करेगी, यह कुछ योग्य नहीं होगा। इसलिए अब दूसरी पुत्रियां ऐसा न बोले वैसा उपाय करुं।' इस प्रकार चिंतन करके कृष्ण ने वीर कुविंद को बुलाकर पूछा कि तूने कुछ भी उत्कृष्ट पराक्रम किया है ? उसने कहा, 'मैंने कुछ भी उत्कृष्ट पराक्रम नहीं किया है।' कृष्ण ने कहा, 'सोचकर कह, कुछ भी किया होगा।' तब वीर ने विचार करके कहा, 'पूर्व में बदरी वृक्ष पर रहे एक गिरगिट को मैंने पाषाण मारकर गिरा दिया था, और फिर वह मर गया था। एक बार मार्ग की लिक में जल बह रहा था उसे बाँये पैर से रोक रखा था। एक बार एक घड़े के अंदर मक्खियां घुस गई थीं, फिर उस घड़े का मुँह बाँयें हाथ से बंद करके बहुत देर तक भिनभिनाहट करती हुई उन मक्खियों को भर रखा था।'

दूसरे दिन कृष्ण सभास्थान में आकर सिंहासन पर बैठकर राजाओं समक्ष बोले कि 'हे राजाओं ! वीर कुविंद का चरित्र अपने कुल योग्य नहीं है। अर्थात् अधिक पराक्रमवाला है।' और कृष्ण को 'दीर्घ जीयो' यूं बोलते राजा सुनने के लिए सावधान बने। तो कृष्ण ने इस प्रकार कहा, 'जिसने भूमिशस्त्र से बदरी के वृक्ष पर रहे लाल फनवाले नाग को मार डाला था, वह वीर सचमुच क्षत्रिय है। चक्र से खुदी हुई और कलुष जल को वहन करती हुई गंगानदी को जिसने अपने वाम चरण से धर रखी है वह वीर कुविंद सचमुच क्षत्रिय है। और जिसने घटनगर

में रहनेवाली घोष करती हुई बड़ी सेना को एक वाम कर से रोक रखी वह वीर कुविंद सचमुच क्षत्रिय है। इससे पुरुषव्रतधारी यह वीरक मेरा जामाता बनने योग्य है।' इस प्रकार से सभाजनों को कहकर कृष्ण ने वीरक को कहा, 'तू इस केतुमंजरी को ग्रहण (विवाह) कर।' वीर ने वैसा करना नहीं चाहा, तो कृष्ण ने भ्रूकुटी चढ़ाकर कहा, जिससे तत्काल केतुमंजरी को ब्याहकर वह अपने घर ले गया। केतुमंजरी उसके घर शय्या पर बैठी रहने लगी और बेचारा वीरक रात-दिन उसकी आज्ञा में रहने लगा।

एक बार कृष्ण ने वीरक को कहा, 'केतुमंजरी तेरी आज्ञा में रहती है ?' तब वह बोला, 'मैं उसकी आज्ञा में रहता हूँ।' कृष्ण ने कहा, 'यदि तेरा सब कार्य उसके पास नहीं करायेगा तो तुझे कारागृह में डालूंगा।' कृष्ण का आशय जानकर वीर घर आया, और उसने केतुमंजरी को कहा, 'अरे स्त्री ! तू क्यों बैठी रही है ? वस्त्र बुनने के लिए पत्ते तैयार कर।' केतुमंजरी क्रोध करके बोली, 'अरे कोली ! क्या तू मुझे नहीं पहचानता ?' यह सुनकर वीरक ने रस्सी द्वारा केतुमंजरी को निःशंक होकर मार मारा, जिससे वह रोते रोते कृष्ण के पास गयी और अपने पराभव की बात कह सुनायी। तब कृष्ण ने कहा, 'हे पुत्री ! तूने स्वामीपना छोड़कर दासीपना माँग लिया है, अब मैं क्या करुं ?' वह बोली, 'पिता ! अब मुझे स्वामीपना दीजिए।' कृष्ण बोले, 'अब तो तू वीरक के स्वाधीन है, मेरे स्वाधीन नहीं है।' फिर जब केतुमंजरी ने अति आग्रह से कहा, तब कृष्ण ने वीरक को समझाकर केतुमंजरी को संमति दिलवाकर श्री नेमिनाथ प्रभु से उसे दीक्षा दिलवाई।

एक बार कृष्ण सब (१८,०००) साधुओं को द्वादशावर्त वन्दना करने लगे, तो दूसरे राजा थोड़े थोड़े मुनियों की वंदना करके निर्वेद पाकर बैठ गये, फिर कृष्ण के अनुवर्तन (नकल) से उस वीरा बुनकर ने भी सर्व साधुओं को द्वादशावर्त वंदना की। फिर कृष्ण ने प्रभु को कहा, 'सब मुनियों को द्वादशावर्त वन्दना करने से आज मुझे जितना श्रम हुआ है, उतना श्रम तीनसौं साठ युद्ध करने में भी मुझे नहीं हुआ था।' तो सर्वज्ञ प्रभु बोले, 'हे वासुदेव ! आज आपने बड़ा पुण्य, क्षायिक सम्यक्त्व और तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया है, और सातवीं नर्क के योग्य कर्मपुद्गलों का नाश करके तीसरी नर्क के योग्य आयुष्य आपने बांधा है, जिसको तुम इस भव के अंत भाग में निकाचित करेंगे। कृष्ण ने कहा, 'हे भगवन् ! अब दुबारा मैं सब मुनियों की वन्दना करुं जिससे पहले की तरह मेरा नर्क का आयुष्य मूल में से ही क्षय हो जाय।' प्रभु बोले, 'हे धर्मशील ! अब जो वंदना करोगे वह द्रव्यवंदना होगी, और फल तो भाववन्दना से मिलता है, अन्यथा मिलता नहीं है।' तब कृष्ण ने उस वीरा बुनकर ने की हुई मुनिवन्दना के फल के बारे में पूछा। तब प्रभु बोले, 'वन्दना करने का फल उसे सिर्फ उसके शरीर को क्लेश

हुआ उतना ही हुआ है, क्योंकि उसने तुम्हारे अनुयायीपने के भाव बिना ही वन्दन किया है।' फिर कृष्ण भगवंत को शीश झुकाकर, उनके वचनों पर विचार करते हुए परिवार सहित द्वारकापुरी में आये।

कृष्ण को ढंढणा नाम की स्त्री से **ढंढणकुमार** नाम का पुत्र हुआ था। वह युवावस्था पाने पर कइं राजकुमारियों से ब्याहा था। एक बार श्री नेमिनाथ से धर्म सुनकर उसने संसार से विरक्त होकर दीक्षा ली। उस समय कृष्ण ने उसका निष्क्रमणोत्सव किया। ढंढणमुनि प्रभु के साथ विहार करने लगे और सब साधुओं के अनुमत हुए। इस प्रकार रहते हुए पूर्वजन्म के बांधे हुए अंतरायकर्म का उदय हुआ, जिससे वे जहां जाते वहां उन्हें आहारादि कुछ भी मिलता नहीं था। इतना नहीं, उनके साथ जो भी मुनि जाते उनको भी कुछ नहीं मिलता था। फिर सब साधुओं ने मिलकर श्री नेमिनाथ को पूछा, 'हे स्वामिन् ! तीन लोक के पति ऐसे आप, उनके शिष्य और कृष्ण वासुदेव के पुत्र, फिर भी इन ढंढणमुनि को बड़े धनाढ्य, धार्मिक और उदार गृहस्थोंवाली पूरी द्वारका नगरी में किसी जगह से भिक्षा मिलती नहीं है, इसका क्या कारण है ?' प्रभु बोले, 'पूर्व में मगध देश में **धान्यपूरक** नाम के गाँव में राजा का सेवक **पारासर** नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह उस गाँव के लोगों से राजा के क्षेत्रों की बुआई करवाता था, परंतु भोजन-बेला होने पर भी और भोजन आ जाने पर भी वह लोगों को भोजन की अनुमति नहीं देता था, परंतु भूखे, प्यासे और थके हुए बैलों से उन ग्रामिणों से हल जुतवाकर एक एक चास निकलवाता था। इस कार्य से उसने अंतराय कर्म बांधा है, उसके उदय से उसे भिक्षा नहीं मिलती है।' प्रभु के ऐसे वचन सुनकर ढंढणमुनि को अत्यंत संवेग हुआ, जिससे उसने प्रभु से अभिग्रह लिया कि 'आज से मैं परलब्धि से प्राप्त हुए आहार से भोजन नहीं करुंगा।' इस प्रकार अलाभ परिषह सहन करते हुए ढंढणमुनि ने परलब्धि से मिले आहार को ग्रहण न करते हुए आहार बिना कुछ काल निर्गमन किया।

एक बार सभा में बैठे हुए नेमि प्रभु को कृष्ण वासुदेव ने पूछा, 'स्वामिन् ! इन सब मुनियों में दुष्कर कार्य करनेवाले कौन हैं ?' प्रभु बोले, 'सब ही दुष्कर कार्य करनेवाले हैं, लेकिन ढंढण सबसे अधिक हैं, क्योंकि उन्होंने अलाभ परिषह सहन करते हुए लम्बा काल निर्गमन किया है।' फिर कृष्ण प्रभु को झुककर द्वारका जा रहे थे कि मार्ग में ढंढणमुनि को गोचरी के लिए जाते हुए देखा, तो तत्काल हाथी पर से उतरकर अति भक्ति से कृष्ण ने उनको नमस्कार किया। उस समय कृष्ण को नमस्कार करते हुए देखकर कोई एक श्रेष्ठी सोचने लगा कि 'इन मुनि को धन्य है कि जिसे कृष्ण भी इस प्रकार नमस्कार करते हैं।' फिर ढंढणमुनि भी घूमते घूमते उसी श्रेष्ठी के घर गयें, तो उस श्रेष्ठी ने उनको बड़े सम्मानपूर्वक मोदक की भिक्षा दी। ढंढणमुनि

ने आकर सर्वज्ञ प्रभु को नमस्कार करके कहा, 'हे स्वामिन् ! आज तो मुझे भिक्षा मिली है तो क्या मेरा अंतरायकर्म क्षीण हुआ है ?' प्रभु बोले, 'तुम्हारा अंतरायकर्म अभी क्षीण नहीं हुआ, लेकिन कृष्ण वासुदेव की लब्धि से तुझे आहार मिला है। कृष्ण ने तुझे वंदना की, वह देखकर सेठ ने तुझे प्रतिलाभित किया है।' यह सुनकर रागादिक से रहित ढंढणमुनि ने 'यह परलब्धि का आहार है', ऐसा सोचकर वह भिक्षा शुद्ध स्थंडिल भूमि में गाड़ने लगे। उस समय 'अहो ! जीवों के पूर्व-उपार्जित कर्मों का क्षय होना बहुत मुश्किल है' यूं स्थिरता से ध्यान धर रहे उन मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर नेमिप्रभु को प्रदक्षिणा देकर ढंढणमुनि केवली की पर्षदा में बैठे और देवता उन्हें पूजने लगे।

भगवान नेमिनाथ अनेक ग्राम, खान, नगर वगैरह में विहार करते थे और घूम-घूमकर द्वारका में आकर समवसरते थे। एक बार प्रभु गिरनार पर रहे थे, तब अचानक बारिश हुई। उस समय रथनेमि आहार के लिए घूमकर प्रभु के पास आ रहे थे। उस वृष्टि के उपद्रव से उबकर वे एक गुफा में घुसे। उस अवसर पर राजीमती साध्वी भी प्रभु की वन्दना करके वापस लौटी, उनके साथ दूसरी साध्वियां थी, परंतु वृष्टि-भय से सब अलग अलग स्थानक पर चली गईं। जहां रथनेमि मुनि प्रथम घुसे थे वहां दैवयोग से राजीमती ने अनजाने में उस गुफा में प्रवेश किया। अंधकार के कारण अपने समीप में ही रहे रथनेमि मुनि को उसने देखा नहीं और अपने गीले हो गये वस्त्र सूखाने के लिए उसने निकाल डाले। उसे निर्वस्त्र देखकर रथनेमि कामातुर होकर बोले, 'हे भद्रे ! मैंने पहले भी तुझे प्रार्थना की थी, तो अब उस भोग का अवसर है।' स्वर पर से रथनेमि को पहचानकर तत्काल उसने अपना शरीर वस्त्र से ढाँप दिया। फिर कहा, ''कुलीन जन का यूं बोलना कदापि योग्य नहीं है। एवं आप तो सर्वज्ञ के अनुज बंधु हो और उनके ही शिष्य बने हो, फिर भी अबतक उभय के लोगों का विरोध करनेवाली ऐसी दुर्बुद्धि क्यों हैं ? मैं सर्वज्ञ की शिष्या होकर तुम्हारी यह वांछना पूर्ण नहीं करुंगी, परंतु ऐसी वांछना मात्र करने से तुम भवसागर में गिरोगे। चैत्यद्रव्य का नाश, मुनि और साध्वी का शीलभंग, मुनि की हत्या और प्रवचन की निंदा - ये बोधिवृक्ष के मूल में अग्नि जैसे हैं। फिर अंगधन कुल में उत्पन्न सर्प प्रज्वलित अग्नि में घुसते हैं, लेकिन वमन किया हुआ वापस नहीं खाना चाहते। अरे कामी ! तेरी इन्सानियत को धिक्कार है कि तू वमन किया हुआ खाना चाहता है, लेकिन इससे तो अच्छी मृत्यु है। मैं भोजवृष्णि कुल में उत्पन्न पुत्री हूं और तू अंधकवृष्णि कुल में उत्पन्न पुत्र है, हम कोई नीच कुल में उत्पन्न नहीं हुए है कि जिससे स्वीकारे हुए संयम का भंग करें। यदि तू स्त्री को देखकर कामातुर होकर उसकी स्पृहा करता है, तो तू वायु से नाश हुए वृक्ष की तरह अस्थिर बनेगा।'' इस प्रकार राजीमती ने प्रतिबोधित किये हुए रथनेमि

बार बार पश्चात्ताप करते हुए सर्व प्रकार के भोग की इच्छा छोड़कर तीव्रता से व्रत पालने लगे, और वहां से तुरंत ही प्रभु के पास आकर अपने सर्व दुश्चरित्र की आलोचना करके विशुद्ध बुद्धिवाले रथनेमि मुनि ने एक वर्ष तक छद्मस्थपने में रहकर आखिर में केवलज्ञान प्राप्त किया।

भव्यजनरुप कमल में सूर्य समान श्री नेमिनाथ प्रभु अन्यत्र विहार करके दुबारा रैवतगिरि पर समवसरे। यह जानकर कृष्ण ने **पालक** व **शांब** वगैरह पुत्रों को कहा, 'जो सुबह जल्दी उठकर सबसे पहले प्रभु की वन्दना करेगा उसे मैं वांछित दूंगा।' यह सुनकर शांबकुमार ने प्रातःकाल शय्या से उठकर घर में ही रहकर भावपूर्वक प्रभु की वन्दना की, और पालक ने रात्रि में जल्दी उठकर, अच्छे अश्व पर बैठकर शीघ्र ही गिरनार पर जाकर अभव्य होने से हृदय में आक्रोश करते हुए प्रभु को वन्दना की। फिर कृष्ण के पास आकर उसने दर्पक नाम के अश्व की माँग की। कृष्ण ने कहा, 'श्री नेमिनाथ प्रभु जिसे प्रथम वन्दना करनेवाला कहेंगे, उसे यह अश्व दूंगा।' कृष्ण ने प्रभु के पास जाकर पूछा, 'स्वामिन् ! आपको प्रथम वन्दना किसने की है ?' प्रभु बोले, 'पालक ने द्रव्य से और शांब ने भाव से प्रथम वन्दना की है।' कृष्ण ने पूछा कि 'यह किस प्रकार ?' तो प्रभु बोले 'पालक अभव्य है और जांबवती का पुत्र शांब भव्य है।' यह सुनकर कृष्ण ने कोप करके उस भावरहित पालक को निकाल दिया और शांब को मांगे अनुसार वह उत्तम अश्व दिया तथा उसे बड़ा मांडलिक राजा बनाया।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि द्रौपदीप्रत्याहरण–गजसुकुमारादि चरित्र वर्णनो नाम दशमः सर्गः।।१०।।

ग्यारहवाँ सर्ग

द्वारका का दाह और कृष्ण की मृत्यु

एक बार देशना के अंत में विनयवान् कृष्ण ने नमस्कार करके हाथ जोड़कर श्री नेमिनाथ भगवंत को पूछा, 'भगवन ! इस द्वारिकानगरी का और मेरा किस प्रकार नाश होगा ? यह किसी अन्य प्रकार से होगा या काल के वश से स्वयमेव होगा ?' प्रभु बोले, 'शौर्यपुर के बाहर एक आश्रम में **पारासर** नाम के कोई पवित्र तापस रहते हैं। किसी समय पर उसने यमुना द्वीप में जाकर किसी नीच कुल की कन्या का सेवन किया, जिससे उसे **द्वैपायन** नाम का एक पुत्र हुआ है। ब्रह्मचर्य को पालनेवाला और इन्द्रियों को दमन करनेवाला वह द्वैपायन ऋषि यादवों के स्नेह से द्वारका के समीप भाग में रहेगा, किसी समय शांब वगैरह यदुकुमार मदिरा से अंध होकर उसे मारेंगे, जिससे क्रोधांध बना हुआ वह द्वैपायन यादवों सहित द्वारका को जला देगा, और तुम्हारे भाई **जराकुमार** से तुम्हारा नाश होगा।' प्रभु के ऐसे वचन सुनकर, 'अरे ! यह जराकुमार हमारे कुल में अंगारेरुप है' यूं सर्व यादव हृदय में क्षोभ पाकर उसे देखने लगे। जराकुमार भी यह सुनकर सोचने लगा कि 'क्या मैं वसुदेव का पुत्र होकर भाई का घातक बनूंगा ? प्रभु का वचन सर्वथा अन्यथा करने का मैं प्रयत्न करुंगा।' यूं सोचकर प्रभु को नमस्कार करके वह वहां से उठा और दो भाथे तथा धनुष्य को धारण करके कृष्ण की रक्षा करने के विचार से (स्वयं से उसका विनाश न हो इस हेतु से) वनवास स्वीकार लिया। द्वैपायन भी जनश्रुति से प्रभु के वचन सुनकर द्वारका और यादवों की रक्षा के लिए वनवासी बना। कृष्ण भी प्रभु को नमस्कार करके द्वारकापुरी में आये और मदिरा के कारण अनर्थ होगा यूं सोचकर मदिरापान का सर्वथा निषेध किया। कृष्ण की आज्ञा से समीप के पर्वत पर आये कदंब वन के मध्य में **कादंबरी** नाम की गुफा के पास अनेक शिलाकुण्डों की अंदर घर की मोरी के जल की तरह द्वारका के लोग पहले तैयार किये गये सब तरह के मद्य ला-लाकर डालने लगे।

उस समय **सिद्धार्थ** नाम के सारथि को शुभ भाव होने से बलदेव को कहा, 'इस द्वारका नगरी और यादवकुल की ऐसी दशा मैं किस प्रकार देख सकूंगा ? इसलिए मुझे प्रभु के चरण की शरण में जाने दीजिए कि जिससे मैं वहां जाकर इसी समय व्रत ग्रहण करुं। मैं थोड़ा सा भी कालक्षेप सहन कर सकूं ऐसा नहीं है।' बलदेव नेत्र में अश्रु लाकर बोले, 'हे अनघ ! हे भ्रात ! तू तो युक्त कहता है, परंतु मैं तुझे छोड़ने में असमर्थ हूँ, फिर भी तुझे बिदा देता हूँ, परंतु यदि तू तपस्या करके देव बने तो फिर जब मेरा विपत्ति का समय आये तब तू भ्रातृस्नेह याद करके मुझे प्रतिबोध देना।' बलभद्र के इस प्रकार के वचन सुनकर 'बहुत अच्छा' यूं कहकर सिद्धार्थ ने प्रभु से दीक्षा ली, और छः माह तक तीव्र तपस्या करके स्वर्ग गया।

यहां द्वारका के लोगों ने शिलाकुण्डों में जो मदिरा डाली थी, वह विविध वृक्षों के सुगंधित पुष्पों से बहुत स्वादिष्ट हो गयी। एक बार वैशाख मास में शांबकुमार का कोई सेवक पुरुष घूमता घूमता वहां आया, उसे तृषा लगने से उस कुण्ड में से मदिरापान किया। उसके स्वाद से हर्ष पाकर उस मदिरा की एक मशक भरकर वह शांबकुमार के घर आया और शांबकुमार को भेंट की। उसे देखकर ही कृष्णकुमार ने अति हर्ष पाया। फिर तृप्ति तक उसका अच्छी तरह से पान करके वह बोला, 'ऐसी उत्तम मदिरा तुझे कहां से मिली ?' उसने वह स्थान बताया। दूसरे दिन शांब यादवों के अनेक दुर्दांत कुमारों को लेकर कादंबरी गुफा के पास आया। कादंबरी गुफा के योग से विविध प्रकार की स्वादिष्ट मदिरा को देखकर ज्यों तृषातुर मनुष्य नदी देखकर हर्ष पाये त्यों उसने बड़ा हर्ष पाया। फिर वहां पुष्पवाले वृक्षों की वाटिका में बैठकर शांबकुमार ने अपने भाइयों और भ्रातृपुत्रों के साथ पानगोष्टी रची एवं सेवकों से मंगवा-मंगवाकर वे मदिरा पीने लगे। लम्बे अरसे के बाद प्राप्त हुई, जीर्ण बनी और अनेक सुगंधित व स्वादिष्ट द्रव्यों से संस्कारित उस मदिरा का पान करते हुए उन्होंने तृप्ति नहीं पायी। फिर क्रीडा करते हुए और चलते मदिरापान से अंध बने उन कुमारों ने उसी गिरी का आश्रय करके ध्यानस्थ बने द्वैपायन ऋषि को देखा। उसे देखकर शांबकुमार बोला, 'यह तापस हमारी नगरी को और हमारे कुल को नाश करनेवाला है, इसलिए उसे ही मार डालो, जिससे उसके मर जाने के बाद अन्य को किस प्रकार नाश कर सकेगा ?' शांबकुमार के ऐसे वचन से तत्काल कोप करके सर्व यदुकुमार ढेलों से, लातों से, झापटों से और मुष्टियों से उसे बार बार मारने लगे। उस प्रकार उसे पृथ्वी पर गिराकर मृतपाय करके वे सब द्वारका में आकर अपने अपने घर में घुस गये।

कृष्ण अपने आदमियों से ये सब समाचार सुनकर और खेदयुक्त होकर सोचने लगे कि 'अहो ! इन कुमारों ने कुल का अंत करे ऐसा यह कैसा पागलपन किया है ?' फिर कृष्ण राम को लेकर द्वैपायन ऋषि के पास आए। वहां बडे दृष्टिविष सर्प की तरह क्रोध से लाल बने नेत्रवाले उस द्वैपायन को देखा। फिर उन्मत हाथी को महावत शांत करे त्यों उस अति भयंकर त्रिदण्डी को कृष्ण इस प्रकार के वचनों से शांत करने लगे, 'क्रोध महान शत्रु है कि जो प्राणी को केवल इस जन्म में ही दुःख नहीं देता, परंतु लाखों जन्म तक दुःख दिया करता है। हे महर्षि ! मद्यपान से अंध बने मेरे अज्ञानी पुत्रों ने आपका जो बड़ा अपराध किया है, उसके लिए उन्हें आप क्षमा करें, क्योंकि आप जैसे महाशय को क्रोध करना युक्त नहीं है।' कृष्ण ने इस प्रकार बहुत कहा, तो भी वह त्रिदण्डी शांत नहीं बना और वह बोला, 'हे कृष्ण ! आपके सांत्वन का अब क्या काम ? क्योंकि जब तुम्हारे पुत्रों ने मुझे मारा तब मैंने सब लोगों सहित द्वारका नगरी जला ड़ालने का संकल्प किया है। उनमें से आप दो के सिवा अन्य किसी

का छुटकारा नहीं होगा।' इस प्रकार के उनके वचन सुनकर राम ने कृष्ण को निषेध करते हुए कहा, 'हे बांधव ! इस संन्यासी को वृथा क्यों मना रहे हो ? जिनके मुख, चरण, नासिका और हाथ टेढ़े हो, जिनके होठ, दांत और नासिका स्थूल हो, जिनकी इन्द्रियां विलक्षण हो और जो हीन अंगवाले हो वे कदापि शांति नहीं पाते। इसके बारे में उसे दूसरा कहना भी क्या है ? क्योंकि भावी वस्तु का नाश किसी भी प्रकार नहीं होता और सर्वज्ञ का वचन भी वृथा नहीं होता।' फिर कृष्ण सह-शोक बदन से घर आये और द्वारका में उस द्वैपायन के संकल्प की वार्ता प्रकट हुई। दूसरे दिन कृष्ण ने द्वारका में आघोषणा कराई कि "अब से सब लोगों को धर्म में विशेष रुप से तत्पर रहना होगा।" फिर सब लोगों ने उस प्रकार आरंभ किया। इतने में भगवान नेमिनाथ भी रैवताचल पर आकर रुके। यह खबर सुनकर कृष्ण वहां गये और जगत की महा मोहरुपी निंद्रा को दूर करने में रवि की कांति समान धर्मदेशना सुनाने लगे। वह धर्मदेशना को सुनकर प्रद्युम्न, शांब, निषध, उल्मुक और सारण वगैरह कंई कुमारों ने दीक्षा ली तथा रुक्मिणी और जांबवती वगैरह कइं यादव-स्त्रिओं ने भी संसार पर उद्वेग पाकर प्रभु से दीक्षा ली। फिर कृष्ण के पूछने पर प्रभु ने कहा, 'द्वैपायन आज से बारहवें वर्ष पर द्वारका का दहन करेगा।' वह सुनकर कृष्ण चिंता करने लगे कि 'उस समुद्रविजय वगैरह को धन्य है कि जिन्होंने पहले से ही दीक्षा ली है और मैं हूँ कि जो राज्य में लुब्ध होकर दीक्षा लिए बिना पडा रहा हूँ, मुझे धिक्कार है।' कृष्ण का ऐसा आशय जानकर प्रभु बोले, 'कृष्ण ! वासुदेव कदापि दीक्षा लेते नहीं हैं, क्योंकि उनको चारित्र्यधर्म के आड़े संकल्परुपी अर्गला लगी होती है। फिर वे अवश्य अधोगामी (नारकी) ही होते हैं। आप भी यहां से मृत्यु पाकर वालुकाप्रभा नाम की तीसरी नरक में जाओगे।' यह सुनते ही कृष्ण अति दुःखी बन गये। सर्वज्ञ ने दुबारा कहा, 'हे वासुदेव ! आप खेद न करें, क्योंकि आप उस नर्क से निकलकर इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकर बनोगे, और ये बलभद्र यहां से मृत्यु पाकर ब्रह्म देवलोक में जायेंगे, वहां से च्यूत होकर वापस मनुष्य होंगे, वापस देव बनेंगे, वहां से च्यूत होकर इस भरतक्षेत्र में उत्सर्पिणी काल में राजा बनेंगे और तुम्हारे ही तीर्थ में वे मोक्ष पायेंगे।' इस प्रकार कहकर प्रभु ने वहां से अन्यत्र विहार किया। वासुदेव भी उनको नमस्कार करके द्वारका में आये। फिर कृष्ण ने फिर से आघोषणा करवाई तो सर्व लोग विशेष धर्मनिष्ठ बने।

द्वैपायन मृत्यु पाकर अग्निकुमार निकाय में देव रूप में उत्पन्न हुआ। पूर्व का बैर याद करके वह तत्काल द्वारका में आया, वहां उसे सब लोग चतुर्थ, छट्ठ, अट्ठम वगैरह तप में तत्पर और देवपूजा में आसक्त नजर आये। जिससे धर्म के प्रभाव से वह कुछ भी उपद्रव करने में असमर्थ बना, जिससे उनके छिद्र देखते देखते वह ग्यारह वर्ष तक स्थिति करके रहा। जब

बारहवां वर्ष आया तब लोगों ने सोचा कि 'हमारे तप से द्वैपायन भ्रष्ट होकर भाग गया और हम जीवित रहे। अब हमारी स्वैच्छा से रहेंगे।' फिर मद्यपान करते और अभक्ष्य खाते वे स्वैच्छा से क्रीडा करने में प्रवृत्त हुए। उस समय छिद्र देखनेवाले द्वैपायन को अवकाश मिला, तो उसकी कटुदृष्टि से तत्काल कल्पांत काल जैसे और यमराज के द्वार समान विविध उत्पात द्वारका में उत्पन्न हुए। आकाश में उल्कापात के निर्घात होने लगे, पृथ्वी कांपने लगी, ग्रहों मे से धूमकेतु को विटंबना पहुँचाए ऐसे धूम्र छूटने लगे, अंगारों की वृष्टि होने लगी, सूर्यमण्डल में छिद्र नजर आया, अचानक सूर्य-चन्द्र के ग्रहण होने लगे, महलों में रही हुई लेप्यमय पूतलियां अट्टहास्य करने लगी, चित्र में अंकित देव भ्रूकुटी तानकर हँसने लगे और नगरी में भी हिंसक जनावर विचरने लगे। उस समय वह द्वैपायन देव भी सुसज्ज होकर भूत और वेताल वगैरह से सुसज्ज होकर नगरी में घूमने लगा। नगरजन स्वप्न में रक्त, वस्त्र और रक्त विलेपनवाले, कीचड में मग्न बने हुए और दक्षिणाभिमुख खींची जा रही अपनी आत्मा को देखने लगे। राम व कृष्ण के हल और चक्र वगैरह आयुधरत्न नाश पा गये।

इसके बाद द्वैपायन ने संवर्त्त वायु फैलाया। उस वायु ने काष्ट और तृण वगैरह सब ओर से ला-लाकर नगरी में डाले और जो लोग चारों दिशाओं में भागने लगे उन्हें भी ला लाकर नगरी में डाला। फिर उस पवन ने आठ दिशाओं में से वृक्षों का उन्मूलन करके, लाकर संपूर्ण द्वारका नगरी को काष्ठ से भर दिया और साठ कुलकोटी बाहर रहनेवाले तथा बहत्तर कुलकोटी द्वारका में रहनेवाले यूं सर्व यादवों को द्वारका में इकट्ठे करके उस द्वैपायन असुर ने अग्नि प्रकट की। वह अग्नि प्रलयकाल के अग्नि की तरह अपने गाढ़ धुए से पूरे विश्व (नगर) में अंधकार करते हुए धग् धग् शब्द करते हुए प्रज्वलित हुई। बालक से वृद्ध तक के सब लोग मानो बेडी से कैद किए हो त्यों एक कदम भी वहां से चलने के लिए समर्थ नहीं हुए, सब पिंडाकार होकर इकट्ठे होकर रहे। उस समय राम और कृष्ण ने वसुदेव, देवकी और रोहिणी को अग्नि में से बाहर निकालने के लिए रथ में बैठाया। पर मदारी ज्यों सर्प को स्तंभित करे त्यों देवता ने स्तंभित किए हुए अश्व और वृषभ वहां से थोड़ा भी नहीं चल पाये। फिर राम कृष्ण घोड़े और वृषभ को छोड़कर अपने ही उस रथ को खींचने लगे, तो रथ की धुरी तड तड शब्द करते हुए लकड़े के टुकडे की तरह टूट पड़ी। फिर भी 'हे राम ! हे कृष्ण ! हमारा रक्षण करें, रक्षण करें' यूं दीनता से पुकारते हुए अपने माँ-बाप को बचाने के लिए वे अति सामर्थ्य से उस रथ को बड़ी मुश्किल से नगर के दरवाजे पर ले आये, इतने में तो दोनों किवाड बंद हो गये। राम ने पांव की एडी के प्रहार से दोनों किवाड लीलामात्र में तोड़ डाले, फिर भी मानों पृथ्वी ने ग्रस्त किया हो त्यों जमीन में धंसा हुआ रथ बाहर न निकल सका।

उस समय द्वैपायन देव ने आकर कहा, "अरे राम कृष्ण ! आपको यह क्या मोह हुआ है ? मैंने आपको पहले भी कहा था कि तुम्हारे दो सिवा दूसरे किसिका अग्नि से मोक्ष होनेवाला नहीं है, क्योंकि इसके लिए मैंने मेरा महा तप बेच दिया है। अर्थात् संकल्प से निष्फल कर दिया है।" यह सुनकर उनके मातापिता बोले, 'हे वत्सों ! अब तुम चले जाओ, तुम दोनों जीवित रहोगे तो सब यादव जीवित ही हैं, इसलिए अब अधिक पुरुषार्थ मत करो, तुमने तो हमें बचाने के लिए बहुत कुछ किया, परंतु भवितव्यता बलवान और दुर्लंध्य है। हम दुर्भागियों ने प्रभु से दीक्षा ली नहीं, तो अब हम हमारे कर्म का फल भोगेंगे।' उन्होंने इस प्रकार कहा तो भी जब राम कृष्ण उनको छोड़कर गये नहीं, तब वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने कहा कि 'इसी समय से हमारे त्रिजगद्गुरु श्री नेमिनाथ की ही शरण है, हम चतुर्विध आहार के पच्चखाण करते हैं और शरणेच्छु ऐसे हम अर्हंत, सिद्ध, साधु और अर्हंतकथित धर्म की शरण स्वीकारते हैं। हम किसिके नहीं है और कोई हमारा नहीं है।' इस प्रकार आराधना करके वे नवकारमंत्र के ध्यान में तत्पर बने तो द्वैपायन ने उनके पर अग्नि के मेघ की भाँति अग्नि बरसायी, जिससे वे तीनों तत्काल मृत्यु पाकर स्वर्ग गये। फिर राम और कृष्ण नगरी के बाहर निकलकर जीर्णोद्यान में गये, और वहां खडे रहकर जलती हुई द्वारकापुरी देखने लगे।

द्वारका के अन्दर अग्नि द्वारा जलने से माणिक्य की दीवारें पाषाणखण्ड समान चूर्ण हो रही थी, गोशीर्षचन्दन के स्तंभ पलाल की तरह भस्म हो रहे थे, किल्ले के कंगूर (कंकर) तड तड शब्द करते हुए टूट पडते थे, और घरों के तल फट् फट् शब्द करते हुए फूटते थे, समुद्र में जल की तरह अग्नि की ज्वालाओं में थोड़ा सा भी अंतर नहीं था। प्रलयकाल में ज्यो सर्वत्र एकसमान हो जाता है त्यों पूरी नगरी एकानल रुप हो गयी थी। अग्नि अपने ज्वालारुपी कर से नाचती थी, अपने शब्दों से गर्जना करती थी, और विस्तार पाते धुंए के बहाने नगरजनरुपी मछलियों पर मानो जाल बिछा रही हो ऐसी दिखती थी। इस प्रकार द्वारका की स्थिति को देखकर कृष्ण ने बलभद्र को कहा, 'नपुंसक जैसे मुझे धिक्कार है कि तटस्थ रहकर मेरी इस नगरी को जलते हुए देख रहा हूँ। आर्य बंधु ! ज्यों इस नगरी की रक्षा के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ, त्यों उसे देखने के लिए भी मैं उत्साह रखता नहीं हूँ। इसलिए कहिए, अब हम कहां जायेंगे ? क्योंकि सर्वत्र हमारे विरोधी राजा हैं।' बलभद्र बोले, 'भाई ! इस समय हमारे सच्चे सगे, संबंधी, बांधव या मित्र पाण्डव ही हैं, इसलिए उनके घर जायेंगे।' कृष्ण ने कहा, 'आर्य ! मैंने पहले उनका देशनिकाला किया था, तो उस अपकार की लज्जा से हम वहां किस प्रकार जायेंगे ?' राम बोले, 'सत्पुरुष अपने हृदय में उपकार को ही धारण करते हैं, वे बूरे स्वप्न की तरह कदापि अपकार तो याद ही नहीं करते। हे भ्राता ! हमने अनेक बार सत्कारे हुए पाण्डव कृतज्ञ होने

से हमारी पूजा करेंगे, उनके संबंध में दूसरा विचार लाना ही मत।' इस प्रकार राम ने कहा तो कृष्ण पांडव की पांडवमथुरा नगरी की ओर नैर्ऋत्य दिशा में चल पड़े।

यहां द्वारका नगरी जल रही थी, उस समय राम का पुत्र **कुब्जवारक** कि जो चर्मशरीरी था, वह महल के अग्र भाग पर चढ़कर हाथ ऊँचा करके इस प्रकार बोला, 'इस समय मैं श्री नेमिनाथ का व्रतधारी शिष्य हूँ। मुझे प्रभु ने चरमशरीरी और मोक्षगामी कहा है। यदि अर्हंत की आज्ञा प्रमाण हो तो मैं अग्नि से जलूं क्यों।' वह ऐसा बोला तो जृंभक देवता उसें वहां से उठाकर प्रभु के पास ले गये। उस समय श्री नेमिप्रभु पांडव के देश में समवसरे थे। वहां जाकर उस महात्मनवाले कुब्जवारक ने दीक्षा ली। राम कृष्ण की जिन स्त्रियों ने पहले दीक्षा नहीं ली थी, वे श्री नेमिनाथ को याद करते हुए अनशन करके अग्नि के उपद्रव से ही मृत्यु पा गयी। उस अग्नि में साठ कुलकोटी व बहत्तर कुलकोटी यादव जलकर भस्म हो गये। छः माह तक द्वारका जलती रही। फिर समुद्र ने उसे जल से प्लावित (नाश) कर दिया।

यहां मार्ग में चलते हुए कृष्ण **हस्तीकल्प** नाम के नगर समीप आये, उनको वहां क्षुधा की पीड़ा उत्पन्न हुई। उन्होंने यह बात बलभद्र को बतायीं। बलभद्र बोले, 'हे बांधव ! मैं आपके लिए भोजन लेने इस नगर में जाता हूँ, परंतु आप यहां प्रमादरहित रहना, और यदि मुझे नगर में कुछ भी कष्ट उत्पन्न होगा तो मैं सिंहनाद करुंगा, उसे सुनकर आप तुरंत वहां आना।' इस प्रकार कहकर राम नगर में घुसे। उस समय नगरजन उनको देखकर 'यह देवाकृति पुरुष कौन है ?' यूं आश्चर्य पाते हुए निरखने लगे। विचार करते ही उन्हें समझ में आया कि 'द्वारका अग्नि से जल गई है, इसलिए उसमें से निकलकर ये बलभद्र यहां आये दीखते हैं।' फिर बलभद्र ने हलवाई की दुकान में जाकर ऊँगली से अंगूठी निकाली। अंगूठी देकर विविध भोजन लिया, और शराब की दुकान से कड़ा देकर मदिरा ली। वह लेकर बलदेव जैसे ही नगर के दरवाजे की ओर चले कि राजा के पहरेदार उनको देखकर चकित होकर यह बात बताने के लिए राजा के पास आये। उस नगर में धृतराष्ट्र का पुत्र **अच्छदंत** राज्य करता था। पहले पाण्डवों ने कृष्ण का आश्रय लेकर जब सर्व कौरवों का विनाश किया था तब सिर्फ उसे ही बाकी रखा था। रक्षकों ने आकर उस राजा को कहा कि 'कोई बलदेव जैसा पुरुष चोर की तरह महामूल्यवान कडा और मुद्रिका देकर उसके बदले में हमारे नगर में से मद्य और भोजन लेकर नगर बाहर जा रहा है, वह बलभद्र हो या कोई चोर हो, परंतु हम आपको विज्ञप्ति देते हैं, इसलिए अब इसके बाद हमारा कोई अपराध नहीं है।' इस प्रकार की खबर सुनकर अच्छदंत सैन्य लेकर बलदेव को मारने उनके समीप आया। और नगर के दरवाजे बंद करवा दिये। तत्काल बलदेव भक्तपान एक ओर रखकर हाथी का आलानस्तंभ उखाडकर,

सिंहनाद करके शत्रु के सैन्य को मारने लगे। सिंहनाद सुनकर कृष्ण वहां आने के लिए दौड़े। दरवाजा बंद देखकर पाँव की एडी के प्रहार से उसके किवाड तोड़ डालकर ज्यों समुद्र में वडवानल घुसे त्यों वे नगर में घुसे। कृष्ण ने उस दरवाजे की ही भोंगल लेकर शत्रु के तमाम सैनिकों को मार डाला। फिर वश हुए राजा अच्छदंत को कहा कि 'अरे ! मूर्ख ! हमारी भुजा का बल कहीं गया नहीं है, ऐसा जानते होने पर भी तूने यह क्या किया ? अब जा, निश्चल होकर तेरा राज भुगत। तेरे इस अपराध से हम तुझे मुक्त करते हैं।' इस प्रकार कहकर नगर के बाहर आकर उन्होंने उद्यान में बैठकर भोजन किया, फिर वहां से दक्षिण दिशा तरफ चलकर कौशांबी नगरी के वन में आये।

उस समय मद्यपान से, लवणसहित भोजन करने से, ग्रीष्मऋतु के योग से, श्रम से, शोक व पुण्य के क्षय से कृष्ण को बहुत प्यास लगी। उन्होंने बलराम को कहा, 'भाई ! अति तृषा से मेरा गला सूख रहा है, जिससे इस वृक्ष की छायावाले वन में भी मैं चलने के लिए शक्तिमान नहीं हूँ।' बलभद्र ने कहा, 'भ्राता ! मैं शीघ्र ही जल लेने जाता हूँ, इसलिए आप यहां इस वृक्ष के नीचे विश्राम कीजिए और प्रमादरहित होकर क्षणभर के लिए बैठिए।' इस प्रकार कहकर बलभद्र गये तो कृष्ण एक पैर दूसरे जानू पर चढ़ाकर, पीला वस्त्र औढ़कर मार्ग के किसी वृक्ष के नीचे सो गये और पलभर में निद्रावश हो गये। राम ने जाते जाते भी कहा था कि 'प्राणवल्लभ बंधु ! जब तक मैं वापस आऊँ, तब तक पलभर भी आप प्रमादी मत होना।' फिर ऊँचा मुख करके बलभद्र बोले, 'हे वनदेवियां ! यह मेरा अनुज बंधु आपकी शरण में हैं, इसलिए इस विश्ववत्सल पुरुष की रक्षा करना।' इस प्रकार कहकर राम जल लेने गये। इतने में हाथ में धनुष्य रखनेवाला, व्याघ्रचर्म के वस्त्रों को धारण करनेवाला और लम्बी दाढ़ीवाला, शिकारी बना **जराकुमार** वहां आया। शिकार के लिए घूमते घूमते जराकुमार ने कृष्ण को इस प्रकार सोते हुए देखा कि जिससे उसने मृग की बुद्धि से उनके चरणतल में तीक्ष्ण बाण मारा। बाण लगते ही कृष्ण तेजी से उठकर बोले, 'अरे ! मुझ निरपराधी को छल करके कहे बिना चरणतल में किसने बाण मारा ? पहले कभी भी ज्ञाति का नाम कहे बिना किसीने मुझ पर प्रहार किया नहीं है, इसलिए जो हो वह अपना नाम और गोत्र मुझे कहे।' इस प्रकार का प्रश्न सुनकर जराकुमार ने वृक्ष की घटा में रहकर कहा कि "हरिवंशरुपी सागर में चन्द्र जैसे दसवें दशार्ह वसुदेव की स्त्री जरादेवी के उदर से जन्मा जराकुमार नाम का मैं पुत्र हूँ, राम कृष्ण का अग्रज बंधु हूँ। और श्री नेमिनाथ के वचन सुनकर कृष्ण की रक्षा करने (मुझ से उनका वध न हो जाय इसलिए) के लिए मैं यहां इस वन में आया हूँ। यहां रहते हुए मुझे १२ वर्ष हो गये हैं, परंतु आज तक मैंने यहां किसी मनुष्य को देखा नहीं है, इसलिए यूं पूछनेवाले आप कौन हो

यह तो कहिए।'' कृष्ण बोले, 'अरे ! पुरुषव्याघ्र बंधु ! यहां आ, मैं तेरा अनुज बंधु कृष्ण ही हूँ, जिसके लिए तू वनवासी बना है। हे बांधव ! दिग्मोह से बहुत दूर मार्ग को उल्लंघन करनेवाले पथिक की तरह तेरा बारह साल का प्रयास वृथा हुआ है ?' यह सुनकर 'क्या यह कृष्ण है ?' यूं बोलते हुए जराकुमार उनके समीप आ गया और कृष्ण को देखकर तत्काल मूर्च्छा पा गया। फिर मुश्किल से संज्ञा पाकर जराकुमार ने करुण स्वर में रुदन करते हुए पूछा, 'अरे भ्रात ! यह क्या हुआ ! आप यहां कहां से ? क्या द्वारका जल गई ? क्या यादवों का क्षय हुआ ? अरे ! यह तुम्हारी अवस्था देखकर यूं लगता है कि नेमिनाथ की पूरी वाणी सत्य हो गई हो।'

फिर कृष्ण ने पूरा वृत्तांत सुनाया, तो जराकुमार ने रुदन करते करते कहा, 'अरे भाई ! मैंने शत्रु के योग्य यह कार्य किया है। कनिष्ठ[1] दुर्दशा में मग्न और भ्रातृवत्सल ऐसे आपको मारने से मुझे नरकभूमि में भी स्थान मिलना संभव नहीं है। आपकी रक्षा करने के लिए मैंने वनवास धारण किया, पर मुझे ऐसा मालूम नहीं था कि विधि ने पहले से ही मुझे तुम्हारे कालरुप कल्पा हुआ है ! हे पृथ्वी ! तू मुझे विवर (जगह) दे, जिससे मैं इस शरीर से ही नरकभूमि में जाऊं, क्योंकि सर्व दुःख से अधिक भ्रातृहत्या का ऐसा दुःख आ गिरने से अब मुझे यहां रहना नरक से भी अत्याधिक दुःखदायी है। मैंने ऐसा अकार्य किया तो अब मैं वसुदेव का पुत्र या तुम्हारा भ्राता या मनुष्य भी कैसे हो सकता हूँ ? उस समय सर्वज्ञ का वचन सुनकर मैं मर क्यों नहीं गया ? क्योंकि आप विद्यमान; फिर मैं एक साधारण मनुष्य... शायद मर जाता तो उससे क्या कमी हो जाती !' कृष्ण बोले, 'हे भाई ! अब शोक न करो, वृथा शोक करने से क्या होगा ? क्योंकि तुमसे या मुझसे भवितव्यता का उल्लंघन नहीं हो सकता। यादवों में से सिर्फ एक ही तुम बचे हो। इसलिए चिरकाल तक जियो और यहां से सत्वर चले जाओ, क्योंकि राम यहां आ पहुँचेगा तो वह मेरे वध के क्रोध से तुम्हें मार डालेगा। यह मेरा कौस्तुभ रत्न निशानी रुप में ले जाकर तुम पाण्डवों के पास जाओ। उनको यह सत्य वृत्तांत कहना, वे जरुर तुम्हारे सहायक सिद्ध होंगे। तुम्हें यहां उलटे पैर चलना है, जिससे राम तुम्हारे कदमों का अनुसरण करते हुए आये तो भी तुम्हें सीधे मिल न पाये। मेरे वचन से सब पांडवों और अन्यों से भी क्षमा मांगना, क्योंकि पहले मेने उनका देशनिकाल करके ठेस पहुँचाई हैं।' इस प्रकार कृष्ण ने बार बार कहा, तो जराकुमार कृष्ण के चरण में से अपना बाण खींच निकालकर कौस्तुभ रत्न लेकर वहां से चल दिया।

जराकुमार के जाने के बाद कृष्ण-चरण की वेदना से पीडित होते हुए उत्तराभिमुख रहकर अंजलि जोड़कर इस प्रकार कहने लगे कि 'अर्हंत भगवंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और

१. छोटा भाई।

साधुओं को मन, वचन व काया से मेरे नमस्कार हैं। फिर जिसने हमारे जैसे पापियों का त्याग करके इस पृथ्वी पर धर्मतीर्थ प्रवर्तित किया है, ऐसे भगवंत श्री अरिष्टनेमि परमेष्ठी को मेरे नमस्कार हैं।' इस प्रकार कहकर तृण के संथारे पर सोकर जानु पर चरण रखकर और वस्त्र ओढ़कर सोचने लगे कि 'भगवान श्री नेमिनाथ, वरदत्त वगैरह गणधर, प्रद्युम्न वगैरह कुमार और रुक्मिणी वगैरह मेरी स्त्रियों को धन्य है कि जिन्होंने निरंतर संसारवासना के कारणरुपी गृहवास को छोड़कर दीक्षा लेकर चल निकले और इस संसार में ही विटंबना पानेवाले मुझको धिक्कार है।' इस प्रकार शुभ भावना करते करते कृष्ण का अंग सब तरह से भग्न होने लगा और यमराज के सहोदर जैसा प्रबल वायु कोपित हुआ, जिससे तृष्णा, शोक और घातक वायु से पीडित बने कृष्ण का विवेक सर्वथा भ्रष्ट हो गया। जिससे वे तत्काल इस प्रकार बूरा चिंतन करने लगे कि 'मुझे जन्म से कोई भी मनुष्य या देव भी हरा नहीं सका था, उसे द्वैपायन ने कैसी बूरी दशा को प्राप्त कराया ! इतना होने पर भी यदि मैं उसे देख लूं तो इसी समय उठकर उसका अंत ला दूं। मेरे समक्ष वह मात्र क्या है और उसका रक्षण करने के लिए भी कौन समर्थ है ?' इस प्रकार क्षणमात्र रौद्रध्यान करते हुए एक सहस्र वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके मृत्यु पाकर कृष्ण निकाचित कर्म से उपार्जित तीसरी नरक में गये। कृष्ण वासुदेव ने सोलह वर्ष कुमारावस्था, छप्पन वर्ष मण्डलिकपने में और नौसौं अट्ठाइस वर्ष अर्धचक्रीपन - यूं कुल मिलाकर एक हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि द्वारिकादाह–कृष्णावसानकीर्तनो नाम एकादशः सर्गः।।११।।

बारहवाँ सर्ग

बलदेव का स्वर्गगमन और श्रीनेमिनाथ का निर्वाण

यहां राम मार्ग में असुगन होने से स्खलित होते होते कमलपत्र के पत्रपुट में जल लेकर सत्वर कृष्ण के पास आये। उस समय 'ये सुख से सो गये हैं। ऐसा सोचकर क्षण भर के लिए वे बैठे रहे। इतने में तो कृष्णवर्णी मक्षिकाओं को वहां भिनभिनाते हुए देखकर उन्होंने मुख पर से वस्त्र खींच लिया, तो अपने प्रिय बंधु को मृत्यु पाया हुआ देखकर छेदे गये वृक्ष की तरह राम मूर्छा खाकर पृथ्वी पर गिरे। फिर किसी प्रकार संज्ञा पाकर उन्होंने बड़ा सिंहनाद किया कि जिससे शिकारी प्राणी भी त्रस्त हो गये और पूरा वन कंपायमान हुआ। फिर वे बोले, 'जिस पापी ने सुखपूर्वक सोते हुए मेरे इन विश्ववीर बंधु को मार डाला है वह अपनी आत्मा दिखाए और यदि वह सचमुच बलवान हो तो मेरे सामने आये, परंतु सच्चा बलवान तो सोते, प्रमादी, बालक, मुनि और स्त्री पर प्रहार क्यों करेगा ?' इस प्रकार ऊँचे शब्द में आक्रोश करते हुए राम उस वन में भटकने लगे, परंतु कोई भी मनुष्य न दिखने पर कृष्ण के पास आकर आलिंगन करके रुदन करने लगे कि "हे भ्रात ! हे पृथ्वी के अद्वितीय वीर ! हे मेरे उत्संग में लालित बने हुए ! हा कनिष्ठ लेकिन गुणों में ज्येष्ठ ! और हा विश्वश्रेष्ठ ! आप कहां हो ? अरे वासुदेव ! आप पहले कहते थे कि 'आपके बिना मैं नहीं रह सकता।' और इस समय तो प्रत्युत्तर भी देते नहीं हो, तो वह प्रीति कहाँ गयी ? आपको कुछ रोष हुआ हो और उससे नाराज हुए हो ऐसा लगता है, परंतु मेरा कोई भी अपराध मुझे याद आता नहीं है। अथवा क्या मुझसे जल लाने में विलम्ब हुआ है यह आपके रोष का कारण है ? हे भ्राता ! इस कारण से आपने रोष किया हो तो योग्य है, फिर भी इस समय तो उठ जाइए, क्योंकि सूर्य अस्त पा रहा है, तो महात्माओं के सोने का यह समय नहीं है।" इस प्रकार प्रलाप करते हुए राम ने वह रात बीतायी।

फिर प्रातःकाल में कहने लगे कि 'भाई ! उठ जाइए, उठ जाइए' यूं बार बार कहने पर भी जब कृष्ण नहीं उठे तब राम स्नेह से मोहित होकर उन्हें कंधे पर चढ़ाकर गिरि, वन वगैरह में भटकने लगे। इस प्रकार स्नेह से मोहित होने पर कृष्ण की मृत काया को प्रतिदिन पुष्पादिक से अर्चन-पूजन करते हुए बलराम ने छः माह व्यतीत किए।

इस प्रकार करते क्रमशः वर्षाकाल आया, तो वह **सिद्धार्थ** जो देव बना था, उसने अवधिज्ञान से जाना कि 'मेरा भ्रातृवत्सल भाई बलराम कृष्ण के मृत शरीर को वहन करके भटक रहा है, तो मैं वहां जाकर उसे बोध दूं, क्योंकि उसने पूर्वकाल में मुझसे वचन लिया है कि जब मुझ पर विपत्ति आये तब तू देव बना हो तो आकर मुझे बोध देना।' ऐसा सोचकर

उसने पर्वत पर से उतरता हुआ एक पाषाणमय रथ रचा, और स्वयं उसका कौटुंबिक बनकर विषम ऐसे पर्वत पर से उतरते हुए उस रथ को तोड़ डाला। फिर स्वयं उसे जोड़ने की मेहनत करने लगा। उसे पाषाण का रथ जोड़ते हुए देखकर बलभद्र बोले, 'अरे मूर्ख ! विषम गिरि पर से उतरते हुए जिसके टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं ऐसे पाषाण के रथ को तू क्यों जोड़ना चाहता है ?' उस देव ने कहा, 'हजारों युद्ध में नहीं मारा गया पुरुष युद्ध बिना मर जाय, और यदि वह दुबारा जीये तो मेरा यह रथ भी दुबारा सज्ज हो जायेगा।' फिर वह देव आगे जाकर पाषाण पर कमल बोने लगा। बलदेव ने पूछा, 'क्या पाषाणभूमि पर कमलवन उगता है ?' देवता ने कहा, 'यदि तेरा यह अनुज बंधु फिर से जियेगा तो यह कमल भी पाषाण पर खिलेगा।' फिर आगे जाकर वह देव एक जले हुए वृक्ष को जल से सिंचने लगा। यह देखकर बलदेव ने कहा, 'क्या दग्ध हो चुका वृक्ष जल सिंचन से भी दुबारा उगेगा ?' तब देव ने प्रत्युत्तर दिया, 'यदि तुम्हारे स्कंध पर रहा हुआ यह शब जियेगा तो यह वृक्ष पुनः उगेगा।' फिर वह देव आगे जाकर ग्वाला बनकर गायों के शबों के मुख में जीवित गाय की तरह नवीन दूर्वा डालने लगा। उसे देखकर बलदेव ने कहा, 'अरे मूढ़ हृदयवाले ! ये अस्थिप्राय बनी हुई गायें क्या तेरी दी हुई दूर्वा को कदापि चरेगी ?' देव बोला, 'यदि तुम्हारा अनुज बंधु जियेगा तो ये मृत गायें दूर्वा चरेगी।' यह सुनकर राम ने सोचा, 'क्या मेरे इस अनुज बंधु ने सचमुच मृत्यु पायी होगी कि जिससे ये भिन्न भिन्न मनुष्य एकसमान ही उत्तर देते हैं ?'

बलदेव का इस प्रकार सुधरा हुआ विचार जानकर तत्काल उस देवता ने सिद्धार्थ का रुप धरा और बलराम के समक्ष आकर कहा, "मैं आपका सारथि सिद्धार्थ हूँ और दीक्षा लेकर, मृत्यु होने पर देवपना प्राप्त किया है। आपने पूर्वकाल में मुझसे मांग की थी, इसीलिए आपको बोध देने के लिए मैं यहां आया हूँ। नेमिप्रभु ने कहा था, कि 'जराकुमार से कृष्ण की मृत्यु होगी।' उस अनुसार ही हुआ है, क्योंकि सर्वज्ञ का वचन कदापि अन्यथा नहीं होता, और अपना कौस्तुभ रत्न निशानी के रुप में देकर कृष्ण ने जराकुमार को पाण्डवों के पास भेजा है।" बलदेव बोले, 'हे सिद्धार्थ ! आपने यहां आकर मुझे बोध दिया वह बहुत अच्छा किया है। लेकिन, इन भ्राता के मृत्युदुःख से पीडित बना हुआ अब मैं क्या करुं ? मुझे कहिए।' सिद्धार्थ बोला, 'श्री नेमिनाथ प्रभु के विवेकी भ्राता ऐसे आपको अब दीक्षा के सिवा अन्य कुछ भी करना योग्य नहीं है।' 'बहुत अच्छा' यूं कहकर बलदेव ने उस देवता के साथ सिंधु और समुद्र के संगम स्थान पर आकर कृष्ण के शरीर का संस्कार किया। उस समय बलराम को दीक्षा लेने की इच्छावाला जानकर महाकृपालु श्री नेमिनाथ ने एक विद्याधर मुनि को तत्काल वहां भेजा। राम ने उनसे दीक्षा ली। फिर तुंगिका शिखर पर जाकर वे तीव्र तप करने लगे। वहां सिद्धार्थ देव उनका रक्षक बनकर रहा।

एक बार बलराम मुनि मासक्षमण के पारणे के लिए किसी नगर में गये। वहां कोई स्त्री बालक को लेकर कुंए पर खड़ी थीं। वह राम का अतिशय रुप देखकर व्यग्र बन गयी, व्यग्र चित्तवाली उसने घडा बांधने का रस्सा घड़े के बजाय अपने बालक के कंठ में बांधा और उस बालक को कुंए में डालने लगी। बलराम ने यह देखा तो सोचा, 'अनर्थकारी ऐसे मेरे रुप को धिक्कार है। अब मैं किसी भी गांव या नगर वगैरह में जाऊंगा नहीं। सिर्फ वन में काष्ठादिक लेने आते हुए लोगों से ही जो भिक्षा मिलेगी उससे ही पारणा करुंगा।' इस प्रकार निर्धार करके उस स्त्री को रोककर बलदेव मुनि तुरंत वन में चले गये। वहां रहकर मासिक प्रमुख कठिन तप शरु किया, और तृण-काष्ठादिक वहन करनेवालों लोगों से प्रासुक-चावल-पानी वहोरकर अपना निर्वाह करने लगे।

एक बार काष्ठादिक ले जानेवाले उन लोगों ने अपने अपने राजा के पास जाकर कहा, 'कोई देवरुपी पुरुष इस वन में तप कर रहा है।' वह सुनकर उस राजा को शक हुआ कि 'क्या हमारे राज्य की इच्छा से ऐसा तप करता है या कोई मंत्र साध रहा है ? इसलिए चलो, हम सब वहां जाकर उसे मार डाले।' ऐसा सोचकर वे सब एक साथ सर्वाभिसार[1] से राममुनि के समीप जाने के लिए चले। उनको आते हुए देखकर वहां रहे सिद्धार्थ देव ने जगत से भी भयंकर ऐसे अनेक सिंह उत्पन्न कर दिये। इससे राजा आश्चर्य सहित भय पाकर बलराम मुनि को शीश झुकाकर अपने स्थानक पर लौट गये। तब से बलभद्र **'नरसिंह'** ऐसे नाम से प्रसिद्ध हुए। वन में तपस्या करते हुए बलभद्र मुनि की धर्मदेशना से प्रतिबोध पाकर कइं सिंह व्याघ्रादिक प्राणियों ने शांति पायी। उसमें कुछ श्रावक बने, कुछ भद्रिकभावी बने, कुछ कायोत्सर्ग करने लगे और कुछ ने अनशन ग्रहण किया। वे मांसाहार से बिलकुल निवृत्त होकर राम मुनि के तिर्यंचरुपधारी शिष्य हो त्यों उनके पारिपार्श्वक बने। उसमें पूर्व भव का संबंधी एक मृग जातिस्मरण पाकर अति संवेगवाला होकर उनका सदा का सहचर बना। राममुनि की निरंतर उपासना करनेवाला वह मृग वन में घूमता और काष्ठादिक लेने आनेवालों की खोज करता। उनको खोजने बाद वह राममुनि को ध्यान धरते देखता तो उनके चरणों में शीश झुकाकर 'भिक्षा देनेवाले यहां हैं,' यूं दर्शाता। राममुनि उसके आग्रह से तुरंत ही ध्यान छोड़कर उस हिरन को आगे करके उसके साथ भिक्षा माँगने निकलते। एक बार कुछ रथकार उत्तम काष्ठ लेने के लिए उस वन में आये। उन्होंने कइं सरल वृक्ष छेदे। उनको देखकर उस मृग ने सद्य राममुनि को दर्शाया, तो उसके आग्रह से महामुनि ध्यान में से जाग्रत हुए, और वे रथकार भोजन करने बैठे थे वहां मुनि मृग को आगे करके मासक्षमण के पारणे के लिए भिक्षा लेने गये। उन रथकारों का जो मुखिया

१. सर्व प्रकार की युद्ध सामग्री सहित

था वह बलदेव मुनि को देखकर बडा हर्षित हुआ और सोचने लगा, 'अहो ! इस अरण्य में साक्षात् कल्पवृक्ष जैसे ये कोई मुनि हैं ! अहो ! कैसा उनका रूप है ! कैसा तेज ! और कैसी महान समता ! इस मुनिरुप अतिथि मिलने से मैं तो कृतार्थ बना।' इस प्रकार चिंतन करते हुए वह रथकार पांच अंगों से भूमि का स्पर्श (पंचाग प्रणाम) करके उनको चावल-पानी देने आया।

उस समय बलराम मुनि ने सोचा कि 'यह शुद्ध बुद्धिवाला श्रावक है, जो कार्य से स्वर्ग के फल का उपार्जन हो सके ऐसी यह भिक्षा मुझे देने के लिए उद्युक्त बना है, इसलिए यदि मैं उसकी यह भिक्षा नहीं लूं तो उसकी सद्गति में रुकावट डाली कहा जायेगा, तो यह भिक्षा मैं ग्रहण करुं।' इस प्रकार सोचकर करुणा के क्षीरसागर ऐसे मुनि यद्यपि अपने शरीर से भी निरपेक्ष थे तो भी उनसे भिक्षा ग्रहंण की। वह मृग मुनि को और वन को छेदनेवाले रथकार को देखकर मुख ऊँचा करके नेत्र में अश्रु लाकर सोचने लगा कि 'अहो ! तप के तो एकमात्र आश्रयभूत और शरीर के लिए भी निःस्पृह ऐसे ये महामुनि सचमुच कृपानिधि हैं कि जिन्होंने इस रथकार पर अनुग्रह किया और अहो ! इस वन को छेदनेवाले रथकार को भी धन्य है कि जिसने इन भगवंत महामुनि को अन्नपान से प्रतिलाभित करके अपने मनुष्य जन्म का महाफल प्राप्त किया। मात्र मैं ही एक मंदभागी हूँ कि जो ऐसा महातप करने या ऐसे मुनि को प्रतिलाभित करने के लिए समर्थ नहीं हूं, इसलिए तिर्यंचपन से दुषित बने मुझको धिक्कार है। इस प्रकार वे तीनों धर्मध्यान में तत्पर बने थे और जिस वृक्ष के नीचे खड़े थे, उस वृक्ष का आधा भाग छिदा हुआ होने से तेज हवा के कारण वृक्ष टूटकर उन पर गिरा। वृक्ष गिरने से उन तीनों ने तत्काल मृत्यु पायीं और ब्रह्मदेवलोक में पद्मोत्तर नाम के विमान में तीन देवता बने।

राम सौं वर्ष तक दीक्षापर्याय पालकर स्वर्ग में गये। वहां उत्पन्न होते ही अवधिज्ञान से उन्होंने कृष्ण को तीसरी नर्क में पड़े हुए देखा। जिससे भ्रातृस्नेह से मोहित बलराम देव उत्तरवैक्रिय शरीर धरकर कृष्ण के पास आये और कृष्ण को आलिंगन करके बोले, 'हे भाई ! मैं आपका भाई राम हूँ, और आपकी रक्षा के लिए ब्रह्मदेवलोक से यहां आया हूँ, इसलिए कहिए कि आपकी प्रीति के लिए मैं क्या करुं ?' इस प्रकार कहकर उसने कृष्ण को उठाया, तो वे पारे की तरह विशीर्ण होकर पृथ्वी पर गिरे और वापस जुड़ गये। फिर कृष्ण ने पहले आलिंगन से ही पहचाने हुए और फिर अपना नाम कहने से और उद्धार करने से बराबर पहचाने हुए ऐसे राम को उठकर संभ्रम से नमस्कार किए। बलराम बोले, 'हे भ्राता ! श्री नेमिनाथ ने पहले कहा था कि विषयसुख अंत में दुःखदायी ही है, यह आपके संबंध में अभी अभी प्रत्यक्ष हुआ

है। हे हरि ! कर्म से नियंत्रित हुए ऐसे आपको स्वर्ग में ले जाने के लिए तो मैं समर्थ नहीं हूँ, इसलिए आपके मन की प्रीति के लिए मैं आपके पास रहना चाहता हूँ।' कृष्ण ने कहा, "हे भ्राता ! आपके यहां रहने से भी मुझे क्या लाभ होगा ? क्योंकि आपके रहने पर भी मुझे तो नरक का आयुष्य जितना बंधा है उतना तो भोगना ही पड़ेगा, इसलिए आपको यहां रहने की जरुरत नहीं है। मुझे नरक में उत्पन्न होने की पीड़ा से अधिक मेरी ऐसी दशा देखकर शत्रुओं को हर्ष और सुहृदों को ग्लानि हुई है, वही ज्यादा दुःख दे रही है। इसलिए हे भाई ! आप भरतक्षेत्र में जाइए और वहां चक्र, शार्ङ्ग धनुष्य, शंख व गदा को धरनेवाले, पीतांबर धारण करनेवाले व गरुड के चिह्नवाले मुझे विमान में बैठा हुआ दिखाओ और मेरे साथ ही नीलांबर धरनेवाले, तालवृक्ष के चिह्नवाले और हल तथा मुशल को हथियार रुप में रखनेवाले ऐसे आपको भी स्थान स्थान पर दिखाओ, 'जिससे आज भी राम कृष्ण अविनश्वर रुप से स्वैच्छा से विहार करते हुए विद्यमान हैं' ऐसी लोगों में घोषणा प्रसारित हो, और पहले हुए हमारे तिरस्कार पर रोक लग जाय।'

इस प्रकार के कृष्ण-कथन को स्वीकार करके राम ने भरतक्षेत्र में आकर उनके कहे अनुसार दोनों रुप सब जगह दर्शाए और उच्च स्वर से उद्घोषणा करवाई कि 'हे लोगों ! आप हमारी शोभायमान प्रतिमा करके उत्कृष्ट देवता की बुद्धि से आदरपूर्वक उसकी पूजा करें। हम ही इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। हम देवलोक से यहां आते हैं और स्वैच्छा से वापस देवलोक में जाते हैं। हमने ही द्वारका रची थी और स्वर्ग में जाने की इच्छा से हमने ही वापस उसका संहार कर दिया है। हमारे अलावा अन्य कोई कर्ता-हर्ता नहीं है। हम ही स्वर्गलोक देनेवाले हैं।' इस प्रकार की उनकी वाणी से सब लोग शहरों-शहर और गाँवो-गाँव राम कृष्ण की प्रतिमा बनाकर पूजने लगे। बलराम देवता उनकी प्रतिमा की पूजा करनेवालों को बड़ा उदय देने लगे, जिससे सब लोग उनके विशेष प्रकार के भक्त बने। इस प्रकार राम ने अपने भाई कृष्ण के वचन अनुसार पूरे भरतक्षेत्र में अपनी कीर्ति और पूजा फैलायी। फिर वे छोटे भाई के दुःख से बैचेन मन से ब्रह्मदेवलोक में गये।

यहां जराकुमार पाण्डवों के पास आया और कृष्ण का कौस्तुभ रत्न देकर द्वारका नगरी के दाह वगैरह की पूरी बात कह सुनाई। वे यह बात सुनकर सद्य शोकमग्न हो गये, उनके सहोदर बंधु की तरह उन्होंने एक वर्ष तक कृष्ण की प्रेतक्रिया की। फिर उनको दीक्षा लेने की इच्छावाले जानकर श्री नेमिनाथ ने चतुर्ज्ञानी ऐसे धर्मघोष नाम के मुनि को पांचसौं मुनियों के साथ वहां भेजा। उनके आने पर जराकुमार को राज्य पर बैठाकर पाण्डवों ने द्रौपदी सहित उन मुनि से दीक्षा ली, और उन्होंने अभिग्रह सहित तप आरंभा। भीम ने ऐसा अभिग्रह किया, 'यदि

कोई भाले के अग्रभाग से उंछ[1](भिक्षा) देगा, तो ही मैं ग्रहण करुंगा।' यह अभिग्रह छः मास के बाद पूरा हुआ। द्वादशांगधारी वे पाण्डव क्रमशः पृथ्वी पर विहार करते करते श्री नेमिनाथ प्रभु की वन्दना करने की उत्कंठा से चले। श्री नेमिप्रभु ने मध्य देश वगैरह में विहार करके उत्तर दिशा में राजपुर वगैरह शहरों में विहार करके वहां से ह्रीमान् गिरि पर जाकर आये और अनेक म्लेच्छ देश में भी विहार करके कइं राजा और सचिवों को प्रतिबोध किया। विश्व के मोह को हरनेवाले प्रभु आर्य-अनार्य देश में विहार करके वापस ह्नीमान् गिरि पर आये और वहां से वापस किरात देश में विचरण किया। ह्नीमान् गिरि पर से उतरकर दक्षिणापथ देश में आये, और वहां सूर्य की तरह भव्य प्राणीरुप कमलवन को बोध दिया।

केवलज्ञान से लेकर विहार करते हुए प्रभु ने अट्ठारह हजार महात्मा साधु, चालीस हजार बुद्धिमान साध्वियां, चारसौं चौदह पूर्वधारी, पन्द्रहसौं अवधिज्ञानी, उतने ही वैक्रिय लब्धिवाले, उतने ही केवलज्ञानी, एक हजार मनःपर्यवज्ञानी, आठ सौं बादलब्धिवाले, एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक और तीन लाख उनचालीस हजार श्राविकाएं - इतना परिवार बना। इतने परिवार से संलग्न अनेक सुर, असुर और राजाओं से युक्त बने प्रभु अपना निर्वाण समय नजदीक जानकर रैवतगिरि पर पधारे। वहां इन्द्रों द्वारा रचे हुए समवसरण में बैठकर प्रभु ने सब जीवों के अनुग्रह की इच्छा से आखिरी देशना दी। उस देशना से प्रतिबोध पाकर कइयों ने दीक्षा ली। कुछ श्रावक बने और कुछ भद्रिकभावी बने। फिर पांचसौं छत्तीस मुनियों के साथ प्रभु ने एक माह का पादपोगम अनशन किया और आषाढ़ माह की शुक्ल अष्टमी को चित्रा नक्षत्र में सायंकाल पर शैलसीध्यान को प्राप्त बने प्रभु उन मुनियों के साथ निर्वाणपद को प्राप्त हुए।

प्रद्युम्न और शांब वगैरह कुमार, कृष्ण की आठ पट्टरानियां, भगवंत के बंधुओं, दूसरे भी कइं व्रतधारी मुनियों और राजीमती वगैरह साध्वी अव्ययपद को प्राप्त हुए। रथनेमि ने चारसौं वर्ष गृहस्थपने में, एक वर्ष छद्मस्थपने में और पांचसौं वर्ष केवलीपन में यूं कुल मिलाकर नोसौं एक वर्ष का आयुष्य परिपूर्ण किया। उस अनुसार कौमारावस्था, छद्मस्थावस्था और केवलीअवस्था के विभागानुसार राजीमती ने भी उतना ही आयुष्य भोगा। शिवादेवी और समुद्रविजय राजा माहेन्द्र देवलोक में गये और दूसरे दशार्ह महर्द्धिक देवपन को प्राप्त हुए। कौमारावस्था में तीनसौं वर्ष और छद्मस्थ तथा केवलीपन में सातसौं वर्ष - यूं एक हजार वर्ष का आयुष्य श्री नेमिनाथ भगवंत ने भोगा। श्री नेमिनाथ प्रभु के निर्वाण के बाद पांच लाख वर्ष बीते तब श्री नेमिनाथ प्रभु का निर्वाण हुआ।

भगवंत निर्वाण पाये तो शक्रेन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने एक शिबिका रची, और शक्रेन्द्र

१. भिक्षा विशेष।

विधिपूर्वक प्रभु के अंग की पूजा करके स्वयं ही प्रभु को शिबिका में पधराया। देवताओं ने नैर्ऋत्य दिशा में रत्नशिला पर गोशीर्ष-चन्दन के काष्ठ की चिता रची। इन्द्र प्रभु की शिबिका को उठाकर वहां लाये और श्री नेमिप्रभु के शरीर को चिता में पधराया। इन्द्र की आज्ञा से अग्निकुमारों ने उस चिता में अग्नि उत्पन्न की, और वायुकुमारों ने उस अग्नि को तुरंत प्रज्वलित की। उनका देह दग्ध हो गया। फिर क्षीरसागर के जल से देवों ने अग्नि बुझा दी, तो शक्र और इशान वगैरह इन्द्रों ने प्रभु की दाढ़े ग्रहण की। बचे हुए अस्थि देवताओं ने लिये, देवियों ने अनेक पुष्प लिये, राजाओं ने वस्त्र लिये और लोगों ने भस्मग्रहण की। प्रभु के संस्कारवाली वैदूर्यमणि की शिला पर इन्द्र ने अपने वज्र से प्रभु के लक्षण और नाम लिखे। इसके बाद उस शिला पर श्री नेमिनाथ की प्रतिमा सहित एक पवित्र चैत्य कराया। इस प्रकार सर्व क्रिया करके शक्रादिक देवता अपने अपने स्थानक पर गये।

यहां पाण्डव विहार करते करते **हस्तीकल्प** नगर में आये, वहां वे परस्पर प्रीति से कहने लगे कि 'अब यहां से रैवताचल गिरि सिर्फ बारह योजन दूर है। इसलिए कल प्रातःकाल में श्री नेमिनाथ के दर्शन करके ही हम मासिक तप का पारणा करेंगे।' इतने में लोगों से उन्होने सुना कि 'भगवान श्री नेमिनाथ अपने साधुओं सहित निवार्ण पद को पाये।' यह सुनते ही बड़ा शोक करते हुए वे सिद्धाचल गिरि पर आये और वहां अनशन करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष गये। साध्वी द्रौपदी मृत्यु पाकर परमर्द्धि के धामरुपी ब्रह्मदेवलोक में गयीं।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येऽष्टमे पर्वणि बलदेव स्वर्गगमन–श्री नेमिनाथनिर्वाण वर्णनो नाम द्वादशः सर्गः।।१२।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

इस पर्व में अतुल्य तेजवान् बाइसवें तीर्थंकर, नौवें वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव - इन चार पुरुषों के चरित्र का कीर्तन किया है। सिद्धांत दृष्टि से देखते हुए इनमें से एक पुरुष का चरित्र भी यदि कानों को सुनाई दे तो वह तीन लोक में भी आश्चर्यदायी लगे ऐसा है।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

॥ समाप्तं चेदं अष्टमं पर्व ॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

श्री त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र

पर्व-९

पहला सर्ग

श्री ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चरित्र

श्री नेमिनाथ प्रभु को नमस्कार करके उनके तीर्थ में उत्पन्न हुए **ब्रह्मदत्त** चक्रवर्ती का चरित्र अब कहा जायेगा। इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में **साकेतपुर** नाम का नगर है। उसमें पूर्वकाल में **चन्द्रावतंस** नाम के राजा को **मुनिचन्द्र** नाम का एक पुत्र था। उसने कामभोग से निर्वेद पाकर भारवाहक मनुष्य ज्यों बोझा छोड़ देता है त्यों संसार को छोड़कर **सागरचन्द्र** नाम के मुनि से व्रत ग्रहण किया। एक बार जगत के पूजन योग्य ऐसी दीक्षा का पालन करते हुए वे मुनि गुरु के साथ देशांतर में विहार करने चल निकले। मार्ग में भिक्षा के लिए वे एक गाँव में गये। वहां उनके रुकने से और सार्थ के चले जाने से यूथ से अलग हुए मृग की तरह वे सार्थभ्रष्ट होकर अटवी में भटकने लगे। वहां क्षुधा और तृषा से आक्रांत होकर वे ग्लानि पा गये। इतने में उनको चार ग्वाले मिले, उन्होंने बांधव की भाँति उनकी सेवा की। मुनि ने उनके उपकार के लिए धर्मदेशना दी, क्योंकि "सत्पुरुष अपकारी पर भी कृपा करते हैं, तो उपकारी पर क्यों न करे ?" मानो चतुर्विध धर्म की चार मूर्ति हो त्यों समतावाले उन चारों जनों ने उनकी देशना सुनकर उनसे दीक्षा ली। उन चार मुनियों ने सम्यक् प्रकार से व्रतपालन किया, परंतु उसमें से दो जन ने धर्म की जुगुप्सा की। 'प्राणियों की मनोवृत्ति विचित्र है।' यद्यपि उन्होंने धर्म की जुगुप्सा की फिर भी वे तपस्या के प्रभाव से देवलोक में गये, क्योंकि "एक दिन का तप भी स्वर्गदायी बनता है।"

देवलोक से च्यूत होकर वे दोनों जन दशपुर नगर में **शांडिल्य** नाम के ब्राह्मण की **जयवती** नाम की दासी से जुड़वे पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। क्रमशः वे युवावस्था को प्राप्त हुए, तो पिता की आज्ञा से वे क्षेत्र की रक्षा करने गये। "दासीपुत्रों का ही यह कार्य है।" रात्रि को वे क्षेत्र में सो गये थे, उस समय बड़ की कोटर में से निकलकर मानो यमराज के बंधु हो ऐसे कृष्ण सर्प ने उन दोनों में से एक को डंक मारा। दूसरा भाई उस सर्प की खोज करने लगा, तो मानो पूर्व का बैर हो त्यों उस दुष्ट सर्प ने उसे भी डंक मारा। उसके डंक का प्रतिकार न होने से बेचारा मृत्यु पा गया, और मनुष्यपने में ज्यों आये थे त्यों वापस चले गये। उनके निष्फल जन्म को धिक्कार है ! वहां से मृत्यु पाकर कालिंजर गिरि के शिखर पर एक हिरनी के उदर से वे मृगरुप में उत्पन्न हुए। वे दोनों प्रीति से साथ घूमते थे। उस समय एक शिकारी ने एक ही बाण से एक ही समय पर उनको मार डाला। वहां से मृत्यु पाकर गंगानदी के किनारे एक

राजहंसी के उदर से पहले की तरह युगलिक रुप में उत्पन्न हुए। एक बार वे साथ साथ क्रीडा कर रहे थे, इतने में किसी ढीमर ने जाल बिछाकर उनको पकडा और ग्रीवा मरोड़कर उन्हें मार डाला। ''धर्महीन की प्रायः ऐसी ही गति होती है।'' वहां से मृत्यु पाकर काशीपुरी में **भूतदत्त** नाम के समृद्धिवान् चाण्डाल के घर **चित्र** और संभूत नाम के दो पुत्ररुप में उत्पन्न हुए। उन्होंने परस्पर अत्यंत स्नेह होने से वे कदापि अलग नहीं पडते थे। नाखून व मांस जैसा उनका दृढ संबंध था। उस समय **वाराणसी** नगरी में **शंख** नाम का राजा था। और उसका **नमुचि** नाम का सचिव था। एक बार वह नमुचि सचिव किसी बड़े अपराध में फँसा, जिससे राजा ने उसे गुप्त प्रकार से मार डालने के लिए भूतदत्त चांडाल को सौंप दिया। उसने नमुचि को कहा, ''यदि तू मेरे पुत्रों को तहखाने में रहकर गुप्त प्रकार से पढ़ायेगा तो मैं मेरी आत्मा की तरह तेरी गुप्तता की रक्षा करुंगा।'' नमुचि ने मातंगपति का वह वचन कबूल किया, क्योंकि 'मनुष्य जीवित रहने के लिए न करे ऐसा कुछ नहीं है।' फिर नमुचि चित्र और संभूत को विचित्र कलाओं का अभ्यास कराने लगा। कुछ दिनों में अनुरागी बनी उस चांडाल की स्त्री के साथ वह क्रीडा करने लगा। यह बात मालूम पड़ते ही भूतदत्त ने उसे मारने का निश्चय किया। ''अपनी स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले व्यभिचारी का दोष कौन सहन करेगा ?'' यह बात चित्र संभूत को मालूम पड़ते ही उन चांडाल पुत्रों ने अपने विद्यागुरु होने का भय दिखाकर नमुचि को भगा दिया। यूं विद्याभ्यास की दक्षिणारुप में उसकी प्राण रक्षा की। वहां से भागकर वह नमुचि हस्तीनापुर आया। वहां **सनतकुमार** चक्री ने उसको अपना सचिव बनाया।

यहां चित्र और संभूत नवयौवन को प्राप्त हुए, इसलिए वे मानो अश्विनीकुमार कोई हेतु से पृथ्वी पर आये हो ऐसे दिखने लगे। हाहा और हूहू गंधर्व का भी उपहास्य करे ऐसा अति मधुर गीत वे गाने लगे, और नारद तथा तुंबरु का भी तिरस्कार करे ऐसी वीणा बजाने लगे। जब वे गीतप्रबन्ध का अनुसरण करते हुए अति स्पष्ट ऐसे सात स्वरों की वीणा बजाते थे, तब किन्नर भी उनके किंकर हो जाते थे। धीर घोषणा से जब मृदंग बजाते तब मुरली का नाद करनेवाले कृष्ण की भी विटम्बना करते थे। शंकर, पार्वती, उर्वशी, रंभा, मुंजकेशी और तिलोत्तमा भी जिस नाट्य को नहीं जानती थी, उस नाट्य का वे अभिनय करते थे। सर्व गंधर्वो का सर्वस्व व विश्व मोहक अपूर्व संगीत से प्रकाशित करते हुए उन्होंने सबके मन का हरण किया। एक बार उस नगरी में मदनोत्सव शुरु हुआ तो नगरजन संगीत के रसिक होकर नगर बाहर निकले। उस समय चित्र और संभूत भी गाते गाते उस तरफ निकले। उनके गीत से आकर्षित होकर मृगों की तरह पुरजन इकट्ठे हुए। उस समय किसीने राजा के पास आकर कहा, 'दो चांडालों ने हमारे नगरजनों को गीत से आकर्षित करके अपने जैसा मलिन कर डाला

है।' तत्काल राजा ने कोटवाल को बुलवाकर आक्षेपपूर्वक हुक्म दिया कि ''इन दोनों चाण्डालों को नगरी के किसी भी प्रदेश में घुसने देना मत।'' कोटवाल ने उनको खबर दी, तो वे उस दिन से वाराणसी से दूर ही रहने लगे। एक बार वाराणसी में कौमुदी उत्सव शुरू हुआ, तो इन्द्रियों की चपलता से उन्होंने राजा के शासन का उल्लंघन करके, भँवरे ज्यों हाथी के गंडस्थल पर प्रवेश करे त्यों उस नगरी में प्रवेश किया। सर्व अंग पर बुरखा ड़ालकर उत्सव देखते हुए चोर की तरह पूरी नगरी में वे गुप्त रुप से घूमने लगे। घूमते घूमते ज्यों लोमड़ी दूसरी लोमड़ी के शब्द साथ मिलाकर बोले त्यों नगरजनों के गीत के साथ अपने स्वर को मिलाकर वे तार स्वर में गाने लगे, क्योंकि 'भवितव्यता का उल्लंघन करना असंभव है।' कान को अत्यंत मधुर लगे ऐसा उनका गीत सुनकर शहद पर मक्खियों की तरह युवा नगरजन उनके चारों ओर छा गये। 'यह दो जन कौन हैं ?' यह जानने के लिए लोगों ने उनके शरीर पर से बुरखा खींच लिया तो, 'अरे यह तो वे चांडाल हैं' ऐसा आक्षेपपूर्वक वे बोल उठे। फिर नगरजन लकड़ी और ढेलों से उनको मारने लगे। घर में से श्वान की भाँति वे गरदन झुकाकर नगर से निकल गये। लोगों और बालकों के समूह द्वारा पीटे गये वे कदम कदम पर स्खलित होते हुए बड़ी मुश्किल से गंभीर उद्यान में आये। वहां स्थित होकर वे सोचने लगे, 'सर्प ने सूंघे हुए दूध की तरह हीनजाति से दूषित हमारे कला, कौशल्य और रुप वगैरह को धिक्कार है ! हमारा गायन वगैरह गुण से किया उपकार हमें अपकार रुप हो पड़ा है। शांतिकार्य करने पर उलटे बे-ताल उत्पन्न हुआ, परंतु हममें रहे कला, लावण्य और रुप हमारे इस शरीर के साथ रस-बस हो गये हैं, और सर्व अनर्थ का कारण यह शरीर है, इसलिए उसे किसी भी तरह तृण की तरह छोड़ने चाहिए।' ऐसा निश्चय करके प्राण छोड़ने में तत्पर वे मानो साक्षात् मृत्यु देखने जा रहे हो त्यों दक्षिण दिशा की ओर चले।

बहुत दूर जाते हुए एक बड़ा गिरि उन्हें नज़र आया। वह इतना ऊँचा था कि उसके पर चढ़ने से पृथ्वी पर खड़े बड़े हाथी भी बच्चे जैसे दिखते थे। फिर भृगुपात (भैरवजव) करने की इच्छा से वे उसके उपर चढ़े। वहां गुण के चलित गिरि रुपी एक महामुनि उन्हें नजर आये। वर्षाकाल के मेघ की तरह गिरिशिखर पर रहे मुनि को देखकर उनके दुःख का व्याप (व्याधि) नाश पा गया। फिर आनंदाश्रु से मानो पूर्व के दुःख को छोड़ देते हो त्यों वे भ्रमर की तरह सीधे उनके चरणकमल में गिरे। मुनि ने ध्यान समाप्त करके उनको पूछा, 'तुम दोनों कौन हो ? और यहां क्यों आये हो ?' उन्होंने अपना सर्व वृत्तांत मुनि को कह सुनाया। मुनि बोले, ''भृगुपात करने से तुम्हारे शरीर का नाश होगा, परंतु सैंकडों जन्म से उपार्जित किए हुए तुम्हारे अशुभ कर्म का कुछ नाश नहीं होगा। यदि तुम्हें इस शरीर का त्याग ही करना हो तो स्वर्ग

और मोक्षादि के कारणरुप परम तप करके उस शरीर का फल ग्रहण करो।'' इत्यादि देशनावाक्यरुपी अमृत से जिनके मन धुलकर निर्मल हुए हैं ऐसे उन दोनों ने तत्काल मुनि से यतिधर्म ग्रहण किया। क्रमशः शास्त्रों का अध्ययन करके वे गीतार्थ बने। 'मनस्वी जन जिसे ग्रहण करने में आदर करे तो उनका ग्रहण क्यों न हो ?' छट्ठ, अट्ठम वगैरह अति कठिन तप करके उन्होंने पूर्वकर्म के साथ अपने शरीर को सूखा दिया। फिर शहर-शहर और गांवोंगाँव विहार करते हुए वे एक बार हस्तीनापुर के समीप आये। वहां नगर के बाहर उद्यान में रहकर वे कठिन तप करने लगे। 'शांत चित्तवाले मनुष्य को संभोग की भूमि भी तपस्या के योग्य हो जाती है।' एक बार मानो शरीरधारी यतिधर्म हो त्यों संभूत मुनि ने मासक्षमण के पारणे हेतु हस्तीनापुर में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। इर्यासमिति पूर्वक घर घर घूमते वे मुनि मार्ग में नमुचि सचिव को नज़र आये, तो 'यह चाण्डाल पुत्र मेरा वृत्तांत जाहिर करेगा' ऐसी चिंता सचिव के चित्त में उत्पन्न हुई, क्योंकि ''पापी जन सब जगह शंका करते हैं।'' फिर 'जब तक ये मेरे मर्म को प्रकाशित न करे तब तक उसे मैं नगर बाहर निकलवा दूँ।' ऐसा सोचकर अपने सेवकों को उसे नगर से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी। सेवकों ने सचिव के पूर्वोपकारी को मारना शुरु किया। ''दुर्जन पर उपकार करना सर्प को दूध पिलाने जैसा है।'' ज्यों धान्य के पुंज को कूटते हैं त्यों सेवकों ने मुनि को कूटा, तो वे वहां से उपवन में जाने के लिए तेजी से चले, फिर भी सेवकों ने उन्हें न छोडा। निरुपाय शांत होने पर भी मुनि को शांति होने पर भी कोप चढ़ा, क्योंकि ''अग्नि की उष्णता से शीतल जल भी उष्ण बनता है।' तत्काल मुनि के मुख में से बेसमय उत्पन्न हुए मेघ में से बीजली की भाँति तेजोलैश्या उत्पन्न हुई। वह बीजली के मण्डल की तरह आकाश को प्रकाशित करती बड़ी बड़ी ज्वालाओं से उल्लास पाने लगी। इस प्रकार कोप से तेजोलैश्या को धारण करते उस मुनि को प्रसन्न करने के लिए नगरनिवासी भय से और कौतूक से वहां आये। राजा सनत्कुमार भी यह बात सुनकर तत्काल वहां आये, क्योंकि ''सद्बुद्धिवान् पुरुष को जहां से अग्नि उठे वहां से ही बुझा देना चाहिए।'' राजा संभूतमुनि को प्रणाम करके बोले, ''हे भगवन् ! आपको यूं करना क्या योग्य है ? 'चन्द्रकांत मणि सूर्य के किरणों से तपता है तो भी वह अपनी शीतल कांति को छोड़ता नहीं है।' इन सेवकों ने आपका जो अपराध किया है, उससे आपको क्रोध आना संभव है, क्योंकि क्षीर सागर का मंथन करते हुए क्या कालकूट विष उत्पन्न नहीं हुआ है ? परंतु सत्पुरुषों का क्रोध दुर्जन के स्नेह जैसा होता है, अर्थात् सत्पुरुषों को क्रोध होता ही नहीं, होता है तो वह लम्बे समय तक रहता नहीं है और यदि कदापि रहे तो भी वह निष्फल होता है, उसका फल नहीं मिलता। इसके बारे में आपको अधिक क्या कहना ? मैं तो आपको प्रार्थना करके कहता हूँ कि अब कोप छोड़ दीजिए, क्योंकि आपके जैसे पुरुष उपकारी और अपकारी दोनों में

समदृष्टिवाले होते हैं।'' उस समय वह समाचार जानकर चित्रमुनि भद्रहस्ती की तरह मधुर भाषण से शांत करने के लिए संभूतमुनि के पास आये। फिर मेघ के जल की बाढ से ज्यों पर्वत का दावानल बुझ जाता है त्यों चित्रमुनि के शास्त्रानुसारी वचनों से संभूतमुनि का कोप शांत हो गया। तीव्र कोप और तप से मुक्त बने वे महामुनि क्षय से पर्वणी (पूनम) के चन्द्र की तरह प्रसन्न बने। फिर सब लोग उनकी वन्दना करके क्षमा मांगकर वहां से वापस लौटे। चित्र मुनि संभूतमुनि को उद्यान में ले गये। वहां जाने के बाद वे पश्चात्ताप करने लगे कि 'मात्र आहार के लिए घर घर घूमने से बड़ा दुःख प्राप्त होता है, इस शरीर का आहार से पोषण करने पर भी परिणाम नाशवंत है, तब योगियों को शरीर या आहार की क्या जरूरत है ?' ऐसा चित्त में निश्चय करके संलेखनापूर्वक दोनों मुनियों ने चतुर्विध आहार के पच्चखाण किये।

यहां राजा सनत्कुमार ने आज्ञा दी, 'मेरे होने पर भी उस साधू को जिसने पराभव किया हो उसे ढूंढ लाओ।' किसिने आकर नमुचि सचिव के बारे में सूचित किया। ''पूज्य जन की पूजा नहीं करके उलटे ही जो (मारता) है वह महापापी है।'' ऐसा कहकर राजा ने नमुचि को चोर की तरह बंधवाकर बुलवाया। फिर ''अब से कोई इस तरह साधु का पराभव न करे'' ऐसा सोचकर शुद्ध बुद्धिवाले सनत्कुमार चक्री नगर के मध्य में होकर उसे बंधी हुई दशा में मुनि के पास ले आये। झुकते मुकट के रत्न की कांति से पृथ्वी को जलमय करते राजा ने दोनों मुनि की वन्दना की, तो बाँयें हाथ में रखी हुई मुखवस्त्रिका से मुख ढांपते और दक्षिण भुजा को ऊँचे उठाते हुए दोनों मुनि बोले, ''जो अपराधी होता है वह स्वयं अपने कर्मों के फल का भाजन होता है।'' फिर सनत्कुमार ने मुनि को नमुचि सचिव दिखाया, तो बंधा हुआ वह नमुचि गरुड से सर्प समान सनत्कुमार से पंचत्व के योग्य ऐसी भूमिका को प्राप्त उसे मुनि ने छुडवाया। राजा ने उस कर्म चाण्डाल को जाति चाण्डाल की भाँति नगर से बाहर निकाल दिया, क्योंकि ''गुरु का शासन मानने योग्य है।'' फिर चौसठ हजार सपत्नियों का परिवार लेकर उस चक्रवर्ती का स्त्रीरत्न **सुनंदा** मुनि की वन्दना के लिए आयी। वहां संभूत मुनि के चरणकमल में केश को लुलित करती और मुख से पृथ्वी पर चन्द्रावली रचती हुई सुनंदा उनके चरणों में झुकी। उस राजरमणी के केश का स्पर्श होते ही संभूतमुनि तत्काल रोमांचित हो गये। कारण....''कामदेव निरंतर छल ढूंढनेवाला ही है।'' फिर राजा सनत्कुमार मुनिराज की आज्ञा लेकर अंतःपुर सहित वहां से अपने स्थानक पर गये।

उनके जाने के बाद कामराग से पराजित संभूतमुनि ने ईस प्रकार संकल्प बांधा कि 'यदि मेरे किए हुए कठिन तप का फल हो तो मैं अगले जन्म में ऐसे स्त्रीरत्न का पति बनूं।' चित्रमुनि बोले 'अरे भद्र ! इस मोक्षदायक तप का ऐसा फल क्यों चाहता है ? मुकुटयोग्य रत्न से चरणपीठ

क्यों बनाता है ? मोह से किया हुआ यह संकल्प अभी भी तुम छोड दो और तुम्हारा वह दुष्कृत्य मिथ्या हो जाय, क्योंकि तुम्हारे जैसे मनुष्य मोह से बेचैन नहीं हो जाते।' इस प्रकार चित्र साधू ने उन्हें बहुत समजाया, फिर भी संभूतमुनि ने अपना संकल्प नहीं छोडा। "अहो ! विषयेच्छा महा बलवान है।" फिर दोनों मुनि परिपूर्ण अनशन पालकर आयुःकर्म का क्षय होते ही मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक के सुन्दर नाम के विमान में देवता बने।

चित्र का जीव पहले देवलोक से च्यूत होकर **पुरिमताल** नगर में एक धनाढ्य वणिक का पुत्र बना और **संभूत का जीव** वहां से च्यूत होकर **कांपिल्य** नगर के **ब्रह्मराजा** की स्त्री **चुलनीदेवी** के उदर में अवतरित हुआ। चौदह महास्वप्नों ने जिसका चक्रवर्ती वैभव सूचित किया है ऐसा वह सुवर्ण जैसे वर्णवाला और सात धनुष्य ऊँची कायावाला बना। ब्रह्म के जैसे आनन्द से ब्रह्मराजा ने ब्रह्मांड में **ब्रह्मदत्त** ऐसा उसका नाम रखा। जगत के नेत्ररूपी कुमुद को हर्ष देता हुआ और कला के कलाप से पोषण होते हुए वह निर्मल चन्द्र की तरह बढ़ने लगा।

ब्रह्मा को ज्यों चार मुख होते हैं त्यों उस ब्रह्मराजा के चार प्रिय मित्र थे। उसमें पहले काशी देश का राजा **कटक**, दूसरा हस्तीनापुर का राजा **कणेरुदत्त**, तीसरा कौशल देश का राजा **दीर्घ** और चौथा चम्पानगरी का **पुष्पचूल** था। ये पांचों मित्र स्नेह से नंदनवन में कल्पवृक्षों की तरह अपने अंतःपुर के साथ एक एक नगर में एक एक वर्ष रहते थे। एक बार वे बारी अनुसार ब्रह्मराजा के नगर में इकट्ठे हुए। वहां क्रीडा करते हुए उनका कुछ काल बीत गया। ब्रह्मदत्त के बारह वर्ष पूरे हुए तो उस समय ब्रह्मराजा मस्तिष्क की वेदना से परलोक को प्राप्त हुआ। ब्रह्म राजा की उत्तरक्रिया करके मूर्तिमंत चार उपाय जैसे वे कटक वगैरह चार मित्र इस प्रकार सोचने लगे, 'हमारे मित्र ब्रह्मराजा का कुमार यह ब्रह्मदत्त जब तक बालक है तब तक हममें से एक एक व्यक्ति को एक एक साल पहरेदार की तरह उसके और राज्य के रक्षक बनकर यहां रहना चाहिए।' ऐसा निर्णय हुआ तो पहले दीर्घराजा उस मित्र के राज्य की रक्षा के लिए रहा और दूसरे तीन राजा अपने अपने राज्य में चले गये। फिर बुद्धिभ्रष्ट बना दीर्घराजा, रक्षक बिना के क्षेत्र को ज्यों सांढ भोगे त्यों ब्रह्मराजा के राज्य की समृद्धि को स्वच्छंदपन से भोगने लगा। वह मूढबुद्धि अन्य के मर्म को ज्यों दुर्जन ढूंढे त्यों दीर्घकाल से गुप्त रखे हुए कोश (खजाने) को ढूंढने लगा। और पूर्व के परिचय से वह ब्रह्मराजा के अंतःपुर में भी उच्छृंखलता से विचरने लगा। "मनुष्यों का आधिपत्य ही अधर्मकारी है।"

एक बार कामदेव के बाण से बेधे हुए दीर्घराजा ने चुलनीदेवी के साथ एकांत में ब्रह्मदत्त के विवाह के बहाने कुछ अतिमात्र[1] मसलत की। उसमें ब्रह्मराजा के सुकृत आचार की और लोगों

१. अतिमात्र - अतिशय।

की अवगणना की। मोह पायी हुई चुलनीदेवी ने उसका स्वीकार किया, क्योंकि "इन्द्रियाँ अति दुर्वार होती हैं।" ब्रह्मराजा के राज्य में रहकर चुलनी ने पति का प्रेम और ब्रह्मदत्त का स्नेह छोड दिया। "अहो ! कामदेव सर्वंकष[1] है।" कौए और मछली की भाँति इच्छा अनुसार सुखपूर्वक विलास करते हुए उन दोनों को मुहूर्त की भाँति कइं दिन चले गये।

एक बार ब्रह्मराजा के दूसरे हृदय समान **धनु** नाम के सचिव ने उनका यह दुश्चेष्टित स्पष्ट रुप से जान लिया। सचिव ने सोचा, "शायद चुलनी स्त्रीस्वभाव के कारण ऐसा अकार्य करे, क्योंकि सती स्त्रियां विरल होती है, परंतु जिस दीर्घराजा को कोश और अंतःपुर सहित पूरा राज्य विश्वास से अमानतरुप में अर्पण किया है, वह जब विकार पाकर ऐसा अकार्य करता है तो चुलनी का अकार्य कुछ गिनती में नहीं है। अब वे इस ब्रह्मदत्त कुमार का शायद कुछ विप्रिय न करे यही सोचना है, क्योंकि पोषण करने पर भी दुर्जन मार्जार की तरह कदापि अपना नहीं होता है।" ऐसा सोचकर सचिव ने अपने **वरधनु** नाम के पुत्र को यह वृत्तांत ब्रह्मदत्त को बताने की और निरंतर उसकी सेवा करने की आज्ञा दी। सचिव-पुत्र ने वह वृत्तांत ब्रह्मदत्त को बताया तो उसने नये मदधारी हस्ती की तरह धीरे धीरे अपना कोप प्रकट किया। अपनी माता के ऐसे दुश्चरित को सह न पाता ब्रह्मदत्त एक दिद हाथ में एक कौआ और एक कोकिला लेकर अंतःपुर में गया। फिर 'इस पक्षी की तरह जो वर्णसंकरपना करेगा उसका मैं अवश्य निग्रह करुंगा।' इस प्रकार कुमार वहां उच्च स्वर से बोला, यह सुनकर एकांत में चुलनी को दीर्घराजा ने कहा कि "मैं कौआ और तू कोकिला है यूं समझना। जिससे यह कुमार हम दोनों का अवश्य निग्रह करेगा।" देवी बोली, "उस बालक के बोल पर से भय मत पाना।"

एक बार दुबारा ब्रह्मदत्त एक भद्र जाति की हाथिनी के साथ नीच कोटि के हाथी लाकर पूर्वानुसार ही उनके मृत्युसूचक वचन बोला। वह सुनकर दीर्घ ने चुलनी को कहा, 'इस बालक का भाषण साभिप्राय है।' चूलनी ने कहा, 'शायद ऐसा हो तो भी उससे क्या ?' एक बार हंसी के साथ बगुले को बांधकर अंतःपुर में ले जाकर ब्रह्मदत्त कहने लगा, 'इनकी तरह कोई खेलेगा उसे मैं सहन नहीं करुंगा।' यह सुनकर दीर्घराजा बोला, 'हे देवी ! अंदर उत्पन्न हुए रोषाग्नि से बाहर निकलते धुंए के उद्गार जैसी यह तेरे बालपुत्र की वाणी सुन। यह कुमार बड़ा होते ही हाथी और हाथिन को केसरीसिंह की भाँति हमें अवश्य विघ्नकर्ता बनेगा, इसलिए जब तक यह कुमार कवचधारी न बने तब तक विष के बालवृक्ष की तरह उसे नष्ट करना ही योग्य है।' चुलनी बोली, 'ऐसे राज्यधर पुत्र को क्यों मारा जाय ? क्योंकि तिर्यंच भी अपने प्राण की तरह पुत्रों की रक्षा करते हैं।' दीर्घ बोला, 'अरे रानी ! यह पुत्र मूर्तिमंत तेरा काल ही आया है,

१. सबकुछ नष्ट करनेवाला, सर्वशक्तिमान।

इसलिए उसके पर तू मोह मत रख। मेरे होते हुए तुझे पुत्र होना कुछ दुर्लभ नहीं है।' दीर्घ के ऐसे वचन सुनकर रतिस्नेह में वशीभूत चुलनी ने डाकिन की तरह पुत्र-वात्सल्य छोड़कर वैसा करना कबूल किया। उसने सोचा, 'इस कुमार को मार डालना, लेकिन लोगों में निंदा न होने देनी। काम का काम हो जाय और पितृतर्पण भी। इसके लिए क्या उपाय करना ? एक उपाय है, उसका विवाह करना अभी बाकी है, विवाह करने के बाद उसके निवास के लिए निवासगृह बनाने के बहाने लाक्षागृह (लाख का घर) बनाना होगा। उसमें प्रवेश व निर्गमन गुप्त रुप से हो सके ऐसी रचना करवानी होगी और विवाह हो जाने के बाद जब वह उसमें वधू सहित सोने जाय, तब रात्रि में आग लगानी होगी।' इस प्रकार के विचार में दोनों की संमति बनी। फिर वह पुष्पचूल राजा की कन्या के साथ संबंध करके विवाह की सर्व सामग्री तैयार करने लगी।

उनका ऐसा क्रूर आशय धनुमंत्री के जानने में आते ही उसने दीर्घराजा के पास आकर हाथ जोड़ते हुए कहा, 'राजन् ! मेरा पुत्र **वरधनु** कला जाननेवाला व नीतिनिपुण है। तो अब मेरी तरह आपके आज्ञारुपी रथ की धुरा को वहन करनेवाला बने। मैं वृद्ध वृषभ की भाँति अब गमनागमन करने में अशक्त बन चूका हूँ, इसलिए अब आपकी आज्ञा से किसी स्थान पर जाकर कुछ धर्म अनुष्ठान करुंगा।' मंत्री के ऐसे वचन से 'यह सचिव किसी अन्य स्थान पर जाकर कपट करके कुछ भी अनर्थ करेगा' ऐसा शक दीर्घ को हुआ। ''बुद्धिमान पर कौन शक न करें ?'' फिर दीर्घराजा ने माया से मंत्री को कहा, 'चन्द्र बिना रात्रि की तरह आपके बिना यह राज्य हमारे किस काम का है ? इसलिए आप यहीं रहकर दानशाला वगैरह से धर्म कीजिए, अन्य स्थान पर जाना नहीं, क्योंकि अच्छे वृक्षों से वन की भाँति आप जैसे पुरुषों से ही राज्य शोभा पाता है।'

दीर्घराजा के इस प्रकार के कथन से सद्बुद्धिवाले धनुमंत्री ने गंगानदी के तट पर मानो धर्म का महासत्र हो (दानशाला) वैसा एक पवित्र दानशाला का मंडप बनवाया। स्वयं वहां रहकर गंगा के प्रवाह की तरह हंमेशां पथिकों को अन्नपानी देने का अविरत प्रवाह प्रारंभ किया। फिर दान, सम्मान और उपकार से प्रतीतियोग्य बने पुरुषों द्वारा दो कोस दूर से सुरंग बनवाकर लाक्षागृह तक मिलवा दी। फिर स्नेहरुप आर्द्र वृक्ष में जल समान गुप्त लेख लिखकर उसने यह वृत्तांत पुष्पचूल राजा को बताया। यह समाचार जानकर बुद्धिमान पुष्पचूल ने अपनी दुहिता के बजाय - हंसी के स्थान पर बगुली की तरह - एक दासी को भेजा। पितल पर चढ़ाये सुवर्णरस समान उस दासी को लोग पुष्पचूल की पुत्री मानने लगे। क्रमशः आभूषणों के मणियों से प्रकाशित वह दासी नगरी में आयी। फिर गीतध्वनि और वाजिंत्रनाद से आकाश को भर देती

और हर्ष पाती चुलनीदेवी ने उसका ब्रह्मदत्त से ब्याह करवाया। सायंकाल पर सब लोगों को बिदा करके चुलनी ने वधू-वर को उस लाक्षागृह में सोने भेजा। ब्रह्मदत्त भी अन्य परिवार को बिदा करके वधू व अपनी छाया समान सचिवपुत्र वरधनु सहित वहां शयन करने गया। मंत्रीकुमार के साथ वार्तालाप करते हुए ब्रह्मदत्त को जाग्रत स्थिति में ही आधी रात्रि व्यतीत हो गयी। ''महात्माओं को अधिक निद्रा कहां होती है ?''

इसके बाद चुलनीदेवी ने आज्ञा दिए हुए और झुकाये हुए मुखवाले पुरुष आग लगाकर फिर 'आग लगी' ऐसी पुकार मचाने लगे, जिससे ही आग मानो प्रेरणा पायी हो त्यों लाक्षागृह को चारों ओर से जलाने लगी। उस समय चुलनी और दीर्घराजा के दुष्कृत्य की अपकीर्ति के प्रसारण जैसे धूम्र-समूह ने भूमि और आकाश को भर दिया। मानो अत्यंत क्षुधातुर हो त्यों सर्व का ग्रास करने के लिए अग्नि सात जिह्वावाली होकर भी ज्वालाओं के समूह से कोटि जिह्वावाली हो गयी। उस समय 'यह क्या हुआ ?' ऐसा ब्रह्मदत्त ने सचिवपुत्र को पूछा, तो उसने संक्षेप में चुलनीदेवी का दुष्ट चेष्टित कह सुनाया। फिर कहा कि मृत्यु के कर (बचने) की भाँति इस स्थान में से आपका आकर्षण करने के लिए मेरे पिता ने यहां तक एक सुरंग करवायी है, वह उनकी दानशाला तक जाती है, जिससे यहां पैर के प्रहार द्वारा उसको खुल्ली करके विवरद्वार में योगी की भाँति उसमें आप प्रवेश करें। फिर वाजिंत्र के पुट की तरह पानी के प्रहार से पृथ्वी का तल छेदकर, छिद्र में धागे की तरह ब्रह्मदत्त मित्र के साथ उस सुरंग में चला। सुरंग के सिरे पर धनुमंत्री ने दो अश्व तैयार रखे थे। सुरंग से बाहर निकलकर राजकुमार और सचिवकुमार रेवंत की शोभा का अनुसरण करते हुए उन अश्वों पर आरुढ हुए। वे अश्व पंचमधारा से एक कोस की भाँति पचास योजन तक एक श्वास से चले, जब खड़े रहे तब उच्छवास लेते ही दोनों अश्व मृत्यु पा गये। फिर वे अपनी रक्षा के लिए पैदल चलते हुए क्रमशः **कौष्टक** नाम के गाँव समीप मुश्किल से आ पहुँचे। वहां ब्रह्मदत्त ने सचिवकुमार को कहा, 'मित्र वरधनु ! अब परस्पर स्पर्धा करती हो त्यों क्षुधा और तृषा दोनों ही मुझे अति पीड़ा करती है।' 'एक क्षणमात्र प्रतीक्षा करो' कहकर मंत्रीपुत्र क्षौर कराने की इच्छा से गाँव में से एक नाई को बुलवाया। सचिवपुत्र के विचार से ब्रह्मदत्त ने भी नाई से तुरंत ही मुंडन करवाया और सिर्फ शिखा ही रखवाई। फिर उसने पवित्र ऐसे काषाय वस्त्र धारण किए, जिससे वह संध्या द्वारा ढके हुए सूर्य समान दिखने लगा। फिर वरधनु ने दिया हुआ ब्रह्मसूत्र उसने कण्ठ में धारण किया, जिससे ब्रह्मराजा के पुत्र ब्रह्मदत्त ने योग्य ब्रह्मपुत्र (ब्राह्मण) का सादृश्य प्राप्त किया। ब्रह्मदत्त के वक्षःस्थल में श्रीवत्स का लांछन था, जिसे सचिवपुत्र ने बादलों से सूर्य की तरह वस्त्र से ढक दिया। इस प्रकार ब्रह्मदत्त ने सूत्रधार की तरह और सचिवपुत्र वरधनु ने

विदूषक की तरह पूरा वेश परिवर्तन किया। फिर पर्वणी में ज्यों सूर्य-चन्द्र साथ दिखे त्यों वे एक साथ ही गाँव में घुसे। किसी उत्तम ब्राह्मण ने उनको भाग्यवान जानकर निमंत्रण दिया, और राजा जैसी भक्ति से भोजन कराया। "प्रायः तेज के प्रमाणानुसार ही सत्कार होता है।" फिर उस ब्राह्मण की स्त्री ने कुमार के मस्तिष्क पर अक्षत ड़ालकर दो श्वेत वस्त्र व एक अप्सरा समान कन्या समक्ष धरी। वरधनु बोला, 'अरे मूढ़ ! कसाई समक्ष गाय की तरह इस पराक्रम या कला में अज्ञात व्यक्ति के गले में इस कन्या को क्या देखकर बांधता है ?' ब्राह्मण बोला, "यह गुणवान **बंधुमती** नाम की मेरी कन्या है, उसका इस पुरुष के सिवा अन्य कोई वर नहीं है, क्योंकि निमित्तिए ने मुझे कहा है कि इस कन्या का पति षट्खण्ड पृथ्वी-पालक होगा।' इस निश्चय से वह यही पुरुष है। और उसने ही मुझे बताया था कि वस्त्र से जिसने अपना श्रीवत्स लांछन ढका हो, ऐसा जो पुरुष तेरे घर भोजन करने आये उसे यह कन्या देनी।" फिर उस कन्या के साथ ब्रह्मदत्त का विवाह हुआ। "भोगियों को मनोवांछित भोग बिना चिंतन किए मिल ही जाते हैं।" वह रात बंधुमती के साथ बिताकर उसे आश्वासन देकर कुमार दूसरे दिन वहां से अन्यत्र जाने के लिए चल दिया। क्योंकि 'शत्रुवाले पुरुष एक स्थान पर किस तरह रह सकते हैं ?'

प्रातःकाल वे एक गांव में पहुँचे। वहां उन्होंने सुना कि 'दीर्घराजा ने ब्रह्मदत्त के सब मार्ग रोक लिये हैं।' यह सुनकर उन्मार्ग से चलते हुए वे एक महा अटवी में आ पहुँचे। वहां मानो दीर्घराजा के पुरुष हो त्यों अनेक भयंकर शिकारी प्राणियों ने अटवी को भर दिया था। तृषापीडित ब्रह्मदत्त को वहां एक वटवृक्ष के नीचे बैठाकर सचिवकुमार मन समान गति से जल लेने चला। वहां दीर्घराजा के पुरुषों ने सूअर के बच्चे को ज्यों श्वान रोके त्यों रोष से वरधनु को पहचानकर रोक लिया। फिर 'पकडो, पकडो, मारो मारो' ऐसे भयंकर शब्द बोलते हुए उन्होंने वरधनु को पकडक बांध दिया। उसने ब्रह्मदत्त को संज्ञा से समझा दिया कि 'पलायन कर जाओ।' कुमार ने तत्काल वहां से पलायन किया, क्योंकि "समय आने पर ही पराक्रम दिखाया जा सकता है।" ज्यों आश्रमी पुरुष एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाता है त्यों ब्रह्मदत्त तेजी से एक अटवी में से दूसरी अटवी में चला गया। वहां विरस[1] और नीरस[2] फल का आहार करते हुए उसने दो दिन बिता दिए। तीसरे दिन उसे एक तापस नजर आया। कुमार ने पूछा, 'भगवन् ! आपका आश्रम कहां है ?' तो वह तपस्वी उसको अपने आश्रम में ले गया। "तापसों को अतिथि प्रिय होते हैं।" वहां उसने कुलपति को देखा, तो पिता की तरह उसने हर्ष से उनको नमस्कार किया। "अनजानी चीज में भी अंतःकरण सत्य कल्पना करता है।" कुलपति ने उसको पूछा, "वत्स !

१. खराब रसवाला। २. रसविहीन।

तुम्हारी आकृति अत्यंत मधुर दिखती है, तो मरुदेश में कल्पवृक्ष की भाँति तुम्हारा यहां आगमन क्यों हुआ है ?'' ब्रह्मकुमार ने उस महात्मा पर विश्वास करके अपना पूरा वृत्तांत कह सुनाया, क्योंकि ''प्रायः ऐसे पुरुषों से कुछ भी गोप्य[1] होता नहीं है।''

ब्रह्मदत्त का वृत्तांत सुनकर कुलपति खुश हुए। उन्होंने हर्ष से गद्‌गद स्वर में कहा, 'वत्स ! एक आत्मा के दो रुप हो त्यों मैं तुम्हारे पिता का लघुबंधु हूँ। तो अब तुम तुम्हारे घर ही आये हो ऐसा समजकर यहां सूखपूर्वक रहो और हमारे तप से हमारे मनोरथों के साथ वृद्धि पाओ।' फिर लोगों की नजरों को आनन्द देनेवाला व अत्यंत विश्ववल्लभ कुमार उस तापस के आश्रम में रहा। क्रमशः वर्षाकाल आया। वहां रहकर बलदेव से कृष्ण की तरह कुमार सर्व शास्त्र, शस्त्र और अस्त्रविद्या सीखा। वर्षाऋतु बीतने के बाद बंधु जैसी शरद्‌ऋतु प्राप्त हुई, तो तापस फलादि के लिए वन में गये। उस समय कुलपति ने आदर से रोका तो भी ब्रह्मदत्त हाथी के बच्चों के साथ ज्यों छोटा बच्चा जाय त्यों उनके साथ वन में जाने चल निकला। ईधर-उधर घूमते ब्रह्मदत्त ने किसी हाथी के मूत्र-विष्टा देखे, तो कुशाग्र मतिवाले उसने जाना कि 'यहां समीप में ही कोई हस्ती होना चाहिए।' फिर तापसों ने उसे बहुत रोका, फिर भी वह हाथी के कदम देखता हुआ पांच योजन तक गया, वहां एक पर्वत जैसा हाथी उसे नज़र आया। मल्ल ज्यों मल्ल को पुकारे त्यों उस नरहस्ती कुमार ने पर्यंकबद्ध होकर उग्र गर्जना करके उस हाथी को निःशंकतापूर्वक पुकारा। क्रोध से सर्व अंगो को घुमाता, सूंढ का संकुचन करता हुआ, कर्ण को निश्चल रखते हुए और ताम्रमुख करता हुआ वह हस्ती कुमार पर दौडा आया। वह नज़दीक आया तो कुमार ने उसे बालक की भाँति छलने के लिए बीच में अपना उत्तरीय वस्त्र डाला। मानो आकाश में से बादल का खण्ड गिरा हो त्यों उस गिरते वस्त्र पर क्रोध से गजेन्द्र दंतशूल से प्रहार करने लगा। फिर मदारी ज्यों सर्प को नचाये त्यों राजकुमार ने अनेक प्रकार की चेष्टा से उस हाथी को लीला से नचाया। उस समय मानो ब्रह्मदत्त का मित्र हो त्यों उस अटवी में अंधकार सहित बरसात ने आकर जल की धाराओं से उस हाथी को उपद्रव करने लगा, जिससे वह गजेन्द्र तत्काल विरस शब्द करके मृग की तरह भागा। ब्रह्मदत्त कुमार पूरा दिन दिग्मूढ होकर उसके पीछे भटकते भटकते एक नदी में गिरा। परंतु मूर्तिमंत आपत्ति समान उस नदी को कुमार सरलता से पार कर गया। उसके तट पर एक पुराना उज्जड नगर उसे नज़र आया। उसमें प्रवेश करते ही कुमार ने एक वंशजालिका देखी। उसमें उत्पात के केतु और चन्द्र समान एक खड्‌ग और म्यान उसे नजर आये। शस्त्र के कौतुकी कुमार ने वे दोनों शस्त्र लेकर खडग से कदली की भाँति उस वंशजालिका को छेद डाला। इतने में वंशजाल के

१. छिपाने योग्य।

अंदर जिसका ओष्ठदल फड़क रहा था ऐसा एक मस्तिष्क स्थलकमल की तरह कटकर पृथ्वी पर गिरा हुआ उसे दिखाई दिया। कुमार ने अधिक जांच-पडताल की तो 'उस वंशजाल में रहे और धूम्रपान करनेवाले किसी निरपराधी मनुष्य को मैंने मार डाला ! मुझे धिक्कार है !' यूं वह अपनी आत्मा की निन्दा करने लगा।

वहां से आगे चलते हुए कुमार ने देवलोक से पृथ्वी पर उतरे नंदनवन समान एक रमणीय उद्यान देखा। उसमें प्रवेश करते ही सात लोक की लक्ष्मी का रहस्य एकत्र हुआ हो ऐसा एक सात भूमिकावाला प्रासाद उसे नज़र आया। ब्रह्मदत्त उस आकाश तक ऊँचे महल पर चढ़ा, तो उसमें हाथ पर वदन रखकर बैठी हुई खेचरी समान एक सुंदर स्त्री उसे नज़र आयी। कुमार उसके समीप आकर विमल वाणी से बोला, 'तू कौन है ? यहां अकेली क्यों रहती है ? और तेरा शोक करने का कारण क्या है ?' वह भयभीत बाला गद्‌गद् स्वर से बोली, 'मेरा वृत्तांत बहुत लम्बा है, इसलिए पहले तुम कहो कि तुम कौन हो ? और यहां क्यों आये हो ?' ब्रह्मदत्त बोला, 'पंचाल देश के ब्रह्मराजा का मैं ब्रह्मदत्त नाम का कुमार हूँ।' उसके ऐसे वचन सुनते ही रमणी हर्ष से खड़ी हो गई। उसके लोचनरुपी अंजलि से गिरते आनंदाश्रु के जल से उसने कुमार के चरणों में पाद्य (चरणोदक) दिया। फिर 'हे कुमार ! समुद्र में डूबते जहाज की तरह इस अशरण बाला के शरणरुप आप यहां आये हैं।' यूं कहती हुई वह बाला रुदन करने लगी। कुमार ने पूछा, 'तू क्यों रो रही है ?' बाला बोली, 'मैं तुम्हारे मामा पुष्पचूल की **पुष्पावती** नाम की पुत्री हूँ, अभी मैं कन्या ही हूँ, मेरे पिता ने संबंध करके आपको ही दी हुई हूँ। एक बार विवाह उन्मुख होकर मैं हंसी की तरह उद्यान की वापिका के तट पर खेलने गई थीं, इतने में जानकी को रावण की तरह **नाट्योन्मत्त** नाम का एक दुष्ट विद्याधर मुझे हरकर यहां ले आया है, वह मेरी दृष्टि सहन नहीं कर पाया, जिससे सूर्पनखा के पुत्र की भाँति विद्यासाधन हेतु यहां से जाकर एक वंशजालिका में धूम्रपान करता हुआ ऊर्ध्व पाँव से रहता है। उस विद्याधर को आज विद्या सिद्ध होनेवाली है। विद्या सिद्ध होने के बाद शक्तिमान बना वह, मुझे ब्याहने का प्रयत्न करेगा।' यह सुनकर कुमार ने उसका वध करने का वृत्तांत कहा। यह सुनकर उस रमणी को हर्ष पर हर्ष हुआ। फिर परस्पर अनुरक्त बने उस दम्पती ने वहां गांधर्व-विवाह किया। 'यह विवाह मंत्ररहित है, फिर भी सकाम दम्पती के लिए क्षत्रियों में श्रेष्ठ माना जाता है।' इसके बाद विचित्र वार्तालाप से उसके साथ क्रीडा करते हुए ब्रह्मदत्त ने वह त्रियामा (रात्रि) एक यामा (प्रहर) की तरह निर्गमन की।

प्रातःकाल में आकाश में हिरनी समान खेचर स्त्रियों का शब्द ब्रह्मदत्त को सुनाई दिया तो ''बिन बादल वृष्टि जैसा यह आकस्मिक शब्द किसका होगा ?'' यूं ब्रह्मदत्त ने पुष्पवती को

पूछा। पुष्पवती संभ्रम से बोली, "हे प्रिय ! आपके शत्रु नाट्योन्मत्त विद्याधर को **खण्डा** और **विशाखा** नाम की दो बहने हैं। उन विद्याधर कुमारियों का यह शब्द है। वे अपने भाई के लिए विवाह की सामग्री हाथ में लेकर यहां आती हैं, लेकिन मनुष्य ने सोचे हुए कार्य को दैव अन्यथा कर देते हैं। हे स्वामिन् ! अब आप क्षणभर के लिए दूर हट जाओ, तो मैं आपके गुण का कीर्तन करके उनका आपके उपर राग-विराग का भाव जान लूं। हे पति ! यदि उनको आप पर राग होगा तो मैं आपको लाल ध्वज दिखाऊंगी और विराग होगा तो श्वेत ध्वज दिखाऊंगी। यदि श्वेत ध्वज दिखाऊं तो आप दूसरी तरफ चले जाना और लाल ध्वज दिखाऊं तो यहां चले आना।" ब्रह्मदत्त बोला, 'हे भीरु ! तुम डरो मत, मैं ब्रह्मराजा का कुमार हूँ, इसलिए वे स्त्रियां तोष या रोष पाकर मुझे क्या कर सकेगी ?' पुष्पवती बोली, 'मैं उस विद्याधरी के लिए नहीं कहती परंतु उनके संबंधी खेचर आपका विरोध न करे इसलिए कहती हूँ।' फिर ब्रह्मदत्त उसके चित्त की अनुमति से एक ओर छिपा रहा। थोड़ी ही देर में पुष्पवती ने श्वेत ध्वज दर्शाया तो कुमार उसे देखकर प्रिया का ऐसा आग्रह होने से धीरे धीरे उस प्रदेश से अन्यत्र चला गया, नहीं तो "ऐसे नरों को भय होता नहीं है।"

वहां से आगे बढ़ते हुए आकाश के समान दुर्ग्राह अरण्य का उल्लंघन करके सायंकाल थका हुआ वह समुद्र समान एक महा सरोवर के समीप आया। फिर मानससरोवर में ऐरावत की तरह ब्रह्मदत्त ने उसमें प्रवेश करके, स्वच्छंदता से स्नान करके उसके अमृत जैसे जल का पान किया। वहां से निकलकर ज्यों भ्रमरी के शब्द से मकड़ी आये त्यों उसके स्नानोचित्त उत्तर पश्चिम (वायव्य) दिशा के तट पर वह आया। वहां वृक्षलता के कुंज में साक्षात् वन की अधिदेवता हो ऐसी एक सुन्दरी पुष्प चुनती हुई उसे नजर आयी। उसे देखकर कुमार सोचने लगा कि 'यूं लगता है कि जन्म से लेकर रुप रचने का अभ्यास करते करते ब्रह्मा को आखिर ऐसा रुप रचने का कौशल्य प्राप्त हुआ होगा।' कुमार यूं सोच ही रहा था कि दासी के साथ बोलती व डोलर के पुष्प जैसे कटाक्ष से मानो कुमार के कण्ठ में माला डाल रही हो त्यों वह कन्या कुमार को देखते देखते दूसरी तरफ चली। उसे देखते देखते कुमार भी दूसरी ओर चला। इतने में वस्त्र, आभूषण और तांबूल लेकर एक दासी कुमार के पास आयी। उसने कुमार को वस्त्रादिक देकर कहा, 'भद्र ! यह जो सुन्दर कन्या आपको नजर आयी है, उसने सर्वार्थसिद्ध के कोल की तरह यह सर्व वस्त्रादिक आपके लिए भिजवाएं हैं और उसने मुझे आज्ञा दी है कि इस कुमार को पिता के सचिव के घर लेजा, क्योंकि वे सर्व योग्यता जानते हैं।' फिर ब्रह्मदत्त उस दासी के साथ **नागदेव** सचिव के घर गया। उसके सद्गुणों से आकर्षित हुआ हो त्यों सचिव उसे देखकर सामने खडा हुआ, तो 'हे सचिव जी ! **श्रीकांता** राजपुत्री ने इस महाभाग को भेजा है।' ऐसा

संदेशा कहकर दासी चली गई। सचिव ने स्वामी समान उपासना किए हुए ब्रह्मदत्त की रात्रि क्षण की तरह निर्गमन हो गई। रात्रि निर्गमन होने के बाद सचिव उसे राजकुल में ले गया। राजा ने कुमार को अपनी पुत्री दी। 'चतुरजन पूरा वृत्तांत आकृति पर से ही जान लेता है।' पाणिग्रहण समय पर उसके हाथ को अपने हाथ से दबाता हुआ कुमार मानो सर्व ओर से अनुराग को संक्रमित करता हो वैसे उस कुमारी से ब्याहा।

एक बार ब्रह्मदत्त ने एकांत में क्रीडा करते हुए उस राजकुमारी को पूछा, 'मेरा कुल जाने बिना ही तेरे पिता ने तेरे साथ मेरा ब्याह क्यों करवाया ?' दांत के किरणों से होठ उज्ज्वल करती श्रीकांता बोली, ''हे स्वामिन् ! वसंतपुर नगर में **शबरसेन** नाम का राजा था। मेरे पिता उनके पुत्र हैं। मेरे पितामह की मृत्यु के बाद राज्य पर मेरे पिता आये, परंतु क्रूर गोत्रियों ने उनको बड़ा परेशान किया, जिससे वे बलवाहन लेकर इस पल्ली में आश्रय करके रहे हैं। यहां रहते हुए बरु के वृक्ष को जल के वेग की भाँति उन्होंने भील लोगों को झुका दिया है, और गाँव वगैरह का घात करके अर्थात् गाँव लूंटकर या डकैती डालकर मेरे पिता अपने परिवार का पोषण करते हैं। चार उपायों के बाद आखिर में ज्यों लक्ष्मी प्राप्त होती है त्यों चार पुत्र होने के बाद मैं उनकी अति लाड़ली पुत्री बनी हूँ। मुझे युवा बनी देखकर मेरे पिता ने मुझे कहा कि 'जो कोई राजा तेरी अपेक्षा करते हो, उनको तेरी नजर से देख लेना, और उसमें से जो तुझे योग्य लगे उसकी खबर मुझे दे देना।' पिता के ऐसे वचन से मैं चक्रवाकी की तरह उस सरोवर पर रहकर सर्व पांथजनों को देखती थी, इतने में जहां मनोरथ की भी गति नहीं होती ऐसे और अति दुर्लभ ऐसे आप मेरे भाग्य की वृद्धि से यहां आ चढ़े और मेरा पाणिग्रहण करके मुझे कृतार्थ किया।''

एक बार वह पल्लीपति कोई गाँव मारने चला, तो ब्रह्मदत्तकुमार भी उनके साथ गया, क्योंकि ''क्षत्रियों का ऐसा क्रम है।'' फिर भील गाँव लूंटने लगे। इतने में सचिवपुत्र वरधनु सरोवर तट पर आकर हंस की तरह कुमार के चरणकमल में गिरा। फिर कुमार के गले लगकर मुक्तकंठ से रो पड़ा, क्योंकि ''इष्ट जन के दर्शन समय पर पूर्व दुःख भी ताजे हो जाते हैं।'' कुमार ने अमृत के गंडूष (पिंड) जैसे कोमल आलाप से उसे आश्वासन देकर पूछा, तो सचिवकुमार अपना वृत्तांत कहने लगा, ''हे नाथ ! आपको वटवृक्ष नीचे छोड़कर मैं जल लेने गया था, वहां आगे चलते हुए एक अमृतकुंड जैसा बड़ा सरोवर मैंने देखा। उसमें से आपके लिए कमलपत्र में जल लेकर मैं वापस आ रहा था, इतने में मानो यमदूत हो ऐसे अनेक कवचधारी सुभटों ने मुझे अटकाया। वे मुझे पूछने लगे कि 'हे वरधनु ! बता, ब्रह्मदत्त कहां हैं ?' मैंने कहा, 'मैं नहीं जानता।' तो उन्होंने चोर की भाँति मुझे मारना शुरू किया। इससे मैंने

कहा, 'ब्रह्मदत्त को कोई बाघ खा गया है।' वे बोले, 'वह स्थान दिखा।' तो इधर-उधर भटकते हुए मैं तुम्हारे दर्शन-मार्ग में आया। मैंने तुम्हे भाग जाने का इशारा किया। फिर किसी तापस ने मुझे गुटिका दी ती, वह मैंने मुख में डाली। उस गुटिका के प्रभाव से मैं संज्ञारहित होकर गिर पडा, तो 'यह तो मर गया' यूं मानकर वे मुझे छोडकर चले गये। उनके जाने के बहुत देर बाद मैंने वह गुटिका मुख में से निकाली। फिर नष्ट हुए अर्थ की भाँति आपको ढूंढने के लिए भटकते भटकते मैं एक गांव में आया। वहां कोई उत्तम तापस मुझे नजर आये। मानो तप के भण्डार हो ऐसे उस तापस को मैंने प्रणाम किए। मुझे देखकर उस तापस ने कहा, 'वरधनु ! मैं तेरे पिता धनु का मित्र हूँ। हे महाभाग ! तेरे साथ भागा हुआ ब्रह्मदत्त कहां है ?' मैंने कहा, 'पूरा विश्व देखा, परंतु उसका पता नही हैं।' मेरे ऐसे दुष्कथारुपी धुंए से जिनका मुख म्लान हुआ है ऐसे उस तापस ने कहा, 'जब वह लाक्षागृह दग्ध हुआ, तब प्रातःकाल में दीर्घराजा ने देखा तो उसमें से एक ही जला हुआ शब निकला, तीन शब नहीं निकले। अंदर जांच करने पर सुरंग नजर आयी और उसके छोर पर अश्व के कदम चिह्न दिखे, 'तुम दोनों धनुसचिव की बुद्धि से ही भाग गये हो' ऐसा मानकर दीर्घराजा धनुसचिव पर बहुत गुस्से हो गया। फिर तुम दोनों को बांध कर लाने के लिए दीर्घराजा ने प्रत्येक दिशा में सूर्य के तेज समान अस्खलित गतिवाले घुडसवारों को भेजने की आज्ञा दी। धनुसचिव तुरंत ही वहां से भाग गये, और तुम्हारी माता को दीर्घराजा ने नरक समान चाण्डाल के पाड़े में डाला।' फोड़े पर फुन्सी हुई हो त्यों तापस से यह वार्त्ता सुनकर आर्त्त बना मैं दुःख पर दुःख पाकर कांपिल्य नगर गया। कपट से एक कापालिक का वेष धरकर चाण्डाल के पाड़े में निरंतर घर घर घूमने लगा, बैठने लगा, और देखने लगा। वे लोग मुझे वहां भटकने का कारण पूछते तब मैं कहता, 'मैं मातंगी (चांडाली) विद्या साध रहा हूँ, इसका ऐसा कल्प है।' वहां घूमते घूमते वहां के रक्षक के साथ मेरी विश्वासपात्र मैत्री हो गयी। 'माया से क्या साध्य नहीं होता ?'

एक दिन मैंने उस रक्षक द्वारा मेरी माता को कहलवाया, 'तुम्हारे पुत्र का मित्र कौंडिय महाव्रतधारी बना है, वह आपको अभिवंदन करता है।' दूसरे दिन मैं स्वयं माता के पास गया, उनको उस गुटिका सहित बिजौरे का फल दिया। उस फल को खाकर मेरी माता संज्ञारहित हो गयी तो कोटवाल ने उसको मरा हुआ मानकर राजा को खबर दी। राजा ने उसके शरीर-संस्कार के लिए अपने सेवकों को आज्ञा दी। उस समय उनके पास जाकर मैंने कहा, 'अरे राजपुरुषों ! यदि इस समय इस स्त्री को मृतसंस्कार करोगे तो राजा पर बड़ा अनर्थ होगा।' यह सुनकर वे चले गये। फिर मैंने उस पुररक्षक को कहा, 'यदि तू सहाय दे तो सर्वलक्षणयुक्त इस स्त्री के शब द्वारा मैं एक मंत्र साधूं।' पुररक्षक ने वैसा करने के लिए संमति दी तो उसके

साथ सायंकाल में माता को दूर स्मशान में ले गया। वहां मायाकपट से शुद्ध स्थंडिल पर मैंने मण्डल वगैरह बनाए। फिर नगरदेवियों को बलिदान देने हेतु चीजे लेने के लिए मैंने उस आरक्षक को भेजा। उसके जाने के बाद मैंने मेरी माता को दूसरी गुटिका दी, तो तत्काल निद्रा का छेद हुआ हो त्यों वह उबासी खाते हुई सचेत हुई। प्रथम तो वह रुदन करने लगी, तो मैंने मेरी पहचान देकर उसे शांत किया। फिर मैं कच्छग्राम में रहते मेरे पिता के मित्र **देवशर्मा** के घर उनको ले गया। वहां से निकलकर अनेक स्थानक पर परिभ्रमण करते हुए और आपको खोजते खोजते यहां आया। सद्भाग्य से मेरे पुण्य के राशि जैसे आप यहां मुझे नज़र आये।'' इस प्रकार अपना सर्व वृत्तांत कहकर फिर वरधनु ने पूछा, 'हे बंधु ! मुझसे अलग होने के बाद आप कहां गये और किस प्रकार रहे यह बताये।' तो ब्रह्मदत्त ने अपना सर्व वृत्तांत उसे निवेदन किया। दोनों मित्र इस प्रकार बात कर रहे थे कि किसीने आकर उनको कहा, 'इस गाँव में दीर्घराजा के सुभट आये हैं। वे तुम दोनों के रूप समान आकृतियां दिखाकर गाँव के लोगों को पूछते हैं कि ऐसी आकृतिवाले कोई दो पुरुष यहां आये हैं ? यह वाणी सुनकर मैं यहां आया, तो आप दोनों को वैसी ही आकृतिवाले मैंने आपको देखा, तो अब आपको जैसा योग्य लगे वैसा करें।' इस प्रकार कहकर वह पुरुष चला गया। फिर ब्रह्मदत्त और सचिवपुत्र दोनों हाथी के बच्चे की तरह तत्काल अरण्य में भाग गये। क्रमशः वे कौशांबीपुरी समीप आये। उस नगरी के उद्यान में उस नगर में रहनेवाले **सागरदत्त** सेठ के और **बुद्धिल** के मुर्गो की लड़ाई हो रही थी, उसमें हार जीत पर एक लक्ष्य द्रव्य की होड़ लगायी गयी थी। यह उन दोनों कुमारों को नजर आया। दोनों मुर्गे खींचने के सेंडसे के समान तीक्ष्ण नाखूनों और चोंचों से उछल उछल कर युद्ध करते थे। उसमें सागरदत्त का मुर्गा जातिवान था, बुद्धिल का मुर्गा जातिवान न था। थोड़ी देर युद्ध होने के बाद ब्रह्मदत्त ने बुद्धिल के मुर्गे के पैरों में यमराज की दूती जैसी लोहे की तीक्ष्ण सुइयाँ देखी। बुद्धिल को यह बात मालूम पड़ते ही उसने ब्रह्मदत्त को गुप्त रुप से अर्धलाख द्रव्य देना चाहा। फिर भी वह न स्वीकारते हुए ब्रह्मदत्त ने पूरा वृत्तांत लोगों को बताया। फिर ब्रह्मदत्त ने लोहे की वे सूइयां खींच निकालकर बुद्धिल के मुर्गे को सागरश्रेष्ठी के मुर्गे के सामने दुबारा युद्ध के लिए भिड़ाया, तो सुई बिना के बुद्धिल के मुर्गे को सागरसेठ के मुर्गे ने क्षणभर में भग्न कर दिया। ''कपटी की जय कब तक होगी ?'' इस प्रकार हुई विजय से हर्ष पाया सागरदत्त विजय दिलाने से मित्ररूप बन पड़े ब्रह्मदत्त व सचिवपुत्र को अपने घर ले गया। वहां वे अपने घर की तरह बहुत दिन तक रहे।

एक बार बुद्धिल के सेवक ने वरधनु के पास आकर कुछ कहा। उसके जाने के बाद वरधनु ने कुमार को कहा, 'देखों ! बुद्धिल ने जो अर्धलाख द्रव्य मुझे देने के लिए कहा था वह आज

भेजा है।' ऐसा कहकर निर्मल, स्थूल व गोलाकार मोती से शुक्र के तारामण्डल का अनुसरण करता हुआ एक हार उसने दिखाया। उस हार के साथ अपने नाम से अंकित एक लेख ब्रह्मदत्त को नज़र आया। उस समय मूर्तिमंत संदेश हो ऐसी **वत्सा** नाम की एक तापसी भी वहां आयी। वे दोनों कुमार के मस्तिष्क पर आशीर्वाद के साथ अक्षत डालकर, वरधनु को एक ओर ले जाकर कुछ वार्त्ता कहकर चली गई। फिर सचिवपुत्र ने ब्रह्मदत्त को कहा, ''इस हार के साथ जो लेख है, उसका प्रत्युत्तर देने के लिए वह आयी थी। जब उसने कहा कि हार के साथ ब्रह्मदत्त का लेख है। मैंने पूछा कि 'ब्रह्मदत्त कौन ?' तो वह बोली 'इस नगर में एक सेठ की **रत्नवती** नाम की पुत्री है, मानो रति ही रुपांतर होकर कन्या बनकर आयी हो ऐसी रुपमती है। उस दिन सागरदत्त व बुद्धिल के मुर्गे का युद्ध हो रहा था, तब उसने इन ब्रह्मदत्त को देखा था। तब से कामार्त्त होकर तडपती वह बाला शांति नहीं पा रही है, और 'ब्रह्मदत्त मेरी शरण हो' यूं वह हंमेशा बोला करती है। एक बार उसने स्वयं यह लेख लिखकर हार के साथ मुझे दिया और कहा कि 'यह ब्रह्मदत्त को भिजवाए।' फिर मैंने दासी के साथ यह लेख भेजा, और इसके समाचार देकर उसे आश्वासन दिया।'' इस प्रकार उसकी बात सुनने के बाद मैंने भी तुम्हारे नाम का प्रतिलेख देकर उसको बिदा की है।'' वरधनु के ये वचन सुनकर ब्रह्मदत्त दुर्वार कामावेग से पीडित हुआ और मध्याह्न के सूर्यकिरणों से तप्त हाथी की भाँति वह सुखपूर्वक न रह सका।

इस अरसे में कौशांबी नगरी के स्वामी के पास दीर्घराजा ने भेजे हुए सुभट नष्ट बने शल्य की तरह ब्रह्मदत्त और वरधनु को खोजने के लिए आये। कौशांबी राजा की आज्ञा से यहां उन दोनों की खोज होने लगी। यह मालूम पड़ते ही उनको निधान की भाँति सागरदत्त ने तहखाने में छिपा दिया, वहां से उनकी इच्छा बाहर जाने की हुई तो रात्रि में रथ में बिठाकर सागरदत्त उन्हे कुछ दूर ले गया। फिर स्वयं वहां से वापस मुड़ा। दोनों आगे चले। उस नंदनवन में देवी जैसी एक सुन्दर स्त्री उस नगरी के उद्यान में देखी। उन दोनों को देखकर 'आपको आने में इतनी देर क्यो लगी ?' ऐसा आदर से पूछा। वे विस्मय पाकर बोले, 'भद्रे ! हम कौन हैं ? और तू हमें कैसे पहचानती है ?' वह बोली, ''इस नगरी में **धनप्रभव नाम का** कुबेर के बंधु जैसा धनाढ्य श्रेष्ठी है। उसके आठ पुत्र हुए। फिर बुद्धि के आठ गुण उपरांत विवेकलक्ष्मी की प्राप्ति हो त्यों मैं एक पुत्री हुई हूँ। उत्कट युवावस्था आने पर मैंने वरप्राप्ति हेतु इस उद्यान में एक यक्ष का भलीभाँति आराधन किया, क्योंकि 'स्त्रियों को पतिप्राप्ति के अलावा अन्य कोई मनोरथ नहीं होता।' भक्ति से संतुष्ट बने यक्ष ने मुझे वरदान दिया, 'ब्रह्मदत्त नाम का चक्रवर्ती तेरा पति बनेगा। जो सागर और बुद्धिल श्रेष्ठी के मुर्गो को बराबर जोड़नेवाला, श्रीवत्स के चिह्नवाला और मित्र के साथ रहनेवाला है वहीं ब्रह्मदत्त है उसे तू पहचान लेना। और मेरे

मंदिर में रहते हुए ही तुझे ब्रह्मदत्त का मिलाप होगा।' यक्ष के ऐसे वचनानुसार आप यहां मिले हो, इसलिए हे सुन्दर ! ब्रह्मदत्त आप ही हो, इसलिए यहां आओ और जल की बाढ़ समान आपके संग से चिरकाल के विरहाग्नि से पीडित मुझको शांत कीजिए।'' ब्रह्मदत्त ने वैसा करना स्वीकार किया। फिर उसके अनुराग की भाँति उसे भी रथ में बिठाया। आगे चलते हुए, 'यहां से कहाँ जायेंगे ?' यूं उसको प्रीतिपूर्वक पूछा, तो वह बोली, 'यहां मगधपुर में **धनावह** नाम के मेरे चाचा रहते हैं, वे हमारा बड़ा सत्कार करेंगे, इसलिए उस ओर चलिए।' रत्नवती की ऐसी वाणी से ब्रह्मदत्त ने सचिवपुत्र को सारथि बनाकर उस ओर घोडे हँकवाए।

क्षणभर के बाद कौशांबी का प्रदेश पार करके ब्रह्मदेव वगैरह मानो यमराज का स्थान हो ऐसी भयंकर अटवी में आ पहुँचे। वहां **सुकंटक** व **कंटक** नाम के दो चोरनायक थे। उन्होंने हाथी ज्यों श्वान को रोके त्यों ब्रह्मदत्त को रोका और कालरात्रि के मानो दो पुत्र हो ऐस उन चोरनायकों ने आकाश में मण्डप रचा हो त्यों बाणो से उनको आच्छादित कर दिया। उस समय मेघ ज्यों जलधारा से दावानल को रोके त्यों धनुष्य धारण किए हुए ब्रह्मदत्तकुमार ने गर्जना करके बाणो से उन चोरों की सेना को रोका। कुमार के बाणों की बारिश से वे दोनों चोरसेनानायक सैन्य लेकर भाग गये। क्योंकि ''सिंह प्रहार करे तब हिरन कैसे टिक पाये ?'' फिर सचिव पुत्र ने कुमार को कहा, 'स्वामिन् ! युद्ध करके थक गये होगे तो दो घड़ी इस रथ में ही सो जाइए।' तो युवा हाथी ज्यों हाथिन के साथ पर्वत के नितंब पर सो जाय त्यों ब्रह्मदत्त रत्नवती के साथ रथ में सो गया। क्रमशः रात्रि प्रभातरुप बनी तब वे एक नदी के समीप आये। वहां घोड़े श्रांत होने से खड़े रहे और कुमार भी जाग्रत हुआ। जागकर देखा तो रथ के अग्रभाग में सचिवकुमार को न देखा तो 'जल लेने गया होगा' ऐसा सोचकर उसने बार बार आवाजे दी, परंतु उसका प्रत्युत्तर न मिला और रथ का अग्र भाग पंकिल देखा तो 'अरे ! मैं मर गया' यूं विलाप करते हुए वह रथ में मूर्च्छा खाकर गिर पड़ा। थोड़ी देर के बाद संज्ञा पाकर बोला, 'अरे ! मित्र वरधनु ! तू कहां गया ?' इस प्रकार आक्रंद कर रहे ब्रह्मदत्त को रत्नवती समझाने लगी, 'हे नाथ ! आपका मित्र वरधनु मृत्यु नहीं पाया है ऐसा निश्चय होता है, इसलिए वाणीमात्र से भी उनका अमंगल करना उचित नहीं है। वे अवश्य आपके कार्य के लिए ही किसी स्थानक पर गये होंगे, क्योंकि उत्तम सचिव स्वामी को पूछे बिना भी स्वामी के कार्य के लिए जाते हैं। आपके पर की भक्ति से ही रक्षण कराये हुए वे जरुर वापस लौटेंगे, क्योंकि 'सेवकों को स्वामीभक्ति का प्रभाव ही कवचरुप बनता है।' और जब हमारे स्थानक पर पहुँचेगे, तब आदमी भेजकर उनकी खोज करायेंगे। अब इस यमराज जैसे वन में अधिक रुकना योग्य नहीं है।'' रत्नवती के ऐसे वचन से ब्रह्मदत्त ने अश्व हांके। कुछ समय में ही मगध देश की भूमिसीमा

के गाँव में आ गये। ''अश्व व पवन को क्या दूर है ?'' उस गाँव का नायक सभा करके बैठा था। ब्रह्मदत्त को देखते ही वह अपने घर ले गया। 'महत्पुरुष अनजाने हो तो भी मात्र मूर्ति के दर्शन से ही पूजे जाते हैं।' ग्रामाधिप ने पूछा, 'आप शोकग्रस्त क्यों दिखते हो ?' ब्रह्मदत्त ने कहा, 'मेरा एक मित्र चोर लोगों के साथ युद्ध करते हुए कहीं चला गया है।' ग्रामाधिप ने कहा, 'सीता की खोज ज्यो हनुमान कर आये थे त्यों मैं आपके मित्र को खोज लाऊंगा।' इस प्रकार कहकर वह ग्रामाधीश उस महाटवी में सर्वत्र घूम आया। फिर उसने वापस आकर कहा कि ''पूरे वन में कोई भी मनुष्य नज़र न आया। मात्र प्रहार करने से गिरा हुआ एक बाण मुझे हाथ आया है।'' उसके ऐसे वचन सुनकर 'जरुर वरधनु मारा गया' यूं चिंता करते हुए ब्रह्मदत्त को शोक समान अंधकार युक्त रात्रि प्राप्त हुई। रात्रि के चौथे प्रहर में वहां चोर आये, कामदेव के प्रवासी ज्यों स्वस्थान पर चले जाय त्यों कुमार के बल से वे भग्न होकर भाग गये।

दूसरे दिन उस ग्रामाधीश को लेकर कुमार वहां से क्रमशः राजगृहीपुरी आये, वहां रत्नवती को नगर के बाहर तापस के आश्रम में छोड़कर उसने नगरप्रवेश किया। नगर में घुसते ही एक हवेली के झरोखे में बैठी साक्षात् रति और प्रीति हो ऐसी दो नवयुवा स्त्रियां उसे नज़र आयी। वे स्त्रियां कुमार को देखकर तुरंत ही बोली, ''अरे भद्र ! उस समय प्रेमी जन को छोड़कर आप चले गये तो क्या आपको योग्य लगता है ?'' ब्रह्मदत्त बोला, 'मेरा प्रेमीजन कौन ? मैंने उसका कब त्याग किया ? मैं कौन हूँ ? और आप दोनो भी कौन हो ?' वह बोली, 'हे नाथ ! प्रसन्न हो, यहां पधारिए और विश्राम लीजिए।' उनके ऐसे मधुर आलाप से ब्रह्मदत्त मन की भाँति उसके घर में गया। वहां ब्रह्मदत्त के थोडी देर बैठने के बाद उसने स्नान व भोजन कराया। फिर उन्होंने अपनी सत्य कथा कहना शरू किया -

''विद्याधरों का निवासस्थान, सुवर्णमय शिलाओं से निर्मल और मानो पृथ्वी का तिलक हो ऐसा वैताढ्य नाम का पर्वत है। उसकी दक्षिण श्रेणी में **शिवमंदिर** नाम के नगर में अलकापुरी में कुबेर की तरह **ज्वलनशिख** नाम का राजा है। मेघ को विद्युत की तरह उस विद्याधरपति राजा को कांति से दिशाओं के मुख को प्रकाशित करनेवाली **विद्युच्छिखा** नाम की प्रिया है। उनको **नाट्योन्मत्त** नाम का पुत्र और उससे छोटी **खण्डा** और **विशाखा** नाम की हम दो प्राणप्रिय पुत्रियां हैं। एक बार अपने महल में हमारे पिता उनके **अग्निशिख** नाम के मित्र के साथ वार्तालाप कर रहे थे, इतने में आकाश में अष्टापद गिरि पर जाते हुए देवता उनको नज़र आये, तो हमें और उनके मित्र अग्निशिख को लेकर वे तीर्थयात्रा करने चले। 'इष्टजन को धर्मकार्य में अवश्य जोड़ना।' हम अष्टापद गिरि पर पहुँचे, तो वहां मणिनिर्मित, अपने अपने मान व वर्ण सहित चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं देखी। फिर यथाविधि स्नान, विलेपन और पूजा करके तीन

प्रदक्षिणापूर्वक और समाहित (विधि) पूर्वक उनकी वन्दना की। फिर हम प्रासाद मे से निकलकर आगे चले, तो रक्त अशोकवृक्ष के नीचे मूर्तिमंत तप व शम हो वैसे दो चारण श्रमण मुनि को बैठा हुआ देखा। उनको नमस्कार करके उनके आगे बैठकर अज्ञानरुपी अंधकार को छेदने में कौमुदी (चन्द्रिका) जैसी धर्मदेशना हमने श्रद्धापूर्वक सुनी। देशना के अंत में अग्निशिखा को पूछा कि 'इन दो कन्याओं का पति कौन होगा ?' वे बोले, 'जो आपके भाई को मार डालेगा, वही आपका पति होगा।' मुनि की ऐसी वाणी से, हिम से चन्द्र की तरह हमारे पिता ग्लानि पाए, तो हमने वैराग्यगर्भ वाणी में कहा, 'हे तात ! आपने अभी अभी देशना में संसार की असारता के बारे में सुना है, तो अब खेदरुपी शिकारियों से किसलिए पराभव पाते हो ? फिर हमें भी ऐसे विषयसुख की जरुरत नहीं है।' यूं कहकर हम वहां से हमारे सहोदर बंधु की रक्षा में निरंतर तत्पर रही।

एक बार हमारे भाई ने घूमते घूमते तुम्हारे मामा पुष्पचूल की कन्या पुष्पवती को देखकर उसके अद्‌भुत लावण्यवाले रुप से उसका मन मोह पा गया, जिससे उस दुर्बुद्धि ने उसका हरण किया। 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी।' पुष्पवती का हरण कर लाने पर भी वह उसकी दृष्टि सहन नहीं कर पाया तो स्वयं विद्या साधने गया। इसके बाद की वार्ता तो आप स्वयं ही वस्तुतः जानते हो। फिर पुष्पवती ने हमारे पास आकर हमारे उस भाई की मृत्यु के समाचार हमें कहे, और धर्माक्षर द्वारा उसने हमारे शोक को टाल दिया। फिर कहा कि तुम्हारे बंधु को हणनेवाला ब्रह्मदत्त यहां आ रहा है तो वही तुम दोनों का भर्त्तार (पति) हो, क्योंकि 'मुनि की वाणी अन्यथा होती ही नहीं।' हमने उस बात का स्वीकार किया। तो पुष्पवती ने आपको आने की संज्ञा देने के लिए रभसवृत्ति (गलती) से भूलकर रक्त के बदले श्वेत ध्वज हिलाया, जिससे आप हमें छोड़कर चले गये। हमारे विपरीत भाग्य योग से आप आये नहीं और सर्वत्र आपको ढूंढने के लिए भटकते हुए हमने किसी भी स्थान पर आपको देखा नहीं, जिससे निर्वेद पाकर हम यहां आकर रहीं है। हे स्वामिन् आज हमारे पुण्य से आप यहां आये हो। पहले ही हम पुष्पवती के कहने से आपको वर चूकी हैं, हमारी गति आप एक ही हो, इसलिए हमारा पाणिग्रहण कीजिए।'' उनके ऐसे प्रेमवचन सुनकर ब्रह्मदत्त गांधर्व विवाह से उनको ब्याहा। ''नदियों का पात्र ज्यों समुद्र है त्यों स्त्रियों का पात्र भोगी पुरुष है।''

गंगा और पार्वती के साथ महादेव की तरह उन दोनों स्त्रियों के साथ क्रीडा करते हुए ब्रह्मदत्त ने रात्रि वहां आनन्द में बीताई। फिर उन दोनों को कहा, 'जब तक मुझे राज्यलाभ न हो जाय तब तक तुम्हें पुष्पवती के साथ रहना होगा। यूं कहकर उन स्त्रियों को उनके पास जाने की आज्ञा दी। उन्होंने वैसा करना कबूल किया, जिससे तत्काल वह लोक, मंदिर वगैरह

सब गंधर्वनगर की तरह अदृश्य हो गया। फिर ब्रह्मदत्त तापस के आश्रम मे रखी हुई रत्नवती को खोजने गया, परंतु वहां वह नजर नही आई, परंतु वहां एक सुन्दर आकृतिवाला पुरुष था, उसको पूछा कि 'हे महाभाग ! यहां कल दिव्य वस्त्रधारी व रत्नाभूषण से शोभित ऐसी कोई स्त्री आपने देखी हैं ?' उसने कहा, ''कल 'हे नाथ ! हे नाथ !' यूं पुकार करके रुदन करती हुई एक स्त्री मुझे नज़र आयी थी। हमारी स्त्रियों ने उसे पहचाना तो यहां से ले जाकर उसे उसके चाचा को सौंप दी है।'' फिर उसने पूछा, 'क्या आप उसके पति लगते हो ?' ब्रह्मदत्त ने हाँ कहा। वह पुरुष ब्रह्मदत्त को आग्रहपूर्वक रत्नवती के चाचा के घर ले गया। रत्नवती के चाचा ने बड़ी समृद्धि से ब्रह्मदत्त और रत्नवती का विवाह-महोत्सव किया। 'धनवान पुरुषों को सब कार्य सरल हैं।' वहां ब्रह्मदत्त उसके साथ विषयसुख भोगने लगा।

एक बार ब्रह्मदत्त ने अपने मित्र वरधनु का उत्तरकार्य करना आरंभ किया। उसमें साक्षात् उसके भूत जैसे ब्राह्मण भोजन करने आये। उस समय अचानक ब्राह्मण का वेष लेकर वरधनु भी वहां आ पहुँचा, और ब्रह्मदत्त को इस प्रकार कहने लगा, 'यदि मुझे भोजन दोगे तो वह साक्षात् वरधनु को ही मिलेगा।' श्रवण को अमृत समान उसकी वाणी सुनकर ब्रह्मदत्त ने तत्काल उसके सामने देखा, तो उसको तुरंत पहचान लिया। मानो दो शरीर को एक कर देता हो वैसा उसे आलिंगन किया और हर्षाश्रु से नहलाते हुए वह उसे अंतःगृह में ले गया। फिर कुमार ने उसे उसका वृत्तांत पूछा, तो वह अपना वृत्तांत कहने लगा, ''हे मित्र ! आपके सो जाने बाद दीर्घराजा के सुभटों की तरह चोर लोगों ने आकर मुझे घेर लिया। वृक्ष के अन्दर रहे एक चोर ने मुझे बाण मारा, जिससे मैं पृथ्वी पर गिर गया, और लताओं के अंदर ढंक गया। मुझे वहां देखा नहीं तो आये हुए सब चोर चले गये। फिर जल में मत्स्य की भाँति वृक्षों में छिप छिपकर मैं क्रमशः एक गांव में आया। उस गाँव के नायक से आपके समाचार पाकर चलते चलते मैं यहां आया। दैवयोग से मेघ को मयूर की तरह मैंने आपको यहां देखा।'' फिर ब्रह्मदत्त ने कहा, 'हे मित्र ! नपुंसक की तरह पुरुषार्थ किये बिना इस तरह मुझे कब तक भटकते रहना होगा ?'

उस समय कामदेव के साम्राज्यभूत व मधु की तरह युवाओं को मद देनेवाला वसंतोत्सव प्रकट हुआ। इतने में एक दिन मानो काल का अनुज बंधु हो ऐसा राजा का एक उन्मत्त हाथी खूंटा और जंजीर तोड़कर सर्व लोगों को त्रस्त करता हुआ भागा। उस हाथी ने नितंब के बोझ से स्खलित गति से चलती एक कन्या को कमलिनी की तरह खींचकर अपनी सूंढ में पकडी। शरणार्थी ऐसी वह कन्या दीन नेत्रों से पुकार करने लगी। वह सुनकर सर्वत्र दुःखबीज के अक्षर जैसा कुहराम मच गया। उस समय 'अरे मांतंग ! तू सचमुच मातंग (चंडाल) है, नहीं तो इस स्त्री को पकडते हुए लज्जा क्यों नहीं पाता ?' इस प्रकार कहते हुए ब्रह्मदत्त उसके पास गया।

तो हाथी उस कन्या को छोड़कर ब्रह्मदत्त के सामने दौड़ा। ब्रह्मदत्त एकदम उछलकर उसकी दंतरुपी सीढ़ी पर पैर रखकर लीलामात्र में उसके पर चढ़ा और आसन जमाकर बैठ गया। फिर वाक्य से, पैर से, अंकुश से और विज्ञान से कुमार ने उस हाथी को ज्यों योगी योग द्वारा मन को वश करे त्यों वश कर दिया। लोगों ने 'अच्छा किया, अच्छा किया' यूं कहते हुए जयनाद किया। फिर कुमार ने हाथिन की तरह उस हाथी को उसके खूंटे के पास ले जाकर बांध दिया। उस समय वहाँ राजा आया। उस कुमार को देखकर बड़ा विस्मय पाया, क्योंकि उसकी आकृति और पराक्रम किसको चकित न करनेवाले थे ? फिर राजा ने सोचा, 'यह पुरुष कौन है ? क्या गुप्त रुप से सूर्य या इन्द्र तो नहीं आये हैं ?' इस प्रकार विचार कर रहे थे कि रत्नवती के चाचा ने उनके पास जाकर पूरी हकीकत कह सुनायी तो अपनी आत्मा को पवित्र मानकर राजा ने ज्यों दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्याएं चन्द्र को दी थी त्यों उत्सवपूर्वक अपनी कन्याएं ब्रह्मदत्त को दी। ब्रह्मदत्त उनको ब्याहकर सुखपूर्वक वहां रहने लगा।

एक बार एक वृद्ध स्त्री ने कुमार के पास जाकर सिर पर वस्त्र का छोर फिराकर कहा, "हे वत्स ! इस नगरी में लक्ष्मी द्वारा दूसरे कुबेर भंडारी जैसा **वैश्रवण** नाम का एक धनाढ्य श्रेष्ठी रहता है, उसे समुद्र में लक्ष्मी समान **श्रीमती** नाम की एक पुत्री है। राहु से चन्द्रकला की तरह आपने राजकन्या को उन्मत हाथी से छुडवाया है तब से वह बाला आपका अभिलाष करते हुए तडप ही है। राजकन्या को ज्यों आपने हाथी से बचाया है त्यों उस बाला को कामदेव से भी बचाइए और जिस प्रकार उसका हृदय ग्रहा है उस तरह उसका पाणिग्रहण भी कीजिए।" इसके बाद कुमार विविध मंगलाचार से उसे ब्याहा और मंत्रीपुत्र वरधनु भी सुबुद्धि मंत्री की कन्या **नंदा** से ब्याहा। वहां रहकर वे दोनों वीर शक्ति से पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुए।

कुछ दिन के बाद वे वाराणसी नगरी में आये। ब्रह्मदत्त को आया सुनकर वाराणसी का राजा **कटक** ब्रह्मा की तरह गौरवता से सामने आकर उनको अपने घर ले गया। और अपनी **कटकवती** नाम की कन्या तथा मूर्तिमंत जयलक्ष्मी समान चतुरंग सेना ब्रह्मदत्त को दी। उनको वहां आया जानकर चंपानगरी का राजा पुष्पचूल, हस्तीनापुर का राजा कणेरुदत्त, धनुसचिव और अन्य भगदत्त वगैरह राजा भी वहां आये। फिर भरतचक्री ने ज्यों सुषेण को सेनापति बनाया था त्यों वरधनु को सेनापति बनाकर ब्रह्मदत्तकुमार ने दीर्घराजा को दीर्घ पंथ (मृत्यु मार्ग) पर भेजने के लिए प्रयाण किया। उस समय दीर्घराजा के **शंख** नाम के दूत ने आकर कटक राजा को कहा, "दीर्घराजा के साथ आपको बाल्य मैत्री है, उसे छोडना योग्य नहीं है।" यह सुनकर कटक राजा बोला, 'हे दूत ! पहले ब्रह्मराजा सहित हम पांच सहोदर समान मित्र थे। ब्रह्मराजा स्वर्ग सिधार गये तब उसका पुत्र बालक होने से हमने उसका पूरा राज्य रक्षण करने

हेतु दीर्घराजा को सौंपा, तो वह अपना ही राज्य हो त्यों उसे भोगने लगा, इसलिए दीर्घ को धिक्कार है ! क्योंकि 'जतन के लिए सौंपा पदार्थ तो डाकिन भी नहीं खाती।' ब्रह्मराजा की पुत्ररुपी अमानत के संबंध में दीर्घराजा ने बड़ा पाप किया है, ऐसा पाप तो कोई चांडाल भी नहीं करेगा। इसलिए हे शंख ! तू जाकर तेरे दीर्घ राजा को कह कि ब्रह्मदत्त सेना लेकर आ रहा है, तो उसके साथ युद्ध कर या भाग जा।' इस प्रकार कहकर दूत को बिदा किया। ब्रह्मदत्तकुमार अविरत प्रयाण करते हुए कांपिल्यपुर के पास आ पहुँचा। आकाश की सहाय से सूर्य के साथ मेघ की तरह दीर्घराजा ने उसके साथ युद्ध करने की इच्छा की और बड़ा सर्प ज्यों दण्ड से आक्रांत होकर बिल में से बाहर निकले त्यों रण में सारभूत ऐसे सर्व बल से उस नगर के बाहर निकला। उस समय ब्रह्मराजा की स्त्री चुलनी को अत्यंत वैराग्य उत्पन्न हुआ, जिससे वह **पूर्णा** नाम की प्रवर्त्तिनी से व्रत लेकर क्रमशः मोक्ष को गई। यहां रणभूमि में बड़े मगर ज्यों नदी के छोटे मगर को मारे त्यों दीर्घराजा के अग्र सुभटों को ब्रह्मदत्त के सुभटों ने मार डाला। यह देखकर क्रोध से भ्रुकुटी तानकर भयंकर मुख बनाता हुआ दीर्घ सूअर की तरह शत्रुओं पर दौडा और प्रहार करने लगा। ब्रह्मदत्त का पायदल, रथ और सवार वगैरह का सैन्य नदी की बाढ़ की तरह गतिशील दीर्घराजा ने बिखेर डाला। उस समय क्रोध से लाल नेत्र करता हुआ ब्रह्मकुमार हाथी के सामने हाथी की तरह गर्जना करते हुए दीर्घराजा के सामने स्वयं युद्ध करने आया। प्रलयकाल के समुद्र की तरह दोनों बलवान वीर एक दूसरे के अस्त्र तोड़ने लगे। उस समय सेवक की तरह अवसर जानकर कांति प्रसारता हुआ व दिशाओं के समूह को अर्थात् सर्व दिशाओं में रहे राजाओं को जीते वैसा चक्ररत्न ब्रह्मदत्त के समीप प्रकट हुआ, जिससे ब्रह्मकुमार ने उस चक्र से तत्काल दीर्घराजा के प्राण हर लिए। ''बीजली से चन्दनगोह को मारने के लिए अन्य साधनों की क्या जरुरत है ?'' उस समय 'यह चक्रवर्ती जय पाओ' यूं चारण-भाट की तरह बोलते हुए देवताओं ने ब्रह्मदत्त पर पुष्पवृष्टि की। फिर पिता की तरह, माता की तरह और देवता की तरह पुरजनों ने देखे हुए ब्रह्मदत्त चक्री ने ज्यों इन्द्र अमरावती मे प्रवेश करे त्यों कांपिल्यपुर में प्रवेश किया। इसके बाद उसने पहले ब्याही हुई सब स्त्रियों को वहां बुलवा लिया और सब स्त्रियों में **कुरुमती** को स्त्री-रत्न रुप में स्थापित किया। एक बार भरतक्षेत्र को साधने के लिए ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चक्र के पीछे अनगिनत सैन्य सहित चले।

पहले नृपश्रेष्ठ श्री ऋषभदेव ने राज्य छोड़कर दीक्षा लेते समय सर्व पुत्रों में बड़े भरत को मुख्य राज्य दिया था और दूसरे निन्यानवे पुत्रों को अलग अलग देश बाँटकर चारित्र लेकर तपस्या करके मोक्ष गये थे। तबसे उन पुत्रों के नाम अनुसार उन सब देशों के नाम पड़े थे। वे इस प्रकार : पूर्व दिशा में प्रगम, मस्तक, पुत्रांगारक, मल्ल, अंग, अर्मलय, भार्गव,

प्राग्ज्योतिष, वंश, मगध और मासवर्त्तिक, दक्षिण दिशा में बाणमुक्त, वैदर्भ, वनवासिक, महीषक, वनराष्ट्र, तायिक, अश्मदंडक, कलिंग, इषिक, पुरुष, मूलक, भोगवर्द्धक और कुंतल, पश्चिम दिशा में दुर्ग, सूर्पारक, अर्बुद, आर्यकल्ली, वनायस्त, कार्क्षिका, नर्तसारिक, माहेष, रुरु, कच्छ, सुराष्ट्र, नर्मद, सारस्वत और तापस; उत्तर दिशा में कुरुजांगल, पंचाल, सूरसेन, पच्चर, कलिंग, काशी, कौशल, भद्रकार, वृक, अर्थक, विगर्त, कौसल, अंबष्ट, साल्व, मत्स्य, कुनीयक, मौक, वाल्हीक, कांबोज, मधु, मद्रक, आत्रेय, यवन, आभीर, वान, वानस, कैक्य, सिंधु, सौवीर, गांधार, काथ, तोष, दसेरक, भारद्वाज, चमू, अश्वप्रस्थाल, तार्णकर्णक, त्रिपुर, अवंति, चेदि, किष्किन्ध, नैषध, दशार्ण, कुसुमर्ण, नौपल, अंतप, कोसल, पदाम, विनिहोत्र और वैदिश। ये देश विंध्याचल के पृष्ठभाग में हैं। विदेह, भत्स, भद्र, वज्र, सिंडिंभ, सैडव, कुत्स और भंग - ये देश पृथ्वी के मध्य भाग में हैं।

प्रारंभ में मागधाधीश को साधकर वरदाम, प्रभास, कृतमाल और अन्य देशों को भी ब्रह्मदत्त ने क्रमशः साध लिये। फिर ब्रह्मदत्त चक्री ने चक्र का अनुसरण करते हुए निन्यानवें देशों को भी स्वयंमेव साध लिये, और वहां के राजाओं के समूह को वश किया। अलग अलग स्वामियों का उन्मूलन करके षट्खण्ड पृथ्वी के स्वयं एक ही स्वामी बनकर उसे एक खण्ड समान कर दिया। फिर सब राजाओं के मुकुट पर जिसका शासन लालित हुआ है ऐसे ब्रह्मदत्त सब शत्रुओं को दबाकर कांपिल्यपुर की ओर चले। जिस सैन्य से पृथ्वी का और उससे उडती रज से आकाश का आच्छादन करते और छडीदार की तरह आगे चलता हुआ चक्र जिसे मार्ग दिखाता था ऐसे चौदह रत्नों के स्वामी और नौं निधियों के ईश्वर ब्रह्मदत्त चक्री अविरत प्रयाण से चलते हुए क्रमशः अपने नगर समीप आ पहुँचे। वाजिंत्रों के ध्वनि के बहाने मानो स्वयं ही हर्ष से संगीत कर रहा हो ऐसे कांपिल्यपुर में ब्रह्मदत्त ने प्रवेश किया। वहां सर्व दिशाओं में से आ-आकर एकत्रित हुए बत्तीस हजार राजाओं ने भरत की तरह उसके चक्रवर्तीपन का द्वादश (बारह वर्षिय) वार्षिक अभिषेक प्रारंभ किया।

पहले जब ब्रह्मदत्त एकाकी घूमता था, उस समय कोई ब्राह्मण उसे सहाय देकर सुख-दुःख का विभागी बना था। उस समय ब्रह्मदत्त ने उसे कहा कि 'जब मुझे राज्य मिले, तब तू तुरंत आकर मुझे मिलना।' ऐसा संकेत किया होने के कारण वह ब्राह्मण इस समय ब्रह्मदत्त के पास आया, परंतु राज्याभिषेक की व्यग्रता से उसका राजमहल में प्रवेश भी न हो पाया। जिससे राजद्वार में ही बैठे रहकर उसने राजा की सेवा शुरु की। राज्याभिषेक की क्रिया संपूर्ण होने के बाद ब्रह्मदत्त चक्री राजमहल से बाहर निकले। तब वह ब्राह्मण अपनी पहचान हेतु पुराने उपानह (जूते) का ध्वज बनाकर खड़ा रहा। अन्य ध्वजों से विलक्षण ध्वजवाले उस ब्राह्मण को

देखकर चक्री ने छडीदार को पूछा, 'अपूर्व ध्वजवाला यह पुरुष कौन है ?' छडीदार ने कहा, 'बारह वर्ष तक आपकी सेवा करनेवाला वह पुरुष है।' ब्रह्मदत्त ने उसे बुलाकर पूछा, 'यह क्या ?' ब्राह्मण बोला, 'हे नाथ ! आपके साथ घूम-घूमकर मेरे इतने उपानह घिस चूके, फिर भी आपने मुझ पर कृपा नहीं की।' चक्रवर्ती उसे पहचानकर हँस पडा, और उसे करने के लिए राजगृह में आते हुऐ न रोकने की द्वारपाल को आज्ञा दी। फिर उसे सभास्थान में बुलवाकर कहा, 'भटजी ! कहिए आपको क्या दूं ?' ब्राह्मण बोला, 'मुझे भोजन दीजिए।' चक्री ने कहा, 'ऐसा अल्प क्या माँगा ? कोई देश मांग लो।' तो जिह्वालंपट ब्राह्मण बोला, 'राज्य का फल भी भोजन ही है, इसलिए मुझे आपके घर से आरंभ करके पूरे भरतक्षेत्र में घर घर भोजन और एक एक दीनार दक्षिणा में मिले ऐसा हुकम दीजिए।' यह सुनकर चक्री ने सोचा कि 'इस ब्राह्मण की योग्यता इतनी ही लगती है।' फिर उसने अपने घर से पहले दिन दीनार और भोजन दिलवाया। राजा की आज्ञा से उस ब्राह्मण ने भरतक्षेत्र में क्रमशः घर घर भोजन करने लगा और ऐसा चिंतन करने लगा कि सब जगह भोजन करने के बाद दुबारा राजा के घर भोजन करुंगा, परंतु चिरकाल बीत जाने के बाद भी उसने राजभोजन पाया नहीं। इस प्रकार व्यर्थ काल गँवाकर वह भट्ट मृत्यु पा गया।

एक बार ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नाट्यसंगीत देखते हुए राजसभा में बैठा था, इतने में एक दासी ने आकर देवांगना ने गूंथा हो ऐसा एक विचित्र पुष्प की गेंद दी। उसे देखकर ब्रह्मदत्त को विचार आया कि 'ऐसी पुष्पगेंद किसी जगह पहले मैंने कहीं देखी है।' यूं बार बार चिंतन करते हुए उसे पांच भव दर्शानेवाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, तत्काल उसने मूर्च्छा पायी। उस समय उसे याद आया, 'पहले ऐसी गेंद मैंने सौधर्म देवलोक में देखी थी।' फिर चन्दन-जल से सिंचित होकर स्वस्थ होकर वह सोचने लगा, 'अब मेरे पूर्व जन्म का सहोदर मुझे कहां मिलेगा ?' फिर उसे पहचानने के लिए ब्रह्मदत्त ने एक आधे श्लोक की समस्या इस प्रकार रची - ''आश्वदासौ मृगौ हंसौ मातंगावमरौ तथा'' - ''इस आधे श्लोक की समस्या जो पूर्ण करेगा उसे मैं मेरा आधा राज्य दूंगा'' - ऐसी आघोषणा पूरे नगर में कराई। सब लोगों ने इस आधे श्लोक को अपने नाम की तरह रट लिया, पर उसे कोई पूरा न कर सका। अब चित्र का जीव जो पुरिमताल नगर में एक धनाढ्य के घर पुत्ररुप में जन्मा था, वह जातिस्मरण होने से दीक्षा लेकर मुनि बने थे। वे विहार करते करते यहां आ पहुँचे। नगर के बाहर मनोरम उद्यान में एक प्रासुक स्थल पर वे मुनि रहे। वहां जल का रहट घुमानेवाला आदमी वह आधा श्लोक बोल रहा था, वह उन्हें सुनायी दिया। इससे तुरंत उन्होंने ''एषा नौषष्टिका जातिरन्योऽन्याभ्यां वियुक्तयोः'' इस प्रकार उस श्लोक का उत्तरार्ध पूर्ण किया और उस अनुसार बोलने लगे। वह

सुनकर उस प्रकार उत्तरार्ध जानकर उस रहटवाले मनुष्य ने राजा के सामने आकर वह श्लोक पूरा कर दिया तो चक्री ने पूछा, "इस उत्तरार्ध का कर्त्ता कौन है ?" तब उसने मुनि का नाम दिया। जिससे उस पुरुष को बहुत अच्छा इनाम देकर चक्री उत्कंठा से मानो अभिनव धर्मवृक्ष उगा हो ऐसे उन मुनि को देखने के लिए उद्यान में आये फिर वह मुनि की वन्दना करके नेत्र में अश्रु लाकर पूर्वजन्म की तरह स्नेह धरकर उनके आगे बैठा। तो कृपारस के सागर मुनि धर्मलाभ का आशीर्वाद देकर राजा के अनुग्रह के लिए धर्मदेशना देने लगे -

"हे राजन् ! इस असार संसार में दूसरा कुछ भी सार नहीं है, सिर्फ कीचड में कमल की तरह एक धर्म ही सार है। यह शरीर, यौवन, लक्ष्मी, स्वामित्व, मित्र और बांधव - ये सब पवन से कंपायमान पताका के छोर जैसे चंचल हैं। हे राजन् ! ज्यों आपने पृथ्वी साधने के लिए बहिरंग शत्रुओं को जीत लिया, त्यों मोक्ष साधने के लिए अब अंतरंग शत्रुओं को भी जीतो। राजहंस ज्यों जल को छोड़कर दूध को ग्रहण करे त्यों तुम सबकुछ छोड़कर यतिधर्म ग्रहण करो !"

ब्रह्मदत्त बोले, "हे बांधव ! सद्भाग्य के योग से मुझे तुम्हारे दर्शन हुए है, यह राज्यलक्ष्मी सर्व तुम्हारी ही है, इसलिए रुचि अनुसार भोग भोगो। तप का फल भोग है, वे मिले तो अब आपको तप किसलिए करना है ? क्योंकि स्वयमेव प्रयोजन सिद्ध हो जाने के बाद कौनसा पुरुष प्रयत्न किया करेगा ?" मुनि बोले, "हे राजन् ! मेरे घर भी कुबेर जैसी संपत्ति थी, लेकिन भवभ्रमण का भय रखकर मैंने उसका तृण की तरह त्याग किया है। हे राजन् ! पुण्य का क्षय होने से तुम सौधर्म देवलोक से इस पृथ्वी पर आये हो, अब वापस सर्व पुण्य का क्षय करके यहां से भी अधोगति में मत जाओ। आर्य देश में और श्रेष्ठ कुल में दुर्लभ मानुष्य प्राप्त हुआ है फिर भी उससे अमृत द्वारा पैर धोने की तरह भोग क्यों साधते हो ? स्वर्ग से च्यूत होकर पुण्य क्षीण होने से हम जैसी-तैसी कु-योनि में जा आये हैं, फिर भी हे राजन ! अब बालक की भाँति क्यों मोह पाते हो ?" मुनि ने इस प्रकार बोध किया, फिर भी राजा ने प्रतिबोध नहीं पाया, क्योंकि "संकल्प के उदयवाले को बोधिबीज का समागम कहां से होगा ?" उसे अति अबोध्य जानकर मुनि वहां से अन्यत्र विहार कर गये। "कालदृष्ट सर्प के डसे हुए मनुष्यों के पास मांत्रिक कब तक बैठे रहेगा ?" फिर वे मुनि धाती कर्म का क्षय करके उज्ज्वल केवलज्ञान पाकर भवोपग्राही कर्मों को नाश करके परम-पद को प्राप्त हुए। ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीपन के वैभव में देवताओं से इन्द्र की तरह राजाओं से सेवा पाता हुआ काल निर्गमन कर रहा था। एक बार किसी यवन राजा ने लक्षणों से सूर्य के सात घोडों में से एक हो ऐसा उत्तम अश्व उसे उपहार में भेजा। उस अश्व को देखकर 'यह अश्व स्वरुप अनुसार तेज होगा या नहीं ?' ऐसी उसकी

परीक्षा करने के लिए ब्रह्मदत्त तत्काल उस पर सवार हुआ। फिर ब्रह्मदत्त घुडसवार, हाथीसवार रथी व पायदलों सहित उस पराक्रमी अश्व पर बैठकर नगर के बाहर निकला। बड़े पराक्रमी चक्री ने उस अश्व की गति जानने के कौतुक से उसे दोनों ओर जांघ से दबाकर चाबुक का प्रहार किया। तो पीछे से आते पवन से जहाज की भाँति चाबुक के स्पर्श से चमककर वह अश्व अत्याधिक तेजी से दौडा व क्षणभर में सबको अदृश्य हो गया। राजा ने उसकी लगाम बहुत खींची, फिर भी वह अश्व खड़े न रहते हुए असंयत इन्द्रियों की भाँति दौड़कर एक महाटवी में आया। क्रूर शिकारी प्राणियों से भयंकर इस अटवी में वृक्ष पर से गिरे पक्षी की तरह वह अश्व श्रम लगने से अपने आप खडा रहा। उस समय राजा तृषार्त बना होने से इधर-उधर जल ढूंढ़ने लगा। इतने में तरंगों से लहराता एक सरोवर उसको नजर आया। अश्व पर से जीन उतारकर पहले उसे जलपान कराया और तट पर एक वृक्ष के तने के साथ उसे मुखरज्जु से बांधा। फिर वन के हाथी की तरह सरोवर में घुसकर ब्रह्मदत्त ने स्नान किया, और कमल के आमोद से सुगंधित व स्वच्छ जल का उसने पान किया। फिर सरोवर में से निकलकर उसके तट पर इधर-उधर चलने लगा। इतने में अद्वैत रुप-लावण्य की संपत्तिवाली एक नागकन्या उसे नजर आयी। उसके रुप से चकित होकर चक्री वहां खड़ा रहा। इतने में वटवृक्ष पर से मानो उसका चलित हरण (शाखा) हो त्यों गोनस जाति का एक नाग उतरा। उस नागकन्या ने नागिन का रुप धरकर उस नाग के साथ संवास[1] किया। यह देखकर ब्रह्मदत्त सोचने लगा कि यह स्त्री इतनी स्वरुपवान है फिर भी इस नीच सर्प के साथ आसक्त बनी लगती है। 'सचमुच स्त्रियां और जल नीचगामी ही होते हैं।' परंतु इस वर्णसंकर की मुझे उपेक्षा करना योग्य नहीं है, क्योंकि 'राजाओं को पृथ्वी पर से दुष्टजनों को शिक्षा देकर सन्मार्ग पर स्थापित करना चाहिए।' इस प्रकार सोचकर राजा ने उन दोनों को पकड़कर उनके पर चाबुक से प्रहार किया। फिर क्रोध शांत होने पर उनको छोड़ दिया, तो वे कही चले गये। फिर राजा ने सोचा, 'जरुर कोई व्यंतर गोनस नाग का रुप लेकर इस नागकन्या के साथ क्रीडा करने आता होगा।' राजा इस प्रकार विचार कर रहा था कि उसका पूरा सैन्य उसके अश्व के कदम दबाता हुआ वहां आ पहुँचा और स्वामी का दर्शन पाकर खुश हुआ। फिर सैन्य सहित चक्री अपने नगर में आया।

वह नागकन्या रोते रोते अपने पति के पास गई और उसने उसको कहा, 'मनुष्य लोक में ब्रह्मदत्त नाम का एक व्यभिचारी राजा है। वह घूमते घूमते इस समय भूतरमण अटवी में आया था। मैं मेरी सखियों के साथ यक्षिणी के पास जा रही थी, वहां मार्ग में सरोवर आने पर उसमें स्नान करके मुझे बाहर निकलती हुई मुझको उसने देखा। मुझे देखकर कामपीडित होकर उसने मेरे साथ क्रीडा की इच्छा से याचना की, लेकिन मैं अनिच्छा से रोने लगी, तो

१. विषयभोग।

श्री अजाहरा पार्श्वनाथ भगवान

श्री अजाहरा तीर्थ

-: सौजन्य दाता :-

शांति जिन मंडल

मुंबई (गारियाधार)

उसने मुझे चाबुक से पीटा। मैंने आपका नाम लिया, तो भी ऐश्वर्य से उन्मत्त बने उसने बहुत देर तक मुझे पीटा। फिर मुझे मरी हुई समजकर चला गया।' इस प्रकार सुनकर उस नागकुमार ने बड़ा क्रोध पाया। फिर रात्रि को अपने वासगृह में गये हुए ब्रह्मदत्त को मारने के लिए वह वहां आया। उस समय वार्ता प्रसंग पर पटरानी ने ब्रह्मदत्त को पूछा कि 'जब आपको अश्व हर गया, तब मार्ग में आपने कुछ नवीन देखा ?' तब ब्रह्मदत्त ने पापी नागकन्या और गोनस नाग की कथा कह सुनायी और उस दुराचारी को शिक्षा देने की बात भी कही। यह सर्व हकीकत उस नागकुमार ने अंर्हितता से (छिपकर) सुनी, जिससे उस कार्य में अपनी प्रिया का ही दोष जानकर उसका कोप तत्काल शांत हो गया।

उस समय ब्रह्मदत्त शरीरचिंता के लिए वासगृह से बाहर निकला, तो कांति से आकाश को प्रकाशित करते हुए उस नागकुमार देव को उसने अंतरीक्ष में रहा हुआ देखा। नागकुमार गगन में रहकर बोला, "इस पृथ्वी में दुर्विनीत को शिक्षा करनेवाले ब्रह्मदत्त राजा जय पाये। हे राजन् ! जिस नागकन्या को आपने मारा था वह मेरी पत्नी लगती है। उसने तो मुझे ऐसा कहा था कि ब्रह्मदत्त ने मुझ पर लुब्ध होकर मुझे मारा है। यह सुनकर आपके पर कोपायमान होकर आपको दहन करने की इच्छा से मैं यहां आया था, परंतु मैंने अदृश्य रहकर आपके मुख से उसका सर्व चेष्टित सुना है, इसलिए न्यायवान् ऐसे आपने व्यभिचारिणी को सजा देकर बहुत ही उचित किया है। उसके कहने पर ही मैंने आपका अमंगल सोचा तो उसके लिए मुझे क्षमा करना।" इस प्रकार सुनकर ब्रह्मदत्त बोला, "हे नागकुमार ! उसमें आपका कोई दोष नहीं है। स्त्रियां माया-कपट से अन्य को दूषित करके अपना दोष ढांप देती हैं।" नागकुमार ने कहा, "यह सत्य है, स्त्रियां सचमुच मायावी होती हैं। अब ऐसे न्याय से मैं आपके पर संतुष्ट बना हूँ, तो कहिए, आपका क्या कार्य करुं ?" ब्रह्मदत्त ने कहा, "मेरे राज्य में कदापि व्यभिचार, चोरी या अपमृत्यु न हो ऐसा करें।" नागकुमार ने कहा, "वैसा ही हो, लेकिन मैं तुम्हारी ऐसी परार्थ की याचना सुनकर विशेष संतुष्ट हुआ हूँ, इसलिए अब तुम्हारे स्वार्थ के लिए भी कुछ याचना करें।" ब्रह्मदत्त सोचकर बोला, "मैं सब प्राणियों की वाणी अच्छी तरह समज सकूं वैसा करें।" नागकुमार ने कहा, 'यह वरदान देना मुश्किल है, फिर भी मैं आपको देता हूँ ! परंतु आप यह बात यदि अन्य को बताओगे तो तुम्हारे मस्तिष्क के सात टुकड़े हो जायेंगे।" इस प्रकार कहकर नागकुमार स्वस्थान पर गया।

एक बार ब्रह्मदत्तकुमार अपनी वल्लभा के साथ शृंगारगृह में गया। वहां गृहगोहे[1] ने गृहगोही को कहा, 'हे प्रिय ! राजा के अंगराग[2] में से थोडा सा ला दो, जिससे मेरा अभिलाष

१. छिपकली, छिपकला २. विलेपन।

पूरा हो जाय।' गृहगोहे ने कहा, 'क्या तुझे मेरे शरीर का काम नहीं है कि तू मुझे वह लाने के लिए कहती है ? क्योंकि अंगराग लेने जाने पर मैं जरूर मृत्यु पाऊंगा।' इस प्रकार उनके बीच होती हुई बातचीत सुनकर राजा हँस पडा, तो रानी ने राजा को पूछा कि 'आप अचानक क्यों हँसे ?' अब कहने से मृत्यु का भय होने के कारण राजा ने कहा, 'यूं ही।' रानी बोली, 'हे नाथ ! इस हँसी का कारण मुझे अवश्य कहना पडेगा, नहीं तो मैं मर जाऊंगी, क्योंकि मुझ से छिपाने का कारण क्या है ?' राजा ने कहा, 'वह कारण तुम्हें न कहने से तुम तो मरोगी या नहीं, लेकिन वह कहने पर मैं तो जरुर मर जाऊंगा।' राजा के इस वचन पर श्रद्धा न बैठने से रानी दुबारा बोली, 'वह कारण मुझे जरूर कहो। वह कहने से शायद हम दोनों साथ मर जायेंगे, तो हम दोनों की समान गति होगी, इसलिए भले ही वैसा हो।' इस प्रकार स्त्री के दुराग्रह में फँसे राजा ने स्मशान में चिता रचवाई। और रानी को कहा, 'हे रानी ! चिता के समक्ष जाकर मरने के लिए तत्पर होकर मैं वह बात तुझे बताऊंगा।' फिर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती स्नान करके रानी के साथ गजारूढ होकर चिता के पास आया। उस समय नगरजन दुःखी होकर सजल नेत्रों से उनको देख रहे थे।

उस समय चक्रवर्ती की कोई कुलदेवी एक मेंढे व सगर्भा मेंढी का रुप धरकर चक्रवर्ती को प्रतिबोध देने के लिए वहां आयी। 'यह राजा सब प्राणियों की भाषा जानता है' ऐसा जानकर गर्भवती मेंढी ने अपनी ही भाषा में मेंढे को कहा, 'हे पति ! इस जौ के ढेर में से जौ का एक पूला ले आओ, जिसका भक्षण करने से मेरा अभिलाष पूरा हो जाय।' मेंढा बोला, 'यह जौ का ढेर तो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के घोडे के लिए रखा हुआ है, वह लेने जाते हुए तो मेरी मृत्यु हो सकती है।' मेंढी बोली, 'यदि तुम जौ नहीं लाओगी तो मैं मर जाऊंगी।' मेंढा बोला, 'यदि तू मर जायेगी तो मैं दूसरी मेंढी लाऊंगा।' मेंढी बोली, 'देखो ! यह ब्रह्मदत्त चक्री अपनी स्त्री के लिए अपना जीवन गँवा रहा है, इसका ही सच्चा स्नेह है, आप तो स्नेहहीन हो।' मेंढा बोला, 'यह राजा अनेक स्त्रियों का पति है, फिर भी एक स्त्री की वाणी से मरना चाहता है, यह तो सचमुच उसकी मूर्खता है। मैं उसके जैसा मूर्ख नहीं हूँ। शायद वह रानी साथ मरेगी तो भी भवांतर में उन दोनों का योग नहीं होगा, क्योंकि प्राणियों की गति तो कर्म के अधीन होने से भिन्न भिन्न मार्गवाली है।' मेंढे की ऐसी वाणी सुनकर चक्रवर्ती सोच में पडा, कि 'अहो ! यह मेंढा भी ऐसा कहता है, तो मैं एक स्त्री से मोहित होकर किसलिए मरुं ?' इस प्रकार सोचकर संतुष्ट बने चक्री ने उस मेंढे पर प्रसन्न होकर कनकमाला (सोने की) और पुष्पमाला उसके कण्ठ में पहनायी। और 'मैं तेरे लिए मृत्यु नहीं पाऊंगा।' यूं रानी को कहकर अपने स्थान पर लौट गया, वह अपनी अखंड चक्रवर्तीपन की लक्ष्मी और राज्य पालने लगा। इस प्रकार अनेक

क्रीडा करते हुए ब्रह्मदत्त चक्री के जन्म से लेकर सोलह कम सातसौं वर्ष व्यतीत हुए।

एक बार किसी पूर्व परिचित ब्राह्मण ने आकर ब्रह्मदत्त को कहा, 'हे चक्रवर्ती राजन् ! तू जो भोजन करता है वह भोजन मुझे दे।' ब्रह्मदत्त ने कहा, 'हे द्विज ! मेरा अन्न बड़ा ही दुर्जर (पचने में कठिन) है। शायद चिरकाल तक उसका अंकुर रहता है, फिर भी वह वहां तक महा उन्माद करता है।' ब्राह्मण बोला, 'अरे राजन् ! तू अन्न का दान देने में भी कृपण है, इसलिए तुझे धिक्कार है।' उस ब्राह्मण का ऐसा वचन सुनकर राजा ने उस ब्राह्मण को कुटुंबसहित अपना भोजन करवाया। रात्रि में उस ब्राह्मण के शरीर में अन्नरुपी बीज में से कामदेव का उन्मादरुपी वृक्ष सैंकडों शाखायुक्त प्रकट हुआ, तथा अन्यों को भी कामदेव उत्पन्न हुआ, जिससे उस ब्राह्मण पुत्र सहित माता, बहन और पुत्रवधू का संबंध भूलकर उनके साथ पशु समान विषयसुख भोगने में प्रवर्तित हुआ। रात्रि बीतने के बाद सुबह हुई तो ब्राह्मण और सर्व गृहजन लज्जा से एक दूसरे को मुख नहीं बता सके, तो 'इस क्रूर राजा ने मुझे (कुछ मादक पदार्थ खिलवाकर) परिवार सहित परेशान किया है।' ऐसा सोचते हुए वह ब्राह्मण नगर में से निकल गया। फिर जंगल में परिभ्रमण करते हुए किसी एक चरवाहे को गिल्लोल से कंकर मारकर पीपल के पत्तों में छेद करते हुए देखा। उसकी ऐसी अचूक निशानेबाजी देखकर 'यह पुरुष मेरे मनोरथ को पूरा कर सके ऐसा है' यूं सोचकर मूल्य की तरह सत्कार से उसे वश कर लिया। फिर ब्राह्मण ने उसे कहा, 'सिर पर श्वेत छत्र और चँवर को धारण करके जो पुरुष राजमार्ग से गजेन्द्र पर बैठकर जाता हो, उसके दोनों नेत्र कंकड मारकर तू फोड़ डालना।' ब्राह्मण की ऐसी वाणी सुनकर चरवाहे ने वैसा करना कबूल किया, क्योंकि 'पशुपालक लोग पशु की तरह अविचारी काम करनेवाले होते हैं।' फिर चरवाहे ने किसी दीवार की आड़ में खडे रहकर दो कंकड मारकर हाथी पर सवार होकर राजमार्ग पर चले जाते ब्रह्मदत्त राजा के दो नेत्र फोड़ डाले। "विधि की आज्ञा सचमुच दुर्लंध्य है।"

तत्काल पक्षी को ज्यों बाज पकडे त्यों राजा के अंगरक्षकों ने आकर उस चरवाहे को पकड़ लिया। फिर उसे बहुत मार पड़ने पर उसने बताया कि यह दुष्कृत्य करानेवाला कोई ब्राह्मण है। यह सुनकर ब्रह्मदत्त राजा बोला, "ब्राह्मण जाति को धिक्कार है ! क्योंकि जहां वे भोजन करते हैं, वहीं पात्र को फोड़ते हैं।' जो अपने अन्नदातार को स्वामीतुल्य मानते हैं ऐसे श्वान को देना अच्छा, परंतु कृतघ्न ऐसे ब्राह्मण को देना उचित नहीं है। कपटी, निर्दयी, हिंसक जनावर, मांसभक्षक और ब्राह्मणों का जो पोषण करे उसे ही पहले सजा देनी चाहिए।" इस प्रकार अनल्प भाषण करते हुए ब्रह्मदत्त राजा ने उस ब्राह्मण को पुत्र, बंधु व मित्र सहित मच्छर को मुष्टि की तरह मरवा दिया। फिर दृष्टि से अंध बनने के कारण क्रोध से हृदय में भी अंध बने हुए ब्रह्मदत्त

ने पुरोहित वगैरह सर्व ब्राह्मणों का घात किया। इसके बाद उसने सचिव को आज्ञा दी कि 'सर्व ब्राह्मणो के नेत्रों का विशाल थाल भरकर मेरे समक्ष लाओ।' राजा के ऐसे भयंकर अध्यवसाय को जानकर सचिव ने श्लेष्मातक[1] फल से थाल भरकर उसके समक्ष रखा। ब्रह्मदत्त हाथ से बार बार स्पर्श करते हुए 'ब्राह्मणों के नेत्र का यह थाल मैंने बड़ा अच्छा भरवाया' यूं बोलते हुए बड़ा हर्षित होने लगा। उस थाल का स्पर्श करने में जैसी ब्रह्मदत्त की प्रीति थी, वैसी अपनी स्त्रीरत्न पुष्पवती को स्पर्श करने में भी प्रीति न थीं। ज्यों दुर्मति पुरुष मदिरापात्र को न छोडे, त्यों ब्रह्मदत्त कदापि दुर्गति के कारणरुपी उस थाल को थोड़ा सा भी नहीं छोड़ता था। ब्राह्मणों के नेत्र की बुद्धि से श्लेष्मातक के फल को बार बार मसलता ब्रह्मदत्त फलाभिमुख बने पापरुपी वृक्ष के मनोरथ को भरता था। इस प्रकार ब्रह्मदत्त का अनिवार्य ऐसा रौद्र अध्यवसाय अत्यंत वृद्धि पाया। "बड़े लोगों के शुभ या अशुभ दोनों बड़े ही होते हैं।" इस प्रकार रौद्रध्यान के अनुबंधवाला और पापरुपी कीचड़ में सूअर जैसे उस ब्रह्मदत्त राजा के सोलह वर्ष बीत गये।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के अट्ठाइस वर्ष कुमारावस्था में, छप्पन वर्ष मांडलिकपन में, सोलह वर्ष भरतक्षेत्र को साधने में और छःसौं वर्ष चक्रवर्तीपन में बीते। इस प्रकार जन्म से लेकर सातसौं वर्ष का आयुष्य पूरा करके बार बार 'कुरुमर्ता कुरुमती !' यूं बोलते हुए ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हिंसानुबंधी परिणाम के फल योग्य सातवीं नरकभूमि में उत्पन्न हुआ।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येनवमे पर्वणि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति चरित्रवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः।।१।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

१. जिसमें से चीकने बीजकोष निकलते हैं ऐसे फल-लाल गूंदे जैसे।

द्वितीय सर्ग

श्री पार्श्वनाथ चरित्र (नौं भवों का वर्णन)

सर्व प्रकार की कल्याणरुपी लताओं का आलंबन करने में वृक्षरुप, जगत्पति और सर्व का रक्षण करनेवाले **श्री पार्श्वनाथ प्रभु** को मेरे नमस्कार हो। सर्व विश्व के उपकार के लिए अब श्री पार्श्वनाथ प्रभु का अति पवित्र चरित्र कहा जायेगा।

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में नवीन स्वर्ग के खण्ड समान **पोतनपुर** नाम का एक नगर है। वह नगर नदी के पद्मखण्ड की तरह राजहंसों ने सेया हुआ, लक्ष्मी के संकेतगृह जैसा और पृथ्वी के मण्डनरुप है। उसमें बसे धनाढ्य लक्ष्मी में मानो कुबेर के अनुज बंधु हो और बड़े औदार्य से मानो कल्पवृक्ष के सहोदर (भाई) हो ऐसे लगते थे। 'वह अमरावती जैसा और अमरावती उसके जैसी' यूं परस्पर प्रतिच्छंदभूत होने से उसकी समृद्धि वाणी के विषय को अगोचर थी। उस नगर में अरिहंत के चरणकमल में भ्रमर जैसा और समुद्र की तरह लक्ष्मी के स्थानरुप **अरविंद** नाम का राजा राज्य करता था। वह ज्यों पराक्रमियों में अद्वितीय था, त्यों विवेकीजनों में भी अद्वितीय था। और ज्यों लक्ष्मीवानों में मुख्य था त्यों यशस्वी लोगों में भी मुख्य माना जाता था। वह ज्यों दीन, अनाथ और दुःखी लोगों में धन का व्यय करता, त्यों पुरुषार्थ के साधन में अहोरात्रि का व्यय करता था, अर्थात् अहोरात्र तीन वर्ग को साधने में तत्पर था।

अरविंद राजा का अपने ही जैसा जीवाजीवादि तत्त्व जाननेवाला परम श्रावक **विश्वभूति** नाम का पुरोहित था। उसे अनुद्धरा नाम की स्त्री थी। उसके उदर से **कमठ** और **मरुभूति** नाम के दो ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र हुए थे। कमठ को **वरुणा** नाम की और मरुभूति को **वसुंधरा** नाम की स्त्री थी। वे दोनों रुपलावण्य से अलंकृत थी। दोनों पुत्र कलाभ्यास करके द्रव्य उपार्जन करने में समर्थ और परस्पर स्नेहवाले होने से वे मातापिता के आनन्द के कारणभूत भी थे। एक बार दो वृषभ पर रथ का बोझा रखे त्यों उन पर गृहभार छोड़कर विश्वभूति पुरोहित ने गुरु से अनशन ग्रहण किया फिर वह विश्वभूति समाधियुक्त चित्त से पंचपरमेष्ठी नमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में देवता बने। पति के वियोगरुपी ज्वर से पीड़ित उसकी पत्नी अनुद्धरा शोक व तप से अंग सूखाकर नवकार मंत्र रटते हुए मृत्यु पायी। दोनों भाइयों ने माता-पिता का मृतकार्य किया और क्रमशः **हरिश्चन्द्र** मुनि के बोध से दोनों शोकरहित बने। फिर कर्मठ[1] ऐसा कमठ राजकार्य में जुड़ा, क्योंकि 'हंमेशा पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र धुरंधर बनता है।'

---

१. कर्म-क्रिया में स्थित।

छोटा भाई मरुभूति संसार की असारता जानकर संन्यासी ज्यों भोजन से विमुख हो जाय त्यों विषय से विमुख बना और स्वाध्याय तथा पौषध वगैरह की विधि में तत्पर होकर अहोरात्र पौषधागार में रहने लगा। वहां 'गुरु से सर्व सावद्य योग की विरती स्वीकार करके मैं उनके साथ कब विहार करुंगा ?' ऐसी बुद्धि मरुभूति को सदैव होती थी। अकेला पडा कमठ तो स्वच्छंदी, प्रमादरुप मदिरा में उन्मादी, सदा मिथ्यात्व से मोहित और परस्त्री में तथा द्युत में आसक्त बना। मरुभूति की स्त्री वसुंधरा नवयुवा होनें से चलित विषवल्ली की भाँति पूरे जगत को मोहकारी बन पड़ी, परंतु भावयति बने मरुभूति ने तो जल से मरुस्थल की लता की तरह उसका स्पर्श नहीं किया। अहर्निश विषय की इच्छावाली वसुंधरा पति का संग न मिलने से अपना यौवन अरण्य में मालती के पुष्प की तरह निष्फल मानने लगी। प्रकृति से ही स्त्रीलंपट ऐसा कमठ विवेक को छोड़कर भ्रातृवधू को बार-बार देख-देखकर अनुराग से बुलाने लगा।

एक बार वसुंधरा को एकांत में देखकर कमठ ने कहा, 'हे सुभ्रु ! कृष्ण-पक्ष में चन्द्रलेखा की तरह तुम प्रतिदिन क्यों क्षय पाती हो ? तुम कदापि लज्जा से न कहोगी, फिर भी तुम्हारा दुःख मेरे जानने में आया है। मैं मानता हूँ कि मेरा अनुज भाई मुग्ध और नपुंसक है, वही उसका कारण है।' अपने जेठ का ऐसा अमर्याद वचन सुनकर जिसके वस्त्र व केश खुल्ले थे ऐसी वसुंधरा कांपते कांपते भागने लगी, तो कमठ ने पीछा करके उसे पकड़ लिया और कहा, 'अरे मुग्धा ! अस्थान पर ऐसा इर क्यों रखती हो ? यह तुम्हारा शिथिल बना सुन्दर केशपाश ठीक तरह से बांध लो, और वस्त्र भी ठीक कर लो।' इस प्रकार कहकर उसकी अनिच्छा होने पर भी कमठ स्वयं उसका केशपाश और वस्त्र ठीक करने लगा। तब वसुंधरा बोली, 'आप जेठ होकर यह क्या करते हो ? आप तो विश्वभूति (श्वसुर) की तरह मेरे पूज्य हैं। ऐसा कार्य आपके और मेरे-दोनों के उभय कुल में कलंक के लिए है।' कमठ हँसकर बोला, 'हे बाला ! मुग्धपन में ऐसा मत बोल और तेरे यौवन को भोग बिना निष्फल मत कर। हे मुग्धाक्षी ! मेरे साथ विषयसुख भोग। वह नपुंसक मरुभूति तुम्हारे किस काम का है कि अब भी तुम उसे याद करती हो ? शास्त्र में कहा कि - यदि पति भाग जाय, मर जाय, दीक्षा ले, नपुंसक हो अथवा धर्मपरिवर्तन कर ले - इन पाँच आपत्तियों में स्त्रियों को दूसरा पति करना चाहिए।' इस प्रकार कहकर पहले से ही भोग की इच्छावाली वसुंधरा को उसने आग्रहपूर्वक अपनी गोद में बैठाया और अमर्यादापन से उसकी लज्जा छुडवा दी। फिर कामातुर कमठ ने उसे चिरकाल तक खिलाया। तब से उनका एकांत में नित्य रत्युत्सव होने लगा।

यह बात कमठ की स्त्री वरुणा को मालूम पड़ी, जिससे करुणाहीन और अरुणलोचना बनी उस स्त्री ने ईर्ष्यावश होकर पूरा वृत्तांत मरुभूति को कहा। मरुभूति बोला, 'आर्ये ! चन्द्र

में संताप की तरह मेरे आर्यबंधु कमठ में ऐसा अनार्य चरित्र कदापि संभव नहीं है।' इस प्रकार मरुभूति ने उसे रोका, तो भी वह हररोज आकर यह बात कहने लगी, जिससे मरुभूति ने सोचा कि ऐसी बात में दूसरे के कहने पर भरोसा कैसे बैठे, क्योंकि वह संभोग के विमुख था, फिर भी इस बारे में प्रत्यक्ष देखकर निश्चय करने का उसे विचार हुआ। उसने कमठ के पास जाकर कहा, 'हे आर्य ! मैं कुछ कार्यप्रसंग पर आज बाहर जाता हूँ।' इस प्रकार कहकर मरुभूति नगर के बाहर गया और रात्रि को थके हुए कापडी का वेष धरकर भाषा परिवर्तित करके घर आया और कमठ के पास जाकर कहा, 'भद्र ! मैं दूर से आनेवाला प्रवासी हूँ, मुझे आज की रात रहने हेतु आश्रय दीजिए।' कमठ ने निःशंकतापूर्वक उसको रहने के लिए अपने ही मकान का बाहरी भाग दिखाया। तो उसने कपटनिद्रा से सो जाने के बाद उस अति कामांध स्त्री-पुरुष का दुष्चेटित देखा। 'आज मरुभूति गाँव गया है' ऐसा सोचकर दुर्मति कमठ व वसुंधरा ने बडी देर तक निसंदेहतापूर्वक काम क्रीडा की। जो देखना था वो मरुभूति ने देख लिया, परंतु लोकापवाद के भय से उस समय उसने कुछ भी विरुद्ध कार्य नहीं किया। फिर उसने अरविंद राजा के पास जाकर पूरी बात कह सुनायी, तो अनीति को सहन नहीं करनेवाले राजा ने आरक्षकों को आज्ञा दी, 'पुरोहित-पुत्र कमठ ने महादुश्चरित किया है, लेकिन पुरोहितपुत्र होने से अवध्य है, इसलिए उसे गधे पर बिठाकर विटम्बना सहित गांव में घूमाकर बाहर निकाल दो।' राजा का इस प्रकार का आदेश होते ही आरक्षकों ने कमठ का अंग विचित्र धातु से रंगकर गधे पर बिठाकर निरस वाजिंत्र बजाते हुए पूरे नगर में घुमाकर उसे नगर से बाहर निकाल दिया। नगर के लोगों के देखने पर शर्म से नीचा मुख किया हुआ कमठ कुछ भी प्रतिकार कर सकने की स्थिति में न होने से ज्यों त्यों वन में आया। फिर अत्यंत निर्वेद पाकर **शिव** तापस के पास जाकर तपस्वी बन गया। और वन में रहकर ही उसने अज्ञान तप शुरू किया।

यहां मरुभूति पश्चात्ताप करने लगा कि "मैंने मेरे भाई का दुश्चरित राजा को बताया, वह अति धिक्कार भरा कार्य किया, इसलिए चल, जाकर उस ज्येष्ठ भ्राता को क्षमा कर दूं।" ऐसा विचार करके उसने राजा को पूछा, राजा ने बहुत रोका, फिर भी वह कमठ के पास गया, और उसके चरणों में गिरा। कमठ ने पहले हुई विटम्बना को याद करके अत्यंत क्रोध से एक शिला उठाकर मरुभूति के सर पर डाली, उसके प्रहार से पीडित बने मरुभूति के उपर दुबारा उठाकर अपनी आत्मा को निर्भयता से नर्क में डाले त्यों उसने वह शिला डाली। उसके प्रहार की पीड़ा से आर्त्तध्यान से मृत्यु पाकर मरुभूति विंध्य पर्वत में विध्यांचल जैसा यूथपति हाथी हुआ। उस कमठ की स्त्री वरुणा भी कोपांधपन से कालधर्म पाकर उस यूथनाथ गजेन्द्र की प्यारी हाथिनी बनी। यूथपति गिरि नदी वगैरह पर स्वैच्छा से उसके साथ अखंड संभोगसुख भोगते हुए विशेष

प्रकार से क्रीडा करने लगा।

उस अरसे में पोतनपुर का राजा अरविंद शरद्ऋतु में अपने अंतःपुर की स्त्रियों के साथ हवेली पर क्रीडा करते थे। उस समय क्रीडा करते हुए राजा ने आकाश में इन्द्रधनुष और बीजली को धारण करते हुए और बड़ी शोभा पाते नवीन मेघ को चढ़ा हुआ देखा। उस समय 'अहो ! यह मेघ कैसा रमणीय हैं।' यूं राजा बोलने लगा। इतने में तो बड़े पवन से मेघ अर्क के तूल ती तरह तुरंत नष्ट हो गया। वह देखकर राजा ने सोचा, 'अहो ! इस संसार में सर्व शरीरादिक भी इस मेघ जैसे ही नाशवान् है, तो इसमें विवेकी जन क्या आशा रखें ?' इस प्रकार तीव्रता से शुभ ध्यान धरते हुए तत्काल उस राजा के ज्ञानावरणीय और चारित्रमोहनीय कर्म क्षयोपशम पाये, जिससे उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर **महेन्द्र** नाम के पुत्र को अपने राज्य पर स्थापित करके उसने **समंतभद्राचार्य** से दीक्षा ग्रहण की। क्रमशः गीतार्थ होकर गुरु की आज्ञा से एकलविहारी प्रतिमा धारण करके अरविंदमुनि भवमार्ग का छेदन करने के लिए एकाकीपन से पृथ्वी पर विहार करने लगे। शरीर पर ममता नहीं रखते उस राजा को विहार करते हुए उज्जडड या बस्ती, गांव या शहर, किसी भी स्थान पर कदापि आसक्ति नहीं होती थी। एक बार तपस्या से कृश अंगवाले और विविध अभिग्रह को धारण करनेवाले वे राजमुनि **सागरदत्त** सेठ के साथ अष्टापद गिरि की ओंर चले। सागरदत्त ने पूछा, 'हे महामुनि ! आप कहां जायेंगे ?' मुनि बोले, 'अष्टापद गिरि पर देव-वन्दना के लिए जा रहा हूँ।' सार्थवाह ने दुबारा पूछा, 'उस पर्वत पर कौन से देव हैं ? देव के बिंब किसने करवाये हैं ? कितने हैं ? और वंदना का क्या फल मिलता है ?'' उस सार्थवाह को आसन्नभव्य जानकर अरविंद मुनि बोले, 'हे भद्र ! अरिहंत बिना देव बनने के लिए कोई समर्थ नहीं है। जो वीतराग, सर्वज्ञ, इन्द्रपूजित और धर्मदेशना से पूरे विश्व का उद्धार करनेवाले होते हैं वे अरिहंत देव कहलाते हैं। श्री वृषभ प्रभु के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने श्री ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकरों की रत्नमय प्रतिमा करवाकर अष्टापद पर्वत पर स्थापित की हैं। उनको वंदन करने का मुख्य फल तो मोक्ष है और नरेन्द्र तथा अहमिंद्रादि पद की प्राप्ति - यह उसका आनुषंगिक अवांतर फल है। हे भद्रात्मा ! जो स्वयं हिंसा करनेवाला, दूसरों को दुर्गति देनेवाला व विश्व को व्यामोह करनेवाला हो, उसे देव क्यों कहा जाय ?' इस प्रकार मुनि के बोध से उस सागरदत्त सार्थवाह ने तत्काल मिथ्यात्व को छोड़कर उसने श्रावक के व्रत ग्रहण किए। फिर अरविंद मुनि उसे प्रतिदिन धर्म कथा कहते हुए उसके साथ चले। क्रमशः उस सार्थवाह का सार्थ जहां मरुभूति हाथी हुआ था उस अटवी में आ पहुंचा।

भोजन का समय होते ही क्षीर समुद्र जैसे जलवाले एक सरोवर तट पर सार्थवाह ने पडाव डाला। कोई काष्ठ के लिए, कोई तृण हेतु घूमने लगे और कोई रसोई करने लगे। यूं सर्व अलग

अलग काम में व्यग्र हो गये। उस समय मरुभूति हाथी हाथिनों से घिरकर उस सरोवर पर आया और समुद्र में से मेघ की तरह उस सरोवर में से जल पीने लगा। फिर सूंढ में जल भरकर उछाल उछालकर हाथिनों के साथ बहुत देर तक क्रीडा करके वह सरोवर किनारे आया। वहां दिशाओं का अवलोकन करते हुए उस गजेन्द्र ने समीप में ही एक बड़े सार्थ को ठहरे हुए देखा। तो क्रोध से मुख और नेत्र लाल करके यमराज की तरह उन पर दौड़ा। सूंढ को कुंडलाकार करके, श्रवण (कान) को निष्कंप रखकर, गर्जनाओं से दिशाओं को भरता वह गजेन्द्र सर्व सार्थिकों को मारने लगा। जिससे जीना चाहनेवाले सब स्त्री-पुरुष अपने अपने ऊँट वगैरह वाहन के साथ जान बचाकर भागने लगे।

उस समय अरविंद मुनि अवधिज्ञान से उस हाथी के बोध का समय जानकर उसके सन्मुख कायोत्सर्ग करके स्थिर खडे रहे। उनको देखकर हाथी क्रोध करके उनकी और दौड़ा, परंतु उनके तप के प्रभाव से उनके समीप आकर उसका क्रोध शांत हो गया, जिससे तत्काल संवेग और अनुकम्पा उत्पन्न होने से उनके समक्ष नौसिखिए शिष्य की तरह दयापात्र होकर वह खड़ा रहा। उसके पर उपकार के लिए मुनि ने कायोत्सर्ग छोडा और शांत व गंभीर वाणी से उसे बोध देना प्रारंभ किया, "अरे भद्र ! तेरे मरुभूति के भव को तू क्यों नहीं याद करता ? और में अरविंद राजा हूँ, वह क्यों नहीं पहचानता ? उस भव में स्वीकारा हुआ आर्हत धर्म तूनें छोड़ दिया ? इसलिए अब तू वह सब याद कर और श्वापद जाति के मोह को छोड़ दे।" मुनि की ऐसी वाणी सुनते ही उस गजेन्द्र को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे उसने मुनि को मस्तक से प्रणाम किया। मुनि ने फिर से कहा, "हे भद्र ! नाटक जैसे इस संसार में नट की तरह प्राणी क्षण-क्षण पर रुपांतर पाता है। उस समय तू ब्राह्मणपन में बुद्धिमान और तत्वज्ञ श्रावक था, वह कहां और इस समय जातिस्वभाव से भी मूढ़ ऐसा हाथी कहां ! इसलिए अब वापस पूर्व जन्म में स्वीकारा हुआ श्रावकधर्म तुझे प्राप्त हो।" मुनि का यह वाक्य गजेन्द्र ने सूंढ वगैरह की संज्ञा से कबूल किया। उस समय हाथिनी बनी कमठ की पूर्वभव की स्त्री वरुणा वहां खडी थी, उसको भी संपूर्ण हकीकत सुनने पर गजेन्द्र की तरह जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। अरविंद मुनि ने उस हाथी को विशेष स्थिर करने के लिए गृहीधर्म पुनः सुनाया, जिससे वह गजेन्द्र श्रावक बनकर मुनि को नमन करके स्वस्थान पर चला गया। गजेन्द्र को बोध हुआ देखकर वहां रहे कइं लोग आश्चर्य पाकर तुरंत ही साधु बन गये, और कइ लोग श्रावक बने। उस समय सागरदत्त सार्थवाह जिनधर्म में ऐसा दृढ बना कि उसे देवता भी नहीं डिगा सके। फिर अरविंद महामुनि ने उसके साथ अष्टापद गिरि पर जाकर सब अर्हंत को वन्दना की और वहां से विहार करके अन्यत्र चले गये।

वह गजेन्द्र श्रावक इर्यासमित्यादिक में तत्परतापूर्वक निरतिचार अष्टम वगैरह तपस्या करते हुए भावयति बनकर रहा। सूर्य से तप्त जल पीता और सूखे पत्तों से पारणा करते हुए वह गज हाथिनों के साथ क्रीड़ा करने में विमुख होकर सच्चा विरक्त बुद्धिवाला बन गया। वह हाथी हंमेशां ऐसा ध्यान धरता था कि 'जो प्राणी मनुष्यपन पाकर महाव्रत ग्रहण करता है वही धन्य है, क्योंकि द्रव्य का फल ज्यों पात्र में दान देना है त्यों मनुष्यत्व का फल चारित्र ग्रहण करना ही है। मुझे धिक्कार है कि उस समय मैं, द्रव्य का लोभी ज्यों उसका फल हर जाता है त्यों दीक्षा लिए बिना मनुष्यपन हार गया।' इस प्रकार शुभ भावना धरते हुए वह हाथी गुरु की आज्ञा में स्थिर मनवाला बनकर सुखदुःख में समानतापूर्वक कालनिर्गमन करने लगा।

यहां कमठ मरुभूति के वध से भी शांत न बना। उसका ऐसा बूरा कृत्य देखकर उसके गुरु उससे बोले नहीं, और दूसरे तापसों ने भी उसकी बड़ी निन्दा की। फिर विशेष आर्त्तध्यान से मृत्यु पाकर वह कक्कुट जाति का सर्प बना। उस जन्म में मानो पंखवाला यमराज हो त्यों वह अनेक प्राणियों का संहार करते हुए घूमने लगा। एक बार घूमते घूमते उसने किसी सरोवर के सूर्य की धूप से गर्म हुए प्रासुक जल का पान करते हुए उस मरुभूति गजेन्द्र को देखा, इतने में वह गजेन्द्र कीचड़ में धँस गया। तपस्या से शरीर कृश हो गया होने से वह निकल नहीं सका। उस समय वह कुक्कुट नाग वहां जाकर उसके कुंभस्थल पर डसा। उसका जहर चढ़ने से गजेन्द्र ने अपना अवसानकाल समीप जानकर तत्काल समाधिपूर्वक चतुर्विध आहार के पच्चखाण किए और पंच नमस्कार मंत्र का स्मरणपूर्वक धर्मध्यान धरते हुए मृत्यु पाकर वह सहस्रार देवलोक में सत्रह सागरोपम के आयुष्यवाला देवता बना। वरुणा हाथिनी ने भी ऐसा कठिन तप किया कि जिससे वह मृत्यु पाकर दूसरे कल्प में श्रेष्ठ देवी बनी। इस इशान देवलोक में कोई ऐसा देव नहीं होगा कि जिसका मन रुप-लावण्य की संपत्ति में मनोहर ऐसी इस देवी ने न हर लिया हो ! परंतु उसने किसी देव पर अपना मन जरा सा भी न धरा। सिर्फ उस गजेन्द्र का जीव जो आठवें देवलोक में देव बना था, उसके ही संगम के ध्यान में तत्पर रहने लगी। गजेन्द्र देव अवधिज्ञान से उसे अपने पर अत्यंत अनुरागवाली जानकर उसे सहस्रार देवलोक में ले गया, और अपने अंतःपुर में शिरोमणि करके रखी। पूर्व जन्म में बंधा हुआ स्नेह अति बलवान होता है। उसके साथ सहस्रार देवलोक के योग्य विषयसुख भोगता हुआ वह देव उसके विरह बिना अपना काल निर्गमन करने लगा।

कुछ काल बीतने के बाद वह कुक्कुट नाग मृत्यु पाकर सत्रह सागरोपम के आयुष्यवाला पांचवीं नरकभूमि में नारकी बना। नरकभूमि के योग्य ऐसी विविध प्रकार की वेदना का अनुभव करते हुए उस कमठ का जीव कदापि विश्रांति नहीं पाता था।

प्राग्विदेह के सुकच्छ नाम के विजय में रहे वैताढ्य गिरि पर **तिलका** नाम की एक धनाढ्य नगरी है। उस नगरी में मानो दूसरा इन्द्र हो ऐसा, सब खेचरों को झुकानेवाला **विद्युद्गति** नाम का खेचरपति राजा था। उसे अपनी रुपसंपत्ति में पूरे अंतःपुर में तिलक जैसी **कनकतिलका** नाम की पट्टरानी थी। उसके साथ विषयसुख भोगते हुए उस विद्युद्गति राजा का कुछ काल व्यतीत हुआ। एक बार आठवें देवलोक में जो गजेन्द्र का जीव था, वह च्यूत होकर उस कनकतिलका देवी के उदर में अवतरित हुआ। योग्य अवसर पर संपूर्ण नरलक्षणवाले एक पुत्र को उसने जन्म दिया। पिताने उसका नाम **किरणवेग** रखा। धात्री ने लालन-पालन किया हुआ वह पुत्र बड़ा हुआ और क्रमशः विद्याकला का निधि बनकर युवावस्था को पाया। विद्युद्गति ने प्रार्थनापूर्वक अपना राज्य आग्रहपूर्वक ग्रहण कराया और स्वयं ने **श्रुतसागर** गुरु से व्रत ग्रहण किया।

सद्बुद्धिमान ऐसा वह किरणवेग निर्लोभीपन से पिता की राज्यसंपत्ति का पालन करने लगा और अनासक्तपने से विषयसुख का सेवन करने लगा। कुछ दिनों के बाद उसकी **पद्मावती** नाम की रानी के उदर से तेज के एक स्थानरुप **किरणतेज** नाम का एक पुत्र उसे हुआ। क्रमशः कवचधारी और विद्या को साधनेवाला वह बड़े मनवाला पुत्र जानकर किरणवेग की दूसरी मूर्ति हो ऐसा दिखने लगा। उस समय में **सुरगुरु** नाम के मुनिमहाराज वहां पधारे। यह खबर सुनकर किरणवेग ने उनके पास जाकर अति भक्ति से उनको वन्दना की। फिर वह किरणवेग राजा उस मुनि के चरण के पास बैठा, तो उसके अनुग्रह के लिए मुनि धर्मदेशना देने लगे - "हे राजन् ! इस संसाररुपी वन में चतुर्थ पुरुषार्थ (मोक्ष) साधने में समर्थ मनुष्यपना बड़ा दुर्लभ है। प्राप्त होने पर भी अविवेकी और मूढ प्राणी ज्यों कंगाल व्यक्ति अल्प मूल्य में उत्तम रत्न गँवा दे त्यों विषयसेवन में उसे गँवा देता है। चिरकाल तक सेवन किए वे विषय जीव को अवश्य नर्क में ही डालते हैं, इसलिए मोक्षफलवाला सर्वज्ञभाषित धर्म ही निरंतर सेवन योग्य है।" कानों में अमृत जैसी इस प्रकार की देशना सुनकर संसार से विरक्त बने किरणवेग ने तत्काल अपने पुत्र किरणतेज को राज्य पर बैठाया, और स्वयं ने सुरगुरु मुनि से दीक्षा ली। क्रमशः अंगधारी श्रुतस्कंध हो वैसे वे गीतार्थ बने। एक बार गुरु की आज्ञा से एकलविहारी होकर वे मुनि आकाशगमन शक्ति से पुष्करवर द्वीप में आये। वहां शाश्वत अर्हंतों की वंदना करके वैताढ्यगिरि के पास हेमगिरि पर वे प्रतिमा धारण करके रहे। तीव्र तप से तप्त, परिषह सहन करते व समता में मग्न रहते वे किरणवेग मुनि वहां रहकर अपना काल निर्गमन करने लगे।

एक बार उस कुक्कुट नाग का जीव पांचवीं नरक में से निकलकर उसी हिमगिरि की गुफा में बड़े सर्परुप उत्पन्न हुआ। यमराज का भुजदण्ड हो ऐसा वह सर्प कइं प्राणियों का भक्षण

करते हुए उस वन में घूमने लगा। एक बार घूमते घूमते उसने गिरि की कुंज में स्तंभ जैसे स्थिर होकर ध्यान धरते हुए किरणवेग मुनि को देखा। तत्काल पूर्वजन्म के बैर के कोप से अरुण (लाल) नेत्रवाले हुए उस सर्प ने मुनि को चंदन के वृक्ष की तरह अपने शरीर से लपेट दिया। फिर तीव्र जहर से भयंकर ऐसी दाढ़ो से मुनि को अनेक स्थान पर डंक मारे और डंकवाले सब जगहों पर बहुत विष प्रक्षेपन किया। उस समय मुनि सोचने लगे कि 'अहो ! यह सर्प कर्म के क्षय हेतु मेरा उपकारी है, जरा सा भी अपकारी नहीं है। लम्बे समय तक जीकर भी मुझे कर्म का क्षय ही करना है, तो वह अब स्वल्प समय में ही कर लूं।' इस प्रकार सोचकर आलोचना करके सब जगत के जीवों से क्षमा मांगकर नवकार महामंत्र का स्मरण करते हुए धर्मस्थानस्थ उन मुनि ने तत्काल अनशन ग्रहण किया। वहां से मृत्यु पाकर बारहवें देवलोक में जंबूद्रुमावर्त्त नाम के विमान में बाइस सागरोपम के आयुष्यवाले देवता बने। वहां विविध समृद्धि से विलास करते और देवताओं द्वारा सेवन किये जाते सुख में मग्न होकर काल व्यतीत करने लगे। वह महासर्प हिमगिरि के शिखर में घूमते घूमते एक बार दावानल से दग्ध हो गया। वहां से मरकर बाइस सागरोपम की स्थितिवाले तमःप्रभा नरक में नारकी रुप में उत्पन्न हुआ। वहां ढ़ाइसो धनुष्य की काया से वह नरक की तीव्र वेदना का अनुभव करते हुए, सुख का एक अंश भी पाये बिना काल निर्गमन करने लगा।

इस जंबूद्वीप में पश्चिम महाविदेह में उसके आभूषण तुल्य सुगंध नाम के विजय में **शुभंकरा** नाम की एक बड़ी नगरी है। उस नगरी में अवार्य वीर्यवाला **वज्रवीर्य** नाम का राजा राज्य करता था। वह भूमि पर आये इन्द्र की तरह सब राजाओं में श्रेष्ठ था। उस मूर्ति से मानो दूसरी लक्ष्मीदेवी हो ऐसी **लक्ष्मीवती** नाम की पृथ्वी पर मंडनरुपी मुख्य महिषी (रानी) थी। किरणवेग का जीव देव का आयुष्य पूर्ण करके अच्युत देवलोक से च्यूत होकर सरोवर मे हंस की तरह उस लक्ष्मीवती के उदर में अवतरित हुआ। समय आने पर पवित्र आकृति को धारण करनेवाले और पृथ्वी में आभूषण रुप ऐसे पुत्र को उसने जन्म दिया। उसका **वज्रनाभ** नाम रखा। जगद्रुपी कुमुद को चन्द्ररुप और धात्रियों से लालित हुआ वह कुमार क्रमशः मातापिता के आनन्द के साथ वृद्धि पाया। क्रमशः युवावस्था पाकर, शस्त्र-शास्त्र में विचक्षण बना। पिता ने पवित्र दिन पर उसका राज्याभिषेक किया। फिर वज्रवीर्य राजा ने लक्ष्मीवती रानी सहित व्रत ग्रहण किया। वज्रनाभ पिता के दिए हुए राज्य का अच्छी तरह से पालन करने लगा। कुछ काल के बाद वज्रनाभ को अपनी ही दूसरी मूर्ति हो वैसा व पराक्रम में चक्र के आयुधवाला चक्रवर्ती जैसा **चक्रायुध** नाम का पुत्र हुआ। धात्री के हस्तरुपी कमल में भ्रमररुपी वह कुमार संसार से भय पाते हुए पिता से दीक्षा लेने की इच्छा के साथ प्रतिदिन बढ़ने लगा। चन्द्र की

तरह कलापूर्ण ऐसा वह कुमार क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब पिता ने उसे प्रार्थना की, 'हे कुमार ! इस राज्य को ग्रहण करो। मैं संसार से निर्वेद पाया हूँ, इसलिए आपको राज्यभार सौंपकर इसी समय मैं मोक्ष के एक साधनरुपी दीक्षा ग्रहण करुंगा।' चक्रायुध ने कहा, 'हे पूज्य पिता ! बाल-चापल्य से शायद मुझ से कोई अपराध हो गया हो तो क्या उससे आप मेरे पर ऐसी अकृपा करेंगे ? इसलिए मुझे क्षमा करे और मेरी तरह इस राज्य का आप ही पालन करें। इतनी देर तक मेरा पालन करके अब छोडिए मत।' वज्रनाभ बोला, 'हे निष्पाप कुमार ! तेरा कुछ भी अपराध नहीं है। परंतु अश्वों की तरह पुत्रों का भी बोझ उतारने के लिए ही पालन किया जाता है, इसलिए हे पुत्र ! अब तू कवचधारी बना है, तो मेरा दीक्षा का मनोरथ पूरा कर, क्योंकि यह मनोरथ तेरे जन्म के साथ ही मुझे उत्पन्न हुआ है। अब तेरे होने पर भी यदि मैं राज्यभार से आक्रांत होकर भवसागर में डूब जाऊंगा, तो फिर अच्छे पुत्रों की स्पृहा कौन करेगा ?' इस प्रकार कहकर राजा ने आज्ञा से राज्य नहीं चाहते ऐसे उस पुत्र को राज्य पर बिठाया। कुलीन पुरुषों को गुरुजन की आज्ञा महाबलवान है। उस समय क्षेमंकर नाम के जिनेश्वर भगवान उस नगरी के बहार उद्यान में ठहरे। उनको आया हुआ सुनकर वज्रनाभ राजा अति आनन्द पाकर चिंतन करने लगा, 'अहो ! आज मेरे मनोरथ के अनुकूल ऐसे पुण्योदय से अर्हंत प्रभु का समागम प्राप्त हुआ है।' फिर दीक्षा लेने की इच्छा से वे बड़ी समृद्धि के साथ तत्काल भगवंत के समीप गये, वहां प्रभु की वन्दना करके उनकी अत्युत्तम देशना सुनी। देशना के अंत में अंजलि जोड़कर उन्होंने प्रभु को कहा, "लम्बे काल से वांछित व्रत का दान करके मुझ पर अनुग्रह कीजिए। अन्य उत्तम साधुओं जैसे गुरु भी पुण्य से ही प्राप्त होते हैं, तो आपके जैसे तीर्थंकर भगवंत मुझे गुरुरुप में प्राप्त हुए हैं, जिससे मैं विशेष पुण्यवान हूँ। दीक्षा की इच्छा से मैंने अभी अभी पुत्र का राज्याभिषेक किया है, इसलिए अब दीक्षा दान रुपी आपका प्रसाद पाने के लिए मैं तत्पर बना हूँ।' वज्रनाभ राजा के इस प्रकार के वचन सुनकर दयालु प्रभु ने स्वयं उसे दीक्षा दी। तीव्र तपस्या करनेवाले उन राजर्षि ने भी श्रुत का अभ्यास कुछ समय में किया। फिर गुरु की आज्ञा से एकलविहार प्रतिमा धारण करते हुए और तीव्र तपस्या से जिनका शरीर कृश हो गया है वैसे वे महर्षि अनेक नगर वगैरह में विहार करने लगे। अखण्ड और दृढ़ ऐसे मूलोत्तर गुणों से मानो दो दृढ पंखवाले हो त्यों वे मुनि क्रमशः दूसरे सूर्य समान दिखते वे मुनि सुकच्छ नाम के विजय में पधारे।

वह सर्प जो छट्ठी नर्क में उत्पन्न हुआ था, वह वहां से निकलकर सुकच्छ विजय में आये ज्वलनगिरि की बड़ी अटवी में **कुरंगक** नाम का भील बना। युवावस्था प्राप्त होने पर वह भील प्रतिदिन धनुष्य चढ़ाकर आजीविका के लिए अनेक प्राणियों को मारते हुए उस गिरि की गुफा

में घूमने लगा। यमराज के सैनिकों समान अनेक प्रकार के शिकारी प्राणियों के स्थानरुपी उस अटवी में उस समय वज्रनाभ मुनि भी घूमते घूमते आ पहुँचे। चमुरु वगैरह क्रूर प्राणियों से भय पाये बिना वे मुनि ज्वलनगिरि पर आये, उस समय सूर्य अस्त पा गया। जब सूर्य अस्त पाया तब ज्वलनगिरि की कंदरा में ही मानो उनका नवीन शिखर हो त्यों मुनि कायोत्सर्ग करके रहे। उस समय राक्षसों के कुल की तरह सब दिशाओं में अंधकार व्याप्त हो गया। यमराज के क्रीडापक्षी हो त्यों उल्लू धुत्कार करने लगे। राक्षसों का गायक हो त्यों नहार प्राणी उग्र आक्रंद करने लगे, डंके से वाजिंत्र की तरह पूंछ से पृथ्वी पर प्रहार करते हो त्यों बाघ इधर-उधर घूमने लगे। और विचित्र रुपवाली शाकिनी, योगिनी और व्यंतरियाँ किलकिल शब्द करती हुई वहां इकट्ठी हो गयी। ऐसे स्वभाव से ही अति भयंकर काल और क्षेत्र में भी वज्रनाभ भगवान उद्यान में रहे हो त्यों निर्भय और निष्कंप होकर स्थित रहे। इस प्रकार ध्यान धरते हुए उन मुनि को रात्रि निर्गमन हो गयी। प्रातःकाल होने पर उनके तप की ज्योति की तरह सूर्य की ज्योति प्रकाशित हुई, तो सूर्यकिरण के स्पर्श से ही जंतुरहित भूमि पर युगमात्र दृष्टि डालते हुए मुनि अन्यत्र विहार के लिए वहां से चले।

उस समय बाघ जैसा क्रूर और बाघ के चमड़े को ओढ़नेवाला वह कुरंगक भील हाथ में धनुष्य और भाथा लेकर शिकार करने के लिए निकला, उसने दूर से वज्रनाभ मुनि को आते हुए देखा, तो 'मुझे इस भिक्षुक के असगुन हुए' ऐसे कुविचार से उसे क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर पूर्वजन्म के बेर से अति क्रोध करते हुए उस कुरंगक ने दूर से धनुष्य खींचकर हिरन की तरह उस महर्षि पर बाण से प्रहार किया। उसके प्रहार से पीड़ित होने पर भी आर्त्तध्यान रहित ऐसे वे मुनि 'नमोऽर्हद्भ्यः' यूं बोलते हुए प्रतिलेखना करके पृथ्वी पर बैठ गये। फिर सिद्ध को नमस्कार करते हुए सम्यग् आलोचना करके मुनि ने अनशन व्रत ग्रहण किया। फिर विशेष रुप से ममतारहित होकर सर्व जीवों से क्षमा माँगी। यूं धर्मध्यान परायण होकर मृत्यु पाकर वे मुनि ग्रैवेयक में **ललितांग** नाम के परमर्द्धिक देवता बने। कुरंगक भील उसे एक प्रहार से मृत्यु पाया देखकर, पूर्व बैर के कारण अपने बल संबंधित मद को वहन करते हुए अति हर्ष पाया। जन्म से मृत्यु तक मृगया से आजीविका करनेवाला उस कुरंगक भील क्रमशः मृत्यु पाकर सातवीं नर्क में रौरव नाम के नरकावास में उत्पन्न हुआ।

इस जंबूद्वीप के पूर्वविदेह में सुरनगर जैसा **पुराणपुर** नाम का एक विशाल नगर है। उसमें सैंकडों राजाओं ने पुष्पमाला की तरह जिसके शासन को अंगिकार किया है ऐसा **कुलिशबाहु** नाम का इन्द्र समान राजा था। उसके रुप से सुदर्शना और परम प्रेम का पात्र **सुदर्शना** नाम की मुख्य पट्टरानी थी। शरीरधारी पृथ्वी की तरह उस रानी के साथ क्रीडा करते

हुए वह राजा दूसरे पुरुषार्थ को बाधा पहुँचाएं बिना विषयसुख भोगता था। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होने पर वज्रनाभ का जीव देव संबंधित संबंध से आयुष्य पूर्ण करके ग्रैवेयक से च्यूत होकर उस सुदर्शना देवी के उदर में उत्पन्न हुआ। उस समय रात्रि के अंत भाग में सुखपूर्वक सोती हुई देवी ने चक्रवर्ती के जन्म को सूचित करनेवाले चौदह स्वप्न देखे। प्रातःकाल पर राजा ने यह बात बताने पर उन्होंने उस स्वप्नों के फल की व्याख्या कह सुनायी, जिसे सुनकर देवी ने अत्यंत हर्ष पाया। समय आने पर ज्यों सूर्य को पूर्व दिशा जन्म दे त्यों उसने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उसका जन्मोत्सव करके बडे उत्सव से उसका **सुवर्णबाहु** ऐसा नाम रखा। धात्रियों ने और राजाओं ने एक उत्संग से दूरे उत्संग में लिया हुआ वह कुँवर ज्यों पथिक नदी का उल्लंघन करे त्यों धीरे धीरे बाल्यवय का उल्लंघन कर गया। पूर्वजन्म के संस्कार से उसने सर्व कलाएं सुखपूर्वक सम्पादन करके और कामदेव के सदनरुपी युवावस्था को प्राप्त हुआ। वह सुवर्णबाहु कुमार रुप से और पराक्रम से जगत में असामान्य और विनयलक्ष्मी से सौम्य व पराक्रम से अधृष्य[1] हुआ। कुलीशबाहु राजा ने पुत्र को योग्य बना जानकर आग्रह से राज्य पर बिठाया और स्वयं भवः वैराग्य से दीक्षा ली। सौधर्म देवलोक में इन्द्र की तरह पृथ्वी में अखण्ड आज्ञा का प्रवर्तन करवाकर अनेक प्रकार से भोग भोगते हुए वह कुमार सुखरुपी अमृतरस में मग्न रहने लगा।

उस समय हजारों हाथियों से लिपटा हुआ कुमार सूर्य के अश्वों में आठवाँ[2] हो ऐसे एक अपूर्व अश्व पर आरुढ़ होकर क्रीड़ा करने निकल पडा। अश्व की गति देखने के लिए राजा ने उसे चाबूक फटकारी तो तत्काल पवनवेगी मृग की तरह वह सत्वर दौड़ा। उसे खड़ा रखने के लिए ज्यों ज्यों राजा उसकी लगाम खींचता, त्यों त्यों वह विपरीत शिक्षित अश्व अधिकाधिक दौड़ने लगा। दुर्जन मान्यवर गुरुजनों को छोड़ दे, त्यों मूर्तिमंत पवन जैसे अश्व ने क्षणभर में सब सैनिकों को दूर छोड़ दिया। अति वेग के कारण वह अश्व 'भूमि पर चलता है या आकाश में चलता है' वह भी कोई जान नहीं पाया और राजा भी मानो उसके उपर ही उद्‌गत हुए हो त्यों लोग तर्क करने लगे। क्षणभर में तो अश्वसहित राजा विचित्र वृक्षों से संकीर्ण और विविध प्राणियों से आकुल ऐसे दूरवर्ती वन में आ पहुँचा। वहां अपने आशय जैसा निर्मल एक सरोवर राजा को दिखाई दिया। उसे देखते ही तृषातुर और श्वासपूर्ण बना अश्व अपने आप खड़ा रहा। फिर अश्व पर से जिन उतारकर उसे अश्व को नहलाया और जल पिलाया। फिर स्वयं स्नान करके जलपान किया। सरोवर में से निकलकर क्षणभर उसके तट पर विश्राम लेकर राजा आगे चला, वहां एक रमणीय तपोवन नजर आया। उसमें तापसों के छोटे छोटे बालक उत्संग में मृग

१. कोई धारण न कर सके ऐसा। २. सूर्य के रथ में सात अश्व जुड़े होते हैं - ऐसी लोकोक्ति है, उसके समान यह अश्व होने से आठवां कहा है।

के बच्चों को लेकर क्यारों में रहे वृक्षों की जड़ो को जल से सिंचित कर रहे थे, जिसे देखकर राजा बहुत खुश हुआ। उस तपोवन में प्रवेश करते हुए सोच में उस राजा को मानो नवीन कल्याण सूचित करता हो त्यों दक्षिण नेत्र फड़का। फिर हर्षयुक्त चित्त से आगे चलते हुए दक्षिण की ओर सखियों के साथ जल के घडे से वृक्षों का सिंचन करते हुए एक मुनि-कन्या उसे नज़र आयी। उसे देखकर राजा सोचने लगा कि 'अहो ! ऐसा रुप अप्सराओं मे, नागपत्नी में या मनुष्य स्त्रियों में दिखाई नहीं दिया है। यह बाला तो तीन लोक मैं भी अधिक रुपवाली है।' ऐसा विचार करके वह वृक्षों की आड़ में रहकर उसे देखने लगा।

इतने में वह बाला सखियों सहित माधवीमण्डप में आयी। फिर पहने हुए वल्कल वस्त्र के दृढ़ बंधन शिथिल करके बकुल पुष्प जैसे सुगंधित मुखवाली वह बाला बोरसली के वृक्ष को सिंचने लगी। राजा ने फिर सोचा, 'इस कमल जैसे नेत्रवाली रमणी का ऐसा सुन्दर रुप कहां ! और एक साधारण स्त्रीजन के योग्य ऐसा यह काम कहां ! यह तापस कन्या नहीं होगी, क्योंकि मेरा मन उसके पर रागी होता है, इससे जरुर यह कोई राजपुत्री होगी, और कहीं से यहां आयी होगी ?' राजा ऐसा सोच ही रहा था कि उस **पद्मावती** के मुख के पास उसके श्वास की सुगंध से आकर्षित होकर एक भ्रमर आया, और उसके मुख पर मंडराने लगा। तो वह बाला भय से करपल्लव कंपाती हुई उसे उडाने लगी, लेकिन भँवरे ने उसे न छोडा, तब अपनी सखी को कहने लगी, 'इस भँवरे-राक्षस से मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' सखी बोली, 'बहन ! सुवर्णबाहु राजा के सिवा तेरी रक्षा करने के लिए दूसरा कौन समर्थ है ? इसलिए यदि रक्षा करने का प्रयोजन हो तो उस राजा का अनुसरण कर।' पद्मावती की सखी के ऐसे वचन सुनते ही 'जब तक वज्रबाहु का पुत्र पृथ्वी पर राज्य करता है तब तक कौन उपद्रव करनेवाला है ?' यूं बोलते हुए प्रसंग जाननेवाला सुवर्णबाहु तत्काल प्रगट हुआ। उसे अचानक प्रकट हुआ देखकर दोनो बाला भय पा गयी, तो उचित प्रतिपत्ति कुछ भी न कर सकी और कुछ बोल भी न सकी। 'ये दोनो भय पा गयी है' ऐसा जानकर राजा पुनः बोला, 'हे भद्रे ! यहां आपका तप निर्विघ्न चल रहा है ?' उसका प्रश्न सुनकर सखी ने धीरजपूर्वक कहा, 'जब तक वज्रबाहु का कुमार राज्य करता है तब तक तापसों के तप में विघ्न करने के लिए कौन समर्थ है ? हे राजन् ! यह बाला तो सिर्फ कमल की भ्रांति से किसी भँवरे ने उसके मुख पर दंश दिया, तो कायर होकर रक्षा करों, रक्षा करों बोली थी।' इस प्रकार कहकर उसने एक वृक्ष के नीचे आसन देकर राजा को बिठाया।

इसके बाद सखी ने स्वच्छ बुद्धि से अमृत समान वाणी से पूछा, 'आप निर्दोष मूर्ति से कोई असाधारण व्यक्ति दिखते हो, फिर भी कहो कि आप कौन हो ? कोई देव हो ? या विद्याधर

श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान
श्री जीरावला तीर्थ

श्री वरकाणा पार्श्वनाथ भगवान
श्री वरकाणा तीर्थ

-: सौजन्य दाता :-

मंजुलाबेन छगनलाल मलुकचंदजी

बरडगाम, सांचोर (राजस्थान)

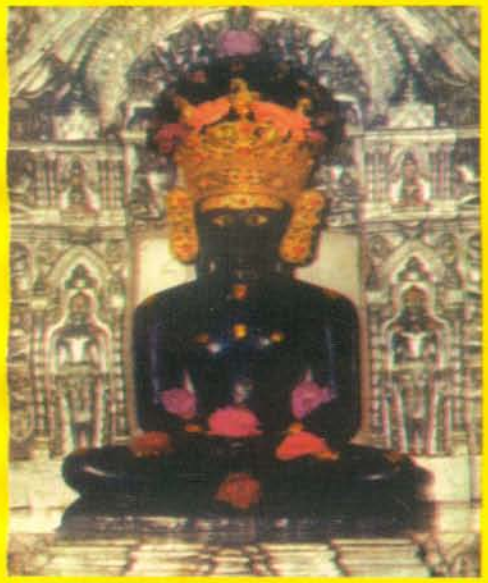

श्री नाकोडा पार्श्वनाथ भगवान
श्री नाकोडा तीर्थ

श्री नवरवंडा पार्श्वनाथ भगवान
श्री घोघा तीर्थ

श्री स्तंभन पार्श्वनाथ भगवान
श्री खंभात तीर्थ

-: सौजन्य दाता :-

पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मंदिर ट्रस्ट

महावीरनगर, सांगली (महाराष्ट्र)

हो ?' स्वयं अपनी पहचान देना अयोग्य मानकर राजा ने कहा, 'मैं सुवर्णबाहु राजा का आदमी हूँ, और उनकी आज्ञा से इन आश्रमवासियों के विघ्नों का निवारण करने के लिए यहां आया हूँ, क्योंकि ऐसे कार्य में उस राजा का महान प्रयत्न हैं।' राजा के ऐसे उत्तर से 'यह स्वयं राजा ही है' ऐसा चिंतन करती सखी को राजा ने कहा, 'यह बाला ऐसा असंभव कार्य से अपने देह को क्यों कष्ट देती है ?' सखी ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा, 'रत्नपुर के राजा **खेचरेन्द्र** की यह **पद्मा** नाम की कुमारी है, उसकी माता का नाम **रत्नावली** है। इस बाला का जन्म होते ही उसके पिता मृत्यु पा गये। फिर राज्य के लिए उस राजा के पुत्र परस्पर लड़ने लगे, जिससे उसके राज्य में बड़ा विद्रोह हो गया। उस समय रत्नावली रानी इस बाला को लेकर अपने भाई और तापसों के कुलपति **गालवमुनि** के आश्रम में भाग आयी। एक बार किसी दिव्य ज्ञानी मुनि यहां आ चढ़े। उनको गालव तापस ने पूछा, 'इस पद्माकुमारी का पति कौन होगा ?' तो वे महामुनि बोले, 'वज्रबाहु राजा के चक्रवर्ती पुत्र को अश्व यहां हरण कर लायेगा, उससे यह बाला ब्याहेगी।' यह सुनकर राजा ने मन में ही सोचा कि 'वक्राश्व जो मुझे यहां अचानक हर लाया है, विधि ने इस रमणी के साथ मिलन कराने के लिए यह उपाय ही रचा होगा।' इस प्रकार सोचकर राजा ने कहा, 'हे भद्र ! वे कुलपति गालव मुनि इस समय कहां हैं ? उनके दर्शन से मुझे विशेष आनन्द उत्पन्न होगा।' वह बोली, 'पूर्वोक्त महामुनि ने आज यहां से विहार किया है, इसलिए उन्हें बिदा देने के लिए मुनि गए हैं। वे अब उनकों प्रणाम करके यहां आयेंगे।' इतने में 'हे नन्दा ! पद्मा को यहां ले आ, कुलपति के आने का समय हो गया है।' इस प्रकार एक वृद्ध तापसी ने कहा। उस समय घोड़ो की टापों से अपने सैन्य को आया जानकर राजा ने कहा, 'तुम जाओ, मैं भी इस सैन्य के क्षोभ से आश्रम की रक्षा करुं।' फिर **नंदा** सखी सुवर्णबाहु राजा को टेढ़ी ग्रीवा से निहारती पद्मा को बड़ी मुश्किल से ले गइ।

कुलपति आये तो नंदा ने उनको और रत्नावली को हर्ष से सुवर्णबाहह राजा का वृत्तांत सुनाया। वह सुनकर गालव ऋषि बोले, 'उन मुनि का ज्ञान सचमुच भरोसेदायक सिद्ध हुआ। महात्मा जैन मुनि कदापि मृषा भाषण नहीं करते। हे बालाओं ! वह राजा अतिथि होने से पूजनीय है। और राजा वर्णाश्रम के गुरु कहलाते हैं। वे हमारी पद्मा के पति भी होनेवाले है, तो चलिए, हम पद्मा को साथ लेकर उनके पास जाये।' फिर कुलपति मालव रत्नावली, पद्मा और नंदा को साथ लेकर राजा के पास गये। राजा ने खड़े होकर उनका सत्कार किया और कहा, 'मैं आपके दर्शन करने के लिए उत्कंठित था और मुझे आपके पास ही आना चाहिए लेकिन आप स्वयं यहां क्यों आये ?' गालव बोले, 'अन्य कोई भी यदि हमारे आश्रम पर आये तो वह हमारे अतिथिपन से पूज्य हैं, उसमें भी आप तो विशेष पूज्य हो। यह पद्मा जो हमारी

भानजी है, उसे ज्ञानी ने आपकी पत्नी कही है। उसके पुण्ययोग से आप यहां आ पहुँचे हो, इसलिए अब इस बाला का पाणिग्रहण करें।' गालवमुनि के वचन से मानो दूसरी पद्मा (लक्ष्मी) हो त्यों पद्मा को सुवर्णबाहु गांधर्वविवाह से ब्याहे। फिर रत्नावली ने प्रसन्नचित्तवाले सुवर्णबाहु को कहा, 'हे राजन् ! आप इस पद्मा के हृदयकमल में सदा सूर्य समान होकर रहो।'

उस समय रत्नावली का **पद्मोत्तर** नाम का एक सौतेला पुत्र था, वह खेचरपति कुछ उपहार लेकर विमानों से आकाश को आच्छादित करते हुए उस प्रदेश में आया। रत्नावली द्वारा उसको पूरी हकीकत बताने पर वह सुवर्णबाहु को नमस्कार करके अंजलि जोड़कर कहने लगा, 'हे देव ! यह तुम्हारा वृत्तांत जानकर मैं आपके सेवन के लिए ही यहां आया हूँ। इसलिए हे राजन् ! मुझे आज्ञा दीजिए, और हे प्रतापी ! वैताढ्य गिरि पर मेरा नगर है, वहां आप पधारें। वहां आने पर विद्याधरों की सब ऐश्वर्यलक्ष्मी आपको प्राप्त होगी।' उसके अति आग्रह से राजा ने उसका वचन स्वीकारा। उस समय पद्मा ने अपनी माता को नमन करते हुए गद्‌गद् वाणी से कहा, 'हे माता ! अब मुझे पति के साथ जाना पड़ेगा, क्योंकि उनके सिवा अब मेरा अन्य स्थान है ही नहीं, इसलिए कहिए कि अब कब मिलेंगे ? ये बंधु जैसा उद्यान वृक्षों को, पुत्र समान मृगशिशुओं को और ये बहिनों समान मुनिकन्याओं को भी मुझे छोड़नी पडेगी। यह प्यारा मयूर मेघ बरसने पर षड्‌ज स्वर कहकर अपना ताण्डव अब किसके समक्ष दिखायेगा ? यह बोरसल्ली, अशोक व आम के वृक्षों को बछडो को गायों की तरह मेरे बिना पयपान कौन करायेगा ?' रत्नावली बोली, 'वत्से ! तू एक चक्रवर्ती राजा की पत्नी बनी है, तो अब धिक्कार से भरे इस वनवास के वृत्तांत को भूल जाना, और इस पृथ्वी के इन्द्र समान चक्रवर्ती राजा का अनुसरण करना, जिससे तू उसकी पटरानी बनेगी। ऐसे हर्ष के समय अब तू शोक करना छोड दे।' इस प्रकार कहकर उसके मस्तक पर चुंबन करके, दृढ़तापूर्वक आलिंगन किया और गोद में बिठाकर रत्नावली ने सीख देना शरू किया -

"हे वत्से ! अब तू पतिगृह जा रही है, इसलिए वहां हंमेशा प्रियंवदा बनना, पति के भोजन कर लेने के बाद भोजन करना, और सोने के बाद सोना। चक्रवर्ती की अन्य स्त्रियां जो तेरी सपत्नी (सौतने) कदापि सापत्न भाव दिखाए तो भी तू उनके अनुकूल ही रहना, क्योंकि 'महत्त्ववाले व्यक्तियों की ऐसी योग्यता है।' हे वत्से ! हंमेशां मुख के आडे वस्त्र रखकर, नीची दृष्टि करकें कुमुदिनी की तरह असूर्यपश्या (सूर्य को भी न देखनेवाली) बनना। हे पुत्री ! सासु के चरणकमल की सेवा में हँसी बनकर रहना, और कदापि मैं चक्रवर्ती की पत्नी हूँ ऐसा गर्व मत करना। तेरी सपत्नी की संतान को सर्वदा अपना ही पुत्र मानना और उनको अपनी संतान की तरह अपनी गोदरूपी शय्या में सुलाना।" इस प्रकार अपनी माता

के अमृत जैसे शिक्षावचनों का कर्णांजलि द्वारा पान करके, नमन करके उससे बिदा ली। फिर वह अपने पति की अनुचरी बनी।

पद्मोत्तर विद्याधर ने अपनी माता रत्नावली को प्रणाम करके चक्रवर्ती को कहा, 'हे स्वामिन्! मेरे इस विमान को अलंकृत करे।' फिर गालव मुनि से अनुमति लेकर सुवर्णबाहु राजा अपने परिवार सहित पद्मोत्तर विमान में बैठे। पद्मोत्तर अपनी बहिन पद्मा सहित सुवर्णबाहु को वैताढ्यगिरि पर अपने रत्नपुर नगर में ले गया। वहां देवों के विमान समान एक रत्नजडित महल अनेक खेचरों सहित सुवर्णबाहु को रहने के लिए सौंपा और स्वयं हंमेशा दास की तरह उनके पास ही रहकर उनकी आज्ञा का पालन करने लगा, और स्नान, भोजनादिक से उनकी योग्य सेवा-भक्ति करने लगा। वहाँ रहकर सुवर्णबाहु ने अपनी पुण्यसंपत्ति से दोनों श्रेणी में रहनेवाले सभी विद्याधरों का ऐश्वर्य प्राप्त किया और विद्याधरों की कइ कन्याओं से ब्याहे। विद्याधरों ने सब विद्याधरों के ऐश्वर्य पर उनका अभिषेक किया। फिर पद्मा वगैरह अपनी ब्याही हुई सभी खेचरियों को साथ लेकर सुवर्णबाहु परिवार सहित अपने नगर गया। सुवर्णबाहु राजा को पृथ्वी पर राज्य करते हुए क्रमशः चौदह रत्न प्राप्त हुए। देवों द्वारा भी सेवे गए सुवर्णबाहु चक्रवर्ती ने चक्ररत्न के मार्ग को अनुसरते हुए षट्खण्ड पृथ्वी मण्डल को लीलामात्र में साध लिया। फिर सूर्य की तरह अपने तेज से सब के तेज को दबाते हुए सुवर्णबाहु चक्रवर्ती विचित्र क्रीड़ा से क्रीडा करते हुए आनन्द में रहने लगे।

एक बार चक्रवर्ती महल पर बैठे थे, इतने में आकाश से देवताओं के वृंद को उतरकर नीचे जाता हुआ देखा। उसे देखकर वह चकित हुआ। उसी समय उसे सुनाई दिया कि 'जगन्नाथ तीर्थंकर समवसरे (पधारे) हैं।' यह सुनते ही श्रद्धाबद्ध मनवाले चक्रवर्ती उनकी वन्दना करने गये। वहां जाकर प्रभु को नमस्कार करके, योग्य स्थान पर बैठकर उनसे आकस्मिक अमृत लाभ जैसी देशना सुनी। फिर कइं भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देकर प्रभु ने वहां से अन्यत्र विहार किया, और सुवर्णबाहु चक्रवर्ती अपने स्थान पर आये। फिर तीर्थंकर की देशना सुनने आये हुए देवताओं को बार बार याद करके 'मैंने कइ बार ऐसे देवता देखे हैं' ऐसा चिंतन करते हुए उन्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। तो वे सोचने लगे, "जब मैं मेरा पूर्वजन्म देखता हूँ, तब प्रत्येक मनुष्यभव में प्रयत्न करने भी आज तक मेरे भव का अंत नहीं आया है। जो देवेन्द्रपने को प्राप्त हुआ हो वो प्राणी मनुष्यपने में भी दुबारा तृप्ति पाता है। अहो! कर्म से जिसका स्वभाव ढंका हुआ है ऐसी आत्मा को यह क्या मोह हुआ है? ज्यों मार्ग भूला मुसाफिर भ्रांत होकर अन्य मार्ग पर जाता है, त्यों मोक्ष-मार्ग को भूला हुआ प्राणी भी स्वर्ग, मर्त्य, तिर्यंच और नरकगति में गमनागमन किया करता है, इसलिए अब मैं सिर्फ मोक्षमार्ग के लिए ही विशेष

प्रयत्न करुंगा, क्योंकि सामान्य प्रयोजन में भी ऊबना नहीं चाहिए, क्योंकि वही कल्याण की जड़ है।'' इस प्रकार निश्चय करके सुवर्णबाहु चक्रवर्ती ने अपने पुत्र को राज्य पर बिठाया। उस समय श्री जगन्नाथ जिनेश्वर भी बिहार करते करते वहां पधारे। सुवर्णबाहु ने तत्काल प्रभु के पास जाकर दीक्षा ली और उग्र तपस्या करके क्रमशः गीतार्थ बने। इसके बाद अर्हंत भक्ति वगैरह से कइ स्थानकों का सेवन करके उन सद्बुद्धि सुवर्णबाहु मुनि ने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया।

एक बार विहार करते हुए वे मुनि क्षीरगिरि के पास आये विविध प्रकार के हिंसक प्राणियों से भयंकर ऐसी **क्षीरवर्णा** नाम की अटवी में आये। वहां तेज में सूर्य समान सुवर्णबाहु मुनि सूर्य सम्मुख दृष्टि स्थिर रखकर कायोत्सर्ग करते हुए आतापना लेने लगे। उस समय वह कुरंगक भील जो नर्क में से निकलकर उसी पर्वत पर शेर बना था, वह घूमते घूमते वहां आ पहुँचा। अगले दिन भी उसे भक्ष्य नहीं मिला होने के कारण वह क्षुधातुर था। यमराज जैसे उस शेर ने दूर से महर्षि को देखा। पूर्व जन्म के वेर से मुख फाडते हुए और पूंछ पछाडकर पृथ्वी को फोड रहा हो त्यों वह क्षुद्र पंचानन मुनि पर दौड आया। कान व बाल ऊँचे करके गर्जना से गिरिगुहा को भरते हुए बड़ी छलांग लगाकर मुनि को पंजा मारा। शेर के उछलकर आने से पूर्व ही देह को आकांक्षारहित ऐसे उस मुनि ने तत्काल चतुर्विध आहार के पच्चखाण कर लिए, आलोचना करते हुए सब प्राणियों से क्षमा माँगी और शेर पर थोड़ा सा भी दुर्ध्यान लाये बिना धर्मध्यान में स्थित रहे। फिर केसरी शेर द्वारा विदीर्ण बने वे मुनि मृत्यु पाकर दसवें देवलोक में महाप्रभ नाम के विमान में बीस सागरोपम की स्थितिवाले देव बने। वह सिंह मृत्यु पाकर दस सागरोपम की स्थिति पर चौथे नरक में गया और वापस तीर्यंच योनि में आकर अनेक प्रकार की पीड़ा भोगने लगा।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येनवमे पर्वणि श्री पार्श्वनाथ पूर्वभवनवक वर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः।।२।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

तृतीय सर्ग

श्री पार्श्वनाथ प्रभु का जन्म, कौमारावस्था, दीक्षाग्रहण और केवलज्ञान की उत्पत्ति

पूर्वोक्त सिंह का जीव असंख्य भवों में दुःख का अनुभव करते हुए एक बार किसी गाँव में एक गरीब ब्राह्मण के घर पुत्ररूप मे उत्पन्न हुआ, उसका जन्म होते ही उसके माता, पिता और भ्राता वगैरह सब मृत्यु पा गये। लोगों ने दया करके उसको जिलाया और उसका कमठ ऐसा नाम रखा। बाल्यवय पार करके वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, परंतु दुःखी स्थिति को भोगते हुए व लोगों से परेशान होते हुए वह बड़ी मुश्किल से भोजन पाता था। एक बार गाँव के धनाढ्यों को रत्नालंकार को धारण करते हुए देखकर उसे तत्काल वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कि 'हजारों के पेट भरनेवाले और विविध आभूषणों को धारण करनेवाले ये गृहस्थ देवता समान दिखते है, इसलिए मेरा मानना है कि वह पूर्वजन्म के तप का ही फल है। मैं सिर्फ भोजन की अभिलाषा करते हुए इतना दुःखी होता हूँ, इसलिए मैंने पहले कुछ तप किया लगता नहीं है, इसलिए अब इस भव में मैं जरुर तप करुंगा।' ऐसा विचार करके उस कमठ ने तापसव्रत ग्रहण किया और कंदमूलादिक का भोजन करते हुए पंचाग्नि तप करने लगा।

इस जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र के आभूषण जैसी गंगानदी के पास **वाराणसी** नाम की नगरी है। उस नगरी में चैत्यों पर गंगा के तरंग जैसी धजाएं व पद्मकोश जैसे सुवर्ण के कुंभ सुशोभित है। उस नगरी के किल्ले पर आधी रात को जब पूर्णिमा का चन्द्र आता है, तब वह देखनेवालों को चांदी के कंगूरों का भ्रम दिलाता है। इन्द्रनील मणि से निर्मित वहां के वासगृहों की भूमि में अतिथियों की स्त्रियां जल समजकर हाथ झालती है, जिससे उनका उपहास्य होता है। उस नगर के चैत्यों में सुगंधित धूपों का धूम्र इतना ज्यादा प्रसरता रहता है कि मानो दृष्टिदोष न लगने के लिए नील वस्त्र बांधा हो ऐसा लगता है। संगीत में होते मुरज शब्दों से नगर में मेघ के ध्वनि की शंका करते हुए मयूर हंमेशा वर्षाऋतु की भाँति केकावाणी बोला करते हैं। ऐसी सुशोभित वाराणसी नगरी में इक्ष्वाकु वंश में **अश्वसेन** नाम का एक राजा हुआ। उसने अश्वसेना द्वारा दिशाओं के भागों रणांगन जैसे करे थे। वह राजा सदाचाररुपी नदी में उत्पन्न होनेवाले गिरि (पर्वत) थे, गुणरुप पक्षियों के आश्रयवृक्ष थे और पृथ्वी में लक्ष्मीरुपी हाथिनी के बंधस्तंभ समान थे। राजाओं में पुंडरीक समान उस राजा की आज्ञा को सर्प जैसे दुराचारी राजा भी उल्लंघन नहीं कर सकते थे। उस राजा को सर्व स्त्रियों में सिरताज और सपत्नियों में अवामा[1] ऐसी **वामादेवी** नाम की पटरानी थी। वह अपने पति के यश समान निर्मल शील को धारण

१. प्रिय - अनिष्ट नहीं

करती थी, और स्वाभाविक पवित्रता से मानो दूसरी गंगा हो ऐसी दिखती थी। इन गुणों से वामादेवी रानी पति को बहुत वल्लभ थी, फिर भी वह वल्लभपना जरा सा भी नहीं दिखाती थी, अर्थात् उससे संबंधित अभिमान नहीं रखती थी।

यहां प्राणत कल्प में उत्तम देव समृद्धि भोगकर **सुवर्णबाहु राजा के जीव ने** अपना देव संबंधित आयुष्य पूर्ण किया। फिर चैत्रमास की कृष्ण चतुर्थी को विशाखा नक्षत्र में वहां से च्यूत होकर वह देव आधीरात्रि में वामादेवी के उदर में अवतरित हुआ। उस समय वामादेवी ने तीर्थंकर के जन्म को सूचित करनेवालें चौदह महास्वप्न मुख में प्रवेश करते हुए देखे। इन्द्रों ने, राजा ने और तद्वेत्ता स्वप्नपाठकों नें स्वप्न की व्याख्या कह सुनायी, उसे सुनकर हर्ष पायी देवी उस गर्भ को धारण करते हुए सुख से काल निर्गमन करने लगी। क्रमशः पौष माह की कृष्ण दसमी को अनुराधा नक्षत्र में ज्यों विदुरगिरि की भूमि रत्न को जन्म दे त्यों वामादेवी ने सर्प के लांछनवाले नीलवर्णी पुत्र को जन्म दिया। तत्काल छप्पन दिक्कुमारियों ने आकर अर्हंत प्रभु का और उनकी माता का सूतिका-कर्म किया। फिर शकेन्द्र ने वहां आकर देवी को अवस्वापिनी निद्रा दी, उनके बगल में प्रभु का प्रतिबिम्ब स्थापित करके, स्वयं पांच रुप धरे, उसमें एक रुप ने प्रभु को ले लिया, दो रुपों ने चंवर धारण किये, एक रुप ने प्रभु पर छत्र धरा और एक रुप वज्र उछालते, सुंदर चाल से चलते, व तेढ़ी गरदन से प्रभु के मुख की ओर दृष्टि रखते हुए शीघ्रतापूर्वक मेरुगिरि की अतिपांडुकबला नाम की शिला पर पहुंचे। वहां प्रभु को उत्संग में लेकर शक्रेन्द्र सिंहासन पर बैठे। उस समय अच्यूत वगैरह त्रैसठ इन्द्र भी तत्काल वहां आये और उन्होंने विधिपूर्वक प्रभु का जन्माभिषेक किया। फिर सौधर्मेन्द्र ने इशानेन्द्र के उत्संग में प्रभु को बिठाकर वृषभ के शृंग में से निकलते जल द्वारा स्नान करवाया। फिर चन्दनादिक से प्रभु का अर्चन करके अंजलि जोड़कर इन्द्र ने पवित्र स्तुति का आरंभ किया -

"प्रियंगु वृक्ष जैसे नीलवर्णवाले, जगत के प्रिय हेतुभूत व दुस्तर संसाररुपी सागर में सेतुरुप आपको मैं नमस्कार करता हूँ। ज्ञानरुपी रत्न के कोश (भंडार) रुपी, विकसित कमल जैसी कांतिवाले और भव्य प्राणीरुप कमल में सूर्य समान हे भगवंत ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। फलदायक ऐसे एक हजार आठ नरलक्षण को धारण करनेवाले और कर्मरुपी अंधकार को नाश करने में चन्द्र समान आपको मेरे नमस्कार हैं। तीन जगत में पवित्र, ज्ञानादि रत्नत्रय धारण करनेवाले कर्मरुप स्थल को खोदनन में खनित्र[1] समान और श्रेष्ठ चारित्र के धारक ऐसे आपको मेरे नमस्कार हैं। सर्व अतिशय के पात्र, अति दयावान और सर्व संपत्ति के कारणभूत ऐसे हे परमात्मन् ! आपको मेरे नमस्कार हैं। कषाय को दूर करनेवाले, करुणा के क्षीरसागर

१. खोदने का हथियार।

और रागद्वेष से विमुक्त ऐसे हे मोक्षगामी प्रभु ! आपको मेरे नमस्कार हैं। हे प्रभु ! यदि आपके चरणों की सेवा का फल हो तो उस फल से आपके पर जनमोंजनम मुझे भक्तिभाव प्राप्त हो।'' इस प्रकार प्रभु की स्तुति करके उनको ले-जाकर वामादेवी की बगल में रखा और उन्हें दी हुई अवस्वापिनी निद्रा और पास रखे हुए प्रतिबिंब को लेकर इन्द्र अपने स्थानक पर गये।

अश्वसेन राजा ने प्रातःकाल में कारागृहमोक्षपूर्वक[1] उनका जन्मोत्सव किया। जब प्रभु गर्भ में थे, तब माता ने एक दिन कृष्णपक्ष की रात्रि को भी बगल में से होकर एक सर्प को जाते हुए देखा था, फिर यह बात तुरंत ही पति को बतायी थीं, उसे याद करके और उस गर्भ का ही प्रभाव था ऐसा निर्णय करके राजा ने कुमार का **पार्श्व** ऐसा नाम रखा। इन्द्र ने आज्ञा दी हुई अप्सरारुपी धात्रियों द्वारा लालित किए हुए जगत्पति, राजाओं के उत्संगों में फिरते फिरते वृद्धि पाने लगे। क्रमशः नौं हाथ ऊँची कायावाले होकर कामदेव को क्रीडा करने के उपवन समान और मृगाक्षियों पर जादू करनेवाली युवावस्थाको प्राप्त हुए। मानो नीलमणि के सारथि या नीलोत्पल की लक्ष्मी से बने हो त्यों पार्श्वप्रभु काया की नीलकांति से शोभा पाने लगे। बड़ी शाखावाले वृक्ष की तरह बड़ी भुजावाले और बड़े तटवाले गिरि की तरह विशाल वक्षःस्थल वाले प्रभु विशेष शोभा पाने लगे। हस्तकमल, चरणकमल, वदनकमल और नेत्रकमलों से अश्वसेन के कुमार फैले हुए कमलों के वन द्वारा बड़ा द्रह शोभा पाये त्यों शोभा पाने लगे, और वज्र जैसा दृढ़, सर्प के लांछनवाले और वज्र के मध्यभाग समान कृश उदरवाले प्रभु वज्रऋषभनाराच संहनन को धारण करते हुए शोभा पाने लगे। प्रभु का ऐसा स्वरुप देखकर स्त्रियां चिंतन करती थी कि 'यह कुमार जिसका पति बनेगा वह स्त्री इस पृथ्वी पर धन्य है।'

एक बार अश्वसेन राजा सभा में बैठकर जिनधर्म की कथा में तत्पर थे, इतने में प्रतिहार ने आकर विज्ञप्ति की, 'हे नरेश्वर ! सुन्दर आकृतिवाला कोई पुरुष द्वार पर आया है, वह स्वामी को कुछ कहना चाहता है, तो प्रवेश की आज्ञा देकर उसके पर प्रसन्न बनिए।' राजा ने कहा, 'उसे सत्वर प्रवेश करा दे।' ''न्यायी राजा के पास आकर सब विज्ञप्ति करते हैं।'' द्वारपाल ने उसे प्रवेश कराया तो उसने राजा को पहले नमस्कार किए और फिर प्रतिहार के बताये हुए आसन पर वह बैठा। राजा ने पूछा, ''हे भद्र ! आप किसके सेवक हो ? कौन हो ? और किस कारण से आप मेरे पास आये हो ?'' वह पुरुष बोला, ''हे स्वामिन् ! इस भरतक्षेत्र में लक्ष्मियों के क्रीडास्थान जैसा **कुशस्थल** नाम का एक नगर है। उस नगर में शरणार्थी के कवचरुप व याचकों के कल्पवृक्ष **नरवर्मा** नाम के पराक्रमी राजा थे। वे अपनी सीमाओं के कइं राजाओं को साधकर प्रलयकाल के सूर्य की तरह तीव्र तेज से प्रकाशित थे। जैनधर्म में तत्पर राजा ने

१. कैदियों को छोड़ देते हुए।

मुनिराज की सेवा में सदैव उद्यत रहकर अखण्ड न्याय और पराक्रम से चिरकाल तक अपने राज्य का पालन किया। फिर संसार से उद्वेग पाकर राज्यलक्ष्मी को तृण समान छोड़कर सुसाधु गुरु से उन्होंने दीक्षा ग्रहण की।'' उस पुरुष ने इतनी आधी बात कही ही थी कि धार्मिक वत्सल अश्वसेन राजा हर्ष पाकर सभासदों को हर्षित करते हुए बीच में ही बोल पड़े, ''अहो ! नरवर्मा राजा कितने विवेकी व धर्मज्ञ है कि जिन्होंने राज्य का तृणवत् त्याग करके व्रत ग्रहण किया। राजा प्राण संकट में ड़ालकर, बड़े युद्ध के विविध उद्यम करके जो राज्य पाते हैं वह राज्य प्राणांत पर भी छोड़ना मुश्किल है। अपनी और संपत्ति से भी प्राण समान प्यारे पुत्रादिक की जो रक्षा की जाती है, उसे छोड़ना भी प्राणियों के लिए असंभव है। इन सबको राजा नरवर्मा ने संसार छोड़ने की इच्छा से एक साथ छोड़ दिया, इससे उसे पूरी शाबासी देना योग्य है। हे पुरुष ! तेरी बात आगे बढ़ा।''

वह पुरुष बोला, 'उस नरवर्मा के राज्य पर इस समय उसका पुत्र **प्रसेनजित** नाम का राजा है। वह सेनारुपी नदियों के सागर जैसा है। उसे **प्रभावती** नाम की एक पुत्री है, जो युवावस्था प्राप्त हुई होने से भूमि पर आयी देवकन्या हो त्यों अद्वैतरुप को धारण करनेवाली है। विधाता ने चन्द्र के चूर्ण से उसका मुख, कमल से नेत्र, सुवर्णरज से शरीर, रक्तकमल से हाथ-पैर, कदलीगर्भ से ऊरु, शोणमणि से नाखून और मृणाल से भुजदण्ड रचे हो ऐसी दिखती है। अद्वेत रुपलावण्यवान् उस बाला को युवावस्था में आई देखकर प्रसेनजित राजा उसके वर के लिए चिंतातुर बने। जिससे उन्होंने राजाओं के कइं कुमारों का परीक्षण किया, लेकिन कोई अपनी पुत्री के योग्य नज़र नहीं आया। एक बार प्रभावती सखियों के साथ उद्यान में आयी। वहां किन्नरों की स्त्रियों के मुख से इस प्रकार का एक गीत सुनायी दिया, 'श्री वाराणसी के स्वामी अश्वसेन राजा के पुत्र श्री पार्श्वनाथकुमार रुपलावण्य की संपत्ति से जय पाते हैं। जिस स्त्री के वे भर्त्ता बनेंगे वह स्त्री इस जगत में जयवती है। ऐसे पति पाना दुर्लभ है, क्योंकि ऐसे पुण्य का उदय कहां होगा ?' इस प्रकार श्री पार्श्वनाथ का गुणकीर्तन सुनकर, प्रभावती तन्मय होकर उनके राग के वश बन गई। उस समय पार्श्वकुमार ने रुप से कामदेव को जीत लिया है, उसका बैर ले रहा हो त्यों उस पर अनुरागवाली प्रभावती पर वह निर्दयता से बाण द्वारा प्रहार करने लगा। दूसरी व्यथा व लज्जा छोड़कर हिरनी की तरह प्रभावती उस गीत को ही बारबार एकमन होकर सुनने लगी, जिससे सखियों ने उसका पार्श्वकुमार पर का राग जाना लिया। चतुरजन क्या नहीं जान सकते ? किन्नरियां तो उड़कर चली गई, लेकिन प्रभावती तो काम वश होकर चिरकाल शून्य मन से वहीं बैठ रही। मन द्वारा योगिनी की भाँति पार्श्वकुमार का ध्यान धरती हुई प्रभावती को उसकी बुद्धिवान सखियां युक्तिपूर्वक समजाकर घर लायी।

तब से उसका चित्त पार्श्वकुमार में ऐसा लीन हुआ है कि उसे पोशाक अग्नि समान दिखने लगा, रेशमी वस्त्र अंगारे समान लगने लगे और हार खड़ग की धार जैसा लगने लगा, उसके अंग में जल की पसली को भी पचा दे ऐसा ताप निरंतर रहने लगा। और प्रस्थ प्रमाण धान्य पकाया जा सके उतने कटाह को भी भर दे ऐसी अश्रुधारा बहने लगी। कामाग्नि से जर्जरित बनी वह बाला प्रभात, प्रदोष, रात्रि या दिन का सुख नहीं पा रही थी। प्रभावती की ऐसी दशा देखकर सखियों ने उसके रक्षण के लिए वह वृत्तांत उसके माता-पिता को बताया। पुत्री को पार्श्वकुमार पर अनुरक्त बनी जानकर, उसे आश्वासन देने के उद्देश्य से वे बार बार इस प्रकार कहने लगे, 'पार्श्वकुमार तीनों लोक में सिरताज है, और हमारी सद्गुणी दुहिता ने अपने योग्य उस वर को ढूंढ लिया है। जिससे हमारी पुत्री महाशय जनों में अग्रिम समान हैं।' माता-पिता के ऐसे वचन से मेघध्वनि से मयूरी की तरह प्रभावती हर्ष पाने लगी, और कुछ स्वस्थ होकर पार्श्वकुमार के नामरुपी जपमंत्र को योगिनी की भांति ऊंगली पर गिनते गिनते आशापूर्वक दिन गुजारने लगी, लेकिन दूज के चन्द्र की रेखा समान वह ऐसी कृश हो गयी है कि मानो कामदेव के धनुष की दूसरी यष्टि हो ऐसी दिखने लगी। दिन-प्रतिदिन उस बाला को अति पीड़ा पाती देखकर उसके माता-पिता ने उसे पार्श्वकुमार के पास स्वयंवरा रूप में भेजने का निश्चय किया।

यह समाचार कलिगांदि देशों के नायक **यवन** नाम के अतिदुर्दांत राजा ने जाने, तो वह सभा के बीच बोला, 'मेरे होने पर प्रभावती को ब्याहनेवाला पार्श्वकुमार कौन है ? और उस कुशस्थल का पति कौन है जो मुझे प्रभावती न दे ? यदि याचक की तरह कोई वह वस्तु ले जायेगा, तो वीरजन उसका सर्वस्व छीन लेंगे।' इस प्रकार कहकर अनन्य पराक्रमवाले उस यवन ने बड़ा सैन्य लेकर, कुशस्थल समीप आकर उसके चारोंओर घेरा ड़ाला। जिससे ध्यान धरते योगी के शरीर में से पवन की भाँति उस नगर में से किसिको भी निकलने का मार्ग न बचा। ऐसे कष्ट के समय पर राजा की प्रेरणा से मैं अर्धरात्रि में उस नगर से गुप्तरुप में निकला हूँ। मैं सागरदत्त के पुत्र **पुरुषोत्तम** नाम के उस राजा का मित्र हूँ, और यह वृत्तांत बताने के लिए ही यहां आया हूँ, इसलिए अब स्वजन और शत्रुजन के विषय में आपको जो योग्य लगे वह कीजिए।''

उस पुरुष के वचन सुनकर अश्वसेन राजा भ्रूकुटी से नेत्र भयंकर करके वज्र के निर्घोष तुल्य भयंकर वचन बोले कि ''अरे ! यह रंक यवन कौन है ? मेरे होने पर प्रसन्नजित को क्या भय है ? कुशस्थल की रक्षा के लिए मैं स्वयं ही उस यवन पर चढाई करुंगा।'' इस प्रकार कहकर वासुदेव समान पराक्रमी अश्वसेन राजा ने रणभेरी का नाद करवाया। उस नाद से उसका सैन्य तत्काल इकट्ठा हुआ। उस समय क्रीडागृह में खेल रहे पार्श्वकुमार ने उस भेरी का नाद

और सैनिकों का भारी कोलाहल सुना। तो 'यह क्या ?' ऐसा संभ्रम पाकर पार्श्वकुमार पिता के पास आये, वहां रणकार्य के लिए तैयार हुए सेनापतियों को उन्होंने देखा। पार्श्वकुमार पिता को प्रणाम करके बोले, 'हे पिताजी ! जिसके लिए आप जैसे पराक्रमी को ऐसी तैयारी करनी पडती है, वह क्या दैत्य, यक्ष, राक्षस या अन्य कोई आपका अपराधी बना है ? आपके समान या आपसे अधिक कोई भी मुझे नज़र नहीं आता।' उसके ऐसे प्रश्न से ऊँगली से पुरुषोत्तम नाम के पुरुष को दिखाकर राजा ने कहा, 'हे पुत्र ! इस आदमी के कहने पर प्रसेनजित राजा को यवन राजा से बचाने के लिए मुझे जाना जरुरी है।' कुमार ने दूबारा पूछा, 'हे पिता ! युद्ध में आपके समक्ष कोई देव या असुर भी टिक सके वैसा नहीं है, तो मनुष्य मात्र उस यवन का क्या बोझ है ? लेकिन उसके सामने आपको जाने की कोई जरुरत नहीं है, मैं ही वहां जाऊंगा, और दूसरों को जाननेवालों को सजा दूंगा।'

राजा बोले, 'हे वत्स ! वह कुछ तेरा क्रीडोत्सव नहीं है। फिर कष्टदायी रणयात्रा भी तुझसे करवाने के लिए मन को प्रिय नहीं लगता। मैं जानता हूँ कि मेरे कुमार का भुजबल तीनों लोक की विजय करने में समर्थ है, लेकिन तू घर में क्रीडा करता है वह देखकर ही मुझे हर्ष होता है।' पार्श्वकुमार बोले, ''हे पिताजी ! युद्ध करना भी मेरे लिए क्रीडारुप ही है, उसमें मुझे थोड़ा सा भी प्रयास नहीं करना पड़ेगा। इसलिए हे पूज्य पिताजी ! आप यहीं रहिए।'' पुत्र के अति आग्रह से उसके भुजबल को जाननेवाले राजा ने उसका अनिंदनीय वचन स्वीकार लिया।

फिर पिता ने आज्ञा दी तो पार्श्वकुमार शुभ मुहूर्त में हाथी पर बैठकर उस पुरुषोत्तम के साथ उत्सवसहित नगर के बाहर निकले। प्रभु ने इस प्रकार प्रयाण किया ही था कि इन्द्र के सारथि ने आकर, रथ में से उतरकर अंजलि जोड़कर कहने लगा, ''हे स्वामिन् ! आपको क्रीडा से भी युद्ध करनेकी इच्छावाले जानकर इन्द्र ने संग्रामयोग्य रथ, और मुझे सारथि रुप में भेजा है। हे स्वामिन् ! वह इन्द्र आपके पराक्रम समक्ष तीनों जगत भी तृणरुप है यूं जानते है, फिर भी अवसर प्राप्त हुआ मानकर वे अपनी भक्ति दर्शाते हैं।'' फिर पृथ्वी को स्पर्श नहीं करते और विविध आयुधों से भरे उस रथ में प्रभु इन्द्र के अनुग्रह के लिए आरुढ़ हुए। फिर खेचरों द्वारा स्तुति कराते हुए सूर्य समाज तेज से पार्श्वकुमार आकाशगामी खेचरों द्वारा स्तुति कराते हुए आगे बढ़े। प्रभु को देखने के लिए बार बार ऊँचा मुख करते हुए सुभटों से शोभित प्रभु का पूरा सैन्य भी प्रभु के पीछे पीछे चला। प्रभु क्षणमात्र में वहां पहुँचने और अकेले ही यवन पर विजय पाने के लिए समर्थ थे, लेकिन सैन्य के उपरोध से वे छोटे-छोटे प्रयाणों द्वारा चल रहे थे। कुछ ही दिनों में वे कुशस्थल समीप आ पहुँचे। वहां उद्यान में देवताओं ने रचे हुए सात भूमिवाले महल में आकर ठहरे। फिर क्षत्रियों की ऐसी रीति होने से प्रणाली अनुसार और दया

के कारण प्रभु ने पहले यवनराजा के पास एक सद्‌बुद्धिवाले दूत को समजाकर भेजा।

वह दूत यवन राजा के समीप जाकर उसे प्रभु की शक्ति को अच्छी तरह से सूचित करने के लिए कहने लगा, 'हे राजन् ! श्री पार्श्वकुमार अपने मुख से आपको इस प्रकार आदेश देते हैं कि इस प्रसेनजित राजा ने मेरे पिता की शरण ग्रहण की है। इसलिए उसे रोध से या विरोध से छोड़ दे। मेरे पिता स्वयं युद्ध करने आ रहे थे। उनको बड़े प्रयत्न से रोककर इस उद्देश्य के लिए ही मैं स्वयं यहां आया हूँ। अब यहां से लौटकर शीघ्रता से आपके स्थान पर चले जाइए। यदि आप शीघ्र चले जाओगे तो आपका यह अपराध हम सहन कर लेंगे।'' दूत के ऐसे वचन सुनकर ललाट पर भयंकर और उग्र भ्रूकुटी चढ़ाकर यवनराज बोला, 'अरे दूत ! तू यह क्या बोलता है ? क्या तू मुझे नहीं पहचानता ? यह बालक पार्श्वकुमार यहां युद्ध करने आया तो क्या हुआ ? और शायद वृद्ध अश्वसेन राजा स्वयं ही यहां आये हो तो भी क्या ? वे दोनों पिता-पुत्र और अन्य उसके पक्ष के राजा भी हमारे सामने कौन मात्र हैं ? इसलिए हे दूत ! जा, कह दे कि पार्श्वकुमार को, अपनी कुशलता चाहता हो तो चला जाय। तू ऐसा निष्ठूर बोलता है, फिर भी दूतपने के कारण अवध्य है, इसलिए यहां से जीवित जाने देता हूँ, तू जा और तेरे स्वामी को जाकर यह सब कह।' दूत ने दुबारा कहा, 'अरे दुराशय ! मेरे स्वामी पार्श्वकुमार ने सिर्फ मुझ पर दया लाकर और तुझे समझाने के लिए मुझे भेजा है, किसी अशक्तिपन से नहीं भेजा है। यदि तू उनकी आज्ञा मानेगा तो ज्यों वे कुशस्थल के राजा का रक्षण करते आये हैं त्यों तुझे भी नहीं मारना चाहते परंतु जिस प्रभु की आज्ञा स्वर्ग में भी अखण्डरुप से पाली जाती हैं, उसे खण्डन करके हे मूढ़बुद्धि ! यदि तू खुश होता है तो तू सचमुच अग्नि की कांति के स्पर्श से खुश होनेवाले पतंगे जैसा है। क्षुद्र ऐसा खद्योत (जूगनु) कहां और संपूर्ण विश्व को प्रकाशित करनेवाला सूर्य कहां ? त्यों एक क्षूद्र राजा जैसा तू कहां और तीनों जगत के पति पार्श्वकुमार कहां ?' दूत के उपरोक्त वचन सुनकर यवन के सैनिक क्रोध से आयुध ऊँचे उठाकर खड़े हो गये और उच्च स्वर में कहने लगे, 'अरे ! अधम दूत ! तुझे क्या तेरे-स्वामी के साथ दुश्मनी है कि जिससे तू उसका द्रोह करने के लिए तू ऐसे वचन बोलता है ? तू अच्छी तरह से सब उपायों को जानता है।' इस प्रकार कहते हुए वे क्रोध से उस पर प्रहार करने की इच्छा करने लगे। उस समय एक वृद्ध मंत्री ने आक्षेपवाले कठोर स्वर में कहा, ''यह दूत अपने स्वामी का बैरी नहीं है, लेकिन तुम तुम्हारे स्वामी के वैरी हो, कि स्वैच्छापूर्वक आचरण से स्वामी को अनर्थ उत्पन्न करते हो। अरे मूढ़ों ! जगत्पति श्री पार्श्वनाथ की मात्र आज्ञा का उल्लंघन करना, वह भी तुम्हारी कुशलता के लिए नहीं है, तो फिर इस दूत का घात करने की बात ही क्या करनी ? तुम्हारे जैसे सेवक दुर्दांत **घोड़े** की तरह अपने स्वामी को खींचकर तत्काल अनर्थरुप

अरण्य में फेंक देते हैं। तुमने पहले अन्य राजाओं के दूतों को घर्षित किया है, उसमें तुम्हारी कुशलता रही है, उसका कारण यह था कि हमारे स्वामी उनसे अधिक समर्थ थे, लेकिन ये पार्श्वनाथ प्रभु के तो चौंसठ इन्द्र भी सेवक हैं, तो ऐसे समर्थ के साथ हमारे स्वामी का तुम्हारे जैसे दुर्विनीत मनुष्य कीटों द्वारा युद्ध करवाना कितना हानिकारक है ?'' सचिव के ऐसे वचन सुनकर सब सुभट भय पाकर शांत हो गये। फिर उस दूत का हाथ पकड़कर सचिव ने साम वचन से कहा, 'हे विद्वान दूत ! सिर्फ शस्त्रोपजीवी ऐसे इन सुभटों ने जो कहा, वह आप सहन कर लो, क्योंकि आप एक क्षमानिधि राजा के सेवक हैं। हम श्री पार्श्वनाथ प्रभु के शासन को मस्तक पर चढ़ाने के लिए आपके पीछे ही आयेंगे, इसलिए उनके वचन आप स्वामी को कहना मत।' इस प्रकार उसको समजाकर और सत्कार करके मंत्री ने दूत को बिदा किया।

फिर उस हितकामी मंत्री ने अपने स्वामी को इस प्रकार कहा, ''हे स्वामिन् ! आपने सोचे बिना जिसका बुरा परिणाम आये ऐसा कार्य क्यों किया ? अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, इसलिए तुरंत जाकर श्री पार्श्वनाथ का आश्रय करो। जिसका सूतिका-कर्म देवियों ने किया हुआ है, जिसका धात्री-कर्म भी देवियों ने किया हुआ है, जिसका जन्मस्नात्र अनेक देवों सहित इन्द्रो ने किया है, और देवों सहित इन्द्र जिसके सेवक बनकर रहते हैं, उन प्रभु के साथ विग्रह करना तो हाथी के साथ मेंढ़े का विग्रह करने जैसा है। पक्षीराज गरुड कहाँ और काकोल पक्षी कहाँ ? मेरु कहां और सरसव का दाना कहां ? शेषनाग कहां और क्षुद्र सर्प कहां ? वे पार्श्वनाथ कहां और आप कहाँ ? इसलिए जब तक लोग जान न ले, तब तक आत्महित करने की इच्छा से कण्ठ पर कुहाड़ा लेकर आप अश्वसेन के कुमार पार्श्वनाथ की शरण में जाइए, और विश्व पर शासन करनेवाले उस पार्श्वनाथ स्वामी के शासन को ग्रहण करें। जो उनके शासन में रहता है वो इस लोक में और परलोक में निर्भय बनता है।'' इस प्रकार के अपने सचिव के वचन सुनकर यवनराज क्षणभर सोचकर बोला, 'हे मंत्री ! आपने मुझे बहुत अच्छा बोध दिया, ज्यों कोई अंध को कुएं में गिरते हुए बचा ले त्यों जड़ बुद्धिवाले मुझको आपने अनर्थ में से बचा लिया है।' इस प्रकार कहकर यवनराज कण्ठ में कुहाड़ा बांधकर पार्श्वनाथ द्वारा अलंकृत उद्यान में परिवार सहित आया। वहां सूर्य के अश्वों जैसे लाखों, घोड़ो, ऐरावत हाथी जैसे हजारों भद्र गजेन्द्रो, देवविमान जैसे अनेक रथों और खेचरों जैसे क्रमबद्ध पायदल से सुसज्ज पार्श्वनाथ का सैन्य देखकर यवनराज बड़ा चकित हुआ। स्थान स्थान पर पार्श्वकुमार के सुभटों ने आश्चर्य और अवज्ञा से देखा हुआ वह यवनराज क्रमशः प्रभु के प्रासाद के दरवाजे समीप आया। फिर छडीदार ने अनुमति पाकर उसे सभास्थान पर प्रवेश कराया। सूर्य की भाँति उसने दूर से प्रभु को नमस्कार किए। प्रभु ने उसके कण्ठ पर से कुहाडा हटवा दिया।

फिर वह यवन प्रभु के समक्ष बैठकर हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला, "हे स्वामिन् ! आपके समक्ष सर्व इन्द्र भी आज्ञाकारी बनकर रहते हैं, तो अग्नि समक्ष तृणसमूह की तरह मैं मनुष्यकीट तो क्या मात्र हूँ ? आपने शिक्षा देने के लिए मेरे पास दूत भेजा, यह बडी कृपा की है, नहीं तो आपके भ्रूकुटी के भंग मात्र से मैं भस्मीभूत नहीं हो जाता क्या ? हे स्वामिन् ! मैंने आपका अविनय किया फिर भी वह मुझे गुणकारी हुआ और तीन जगत के पावनकारी ऐसे आपके दर्शन मुझे हुए। 'आप क्षमा कीजिए' ऐसा आपको कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि आपके हृदय में कोप ही नहीं है। 'मैं आपको दण्ड दूं' यूं कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि आप ही स्वामी हो। इन्द्रों द्वारा सेवित 'मैं आपका सेवक हूँ' यूं कहना भी अघटित है, और 'मुझे अभय दो' यूं कहना भी योग्य नहीं है, क्योंकि आप स्वयमेव अभयदाता हैं। फिर भी अज्ञान के कारण मैं कहता हूँ कि मुझ पर प्रसन्न बनें, मेरी राज्यलक्ष्मी ग्रहण कीजिए, और मैं आपका सेवक हूँ, इसलिए भय पाए हुए मुझको अभय दीजिए।" यवन के ऐसे वचन सुनकर पार्श्वनाथ बोले, "हे भद्र ! तुम्हारा कल्याण हो, भय मत पाओ, अपना राज्य सुखपूर्वक पालो, लेकिन दुबारा ऐसा मत करना।" प्रभु के ऐसे वचन सुनकर तथास्तु कहते हुए प्रभु ने यवनराज का सत्कार किया। "महज्जनों के प्रासाददान से सबकी स्थिति उत्तम होती है।"

फिर प्रसेनजित राजा का राज्य और कुशस्थल नगर शत्रु के घेरे से मुक्त हुए तो पुरुषोत्तम पार्श्वनाथ की आज्ञा लेकर नगर में गया। उसने प्रसेनजित राजा के पास जाकर पूरा वृत्तांत सुनाया। फिर पूरे नगर में हर्ष के छत्ररुप महोत्सव शुरु हुआ। प्रसेनजित राजा प्रसन्न होकर सोचने लगे, 'मैं सर्वथा भाग्यवान् हूँ, और मेरी पुत्री प्रभावती भी सर्वथा भाग्यवती है। मेरे मन में ऐसा मनोरथ भी न था कि सुरासुर द्वारा पूजित पार्श्वनाथकुमार मेरे नगर को पवित्र करेंगे। जब भेंट की भाँति प्रभावती को लेकर मैं उपकारी ऐसे पार्श्वनाथ कुमार के पास जाऊँ।' इस प्रकार सोचकर प्रेसनजित राजा प्रभावती को लेकर हर्षित होते हुए परिवार सहित पार्श्वनाथ के पास आया, और प्रभु को नमस्कार करके अंजलि जोड़कर बोला, "हे स्वामिन् ! आपका आगमन बादल बिना की वृष्टि की तरह भाग्ययोग से अचानक हुआ है। वह यवनराज मेरा शत्रु होने पर भी उपकारक हुआ कि जिसके विग्रह में तीनों जगत के पति ऐसे आपने आकर मुझ पर अनुग्रह किया। हे नाथ ! ज्यों दया लाकर, यहां आकर मेरे पर अनुग्रह किया, त्यों यह मेरी पुत्री प्रभावती के साथ विवाह करके उसी प्रकार दुबारा अनुग्रह कीजिए। यह प्रभावती दुष्प्राप्य चीज की (आपकी) प्रार्थना करनेवाली है और आप दूर हो फिर भी आप पर अनुरागी है, इसलिए उसके पर कृपा करिए, क्योंकि आप स्वभाव से ही कृपालु हैं।"

उस समय प्रभावती ने सोचा. "मैंने पूर्व किन्नरियों से जिनको सुना था, वे पार्श्वनाथ

कुमार आज मुझे नज़र आये हैं। अहो ! दृष्टि से देखने पर वे जैसे सुने थे वैसे ही मिलते आ रहे हैं। दाक्षिण्ययुक्त और कृपावंत जैसे सुने थे वैसे ही नज़र आ रहे हैं। इन कुमार को मेरे पिता ने मेरे लिए ही रोका, यह बहुत अच्छा किया है, फिर भी भाग्य पर भरोसा नहीं होने से वे पिताश्री का वचन मानेंगे या नहीं ऐसी शंका से व्याकुल होकर मैं संदेह किया करती हूँ।'' प्रभावती इस प्रकार चिंतातुर थी और राजा प्रसेनजित उन्मुख होकर खड़े थे, उस समय पार्श्वकुमार मेघ के निर्घोष समान धीर वाणी से बोले, ''हे राजन् ! मैं पिता की आज्ञा से सिर्फ आपकी रक्षा करने के लिए यहां आया हूँ, आपकी कन्या को ब्याहने नहीं आया हूँ। इसलिए हे कुशस्थलपति ! आप इसके बारे में वृथा आग्रह मत करना। पिता के वचन का अमल करके हम वापस पिता के पास जायेंगे।'' पार्श्वकुमार के ऐसे वचन सुनकर प्रभावती ने खेद पाया और सोचने लगी कि 'ऐसे दयालु पुरुष के मुख से ऐसा वचन निकला, वह चन्द्र में से अग्नि टपकने समान है। यह कुमार सर्व पर कृपालु है और मेरे पर कृपारहित हुए। इसलिए अब क्या होगा ? इससे यूं लगता है कि प्रभावती मंदभागी ही है। सदा पूजन की हुई हे कुलदेवियों ! आप सत्वर आकर मेरे पिता को कुछ उपाय बताइए, क्योंकि वे इस समय उपायरहित हो गये हैं।' राजा प्रसेनजित ने सोचा, 'ये पार्श्वनाथ स्वयं तो सर्वत्र निःस्पृह हैं, परंतु वे अश्वसेन राजा के आग्रह से मेरा मनोरथ पूर्ण करेंगे, इसलिए अश्वसेन राजा को मिलने के बहाने मैं इनके साथ ही जाऊँ, वहां इच्छित की सिद्धि के लिए मैं स्वयं ही अश्वसेन राजा को आग्रह करुंगा।' इस प्रकार विचार करके उसने पार्श्वनाथकुमार के वचन से यवनराजा के के साथ मैत्री करके उसे बिदा किया। फिर पार्श्वनाथ प्रभु को बिदा करते हुए प्रसेनजित बोला, 'हे प्रभु ! अश्वसेन राजा के चरणों में नमन करने के लिए मैं आपके साथ ही आऊंगा।' पार्श्वनाथ ने खुश होकर हाँ कहा, तो प्रसेनजित राजा प्रभावती को साथ लेकर उनके साथ वाराणसी आये। वहां शरणागत के रक्षण से अश्वसेन को प्रसन्न करते हुए पार्श्वनाथ ने अपने दर्शन से सबको अत्यंत आनंद दिया।

फिर अश्वसेन राजा ने खड़े होकर पैरों में लोटते प्रसेनजित राजा को खड़ा करके दो भुजाओं से आलिंगन देकर संभ्रम से पूछा, ''हे राजन् ! आपकी रक्षा भली भाँति हुई ? आप कुशल हैं ? आप स्वयं यहां आये, तो मुझे कुछ भी कारण से संदेह रहता है।'' प्रसेनजित बोला, ''प्रताप में सूर्य समान आप जिसके रक्षक हो, तो मुझे सदैव रक्षा और कुशलता है ही, लेकिन हे राजन् ! एक दुष्प्राप्य वस्तु की प्रार्थना मुझे सदैव कष्टदायी है, लेकिन वह प्रार्थना आपकी कृपा से सिद्ध होगी। हे महाराजा ! मुझे प्रभावती नाम की कन्या है, मेरे आग्रह से उसे पार्श्वनाथ कुमार के लिए ग्रहण कीजिए। मेरी यह प्रार्थना अन्यथा करना मत।'' अश्वसेन ने कहा, 'मेरा

यह पार्श्वकुमार संसार से सदैव विरक्त है, जिससे वह क्या करेगा यह अभी मेरे जानने में आता नहीं है। हमारे मन में भी सदैव ऐसा मनोरथ होता रहता है कि इस कुमार का योग्य वधू के साथ विवाहोत्सव कब होगा ? यद्यपि वे बाल्यवय से ही स्त्री-संग नहीं चाहते, तो भी अब आपके आग्रह से उसका प्रभावती के साथ ही जबरन विवाह करेंगे।' इस प्रकार कहकर अश्वसेन राजा प्रसेनजित को साथ लेकर पार्श्वकुमार के पास आये और कहा, "हे कुमार ! इस प्रसेनजित राजा की पुत्री के साथ ब्याहो।"

पार्श्वकुमार बोले, "हे पिताजी ! स्त्री आदि का परिग्रह क्षीणप्राय बने संसाररुपी वृक्ष का जीवनौषध है, तो ऐसे त्याज्य संसार को आरंभ करनेवाली उस कन्या से मैं किसलिए ब्याहूं ? मैं तो मूल से परिग्रह रहित होकर इस संसार को तैर जाऊंगा।" अश्वसेन बोले, "हे कुमार ! इस प्रसेनजित राजा की कन्या का पाणिग्रहण करके एक बार हमारा मनोरथ पूर्ण करो। हे पुत्र ! जिसके ऐसे सद्विचार हैं वह संसार को तैर गया ही है, इसलिए विवाह करके फिर जब योग्य समय आये तब उस अनुसार स्वार्थ को सिद्ध करना।" इस प्रकार का पिता का वचन उल्लंघन करने में असमर्थ होकर पार्श्वकुमार ने भोग्य कर्म खपाने के लिए प्रभावती का पाणिग्रहण किया। फिर लोगों के आग्रह से उद्यान और क्रीडागिरि वगैरह में प्रभावती के साथ क्रीडा करते हुए प्रभु दिन व्यतीत करने लगे।

एक दिन पार्श्वप्रभु महल पर चढ़कर झरोखे में बैठकर कुतुहलतापूर्वक समग्र वाराणसी नगरी को देख रहे थे, कि पुष्पों के उपहार वगैरह की टोकरियां लेकर शीघ्रता से नगर बाहर निकलते अनेक स्त्री-पुरुषों को उन्होंने देखा, तो समीप के लोगों को पूछा कि 'आज कौनसा महोत्सव है कि जिससे ये लोग बहुत से अलंकार धारण करके शीघ्रता से नगर बाहर जाते हैं ?' इसके उत्तर में किसी पुरुष ने कहा, 'हे देव ! आज कोई महोत्सव नहीं है, लेकिन दूसरा कारण उत्पन्न हुआ है। इस नगर के बाहर **कमठ** नाम का एक तपस्वी आया है, वह पंचाग्नि तप करता है, उसकी पूजा करने के लिए नगरजन भी वहां जाते हैं।' यह सुनकर पार्श्वनाथ प्रभु उस कुतूहल को देखने के लिए परिवार सहित वहाँ गये, तो कमठ को वहां पंचाग्नि[1] तप करते हुए देखा। फिर त्रिविध ज्ञानधारी प्रभु ने उपयोग देते अग्नि के कुण्ड में काष्ठ के अंदरुनी भाग में रहे हुए एक बड़े सर्प को जलते हुए देखा, जिससे करुणानिधि भगवान बोले, "अहो ! यह कैसा अज्ञान ! जिस तप में दया नहीं है, वह तप ही नहीं है। ज्यों जल बिना नदी, चन्द्र बिना रात्री और मेघ बिना वर्षा, त्यों दया बिना धर्म भी कैसा ? पशु की तरह कदापि काया के क्लेश को चाहे कितना भी सहन करो, लेकिन धर्मतत्त्व का स्पर्श किए बिना निर्दय ऐसे प्राणी

१. चार दिशाओं में अग्निकुण्ड और मस्तक पर तपता सूर्य, इस प्रकार पंचाग्नि।

को किस प्रकार धर्म हो ?'' वह सुनकर कमठ बोला कि 'राजपुत्र तो हाथी, घोड़े वगैरह को क्रीडा कराना जाने और धर्म तो हमारे जैसे मुनि ही जानते हैं।' प्रभु ने तत्काल अपने सेवक को आज्ञा दी, 'इस कुण्ड में से ये काष्ठ खींच निकालो, और उसे यतना से फाडो, जिससे इस तापस को प्रतीति हो।' फिर उन्होंने कुण्ड में से उस काष्ठ को बाहर निकालकर यतना से फाड़ा, तो उसमें से एकदम एक बड़ा सर्प निकला। फिर थोड़े से जले उस सर्प को प्रभु ने अन्य पुरुषों द्वारा नवकार मंत्र सुनवाया और पच्चखाण दिलवाये। उस समाधिवाले नाग ने भी भगवान की कृपादृष्टि से सिंचित होती शुद्ध बुद्धि से वह नवकार सुना और पच्चखाण ग्रहण किया। फिर तत्काल आयु पूर्ण होने से नवकार मंत्र के प्रभाव से और प्रभु के दर्शन से मृत्यु पाकर वह नाग **धरण** नाम का नागराज[1] बना। फिर 'अहो ! इस पार्श्वकुमार का ज्ञान और विवेक कुछ असाधारण है,' यूं लोगों से स्तुति कराते हुए प्रभु अपने स्थानक पर गये। इस घटना को देखकर व सुनकर कमठ तापस विशिष्ठ कष्टदायी तप करने लगा, परंतु 'मिथ्यात्वी को अत्यंत कष्ट भोगने पर भी ज्ञान कहां से मिलेगा ?' क्रमशः वह कमठ तापस मृत्यु पाकर भुवनवासी देवों की मेघकुमार निकाय में **मेघमाली** नाम का देव बना।

अब श्री पार्श्वनाथ प्रभु ने अपने भोग फलवाले कर्मो को भोग लिये हैं ऐसा जानकर दीक्षा लेने में मन जोड़ा। उस समय उनके भाव जानते हों त्यों लोकांतिक देवताओं ने आकर पार्श्वनाथ को विज्ञप्ति की, 'हे नाथ ! तीर्थ प्रवर्ताइए।' यह सुनकर प्रभु ने कुबेर की आज्ञा से जृंभक देवों द्वारा भरे गए द्रव्य से वार्षिक-दान देना प्रारंभ किया। इसके बाद शक्रादिक इन्द्रों और अश्वसेन प्रमुख राजाओं ने परमप्रभु श्री पार्श्वनाथ का दीक्षाभिषेक किया। फिर देव और मानवों द्वारा वहन योग्य ऐसी **विशाला** नाम की शिबिका में बैठकर आश्रमपद नाम के उद्यान समीप आये। मरूबक (मरवे) के गाढ़ वृक्षों से जिसकी भूमि श्याम हो गई थी, जो चमेली की कलियों से मानो कामदेव की प्रशस्ति (प्रशंसापत्र) को धारण करता हो त्यों दिखता था, जिसको मुचकंद और निकुरंब के वृक्षों के भँवरे चुंबन करते थे, आकाश में उडते चिरौंजी (चारोली) वृक्ष के पराग से जो सुगंधमय हो रहा था और जिसमें इक्षुदण्ड के क्षेत्रों में बैठकर उद्यानपालिकाएं उच्च स्वर में गाती थीं, ऐसे उद्यान में अश्वसेन के कुमार श्री पार्श्वनाथ ने प्रवेश किया। फिर तीस वर्ष की आयुवाले प्रभु ने शिबिका से उतरकर आभूषण आदि सर्व त्याग दिया और इन्द्र ने दिया हुआ एक देवदूष्य वस्त्र धारण किया। पोष माह की कृष्ण एकादशी को चन्द्र अनुराधा नक्षत्र में आते ही श्री पार्श्वनाथ प्रभु ने अष्टम तप करके तीन सौं राजाओं के साथ दीक्षा ली। प्रभु को तत्काल मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। 'यह ज्ञान सभी तीर्थंकरों को दीक्षा महोत्सव पर उत्पन्न होता है।'

१. भुवनपति की नागकुमार निकाय के इन्द्र।

दूसरे दिन **कोष्टक** नाम के गाँव में **धन्य** नाम के गृहस्थ के घर प्रभु ने पायसान्न से पारणा किया। देवताओं ने वहां वसुधारादि पंच दिव्य प्रकट किए, और धन्य ने प्रभु के पादचिह्न वाली भूमि पर एक पादपीठ करवाई। फिर वायु की भाँति प्रतिबंधरहित ऐसे प्रभु युगमात्र[1] दृष्टि करते हुए अनेक गाँव, आकर और नगर वगैरह में छद्मस्थ रुप में विहार करने लगे। एक बार विहार करते हुए प्रभु किसी नगर के पास आये हुए तापस के आश्रम समीप आये, वहां सूर्यास्त हो गया, तो रात्रि होने पर एक कुंए समीप वटवृक्ष के नीचे जगद्गुरु उसकी शाखा की भाँति निष्कंपतापूर्वक कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित रहे।

अब उस **मेघमाली** नाम के मेघकुमार देव ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव का व्यतिकर जानने में आया। पार्श्वनाथ के जीव के साथ प्रत्येक भव में अपना वैर याद रखकर वडवानल से सागर की तरह उसके अंतर में अत्यंत क्रोध प्रज्वलित हुआ। फिर पर्वत को भेदने हाथी आये त्यों वह अधम देव अमर्ष धरकर पार्श्वनाथ को उपद्रव करने आया। प्रथम उसने दाढ़रुपी करौंत से भयंकर मुखवाले, वज्र जैसे नखांकुर को धारण करनेवाले और पिंगल नेत्रवाले केसरीसिंहों का सर्जन किया। वे पूंछ से भूमिपीठ पर बार बार प्रहार करने लगे, और मृत्यु के मंत्राक्षर जैसे धुत्कार शब्द करने लगे। फिर भी ध्यान में निश्चल लोचन करके रहे प्रभु उनसे थोड़ा सा भी क्षोभ नहीं पाए, तो ध्यानाग्नि से भय पाया हो त्यों वे कहीं चले गये। फिर उसने गर्जना करते हुए और मद को बरसाते चलित पर्वत जैसे बड़े हाथी रचे। भयंकर से भी भयंकर ऐसे उन गजेन्द्रों से प्रभु जरा सा भी क्षोभ नहीं पाये, तो वे लज्जा पाये हो त्यों तत्काल भागकर कहीं पर चले गये। फिर हिक्कानाद से दिशाओं को भरते और दयाविहीन अनेक भालू, यमराजा की सेना जैसे क्रूर अनेक चित्ते, कंटक के अग्रभाग से शिलाओं को भी फोड़ते बिच्छू और दृष्टि से वृक्षों को भी जला डाले ऐसे दृष्टिविष सर्प रचे। वे सब उपद्रव करने की इच्छा से प्रभु के पास आये, फिर भी नदियों से समुद्र की तरह प्रभु ध्यान से चलित नहीं हुए। फिर विद्युत सहित मेघ की तरह हाथ में कर्तिका (शस्त्र) को रखनेवाले, ऊंची दाढ़ोंवाले और किलकिल शब्द करते वैताल प्रकट किए। जिसके पर सर्प लटकते हो वैसे वृक्षों की तरह लम्बी जिह्वा और शिश्नवाले[2] और दीर्घ जंघा तथा चरण से ताड़ वृक्ष पर आरुढ हुए हो वैसे दिखते व मानो जठराग्नि ही हो ऐसी मुख में से ज्वाला निकालते वे वैताल हाथी पर श्वान दौडे त्यों प्रभु पर दौड़ आये। परंतु ध्यानरुप अमृत के द्रह में लीन बने प्रभु उनसे जरा सा भी क्षोभ नहीं पाए, जिससे दिन को ऊल्लू पक्षी की तरह वे भागकर कहीं पर चले गये।

१. युग अर्थात् धुरा। धुरा जितनी (चार हाथ) अपने आगे की जमीन देखकर इर्यासमिति पालकर चलते हुए।
२. शिश्न - लिंग - पुरुष चिह्न।

प्रभु की ऐसी दृढ़ता देखकर मेघमाली असुर को उलटे विशेष क्रोध चढ़ा, जिससे उसने कालरात्रि के सहोदर जैसा भयंकर मेघ आकाश में रचा। उस समय आकाश में कालजिह्वा जैसी भयंकर बिजली होने लगी, ब्रह्मांड को फोड डाले ऐसी मेघगर्जना दिशाओं में व्याप्त हो गयी, और नेत्र के व्यापार को हरण करे ऐसा घोर अंधकार छा गया, जिससे अंतरीक्ष और पृथ्वी मानो इकट्ठे हो गये हो वैसे हो गये। फिर 'मेरे इस पूर्व वैरी का मैं संहार कर डालूं' ऐसी दुर्बुद्धि से मेघमाली ने कल्पांत काल के मेघ की तरह बरसना शुरू किया। मुशल अथवा बाण जैसी धाराओं से मानो पृथ्वी को कुदाली खोदता हो त्यों वह ताड़न करने लगा। उसके प्रहार से पक्षी उछल-उछलकर गिरने लगे और वराह व महिष वगैरह पशु इधर-उधर भागंभाग करने लगे। अति वेग से भयंकर ऐसे जलप्रवाह अनेक प्राणियों को खींच जाने लगे और बड़े बड़े वृक्षों का भी जड में से उन्मूलन करने लगे। श्री पार्श्वनाथ प्रभु को क्षणभर में जल घुटने तक आया, क्षणभर में जानु तक पहुँच गया, क्षणभर में कमर तक पहुंचा और क्षण में तो कण्ठ तक आ पहुँचा। मेघमाली देव ने जब वह जल सर्वत्र प्रसराया तब पद्मद्रह में लक्ष्मी के स्थानरुप महापद्म की तरह प्रभु उस जल में शोभा पाने लगे। रत्नशिला के स्तंभ की तरह उस जल में भी निश्चल रहे प्रभु नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर रहे, थोड़ा सा भी चलित नहीं हुए। आखिर में वह जल पार्श्वनाथ की नासिका के अग्रभाग तक आया। उस समय अवधिज्ञान से धरणेन्द्र के जानने में आया, 'अरे ! वह बाल तापस कमठ मेरे प्रभु को वैरी मानकर उपद्रव करता है।' फिर तत्काल अपनी महिषिओं के साथ नागराज धरणेन्द्र गति से मन के साथ स्पर्धा करता हो त्यों तेजी से प्रभु के पास आया। प्रभु को नमन करके धरणेन्द्र ने उनके चरण के नीचे केवली के आसन जैसा व नीचे रहे लम्बी नालवाला एक सुवर्णकमल रचा। फिर उस भोगीराज ने अपनी काया से प्रभु के पृष्ठ और दो बगलों को ढंककर सात फनों से प्रभु के सिर पर छत्र किया। जल की ऊँचाई जितनी लम्बी नालवाले कमल पर समाधि में लीन होकर सुख से स्थित रहे प्रभु राजहंस समान दिखने लगे। भक्तिभाव युक्त चित्तवाली धरणेन्द्र की स्त्रियां प्रभु के समक्ष गीत-नृत्य करने लगी। वेणु वीणा का तार ध्वनि और मृदंग का उद्धत नाद विविध ताल का अनुसरण करते हुए वृद्धि पाने लगा। और विचित्र चारु-चरित वाला, हस्तादिक के अभिनय से उज्जवल और विचित्र अंगहार से रमणीक ऐसा नृत्य होने लगा।

उस समय ध्यान में लीन बने प्रभु नागाधिराज धरणेन्द्र पर और असुर मेघमाली पर समान भाव से रहे थे। फिर भी कोप से बरस रहे ऐसे मेघमाली को देखकर नागराज धरणेन्द्र कोप करके आक्षेप से बोला, 'अरे ! दुर्मति ! अपने अनर्थ के लिए तू यह क्या प्रारंभ कर बैठा है ? मैं इस महाकृपालु का शिष्य हूँ, तथापि अब मैं सहन करुंगा नहीं। उस समय इस प्रभु

ने काष्ठ में जलते सर्प को दिखाकर तुझे पाप करते हुए अटकाया था, तो उन्होंने तेरा क्या अपराध किया ? अरे मूढ ! खारी जमीन पर गिरता मेघजल भी ज्यों लवण के लिए होता है, त्यों प्रभु का सदुपदेश भी तेरे वैर के लिए हुआ है। निष्कारण बंधु ऐसे इन प्रभु पर निष्कारण शत्रु बनकर तूने जो कार्य आरंभ किया है वह अब दूर कर दे, नहीं तो अब तू रह नहीं पायेगा।'' धरणेन्द्र के ऐसे वचन सुनकर मेघमाली ने नीचे दृष्टि करके देखा तो नागेन्द्र सेवित पार्श्वनाथ प्रभु को देखा, जिससे उसने सोचा, 'चक्रवर्ती के उपर उसे उपद्रव करनेवाले म्लेच्छो द्वारा आराधित मेघकुमारों की शक्ति ज्यों वृथा होती हे त्यों इन पार्श्वनाथ पर मैंने मेरी जितनी थी उतनी शक्ति का प्रयोग किया लेकिन वह बेकार गई है। ये प्रभु एक मुष्टि से पर्वत को भी चूर्ण करने के लिए समर्थ है, फिर भी वे करुणानिधि होने के कारण मुझे भस्म नहीं करते हैं। लेकिन इस धरणेन्द्र से मुझे भय लगता है। इन त्रैलोक्यपति का उपकार करके त्रैलोक्य में भी मेरी स्थिति नहीं हो सकेगी, तो फिर मैं किसकी शरण में जाऊंगा ? इसलिए इन प्रभु की यदि शरण मिलेगी तो ही मैं बच पाऊंगा, और वही मेरा हित होगा।' इस प्रकार का विचार करके तत्काल मेघमण्डल को समेटकर भय पाता हुआ मेघमाली प्रभु के पास आया, और नमस्कार करके बोला, 'हे प्रभु ! यद्यपि आप तो अपकारी जन पर भी क्रोध नहीं करते, तथापि मैं मेरे अपने दुष्कर्म से दूषित बना होने से भय पाता हूँ। ऐसा दुष्कर्म करके भी मैं निर्लज्ज होकर आपके पास याचना करने आया हूँ, इसलिए हे जगन्नाथ ! दुर्गति में गिरने से संदेह पाये इस दीन जन की रक्षा करें, रक्षा करें।' इस प्रकार कहकर प्रभु से क्षमा मांगकर, नमस्कार करके मेघमाली देव पश्चात्ताप करते हुए अपने स्थानक पर गया। फिर प्रभु को उपसर्ग रहित बना जानकर स्तुति व प्रणाम करके नागराज धरणेन्द्र भी अपने स्थानक पर गये, रात बीत गयी और प्रातःकाल हो गया।

भगवंत वहां से विहार करते हुए क्रमशः वाराणसी पुरी समीप आकर आश्रमपद नाम के उद्यान में घातकी वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में रहे। वहां दीक्षा के दिन से चौर्यासी दिन व्यतीत होने के बाद शुभध्यान से प्रभु के घातीकर्म नाश पा गये और चैत्र माह की कृष्ण-चतुर्थी को चन्द्र विशाखा नक्षत्र में आते ही पूर्वाह्नकाल में श्री पार्श्वप्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय शक्रप्रमुख देवों ने आसनकम्प से हकीकत जानी और वहां आकर समवसरण की रचना की। प्रभु ने पूर्व द्वारा से उस समवसरण में प्रवेश किया। समवसरण के मध्य में आये हुए सत्ताइस धनुष्य ऊँचे चैत्यवृक्ष के पहले मेरु को सूर्य की भाँति प्रभु ने प्रदक्षिणा की, फिर 'तीर्थाय नमः' कहकर श्री पार्श्वप्रभु पूर्वाभिमुख से उत्तम ऐसे रत्नसिंहासन पर बिराजमान हुए। व्यंतरों ने अन्य तीन दिशाओं में प्रभु के ही प्रभाव से प्रभु जैसे अन्य तीन प्रतिबिम्ब रचे। चारों निकाय

के देव, देवियां, नर, नारियाँ, साधू और साध्वियां यूं बारहों पर्षदा प्रभु को नमस्कार करके अपनी अपनी योग्य जगह बैठे।

उस समय प्रभु का ऐसा अपूर्व वैभव देखकर वनपालों ने आकर अश्वसेन राजा को इस प्रकार कहा, 'हे स्वामिन् ! एक बधाई है। श्री पार्श्वनाथ प्रभु को इस समय जगत के अज्ञान को नाश करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, और महा अतिशय संपन्न ऐसे वे जगत्पति शक्रादिक इन्द्रों के परिवार से शोभा पाते हुए समवसरण में बिराजमान हैं।' वह सुनकर राजा ने उसे योग्य पारितोषिक दिया और प्रभु के दर्शन की इच्छा से उतावले बने राजा ने यह खबर तुरंत वामादेवी को कही। फिर अश्वसेन राजा वामादेवी रानी को तथा अन्य परिवार को लेकर संसार सागर को पार करानेवाले उस समवसरण में आये। हर्षपूर्ण हृदयवाले राजा प्रभु को प्रदक्षिणा देकर प्रणाम करके शक्रेन्द्र के पीछे बैठे। फिर शक्रेन्द्र और अश्वसेन राजा खड़े होकर दुबारा प्रभु को नमन करके सिर पर हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगे -

"हे प्रभु ! सर्वत्र भूत, भविष्य और वर्तमानकाल के भाव को प्रकाशित करनेवाला आपका यह केवलज्ञान जय पाता है। इस अपार संसाररुप समुद्र में प्राणियों के जहाजरुप आप हो और निर्यामक[1] भी आप ही हो। हे जगत्पति ! आज का दिन हमारे सब दिनों में राजा जैसा है, क्योंकि जिसमें हमें आपके चरणदर्शन का महोत्सव प्राप्त हुआ है। यह अज्ञानरुप अंधकार, जो मनुष्यों की विवेकदृष्टि को लूंटनेवाला है, वह आपके दर्शनरुपी औषधि के रस बिना निवृत्त नहीं होता है। यह महोत्सव नदी के नये किनारे की तरह प्राणियों को इस संसार से पार उतरने के लिए एक नये तीर्थ (किनारे) रुप है। अनंत चतुष्टय को सिद्ध करनेवाले, सर्व अतिशयों से सज्ज, उदासीपन में रहनेवालें और सदैव प्रसन्न ऐसे आपको नमस्कार हैं। प्रत्येक जन्म में अत्यंत उपद्रव करनेवाले ऐसे दुरात्मा मेघमाली पर भी आपने करुणा की है, तो आपकी करुणा कहाँ नहीं है ? (अर्थात् सर्वत्र है) हे प्रभु ! जहाँ-तहाँ रहते और चाहे वहाँ जाते ऐसे हमको, सदैव आपत्ति टालनेवाले आपके चरणकमलों का स्मरण रहे।"

इस प्रकार स्तुति करके शक्रेन्द्र और अश्वसेन राजा विश्राम पाये। फिर श्री पार्श्वनाथ भगवंत ने इस प्रकार देशना का आरंभ किया -

"अहो भव्य प्राणियों ! जरा, रोग व मृत्यु से भरे इस संसाररुपी बड़े अरण्य में धर्म बिना दूसरा कोई रक्षक नहीं है, इसलिए हंमेशां वही सेवन योग्य है। वह धर्म सर्वविरति और देशविरति यूं दो प्रकार का है, उसमें अनगारी साधुओं का पहला सर्वविरति धर्म है। वह संयमादि दस प्रकार का है, और आगारी गृहस्थ का दूसरा देशविरति धर्म है, वह पांच अणुव्रत, तीन

१. जहाज पार उतारनेवाला।

गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत - यूं बारह प्रकार का है। यदि ये व्रत अतिचारवाले होते हैं तो सुकृत को देते नहीं हैं। इसलिए उन एक एक व्रत के जो पांच पांच अतिचार हैं वे छोडने योग्य हैं। पहला व्रत जो अहिंसा उसमें क्रोध से बंध, छविच्छेद, अधिक भार का आरोपण, प्रहार और अन्नादिक का रोध - ये पांच अतिचार हैं। दूसरा व्रत सत्य वचन - उसके मिथ्या उपदेश, सहसा अभ्याख्यान, गुह्यभाषण, विश्वासी के कहे रहस्य का भेद और कूटलेख - यूं पांच अतिचार हैं। तीसरा व्रत अस्तेय (चोरी न करनी) - उसके चोर को अनुज्ञा देनी, चोरी हुई वस्तु ग्रहण करना, शत्रु राज्य का उल्लंघन करना, प्रतिरुप चीजों की मिलावट करना और माप-दण्ड-बाट झूठे रखना - ये पांच अतिचार हैं। चौथा व्रत ब्रह्मचर्य - उसके अपरिगृहीतागमन, इत्वरपरिगृहीतागमन, परविवाहकरण, तीव्र कामभोगानुराग और अनंगक्रीडा - ये पांच अतिचार हैं। पाँवचां व्रत अपरिग्रह (परिग्रह का प्रमाण) उसमें धन-धान्य का प्रमाणातिक्रम, ताँबे-पीतल वगैरह धातु का प्रमाणातिक्रम, द्विपद चतुष्पद का प्रमाणातिक्रम, क्षेत्र वस्तुका प्रमाणातिक्रम और रुप्य-सुवर्ण का प्रमाणातिक्रम - ये पांच अतिचार हैं। ये अतिचार अनाज के छोडे-बडे नाप करने से, ताम्रादिक पात्र छोटे-बडे करने से, द्विपद चतुष्पद के गर्भ धारण द्वारा होती वृद्धि से, घर या क्षेत्र की बीच की दीवार या बाड हटाकर एकत्र कर देने से और रुप्य सुवर्ण किसिको देने से लगते हैं। लेकिन ये व्रत ग्रहण करनेवाले को लगाने योग्य नहीं है।

स्मृति न रहना, ऊपर, नीचे व तिरछे भाग में जाने के कहे गये प्रमाण का उल्लंघन करना और क्षेत्र की वृद्धि-हानि करनी - ये पांच छट्ठे दिग्विरतिव्रत के अतिचार हैं। सचित भक्षण, सचित के संबंधवाले पदार्थ का भक्षण, तुच्छ औषधि का भक्षण तथा अपक्व व दुष्पक्व वस्तुका आहार - ये पांच अतिचार भोगपभोग प्रमाण नाम के सातवें व्रत के हैं। ये अतिचार भोजन आश्रयी से त्यागनेहैं और दूसरे पन्द्रह कर्म से त्यागने हैं, उसमें खर धर्म का त्याग करना पड़ता है ' ये खर कर्म पन्द्रह प्रकार के कर्मादानरुप है। उसमें इस प्रकार - अंगारजीविका, वनजीविका, शकटजीविका, भाटकजीविका, स्फोटजीविका, दंतवाणिज्य, लाक्षवाणिज्य, रसवाणिज्य, केशवाणिज्य, विषवाणिज्य, यंत्रपीडा, निलाँछन, असतीपोषण, दवदान और सरःशोष - ये पन्द्रह प्रकार के कर्मादान कहलाते हैं। अंगारे की भट्ठी करनी, कुम्हार, लुहार तथा सुवर्णकारपना करना और चूना तथा इंटे पकानी वगैरह कार्य करके जो आजीविका करनी अंगार-जीविका कहलाती है। छेदे हुए और बिना छेदे हुए वन के पत्र-पुष्प और फल लाकर बेचना और अनाज पीसना, कूटना वगैरह कार्य करके आजीविका करने को वनजीविका कहते हैं। शकट जो गाड़े (बैलगाडी) और उसके पहिए, धुरा वगैरह भाग घड़ने, जोतने व बेचने आदि से आजीविका करने को शकटजीविका कहा जाता है। गाड़े, बैल, पाडे, ऊँट, खर, खच्चर और घोड़ो से किराये पर

देकर बोझ वहन करवाकर उनसे आजीविका करने को भाटकजीविका कहा जाता है। सरोवर तथा कुंए वगैरह खोदने और शिला-पाषाण घड़ने आदि पृथ्वी संबंधित जो कुछ आरंभ करने व उसके द्वारा आजीविका करना स्फोटजीविका कहलाता है। पशुओं के दांत, केश, नाखून, अस्थि, त्वचा और रोम वगैरह उसके उत्पत्तिस्थान से ग्रहण करके उन त्रस अंगो के व्यापार को दंतवाणिज्य कहा जाता है। लाख, मणशील, नील, घावडी, सुहागा वगैरह वस्तुका व्यापार करना पाप के गृहरुपी लाक्षवाणिज्य कहलाता है। मक्खन, चरबी, शहद और मदिरा वगैरह का व्यापार करना रसवाणिज्य कहलाता है और दो पैरवाले मनुष्यादि व चार पैरवाले पशु आदि का व्यापार करना केशवाणिज्य कहलाता है। किसी भी तरह के जहर, किसी भी प्रकार के शस्त्र, हल, यंत्र, लोह और हरिताल वगैरह जीवित का नाश करनेवाली वस्तुओं के व्यापार को विषवाणिज्य कहा जाता है। तिल, गन्ना, सरसो व अरण्डे वगैरह को जलयंत्रादिक से पीसकर तथा पत्तों में से तैल-अत्तर निकालकर उसके ही व्यापार को यंत्रपीड़ा कहा जाता है। पशुओं के नाक बेधने, दाग लगाकर अंकित करना, मुष्कच्छेद (खसी करना) पृष्ठ भाग को गलाना वह कान वगैरह अंग छेदना आदि को निर्लांछन कर्म कहा जाता है। द्रव्य के लिए मैना, तौता, मार्जार, कुत्ता, मुर्गा व मोर वगैरह पक्षी पालने, पोषने और दासियों का पोषण करना असतीपोषण कहलाताहै। व्यसन से अथवा पुण्यबुद्धि से - यूं दो प्रकार के दावानल को देना दवदान कहलाता है और सरोवर, नदी तथा द्रहों वगैरह के जल को सोख लेने के उपाय करना सरःशोष कहलाता है। इस प्रकार कर्मादान समझने और उसका त्याग करना। संयुक्त अधिकरणता, उपभोग अतिरिक्तता, अतिवाचालता, कौत्कुची और कंदर्पचेष्टा - ये पांच अनर्थदण्डविरमण नाम के आठवें व्रत के अतिचार हैं।

मन, वचन और काया से दुष्ट प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुपस्थापन - ये पांच सामायिक व्रत के अतिचार हैं। प्रेष्य प्रयोग, आनयन प्रयोग, पुद्गल का प्रक्षेप, शब्दानुपात और रुपानुपात - ये पांच देशावकाशिक व्रत के अतिचार हैं। संथारे आदि बराबर देखे या प्रमार्जन किए बिना रखने या लेने, अनादर व स्मृति का अनुस्थापन - ये पांच पौषध व्रत के अतिचार हैं। सचित पर रख देना, सचित द्वारा ढकना, काल का उल्लंघन करके आमंत्रण करने जाना, मत्सर रखना और व्यपदेश करना - ये पांच चौथे अतिथिसंविभाग नाम के शिक्षाव्रत के अतिचार[1] हैं। इस प्रकार के अतिचारों से रहित ऐसे व्रत को पालनेवाला श्रावक भी शुद्धात्मा होकर क्रमशः भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार प्रभु की देशना सुनकर कइं लोगों ने दीक्षा ली और कइं श्रावक बने। 'अर्हंत की वाणी कदापि निष्फल नहीं होती।' बड़े मनवाले अश्वसेन राजा ने प्रतिबोध पाकर तत्काल

अपने लघुपुत्र **हस्तिसेन** को राज्य सौंपकर दीक्षा ली। वामादेवी और प्रभादेवी ने भी प्रभु की देशना से संसार में से विरक्त होकर मोक्षसाधन करानेवाली दीक्षा ग्रहण की। प्रभु के **आर्यदत्त** वगैरह दस गणधर बने, उनको प्रभु ने स्थिति, उत्पाद और व्ययरुप त्रिपदी कह सुनायी। उस त्रिपदी को सुनने मात्र से उन्होंने सद्य द्वादशांगी की रचना की। "बुद्धिमान को किया हुआ उपदेश जल में तैल के बिन्दु की तरह फैल जाता है।" प्रथम पौरुषी पूर्ण हुई तो प्रभु ने देशना समाप्त की। दूसरी पौरुषी में आर्यदत्त गणधर ने देशना दी। फिर शक्रेन्द्र वगैरह देवता तथा मनुष्य प्रभु को प्रणाम करके प्रभु की देशना का स्मरण करते हुए अपने अपने स्थानक पर गये।

पार्श्वनाथ के तीर्थ में कछुए के वाहनवाला, कृष्णवर्ण धरनेवाला, हस्ती जैसे मुखवाला, नाग की फना के छत्र से शोभित, चार भुजावाला, दो वाम भुजा में नकुल और सर्प तथा दो दक्षिण भुजा में बिजोरुं और सर्प धारण करनेवाला पार्श्व नाम का यक्ष शासनदेवता बना। कुर्कट जाति के सर्प के वाहनवाली, सुवर्ण जैसे वर्णवाली, दो दक्षिण भुजा में पद्म और पाश तथा दो वाम भुजा में फल व अंकुश धरनेवाली **पद्मावती** नाम की यक्षणी शासनदेवी बनी। ये दोनों शासनदेवता जिनके पास निरंतर रहते हैं और अन्य भी अनेक देव और मनुष्य विनीत होकर जिनकी सेवा किया करते हैं ऐसे पार्श्वप्रभु पृथ्वी पर विहार करने लगे।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येनवमे पर्वणि श्री पार्श्वनाथकौमार दीक्षाकेवलोत्पत्तिवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः॥३॥

चतुर्थ सर्ग

श्री पार्श्वनाथ प्रभु का विहार और निर्वाण

सर्व विश्व के अनुग्रह के लिए विहार करते हुए श्री पार्श्वनाथ प्रभु एक बार संसार में पुंड्र (तिलक) जैसे पुंड्रवर्धन नाम के देश में आए। उस अरसे में पूर्व देश में **ताम्रलिप्ति** नगरी में **सागरदत्त** नाम का एक कलाज्ञ और सद्‌बुद्धिमान युवा वणिकपुत्र रहता था। उसे जातिस्मरण होने से वह सर्वदा स्त्रीजाति के बारे में विरक्त था, इसलिए स्वरुपवान स्त्री को भी नहीं ब्याहना चाहता था। वह पूर्व जन्म में एक ब्राह्मण का पुत्र था। उस भव में कोई अन्य पुरुष पर आसक्त बनी उसकी पत्नी ने उसे जहर देकर संज्ञारहित करके किसी जगह छोड दिया था। वहां एक गोकुली स्त्री ने उसे बचाया था। फिर वह परिव्राजक बन गया था। वहां से मृत्यु पाकर इस भव में सागरदत्त नाम का श्रेष्ठीपुत्र बना था, परंतु पूर्वजन्म के स्मरण से वह स्त्रियों से विमुख बना था।

अब वह लोकधर्म में तत्पर गोकुली स्त्री मृत्यु पाकर क्रमशः उसी नगरी में एक रुपमती वणिक-पुत्री बनी। 'इस स्त्री में इसकी दृष्टि लग जायेगी' ऐसी संभावना करके बंधुजनों ने उसे सागरदत्त के लिए पसंद किया व गौरवसहित उसे प्राप्त भी किया, परंतु सागरदत्त का मन उस पर भी विश्रांत न हुआ, क्योंकि पूर्व भव के अभ्यास से वह स्त्रियों को यमदूती समान मानता था। बुद्धिमान वणिकपुत्री ने सोचा, 'इसे कुछ पूर्वभव का स्मरण हुआ लगता है और उस जन्म में किसी पुंश्चली स्त्री ने इस पुरुष को परेशान किया लगता है।' हृदय में ऐसा विचार करके उसे समझाने का अवसर जानकर उसने एक पत्र में श्लोक लिखकर उसको भिजवाया। उस श्लोक का भावार्थ था, ''दूध से जले पुरुष को दहीं का त्याग करना उचित नहीं है, क्योंकि अल्प जल में संभवित जैविक क्या दूध में भी होंगे ?'' इस श्लोक को पढ़कर उसका भावार्थ हृदय में सोचकर सागरदत्त ने भी एक श्लोक लिख भेजा। उसका भावार्थ इस प्रकार था, ''स्त्री कुपात्र में क्रीडा करती है, नदी नीचे की और जाती है, मेघ पर्वत पर बरसता है और लक्ष्मी निर्गुण पुरुष का आश्रय करती है।'' वणिकपुत्री ने यह श्लोक पढ़कर उसका भावार्थ जान लिया। फिर उसके बोध के लिए दूसरा श्लोक लिख भेजा। उसका भावार्थ इस प्रकार था, ''उसमें भी क्या कोई स्त्री दोषरहित नहीं होती है ? यदि होती है तो रागी स्त्री को क्या देखकर त्याग करना चाहिए ? रवि अपने पर अनुरक्त बनी संध्या को कदापि नहीं छोड़ता है।'' यह श्लोक पढ़कर उसके ऐसे चतुराई भरे संदेशों से प्रसन्न बना सागरदत्त उससे ब्याहा व हर्षयुक्त चित्त से प्रतिदिन भोग भोगने लगा।

एक बार सागरदत्त का श्वसुर पुत्र सहित व्यापार के लिए **पाटलापथ** नगर गया। यहां

श्री शत्रुंजय पार्श्वनाथ भगवान
श्री शत्रुंजय डेम तीर्थ

श्री शंखवेश्वर पार्श्वनाथ भगवान
श्री शंखेश्वर तीर्थ

श्री अमीझरा पार्श्वनाथ भगवान
श्री अंकलेश्वर तीर्थ

-: सौजन्य दाता :-

बगडीया ललिताबेन हिंमतलाल परिवार

सुरत

सागरदत्त भी व्यापार करने लगा। एक बार वह बड़ा जहाज भरकर समुद्र के दूसरे तट पर गया। सात बार उसका जहाज समुद्र में टूट गया, जिससे 'यह पुण्यरहित है' यूं कहकर लोग उस पर हंसने लगे, तो वह लौट आया। परंतु निर्धन हो जाने पर भी उसने उद्यम नहीं छोड़ा। एक समय इधर-उधर भटकता हुआ एक लड़का उसे कुंए में से जल निकालते हुए नज़र आया। उस लड़के से सात बार पानी नहीं आया, लेकिन आठवीं बार पानी आया। यह देखकर सागरदत्त ने सोचा, "मनुष्यों को उद्यम अवश्य फलदायी है। जो अनेक विघ्न आये तो भी अस्खलित उत्साहवाले होकर प्रारंभ किए हुए कार्य को छोड़ना नहीं हैं, उनको दैव भी विघ्न करने में संदेह पाते हैं।" इस प्रकार सोचकर शुकनग्रंथि बांधकर, जहाज लेकर वह सिंहलद्वीप आया। फिर वहां अपना सब माल बेचकर उसने रत्नों के समूह खरीदे। उससे जहाज भरकर वह अपनी नगरी तरफ चला। उन रत्नों को देखकर लुब्ध बने खलासियों ने उसे रात्रि में समुद्र में डाल दिया। दैवयोग से पहले टूटे किसी जहाज का पट्ट उसके हाथ लग जाने से उसके द्वारा वह समुद्र पार कर गया। वहां किनारे पर पाटलापथ नगर था। उस नगर में प्रवेश करने पर वहां रहे उसके श्वसुर ने उसे देखा, तो वह उसे अपने आवास में ले गया। फिर स्नान-भोजन करके विश्रांत बने सागरदत्त ने प्रारंभ से लेकर खलासियों तक का वृत्तांत अपने श्वसुर को कहा। श्वसुर ने कहा, 'हे जमाता ! आप यहीं पर रहो। वे दुर्बुद्धिवाले खलासी तुम्हारे बंधुजन को संदेह हो जाने के भय से ताम्रलिप्ति नगर नहीं जायेंगे, लेकिन वे शायद यहीं पर आयेंगे।' सागरदत्त ने वहां रहना कबूल किया। फिर उसके श्वसुर ने यह वृत्तांत वहां के राजा को बताया। "दीर्घदर्शी पुरुषों का ऐसा न्याय है।"

कुछ दिनों में वह जहाज उस बंदरगाह पर आया, तो सागरदत्त से जिन्होंने सब चिह्न जाने थे, ऐसे राज्य के आरक्षक पुरुषों ने उस जहाज को पहचान लिया। फिर उन्होंने उसके सब खलासियों को पृथक-पृथक पूछा कि 'इस जहाज का मालिक कौन है ? उसमें क्या क्या किराने हैं ? और कितने हैं ?' इस प्रकार उलटसूलट पूछने पर वे सब क्षोभ पाकर भिन्न भिन्न उत्तर देने लगे, जिससे उनको धोखेबाज जानकर आरक्षकों ने तत्काल सागरदत्त को वहां बुलवाया। सागरदत्त को देखते ही वे भय पाकर बोले, "हे प्रभु ! हम कर्मचाण्डालों ने महा दुष्कर्म किया था, फिर भी आपके प्रबल पुण्य से हम अक्षत रहे है। हम आपकी वध्यकोटि को प्राप्त हुए हैं, इसलिए आप स्वामी को जो योग्य लगे वह करें।" कृपालु और शुद्ध बुद्धिवाले सागरदत्त ने राजपुरुषों से उनको छुडवाया, और कुछ पाथेय देकर उन्हें बिदा किया। उसके ऐसे कृपालुपन से 'यह पुण्यवान है' ऐसा सोचकर वहां के राजा का महामति सागरदत्त बड़ा कृपापात्र बना। और उस जहाज के किराने बेचकर उसने बहुत द्रव्य उपार्जित किया। फिर बहुत दान देते

हुए वह धर्म की इच्छा से धर्मतीर्थकों[1] को पूछने लगा कि 'जो देव के देव हो उसे रत्नमय करने की मेरी इच्छा है, तो मुझे वह बताइए।' देवतत्त्व तक नहीं पहुँचे हुए धर्मतीर्थकों ने उसके जो उत्तर दिए, उसमें से एक वाक्य भी उसे योग्य नहीं लगा, तो उसमें से किसी आप्त पुरुष ने कहा, 'हमारे जैसे मुग्ध को यह बात क्यों पूछते हो ? आपको पूछना हो तो एक रत्न का अनुसरण करते हुए तपस्या के लिए तत्पर बनो, तो उसका अधिष्ठायिक देव आकर आपको जो सही देवाधिदेव होगा वह बतायेगा।' फिर सागरदत्त ने उस प्रकार करके अष्टम तप किया, तो रत्न के अधिष्ठायिक देवता ने आकर उसे तीर्थंकर की पवित्र प्रतिमा दिखाकर कहा, 'हे भद्र ! यह देव ही परमार्थ हेतु सत्य देव है, इसका स्वरुप मुनि ही जानते है, अन्य कोई नहीं जानता।' इस प्रकार कहकर मूर्ति देकर वह देव स्वस्थान पर गया। सागरदत्त उस प्रतिमा को देखकर बड़ा खुश हुआ। वह सुवर्णवर्णी अर्हंत प्रतिमा उसने साधुओं को बतायी। तो साधुओं ने उसे जिनवर्य ने कहा हुआ धर्म कह सुनाया, जिससे सागरदत्त श्रावक बना।

एक बार सागरदत्त ने मुनियों से पूछा, 'हे भगवंत ! यह कौनसे तीर्थंकर की प्रतिमा है ? और मुझे इसकी प्रतिष्ठा कौनसी विधि से करनी चाहिए ? मुझे यह कहिए।' मुनि बोले, 'इस समय पुंड्रवर्धन देश में श्री पार्श्वनाथ प्रभु समवसरे हैं। तो उनके पास जाकर यह बात पूछो।' तो तत्काल सागरदत्त श्री पार्श्वप्रभु के पास गया और नमस्कार करके उस रत्नप्रतिमा के बारे में पूरी हकीकत पूछी। प्रभु ने अपने समवसरण को उद्देश करके सभी अर्हंतों के अतिशय संबंधित और तीर्थंकर की प्रतिमा की स्थापना संबंधित संपूर्ण हकीकत कह सुनायी। फिर श्री जिनोक्त विधि से उस तीर्थंकर की प्रतिमा की उसने प्रतिष्ठा कराई। एक बार उस सागरदत्त ने पार्श्वप्रभु से ही दीक्षा ली। फिर सुर-असुरों द्वारा सेवे जा रहे और सर्व अतिशयों से संपूर्ण ऐसे प्रभु ने परिवार सहित वहां से अन्यत्र विहार किया।

नागपुरी में नागेन्द्र की तरह **नागपुरी** नाम की नगरी में यशस्वियों में अग्रिम **सूरतेज** नाम का राजा था। उस नगरी में **धनपति** नाम का एक धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था, वह राजा को बड़ा प्रिय था। उसके घर **सुन्दरी** नाम की एक शीलवान सुन्दर स्त्री थी। पितामह के नाम अनुसार ही नामवाला **बंधुदत्त** नाम का उसका एक विनीत और गुणवान पुत्र था। वह क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ। उस समय वत्स नाम के विजय में **कोशांबी** नगरी में शत्रुओं का **मानभंग** नाम का राजा राज्य करता था। उस नगरी में जिनधर्म में तत्पर **जिनदत्त** नाम का एक धनाढ्य श्रेष्ठी था। उसे **वसुमती** नाम की स्त्री थी। उनको **प्रियदर्शना** नाम की एक पुत्री हुई थी। **अंगद** नाम के विद्याधर की पुत्री **मृगांकलेखा** नाम की उसकी सखी थी, वह जैनधर्म

१. धर्माचार्यों को - अनेक मत के मुखियों को।

में लीन थी। वे दोनों सखियां देवपूजा, गुरु की उपासना और धर्माख्यान वगैरह कृत्यों से ही दिन निर्गमन करती थी। एक बार कोई साधु गोचरी के लिए जा रहे थे, उन्होंने प्रियदर्शना को उद्देश्य करके दूसरे साधू को कहा, 'यह महात्मा स्त्री पुत्र को जन्म देकर दीक्षा लेगी।' यह सुनकर मृगांकलेखा ने हर्ष पाया, पर यह बात उसने किसिको न कही।

एक बार धनपति श्रेष्ठी ने अपने पुत्र के लिए नागपुरी के ही रहनेवाले **वसुनंद** नाम के श्रेष्ठी की **चन्द्रलेखा** नाम की कन्या की मांग की। उसने अपनी पुत्री उस श्रेष्ठीपुत्र को दी। फिर शुभ दिन पर बड़े उत्सव से बंधुदत्त और चन्द्रलेखा का विवाह हुआ। जिसका हाथ मंगलकंकण से अंकित है ऐसी चन्द्रलेखा को दूसरे दिन सर्प ने आकर काटा, जिससे वह तत्काल मृत्यु पा गई। इस प्रकार 'कर्म के परिणाम से अभागी पुरुष के विवाह करने के बाद ब्याही हुई स्त्री दूसरे दिन ही मर जाती है।' इस घटना के बाद 'बंधुदत्त का हस्त ही विषमय है' ऐसा उसके सिर पर अपवाद आया, इसके बाद उसने कइं कन्याओं की मांग की और बहुत द्रव्य देने पर भी उसे दूसरी स्त्री प्राप्त न हुई। इस प्रकार स्त्री रहित रहने से 'स्त्री रहित मुझे यह संपत्ति किस काम की है ?' यूं चिंता करते हुए बंधुदत्त कृष्ण पक्ष के चन्द्र की भाँति दिन प्रतिदिन क्षय पाने लगा। उसको दुर्बल होते देखकर दुःखी बने धनपति सेठ ने सोचा, 'मेरा पुत्र इस चिंता में मर जायेगा, इसलिए उसके दुःख का विस्मरण करने के लिए किसी व्यापार में जोड दूं' ऐसा निर्णय करके धनपति श्रेष्ठी ने बंधुदत्त को बुलवाया और आज्ञा दी, 'हे वत्स ! तू व्यापार करने के लिए सिंहलद्वीप अथवा अन्य द्वीप पर जा।' पिता की आज्ञा से बंधुदत्त बहुत से किराने लेकर जहाज पर चढ़कर, समुद्र पार करके सिंहलद्वीप आया। किनारे पर उतरकर सिंहलपति के पास जाकर उत्तम भेंट देकर उसे प्रसन्न किया। **सिंहलराजा** ने उसका कर माफ किया और प्रसन्न होकर उसे बिदा दी। वहां सब किराने बेचकर मनचाहा मुनाफा पाया और अन्य किराने खरीदकर वह अपने नगर की ओर लौट चला। समुद्रमार्ग पर चलते हुए क्रमशः वह अपने देश के नज़दीक आया, इतने में प्रतिकूल पवन से डोलता हुआ उसका जहाज टूट गया, परंतु कुछ अनुकूल दैव से काष्ठ का एक पट्ट उसके हाथ आया। जिससे उसके पर तैरता हुआ बंधुदत्त समुद्रतट के आभूषणरुपी रत्नद्वीप में आया। वहां एक वापिका में उतरकर, स्नान करके वह पके हुए आम्रफलवाले वन में गया। वहां क्षुधारुप रोग के औषधरुपी स्वादिष्ट आम्रफलों का उसने भक्षण किया।

इस प्रकार मार्ग में वनफल का आहार करते हुए बंधुदत्त क्रमशः रत्नपर्वत के समीप आया। फिर वह पर्वत पर चढ़ा, वहां एक रत्नमय चैत्य उसे नजर आया, उसने उस चैत्य में प्रवेश किया। वहां अरिष्टनेमि की प्रतिमा की वन्दना की और वहां कुछ महामुनि थे, उनकी

भी वन्दना की। फिर सर्व में ज्येष्ठ मुनि ने उसको उसकी वास्तविकता तो पूछी तो बंधुदत्त ने स्त्री की मृत्यु और जहाज का भंग वगैरह अपना पूरा वृत्तांत प्रारंभ से कह सुनाया। फिर मुनि ने उसको प्रतिबोध प्राप्त कराया, तो अपना यहां आना सफल हुआ, यूं अनुमोदन करते हुए बंधुदत्त ने जैनधर्म का स्वीकार किया। उसे वहां रहे **चित्रांगद** विद्याधर ने उसको कहा, "जैनधर्म के स्वीकार से अब आप मेरे साधर्मिक हुए, यह अच्छा हुआ, अब कहें तो मैं आपको आकाशगामिनी विद्या दूं, तो आपको इष्टस्थान पर पहुँचा दूं, अथवा कहें तो कोई कन्या ब्याह दूं।" बंधुदत्त ने कहा, 'आपके पास जो विद्या है, वह मेरी ही है और जहां ऐसे गुरु के दर्शन होते हो, वह स्थान ही मुझे इष्ट है।' इस प्रकार कहकर वह मौन बना। विद्याधर ने सोचा, 'यह बंधुदत्त अवश्य कन्या चाहता है, क्योंकि उसने इस बात का निषेध नहीं किया है, लेकिन जो कन्या इससे ब्याहकर तुरंत मृत्यु न पाये उस कन्या का इस महात्मा से ब्याह कराऊँ।' ऐसा निश्चय करके उस बंधुदत्त को अपने स्थानक पर ले गया और उचित स्नान-भोजनादिक से उसकी भक्ति की। फिर चित्रांगद ने अपने सर्व खेचरों को पूछा, 'इस भारतवर्ष में आपने कोई ऐसी कन्या देखी है, जो इस पुरुष के योग्य हो ?' यह सुनकर उसके भाई अंगद विद्याधर की पुत्री मृगांकलेखा बोली, 'हे पिताजी ! क्या आप मेरी सखी प्रियदर्शना को नहीं जानते ? मेरी वह सखी कौशंबीपुरी में रहती है, स्त्रीरत्न जैसी रुपवती है और जिनदत्त सेठ की पुत्री है। मैं पहले एक बार उसके पास गई थी, उस समय किसी मुनि ने उसे उद्देश करके कहा था कि 'यह प्रियदर्शना पुत्र को जन्म देकर दीक्षा लेगी।' यह वाक्य मेरे सुनने में आया था।" इस प्रकार की हकीकत सुनकर चित्रांगद ने बंधुदत्त को योग्य प्रियदर्शना दिलवाने के लिए **अमितगति** वगैरह खेचरो को आज्ञा दी, तो वे खेचर बंधुदत्त को लेकर कौशांबीनगरी गये। वहां नगर के बाहर पार्श्वनाथ के चैत्य से विभूषित ऐसे उद्यान में निवास किया, फिर बंधुदत्त ने खेचरों के साथ उस चैत्य में प्रवेश किया, वहां पार्श्वनाथ प्रभु को और मुनियों को उसने वन्दना की। फिर उनसे धर्मदेशना सुनी।

इतने में वहां साधर्मीप्रिय ऐसा जिनदत्तश्रेष्ठी आया। वह सर्व खेचर सहित बंधुदत्त को प्रार्थना करके अपने घर ले गया। फिर जिनदत्त सेठने बंधुदत्त और खेचरों को गौरवपूर्वक स्नान, आसनादिक के सत्कार करके उनके आगमन का कारण पूछा। तो "यह काम का ही प्रयोजन है, लेकिन जिस काम के बारे में प्रयोजन है उसके बारे में अनृत (असत्य) कहना पड़े ऐसा है।" ऐसा सोचकर उन खेचरों ने इस प्रकार कहा, "हम तीर्थयात्रा की धारणा करके रत्नपर्वत से निकले हैं। पहले हम उज्जयंतगिरि गये, वहां नेमिनाथ को वन्दना की। वहां इस बंधुदत्त श्रेष्ठीने हमको साधर्मिक जानकर अपने बंधु की तरह भोजनादिक से हमारी भक्ति की। यह

बंधुदत्त धार्मिक, उदार, व वैराग्यवान् है, इसलिए हमें उसके साथ अधिक प्रीति हुई है। यहां पार्श्वप्रभु की वन्दना के लिए हम उज्जयंत (गिरनार) गिरि से आये है, यह बंधुदत्त भी हमारे स्नेह से नियंत्रित होकर हमारे साथ आया है।'' खेचरों के ऐसे वचन सुनकर और बंधुदत्त को देखकर सेठ ने सोचा कि 'यह वर मेरी पुत्री के योग्य है।' फिर जिनदत्त ने खेचरों को आग्रहपूर्वक रोका और बंधुदत्त को कहा कि 'मेरी पुत्री से ब्याहो।' बंधुदत्त ने ब्याह करने की अनिच्छा का दिखावा करके वह बात स्वीकारी। यह समाचार अमितगति ने चित्रांगद को पहुँचाए तो चित्रांगद बारात लेकर वहां आया। फिर जिनदत्त ने बंधुदत्त के साथ अपनी पुत्री का ब्याह कराया। चित्रांगद बंधुदत्त को सीख देकर अपने स्थानक पर गया।

बंधुदत्त प्रियदर्शना के साथ क्रीडा करते हुए वहीं रहा। उसने वहां श्री पार्श्वनाथ की रथयात्रा कराई। इस तरह धर्म में तत्पर होकर उसने वहां चार वर्ष व्यतीत किए। कुछ काल बीतने पर प्रियदर्शना ने गर्भ धारण किया। उस समय उसने स्वप्न में मुखकमल में प्रवेश करते हुए एक हाथी को देखा। दूसरे दिन बंधुदत्त ने अपने स्थान की ओर जाने का मनोरथ अपनी पत्नी को बताया। उसने अपने पिता जिनदत्त को कहा, तो सेठ ने बहुत सी संपत्ति देकर बंधुदत्त को प्रिया सहित बिदा दी। बंधुदत्त ने ''मैं नागपुरी जाऊंगा'' ऐसी आघोषणा करायी, जिससे कइं लोग उसके साथ चले, उनको बंधु समान मानकर उन्हें आगे किया। सन्मार्ग के महापांथ तुल्य बंधुदत्त धीरे धीरे चलते हुए क्रमशः अनर्थ के गृहरुप **पद्म** नाम की एक अटवी में आया। सार्थ की रक्षा करते हुए उसने तीन दिन में उस अटवी को पार करके एक सरोवर तट पर आकर पडाव करवाया। वहां सार्थ रात्रि बीताने रुका। उस रात्रि के आखिरी प्रहर में **चण्डसेन** नाम के एक पल्लीपति की डकैती पड़ी। पल्लीपति के सुभटों ने सार्थ का सर्वस्व लूंट लिया और प्रियदर्शना को भी हर जाकर अपने स्वामी चण्डसेन को सौंपा। दीन मुखवाली प्रियदर्शना को देखकर उस चण्डसेन को भी दया आयी, जिससे उसने सोचा, 'क्या इस दीन स्त्री को वापस उसकी जगह पहुँचा दूं ?' ऐसी चिंता करते हुए उसने चूतलता नाम की प्रियदर्शना की दासी को पूछा, 'यह स्त्री किसकी प्रिया है ? और किसकी पुत्री हैं ? यह पूरा वृत्तांत मुझे कह।' दासी बोली, 'कौशांबी में रहनेवाले जिनदत्त सेठ की यह पुत्री है और उसका नाम प्रियदर्शना है।' इतना सुनते ही चण्डसेन को मूर्च्छा आ गयी। थोड़ी देर बाद संज्ञा पाकर उसने प्रियदर्शना को कहा, ''हे बाला ! तेरे पिता ने मुझे पहले बचाया है, इसलिए तू भय मत पाना। तू मेरा वृत्तांत प्रारंभ से सुन। मैं चोरों के राजा रुप में प्रसिद्ध हूँ। एक बार मैं चोरी करने निकला। प्रदोषकाल में वत्सदेश के **गिरि** नाम के गाँव में गया। वहां चोर लोगों से घिरा हुआ मैं मद्यपान करने बैठा। इतने में रक्षकों ने आकर मुझे पकड़ा और वहां के राजा **मानभंग** समक्ष मुझे प्रस्तुत

किया। उसने मुझे मार ड़ालने का आदेश दिया। फिर मुझे मारने ले जा रहे थे तब तेरे माता-पिता पौषध करके पारणे के लिए घर जा रहे थे, वे वहां से निकले। मेरी हकीकत सुनकर उस कृपालु सेठ ने मुझे छुडवाया। फिर कुछ वस्त्र और धन देकर मुझे बिदा किया, इसलिए तू मेरे उपकारी की पुत्री है, अब मुझे आज्ञा दे कि मैं तेरा क्या काम करुं ?'' प्रियदर्शना बोली, ''हे भ्राता ! तुम्हारी डकैती पड़ने से वियुक्त बनेमेरे पति बंधुदत्त के साथ मुझे मिलवा दे।'' ''मैं ऐसा ही करुंगा,'' कहकर पल्लीपति प्रियदर्शना को अपने घर लाया और अपना देवता हो त्यों उसे अति भक्ति से देखने लगा। फिर अभयदान से प्रियदर्शना को आश्वासन देकर चण्डसेन स्वयं बंधुदत्त को ढूंढने निकला।

यहां प्रिया का वियोग होने से बंधुदत्त हिंतालवन के मध्य में आकर स्वस्थ होकर इस प्रकार सोचने लगा, 'मेरे वियोग से मेरी विशाललोचना प्रिया एक दिन भी जीवित न रह सकती, इसलिए अवश्य वह मृत्यु पायी होगी। तो अब मैं किस प्रत्याशा से जीऊँ ? इसलिए मुझे मरण की शरण है, क्योंकि उससे मुझे कोई विशिष्ट हानि नहीं है।' इस प्रकार सोचकर सप्तच्छद के बड़े वृक्ष पर चढ़कर फाँसी खाकर मृत्यु पाने के लिए वह तैयार हुआ। सप्तच्छद वृक्ष के पास आते हुए उसने एक बड़ा सरोवर देखा। उसमें प्रिया के विरह से दुःखी ऐसा एक राजहंस उसे नज़र आया। उसे अपने समान दुःखी व दीन देखकर वह ज्यादा दुःखी बना, क्योंकि ''दुःखी जन की मानसिक पीड़ा दुःखीजन ही जानते हैं।'' बंधुदत्त वहां थोड़ी देर तक खड़ा रहा, इतने में कमल की छाया में बैठी हुई राजहंसी के साथ उस राजहंस का मिलाप हुआ। उसका इस प्रकार प्रिया से मिलाप हुआ जानकर बंधुदत्त ने सोचा, ''जीवित नर को दुबारा प्रिया से संगम होता है, इसलिए इस समय तो मैं मेरी नगरी में जाऊँ, लेकिन ऐसी निर्धन दशा में तो वहां किस प्रकार जा सकता हूँ ? प्रिया बिना भी कौशांबीपुरी जाना योग्य नहीं है, इसलिए इस समय तो विशालापुरी जाऊँ, वहां मेरे मातुल (मामा) से द्रव्य लेकर, उस चोर सेनापति को देकर मेरी प्रिया को छुडवाऊँ। इसके बाद प्रिया के साथ नागपुरी जाकर मेरे घर से द्रव्य लेकर मातुल को वापस दे दूंगा। सब उपायों में यह उपाय ही मुख्य है।'' ऐसा विचार करके वह बंधुदत्त पूर्व दिशा की ओर चला। दूसरे दिन बंधुदत्त अति दुःखी होकर **गिरिस्थल** नाम के उद्यान पर आया। वहां मार्ग के नज़दीक वृक्षों से ढके एक यक्ष के मंदिर में उसने विश्राम किया। इतने में श्रमपीडित एक मुसाफिर वहां आया। उसे बंधुदत्त ने पूछा, 'आप कहां से आ रहे हो ?' उसने कहा, 'मैं विशालानगरी से आ रहा हूँ।' बंधुदत्त ने पूछा, 'वहां धनदत्त सार्थवाह कुशल है ?' तो उस मुसाफिरने दीन वदन से कहा, ''धनदत्त व्यापार करने बाहरगाँव गया था। इतने में एक दिन उसके बड़े पुत्र ने घर पर पत्नी के साथ क्रीडा करने में वहां से गुजरते राजा की

अवगणना की, उसके इस अपराध से क्रोध पाये हुए राजा ने उसके सर्वस्व लूंट लिया और उसके पुत्र, कलत्र वगैरह पूरे कुटुम्ब को कैद किया। धनदत्त घर आया तब राजा को अरज करते हुए और अपना सारा द्रव्य दण्ड में देते हुए शेष दण्ड के लिए कोटि द्रव्य के लिए वह *अपनी बहन के पुत्र बंधुदत्त को ढूंढने निकला है। राजा ने उसी शरत पर उसे छोड़ा है।''* इस प्रकार की हकीकत सुनकर बंधुदत्त ने सोचा, 'अहो ! दैव ने यह क्या किया ! जिसके लिए मुझे पूरी आशा थी, उसे भी दैव ने व्यसनसमुद्र में डाल दिया है, अब जो हुआ, सो हुआ। अब तो यहीं रहकर की मेरे मातुल की राह देखूं, और उसको मिलकर नागपुरी जाकर उसका अर्थ सत्वर साध दूं।' ऐसा विचार करके वह वहीं पर रहा।

पांचवें दिन कुछ लोगों की सहायता लेकर सार्थ के साथ खेदयुक्त मनवाला मातुल धनदत्त वहां आया और उसी वन में यक्षमंदिर के पास रहे एक तमालवृक्ष के नीचे बैठा। दूर से बराबर न पहचान सकने के कारण, बंधुदत्त उसे पहचानने के लिए उसके नज़दीक जाकर पूछा, 'आप कौन हो ? यहां कहां से आ रहे हो ? और कहां जाओगे ? यह कहिए।' धनदत्त बोला, हे सुन्दर ! मैं विशालापुरी से आ रहा हूँ और यहां से महापुरी नागपुरी को जाना है। बंधुदत्त बोला, 'मुझे भी वहीं जाना हैं, लेकिन वहां आपके संबंधी कौन हैं ?' वह बोला, 'वहां बंधुदत्त नाम का मेरा एक भानजा है।' बंधुदत्त ने कहा, 'हाँ, वह मेरा भी मित्र है।' फिर बंधुदत्त ने अपने मातुल को पहचाना, लेकिन अपनी पहचान दिए बिना वह उसके साथ मिल गया। फिर उन दोनों ने साथ भोजन किया। दूसरे दिन प्रातःकाल में बंधुदत्त शौच करने नदीतट पर गया, वहां एक कदंब के गह्वर में रत्न की छायावाली पृथ्वी देखी। उसने तीक्ष्ण शृंग से वह जमीन खोदी, उसमें से रत्न-आभूषणों से भरपूर एक तांबे का टोकरा निकला। उस टोकरे को गुप्त रुप से लेकर बंधुदत्त धनदत्त के पास आया और टोकरा मिलने की पूरी हकीकत कह सुनाई। फिर नम्रता से कहा, 'हे मित्र के मातुल ! मैंने एक कापडी से आपकी पूरी हकीकत जान ली है, इसलिए आपके पुण्य से प्राप्त यह टोकरा आप ही ग्रहण करें। हम दोनों यहां से विशालानगरी जाकर, राजा को धन देकर, कारागृह में से हमारे मनष्यों को छुडवा ले। इसके बाद हम नागपुरी जायेंगे।' इस प्रकार कहकर आगे टोकरा रखकर बंधुदत्त मौन बना। तो धनदत्त बोला, मुझे इस समय तुरंत मेरे मनुष्यों को छुड़वाने की जरुरत नहीं है। अभी तो तुम्हारे मित्र बंधुदत्त को मिलना है। फिर वह जैसा कहेगा वैसा करेंगे। फिर बंधुदत्त अपने आप प्रकट हुआ, अर्थात् स्वयं ही बंधुदत्त है ऐसा कहा। तो उसे पहचानकर धनदत्त बोला, 'अरे ! तू ऐसी दशा को कैसे प्राप्त हुआ ?' फिर बंधुदत्त ने अपना सर्व वृत्तांत बताया, वह सुनकर धनदत्त ने कहा, 'हे वत्स ! प्रथम हम भील लोगों से प्रियदर्शना को छुडवा ले, फिर दूसरा काम करेंगे।' इस प्रकार वे बात कर

रहे थे कि इतने में अचानक राजाके सुभट हथियार दिखाते हुए वहां आये। उन्होंने जितने वहां थे उन सबको तस्कर मानकर पकड़ा। धनदत्त व बंधुदत्त उस टोकरे को किसी गुप्त स्थान पर रख रहे थे कि राजपुरुषों ने उनको पकड़ा और 'यह क्या है ?' यूं पूछा, तो उन्होंने कहा, 'तुम्हारे भय से हम हमारा यह द्रव्य छिपा रहे थे।' फिर राजसुभट उस टोकरे सहित उनको और अन्य मुसाफिरों को भी राज्य भय दिखाते हुए न्यायकारी राज्यमंत्री के पास ले गये। न्यायमंत्री ने परीक्षा करके अन्य मुसाफिरों को निर्दोष जानकर छोड़ दिया। फिर इस मामा-भानजे को आदर से पूछा कि 'आप कौन हो ? कहां से आ रहे हो ? और यह क्या है ?' वे बोले, 'हम विशालानगरी से आ रहे हैं। यह द्रव्य हमारा पहले का उपार्जन किया हुआ है, उसे लेकर अब हम लाट देश की ओर जा रहे हैं।' मंत्री ने कहा, 'यदि यह द्रव्य तुम्हारा है तो इस टोकरे में क्या क्या चीज है, यह सब निशानी के साथ शीघ्र कहो।' फिर दोनों अज्ञात होने से क्षोभ पाकर बोले, 'हे मंत्रीराज ! यह टोकरा हमने हरण किया हुआ है, इसलिए आप स्वयं ही उसे खोलकर देख लें।' फिर मंत्री ने वह टोकरा खोलकर देखा तो उसमें राजनामांकित आभूषण नजर आये। बहुत समय पहले चोरी हुए उन आभूषणों को याद करके मंत्री ने सोचा, 'प्रथम चुराया हुआ द्रव्य लेकर इन दोनों ने पृथ्वी में निधिरुप किया होगा, इसलिए इन दोनों को पकडने से दूसरे अन्य चोर लोग भी पकड़े जायेंगे।' ऐसा सोचकर मंत्री ने पूरे सार्थ को अपने आदमियों द्वारा वापस पकड मंगवाया। फिर उसने यमदूत जैसे रक्षकों से उस मामा-भानजे का बहुत ताड़न करवाया। जब बहुत मार पड़ने लगा तब वे पीड़ित होकर बोले, 'हम इस सार्थ के साथ गत दिन को ही आये हैं। यदि ऐसा न हो तो विचार करके आप हमें मार डालना।' फिर उस स्थान के पुरुष ने बंधुदत्त को दिखाते हुए कहा, 'यह पुरुष तो इस सार्थ में पांचवें दिन मुझे नजर में आया था।' फिर मंत्री ने सार्थपति को पूछा, 'आप इस पुरुष को जानते हो ?' तो सार्थपति बोला, 'ऐसे तो कइं आदमी सार्थ में आते हैं और जाते हैं, उसे कौन पहचान सकेगा ? यह सुनकर मंत्री बड़ा कोपायमान हुआ, जिससे उसने वे मामा-भानजे को नरकावास जैसे कारागृह में कैद किया।

यहां चण्डसेन बड़ी देर तक बंधुदत्त को खोजने के लिए पद्माटवी में घूमा, परंतु उसको बंधुदत्त न मिला तो वह दुःखी होकर वापस घर लौटा। फिर उसने प्रियदर्शना के पास आकर ऐसी प्रतिज्ञा की, 'यदि मैं छः माह के अंदर तेरे पति को न ढूंढ लाऊं तो फिर मुझे अग्नि में प्रवेश करना।' ऐसी प्रतिज्ञा लेकर चण्डसेन ने कौशांबी में व नागपुरी में बंधुदत्त को ढूंढने के लिए गुप्त आदमी भेजे। वे भी कुछ दिनों में वापस आ गये और उन्होंने चण्डसेन को कहा, 'हम बहुत घूमे लेकिन बंधुदत्त हमें नजर नहीं आया।' चण्डसेन ने सोचा, 'प्रिया के विरह से

पीडित ऐसा बंधुदत्त भृगुपात (भैरवजप) या अग्निप्रवेश वगैरह से जरुर मृत्यु पाया होगा। मेरी प्रतिज्ञा को भी चार माह बीत गये हैं, तो अब इसी समय अग्नि में प्रवेश कर जाऊँ, क्योंकि बंधुदत्त मिलना दुर्लभ है अथवा तो जब तक प्रियदर्शना को कुछ प्रसव हो जाय तब तक राह देखूं और उसके प्रसूत पुत्र को कौशांबी में पहुँचाने के बाद अग्नि में प्रवेश करुं।' इस प्रकार चण्डसेन सोच रहा था कि द्वारपाल ने आकर बधाई दी कि 'प्रियदर्शना को पुत्र अवतरित हुआ।' पल्लीपति ने हर्ष पाकर द्वारपाल को पारितोषिक दिया। फिर पद्माटवी की देवी चण्डसेना को कहा कि यदि मेरी यह बहन प्रियदर्शना पुत्र के साथ एक माह तक कुशल रहेगी, तो मैं आपको दस पुरुष का बलिदान दूंगा। फिर जब प्रियदर्शना को कुमार के साथ कुशलता से पच्चीस दिन व्यतीत हुए तब चण्डसेन ने प्रत्येक दिशा में से बलिदान योग्य पुरुषों को पकड़ लाने के लिए सेवक पुरुषों को भेजा।

यहां बंधुदत्त ने अपने मातुल के साथ कारागृह में नारकी के आयुष्य जैसे छः माह निर्गमन किए। इतने में एक दिन रात्रि में राजसुभटों ने ज्यों पड़े सर्प को पकड़े त्यों अत्याधिक द्रव्य के साथ एक संन्यासी को पकड़ा, और उसे बांधकर सचिव को अर्पण किया। 'संन्यासी के पास इतना सारा द्रव्य कहां से आया ?' ऐसा सोचकर उसने निश्चय किया कि 'जरुर यह भी चोर है।' तो उसको मार ड़ालने का हुक्म किया। जब उसको वध करने ले चले, तब उसे बडा पश्चात्ताप हुआ और उसने सोचा, 'मुनि का वचन वृथा नहीं जाता।' उसने आरक्षकों को कहा, 'मेरे सिवा ओर किसिने इस शहर में चोरी नहीं की है। मैंने चोरी कर करके पर्वत, नदी, आराम वगैरह भूमि में चोरी का धन गाड़ा है। इसलिए जिस जिसका द्रव्य हो उन सबको ज्यों अनामत रखी हो त्यों वापस सौंप दो और बाद में मुझे शिक्षा करना।' रक्षकों ने आकर यह खबर सचिव को कही तो सचिव ने उसकी बताई हुई सब भूमि में से द्रव्य मँगवाया, तो उस रत्न-टोकरे के सिवा सब द्रव्य प्राप्त हो गया। फिर मंत्री ने उस संन्यासी को कहा, 'हे कृतिन् ! तेरे दर्शन से और आकृति से विरुद्ध यह तेरा आचरण क्यों हैं वह निर्भय होकर कह।' संन्यासी बोला, 'जो विषयासक्त हो और अपने घर में निर्धन हो उनको यह कार्य करना योग्य लगता हो तो मेरा विशेष वृत्तांत सुनो।

पुंड्रवर्धन नगर के **सोमदेव** नाम के ब्राह्मण का नारायण नाम का मैं पुत्र हूँ। मैं लोगों को कहता था, 'जीवघात के मार्ग से स्वर्ग मिलता है।' एक बार चोरबुद्धि से पकड़े हुए व दीन बदनवाले कुछ पुरुष मुझे नज़र आये। उन्हें देखकर 'ये बड़े चोर हैं इसलिए उन्हें मार डालो' यूं मैं बोला। वह सुनकर नज़दीक में रहे एक मुनि ने कहा, 'अरे ! यह कैसा कष्टकारी अज्ञान है।' यह सुनकर मैंने नमस्कार करके उस मुनि को पूछा कि 'क्या अज्ञान है ?' तब मुनि बोले,

'दूसरे को अति पीड़ाकारी वचन बोलना और गलत दोष का आरोपण करना ही अज्ञान है। पूर्व-कर्म के परिपक्व बने विपाक से ये मनुष्य तो बेचारे दुःख में पड़े हैं, उनको पहचाने बिना तू बड़ा चोर होने का गलत दोष क्यों देता हैं ? पूर्वजन्म में किए हुए कर्म का अवशेष फल तुझे थोड़े समय में मिलेगा, इसलिए तू दूसरे पर मिथ्या दोष का आरोप मत लगा।' फिर मैंने उस मुनि को पूछा कि 'मेरे पूर्व कर्म का अवशेष फल क्या है ?' तो अतिशय ज्ञानवान् और करुणानिधि मुनि बोले -

''इस भरतक्षेत्र में **गर्जन** नाम के नगर में **आषाढ़** नाम का एक ब्राह्मण था। उसे **अच्छुका** नाम की स्त्री थीं। इस भव से पाँचवें भव में **चन्द्रदेव** नाम का तू उसका पुत्र था। तेरे पिता ने तुझे बहुत पढ़ाया, तो तू विद्वान होने से वहां के **वीर** राजा का चहेता (प्रिय) बन गया। उस समय वहां **योगात्मा** नाम का एक सद्‌बुद्धिवान् निष्पाप संन्यासी रहता था। वहां के **विनीत** नाम के एक श्रेष्ठी की **वीरमती** नाम की एक बालविधवा पुत्री थी। वह एक **सिंहल** नाम के माली के साथ भाग गई। उस योगात्मा संन्यासी की पूजा वीरमती करती थी। दैवयोग से निःसंगपने के कारण किसी को कहे बिना ही उसी दिन वह संन्यासी भी वहां से किसी जगह चला गया। पहले तो 'वीरमती भाग गई' यूं सब लोग कहने लगे। लेकिन योगात्मा के जाने के समाचार मिलने से सोचा, 'जरुर वीरमती योगात्मा के साथ भाग गई होगी।' राजद्वार में ऐसी वार्त्ता हुई कि - वीरमती भाग गई है' तब तूने कहा, 'वह तो योगात्मा के साथ गई है।' वह सुनकर राजा ने कहा कि 'योगात्मा संन्यासी ने तो स्त्री वगैरह का त्याग किया था।' तो तूने जाकर कहा, 'वीरमती उसकी पूजा करती थी, इसलिए वे दोनों साथ ही गए हैं।' यह हकीकत फैलने से योगात्मा पाखण्डधारी कहलाया। यह सुनकर लोग उनके ऐसे दोष से धर्म पर श्रद्धारहित बने और अन्य संन्यासियों ने योगात्मा को अपने समुदाय से दूर किया। ऐसे दुर्वचन से निकाचित तीव्र कर्म बांधकर तू कोल्लाक नाम के स्थान पर बकरा बना। पूर्व कर्म के दोष से तेरी जिह्वा कुंठित हो गयी। वहां से मृत्यु पाकर कोल्लाक नाम की बड़ी अटवी में तू लोमड़ी बना। वहां भी जिह्वा सड़ जाने से मृत्यु पाकर तू साकेत नगर में राजमान्य मदनदाता नाम की वैश्या के घर पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ। जब तू युवा बना, तब एक बार मदिरापान करके मत्त होकर तू राजमाता पर आक्रोश करने लगा। राजपुत्र ने तुझे रोका, तो तूने उस पर भी उच्च स्वर में आक्रोश किया, जिससे उसने तेरी जिह्वा छेद ड़ाली। फिर लज्जा पाकर अनशन ग्रहण करके तू मृत्यु पाया। वहां से इस भव में तू ब्राह्मण बना है, परंतु अभी तुझे पूर्व कर्म भोगना थोड़ा बाकी हैं।'' यह सुनकर मुझे वैराग्य हुआ, जिससे तत्काल किसी अच्छे गुरु के पास जाकर मैं संन्यासी बना और गुरु की सेवा में तत्पर रहा। गुरु ने मृत्यु समय पर मुझे

तालोद्घाटिनी विद्या के साथ मुझे आकाशगामिनी विद्या मुझे दी और आदर से सीख भी दी, "धर्म और शरीर के रक्षण के सिवा अन्य कोई कार्य में इस विद्या का उपयोग मत करना, हास्य में भी असत्य मत बोलना। यदि प्रमाद से असत्य बोला जाय तो नाभि तक जल में रहकर ऊँचे हाथ करके ये दोनों विद्या के एक हजार आठ बार जाप करना।" विषय की आसक्ति से गुरु की यह सीख मैं भूल गया। मैंने अनेक विपरीत कार्य किए। उस उद्यान में देवालय के पास रहते हुए मैं आपसे मृषा (जूठ) बोला। कल स्नान किए बिना देवार्चन करने के लिए देवालय में कोई आया था। उसने मुझे तपोव्रत ग्रहण करने का कारण पूछा, तो मैंने प्रमाद से मनोवांछित पत्नी के विरह का गलत कारण बताया। इसके बाद गुरु के कहे अनुसार जल में रहकर उस विद्या का जाप नहीं किया। आधी रात को सागर श्रेष्ठी के धर में चोरी करने गया। दैवयोग से द्वार खुल्ले ही होने से श्वान की तरह मैं उसमें घुस गया और उसका चांदी व सोना चोरी करके बाहर निकला। तो दैवयोग से राजपुरुषों ने मुझे पकड़ लिया। उस समय मैंने आकाशगामिनी विद्या को बहुत याद किया, लेकिन उसकी स्फुरणा नहीं आयी।" इस प्रकार पूरी बात सुनने के बाद सचिव ने पूछा, 'तुझे सब चीजें मिली, लेकिन रत्न का टोकरा क्यों न मिला ? क्या तू उसका स्थान भूल गया है ?' उसने कहा, 'जहां मैंने वह टोकरा गड़ा था, वहां से दैवयोग उसे जानकर किसिने हर लिया लगता है।'

इस प्रकार सुनकर मंत्री ने उस संन्यासी को छोड़ दिया। फिर उन मामा-भानजे को याद किया और सोचा कि अवश्य उन्होंने अनजाने में वह रत्न-टोकरा लिया होगा, लेकिन भय से वे सही जवाब नहीं दे पाये होंगे, तो अब अभय देकर उनको दुबारा पूछुं।' फिर सचिव ने उनको बुलवाकार अभय देकर पूछा, 'तो उन्होंने जो यथार्थ था वह कह सुनाया, जिससे नीतिवान् सचिव ने उन्हें छोड़ दिया और उनसे क्षमा ली। वहां से छूटने के बाद दो दिन रहकर वे आगे चले, तो तीसरे ही दिन उस चण्डसेन के पुरुष जो बलिदान के लिए पुरुषों को ढूंढ रहे थे उनके हाथ वे लग गये, उनको भी दूसरों के साथ बंदीवान बनाकर चण्डसेना देवी के समीप बलिदान देने के लिए उन्हें ले आये। फिर चण्डसेन दासी और पुत्र सहित प्रियदर्शना को लेकर चण्डसेना देवी का अर्चन करने आया। उस समय 'इस भयंकर देवी को देखने के लिए वणिक स्त्री समर्थ नही हो सकेगी' ऐसा सोचकर चण्डसेन ने प्रियदर्शना के नेत्रों को वस्त्र से ढक दिया। फिर चण्डसेन ने स्वयं पुत्र को लेकर आंखों के इशारे से बलिदान देने के लिए आदमियों को लाने के लिए सेवकों को कहा। दैवयोग से पहले बंधुदत्त को ही लाया गया। फिर पुत्र को देवी के प्रणाम करवाकर रक्तचन्दन का पात्र हाथ में देकर चण्डसेन ने प्रियदर्शना को कहा, 'देवी की पूजा करा।' फिर निर्दय चण्डसेन ने अपनी ही म्यान में से खड़ग् निकाला। उस समय

प्रियदर्शना दीन बनकर सोचने लगी कि 'मुझे धिक्कार है, क्योंकि मेरे लिए ही इस देवी को इस पुरुष का बलिदान दिया जा रहा है, इसमें तो मेरी ही अपकीर्ति है। तब ऐसी अपकीर्ति मुझे क्यों लेनी ? अरे ! क्या मैं निशाचरी बन गई !' उस समय शुद्ध बुद्धिवाला बंधुदत्त मृत्यु को समीप आया जानकर नवकार मंत्र का परावर्त्तन करने लगा। नवकार मंत्र का ध्वनि सुनकर प्रियदर्शना ने तत्काल अपने नेत्र खोले, तो वहां अपने पति को ही अपने समक्ष देखा। जिससे उसने चण्डसेन को कहा, 'हे भ्राता ! अब आप सत्यप्रतिज्ञ हुए हो, क्योंकि यह तुम्हारे बहनोई बंधुदत्त ही हैं।' फिर चण्डसेन बंधुदत्त के चरणों में गिरकर बोला, 'अज्ञानता से हुए मेरे इस अपराध को क्षमा करें, और अब आप मेरे स्वामी हैं, इसलिए मुझे आज्ञा दीजिए।' फिर बंधुदत्त ने हर्ष पाकर प्रियदर्शना के प्रति कहा, 'इस चण्डसेन ने तो हमारा तुम्हारा मिलन कराया है, इसलिए इनका क्या अपराध है ! कुछ भी अपराध नहीं है।' इसके बाद बंधुदत्त ने चण्डसेन को कहकर बलिदान के लिए कैद करके लाये गये अन्य पुरुषों को छुड़वाया और चण्डसेन को पूछा, 'आपने ऐसा कार्य किसलिए किया ?' तो भीलों के राजा चण्डसेन ने पुरुषबलि की मनौती वगैरह का पूरा पूर्ववृत्तांत कह सुनाया। उसे सुनकर बंधुदत्त बोला, 'हे चण्डसेन ! जीवघात से पूजा करना योग्य नहीं है, इसलिए अब से देवी की पूजा पुष्पादिक से करना। आज से ही तुम हिंसा, पराये धन और परस्त्री का त्याग करो, मृषावाद छोड़ दो और संतोष का पात्र बनो।' चण्डसेन ने ऐसा करना कबूल किया। उस समय देवी भी प्रकट होकर बोली, 'आज से पुष्पादिक पदार्थो से ही मेरी पूजा करना।' यह सुनकर कइं भील भद्रिकभावी बने।

प्रियदर्शना ने बालपुत्र बंधुदत्त को अर्पण किया। बंधुदत्त ने वह पुत्र धनदत्त को दिया और अपनी पत्नी को कहा, 'ये मेरे मामा लगते हैं।' तत्काल प्रियदर्शना मुख आडा करके अपने श्वसुररुप मामाजी के पाय पड़ी। धनदत्त ने आशिष दी और कहा, 'इस पुत्र का अब नाम रखना चाहिए।' तो 'यह पुत्र जीवितदान दिए जाने से बाँधवों को आनन्ददायक हुआ है,' एसा सोचकर उसके मातापिता ने उसका 'बांधवानन्द' ऐसा नाम रखा। फिर किरातराज चण्डसेन ने मातुल सहित बंधुदत्त को अपनेघर ले जाकर भोजन कराया और उसका लूंटा हुआ सर्व धन उनको अर्पण किया। फिर अंजलि जोड़कर चित्रक का चर्म, चँवरी गाय के बाल, हाथीदांत व मुक्ताफल वगैरह भेंट उनके पास धरी। फिर बंधुदत्त ने वे कैद किए हुए पुरुषों को बंधु समान मानकर योग्य दान देकर बिदा किया और धनदत्त को द्रव्य से कृतार्थ करके उसको घर भेज दिया।

समर्थ बंधुदत्त प्रियदर्शना और पुत्र सहित चण्डसेन को साथ लेकर नागपुरी आया। उसके बंधु प्रसन्न होकर सामने आये। राजाने बड़े मानपूर्वक हस्ती पर बिठाकर उसका नगर प्रवेश कराया। अत्याधिक दान देते हुए बंधुदत्त अपने घर आया, और भोजन करने के बाद बंधुओं

को अपना सर्व वृत्तांत कह सुनाया। फिर आखिर में उसने सबको बताया, 'आज तक मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ हैं, उस पर से कहता हूं कि - श्री जिनशासन बिना सर्व असार है' बंधुदत्त की ऐसी वाणी से सब जिनशासन मे रक्त हुए। फिर बंधुदत्त ने चण्डसेन का सत्कार करके उसे बिदा किया और स्वयं बारह वर्ष तक सुख में रहा। एक बार शरदऋतु में श्री पार्श्वप्रभु वहां समवसरे। बंधुदत्त बडी समृद्धि के साथ प्रियदर्शना और पुत्र को लेकर उनको प्रणाम करने गया। प्रभु की वन्दना करके उसने धर्मदेशना सुनी। फिर बंधुदत्त को पूछा, 'हे प्रभो ! मेरी छः स्त्रियां ब्याहते ही किस कर्म से मृत्यु पायी ? और मुझे क्यों दो बार कैदी बनना पड़ा ? यह कृपा करके कहिए।'

प्रभु बोले, ''पूर्वभव में भरतक्षेत्र के विंध्याद्रि में **शिखासन** नाम का तू भील राजा था। तू हिंसा करनेवाला और विषयप्रिय था। यह प्रियदर्शना उस भव में **श्रीमती** नाम की तेरी स्त्री थीं। उसके साथ विलास करते हुए तू पर्वत के कुंजगृह में रहता था। एक बार कुछ साधुओं का समूह मार्ग भूल जाने से अटवी में इधर-उधर भटक रहा था, वह तेरे कुंजगृह के पास आया। उसे देखकर तेरे हृदय में दया आयी। तूने जाकर उनको पूछा, 'आप यहां क्यों भटक रहे हो ?' वे बोले, 'हम मार्ग चूक गये हैं।' फिर श्रीमती ने तुझे कहा, 'इन मुनियों को फलादिक का भोजन करवाकर मार्ग पर चढा आओ, क्योंकि यह अटवी दुरुत्तरा है।' फिर तूने कंद-फलादिक लाकर उनके पास रखा, तो मुनि बोले, 'ये फल हमें कल्पते नहीं है। इसलिए जो वर्ण, रस और गंधादिक से रहित हो वह हमें दीजिए। लम्बे अरसे से लिया हुआ और नीरस (अचित) फलादिक हम ले सकते हैं। यह सुनकर तूने वैसे फलादिक लाकर उनको प्रतिलाभित किया। फिर साधुओं को मार्ग दिखाया, तो उन्होंने तुझे धर्म सुनाकर पंच परमेष्ठी नमस्काररुपी महामंत्र देकर कहा, 'हे भद्र ! पखवाड़े में मात्र एक दिन सर्व सावद्य कर्म छोड़कर एकांत में बैठकर पूरा दिन तू यह मंत्र रटना, लेकिन उस समय कदापि तेरा कोई द्रोह करे तो भी तुझे उस पर क्रोध नहीं करना है। इस प्रकार धर्म का अनुसरण करने से तुझे स्वर्ग की लक्ष्मी भी दुर्लभ नहीं है।' फिर तूने वैसा करना स्वीकार किया, तो मुनियों ने अन्यत्र विहार किया।

एक बार तू एकांत में बैठकर उस मंत्र का स्मरण कर रहा था कि वहां एक केसरी शेर आया। उसे देखकर श्रीमती तत्काल भय पा गयी। तो 'भय पाना मत' यूं कहते हुए ही तूने धनुष्य ग्रहण किया। उस समय श्रीमती ने गुरु का दिया हुआ नियम याद करवाया, जिससे तू निश्चल हो गया। फिर वह शेर तेरा और श्रीमती का भक्षण कर गया। वहां से मृत्यु पाकर तुम दोनों सौधर्म देवलोक में पल्योपम के आयुष्य वाला देव बना। वहां से च्यूत होकर अपरविदेह क्षेत्र में **चक्रपुरी** के राजा **कुरुमृगांक** के घर **बालचन्द्रा** रानी से तू पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ।

श्रीमती वहां से च्यूत होकर उस कुरुमृगांक राजा के साले **सुभूषण** राजा की **कुरुमती** नाम की रानी से पुत्रीरुप में उत्पन्न हुई। तुम्हारे दोनों के नाम **शबरमृगांक** और **वसंतसेना** ऐसे नाम पड़े। क्रमशः अपने अपने स्थान में तुम दोनों युवावस्था को प्राप्त हुए। वसंतसेना तेरे गुण सुनकर तुझ पर आसक्त बनी, और एक चतुर चित्रकार ने चित्रांकित करके दिखाए हुए उसके रुप को देखकर तू भी उसके पर आसक्त बना। परस्पर अनुराग हुआ जानकर तेरे पिता ने तेरा ब्याह उसके साथ करवाया। फिर तेरे पिता तापस बना और तू राजा बना। हे बुद्धिमान्! पहले भील के भव में तूने तिर्यंचों का वियोग करवाकर जो कर्म बांधा था, वह इस भव में तुझे उदित हुआ, यह यथार्थरुप से तू सुन।

उस विजय में जयपुर नगर में **वर्धन** नाम का एक महापराक्रमी राजा था। उसने निष्कारण ही तुज पर कोपित होकर आदमी भेजकर कहलवाया, 'तेरी रानी वसंतसेना मुझे सौंप दे, मेरा शासन ग्रहण कर और फिर सुख से राज भुगत, नहीं तो मेरे साथ युद्ध कर।' यह सुनते ही तुझे क्रोध चढ़ा, जिससे लोगों ने उस समय असगुन होते देखकर तुझे बहुत रोका, तो भी तू सैन्य सहित एक गजेन्द्र पर बैठकर उसके साथ युद्ध करने निकला। वर्धन राजा तो तुझसे पराभव पाकर भाग गया। फिर **तप्त** नाम का एक बलवान राजा तेरे साथ युद्ध करने आया, उसने युद्ध करके तेरी सेना को क्षीण कर दिया और तुझे जान से मार डाला। उस समय रौद्र ध्यान वश मृत्यु पाकर छट्ठी नरक में नारकी बना। तेरे विरह में पीडित होकर वसंतसेना भी अग्नि में प्रवेश करके मृत्यु पाकर उसी नरकभूमि में उत्पन्न हुई। वहां से निकलकर तू पुष्करवरद्वीप के भरतक्षेत्र में एक निर्धन पुरुष के घर पुत्ररुप में उत्पन्न हुआ और वसंतसेना भी नरक में से निकलकर तेरे जैसी ही जाति में पुत्रीरुप में उत्पन्न हुई। युवावय में तुम दोनों का विवाह हुआ। दुःख का द्वार दारिद्रय फिर भी तुम दोनों निरंतर क्रीडा करने लगे। एक बार तुम दोनों घर में थे, इतने में जैन साध्वियां तुम्हें नजर आयी तो तुमने उठकर आदर व भक्ति से अन्न-पान से उनको प्रतिलाभित किया। फिर उनको उनके स्थान संबंधित पूछने से वे बोली कि **बालचन्द्रा** नाम की हमारी गणिनी है और वसुश्रेष्ठी के घर के पास हमारा उपाश्रय है।' फिर दिन के अंत भाग में मन में शुभ भाव धारण करके तुम वहां गये, तो गणिनी बालचन्द्रा ने तुम्हें अच्छी तरह धर्म सुनाया, जिससे उनके पास से तुमने गृहस्थधर्म ग्रहण किया। वहां से मृत्यु पाकर तुम दोनों ब्रह्मदेवलोक में नौं सागरोपम के आयुष्यवाले देवता बने। वहां से च्युत होकर तुम इस भव में उत्पन्न हुए हो। पूर्वभव के भील के जन्म में तुमने तिर्यंच प्राणियों को वियोग कराया था और दुःख दिया था, उस समय तेरी इस स्त्रीने अनुमोदना की थी, उस कर्म के विपाक से इस भव में तुझे ब्याही स्त्रियों का विनाश, विरह बन्धन और देवी के बलिदान

के लिए बंदी होने वगैरह की वेदना प्राप्त हुई, क्योंकि "कर्म का विपाक महाकष्टकारी है।" इसके बाद बंधुदत्त ने दुबारा पार्श्वनाथ प्रभु को नमस्कार करके पूछा, 'अब यहां से हम कहां जायेंगे ? और हमें अब कितने भव और करने पडेंगे ?' प्रभु ने कहा, 'तुम दोनों यहां से मृत्युपाकर सहस्रार देवलोक में जाओगे। वहां से च्यूत होकर तू पूर्व विदेह में चक्रवर्ती बनेगा और यह स्त्री तेरी पटरानी बनेगी। उस भव में तुम दोनों चिरकाल तक विषय-सुख भोगकर दीक्षा लेकर सिद्धि को प्राप्त होगे।' प्रभु के इस प्रकार के वचन सुनकर बंधुदत्त ने प्रियदर्शना के साथ तत्काल प्रभु से दीक्षा ग्रहण की।

एक दिन श्री पार्श्वनाथ प्रभु नौ निधि के स्वामी ऐसे एक राजा के नगर समीप समवसरे। यह खबर सुनकर वह राजा प्रभु की वंदना के लिए आया। प्रभु को वन्दन करके उसने पूछा, 'हे प्रभो ! पूर्व जन्म के कौनसे कर्म से मैं इतनी बड़ी समृद्धि को प्राप्त हुआ हूं ?' प्रभु बोले -

"महाराष्ट्र देश में **हेल्लूर** नाम के गाँव में तू पूर्वजन्म में **अशोक** नाम का माली था। एक दिन पुष्प बेचकर तू घर जा रहा था, वहां अर्धमार्ग में किसी श्रावक के घर अर्हंत की प्रतिष्ठा हो रही थी, यह देखकर तू उसके घर में गया। वहां अर्हंत का बिंब देखकर तू छाबड़े में पुष्प ढूंढने लगा। उस समय नौं पुष्प तेरे हाथ आये। वे पुष्प तुने बड़े भाव से प्रभु पर चढाये। जिससे तूने बड़ा पुण्य उपार्जित किया। एक बार तूने प्रियंगु वृक्ष की मंजरी लेकर राजा को भेंट की, उससे प्रसन्न बनकर राजा ने तुझे लोकश्रेणी के सचिव की पदवी दी। वहां से मृत्यु पाकर तू **एलपुर** नाम के नगर में नौ लाख द्रम्म (सुवर्ण के सिक्के) का स्वामी बना। वहां से मृत्यु पाकर तू उसी नगर में नौ कोटी द्रव्य का अधिपति बना। वहां से मृत्यु पाकर स्वर्णपथ नगर में नौ लाख सुवर्ण का पति बना। वहां से मृत्यु पाकर तू उसी नगर में नौ कोटी सुवर्ण का स्वामी बना। वहां से मृत्यु पाकर रत्नपुर नगर में नौ लाख रत्न का अधिपति बना। वहां से मृत्यु पाकर उसी नगर में नौ कोटी रत्नों का स्वामी बना। वहां से मृत्यु पाकर वाटिका नगरी में वल्लभ नाम के राजा का पुत्र नौ लाख गाव का अधिपति बना और वहां से मृत्यु पाकर तू इस भव में नौ निधि का स्वामी राजा बना है। अब यहां से अनुत्तर विमान में उत्पन्न होगा।" प्रभु की ऐसी वाणी सुनकर राजा के मन में अत्यंत शुभ भावना उत्पन्न हुई, इससे तत्काल उसने प्रभु से दीक्षा ग्रहण की।

इस प्रकार विहार करते हुए श्री पार्श्वनाथ प्रभु को सोलह हजार महात्मा साधुओं, अडत्तीस हजार साध्वीयाँ, तीन सौं पचास चौदह पूर्वधारी, एक हजार चारसौं अवधिज्ञानी, साडा सातसौं मनःपर्यवज्ञानी, एक हजार केवलज्ञानी, ग्यारहसौ वैक्रियलब्धिवाले, छःसौ बादलब्धिवाले, एक लाख चौसठ हजार श्रावक और तीन लाख सित्ततर हजार श्राविका - यूं इस प्रकार केवलज्ञान

के दिन बाद परिवार हुआ। फिर अपना निर्वाण समय नज़दीक जानकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु संमेतगिरि पर पधारे। वहां दूसरे तैतीस मुनियों के साथ भगवंत ने अनशन ग्रहण किया। अंत में श्रावण माह की शुक्ल अष्टमी को विशाखा नक्षत्र में जगद्गुरु श्री पार्श्वनाथ प्रभु तैतीस मुनियों के साथ मोक्षपद को प्राप्त हुए।

गृहस्थपने में तीस साल और व्रत पालने में सत्तर साल - यूं सौं वर्ष का आयुष्य श्रीपार्श्वनाथ प्रभुने भोगा। श्री नेमिनाथ प्रभु के निर्वाण के बाद तियासी हजार सातसौं पचास वर्ष हो जाने के बाद श्री पार्श्वनाथ प्रभु मोक्ष पधारे। उस समय शक्रादिक इन्द्र देवताओं को साथ लेकर संमेतगिरि पर आये और अधिक शोकाक्रांतपन से उन्होंने श्री पार्श्वनाथ प्रभु का उच्च कोटि का निर्वाण महोत्सव किया।

तीन जगत में पवित्र ऐसे श्री पार्श्वनाथ प्रभु के चरित्र को श्रद्धालु बनकर जो सुनता है, उसकी विपत्तियां दूर हो जाती है और उनको अद्भुत संपत्तियां भी प्राप्त होती है। इतना ही नहीं, लेकिन आखिर में परम पद भी प्राप्त होता है।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचिते त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरिते महाकाव्येनवमे पर्वणि श्री पार्श्वनाथविहारनिर्वाणवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः॥४॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

तीसरा भाग समाप्त

श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ भगवान
श्री उन्देल तीर्थ

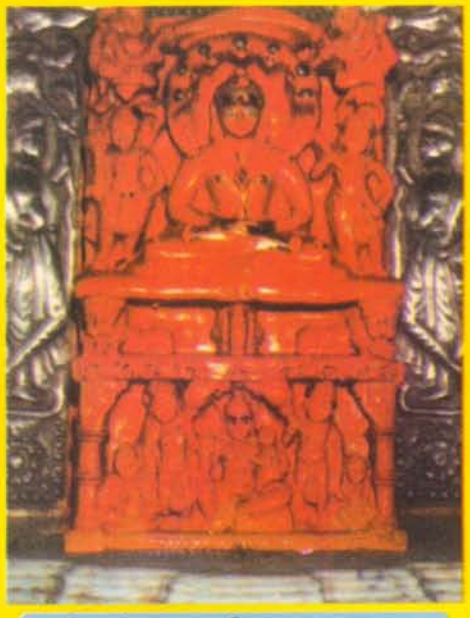

श्री भटेवा पार्श्वनाथ भगवान
श्री चाणस्मा तीर्थ

-: सौजन्य दाता :-

कृष्णनगर जैन मूर्तिपूजक संघ

नरोडा रोड, अहमदाबाद

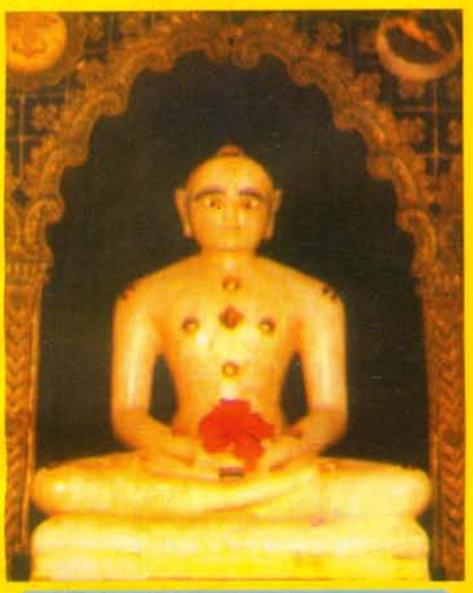

श्री महावीर स्वामि भगवान
श्री भद्रेश्वर तीर्थ

श्री महावीर स्वामि भगवान
श्री जखौ तीर्थ

श्री महावीर स्वामि भगवान
श्री नांदिया तीर्थ

श्री महावीर स्वामि भगवान
श्री कोबा तीर्थ

શ્રી ગીરનાર તીર્થ

શ્રી સમ્મેતશિખર તીર્થ

શ્રી રાણકપુર તીર્થ

Printed by : "MERCURY" (079) 25628724 (M) 9327007016